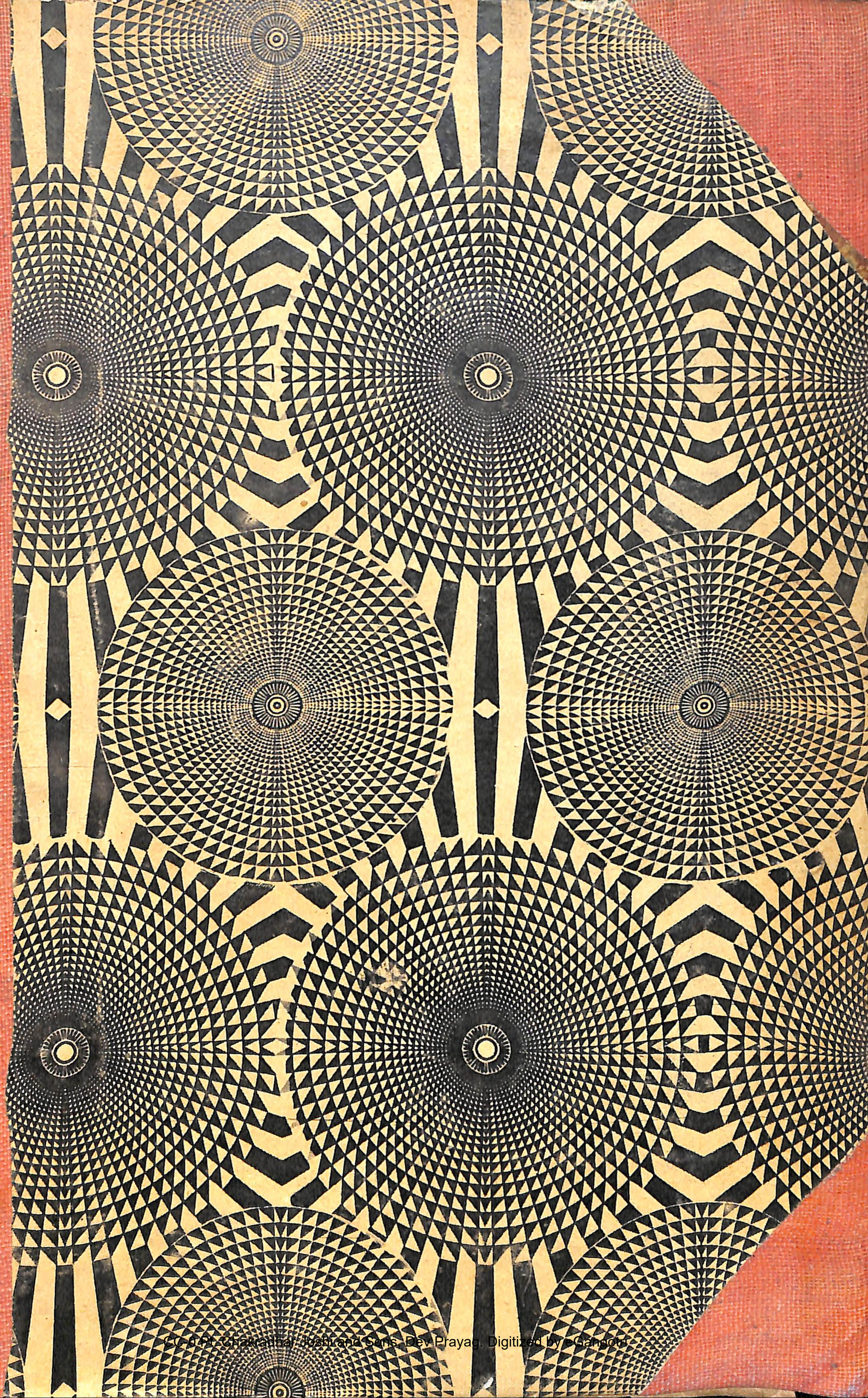




* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *



श्रीमद्भागवत.

दशमस्कन्ध.

मुरादाबाद निवासी सारस्वतवंशोद्भव
पण्डित जगन्नाथात्मज

पण्डित-कन्हैयालालउपाध्याय.

द्वारा अनुवादित.

और भागवत् प्रकाश कार्यालयद्वारा प्रकाशित ।

तथा



पं० बलदेवप्रसादमिश्र

मैनेजर "तंत्रप्रभाकर" प्रेस द्वारा मुद्रित ।

मुरादाबाद.

संवत् १९५८ सन् १९०१ ई०



॥ श्रीहरिः ॥

मङ्गलाचरण

* जुगल छबि आज अनूपबनी *

* सांवश्याम गौरछबिराधा नख शिख द्युतिकमनी ॥ १ ॥ *

* श्रीनिकुञ्जविहारिणेनमः *



* ललिताकिशोरीलालरसिकवर, मृदुमुसकानिचवनी ॥ २ ॥ *

* खंजननयन मयन मदगंजन, अंजनरेखअनी *

श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ कथितोवंशविस्तारोभवतासोमसूर्ययोः । राज्ञांचोभयवंश्यानांचरितंपरमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्चधर्मशीलस्य नितरांमुनिसत्तम । तत्रांशेनावतीर्णस्यविष्णोर्वीर्याणिशंसनः ॥ २ ॥ अवतीर्ययदोर्वंशेभगवान्भूतभावनः । कृतवान्यानिविश्वात्मातानिनोवदविस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् । कउत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत

राजा परीक्षित नें श्रीशुकदेवजी से कहा कि चन्द्र और सूर्य बंश का विस्तारित वर्णन आपने किया दोनों बंश वाले राजाओंके अद्भुत चरित्रों का वर्णन ॥ १ ॥ तथा धर्म शील यदुके बंशकाभी वर्णन किया अब उसी बंश में अंश से उत्पन्नहुए भगवान विष्णु के पराक्रम की कथा कहो ॥ २ ॥ भूत भवान भगवान् नें यदु वंशमें अवतारले जो २ अद्भुत कर्म कियेथे, आप उन सबको विस्तार सहित मुझसे कहो ॥ ३ ॥ मुक्त मनुष्यभी उन उत्तम श्लोक भगवानके गुणोंका कीर्त्तन करते हैं, मुमुक्षुलोगोंका संसारसे छूटनेंका यही एक उपायहै, क्योंकि संसार रूपी रोगकी औषधि तथा कान

विनापशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहामेसमरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः। दुरत्ययंकौरवसैन्यसागरंकृत्वाऽतरन्वत्सपदंस्मयत्प्लवाः ॥ ५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदंमदङ्गंसंतानबीजंकुरुपाण्डवानाम्। जुगोपकुक्षिंगतआत्तचक्रोमातुश्चमेयः शरणंगतायाः ॥ ६ ॥ वीर्याणितस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः। प्रयच्छतोमृत्युमुतामृतंचमायामनुष्यस्यवदस्वविद्वन् ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तोरामः संकर्षणस्त्वया। देवक्यागर्भसंबन्धः कुतोदेहान्तरंविना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दोभगवान्पितुर्गेहाद्व्रजंगतः। क्ववासंज्ञातिभिः सार्धंकृतवान्सात्वतांपतिः ॥ ९ ॥ व्रजेवसन्किमकरोन्मधुपुर्यांचकेशवः। भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहंमानुषमाश्रित्यकतिवर्षाणिवृष्णिभिः। यदुपुर्यांसहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्चसर्वंमेमुनेकृष्णविचेष्टितम्। वक्तुमर्हसिसर्वज्ञश्रद्दधानायविस्तृतम् ॥ १२ ॥ नैषाऽतिदुःसहाक्षुन्मांत्यक्तोदमपिबाधते। पिबन्तंत्वन्मुखाम्भोजच्युतंहरिकथामृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवंनिशम्यभृगुनन्दनसाधुवादंवैयासकिः सभगवानथविष्णुरातम्। प्रत्यर्च्यकृष्णचरितंकलिकल्मषघ्नंव्याहर्तुमारभतभागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिताबुद्धिस्तवराजर्षिसत्तम। वासुदेवकथायांतेयज्जातानैष्ठिकीरतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनातिहि। वक्तारंपृच्छकंश्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥

और मनको सुखकर होनें से यही विषयी मनुष्योंका एक मात्र विषय है पशुघाती मनुष्य के अतिरिक्त और कौन मनुष्य उससे विरक्त होसकता है ।४। देवताओं के जीतनेंवाले अतिरथी भीष्मादि रूप मत्स्यों से परिपूर्ण कौरव सैन्य रूपी सागरका पारहोना अत्यंत कठिन था परन्तु हमारे पितामह भगवान के दोनों चरण को नावकर गौके खुर की समान सहजहीं में उस सागरसे पारहुए थे ॥ ५ ॥ कुरु पांडव संतति की बीज रूप मेरे इस देहके अश्वत्थामा की अस्त्राग्नि द्वारा दग्ध होनेपर जिन भगवान नें चक्र धारण कर शरण में आई मेरी माता के गर्भ में प्रवेशकर रक्षा कीथी ॥ ६ ॥ जो काल स्वरूप से सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर और बाहर स्थित हो मोक्ष और संसारको देतेहैं उन मायामय भगवान के सम्पूर्ण पराक्रम मुझसे कहो ॥ ७ ॥ आपनें कहा कि बलदेवजी रोहिणी के सुतहैं फिर कहते हैं कि देवकी के सुतहैं सो दूसरी देह बिना धारण किये देवकी के गर्भमें प्रवेश करना कैसे सम्भव होसकता है ॥ ८ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी किस कारण पिता के घरसे ब्रजमें गए सात्वतपति भगवान् नें जाति वालों के साथ कहांपर वास किया ॥ ९ ॥ केशव ने ब्रज और मथुरा में निवास कर कौन २ कार्य किये थे माता के भाई नमारने योग्य कंस को सम्बन्ध होनेंपर भी अपनें हाथ से क्यों मारा ॥ १० ॥ मनुष्य देह धारणकर भगवान कितनें समय तक वृष्णिगणों के साथ मथुरामें रहे उनके कितनी स्त्रियां थीं ॥ ११ ॥ हे मुने ! हे सर्वज्ञ ! इनको तथा और भी दूसरे कृष्ण चरित्रों को कहो उनके सुननेकी मेरी इच्छा है ॥१२॥ आपके मुख से जो हरिकथा रूप अमृत निकलता है मैं उसको भली भांति पान करता हूं इसी से यद्यपि मैंनें जल का पान करना तक छोड़दिया है तौभी क्षुधामुझको दुःख नहीं देसकती ॥ १३ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे शौनक ! परम भागवत, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने राजा परीक्षित की इस उत्तम बातको सुनकर उनकी प्रशंसाकर, कलिके पाप नाशक श्रीकृष्णजी के चरित्रोंका कहना आरंभ किया ॥१४॥ शुकदेवजी ने कहाकि—हे उत्तम राजर्षि! तुम्हारी बुद्धिने अतिउत्तम निश्चय किया है किजो ऐसे विषयों में प्रवृत्त हुई है इसही कारण श्रीकृष्णजी की कथामें तुम्हारी नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ विष्णुजीका चरणोदक अर्थात् गंगा जैसे नहाने वालोंकी तीन पीढ़ियोंको पवित्र करती है

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः। आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः । उपस्थिताऽन्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥ १८ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याऽथ सह देवैस्तया सह । जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् । पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह । गां पौरुषीं मे शृणुताऽमराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव माचिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् । स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः । जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलानंतः सहस्रवदनः स्वराट् । अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् । आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्याऽमरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः । आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥ शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् । माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साऽभूत्सर्वयादवभूभुजाम् । मथुरा भगवान्यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः । देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया । रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै

तैसेही भगवान श्रीकृष्णजी विषयक प्रश्नवक्ता प्रश्नकर्त्ता और श्रोता—इनतीन मनुष्योंको पवित्र करता है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! अहंकारी राजवेशधारी—दैत्योंकी असंख्य सेनारूप पृथ्वी के भारसे दुःखित होकर पृथ्वीने ब्रह्माजी की शरणली ॥ १७ ॥ उस दुःखित पृथ्वीने गऊरूप धारण कर, आंसूबहाती, करुण स्वरसे रोती २ ब्रह्माजी के समीप जाय अपने अभिप्रायको प्रगटकिया ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी उसके वृत्तांतको सुन महादेव तथा और देवताओंको साथले पृथ्वी समेत क्षीर सागरके तटपर गये ॥ १९ ॥ उस स्थानमें पंहुचकर एकाग्र चित्तहो वेदमंत्रों से नारायण की स्तुति करने लगे, उन्हीं मंत्रोंसे जगन्नाथ देव देव नारायण की आराधना करनेलगे ॥ २० ॥ कुछ कालके उपरांत ब्रह्माजी ने आकाशवाणी सुनकर देवताओं से कहाकि—हे देवताओं ! भगवान ने जोकुछ कहा है उसको सुनकर उसी के अनुसार कार्यकरो—विलंब नहो ॥ २१ ॥ निवेदन करने के पहिलेही से भगवानको पृथ्वी की विपद विदित है। तुमअपने २ अंशसे यदुवंशियों में जन्म ग्रहणकरो, भगवान् हारकुछही समयके उपरांत अपनी कालशक्ति द्वारा पृथ्वीका भार उतार कर भूतल में विहार करेंगे ॥ २२ ॥ परम पुरुष भगवान शीघ्रही वसुदेव के घरमें जन्म लेवेंगे। उनके प्रियकरने के निमित्त देवांगनाएं पृथ्वीपर उत्पन्नहों ॥ २३ ॥ भगवानके अंश, सहस्र बदन विराट् शेषनागजी भगवानके प्रियकरने के निमित्त पहिले जन्म लेवेंगे ॥ २४ ॥ जोभगवती विष्णु माया जगतको मोहित करती है वह भगवान की आज्ञासे कार्य सिद्धि करने के निमित्त यशोदाके गर्भसे अंशसे उत्पन्नहोगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! देवताओंको यह आज्ञा कर, नाना मधुर बचनोंसे पृथ्वीको समझाय ब्रह्माजी अपने स्थानकोगये ॥ २६ ॥ पहिले यदुपति शूरसेन मथुरानगरी में बासकर माथुर तथा शूरसेन देशोंका भोगकरते थे ॥ २७ ॥ इसही कारण तभीसे मथुरा यदुपतियों की राजधानी हुई। भगवान श्रीकृष्णजी सदैव वहां बिराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक समय उस नगरीमें शूरबंशी बसुदेवजी व्याह करके अपनेघर आने के निमित्त अपनी नव बिबाहिता स्त्री देवकी के साथ रथपर सवार हुये ॥ २९ ॥ उग्रसेनके पुत्र कंसने देवकीके प्रिय करनेको, सैकड़ों सोनेके रथोंको साथले, स्वयं बहिनके रथपर बैठ घोड़ों

रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतंपारिबर्हंगजानांहेममालिनाम् । अश्वानामयुतंसार्धं रथानांचत्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥ दासीनांसुकुमारीणांद्वेशतेसमलंकृते । दुहित्रेदेवकः प्रादाद्यानेदुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शंखतूर्यमृदङ्गाश्चनेदुर्दुन्दुभयःसमम् । प्रयाण प्रक्रमेतावद्वरवध्वोःसुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथिप्रग्रहिणंकंसमाभाष्याऽऽहाऽशरीरवाक् । अस्यास्त्वामष्टमोगर्भोहंतायांवहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तःसखलःपापोभोजानांकुलपांसनः । भगिनींहन्तुमारब्धःखड्गपाणिःकचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तंजुगुप्सितकर्माणंनृशंसंनिरपत्रपम् । वसुदेवोमहाभागउवाचपरिसांत्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणःशूरैर्भवान्भोजयशस्करः । सकथंभगिनींहन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतांवीरदेहेनसहजायते । अद्यवाऽब्दशतांतेवामृत्युर्वै प्राणिनांध्रुवः ॥ ३८ ॥ देहेपञ्चत्वमापन्ने देहीकर्मानुगोऽवशः । देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनंत्यजतेवपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेनयथैवैकेनगच्छति । यथातृणजलूकैवं देहीकर्मगतिंगतः ॥४०॥ स्वप्नेयथापश्यतिदेहमीदृशंमनोरथेनाऽभिनिविष्टचेतनः । दृष्टश्रुताभ्यांमनसाऽनुचिन्तयन्प्रपद्यतेतत्किमपिह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतोयतोधावतिदैवचोदितंमनोविकारात्मकमापपञ्चसु । गुणेषुमायारचितेषुदेह्यसौप्रपद्यमानः सहतेनजायते ॥ ४२ ॥ ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदःसमीरवेगानुगतंविभाव्यते । एवंस्वमायारचितेष्वसौपुमान्गुणेषुरागानुगतोविमुह्यति ॥ ४३ ॥तस्मान्नकस्यचि

की बाग पकडी ॥ ३० ॥ पुत्री को चाहनेवाले देवकने पुत्री को अम्बारियों समेत सुवर्ण मालाधारी ४०० हाथी १५००० घोडे १८०० रथ, तथा नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित २०० सुंदर दासियें दहेज में दीं । ३१ । ३२ । हे वत्स ! वर और बहूके जाने के समय में दुंदुभी, शंख तुरही और मृदंग सब माङ्गलिक शब्द करनेलगे ॥ ३३ ॥ उसी समय मार्गके मध्य में आकाशबाणी नें कंसको पुकारकर कहा कि रे अबोध ! तू जिसको लियेजाता है, उसके आठवें गर्भ से उत्पन्न हुई संतान तेरा प्राण बध करेगी ॥ ३४ ॥ भोजवंशियों के कुल के कलंकी उस पापी कंस नें इस बात को सुन तलवार ले बहिन के मारनेंपर तत्परहो उसके केश पकड़ लिये ॥ ३५ ॥ महाभाग वसुदेव नें उस निर्लज्ज कंसकी निठुरता को देख उसको समझाकर कहा कि ॥ ३६ ॥ हे कंस ! तुम्हारे गुणों की प्रशंसा शूरगण करतेरहते हैं तुम भोज वंशियों के यशको बढ़ानेवाले हो सो बिवाह के उत्सवमें इस स्त्री जाति बहन को मारना केसे चाहतेहो ॥ ३७ ॥ हे वीर ! प्राणियों की मृत्यु प्राणियों के साथही जन्म ग्रहण करती है आजहो चाहे सौ वर्ष के उपरांत हो प्राणियों की मृत्यु निश्चय ही होगी ॥ ३८ ॥ इस देह के नाश होनेसे कर्मानुवर्ती जीव दूसरी देह के पानेंपर पहिले शरीरको छोड़ता है जैसे मनुष्य चलनें के समय एक पांव भूमिपर रखकर फिर दूसरा पैर भूमि से हटाता है जैसे जोंक आगेके तिनकेको पकड़कर पहिले के पकड़ेहुये तिनके को छोड़ती है, वैसेही कर्ममार्गी जीव भी देहोंको प्राप्त होता रहताहै ॥ ४० ॥ जागनेकी अवस्थामें देखने व सुननेके कारण जो संस्कार (विचार) मनमें उत्पन्न होते हैं एकाग्रचित्तसे उन देखे व सुनेहुए विषयोंको बिचारनेसे वैसेही विषय जाग्रदवस्थाके मनुष्य जैसे स्वप्नमें देखा करते हैं वैसेही जीवकर्म बशहो स्मृति रहित देहको प्राप्त होकर पूर्व शरीरका परित्याग करताहै ॥ ४१ ॥ देहके पंचत्व प्राप्त होनेके समय नाना विकारात्मक मन फलाभिमुख कर्मोंसे प्रेरितहो, माया द्वारा नाना देहरूपसे बिरचित पंचभूत गणोंके मध्यमें जिस २ रूपको प्राप्त होताहै—उसी२रूपका जीवजन्म लेता रहताहै ॥ ४२ ॥ चंद्रादिज्योतिः पदार्थ जैसे तैल घृत जलादि पार्थिव व पदार्थोंसे प्रतिबिंबित होकर बायुसे कम्पायमान प्रतीत होतेहैं, तैसेही जीव इस अविद्या रचित गुणोंका अनुगत (साथी) हो उन्हींसे मोहितहोताहै ॥

द्द्रोहमाचरेत्सतथाविधः । आत्मनःक्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वैपरतोभयम् ॥ ४४ ॥ एषातवानुजाबालाकृपणापुत्रिकोपमा । हन्तुंनार्हसि कल्याणीमिमांत्वंदीनवत्सलः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच । एवंससामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपिदारुणः । नन्यवर्ततकौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥ निर्बन्धंतस्यतंज्ञात्वाविचिन्त्यानकदुन्दुभिः । प्राप्तंकालंप्रतिव्योढुमिदंतत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥ मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् । यद्यसौननिवर्तेत नापराधोऽस्तिदेहिनः ॥ ४८ ॥ प्रदायमृत्यवेपुत्रान्मोचयेकृपणामिमाम् । सुतामेयदिजायेरन्मृत्युर्वानम्रियेतचेत् ॥ ॥ ४९ ॥ विपर्ययोवाकिंन स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया । उपस्थितोनिवर्तेतनिवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथादारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्ननिमित्तमस्ति । एवंहिजन्तोरपिदुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवंविमृश्यतंपापंयावदात्मनिदर्शनम् । पूजयामासवैशौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजोनृशंसंनिरपत्रम्। मनसादूयमानेनविहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच॥ नह्यस्यास्तेभयंसौम्ययद्वैसाऽऽहाशरीरवाक् । पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्यायतस्तेभयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निवृतेकंसस्तद्वाक्यसारवित् ।

॥ ४३ ॥ ऐसी स्थितिवाले प्राणी यदि अपने कल्याणकी इच्छाकरें तो कभी किसीकी हिंसा न करें । क्योंकि जो दूसरेकी हिंसा करते हैं तो दूसरोंसे उनकी भी हिंसा होनेकी संभावनाहै तथा परलोकमें यमराजसे भी दुःख मिलनेकी सम्भावनाहै, ॥ ४४ ॥ तुम्हारी यह छोटी बहिनहै तथा यह बालिका; दीन और कातरहै भयसे यह काठकी पुतलीके समान अचेत होगईहै ।तुम दीनोंपर दया करनेवालेहो, अतएव इस कल्याणरूप बालिकाको मारना तुम्हें उचित नहीं है।॥४५॥ शुकदेवजीने कहा कि—हेकौरव्य ! कंस अति निठुर और दैत्योंके परामर्शका माननेवालाथा, अतएव बसुदेवके इसभांतिसे मित्रताकरने और भयदिखाकर समझाने परभी वह निवृत्त न हुआ,॥ ४६ ॥ बसुदेव उसके अभिप्रायको जानकर किसप्रकार आयेहुए कालका यत्नकरूं इसप्रकार चिंताकर यह मनमें ठहराने लगे ॥ ४७ ॥—कि बुद्धिमान मनुष्यको अपनी बुद्धि और बलके अनुसार मृत्युको निवारण करना चाहिये । यदि उससे भी निवारण न करसके तो फिर प्राणीका अपराध नहीं है ॥ ॥ ४८ ॥ मैं कालरूपी इस कंसको सब पुत्रोंके देनेका बचन देकर इस दीन स्त्रीकी रक्षाकरूं, । फिर जब मेरे पुत्र उत्पन्न होगा तब जो होनाहोगा सो होरहेगा, इससमय तो देवकी बचजायगी ॥ ४९ ॥ कदाचित् मेरे पुत्र उत्पन्न होनेके पहिलेही कंसकी मृत्यु होजावे । और यदि कंस न भी मरेगा तो मेरा पुत्रभी तो इसको मारसकताहै क्या बिधाताकी आकाशबाणी मिथ्याहोसकतीहै ? " पुत्रदूंगा,, यह स्वीकार,करलेनेसे आईहुई मृत्यु निवृत्त होसकतीहै; कालके प्रभावसे यदि फिर इसकी मृत्यु होजावे तो ऐसा होनेसे मेरा कोई अपराध नहीं है, ॥ ५० ॥ अग्निके काठके संयोग बियोगका अदृष्टही एक कारणहै अर्थात गांवोंमें गृहस्थके घर आग लगकर जलाते २ वह कभी निकटके घर आदिकोंको छोडकर दूरके घरोंको जलाती है, उसका कारण जैसे भाग्यके अतिरिक्त और कुछभी नहींहै ऐसेही प्राणियोंकी जन्ममृत्युभी भाग्याधीनहै ॥ ५१ ॥ अपने ज्ञानानुसार बसुदेवने इसभांति बिचारकर मानपूर्वक पापीकंसका सत्कार किया ॥ ५२ ॥ तथा प्रफुल्लित मुखसे हंसते २ दुःखित मनसे उस दुष्ट कंससे फिर कहा ॥५३॥ हे सौम्य ! आकाश बाणीने जो कहा है उसका बिचार व भय तुम मतकरो, क्योंकि इसके पुत्रोंहीसे तो तुमको, भयहै सो वह पुत्र जो होंगे सब तुम्हारे अर्पण करूंगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—बसुदेवके बचनोंको अभि-

वसुदेवोऽपितंप्रीतः प्रशस्यप्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥ अथकालउपावृत्तेदेवकीसर्वदे
वता । पुत्रान्प्रसुषुवेचाष्टौकन्यांचैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमन्तंप्रथमजंकंसायाा
नकदुन्दुभिः । अर्पयामासकृच्छ्रेणसोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किंदुःसहंनुसा
धूनांविदुषांकिमपेक्षितम् । किमकार्यंकदर्याणांदुस्त्यजंकिंधृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ द
ष्ट्वासमत्वंतच्छौरेः सत्येचैवव्यवस्थितिम् । कंसस्तुष्टमनाराजन्प्रहसन्निदमब्रवी
त् ॥ ५९ ॥ प्रतियातुकुमारोऽयंनह्यस्मादस्तिमेभयम् । अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे
विहितःकिल ॥ ६० ॥ तथेतिसुतमादाययग्यावानकदुन्दुभिः । नाभ्यनन्दततद्वा
क्यमसतोविजितात्मनः ॥ ६१ ॥ नन्दाद्यायेव्रजेगोपायाश्चामीषांचयोषितः । वृष्ण
योवसुदेवाद्यादेवक्याद्यायदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वेवैदेवताप्रायाउभयोरपिभारत ।
ज्ञातयोबन्धुसुहृदोयेचकंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसायभगवाञ्छशंसभ्येत्यनार
दः । भूमेर्भारायमाणानांदैत्यानांचवधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमेकंसोयदून्म
त्वासुरानिति । देवक्यागर्भसंभूतंविष्णुंचस्ववधंप्रति ॥६५॥ देवकींवसुदेवंचनिगृ
ह्यनिगडैर्गृहे । जातंजातमहन्पुत्रंतयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥ मातरंपितरंभ्रातॄन्सर्वां
श्चसुहृदस्तथा । घ्नन्तिह्यसुतृपो लुब्धाराजानः प्रायशोभुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमि
हसंजातंजानन्प्राग्विष्णुनाहतम् । महासुरंकालनेमियदुभिः सव्यरुध्यत ॥ ६८ ॥
उग्रसेनंचपितरंयदुभोजान्धकाधिपम् । स्वयंनिगृह्यबुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥६९॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः

प्रिय कमझकर कंस बहिनके मारनेसे निवृत्त हुआ, । और वसुदेवभी प्रीतिपूर्वक हंसते २ अपने
घरकोगये ॥५५॥ अनन्तर समयानुसार सर्व देवमयी देवकीने प्रतिवर्ष एक२ पुत्र करके आठपुत्र
और एककन्या उत्पन्नकी ॥५६॥ वसुदेवने असत्य भाषाके डांणसे विह्वलहो कष्टपूर्वक कीर्तिमान
नामक प्रथमपुत्रको कंसके हाथमेंदिया॥५७॥सत्यप्रतिज्ञा साधूगण क्या नहीं सहसक्ते विद्वान्मनुष्य
कौनसी वस्तुकी अपेक्षारखताहै ? दुष्ट मनुष्यको कौनसा कुकार्यहै भगवद्भक्त क्या नहीं छोड़सकते
॥५८॥ हेराजन् ! वसुदेवकी ऐसीसाधुता और सत्यनिष्ठताको देखकर कंस प्रसन्नहो हंसते२ कहने
लगा कि॥५९॥तुम इसपुत्रको लेजाओ इससे मुझेभयनहीं है तुम्हारे आठवेंपुत्रसेही मेरीमृत्यु निश्चित
हुई है॥६०॥वसुदेव(एसाहीकरूंगा)कहकर चलेगये परन्तु कंसकी इन बातोंपर उन्हें विश्वासनहुआ
क्योंकि कंस मिथ्यावादी और अजितेन्द्रियथा॥६१॥हेराजन्!नारदने कंससे कहदियाथा कि ब्रजबासी
नंद आदि गोप, उनसब गोपों की स्त्रियें, बसुदेव आदि सबवृष्णिवंशी,देवकी आदि यदु स्त्रियें,बसुदेव
और नन्दकुल के जातिवाले बन्धु तथ सुहृद, और जो कंस के आधीन हैं वह सबही देवता के
समान हैं । नारदजीने यहभी कंस से कहदियाथा कि–देवतागण पृथ्वीके भारभूत असुरों के मारने
का उद्योगकररहे हैं ॥ ६२ । ६४ ॥ नारदजी के चलेजाने पर कंस ने इस बात को विचार करा
कि"यदुवंशी देवता हैं और विष्णुजी मेरे मारने के निमित्त देवकी के गर्भ से अवतारलेंगे" बसुदेव
और देवकी को बेड़ीपहनाय अपने घर में रखछोड़ा।उनके जो पुत्रउत्पन्नहोनेलगे उन्हें कंस अपनी
मृत्युकारण बिष्णुमानकर एक २को मारनेलगा ॥ ६५ । ६६ ॥पृथ्वीमण्डल में हिंसकराजा अपने २
प्राणपोषण के निमित्त माता,पिता, भ्राता और बन्धुओं का बधकरते हैं ॥ ६७॥ पाहले मैनेजबइस
पृथ्वी पर कालनेमि नामक असुररूपस जन्मग्रहण कियाथा तब विष्णु ने मेरावध कियाथा, –यह
जानकरके कंस यदुवंशियों के साथ बिरोध करनेलगा ॥ ६८ ॥ यदुभोज, और अन्धकगणों के
स्वामी अपने पिता उग्रसेन को बद्ध (कैद) कर के महाबली कंस शूरसेन आदिराज्यों का भोग
करने लगा ॥ ६९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः॥१॥अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः। यदूनांकदनंचक्रे बलीमागधसंश्रयः॥२॥तेपीडितानिविविशुःकुरुपञ्चालकेकयान्। शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि॥३॥एकेतमनुरुन्धानाज्ज्ञातयःपर्युपासते। हतेषुषट्सुबालेषुदेवक्याऔग्रसेनिना॥४॥सप्तमोवैष्णवंधामयमनन्तंप्रचक्षते।गर्भोबभूवदेवक्याहर्षशोकविवर्धनः ॥५॥ भगवानपिविश्वात्माविदित्वाकंसजंभयम्। यदूनांनिजनाथानांयोगमायांसमादिशत्॥ ६॥ गच्छदेविव्रजंभद्रेगोपगोभिरलंकृतम्। रोहिणीवसुदेवस्य भार्याऽऽस्तेनन्दगोकुले। अन्याश्चकंससंविग्ना विवरेषुवसन्तिहि।७। देवक्याजठरेगर्भं शेषाख्यंधाममामकम्। तत्संनिकृष्यरोहिण्या उदरेसन्निवेशय। ॥८॥अथाऽऽहमंशभागेन देवक्याःपुत्रतांशुभे। प्राप्स्यामित्वंयशोदायां नन्दपत्न्यांभविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यन्तिमनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्। धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥ १० ॥ नामधेयानिकुर्वन्ति स्थानानिचनराभुवि। दुर्गेतिभद्रकालीति विजयावैष्णवीतिच ॥११॥ कुमुदाचण्डिकाकृष्णा माधवीकन्यकेतिच। मायानारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेतिच ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वैप्राहुःसंकर्षणंभुवि। रामेतिलोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात्॥ १३ ॥ संदिष्टैवंभगवता तथेत्योमितितद्वचः। प्रतिगृह्यपरिक्रम्य गांगतातत्तथाऽकरोत्॥ १४ ॥ गर्भेप्रणीते

श्रीशुकदेव जी बोले कि—हेराजन्! बलके अहंकारी कंसने मगधवासियोंका आश्रय ग्रहण कर प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त्त, अघ; मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद पूतना, केशी, धेनुक, बाण, भौम और दूसरे असुर राजाओं के साथ मिलकर यदुबंशियोंके नाश करनेका आरम्भ किया १—२। वह घोर अत्याचारसे पीड़ित होकर कुरु, पांचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह तथा कौशल देशोंको भागगये, ॥ ३ ॥ केवल कुछ एक जातिवाले कंसका अनुसरण कर उसकी सेवामें लगेरहे। कंससे छःसंतानोंके नाश होनेपर देवकी को हर्ष और शोक उत्पन्न करनेवाला सातवां गर्भ उत्पन्न हुआ। वह गर्भ विष्णुजीका अंशथा। लोक उसको अनन्त नामसे पुकारतेहैं ४—५। दुष्ट कंसके ऐसे अत्याचारोंको विश्वात्मा भगवानने जाना कि मेरे आश्रयी यदुबंशी कंसके डरसे भयभीतहोरहे हैं। तब उन्होंने योगमायाको आज्ञादी कि ॥६॥ हे देवि! हेभद्रे! गोप और गोपगणोंसे अलंकृत व्रजधाममें जाओ वहां नन्द गोकुलमें बसुदेवकी स्त्री रोहिणी निवासकरती हैं। बसुदेव की और दूसरी स्त्रियेंभी कंसके भयसे व्याकुलहोकर गुप्तस्थानोंमें छिपी हैं ॥ ७ ॥ अनंत नामक मेरेअंशने देवकीके गर्भमें प्रवेशकिया है। तुम उसगर्भको खैंचकर रोहिणीके उदरमें स्थापनकरो ॥ ८ ॥ हे शुभे! इसके उपरांत मैं पूर्णरूप से देवकीका पुत्रहोकर उत्पन्न हूंगा और तुम नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भ में जन्म ग्रहणकरो ॥ ९ ॥ मनुष्यगण तुमको सर्वकाम तथा सबबरों के देनेवाली और अधीश्वरी कहकर नानाभेंटें देवेंगे तथा बलिद्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १० ॥ पृथ्वीपर तुम अनेकनामोंसे विख्यात होगी जैसे;-दुर्गा, भद्रकाली, विजया, बैष्णवी॥११॥कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका ॥१२॥ गर्भ के संकर्षण (खींचना) करनेसे पृथ्वीपर उसगर्भ से उत्पन्नहुई संतानको 'संकर्षण' नाम से पुकारेंगे। इसके अतिरिक्त वह मनुष्योंके मनको रमाने के कारण 'राम' तथा बलकी अधिकता से 'बलभद्र' नामसेभी प्रसिद्धहोंगे ॥ १३ ॥ भगवान् की इसभांति आज्ञापाय, "यही करूंगी" कहकर माया उनकी आज्ञाको धारणकर तथा उनकी परिक्रमा कर पृथ्वीपर आय उसीभांति करतीहुई ॥

देवक्या रोहिणींयोगनिद्रया । अहोविस्रंसितोगर्भ इतिपौराविचुक्रुशुः ॥ १५ ॥ भगवानपिविश्वात्मा भक्तानामभयंकरः । आविवेशांशभागेन मनआनकदुन्दुभेः ॥ ॥ १६ ॥ सबिभ्रत्पौरुषंधामभ्राजमानोयथारविः । दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानांसंबभूवह ॥ १७ ॥ ततोजगन्मङ्गलमच्युतांशंसमाहितं शूरसुतेनदेवी । दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठायथाऽऽनन्दकरंमनस्तः ॥ १८ ॥ सादेवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूतानितरांनरेजे । भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धासरस्वतीज्ञानखलेयथासती ॥ १९ ॥ तांवीक्ष्यकंसःप्रभयाजितान्तरां विरोचयन्तींभवनंशुचिस्मिताम् । आहैषमेप्राणहरोहरिर्गुहां ध्रुवंश्रितोयन्नपुरेयमीदृशी ॥ २० ॥ किमद्यतस्मिन्करणीयमाशु मेयदर्थतन्त्रोनविहन्तिविक्रमम् । स्त्रियाःस्वसुर्गुरुमत्यावधोऽयं यशःश्रियंहन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥ सएषजीवन्खलुसंपरेतो वर्ततयोऽत्यन्तनृशंसितेन । देहेमृतेतंमनुजाःशपन्तिगन्ता तमोऽन्धंतनुमानिनोध्रुवम् ॥२२॥ इतिघोरतमाद्भावात्सन्निवृत्तःस्वयंप्रभुः । आस्तेप्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥ आसीनःसंविशंस्तिष्ठन्भुंजानः पर्यटन्महीम् । चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्माभवश्चतत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः देवैःसानुचरैःसाकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥

॥ १४ ॥ योगमायाने जब देवकीका गर्भ लेकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित किया तब पुरवासीलोग 'हाय देवकीका गर्भ नष्टहोगया' कहकर रोनेलगे ; परन्तु कोई इसभेदको न जानसके ॥१५॥ इस ओर भक्तोंका अभयदान देनेवाले भगवान्भी पूर्णरूपसे बसुदेवके मनमें प्रविष्टहुये ॥ १६ ॥ वसुदेवजीके मनमें श्रीमूर्तिके धारणहोतेही वह सूर्यकी समान प्रकाशितहोगये और समस्तप्राणियों के दुरासद (सहनयोग नहीं) और बड़ेही दुर्द्धर्ष होउठे ॥ १७ ॥ फिर जैसे पूर्वदिशा चन्द्रमा की किरणोंको धारण करतीहै वैसेही शुद्ध, प्रकाशित सती देवकीने बसुदेवजीके अर्पण कियेहुए भगवानके अंशको अपने मनद्वारा धारण किया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वात्मा हैं; अत एव पहिलेहीसे देवकीके आत्मामें वर्त्तमानथे । जिसमें समस्तजगत बासकरता है देवकी उनका निवासस्थान होकर स्वयं अति आनन्दितहुई परन्तु सब मनुष्योंको आनंदित न कर सकी क्योंकि जैसे घड़े के भीतर दीपककी सुन्दर शिखा/तथा ज्ञान छुपानेवाले मनुष्योंके हृदय में जैसे सुन्दर कथायेंरुकी रहती हैं वैसेही वह कंस के घर में वन्दी (कैद) थी ॥१८ ॥ एक दिन कंस उससती देवकी के प्रकाशद्वारा उसघरको प्रकाशित देखकहनेलगा--" किनिश्चयहीजानाजाता है कि मेरेप्राणों का नाश करनेवाला बिष्णु इसके गर्भ में प्रकटहुआ है । क्योंकि मेराघरपहिले कभी देवकी से ऐसा प्रकाशित नहींहुआ॥२०॥ इससमय विष्णु पर मुझे क्याकरना चाहिये ? मनुष्यको स्वार्थीहोकरभी कभी स्त्री बध द्वारा अपने अपने पराक्रमका नाश नहीं करनाचाहिये । देवकीके मारनेसे स्त्री बध भगिनी बध, और गर्भिणीका बध करनाहोगा, इससे यश, लक्ष्मी, और परमायु दिन२ नाशहोती रहेगी ॥ २१ ॥ जो मनुष्य केवल हिंसाही करके जीवन धारण करताहै वह जीताहुआ भी मराहै वह पापी जितनेदिन जीवन रहताहै उतनेदिन सबके निंदाका पात्रहो जीवन धारण करताहै और मरनेके उपरांत निश्चयही नरकमें जाताहै॥ २२ ॥ प्रभावशाली कंस इस घोर चिंताके कारण स्त्री बधसे निवृत्तहो भगवान् पर वैरभाव रख उनके जन्मकी राह देखनेलगा ॥ २३ ॥ दिनरातमें वह किसी घड़ीभी शांति न पाता, खड़े होने, बैठने, भोजन, पान चलने; सोनेमें सबहीकाल सर्वमय भगवानकी ध्यानकर जगत्को तन्मय देखनेलगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उसी समयमें ब्रह्मा और महादेव, नारदादि मुनि तथा अनुचर देवताओं को साथले देवकीके समीप आय वाक्यों द्वारा

देवाऊचुः । सत्यव्रतंसत्यपरंत्रिसत्यं सत्यस्ययोनिंनिहितंचसत्ये । सत्यस्यसत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकंत्वांशरणंप्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौद्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधःषडात्मा । सप्तत्वगष्टविटपोनवाक्षो दशच्छदीद्विखगोह्यादिवृक्षः ।२७। त्वमेकएवास्यसतःप्रसूतिस्त्वं सन्निधानंत्वमनुग्रहश्च । त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्तिनानानविपश्चितोये ॥ २८ ॥ बिभर्षिरूपाण्यवबोधआत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य । सत्त्वोपपन्नानिसुखावहानि सतामभद्राणिमुहुःखलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके । त्वत्पादपोतेनमहत्कृतेन कुर्वन्तिगोवत्सपदंभवाब्धिम् ॥३०॥ स्वयंसमुत्तीर्यसुदुस्तरंद्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः । भवत्पदाम्भोरुहनावमत्रतेनिधाययाताःसदनुग्रहोभवान् ॥ ३१ ॥ येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः । आरुह्यकृच्छ्रेणपरं पदंततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः ॥ ३२ ॥ तथानतेमाधवतावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्तिमार्गात्त्वयिबद्धसौहृदाः।त्वयाऽभिगुप्ताविचरन्तिनिर्भया विनायकानीकपमूर्धसुप्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वंविशुद्धंश्रयतेभवांस्थितौ शरीरिणांश्रेयउपायनंवपुः । वेद

भगवान की स्तुति करनेलगे ॥ २५ ॥ कि—हेभगवन्! आप सत्यव्रतहो सत्यही आपका संकल्प है, सत्यही आपकी प्राप्तिका साधनहै आप तीनोंकालमें सत्य. सत्यके कारण, और सत्यहीमें अवस्थितहो, आप सत्यके सत्यहो । आप ऋत और सत्य इन दोनोंके प्रवर्त्तकहो । अतएव आप सत्यमयहैं इसभांति सब प्रकारसेही आप सत्यात्मक हुएहो,—हम सत्यरूपी आपके शरणागत हुये हैं ॥ २६ ॥ यह देहरूप आदि वृक्ष कि–जिसमें एकप्रकृति इसका आश्रयहै, सुख दुःख इसके दोफलहैं, सत्व, रज और तम यह तीनोंगुण इसके मूलहैं. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसके चार रसहैं, पंच इन्द्रियां ज्ञान, शोक, मोह,जरा,मृत्यु, भूख और प्यास यह इसके छह स्वभावहैं, रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र—यह सात इसकी त्वच हैं, पांच इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि अहंकार यह आठ इसकी शाखाहैं, नवद्वार इसके नव छिद्र और दशप्राण इसके पत्ते हैं जीवात्मा और परमात्मा दोपक्षी इसमें बास करतेहैं ॥ २७ ॥ केवल एक आपही कार्य स्वरूप इस वृक्ष के उत्पत्ति स्थान, लयस्थान और पालन कर्त्ताहो । जिनका ज्ञान आपकी मायासे ढकाहै वे आप के रूपको नानाभांतिसे देखते रहते हैं परन्तु विद्वान मनुष्य उस भांति नहीं देखते॥२८॥ हेभगवन् ज्ञान स्वरूप आप समस्त प्राणियोंके कल्याणके निमित्त बारम्बार सत्वगुणमय अनेक रूप धारण करतेहो, यह सब रूप साधुओं के सुख देनेवाले और दुष्टोंके नाश करनेवाले होते हैं, । अतएव आपकी ऐसी प्रशंसा करना हमें अनुचित नहीं है ॥ २९ ॥ हेकमललोचन! आप निर्मल सत्वगुण के भण्डारहो । निर्मल सत्व निष्ठ विवेकी मनुष्य समाधियोग से चित्तको एकाग्रकर आपमें लगाय,बडे महात्माओं से कीहुई आपकी चरणरूपी नौकाका आश्रय ग्रहणकर भवसागरको गऊखुरं के जल की समान तुच्छजानते रहतेहैं ॥ ३० ॥ भक्तों पर आप कृपाकरते रहतेहो तथा वेआपको ही अधिक प्यार करतेहैं; वे दूसरों के भयदायी भवसागर को पार होने के निमित्त स्वयं पारहो कर आपकी चरणरूपी नौका को इसी स्थान पर रखगये हैं ॥ ३१ ॥ हेअम्बुजनयन ! आप के भक्तों के अतिरिक्त और दूसरे जो अपने को मुक्तकहकर अभिमानकरते हैं; वे बड़े दुःखसे श्रेष्ठ पदको प्राप्तकरते हैं और अन्त में उस से पतित होतेहैं; क्योंकि आप में उनकी भक्ति नहींहै इस ही लिये उनकी बुद्धिभी शुद्ध नहीं है तथा वे आप के श्रीचरणों का निरादर करते रहते हैं ॥ ३२ ॥ हे केशव ! जो मनुष्य आप के भक्त हैं तथा आपही में सुहृदताका बन्धन रखते हैं;—उन की इस भांति दुर्गति नहींहोती; आपसे सुरक्षितहोकर वह विघ्नकारियों के मस्तकों पर निर्भयहोघूमा करते हैं ॥ ३३ ॥ आप सृष्टिपालनके निमित्त कर्मफल उत्पन्नकरनेवाली सत्वमूर्तिको धारण करते

क्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येनजनःसमीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वंनचेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् । गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य चयेनवागुणः ॥ ३५ ॥ ननामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तवतस्यसाक्षिणः । मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देवक्रियायांप्रतियन्त्यथापिहि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानिरूपाणिच मङ्गलानिते क्रियासुयस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता नभवायकल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्याहरेऽस्याभवतःपदोभुवो भारोपनीतस्तवजन्मनेशितुः । दिष्ट्याऽङ्किताच्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्यामगांद्यांच तवानुकम्पिताम् ।३८। नतेऽभवस्येशभवस्यकारणं विनाविनोदंवततर्कयामहे ॥ भवोनिरोधःस्थितिरप्यविद्ययाकृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषुकृतावतारः । त्वंपासिनस्त्रिभुवनंचयथाऽधुनेश भारंभुवोहरयदूत्तम वन्दनंते ॥ ४० ॥ दिष्ट्याऽम्बतेकुक्षिगतःपरः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवायनः । माभूद्भयंभोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनांभवितातवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवाच । इत्यभिष्टूयपुरुषं यद्रूपमनिदंयथा । ब्रह्मेशानौपुरोधाय देवाःप्रतिययुर्दिवम् ।४२ इति श्रीमद्भा.महा.दशम.गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृत स्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

हो कि जिस मूर्तिके द्वारा ब्रह्मचारी वेदाध्ययन से, गृहस्थी कर्मयोग से, बानप्रस्थतपसे, सन्यासी समाधि से, आप का पूजनकरते हैं ॥ ३४ ॥ आप शरीर का आश्रय न करें तो पूजाके अभाव से कर्मफल सिद्धनहोवें । हे विधातः! यदि सत्व आपकी देह नहोता तो अज्ञान और भेद का नाश करनेवाला विज्ञानभी नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि जो गुणप्रकाश पाते रहते हैं उनसब गुणोंकेआप साक्षीहो, इसप्रकार गुणों के प्रकाश से आप के स्वरूप का अनुमान होता है । परन्तु आपका स्वरूप नेत्रों से प्रत्यक्ष नहीं देखपड़ता ॥३५॥ उनसाक्षी स्वरूप आप के मार्ग का केवलअनुमान हीहोता है क्योंकि आप के नाम और रूप जोकिमन और बचनके अगोचर हैं -गुण, जन्म और कर्म से निरूपण नहींकियेजासक्ते । तथापि हेदेव ! भक्तजन उपासनादिक क्रिया में आपकोप्रत्यक्ष देखते हैं यह बार्ता प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ जो आपके मङ्गलकारी नाम और रूप का श्रवण और उच्चारणकरते हैं—दूसरे को सुनाते हैं, ध्यानकरते हैं तथाआपके दोनों चरणकमलों को मनमेंधारण किये रहतेहैं उनका फिरसंसार में दूसरीबार आनानहींहोता ॥ ३७ ॥ अहा! क्यासुखका विषय है! आप ईश्वरहो आपके जन्म लेने से आपके चरण अंकित इस पृथ्वीकाभारदूरहोगा । अहो ! क्या मङ्गलका विषय है आप कृपापूर्वक अनेक चरणों के ध्वज, बज्र, अंकुशादि चिन्होंद्वारा पृथ्वीतथा सुरलोकको पवित्रकरेंगे;—यह हम देखेंगे ॥ ३८ ॥ हे ईश ! आप असंसारी हो अतएव आप के जन्मकाकारण लीलाकरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं अनुमान कियाजासकता । जीवात्माओंका जो उत्पत्ति स्थिति और संहार होता रहता है, वह सब आपकी अविद्याही से होता है ! वास्तवमें जीवात्माकाभी जन्मआदि कुछनहीं है ॥ ३९ ॥ आपने मत्स्य, कच्छप, बराह, नृसिंह, हंस, क्षत्रिय, विप्र और देवताओं में अवतार लेकर संसारका और हमारा जैसे पोषण कियाहै—हेयदुश्रेष्ठ! ऐसेही इससमय पृथ्वी के भारीबोझको दूरकरो हम सब आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४० ॥ हेदेवकि ! यह अच्छाहुआ कि—परम पुरुष भगवान् हमारे कल्याण के निमित्त पूर्णरूप से तुम्हारे गर्भ में प्रविष्टहुये हैं अब कंसका भय न करना; उसको मरनेकी इच्छाहुई है; तुम्हारा यह पुत्र यदुबंशियों का रक्षाकारी होगा ॥ ४१ ॥ हेराजन् ! जिसकारूप किसी के दृष्टिगोचर न होवे उन भगवान्की इसभांति स्तुतिकर देवतागण—ब्रह्मा और महादेवजी को ले अपने २ स्थानको गये॥४२

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच॥ अथसर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षंशान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशःप्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्। मह्मीमङ्गलभूयिष्ठ पुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यःप्रसन्नसलिलाह्रदाजलरुहश्रियः। द्विजालिकुलसन्नादस्तवकावनराजयः ॥ ३ ॥ ववौवायुःसुखस्पर्शःपुण्यगन्धवहःशुचिः। अग्नयश्चद्विजातीनांशांतास्तत्रसमिंधत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानिसाधूनामसुरद्रुहाम् जायमानेऽजनेतस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयोदिवि ॥ ५ ॥ जगुःकिन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुःसिद्धचारणाः। विद्याधर्यश्चननृतुरप्सरोभिःसमंतदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयोदेवाःसुमनांसि मुदान्विताः। मंदंमंदंजलधराजगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथेतमउद्भूतेजायमाने जनार्दने। देवक्यांदेवरूपिण्यांविष्णुःसर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथाप्राच्यांदिशीन्दुरिवपुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतंबालकमम्बुजेक्षणंचतुर्भुजंशंखगदार्युदायुधम्। श्रीवत्सलक्ष्मंगलशोभिकौस्तुभंपीताम्बरंसांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्। उद्दामकाञ्च्यङ्गदकंकणादिभिर्विरोचमानंवसुदेवऐक्षत ॥ १० ॥ सविस्मयोत्फुल्लविलोचनोहरिंसुतंविलोक्यानकदुंदुभिस्तदा। कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदाद्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतोगवाम् ११ अथैनमस्तौदवधार्यपूरुषंपरंनताङ्गःकृतधीःकृताञ्जलिः। स्वरोचिषाभारतसूतिकागृहंविरोचयन्तंगतभीःप्रभाववित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसिभवा-

श्रीशुकदेवजीबोले कि-हेराजन्! फिर जिसकालमें, समय सर्वगुणसम्पन्न और अत्यन्त रमणीयहोउठा—रोहिणी नक्षत्र उदय और उसके साथ अश्विनी आदि नक्षत्र और सब ग्रहगण उसके अनुकूल हुए ॥१॥ दिशाऐं निर्मल होगईं, जब आकाशमें तारागण भलीभांतिसे प्रकाश पाने लगे, पृथ्वीके नगर गांव, व्रज और खान आदिमें बहुत मंगल होनेलगे, ॥ २ ॥ नदियोंकी धाराने निर्मलभाव धारण किया, सरोवर कमलोंसे सुशोभित हुए जङ्गली वृक्षोंकी कलियां खिलउठीं और जलमें भौंरे आनन्दसे गान करनेलगे ॥ ३ ॥ बायु पवित्र सुगन्धित तथा मंद २ चलनेलगी, जब ब्राह्मणोंकी अग्नि शांति भावसे जलनेलगी ॥४॥ असुरोंके शत्रु साधुओं का मन प्रसन्न हुआ—विष्णु का जन्मसमय उपस्थित देखकर किन्नर और गन्धर्वगण गाने सिद्ध और चारणगण स्तुति करने तथा विद्याधरी सब अप्सराओं समेत एकत्रित होकर नाचनेलगीं, ॥ ५—६ ॥ जब मुनि और देवता प्रसन्नहो फूल बरसाने लगे, उसीसमय बादलसे ढकेहुए चन्द्रमाकी समान भगवान प्रगट हुए। उससमय समुद्रके साथ साथ बादल मंदमंद गर्जना करनेलगे ॥७॥ पूर्व ओरसे पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान देवरूपिणी देवकीके गर्भसे सर्वांतर्यामि भगवान् विष्णुजी उत्पन्न हुए, ॥ ८ ॥ बसुदेवने देखा कि—यहबालक बड़ाही अद्भुतहै। उसके नेत्र कमलदलके समान दीर्घ, चतुर्भुजरूप धारणकिये तथा भुजाओंमें शंख चक्र आदि अस्त्रलियेहैं वक्षःस्थलमें श्रीवत्सकाचिह्न शोभायमानहै; गलेमें कौस्तुभमणि धारणकिये पीतवस्त्रपहिनें और रंग बादलोंकेसमान श्याममन हरनेवालाहै॥९॥ अनेक केश घूंघरवालेहैं और अनमोल बैदूर्य किरीट और कुंडलकी प्रभासे झलक रहे हैं अति श्रेष्ठ मेखला बाजूबन्द और कंकण आदि आभूषणों द्वारा शरीर शोभाको प्राप्त होरहे है ॥ १० ॥ बसुदेवजी ने विस्मितहो प्रफुल्लितनेत्रों से पुत्ररूपी हरि को देखकर मनहीमन में ब्राह्मणोंको दश सहस्र गऊदानकीं। उस काल वह बन्धनावस्थामें थे अतएव यथार्थ में दान कैसे होसकताथा ? कृष्णउनके पुत्ररूप से उत्पन्न हुएहैं,—इसी आनन्द में बसुदेवजी प्रफुल्लितहोरहेथे ॥११॥हेभारत! अनन्तर उनको परमपुरुष रूप से स्थिरकर महात्मा वसुदेव पृथ्वीपर गिर, शुद्धभावसे हाथ जोड़

न्साक्षात्पुरुषःप्रकृतेःपरः । केवलानुभवानन्दस्वरूपःसर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ सएव स्वप्रकृत्येदंसृष्ट्वाग्रेत्रिगुणात्मकम् । तदनुत्वंह्यप्रविष्टःप्रविष्टइवभाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथातेविकृतैः सह । नानावीर्याः पृथग्भूताविराजंजनयन्ति हि ॥ १५ ॥ संनिपत्यसमुत्पाद्यदृश्यन्तेऽनुगताइव । प्रागेवविद्यमानत्वान्नतेषामिह संभवः ॥१६ ॥ एवंभवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपितद्गुणाग्रहः । अनावृतत्वाद्बहिरन्तरंनतेसर्वस्यसर्वात्मनआत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ यआत्मनोदृश्यगुणेषुसन्निति व्यवस्यतेस्वव्यतिरेकतोऽबुधः । विनाऽनुवादंन चतन्मनीषितंसम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्यजन्मस्थितिसंयमान्विभोवदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् । त्वयीश्वरेब्रह्मणिनोविरुध्यतेत्वदाश्रयत्वादुपचर्यतेगुणैः ॥ १९ ॥ सत्वंत्रिलोकस्थितयेस्वमाययाबिभर्षिशुक्लंखलुवर्णमात्मनः । सर्गायरक्तंरजसोपबृंहितंकृष्णंचवर्णंतमसाजनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्यलोकस्यविभोरिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसिममाखिलेश्वर । राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमानानिहनिष्यसेचमूः ॥ २१ ॥ अयंत्वसभ्यस्तवजन्मनौगृहेश्रुत्व ऽग्रजांस्तेन्यवधीत्सुरेश्वर । सतेऽवता

प्रभाव से निर्भयहो उनकी स्तुति करनेलगे ॥ १२ ॥ वसुदेवजी ने कहाकि— अहो ! मैं आपको जानताहूं आप प्रकृति से परे परमपुरुषहो;मेरा कैसा सौभाग्य है ! कि आज आपने मुझको साक्षात दर्शन दिये । भगवान ! आप निरवच्छिन्न, अनुभव और आनन्दस्वरूप तथा सर्वजनों की बुद्धि के साक्षीहो ॥ १३ ॥ आप अपनी मायाद्वारा इस त्रिगुणात्मक विश्वको रचकर पश्चात् इस के भीतर नहीं प्रवेशकरते;-केवल प्रविष्ट के समान लक्ष्य में आतेहो ॥ १४ ॥ सब्रमहदादि तत्व, सोलहविकारों समेत मिलकर इस ब्रह्मांड को उत्पन्न करते हैं; पृथक् २ होकर वह सब सृष्टिको नहीं उत्पन्न करसकते ॥ १५ ॥ब्रह्मांड उत्पन्न करने के पीछे उस में प्रविष्टहुए से जानने में आतेहो किंतुयथार्थ में प्रविष्टनहींहोते; क्योंकि वे सबतत्व कारणरूप से प्रथमही वर्तमानथे ॥ १६ ॥ इस भांति रूपादि ज्ञानद्वारा जिसके स्वरूपका अनुमान कियाजाता है, आप उनसब विषयों में वर्तमान रहने परभी उनके साथ आप का प्रत्यक्षनहीं होता । आप सर्वस्वरूप, सर्वात्म, सर्वव्यापक, परमार्थ वस्तुहो अतएव अपरिच्छिन्नहो;इसही कारण आप के स्वरूप में बाहर भीतर का भेद नहीं है ॥ १७ ॥ हे प्रभो! आप अन्तर्यामित्व रूप से सब में प्रवेश करकेभी जब यथार्थ रूपसे नहीं जानपड़ते तब देवकीके गर्भ में आपने कैसे प्रवेशकिया?अतएव आपकेवल आनन्द और अनुभवस्वरूपहो;आपको जो मैंने जाना यही मेरा परमसौभाग्य है। जो मनुष्य आत्माके दृश्यगुण देहादि को आत्माको पृथक् रूप से वर्तमान पदार्थ जानता है वह मूर्ख है क्योंकि विचारकर देखाजाय तो कथनमात्र बिनादेहादिक सब झूठेही हैं अतएव झूठे देहादि को जो सत्यमाने वह मूर्खहै ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! तत्ववेत्तागण कहते हैं कि-आपही से इस विश्वकी उत्पत्ति और लय होती रहती है अतएव आप निर्गुण और निर्विकारहो; अथवाआपही ईश्वरऔर ब्रह्महो; आपमें इन दोनोंका बिरोध नहीं होसकता। आप गुणों के आश्रयहो; सबगुणोंसे सृष्ट्यादि आपहीमें आरोपित होती रहती हैं ॥१९॥ आपअपनी मायाद्वारा त्रिलोकीके पालनार्थ अपने सत्वगुणसे शुक्लवर्ण उत्पत्ति के निमित्त रजोगुणसे बढ़ाहुवा रक्तवर्ण और नाशकेनिमित्त तमोगुणके योगसे कृष्णवर्ण स्वीकारकरते रहतेहो ॥२०॥ हे अखिलेश्वर ! हे विभो ! आपने इससमस्त लोककी रक्षाके निमित्त कृष्णवर्ण धारणकर मेरेघरमें अवतार लिया है । राजन्य नामधारी करोड़ों असुर सेनापतियों के साथ जोसेना इधर उधर घूमती फिरती है, आप उन सबका नाश करेंगे ॥ २१ ॥ हे सुरेश्वर ! दुष्ट कंसने मेरेघर आपका जन्म होना सुनकर आपके बड़ेभ-

रंपुरुषैः समर्पितंश्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैन मात्मजंवीक्ष्यमहापुरुषलक्षणम् । देवकीतमुपाधावत्कंसाद्भीताशुचिस्मिता॥२३॥ देवक्युवाच ॥ रूपंयत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यंब्रह्मज्योतिर्निर्गुणंनिर्विकारम् । सत्तामात्रं निर्विशेषंनिरीहंसत्वंसाक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टेलोकेद्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतंगतेषु । व्यक्तेऽव्यक्तंकालवेगेनयातेभवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयंकालस्तस्यतेऽव्यक्तबन्धोचेष्टामाहुश्चेष्टतेयेनविश्वम् । निमेषादिर्व त्सरान्तोमहीयांस्तंत्वेशानंक्षेमधामप्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्योमृत्युव्यालभीतः पलायन्लो कान्सर्वान्निर्भयंनाध्यगच्छत् ।त्वत्पादाब्जंप्राप्ययदृच्छयाद्यस्वस्थः शेतेमृत्युरस्मा दपैति ॥२७॥ सत्वंघोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहित्रस्तान्भृत्यवित्रासहाऽसि।रूपंचेदं पौरुषंध्यानधिष्ण्यंमाप्रत्यक्षंमांसदृशांकृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्मतेमय्यसौपापोमावि द्यान्मधुसूदन । समुद्विजेभवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहरविश्वा त्मान्नदोरूपमलौकिकम् । शंखचक्रगदापद्मश्रियाजुष्टंचतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वंयदेत त्स्वतनौनिशान्तेयथावकाशंपुरुषः परोभवान् । बिभर्तिसोऽयंममगर्भगोऽभूदहोनृ लोकस्यविडम्बनंहितत् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेवपूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वा यंभुवेसति । तदाऽयंसुतपानामप्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवांवैब्रह्मणादिष्टौप्र

इयोंका बधाकिया है। प्रहरीगण आपका जन्म समाचार उसको देंगे वह समाचार पातेही शस्त्र उठाय इस समय आताही होगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन्! तदनंतर कंससे डरीहुई देवकी ने पुत्रके लक्षण भगवान केसे देख विस्मित चित्तसे उनकी स्तुति करनेका आरंभ किया ॥२३॥ देवकी ने कहाकि—हे भगवन् ! वेद जिसे एक आदि कारण अव्यक्त, बृहत, चेतन, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, निर्विरोध, और निरीहवस्तु कहता रहता है आप साक्षात् वही विष्णुहो आप आत्माके दीपकहो, अतएव बुद्ध्यादि इन्द्रिय समूहों के प्रकाशकहो ॥ २४ ॥ ब्रह्माके द्विपरार्द्धके अंतमें कालके वेगसे लोकों के नाश होनेपर जब सब महाभूत आदिभूतमें और आदिभूत प्रकृति में प्रवेश करते हैं तब केवल आपही शेष रहतेहो ॥ २५ ॥ उस समय अशेषात्मक प्रधान में आपकी बुद्धिहोती है तब आप चिंता करतेहो—कि यह प्रधान मुझमें लीन होगया है इसको फिर प्रकाशितकरूं, निमेषादि से बर्षतक इसी द्विपरार्द्ध रूप कालमें इस विश्वका परिवर्तन होता है, हे प्रकृति प्रवर्तक ! यही आपकी लीला कहीजाती है; आप अभय के स्थान रूपहो अतएव मैं आपके शरणागतहूं ॥ २६ ॥ मृत्युलोक वासी मनुष्य मृत्युरूप सांपसे भयभीत होकर समस्त लोकों में भागता फिरता है परन्तु उसको कहीं भी निर्भय स्थान नहीं मिलता। जोकोई एक अनिर्वचनीय भाग्योदय केवल से आपके चरण कमलों को आश्रकर शांतचित्त से सोता है; मृत्यु उसकेसमीप से भागजाती है, वह आप हमारीभी रक्षाकरो ॥ २७ ॥ आपभक्तों के भयको दूर करने वालेहो; हम उग्रसेन के पुत्रदुष्ट कंससे भयभीत हैं, कृपाकरके हमारी रक्षाकरो। आप अपनेइस ध्यानयोग्य ईश्वर रूपको चर्म चक्षुओं के दृष्टिगोचर न करें ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! मेरे गर्भमें आपका जन्म हुआ है, पापी कंस यह न जानने पावे। मेराचित्त बड़ाही चंचल है; अतएव आपके कारणही कंस से भयभीतहूं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! आप इस शंख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त चतुर्भुज रूपको अंतर्ध्यान करें ॥ ३० ॥ प्रलय कालमें आप जब अपनी देह में इस विश्व ब्रह्माण्डको धारण करतेहो तब विश्वकी किसी वस्तुकाभी उस स्थानपर संकोच नहीं होता; वही आप मेरे गर्भ में उत्पन्न हुये हैं मनुष्यों के लिये यह एक प्रकार की बिडंबना मात्र है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि—हेसति! पूर्वजन्मके स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुम्हारानाम पृश्निथा उससमयमें

जासर्गेयदाततः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामंतेपाथेपरमंतपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु । सहमानौश्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेनचेतसा । मत्तः कामानभीप्सन्तौमदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवंवांतप्यतोस्तीव्रंतपः परमदुष्करम् । दिव्यवर्षसहस्राणिद्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदावांपरितुष्टोहममुनावपुषाऽनघे । तपसाश्रद्धयानित्यंभक्त्याचहृदिभावितः ॥३७॥ प्रादुरासंवरदराड्युवयोः कामदित्सया । व्रियतांवरइत्युक्तेमादृशोवांवृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौचदम्पती । नवव्राथेऽपवर्गंमेमोहितौदेवमायया ॥ ३९ ॥ गतेमयियुवांलब्ध्वावरंमत्सदृशंसुतम् । ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथांयुवांप्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमंलोकेशीलौदार्यगुणैः समम् । अहंसुतोवामभवंपृश्निगर्भइतिश्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वांपुनरेवाहमदित्यामासकश्यपात् । उपेन्द्रइतिविख्यातोवामनत्वाच्चवामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहंवैतेनैववपुषाऽथवाम् । जातोभूयस्तयोरेवसत्यंमेव्याहृतंसति ॥४३॥ एतद्वांदर्शितंरूपंप्राग्जन्मस्मरणायमे । नान्यथामद्भवंज्ञानंमर्त्यलिङ्गेनजायते ॥ ४४ ॥ युवांमांपुत्रभावेनब्रह्मभावेनचासकृत् । चिन्तयन्तौकृतस्नेहौयास्येथेमद्गतिंपराम् ॥ ४५ ॥ (यदिकंसाद्बिभेषित्वंतर्हिमांगोकुलंनय । मन्मायामानयाशुत्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥ १ ॥) श्रीशुक उवाच । इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया । पित्रोःसंपश्यतोःसद्यो बभूव

यह निष्पाप वसुदेव सुतपा नामके प्रजापतिथे ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीने तुम दोनोंको प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञादी तुम इन्द्रियों को बशमें कर तपस्या करनेमें प्रवृत्तहुए ॥ ३३ ॥ बर्षा, बायु, धूप, जाड़ा, गर्मी आदि इन सब कालोंके गुणोंका सहन किया तुम प्राणायाम द्वारा मनके मलको स्वच्छकर । गिरेहुए पत्ते और बायुका भक्षण करतेहुए मुझसे इच्छित बर पानेकी इच्छाकर शांत चितसे मेरा ध्यान करनेलगे ॥ ३५ ॥ हेभद्रे ! मुझमें चित्तलगाय तुम दोनों इसप्रकारसे परमदुष्कर तपस्यामें प्रवृत्तहुए कि बारहसहस्र दिव्य बर्ष बीतगए ॥ ३६ ॥ हे पापरहित ! तब तपस्या श्रद्धा और नित्य भक्ति योग द्वारा चिन्तित होकर बरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तथा बरदेनेकी इच्छासे शरीर धारणकर तुम्हारे समीप आयकर कहनेलगा कि बरमांगो । यह सुनकर तुमने मेरी समान पुत्रकी प्रार्थनाकीथी ॥ ३८ ॥ तुम दोनों स्त्री पुरुषोंने ग्राम्य सुख नहीं भोगेथे तथा तुम्हारे पुत्रभी नहीं हुएथे अतएव तुमने हमसे मुक्ति न मांगी मेरी मायाने तुमको मोहित कर दियाथा ॥ ३९ ॥ मेरे चलेजानेपर तुम मेरी समान पुत्र होनेका बरपाय सफल मनोरथहो उपभोगोंमें प्रवृत्तहुए ॥ ४० ॥ मैंने सृष्टिमें शील, उदारता और गुणमें अपनी समान दूसरे मनुष्य को न देखकर तुम्हारे यहां अवतार लिया पृश्नि पुत्रके नामसे विख्यात हुआ, ॥ ४१ ॥ मनमें बिचारो कि दूसरे जन्ममें भी मैं तुम्हारा पुत्रहुआथा, इससमय मैंने कश्यपके बीर्यसे अदितिके गर्भ में जन्मग्रहण किया—इन्द्रसे छोटाथा इससे उपेंद्र और आकृतिमें छोटाथा इससे ' बामन, नामसे बिख्यात हुआ ॥ ४२ ॥ इस जन्ममें भी वही मैं उस शरीरको धारणकर फिर तुम्हारेही गर्भमें उत्पन्न हुआ । हेसति ! इसमें जो मैंने कहा वह सब सत्यहै, ॥ ४३ ॥ पहिले मैंने इसही रूपसे जन्म ग्रहण कियाथा यह स्मरणादि लानेके निमित्तही मैंने तुमको यहरूप दिखाया ऐसा न होनेसे मनुष्यरूप देखकर तुम कदापि न पहिचानसकते॥४४॥पुत्र भावसेहो चाहे ब्रह्मभावसे हो तुम मेरा सदैव ध्यानकर तथा मुझपर स्नेहरख श्रेष्ठपदको प्राप्तहोगे॥४५॥श्रीशुकदेवजी बोले कि—भगवान् यहबात कहकर चुपहुए और अपनीमायाके योगसे उसीसमय माता पिताके सामनेही बालक रूप होगये ॥४६॥ तदनन्तर जो तुम कंससे डरतहो तो मुझे गोकुल में लेचलो और यशोदाकी कन्या कि—जो मेरी मायारूपहै उसे यहां लेआवो,, भगवान् की ऐसी आज्ञासे वसुदेवजीने पुत्रको लेकर

प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ॥ ततश्चशौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतंसमादायससूतिकागृहात् । यदाबहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजायायोगमायाऽजनि नन्दजायया ॥ ४७ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ । द्वारस्तुसर्वाःपिहितादुरत्ययावृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ॥ ४८ ॥ ताः कृष्णवाहेवसुदेवआगते स्वयंव्यवर्यन्तयथातमोरवेः । ववर्षपर्जन्यउपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारिनिवारयन्फणैः ॥ ॥ ४९ ॥ मघोनिवर्षत्यसकृद्यमानुजागम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला । भयानकावर्तशताकुलानदीमार्गंददौ सिन्धुरिवश्रियःपतेः ॥ ५० ॥ नन्दव्रजं शौरिरुपेत्यतत्रतान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्यनिद्रया ॥ सुतंयशोदाशयनेनिधाय तत्सुतामुपादायपुनर्गृहानगात् ॥ ५१ ॥ देवक्याःशयनेन्यस्यवसुदेवोऽथदारिकाम् । प्रतिमुच्यपदोर्लोहमास्तेपूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥ यशोदानन्दपत्नी च जातंपरमबुद्ध्यत । नतल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० दशम० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच । बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाःपूर्ववदावृताः । ततोबालध्वनिंश्रुत्वा गृहपालाःसमुत्थिताः ॥ १ ॥ तेतुतूर्णमुपव्रज्य देवक्यागर्भजन्मतत् । आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नःप्रतीक्षते ॥ २ ॥ सतल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमितिविह्वलः । सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥ तमाहभ्रातरंदेवी कृपणाकरुणंसती । स्नुषेयंतवकल्याण स्त्रियंमाहन्तुमर्हसि ॥४॥ वहवोहिंसिताभ्रातः शिशवःपावको

सूतिका गृहसे बाहर निकलने की इच्छाकी इस ओर योगमाया ने जन्मरहितहोकर भी यशोदा के घर में जन्मग्रहण किया ॥ ४७ ॥ इसी माया के प्रभाव से सबद्वारपाल और पुरजन अचेतहोकर निद्राके बशहोगये । सबद्वारों के बड़े किवाड़का लोहेकी कीलोंकी सांकलों द्वारा बंदहोने से खुलना अत्यन्त कठिनथा ॥ ४८ ॥ परन्तु बसुदेवजी कृष्णजीको लेज्योंही समीप पहुँचे वैसेही सूर्योदयसे अन्धकारकी समान वहसब आपही आप खुल गये।बादल गरज २करबर्षनेलगे शेषनाग फणद्वारा जल निवारण करते २ बसुदेवजी के पीछे २ चले ॥ ४९ ॥ लगातार बर्षने से यमुना, गम्भीर जल राशिके वेगकीतरंगों से फेनयुक्ततथा सहस्रों भँवरोंसे परिपूर्ण होगई । परन्तुजैसे समुद्र ने रामचन्द्र जीको मार्ग दियाथावैसेही यमुना ने बसुदेवजीको मार्ग दिया ॥ ५० ॥ बसुदेवजी श्रीकृष्णजी को ले कर नन्दके व्रजमें आये । वहां आयकर देखाकि-समस्तगोपगण एकसाथही निद्राके बशीभूत हो गये हैं । यह देख पुत्रको यशोदाकी शय्या में लिटाय और उसकी कन्याको ले फिरघरको लौटे॥ ५१ ॥ तदनन्तरदेवकी की शय्या में उस कन्या को रखकर, दोनों पैरोंमें फिर लोहे की बेड़ियें पहिलेकी समान बन्धनावस्था में होगये ॥ ५२ ॥ नन्दपत्नी यशोदा ने केवलइतनाही जानपायाथा कि कुछ उत्पन्नहुआ है ।वह श्रमित और माया के बशसे स्मृति रहित होगईथीं;अतएव जिससमय सन्तानउत्पन्नहुईथी उससमय यह निश्चयनकरसकीं किपुत्रउत्पन्नहुआ है याकन्या ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! वसुदेवजी के लौट आनेपर वाहिरी द्वार, भीतरद्वार और नगर द्वार—सबही पहिले की समान बंद होगये। तदनंतर बालकका रोनासुन द्वारपालों ने उठकर शीघ्रता पूर्वक कंसके यहांजाय देवकी के आठवें पुत्र होनेकी वार्त्ताकही; राजा उसही के निमित्त व्याकुल होकर उसकी राह देखताथा ॥ १ ॥ २ ॥ यही मेराकाल है; ऐसा विचार विह्वलहो वह शीघ्रतासे शय्यापर से उठा तथा खुलेहुये केश, ठोकर खाता हुआ सूतिका गृहमें आया ॥ ३ ॥ उसको देखकर सती देवकी ने दुःखितहो निष्ठुर भाई से कहाकि—हे कल्याण ! यह तुम्हारी भानजी है,

पमाः । त्वयादैवनिसृष्टेन पुत्रिकैकाप्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहंतेह्यवरजा दीनाहत-सुताप्रभो । दातुमर्हसिमन्दाया अंगेमांचरमांप्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच । उपगुह्यात्मजामेवंरुदत्यादीनदीनवत् । याचितस्तांविनिर्भर्त्स्यहस्तादाचिच्छिदेखलः ॥ ७ ॥ तांगृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुःसुताम् । अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सातद्धस्तात्समुत्पत्य सद्योदेव्यम्बरंगता । अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाऽष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता । धनुःशूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः । उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किंमयाहतयामन्द जातःखलुतवान्तकृत् । यत्रक्वचापूर्वशत्रुर्मा हिंसीःकृपणान्वृथा ॥ १२ ॥ इतिप्रभाष्यतंदेवी मायाभगवतीभुवि । बहुनामनिकेतेषु बहुनामाबभूवह ॥ १३ ॥ तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः । देवकींवसुदेवंच विमुच्यप्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ अहोभगिन्यहोभाम मयावांबतपाप्मना । पुरुषादइवापत्यं बहवोहिंसिताःसुताः ॥ १५ ॥ सत्वहंत्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः । काँल्लोकान्वैगमिष्यामि ब्रह्महेवमृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतंवक्ति नमर्त्याएवकेवलम् । यद्विस्रम्भादहंपापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥ १७ ॥ माशोचतंमहाभागा वात्मजान्स्वकृतंभुजः । जन्तवोनसदैकत्र दैवाधीनास्तदाऽऽसते ॥ १८ ॥ भुविभौमानिभूतानि यथायान्त्यपयान्तिच । नाय

स्त्री का मारना तुम्हें उचितनहीं ॥ ४ ॥ हेभाई ! कालसे प्रेरितहो अग्निकी समान तुमने मेरेकई बच्चोंको मारा है, एक सन्तानतो मुझे भिक्षा में दो ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारी छोटी बहिनहूं; दूसरे पुत्रों के मरने सेमैं बड़ीही कातर होरहीहूं हे प्रभो ! इसअभागिनी को अन्तिमसन्तान दानकरनाउचित है ॥ ६ ॥ शुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! देवकी उस कन्याको छाती से लगायकर अत्यंत कातराकी समान रोरोकर प्रार्थनाकरने लगी, तौभी दुष्टकंसने उसका निरादर करके उस के हाथ से कन्या को छीनलिया ॥ ७ ॥ तथा उस तत्काल की उत्पन्नहुई बहिनकी कन्याके पैर पकड़ उसे शिलापर फेंकमारा । महाराज ! ज्योंहीं दुष्टकंस ने विष्णुकी छोटी बहिनको पत्थरपर पटका ॥ ८ ॥ त्योंही वह कंसके हाथ से छूटआकाश में उड़गई, और देवी रूपहो दीखने लगी । देवी के आठ भुजायेंथीं-वह उनआठों भुजाओं में धनुष, शूल, बाण, तलवार, ढाल, चक्र, खड्ग और गदा धारण कियेथी देह दिव्यमाला बसन, चन्दन, और रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषितथी ९-१० । सिद्ध चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और उरगगण पूजाके पदार्थों द्वारा पूजा करके स्तुति कररहेथे देवीने कहा कि-११ ॥ रेदुष्ट ! मेरे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तेरे प्राणका लेनेवाला होकर कहीं दूसरेही स्थानमें जन्माहै अतएव दूसरे निर्दोष बालकोंको व्यर्थही मारता है ॥ १२ ॥ भगवती मायादेवी कंससे यह बात कहकर काशी आदि नाना स्थानों में अनेक नामों से विख्यात हुई ॥ १३ ॥ कंस उस मायाकी बात सुनकर बिस्मित होगया, तथा देवकी और बसुदेवको बंधन से छोड़ नम्रभाव से कहनेलगा कि ॥ १४ ॥ हे बहिन ! हे बहनोई ! तुम हमारे आत्मीयहो; किंतुराक्षस जैसे बच्चोंका बधकरता है, वैसेही मुझ पापात्माने तुम्हारी कितनीही संतानों का नाशकिया है ॥ १५ ॥ मैं निर्दय, जाति और संबंधियों का त्याग करने वाला, दुष्ट, ब्रह्मघाती की सदृश जीताहुआ भी मराहूं सोमें कौनसे लोकको जाऊंगा ॥ १६ ॥ केवल मनुष्यही नहीं किन्तु देवता भी असत्य बोलते हैं । देवताओं की बातपर विश्वास करकेही मैंने बहिनके लड़कोंको मारा ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! पुत्रों के निमित्त दुःख न करना, उन्हों ने अपने २ कर्म फलोंका भोग किया है समस्त प्राणी दैवकेही बशमें हैं; वे सदैव एकत्र नहीं रहसकते ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीपर

मात्मातथैतेषु विपर्येतिथथैवभूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदोभेदो यतआत्मविपर्ययः । देहयोगवियोगौच संसृतिर्ननिवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रेस्वतनयान्मया व्यापादितानपि । माऽनुशोचयतःसर्वः स्वकृतंविन्दतेऽवशः ॥२१॥ यावद्धतोस्मि हन्तास्मीत्यात्मानंमन्यतेस्वदृक् । तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमंध्वंममदौरात्म्यं साधवोदीनवत्सलाः।इत्युक्त्वाऽश्रुमुखःपादौश्यालस्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धःकन्यकागिरा । देवकींवसुदेवंच दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुःसमनुतप्तस्य क्षान्तरोषाचदेवकी । व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्यतमुवाचह॥२५॥एवमेतन्महाभाग यथावदसिदेहिनाम् ।अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेतिभिदायतः ॥२६॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः । मिथोघ्नन्तंनपश्यन्ति भावैर्भावंपृथग्दृशः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच। कंसएवंप्रसन्नाभ्यां विशुद्धंप्रतिभाषितः । देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायां कंसआहूयमन्त्रिणः । तेभ्यआचष्टतत्सर्वं यदुक्तंयोगनिद्रया ॥२९॥ आकर्ण्यभर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।देवान्प्रतिकृतामर्षा दैतयानातिकोविदाः ॥३०॥ एवंचेत्तर्हिभोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु । अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्यवैशिशून् ॥ ३१ ॥ किमुद्यमैःकरिष्यन्ति देवाःसमरभीरवः । नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषै

पार्थिव पदार्थ घटआदि उत्पन्न होते और टूटजाते हैं किंतु मिट्टीवनीही रहती है तैसेही देहादि भी उत्पन्न होते और नाश होते हैं-आत्मा उसही अवस्था में रहता है–देहके विकार होने से आत्मा का विकार नहीं होता । जोभली भांतिसे इसको नहीं जानता, उन्हीं की देहमें आत्म बुद्धि उत्पन्न होती रहती है; और उसही बुद्धिके कारण भेदज्ञान भी उत्पन्न होता है; उसही भेदज्ञान से पुत्रादि के देहके साथ संयोग और वियोग होता है । और उस देहके साथ संयोग वियोग होने से सुख दुःख होता रहता है, विनाज्ञान के उदय हुये संसार से निवृत्ति नहीं होती॥ १९ । २० ॥ हेभद्रे! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मारा है तथापि उनके निमित्त दुःख न करो । कोई स्वाधीन नहीं है; सभी को अपने २ कर्मों का भोगकरना पड़ता है ॥ २१ ॥ " मैंनेमारा " तथा " मुझकोमारा " ऐसा जबतक माने तबतक यह देहाभिमानी अज्ञानी मनुष्य प्रायश्चित्त का अधिकारी है ॥ २२॥ तुम दोनों जन साधु तथा बन्धुवत्सलहो, अतएव मेरी दुष्टता को क्षमाकरो । कंस यहबात कहकर नेत्रों से जल डालते२ बहिन और बहनोई के चरणों में गिरपड़ा ॥ २३ ॥ उसने मायारूपी कन्या की बातपर विश्वासकर देवकी और वसुदेव को बन्धन से छोड़ उनपर अपनी सुहृदता प्रकाशकी ॥ २४ ॥ भ्राताको संताप करते देखकर देवकी ने उसपर से क्रोध त्यागदिया । वसुदेवजी भी क्रोध छोड़कर हँसते २ कहनेलगे कि–॥ २५ ॥ प्राणियों के पक्ष में जोकुछ कहा वह निश्चयहीऐसी भांति है । अहंबुद्धि अविद्याही से उत्पन्नहोती है; उसी अहंबुद्धि से यह ' मेरा' यह 'पराया ' इस भांति का ज्ञान उत्पन्न होता है॥ २६ ॥ भेददर्शी प्राणी देह के निमित्त शोक, हर्ष,भय, द्वेष, लोभ, मोह, तथा अहंकारसे परिपूर्णहो परस्परकी देह का विनाशकरते रहते हैं किंतु सर्वात्मा जगदीश्वर कि जो उनके समस्तकार्यों को देखते रहते हैं, वह उनको एकबारमी नहीं देखते ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि वसुदेव और देवकी को प्रसन्न होकर यह कहनेपर कंस उनकी आज्ञाले अपने घर परगया ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस रात्रिके प्रभात होतेही कंस ने मंत्रियों को बुलाया, तथा कन्यारूपिणी माया ने जो २ कुछ कहाथा वहसब उनसे कहसुनाया ॥ २९ ॥ देवताओंपर क्रोधकरनेवाले मूर्ख,देवशत्रु, दानवगणों ने कंस की बात सुनकर कहा कि–॥ ३० ॥ हे भोजेन्द्र ! यदि यही हैतो ऐसाहोने से सबबालकों को कि जिनकी आयु दशदिनकी होगई है तथा दश दिन नहीं बीते—उन सबको पुर, नगर और व्रजआदि में जायजायकर नाश करडालें ॥ ३१ ॥ देवतातो समरमें डरपोक

धनुषस्तव ॥३२॥अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः। जिजीविषवउत्सृज्य पलायनपरायणुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्रांजलयोदीना न्यस्तशस्त्रादिवौकसः। मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताःस्मइतिवादिनः ॥ ३४ ॥ नत्वंविस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान्। हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुद्ध्यतः ॥३५॥ किंक्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः रहोजुषाकिंहरिणा शंभुनावावनौकसा। किमिन्द्रेणाल्पवीर्येणब्रह्मणा वातपस्यता ॥ ३६ ॥ तथापिदेवाः सापत्न्याञ्जोपेक्ष्याइतिमन्महे। ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥ यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्नशक्यतेरूढपदश्चिकित्सितुम्। यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलोनचाल्यते। ॥ ३८ मूलंहिविष्णुर्देवानां यत्रधर्मः सनातनः। तस्यचब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः। तपस्विनोयज्ञशीलान्गाश्च हन्मोहविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रागावश्चवेदाश्च तपःसत्यंदमःशमः। श्रद्धा दयातितिक्षाच क्रतवश्चहरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ सहिसर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड्गुहाशयः। तन्मूलादेवताःसर्वाः सेश्वराःसचतुर्मुखाः। अयंवैतद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुकउवाच। एवंदुर्मन्त्रिभिःकंसः सहसंमन्त्र्यदुर्मतिः। ब्रह्महिंसांहितंमेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥ संदिश्यसाधुलोकस्य कदनेकदनप्रि

ही हैं आपके धनुषशब्द से उनके चित्त सदैव व्याकुल होतेरहते हैं; अतएव वहयुद्धका उद्यम करके क्याकरेंगे ? ॥ ३२ ॥ आप के बाणों से बींधने तथा मारने को तत्पर होने पर वह प्राणों के भयसे चारोंओरको भागगयेथे॥३३॥किसी देवताने डरकर, अस्त्र शस्त्र छोड़, हाथजोड़आप से दया की प्रार्थनाकीथी, कोई२ तो कांछ और शिखाको खोलकर कहतेथे—कि'हम भयभीत होरहे हैं। ३४ ॥ आपने फिर उनको नहीं मारा क्योंकि वह अपने२ अस्त्र शस्त्र भूलगयेथे तथा विमुख होगयेथे। उन के रथनहींथा; उनकाधनुष टूटगयाथा; युद्ध करनेकी उनको इच्छानथी॥३५॥जिस स्थानमें डरनहीं होता देवता उसी स्थानमें वीरता को प्रकाश करते हैं। वह युद्धके अतिरिक्त और सबही स्थानों पर अपनी वीरता की बड़ाई करने में नहीं चूकते उनका क्या भयहै? नारायण तो एकांतही में बास करता है वह क्या करसकता है ? शिव बनबासी है उससे होही क्या सकता है ? और ब्रह्मा तो तपस्वी है इन्द्र का पराक्रम अतिही साधारण है ॥ ३६ ॥ तब फिर उनके मध्यमें कौन है ? देखो, प्राण पण से चेष्टा करने परभी देवता गण कुछ नहीं कर सकते, तौभी वे हमारे शत्रु हैं—उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं। अतएव उनके समूल नष्ट करने के निमित्त हमको नियुक्त करो ॥ ३७ ॥ देहसे उत्पन्न हुआ रोग रोगी से उपेक्षित होनेपर जड़ बांध कर जैसे असाध्य होजाता है; जैसे इन्द्रियों से उपेक्षित होने पर उनका बशीभूत करना असाध्य होजाता है—तैसेही प्रबल शत्रुके दृढ़ होनेपर उसका उखाड़ना असाध्य होजाताहै, ॥ ३८ ॥ जिस स्थानमें सनातन धर्महै उसी स्थानमें विष्णुभी निवास करतेहैं। और बिष्णुही देवताओंमें प्रधान हैं। और वेद ब्राह्मण, गौ, तपस्या, यज्ञ तथा दक्षिणा यही धर्मकी जड़हैं ॥ ३९ ॥ अतएव हेराजन् ! सब प्रयत्नों से ब्रह्मवेत्ता तपस्वी,यज्ञशील ब्राह्मणोंको तथा घृत उत्पन्न करनेवाली सब गौओंके मारनेका आरम्भ करो ॥ ४० ॥ देवता, तपस्या, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और नानाप्रकार के यज्ञ यह सब बिष्णुकी मूर्त्तिहैं॥४१॥ बिष्णुही सब देवताओंका अधीश्वरहै, असुर द्वेषी तथा अन्तर्यामी विष्णु ही महादेव और ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंका आदि कारणहैं; । अतएव ऋषियों का बध होने सेही बिष्णुका बध होसकताहै ॥ ४२ ॥ दुष्टकंस, दुष्टमंत्रियोंके साथ परामर्श कर ब्रह्महत्या करने

यान्। कामरूपधरादिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ तेवैरजःप्रकृतयस्तमसामूढचेतसः। सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥ आयुःश्रियंयशोधर्मं लोकानाशिषएवच। हन्तिश्रेयांसिसर्वाणि पुंसोमहदतिक्रमः ॥ ४६ ॥
इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसोद्यमनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥
श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मजउत्पन्नेजाताह्लादोमहामनाः। आहूयविप्रान्वेदविदःस्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वास्वस्त्ययनंजातकर्मात्मजस्य वै। कारयामासविधिवत्पितृदेवार्चनंतथा ॥ २ ॥ धेनूनांनियुतेप्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते। तिलाद्रीन्सप्तरत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेनस्नानशौचाभ्यांसंस्कारैस्तपसेज्यया। शुद्ध्यन्तिदानैः संतुष्ट्याद्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमङ्गल्यगिरोविप्राः सूतमागधबन्दिनः। गायकाश्चजगुर्नेदुर्भेर्योदुन्दुभयोमुहुः ॥५॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः। चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥६॥ गावोवृषावत्सतराहरिद्रातैलरूषिताः। विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः॥७॥ महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः।गोपाःसमाययू राजन्नानोपायनपाणयः॥८ गोप्यश्चाकर्ण्यमुदितायशोदायाः सुतोद्भवम्। आत्मानंभूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः॥९॥नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः।बलिभिस्त्वरितंजग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१०॥ गोप्यःसुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराःपथिशिखाच्युत

कोई श्रेष्ठजान तथा बधप्रिय कामरूपधारी दैत्योंको साधुओंके मरनेके निमित्त आज्ञादे घरमें गया ॥४३-४४॥ उन दुष्ट असुरोंके अंतःकरण तमोगुणसे ढकेहुएथे उन्होंने साधुओंसे शत्रुता करनी आरम्भकी। मृत्यु उनके निकट आगईथी ॥ ४५ ॥ हे परीक्षित्! महात्माओंके निरादरसे मनुष्योंकी आयु, लक्ष्मी, यश, धर्म, स्वर्गादि, लोक, कल्याण, और समस्त इष्ट नष्ट होजाते हैं ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम० सरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन्! पुत्रका उत्पन्नहोना देख, उदार मनवाले नंदजीने आनंदित हो वेद जानने वाले ब्राह्मणोंको बुलाया तथा स्नानकर पवित्रहो उन सब ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यन कराय यथा विधिसे पुत्रका जातकर्म करके पितृपूजा और देवपूजा कराई ॥ १—२ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको सजीहुई दोलक्ष गौए, रत्न समूह तथा सुनहरे वस्त्रों से घिरेहुये सात पर्वतों के तिल दानकिये ॥ ३ ॥ धनआदि पदार्थ जैसे काल, स्नान, शौच, संस्कार, तपस्या, यज्ञ, दान और संतुष्टि द्वारा शुद्ध होते हैं बैसेही आत्म ज्ञान द्वारा आत्मा भी शुद्ध होता रहता है ॥ ४ ॥ नंदजी के ब्रजमें उस आनंदके दिन बंशका कीर्त्तन करनेवाले बंदी, सूत और मागधगण स्वास्तिवाचन करनेलगे, गायकोंने गाना आरंभकिया। चारों ओर से भेरी और दुंदुभी बजनेलगीं ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण ब्रजके घर विचित्र ध्वजा, पताका, माला, तोरण और वंदन वारसे सुशोभित होगये, घरोंके द्वार, आंगन, और भीतर के भाग स्वच्छहो तथा धोये जाकर अपूर्व शोभाको बढाने लगे ॥ ६ ॥ गाऐं, बैल और बछड़े सभी तेल और हल्दी से रंगगये तथा उनको विचित्र धातु व मोरछल लगाई, झूलें ओढाई और सोनेकी माला पहिनाई ॥ ७ ॥ गोपगण बड़े मोलके वस्त्र, आभूषण, अंगरखा और पाग पहिन कर हाथमें नाना भेटेंले नंदजी के घरमें आनेलगे ॥ ८ ॥ यशोदा के पुत्रहुआ है यह सुनकर सब गोपियें आनंदित हुई तथा बस्त्र, आभूषण और अंजनादि द्वारा अपनेको बिभूषित करने लगीं ॥९॥ बड़े बड़े नितम्बों वाली तथा जिनके त्रिवली शोभायमान होरही हैं ऐसी गोपियों के कमल मुख नए केसरके चरचने से अति शोभायमान हुये। वह भेंटें आदि लेकर शीघ्रता पूर्वक नंदजी के घर में गमन करने लगीं। शीघ्रता से चलने के कारण उनके बड़े २ स्तन कंपायमान होतेथे ॥१०॥

माल्यवर्षाः। नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ११ ताआशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरंपाहीतिबालके। हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्योजनमुज्जगुः १२ अवाद्यन्तविचित्राणिवादित्राणिमहोत्सवे। कृष्णेविश्वेश्वरेऽनन्तेनन्दस्य व्रजमागते॥ १३॥ गोपाःपरस्परंहृष्टादधिक्षीरघृताम्बुभिः। आसिञ्चन्तोविलिम्पन्तो नवनीतैश्चाचिक्षिपुः॥ १४॥ नन्दोमहामनास्तेभ्योवासोलंकारगोधनम्। सूतमागधवन्दिभ्योयेऽन्येविद्योपजीविनः॥ १५॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मायथोचितमपूजयत्। विष्णोराराधनार्थायस्वपुत्रस्योदयायच॥ १६॥ रोहिणीचमहाभागानन्दगोपाभिनन्दिता। व्यचरद्दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता॥ १७॥ ततआरभ्यनन्दस्यव्रजः सर्वसमृद्धिमान्। हरेर्निवासात्मगुणैरमाक्रीडमभून्नृप॥ १८॥ गोपान्गोकुलरक्षायांनिरूप्यमथुरांगतः। नन्दः कंसस्यवार्षिक्यंकरंदातुंकुरूद्वह॥ १९॥ वसुदेवउपश्रुत्यभ्रातरंनन्दमागतम्। ज्ञात्वादत्तकरंराज्ञेययौतदवमोचनम्॥ २०तंदृष्ट्वासहसोत्थायदेहःप्राणमिवागतम्। प्रीतःप्रियतमं दोर्भ्यांसस्वजेप्रेमविह्वलः २१ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः। प्रसक्तधीःस्वात्मजयोरिदमाह विशांपते॥ २२॥ दिष्ट्याभ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्यते। प्रजाशायानिवृत्तस्य प्रजायत्समपद्यत॥ ॥ २३॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः॥ उपलब्धोभवानद्य दुर्लभं

वह सुंदर वस्त्र पहिने हुई हैं उनके कानोंमें कुण्डल प्रकाशित होरहे हैं तथा गलेमें सुंदर२ चन्द्रहार शोभायमान होरहे हैं। सोनेके अनेक आभूषणों से आभूषित होकर वह सब गोपियें जब नंदके घरको जानेलगीं तबमार्ग में उनके खुलेहुये केशों से फूल झड़ने तथा कुंडल, स्तन और हार हिलने लगे, इससे उनकी और भी शोभा बढ़गई थी॥ ११ ॥ वह चिरंजीव कहकर बालकको आशीर्वाद दे मनुष्यों के शरीर में हलदीका चूर्ण, तैल और जल डालने और उच्चस्वर से मधुरगान करनेलगीं ॥ १२ ॥ नंदजी के घरमें श्रीकृष्णजी के उत्पन्न होने से उस महोत्सव में नाना प्रकार के बाजे बजने लगे॥ १३ ॥ सबगोप आनंद से पुलकितहो दही, दूध, घी और जल द्वारा एक दूसरेको भिगोने तथा एकदूसरेके मक्खनलगायकर एकदूसरे के ऊपर फेंकनेलगे॥ १४॥ नंदजी ने उनको प्रसाद की भांति नाना प्रकार के वस्त्र, अलंकार और गौ प्रदान कीं। पौराणिक, मागध, बंदी, तथा और भी दूसरे विद्योपजीवी मनुष्य जोवहां उपस्थितथे उन्होंने जो२चाहा नंदजीने वही२दानदकर उनका यथोचित सत्कारकिया॥ १५–१६॥ महाभागा रोहिणीजीने विष्णुजीकी पूजाकर तथा अपने पुत्रके कल्याण की कामना कर सुंदर वस्त्र आभूषण पहिन भगवानका ध्यान करती हुई यथाशक्ति दानकिया। यह देखकर नंद और गोपोंका अत्यंत आनंद हुआ॥ १७॥ उस समय नंदरायका व्रज सर्व संपत्तियुक्त विष्णुजी के निवास स्थानके कारण विशेष गुणों से विभूषितहो लक्ष्मीकी विहार भूमिहोगया॥ १८॥ तदनंतर नंदराय गोपोंको गोकुलकी रक्षाके निमित्त नियुक्तकर आप कंसको वार्षिक राज करदेने के निमित्त मथुरा में गये॥ १९॥ वसुदेवजी उनके आनेकी वार्त्तासुन तथा 'राजाको करदेन आये हैं' यह जान उनके आश्रम में गये॥ २०॥ नंदराय मित्रको आता देखकर अति आनंदित हुये तथा जैसे देह प्राणकोपायकर उठ बैठती है तैसेही शीघ्रता से उठ प्रीति और प्रेमसे विह्वलहो दोनो बाहों द्वारा प्यारे वसुदेवजी से मिले॥ २१॥ हे राजन्! वसुदेवजी ने पूजा पाय आसन पर बैठ श्रमको दूरकिया तथा आदर पूर्वक कुशल प्रश्न करके कहाकि॥ २२॥ हे भ्राता! तुम वृद्धहोगये थे, इस समय तक तुम्हारे पुत्र नहीं हुआ था; पुत्रकी आशा भी तुमने छोड़दीथी; अब तुम्हारे पुत्रहुआ यह परम भाग्यकी बात है॥ २३॥ अच्छा हुआ कि तुम्हारा फिर पुनर्जन्म हुआ, क्योंकि तुमने संसार चक्रमें स्थित होकर अब दुर्लभ प्रिय दर्शन पुत्रप्राप्त किया है

प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥ नैकत्रप्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् । ओघेनव्यूह्यमानानां प्लवानांस्रोतसोयथा ॥ २५॥ कच्चित्पशव्यंनिरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् । बृहद्वनंतदधुनायत्रास्ते त्वंसुहृद्‌वृतः॥२६॥ भ्रातर्मम सुतःकच्चिन्मात्रासह भवद्व्रजे । तातं भवन्तमन्वानोभवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गोविहितः सुहृदोह्यनुभावितः । नतेषुक्लिश्यमानेषुत्रिवर्गोऽर्थायकल्पते ॥ २८ ॥ नन्द उवाच ॥ अहोतेदेवकीपुत्राः कंसेनबहवोहताः । एकाऽवशिष्टाऽवरजाकन्यासाऽपिदिवंगता ॥२९॥ नूनंह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमोजनः । अदृष्टमात्मनस्तत्त्वंयोवेदनसमुह्यति ॥ ३० ॥ वसुदेव उवाच ॥ करोवैवार्षिकोदत्तोराज्ञेदृष्टावयंचवः । नेहस्थेयंबहुतिथंसन्त्युत्पाताश्चगोकुले ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति नन्दादयोगोपाः प्रोक्तास्तेशौरिणाययुः । अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्यगोकुलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भा०म०दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दवसुदेवसंगमो नाम पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच॥नन्दः पथिवचः शौरेर्नमृषेतिविचिन्तयन् । हरिंजगामशरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥ कंसेनप्रहिताघोरापूतनाबालघातिनी । शिशूंश्चचारनिघ्नन्तीपुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥ नयत्रश्रवणादीनिरक्षोघ्नानिस्वकर्मसु । कुर्वन्तिसात्वतांभर्तुर्यातुधान्यश्चतत्रहि ॥ ३ ॥ साखेचर्येकदोपेत्यपूतनानन्दगोकुलम् ।

॥ २४ ॥ प्रत्येक प्राणियों के कर्म पृथक् २ हैं, अतएव जलके बेगसे बहते हुये तृण काष्ठादि की समान सबप्रिय जनोंका निवास एकत्र नहीं रहसकता ॥ २५ ॥ तुम बंधुजनोंसे घिरकर पशु चराने योग्य बृहत बनमें बास करतेहो उस बनमें कोई दुर्घटना तो उपस्थित नहीं हुई ? वहां बहुत सा जल, तृण, बृक्ष और लतादिता हैं ॥ २६ ॥ हमारा एक पुत्र अपनी माता समेत तुम्हारे ब्रजमें रहता है, तुम उसका पालन करते रहतेहो, वह तुम्हींको पिता कहकर जानता है, वह सुख से तो जीता है ॥ २७ ॥ पुरुष के धर्म, अर्थ, और काम जो अपने संबंधियोंके उपयोगी होंतो वही सफल कहेजाते हैं और यदिवे संबंधी दुःखपावेंतो वह धर्मादिक किसी कामके नहीं ॥ २८ ॥ नंदजीने कहाकि—अहो ! कंसने देवकी के गर्भसे उत्पन्न हुये तुम्हारे अनेक बालकोंका नाशकिया है, अंतमें केवल एक छोटी कन्या शेषरहीथी वह भी स्वर्गको चलीगई ॥ २९ ॥ प्रारब्धहीसे मनुष्यों का शेषहोता रहता है, और प्रारब्धही मनुष्योंका सर्वस्व है । जोप्रारब्धको ही सुख दुःखका कारण जानते हैं वे कुछभी दुःखित नहीं होते ॥ ३० ॥ बसुदेवजी बोलेकि—तुमने वार्षिक करतो देदिया और हमारे साथ साक्षात् भी होगया । अब बहुत दिनों इस स्थानपर रहना उचित नहीं, क्योंकि गोकुल में अनेक उत्पात होंगे अतएव शीघ्रही जावो ॥ ३१ ॥ वसुदेवजी की इस बातको सुनकर नंदादि गोपोंने उनसे बिदाले बैलोंके जुतेहुये गाडोंपर सवारहो गोकुलकी ओर प्रस्थान किया ॥३२॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम०सरलाभाषाटीकायांपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दो० । कहब छठे अध्यायमें दुष्टनकी संहार । ताहूको निजगति दई करुणासिंधु खरार १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! नन्दजीने जाते २ मार्गमें बिचारा कि—वसुदेव मिथ्या नहीं कहेंगे तो फिर क्या यथार्थही ब्रजमें उत्पात होंगे? उत्पात होनेके भयसे भगवान्‌के शरणागत हुए ॥ १ ॥ और यथार्थमेंही उससमय कामचारिणी बालक घातिनी, दुष्टापूतना—कंससे प्रेरित हो बच्चोंके मारनेके निमित्त नगर, गांव और ब्रजादिमें घूमतीथी ॥ २ ॥ नंदजी शंका करते हुए जातेथे कि उसीसमयमें यह देवबाणी हुई कि—जिसस्थान के निवासी अपने २ कार्यरूप भक्तपति भगवान् के राक्षस नाशक नामोंको नहीं सुनते उसी स्थान में राक्षसों का प्रादुर्भाव होसकता है, किन्तु जिसस्थान में वह साक्षात् बास करते हैं उसस्थान में क्या शंका ? ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! कामचारिणी आकाश गामिनी पूतना उसीसमयमें नन्द

याशिवामायया ऽऽत्मानंप्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तांकेशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकांबृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् । सुवाससंकम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥ वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तींवनितांव्रजौकसाम् । अमंसताम्भोजकरेणरूपिणींगोप्यः श्रियंद्रष्टुमिवागतांपतिम् ॥ ६ ॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वतीशिशून्यदृच्छयानन्दगृहे ऽसदन्तकम् । बालंप्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसंददर्शतल्पेऽग्निमिवाहितंभसि ॥ ७ ॥ विबुध्यतांबालकमारिकाग्रहंचराचरात्मा सनिमीलितक्षणः । अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकंयथोरगंसुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥ ८ ॥ तांतीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितांवीक्ष्यांतराकोशपरिच्छदासिवत् । वरस्त्रियंतत्प्रभयाचधर्षिते निरीक्षमाणेजननीह्यतिष्ठताम् ॥ ९॥ तस्मिन्स्तनंदुर्जरवीर्यमुल्बणंघोरांकमादाय्रशिशोर्ददावथ । गाढंकराभ्यांभगवान्प्रपीड्यतत्प्राणैःसमंरोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥ सामुञ्चमुञ्चालमितिप्रभाषिणीनिष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि । विवृत्यनेत्रेचरणौभुजौमुहुःप्रस्विन्नगात्राक्षिपतीरुरोदह ॥ ११ ॥ तस्याःस्वनेनातिगभीररंहसासाद्रिर्मही द्यौश्चचचालसग्रहा । रसादिशश्चप्रतिनेदिरेजनाःपेतुःक्षितौ

गोकुल के समीप आय मायाद्वारा सुन्दर स्त्रीका वेष बनाय उसमें प्रवेश करतीहुई ॥ ४ ॥ स्त्रीके केश पाश चमेलीके फूलोंसे गुथेहुएथे।मध्यदेशके एकओर तो विशाल नितंब तथा दूसरीओर स्तनों के भारसे कमर लचक रहीथी बहुत सुन्दर वस्त्र धारण कियेथी । कानोंके आभूषणोंकी शोभा तथा प्रकाशित कुंडलोंकी कांतिद्वारा गण्डस्थल देदीप्यमान हो उठेथे ॥५॥ उसके हाथमें एक कमलथा वह स्त्री मनोहर हास्य तथा कटाक्ष युक्त देखने द्वारा व्रजवासियोंके मनका हरण करतीथी । गोपियोंने उसको देखकर बिचारा जान पड़ताहै कि भगवान् के श्रीकृष्ण रूपसे गोकुलमें अवतीर्ण होनेपर लक्ष्मी अपने पतिके निमित्त शरीर धारण करके आईहै । अतएव किसीने उसको कहीं भी जानेसे निषेध न किया ॥ ६ ॥ हेराजन् ! नारीरूपिणी पूतना बालकोंके ग्रह स्वरूप है । उस कामचारिणीने बालकको ढूंढ़तीहुई इच्छानुसार नन्दके घरमें घूमते २ शय्याके ऊपर बालक को देखपाया । उस बालकको कि जो असाधुओं का नाश करनेवाला तथा जिसने राखसे ढकीहुई आग के समान अपने असीम तेजको गुप्त कररक्खाथा ॥ ७ ॥ उस खेचरी पूतनाने न जानपाया, अतएव उनको देखकर उसको भय न हुआ । चराचरके आत्मा हरि भगवान ने देखा कि—यह स्त्री नहींहै किंतु बालकोंका नाश करनेवाली राक्षसीहै, इसनिमित्त उसके नाश करनेकी इच्छासे उन्होंने अपने दोनों नेत्र बन्दकरलिये । जैसे कोई मनुष्य अज्ञानके बशीभूतहो रस्सी के भ्रमसे कालसर्प को गोदमें लेलवे वैसेही पूतना ने दुष्टों के नाश करनेवाले उन भगवानको गोदमें लेलिया ॥ ८ ॥ म्यानके भीतर छिपीहुई तलवारकी समान पूतना का हृदय तो अत्यन्त तीक्ष्णथा किंतु बाहिरी बर्तावसे माताके बर्तावकी समान अत्यन्त स्नेहमय थी । उसकी आकृति भी श्रेष्ठ स्त्रियोंकी आकृति के समान देखी जातीथी । अतएव श्रीकृष्णजीकी दोनों माता घरके बीचमें उसको देखकर केवल उसकी ओर देखतीही रहीं निवारण न करसकीं ॥ ९ ॥ अनन्तर दुष्टा पूतनाने उस स्थानसे पुत्रको गोदमेंले घोर बिषयुक्त प्राणनाशक स्तन उसके मुहमें देदिया भगवान् हरि क्रोधितहो दोनों हाथों द्वारा स्तनोंको भलीभांतिसे दबाय उसके प्राण समेत पीगए ॥ ॥ १० ॥ समस्त मर्म स्थानोंमें कष्ट उपस्थित होनेपर वह राक्षसी छोड़ २ बसकर कहतीहुई चिल्लाने लगी । उसके सब शरीरमें पसीना निकलआया और आंखें फटगईं । अति दुःखसे वह बारम्बार हाथ पैर पटककर रोनेलगी ॥ ११ ॥ उसके चिल्लानेके घोरशब्दसे पर्वतों समेत पृथ्वी और ग्रहगणों समेत आकाश बिचलित होगया रसातल और दिशायें प्रतिध्वनित होनेलगीं तथा

बज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थंव्यथितस्तनाव्यसुर्व्यादायकेशांश्चरणौभुजावपि । प्रसार्यगोष्ठेनिजरूपमास्थितावज्राहतोवृत्रइवापतन्नृप ॥ १३ ॥ पतमानोऽपितद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् । चूर्णयामासराजेन्द्रमहदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् । गण्डशैलस्तनंरौद्रंप्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥ अन्धकूपगभीराक्षंपुलिनारोहभीषणम् । बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रिशून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुःस्मतद्वीक्ष्यगोपागोप्यःकलेवरम् । पूर्वंतुतन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालंचतस्याउरसिक्रीडन्तमकुतोभयम् । गोप्यस्तूर्णंसमभ्येत्यजगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यांताःसमंबालस्यसर्वतः । रक्षांविदधिरेसम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेणस्नापयित्वापुनर्गोरजसार्भकम् । रक्षांचक्रुश्चशकृताद्वादशाङ्गेषुनामभिः ॥ २० ॥ गोप्यःसंस्पृष्टसलिलाअङ्गेषुकरयोःपृथक् । न्यस्यात्मन्यथबालस्यबीजन्यासमकुर्वत ॥ २१॥ अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तवजान्वथोरूयज्ञोऽच्युतःकटितटंजठरंहयास्यः । हृत्केशवस्त्वदुरईशइनस्तुकण्ठंविष्णुर्भुजंमुखमुरुक्रमईश्वरःकम् ॥ २२ ॥ चक्र्यग्रतः सहगदोहरिरस्तुपश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसीमधुहाऽजनश्च । कोणेषुशंखउरुगायउपर्युपेंद्रस्तार्क्ष्यःक्षितौहलधरःपुरुषःसमन्तात् ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणिहृषीकेशःप्राणान्नारायणोऽवतु । श्वेतद्वीपपतिश्चित्तंमनोयोगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भस्तुतेबुद्धिमात्मानंभगवा

सब लोकों ने बज्रपात होने से मनमें विचार किया कि अब पृथ्वी पर से गिरने का आरंभ होता ही है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! स्तनों में इस भांति की पीड़ा होने से राक्षसी अपना निजरूप धारण कर हत जीवनहो केश, दोनों पांव और दोनों भुजाऐं फैलाय, बज्रसे मारेहुये वृत्रासुर की समान ब्रजमें गिरपड़ी ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उसकी देहके गिरने से छेःकोस तकके वृक्ष आदिकों का चूर्ण होगया।सबही उसको देखकर अत्यंत विस्मित और आश्चर्यान्वितहोगये ॥ १४ ॥ उसकी दाढ़ें हलके फलकी समान तीक्ष्ण और नासिका के छेद पर्वतकी कंदराके समान गंभीर थे तथा दोनोंस्तन पहाड़ की चोंटीके समान बड़े थे वाल लालवर्णके और बिखरे हुयेथे॥१५॥ दोनों आंखें अंधे कुऐकी समान गहरी, नदीके तटके समान भयंकर नितंब, बंधेहुये पुलके समान दोनों भुजाऐं और साथलें तथा पेट सूखेहुये जलरहित तालाब की समान था ॥ १६ ॥ इस राक्षसी के भयंकर शब्दसे गोप और गोपियों के हृदय, कान और मस्तक विदीर्ण होगये थे; इस समय वह उसके इस देहको देखकर अत्यंत भयभीत और स्तंभित होगये ॥ १७ ॥ परन्तु बालक निर्भयता से उस की छातीपर खेल करता था । सब गोपियों ने व्याकुलहो शीघ्रता पूर्वक वहांपर आय बालक को छातीसे उठालिया ॥ १८ ॥ रोहिणी और यशोदा के साथ वह सबबाला बालकके ऊपर गोपुच्छ घुमाय २ सब प्रकार से रक्षाका विधान करने लगीं ॥ १९ ॥ पहिलेतो गोमूत्र फिर गोधूलि द्वारा बालकको स्नान कराय ललाट आदि द्वादश अंगों में केशवादि द्वादश नाम लिखदिये ॥ २० ॥ इस के उपरांत आचमनकर पहिलेतो अपने सब अंगों में तथा दोनो हाथों में पृथक् पृथक् अजादि एकादश बीजन्यासकर फिरबालक केभी अङ्गादि में उसी प्रकार से किया और कहाकि ॥२१॥ अजतेरे पैरोंकी; मणिमान तेरे घुटनोंकी; यज्ञतेरे साथवालोंकी;अच्युतकमरकी;हयग्रीव पेटकी;केशव हृदय की; ईशवक्षःस्थलकी; सूर्यकण्ठकी; विष्णुभुजाकी; उरुक्रममुखकी; तथाईश्वरतेरे मस्तककी; रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी मुरारि तेरेअग्रभाग में;गदाधारी हरि तेरे पिछलेभागमें; धनुर्धारीमधुसूदन तथाअसिधारी अज तेरी दोनों भुजाओं के पार्श्वों में; शंखधारी विष्णुसब दिशाओं में; उपेंद्रऊपरी भाग में तार्क्ष्य अधोभाग में;तथाहलधर भगवान् चारोंओर स्थितरहैं ॥ २३ ॥ इस भांति बाहिरी भागकी रक्षाका विधानकर फिर भीतरी रक्षाका विधानकरनेलगीं—हृषीकेश तेरी सब इंद्रियों की;

न्परः । क्रीडंतंपातुगोविंदःशयानंपातुमाधवः ॥ २५ ॥ व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठआसीनं त्वांश्रियःपतिः । भुञ्जानंयज्ञभुक्पातुसर्वग्रहभयंकरः ॥ २६॥ डाकिन्योयातुधान्यश्चकूष्माण्डायेऽर्भकग्रहाः । भूतप्रेतपिशाचाश्चयक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥कोटरा रेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः । उन्मादायेह्यपस्मारादेहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥स्वप्नदृष्टामहोत्पातावृद्धबालग्रहाश्चये । सर्वेनश्यंतुतेविष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिप्रणयबद्धाभिर्गोपीभिःकृतरक्षणम् । पाययित्वास्तनंमातासंन्यवेशयतात्मजम् ॥ ३०॥ तावन्नन्दादयोगोपामथुरायाव्रजंगताः । विलोक्यपूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनंवतर्षिःसंजातोयोगेशोवासमासवः । सएवदृष्टो ह्युत्पातोयदाहानकदुंदुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरंपरशुभिश्छित्वातत्तेव्रजौकसः । दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशोन्यदहन्काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥दह्यमानस्यदेहस्यधूमश्चागुरुसौरभः उत्थितःकृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥ पूतनालोकबालघ्नीराक्षसीरुधिराशना । जिघांसयापिहरयेस्तनंदत्वाऽऽपसद्गतिम् ॥ ३५ ॥किंपुनःश्रद्धयाभक्त्या कृष्णायपरमात्मने । यच्छन्प्रियतमंकिंनुरक्तास्तन्मातरोयथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यांभक्तहृदिस्थाभ्यांवंद्याभ्यांलोकवन्दितैः । अंगंयस्याःसमाक्रम्यभगवानपिबत्स्तनम्॥३७ यातुधान्यपिसास्वर्गमवापजननीगतिम् । कृष्णभुक्तस्तनक्षीराःकिमुगावोनुमातरः ॥ ॥ ३८ ॥ पयांसियासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् । भगवान्देवकीपुत्रःकैवल्याद्यखिलप्रदः॥३९॥तासामविरतंकृष्णेकुर्वतीनांसुतेक्षणम् । नपुनःकल्पतेराजन्संसारो

नारायण सबप्राणों की; श्वेतद्वीपपति चित्तकी; योगेश्वरमनकी; ॥ २४ ॥ पृश्निनंदन बुद्धिकी; तथा परमभगवान् तेरेआत्माकी रक्षाकरें । तू जबखेले तब गोविंद; जबसोवे तबमाधव; ॥२५ ॥जबचले फिरे तब वैकुण्ठ; जब बैठे तबश्रीपति; तथा जबभोजनकरे तबसबग्रहों को भयदेनेवाले यज्ञभगवान तेरी रक्षाकरें ॥ २६ ॥ डांकिनी,राक्षसी और कूष्मांड आदि सबबालग्रह, भूतगण; भूतमातृगण; पिशाच, यक्ष, राक्षस, तथा विनायकगण, ॥ २७ ॥ कोटरा,रेवती,ज्येष्ठा और पूतनाआदि मातृकागण; देह औरप्राणनाशक अपस्मार और उन्माद आदि रोग समूह; स्वप्न में देखेहुए उत्पाततथा बालवृद्ध ग्रह जितने हैं वे सब बिष्णुकानाम लेतेही भीतहोकर नष्टहोजावें ॥ २८ । २९॥ हेराजन्! गोपियों ने स्नेहबद्धहो इस प्रकारसे मंगलका विधान किया-फिर यशोदापुत्रको गोद में दूध पिलाने लगीं ॥ ३० ॥ इसी समयमें नंदादि गोप मथुरा से ब्रजको आरहेथे । उन्हों ने पूतना की देह को देख विस्मितहोकरकहा ॥ ३१ ॥निश्चयही जानपड़ता है कि वसुदेव ऋषि व योगेश्वरहोगयेहैं क्योंकि उन्होंने जो उत्पातकी बात कहीथी वही तो देखाजाताहै ॥३२॥अनन्तर ब्रजबासियों ने कुल्हाड़ों से पूतनाकी देहको काट एक२ अंग दूर२डाल काठसे घेरकर जलाय दिया ॥३३॥जबउसकी देह जलने लगी तब उस की देह से अगरकी समान सुगंधित धुआं निकला । श्रीकृष्णजी के स्तनपानकरतेही तत्कालउसके सबपाप नाश होगयेथे ॥ ३४ ॥ मनुष्यों के बालकों को मारनेवाली,रुधिरपीनेवाली राक्षसीपूतना, प्राणनाश करने के अभिप्रायसे स्तनपानकरायकर श्रेष्ठ गति को प्राप्तहुई ॥ ३५ ॥ फिरजो गोपियें श्रद्धायुक्त भक्तिसहित भगवान् श्रीकृष्णजी को पुत्रकी समानजान माता की सदृश प्रियपदार्थ दानकरती हैं उनकी बात क्याकहें ? ॥ ३६ ॥ जो दोनों चरण भक्तों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं; लोकों से वंदना कियेजाते देवतादि जिनपदों की बंदनाकियाकरते हैं, भगवान् श्रीकृष्णजीने उन्हीं दोनों पांवों द्वारा जिसके अंग में आक्रमणकर स्तनपान किया वह राक्षसी भी जब माताकी गतिकी समान सद्गति को प्राप्तहुई; तब मुक्ति देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीने जिन गौओं और माता की समान गोपियों के स्तनों का कि जो पुत्रस्नेह से टपकरहे हैं पानकिया तोउन को श्रेष्ठगति प्राप्त होने में संदेहही क्या है ? ॥ ३७ । ३८ । ३९ ॥ हेराजन्! वे सबगोपियें श्रीकृष्ण

ऽज्ञानसंभवः ॥४०॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः। किमिदं कुत एवेति वदंतो व्रजमाययुः ॥४१॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम्। श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२॥ नंदः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः। मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्। शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा०म०दशम०षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

राजोवाच ॥ येनयेनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः। करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि चनः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः। भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम्। मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्। वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥ नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः। अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः। नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥ अधः शयानस्य शिशोर

जीको निरंतर पुत्ररूप से देखती रहीं अतएव फिर वे संसार के बंधन में न बँधसकीं ॥ ४० ॥ जो ब्रजवासी दूर गयेथे उन्होंने चिता से उठतेहुए सुगंधित धुएं को सूंघकर कहाकि' यह क्या है कहां से ऐसी सुगंधि आती है ॥ ४१ ॥ यह बात कहते कहते व्रजमें आयकर तथा गोपों के मुखसे पूतना के आनेका समस्तवृत्तांत, उसकावध, तथा बालकका किसीप्रकार से भी अमंगल नहींहुआ यहसब सुनकर अत्यंत विस्मितहुए ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उदारबुद्धिवाले नंदजी अपने घरमें आय पुत्रको गोदमें ले माथासूंघकरअतिआनंदितहुए॥४३ ॥जोमनुष्यश्रीकृष्णजीके इसपूतनामोक्षणरूपवाले चरित्रकोश्रद्धापूर्वकसुनेंगे उनको भगवान् श्रीकृष्णजी में प्रीतिउत्पन्नहोगी ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

राजा परीक्षितने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! भगवान श्रीकृष्णजी ने अवतार धारण कर जोरचरित्र किये हैं, हे प्रभो ! वह सबही मेरे कान और मनको प्रिय लगते हैं ॥ १ ॥ उन सब चरित्रों के सुनने से मनका मैल और समस्त तृष्णाआदि दूर होजाती हैं तथा थोड़ेही समय में अंतःकरण शुद्ध होकर भगवान् में भक्ति उत्पन्न होती और हरि भक्तोंके साथ मित्रता रहती है यदि अनुग्रह होवे तो उन मनोहर भगवत् चरित्रोंको कहिये ॥ २ ॥ कृष्णजी ने मनुष्य लोक में आय मनुष्यों का अनुकरण कर जोर चरित्र किये हैं कृपाकरके उनसबका बर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! किसीसमय बालक के करवट लेने तथा वर्षगांठके आनेपर उत्सवका आरम्भहुआ। उस महोत्सवमें इकट्ठीहुई स्त्रियोंके बीच साध्वीयशोदाने बाजे, गीत और ब्राह्मणोंके मंत्र समेत स्वस्तिबाचन से पुत्रका अभिषेक कराया ॥४॥ पुत्रका स्नानकार्य समाप्तहोनेपर ब्राह्मण गण खानेके पदार्थ, वस्त्र, माला और इच्छित गायोंको पाय स्वस्त्ययन करनेलगे, यशोदाने देखा कि श्रीकृष्णजीकी आंखोंमें नींद आरही है; अतएव उनको धीरेसे एक शकटके नीचे सुलादिया ॥ ५ ॥ यशोदा का मन करवट लेनेके महोत्सव में उत्साहित था तथा वह आये हुये व्रजवासियों की पहुनाई कर रही थीं,अतएव बालक रोया तो उसके रुदन का शब्द न सुन पाया। स्तन पान करने के निमित्त रोदन करते २ भगवान् अपने दोनो चरण ऊपर को उछालने लगे ॥ ६ ॥

नोऽल्पकप्रवालमृद्वंघ्रिहतंव्यवर्तत । विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनंव्यत्यस्तचक्राक्ष विभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वायशोदाप्रमुखाव्रजस्त्रियऔत्थानिकेकर्मणियाःसमागताः । नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाःकथंस्वयंवैशकटंविपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इतिब्रुवन्तोतिविवादमोहिताजनाःसमंतात्परिवव्रुरातवत् ।)ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्चबालकाः । रुदतानेनपादेनक्षिप्तमेतन्नसंशयः ॥ ९ ॥ नतेश्रद्दधिरेगोपाबालभाषितमित्युत । अप्रमेयंबलंतस्यबालकस्यनतेविदुः ॥ १० ॥ रुदन्तंसुतमादाययशोदाग्रहशङ्किता । कृतस्वस्त्ययनंविप्रैःसूक्तैःस्तनमपाययत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत्स्थापितंगोपैर्बलिभिःसपरिच्छदम् । विप्राहुत्वाऽर्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः । नतेषांसत्यशीलानामाशिषोविफलाःकृताः ॥ १३ ॥ इतिबालकमादायसामर्ग्यजुरुपाकृतैः । जलैःपवित्रौषधिभिरभिषिच्यद्विजोत्तमैः । १४ ॥ वाचयित्वास्वस्त्ययनंनंदगोपःसमाहितः । हुत्वाचाग्निंद्विजातिभ्यःप्रादादन्नंमहागुणम् ॥ १५ ॥ गावःसर्वगुणोपेतावासःस्रग्रुक्ममालिनीः । आत्मजाभ्युदयार्थायप्रादात्तेचान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रामन्त्रविदोयुक्तास्तैर्याःप्रोक्तास्तथाशिषः तानिष्फलाभविष्यन्तिनकदाचिदपिस्फुटम् ॥ १७ ॥ एकदाऽऽरोहमारूढंलालयंतीसुतंसती । गरिमाणंशिशोर्वोढुंनसेहेगिरिकूटवत् ॥ १८ ॥ भूमौनिधायतंगोपीविस्मिताभारपीडिता । महापुरुषमादध्यौजगतामासकर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्योनाम्नातृणा

तब शकट उनके छोटे और कोमल चरणों द्वारा आहत होकर गिर पड़ा, उसमें जोदही दूध आदि नाना रसों से परिपूर्ण कांसे के बर्तन रक्खे थे वह सब टूटगये और शकट के पहिये, धुरी और जुवां आदि सब छिन्न भिन्न होगये ॥ ७ ॥ यशोदा के घर आई हुई व्रजनारियें तथा नंद आदि गोप इस अद्भुत घटनाको देख व्याकुल होकर कहने लगे कि—यह शकट क्या आपही आप उलट गया ? गोप और गोपी गण अपनी बुद्धि द्वारा कुछभी स्थिर न कर सके ॥ ८ ॥ तब उनबालकों ने कि जो, उस समय वहां उपस्थित थे कहा कि—इस बालकने रोते २ दोनो पैर उछाल कर इस शकट को गिरा दिया है ॥ ९ ॥ परंतु गोप और गोपियों ने बालकों की बात पर विश्वास न किया वे इस बालकके असीम बलको नहीं जानते थे ॥ १० ॥ यशोदा ने ग्रहकी शंका कर रोते हुये पुत्रको गोदमें ले ब्राह्मणों द्वारा राक्षस नामक वेद मंत्र से उसका स्वस्तिवाचन कराय स्तन पान कराया ॥ ११ ॥ बलवान गोपों ने सब सामग्री समेत पहिले की समान उस गाड़ को स्थापित किया और ब्राह्मणों ने ग्रहादिकों की शांतिके अर्थ होमकर दही, अक्षत, कुश और जल द्वारा श्री कृष्णजी के कल्याणका विधान किया ॥ १२ ॥ हे राजन्! असूया (गुण में दोष प्रगट करना) झूंट, पाखण्ड, ईर्षा, हिंसा और अभिमान—यह सब जिन ब्राह्मणों के पवित्र अंतः करण का स्पर्श भी नहीं कर सकते उनका आशीर्वाद कभी मिथ्या नहीं होता ॥ १३ ॥ यह विचार कर नंद गोपने सावधान चित्तसे बालकको लाय ब्राह्मणों के साम, यजु और ऋक्के मंत्रों से संस्कार किये हुये पवित्र औषधिवाले जलसे निहलाया ॥ १४ ॥ तथा स्वस्तिवाचन और होमकराय पुत्रके कल्याणार्थ ब्राह्मणोंको, सब प्रकारके अन्न, सर्वगुण संयुक्त गायें, वस्त्र, माला और रत्नों के हारदान किये ॥ १५-१६ ॥ ब्राह्मण गण आशीर्वाद देनेलगे; वेद वेत्ता और योगी ब्राह्मण जोआशीर्वाद देते हैं वह कभी निष्फल नहीं होते ॥ १७ ॥ राजन्! एक दिनसती यशोदा पुत्रको गोदीमें लिये दूधपिलाती थीं इतने में उसको पुत्र पहाड़ की शिलाके समान बोझिल जानपड़ा; वह फिर पुत्रको गोदमें न रखसकीं ॥ १८ ॥ बहुत बोझके होने से पीड़ित विस्मितहो पुत्रको पृथ्वीपर रख भगवान्

वर्तःकंसभृत्यःप्रणोदितः । चक्रवातस्वरूपेणजहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषिरेणुभिः । ईरयन्सुमहाघोरशब्देनप्रदिशोदिशः ॥ २१ ॥ मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठंरजसातमसावृतम् । सुतंयशोदानापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवतीयतः॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चन त्मानंपरंचापिविमोहितः । तृणावर्तनिसृष्टाभिःशर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥ इतिखरपवनचक्रपांसुवर्षेसुतपदवीमबलाऽविलक्ष्यमाता । अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुविपतितामृतवत्सकायथागौः ॥ २४ ॥ रुदितमनुनिशम्य तत्रगोप्योभृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः । रुरुदुरनुपलभ्यनन्दसूनुंपवनउपारतपांसुवर्षवेगे ॥ २५ ॥ तृणावर्तःशांतरयोवात्यारूपधरोहरन् । कृष्णंनभोगतोगंतुंनाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥ तमश्मानंमन्यमानआत्मनोगुरुमत्तया । गलेगृहीतउत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः । अव्यक्तरावोन्यपतत्सहबालोव्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमंतरिक्षात्पतितं शिलायांविशीर्णसर्वावयवंकरालम् । पुरंयथारुद्रशरेणविद्धंस्त्रियोरुदत्योददृशुःसमेताः ॥२९॥ प्रादायमात्रे प्रतिहृत्यविस्मिताःकृष्णंचतस्योरसिलम्बमानम् । तंस्वस्तिमंतंपुरुषादनीतंविहायसामृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्चगोपाःकिलनन्दमुख्यालब्ध्वापुनःप्रापुरतीवमोदम् ॥ ३० ॥ अहोबतात्यद्भुतमेषरक्षसावालोनिवृत्तिंगमितोऽभ्यगात्पुनः । हिंस्रःस्वपापे

का ध्यान करनेलगीं ॥ १९ ॥ इसी बीचमें कंसके सेवक तृणावर्त्त नामक दैत्य कंसका पठाया हुआ आचक्र बाकके रूपसे पृथ्वीपर बैठेहुये बालकका हरणकर लेगया ॥ २० ॥ असुरने महा भयानक घोर शब्दसे दिशा विदिशाओं को शब्दाय मानकर धूलसे समस्त गोकुल को ढक सबकी दृष्टिका हरण करलिया ॥ २१ ॥ क्षण कालमेंही समस्त व्रज धूरिसे अंधकार मय होगया यशोदा ने जिस स्थानपर पुत्रको रक्खाथा वहांपर उसको न देखपाया ॥ २२ ॥ सबही उस प्रचंड वायुसे मोहित होगये तृणावर्त्त के फेंकेहुये कंकड़ोंसे व्याकुल होकर कोई मनुष्य अपनेको तथा दूसरेको नहीं देख पाता था ॥ २३ ॥ प्रचंड वायुके कंकडों की बर्षा होने परभी अबला यशोदा माता पुत्रका खोज करने लगी; परन्तु देख न पाकर, मरेहुये बछड़ेवाली गायके समान, पृथ्वीपर गिरकर अतिकारुण स्वरसे विलाप करनेलगी ॥ २४ ॥ अनंतर जब पवनकी रजोवृष्टिका बंदहुआ तब यशोदाका रोना सुनकर सब गोपियेंभी आंसू बहाती हुई उस स्थानपर आई परन्तु श्रीकृष्णजी को न देखकर अत्यंत संतप्त होकर रोनेलगीं ॥ २५ ॥ तृणावर्त्त ने बबूलेका रूप धारणकर श्रीकृष्णजी का हरण किया, क्रमसे उसका बेगशांतहोआया वह आकाश तक उठकर बहुत बोझसे दुःखितहो फिरआगे न चलसका ॥ २६ ॥ अत्यंत बोझके कारण बालक उसे पर्वतकी समान जान पड़नेलगा, बालकने उसका गला पकड़लिया अतएव वह उसको फेंकने मेंभी समर्थ न हुआ ॥ २७ ॥ कंठके पकड़लेने से वह चेष्टारहित होगया तथा उसकी दोनोआंखें बाहर निकलपड़ीं, गलाघुटने के कारण चिल्लाभी न सका तदनंतर वह जीवन रहित होकर ब्रजके ऊपर गिरपड़ा सब स्त्रियें एकत्रित होकर बिलाप करतीथीं उन्हों ने देखाकि भीषण राक्षस, महादेवजी के बाणसे मरेहुये त्रिपुरासुरकी समान शिला के ऊपर पड़ा है तथा उसके सब अंगचूर्ण होगये हैं ॥ २८-२९ ॥ कृष्णजी उसकी छाती पर लिपटे हुये थे, स्त्रियों ने उन्हें लेकर यशोदाको दिया। इस अद्भुत घटनाको देखकर सबही विस्मित होगये। बालकको उठाकर राक्षस आकाश तक लेगयाथा तौभी वह मृत्युके मुख से बचगया; चोट तक न आई । गोपीतथा नंदआदि गोप बालकको ऐसी अवस्था से फिर पायकर अत्यंत आनंदित होकर कहने लगे ॥ ३० ॥ अहोकैसा आश्चर्य्य है । कि राक्षस ने बालकको मारहीडालाथा तौभी

नबिहिंसितः खलः साधुः समत्वेनभयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किंनस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनंपूर्त्तेष्टदत्तमुतभूतसौहृदम्। यत्संपरेतः पुनरेवबालकोदिष्ट्यास्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाद्भुतानिबहुशोनन्दगोपोबृहद्वने। वसुदेववचोभूयोमानयामासविस्मितः ॥३३॥ एकदार्भकमादायस्वाङ्कमारोप्यभामिनी। प्रस्नुतंपाययामासस्तनंस्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्यजननीसातस्यारुचिरस्मितम्। मुखंलालयतीराजन्जृम्भतोददृशेइदम् ॥ ३५॥ खंरोदसीज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च। द्वीपान्नगांस्तद्दुहितृर्वनानिभूतानियानिस्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥ सावीक्ष्यविश्वंसहसाराजन्संजातवेपथुः। संमील्यमृगशावाक्षीनेत्रेआसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितोराजन्यदूनांसुमहातपाः। व्रजंजगामनन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वापरमप्रीतः प्रत्युत्थायकृताञ्जलिः। आनर्चाधोक्षजधियाप्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टंकृतातिथ्यंगिरासूनृतयामुनिम्। नन्दयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्यकरवामकिम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनंनृणांगृहिणांदीनचेतसाम्। निःश्रेयसायभगवन्कल्पतेनान्यथाक्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनंसाक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्। प्रणीतंभवतायेनपुमान्वेदपरावरम् ॥ ५ ॥ त्वंहिब्रह्मविदांश्रेष्ठः संस्का

बालक फिर जीवित होकर आगया। दुष्ट हिंसक मनुष्य अपने पापोंही से मरजाते हैं परन्तु महात्मा मनुष्य सब प्राणियों को समान भावसे देखते है इसी कारण आपत्तियों से बचते रहते हैं ॥ ३१॥ मैंने क्या तपस्या की है या विष्णुकी आराधना की है, या तालाब आदि बनवाये हैं, या दानकिया है, या प्राणियों को मित्रता के भावसे देखा है कि जिसके प्रभाव से बालक ने मरकर भी भाग्यबल से संबंधियों के निकट आय उनको आनंदित किया ॥ ३२ ॥ गोपराज नंद उस बृहत्बनमें बारंवार आश्चर्य्य युक्त घटनाऐं देखकर आश्चर्य्यान्वित हुये तथा बसुदेवके वाक्यको सत्य जानकर बारंबार स्मरण करनेलगे ॥ ३३ ॥ एकदिन नंदजीकी पत्नी यशोदाजी स्नेहयुक्त बालकको गोदमें ले स्तन पान कराती थीं। बालक के भली भांतिसे स्तनपान करनेपर माताने कृष्णजी के सुंदर हास्य से शोभित मुखका चुम्बन आदि किया। इतने में श्रीकृष्णजी के जंभाई लेने से यशोदा ने देखा कि ॥ ३४–३५ ॥ उनके मुखकेभीतर आकाश, अंतरिक्ष, ज्योतिर्मंडल, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, बायु, सागर, द्वीप, पर्वत, नदी, बन, तथा चर अचरआदि समस्तप्राणी विराजमानहैं॥३६॥हेराजन्! हठात् संसारको देखकर यशोदा कंपायमान होगई मृग नयनी यशोदा ने विस्मित होकर अपने दोनों नेत्र बंदकर लिये ॥ ३७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! एकदिन यदुवंशियोंके पुरोहित महातपस्वी गर्गमुनि बसुदेवजीके भेजेहुए नन्दजीके व्रजमें आये ॥ १ ॥ नन्दजी उनको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुये तथा खड़ेहोकर दोनों हाथजोड़ परमेश्वर रूप जान प्रणाम करके उनकी पूजाकी ॥ २ ॥ गोपराज नंदजीने ऋषिका सत्कारकर आनन्दपूर्वक आसनपर बिठलाय मधुर बाणी से कहा कि—हे ब्रह्मन्! दीन गृहस्थी मनुष्योंके कल्याण के निमित्तही महात्मा पुरुष अपने २ आश्रमोंसे बाहर निकलतेहैं। ३—४। जो इन्द्रियोंके अगोचर ज्ञानका साधन ज्योतिषशास्त्रहै उसी ज्योतिषशास्त्रको आपने बनायाहै मनुष्य इसही शास्त्रद्वारा कार्य्य कारणको जानसकताहै ॥ ५ ॥ आप बेद बेत्ताओंमेंभी श्रेष्ठ

रान्कर्तुमर्हसि । बालयोरनयोर्नृणांजन्मनाब्राह्मणोगुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्चभुविसर्वदा । सुतंमयासंस्कृतंतेमन्यतेदेवकीसुतम् ॥ ७ ॥ कंसः पापमतिः सख्यंतवचानकदुन्दुभेः । देवक्या अष्टमोगर्भोनस्त्रीभवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचितयञ्छ्रुत्वादेवक्यादारिकावचः । अपिहन्तागताशङ्कस्तर्हितन्नोऽनयोर्भवेत् ॥ ९ ॥ नन्द उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसिमामकैरपिगोव्रज । कुरुद्विजातिसंस्कारंस्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंसंप्रार्थितोविप्रः स्वचिकीर्षितमेवतत् । चकारनामकरणंगूढोरहसिबालयोः ॥११ ॥ गर्ग उवाच ॥ अयंहिरोहिणीपुत्रोरमयन्सुहृदोगुणैः । आख्यास्यतेराम इति बलाधिक्याद्बलंविदुः । यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशन्त्युत ॥ १२ ॥ आसन्वर्णास्त्रयोह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगंतनूः । शुक्लोरक्तस्तथापीतइदानींकृष्णतांगत. ॥ १३ ॥ प्रागयंवसुदेवस्यक्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनिसन्तिनामानिरूपाणिचसुतस्यते । गुणकर्मानुरूपाणितान्यहंवेदनोजनाः ।१५। एषवः श्रेयआधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः । अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुरानेनव्रजपतेसाधवोदस्युपीडिताः अराजकेरक्ष्यमाणाजिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥यएतस्मिन्महाभागाःप्रीतिंकुर्वन्तिमानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयंतेनारायणसमोगुणैः । श्रिया

हो अतएव इन दोनों बालकोंका संस्कार करना आपको उचितहै । ब्राह्मण जन्मसेही मनुष्योंका गुरूहै ॥ ६ ॥ गर्गजीने कहा कि—हेगोपराज ! यह बात समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्धहै कि मैं यदुवंशियों का अचार्यहूं। यदि तुम्हारे पुत्रोंका संस्कार करूंगा तो कंस अपने मनमें यही विचारेगा—कि यह देवकीके पुत्रहैं ॥ ७ ॥ तुममें और वसुदेवमें जो परस्पर मित्रताहै' दुष्टकंस उसको भलीभांति जानताहै तथा देवकीकी आठवीं संतानमें कन्या कभी होही नहींसकती देवकीकी कन्या महामाया का यह बचन रातदिन उसके मनमें स्मरण रहताहै, अतएव पीछेसे वह ऐसी अशंका करके बालकोंका नाश करेगा ऐसा होनेसे मेरा सब नाश होजायगा८—९ । नन्दजीने कहा कि हेब्रह्मन्! आप गोव्रजमें हम लोगोंसेभी गुप्तरहकर एकांतमें स्वस्ति बाचनकर द्विजाति योग्य समस्त संस्कार करिये, आपको कोई भी दूसरा या मेरा आत्मीय तक नहीं देखसकेगा, ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! गर्गजी तो स्वयंही उस कार्यके करनेको आएथे अब इससमय ऐसी प्रार्थना कियेजाने पर गुप्तभावसे एकांतमें बालकोंका उन्होंने नाम करण करके कहा कि— ॥ ११ ॥ यह रोहिणी का पुत्र अपने गुणों द्वारा सबको रमण करावेगा अतएव एकका नाम 'राम, होगा । यह बलवानभी होगा इसकारण बलके नामसे पुकारा जायगा और परस्परकी शिक्षा देकर यदुवंशियों में मेलकरावेगा, इसकारण इसको संकर्षण भी कहेंगे ॥ १२ ॥ तुम्हारा पुत्र युग २ में देह धारण करता रहताहै । पहिले इसका वर्ण तीनप्रकारका श्वेत, रक्त और पीत हुआथा इससमय कृष्णवर्ण धारण कियाहै ॥ १३ ॥ अतएव इसका एक नामतो कृष्ण होगा हेश्रीमन् ! तुम्हारा यह पुत्र पहिले किसीसमय में वसुदेवका पुत्र हुआथा अतएव इसका नाम 'वासुदेवभी होगा॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्र के गुण और कर्मके अनुसार बहुतसे नाम तथा रूपहैं मुझको सब ज्ञात नहींहै और मनुष्य भी नहीं जानते ॥ १५ ॥ हेगोप ! यह पुत्र तुम्हारा अति कल्याण करेगा, इसकी सहायता के द्वारा तुम सब आपत्तियोंसे छूट जाओगे १६ ॥ हेव्रजपते ! प्रथम साधुओंके ऊपर चोरोंनें अत्याचार कियाथा इससे अराजकता होगईथी ।उस अवस्थामेंभी इसने साधुओंकी रक्षाकीथी इससे उन्होंने फिर प्रबल होकर चोरोंको जीता ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इस महाभागसे प्रीति करेंगे उनको शत्रुगण एसने परास्त करसकगें कि-जैसे असुर विष्णुजीके भक्तोंको पराजय नहीं करसकते ॥ १८ ॥ हे

कीर्त्याऽनुभावेनगोपायस्वसमाहितः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥इत्यात्मानंसमादिश्यगर्गेचस्वगृहंगते । नन्दः प्रमुदितोमेनेआत्मानंपूर्णमाशिषाम् ॥२०॥कालेनव्रजताऽल्पेनगोकुले रामकेशवौ । जानुभ्यांसहपाणिभ्यांरिङ्गमाणौविजह्रतुः २१तावंघ्रियुग्ममनुकृष्णसरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरंव्रजकर्दमेषु । तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्यलोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्तिमात्रोः॥२२॥तन्मातरौनिजसुतौघृणयास्नुवन्त्यौ पंकांगरागरुचिरावुपगुह्यदोर्भ्याम् ।दत्त्वास्तनंप्रपिबतोःस्ममुखंनिरीक्ष्यमुग्धस्मिताल्पदशनंययतुःप्रमादम् ॥ २३ ॥ यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाःप्रगृहीतपुच्छैः । वत्सैरितस्ततउभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्यउज्झितगृहाजहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४ ॥ शृंग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौनिषेद्धुम् । गृह्याणिकर्तुमपियत्रनतज्जनन्यौ शेकात आपतरलंमनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥ कालेनाल्पेनराजर्षे रामःकृष्णश्चगोकुले । अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरंजसा ॥ ॥ २६ ॥ ततस्तुभगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः । सहरामोव्रजस्त्रीणां चिक्रीडेजनयन्मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्यगोप्योरुचिरं वीक्ष्यकौमारचापलम् । शृण्वन्त्याः किलतन्मातुरिति होचुःसमागताः ॥२८ ॥ वत्सान्मुंचन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयंस्वाद्व्यत्थदधिपयः कल्पितैःस्तेययोगैः । मर्कान्भोक्ष्यन्विभजतिसचेन्नात्तिभाण्डंभिनत्तिद्रव्यालाभे सगृहकुपितोयात्युपक्रोश्यतोकान् ॥ २९ ॥ हस्ताग्राह्येर-

नन्द ! तुम्हारे यह पुत्र गुणवान, लक्ष्मीवान, कीर्तिवान तथा प्रभावमें नारायणकी समान होंगे तुम सावधान होकर इनका पालन करो ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेमहाराज ! इसभांतिसे कहकर गर्गजी अपने स्थानको गये । नन्दजी आनन्दित होकर अपनेको सब मंगलोंसे परिपूर्ण जानने लगे ॥ २० ॥ इसप्रकार धीरे २ समय व्यतीत होनेलगा । राम और केशव गोकुलमें घुटनों और दोनों हाथोंसे घूम २ कर क्रीड़ा करनेलगे ॥ २१ ॥ जब वह दोनों पावोंको खींचकर शीघ्रतापूर्वक चलते तब पावोंकी पैंजनियां और कमरकी किंकिणी का अत्यन्त शब्द होता । वह उसी शब्दसे आनन्दित होते तथा आनन्दित होकर इधर उधर जानेवाले ब्रजबासियोंके पीछे २ जाते और फिर उन्हें न पहिचान अपनी माताके समीप लौटआते॥२२॥पंकरूपी केसरसे दोनों भाइयोंकीसुंदर देह अत्यन्त अधिकतर सुन्दर दिखातीथी । स्नेहसे उनकी दोनोंमाताओंके स्तनोंसे धार बहने लगतीथी वह दोनों अपने दोनों पुत्रोंको दोनों हाथोंसे उठाय स्तन पान करानेलगती और मोहित होकर भोरी मुसकान और छोटे २ दांतोंवाले मुखको देखकर आनन्दित होतीथीं ॥ २३ ॥ क्रमशःउनके बाल क्रीड़ा का समय आया । खेलते २ जब वह गौ के बछड़ोंकी पूछ पकड़ते और बछड़े उन दोनों को खींच २ कर इधरउधर दौड़ते तबसबब्रजनारियें उनको देख २ करहंसतीं औरआनन्द प्रकाश करतीथीं ॥ २४ ॥ जब दोनों मातायें खेलतेहुए अति चंचल दोनों बालकों को सींगवालेजानवर अग्नि, दाढोंवालेजानवर, सांप, जल, पक्षी और कांटेआदिसे रक्षाकरने में और घरके कामकाज करने में असमर्थ होजातीं तब उनका हृदय अत्यन्त दुःखितहोता; कि—क्याकरें—यह विचारकर कुछ भी स्थिर न करसकतीं ॥ २५ ॥ हेराजर्षे ! रामकृष्ण थोड़ेही दिनों में घुटनों के बलचल बलपूर्वक पैरों द्वारा चलने लगे ॥ २६ ॥ तदुपरांत रामकृष्णब्रजबालकों के साथ ब्रजनारियोंका आनंद देतेहुए क्रीड़ा करनेलगे ॥ २७ ॥ गोपियें श्रीकृष्णजीकी लड़कपनकी मनोहरचंचलता को देख२कर उनकी माताको सुना २कर कहनेलगीं कि—॥२८॥ तुम्हारे यहबालक—कभी असमय में बछड़ों को छोड़ देता है इस से यदि कोई चिल्लाता है तो हँसदेता है कभी चोरी के उपाय से सुंदर दही दूधको चुरा करके खाजाता है; आप खायकर बन्दरों कोभी खिला देते है । बानरों के न खाने पर वर्तनही फोड़ डालता है । कोई पदार्थ न पाने से घरकी

चयतिविधिर्पाठकोळूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनःशिक्यभाण्डेषुतद्वित्। ध्वान्तागारधृतमणिगणंस्वांगमर्थप्रदीपं कालेगोप्योयर्हिगृहकृत्येषुसुव्यग्रचित्ताः ३०॥ एवंधार्ष्ट्यान्युशतिकुरुतेमेहनादीनिवास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीकोयथास्ते। इत्थंस्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखीन ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥ एकदाक्रीडमानास्ते रामाद्यागोपदारकाः। कृष्णोमृदंभक्षितवानिति मात्रेन्यवेदयन् ॥३२॥ सागृहीत्वाकरे कृष्णमुपालभ्यहितैषिणी। यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३॥ कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवान्रहः। वदन्तितावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥३४॥ नाहंभक्षितवानम्ब सर्वेमिथ्याभिशंसिनः। यदिसत्यगिरस्तर्हि समक्षंपश्यमेमुखम् ॥ ३५ ॥ यद्येवंतर्हिव्यादेहीत्युक्तः सभगवान्हरिः। व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सातत्र ददृशेविश्वं जगत्स्थास्नुचखंदिशः। साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रंजलंतेजो नभस्वान्वियदेवच ॥ वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनोमात्रागुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥ सूनोस्तनौवीक्ष्यविदारितास्ये व्रजंसहात्मानमवापशंकाम् ॥ ३९॥ किंस्वप्नएतदुत

स्वामिनीपर कुपितहोकर उसके लड़कोंहीको रुलादेते हैं॥२९॥यदि हाथ फैलाने परभी कोई बस्तुनहीं मिलती तो पाटा या ओखली आदि पर चढ़कर उसका यत्नकरता है। छींकों पर रक्खे हुएबर्तनों में जो दही दूधरहता है, उसके लेने की इच्छाकरके उनसबबर्तनो में छेद करदेता है। तुम्हारा लड़का छिद्रकरने में अत्यन्तही चतुर है।एकतो इसका अंग वैसेही प्रकाशित है-फिर उस परमणिमालाभी पहिनेंहुए है; जबसब गोपियेंघरके काम में लगी होती हैं-तब अंधेरे घर में जायकर अपने अंग के प्रकाश से अंधेरेको उजालाकर अपने अभिप्रायको पूर्णकरता है ॥ ३० ॥ इस भांतिनाना प्रकारकी चंचलताकरता है। कभी लीपे पोते घर में मलमूत्र त्यागकरदेता है कभी चोरीके उपाय से द्रव्यादिका हरण करता है अबतो तुम्हारे सामने निरासाधूहीसा होगया है। ब्रज नारियों ने श्रीकृष्णजी के भययुक्त नेत्रों से शोभायमान श्री मुखकी ओर देखकर उनके सबगुणोंका बर्णनकिया, तब यशोदा यह सुनकर हंसने लगीं वह श्रीकृष्णजी को न धमका सकीं ॥ ३१ ॥ एक दिनराम और सब गोपबालकों ने खेलते २ आयकर यशोदा मातासे कहाकि-माता! कृष्णने मिट्टीखाई है ॥ ३२ ॥ हितचाहने वाली यशोदा ने बालक के दोनो हाथ पकड़ भयसे चकित हुये नेत्रवाले पुत्र का तिरस्कार करके कहाकि ॥ ३३ ॥ रे दुर्विनीत! एकांत में मिट्टिक्योंखाई है यह सब ब्रजबालक तथा तेराभाई रामभीतो यही कहता है ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी ने कहा कि—हे माता! मैंने मिट्टी नहीं खाई; यह सबही झूठ कहते हैं। सबके सामने मेरे मुखको देखो–इनकी बातें झूठी हैं किनहीं ॥ ३५ ॥ यशोदा ने कहा कि मुख खोल। हे राजन्!भगवान् श्रीकृष्णजी ने क्रीड़ाके छलसे मनुष्य शिशुरूपधारण कियाथा परन्तु उनका ऐश्वर्य नष्टनहींहुआथा। श्रीकृष्णजी ने यशोदाजीकी बातसुनकर अपना मुख खोलदिया ॥ ३६ ॥ यशोदाजी ने मुख के भीतर दृष्टि डालकर देखा कि-भीतरे चर, अचर; अंतरिक्ष,दिशाएं,पहाड़,समुद्र, और द्वीपों समेत पृथ्वीके लोक; बायु;प्रकाशित अग्नि, चन्द्रमा और नक्षत्रों समेत ज्योतिश्चक्र, जल, तेज, आकाश, स्वर्ग,इंद्रियों के अधिष्ठातृ देवता,इंद्रियवर्ग, मन, शब्दादि बिषय तथा तीनों गुण इत्यादि सबही विश्व बिराजमान है ॥ ३७। ३८ ॥ पुत्रके फैलायेहुए मुख के बीचमें जीव, काल, स्वभाव, कर्म, और कर्म से उत्पन्नहुए संस्कार द्वारा चराचर शरीर का भेद यहसब देखा तथा एक ओर ब्रज औरअपने कोभी देखकर यशोदाअत्यंत

दैवमाया किंवामदीयोवतबुद्धिमोहः । अथोअमुष्यैवममार्भकस्ययः कश्चनौत्पत्तिकआत्मयोगः ॥ ४० ॥ अथोयथावन्नवितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरंजसा। यदाश्रयंयेनयतःप्रतीयते सुदुर्विभाव्यंप्रणताऽस्मितत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहंममासौपतिरेषमेसुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपासती । गोप्यश्चगोपाःसहगोधनाश्चमे यन्मायेत्थंकुमतिःसमेगतिः ॥ ४२ ॥ इत्थंविदिततत्त्वायां गोपिकायांसईश्वरः । वैष्णवींव्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयींविभुः ॥ ४३ ॥ सद्योनष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् । प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथापुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्याचोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्चसात्वतैः । उपगीयमानमाहात्म्यंहरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ नन्दः किमकरोद्ब्रह्मञ्छ्रेय एवंमहोदयम् ॥ यशोदाचमहाभागा पपौयस्याः स्तनंहरिः ॥ ४६ ॥ पितरौनान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् । गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुकउवाच । द्रोणोवसूनांप्रवरो धरयासहभार्यया करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाचह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौमहादेवे भुविविश्वेश्वरेहरौ । भक्तिःस्यात्परमालोके ययाऽञ्जोदुर्गतिंतरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः सभगवान्व्रजे द्रोणोमहायशाः । जज्ञेनन्दइतिख्यातो यशोदासाधराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततोभक्तिर्भगवति पुत्रीभूतेजनार्दने । दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

भयभीत होगई ॥ ३९ ॥ वह कहने लगी कियहक्या स्वप्न है या देवीकी माया ? या मेरी बुद्धि का भ्रम ! अथवा मेरे पुत्रका कोई स्वाभाविक ऐश्वर्य है ? यह यथार्थ में मेरे पुत्रका ऐश्वर्यही है। अतएव मन, बचन, और कायद्वारा जिसपदार्थ के स्वरूप का भलीभांति निर्णय नहीं होसकता; जगत् जिस पदका आश्रय किये है-तथा जिस पदसे यह प्रकाशितहोरहा है— मैं उसीपदको नमस्कार करतीहूं ॥ ४० । ४१ ॥ मैं यशोदा नामक गोपीहूं और नंद गोप मेरे पति हैं औरयहकृष्ण मेरापुत्र है; मैं ब्रजेश्वरकी समस्त सम्पत्ति की स्वामिनीहूं ;यहसब गोप,गोपी और गोधन मेराही है यहसब कुमति जिसकी माया से उत्पन्नहोती है वेही मेरी रक्षाकरे ॥ ४२॥ यशोदाजीके इसभांति तत्व प्राप्तहोने पर श्रीकृष्णजी ने उनपर अपनी पुत्रस्नेह कारिणी वैष्णवी माया का प्रयोग किया ॥ ४३ ॥ कि जिससे यशोदाजी का सबआत्मज्ञान नष्टहोगया । वह कृष्णजी को गोद में ले हृदय में लगायपहिले की समानस्नेह से आर्द्र चित्तहोगई ॥ ४४ ॥ वेद, उपनिषद, सांख्य, योगशास्त्रतथा भक्तगण जिन भगवान् की महिमाका गानकरते हैं यशोदाजी माया से मोहितहो उन्हीं को अपना पुत्र जानती हैं ॥ ४५ ॥ राजापरीक्षित ने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! नंद और यशोदा ने क्या ऐसा श्रेष्ठ काम कियाथा कि जिससे नंदरायजी ने बाललीला का सुख देखा और यशोदा ने अपनेस्तनों का पान कराया ॥ ४६ ॥ लोकों की पापनाशक भगवत्लीला कि जिसका गान कबिलोग अबतक भी करते हैं उस लीलाका सुख बसुदेव और देवकी को कि जिन के यहां उत्पन्नहुए न मिला और नंद यशोदा को किसकारण से वह सुख प्राप्तहुआ ॥ ४७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—वसुगणों में प्रधान द्रोणनामकवसुने धरानाम्नी स्त्री समेत ब्रह्माकी आज्ञा पालन करनेपर तत्परहो उनसे कहा था कि- ॥ ४८ ॥ मेरे पृथ्वी पर जन्मग्रहण करनेपर उन हरि भगवान् में मेरी परमभक्ति उत्पन्न होवे कि जिनकी भक्तिद्वारा मनुष्य दुर्गति से छूटजाता है ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी ने उनकी इसबातको स्वीकार किया। उन्हीं द्रोण ने ब्रजमें महायशानन्द के नाम से और धरा ने यशोदाके नाम से जन्म ग्रहणकियाथा ॥ ५० ॥ हे भरतनन्दन ! इसही कारण समस्त गोप गोपियों से अधिक इन नन्द यशोदा कोही पुत्ररूपी भगवान् में अत्यन्तप्रीति हुईथी ॥ ५१ ॥ विभुभगवान ने ब्रह्मा के बाक्य

कृष्णोब्रह्मणआदेशं सत्यंकर्तुंव्रजेविभुः । सहरामोवसंश्चक्रे तेषांप्रीतिंस्वलीलया५२
इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ एकदागृहदासीषुयशोदानन्दगेहिनी । कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थस्वयंदधि ॥ १ ॥ यानियानीहगीतानितद्बालचरितानिच । दधिनिर्मन्थने कालेस्मरन्तीतान्यगायत ॥ २॥ क्षौमंवासः पृथुकटितटेबिभ्रतीसूत्रनद्धंपुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगंजातकम्पंचसुभ्रूः । रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौकुण्डलेचास्विन्नंवक्त्रं कबरविगलन्मालतीनिर्ममन्थ ॥ ३ ॥ तांस्तन्यकामआसाद्यमथ्नन्तींजननींहरिः । गृहीत्वादधिमन्थानंन्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥ तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनंस्नेहस्नुतंसस्मितमीक्षतीमुखम् ।अतृप्तमुत्सृज्यजवेनसाययावुत्सिच्यमानेपयसित्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपस्फुरितारुणाधरंसंदश्यदद्भिर्दधिमन्थभाजनम् । भित्त्वामृषाश्रुर्दृषदश्मनारहोजघासहैयङ्गवमन्तरंगतः ॥ ६ ॥ उत्तार्यगोपीसुशृतंपयः पुनः प्रविश्यसंदृश्यचदध्यमत्रकम् । भग्नंविलोक्य स्वसुतस्यकर्मतज्जहासतंचापिनतत्रपश्यती ॥ ७॥ उलूखलाङ्घ्रेरुपरिव्यवस्थितंमर्कायकामंददतंशिचिस्थितम् । हैयङ्गवंचौर्यविशङ्कितेक्षणंनिरीक्ष्यपश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥ तामात्तयष्टिंप्रस

सफल करने के निमित्तही राम समेत व्रज में वास कर अपनी लीला द्वारा उन दोनों जनों को आनन्द उत्पन्न कराया था ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम०सरलाभाषाटीकायांअष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! एकदिन घरकी सब दासियें काममें लगी हुई थीं तबनंद पत्नी यशोदाने स्वयंही दही मथनेका आरंभ किया ॥ १ ॥ मैंने जितने श्रीकृष्णजी के बालचरित्रों को कहा है उन सबका स्मरण कर २ के यशोदा दधि मंथन करती हुई गाने लगीं ॥ २ ॥ सुंदर पहिने हुये रेशमी वस्त्र के अंचल को कमर में लपेट लिया, उनके दोनों स्तन हिल रहे थे और पुत्रके स्नेहसे उनमेंसे दूध टपक रहा था । रस्सीके खींचनेके कारण श्रमित हुई दोनो बाहों के कंकण तथा कानो के दोनो कुंडल झूल रहे थे, मुखं पर पसीना आरहा था और जूडे से चमेली के फूल गिर रहे थे ॥ ३ ॥ यशोदा जी इसी प्रकार से दही मथती थीं–कि इतने ही में श्रीकृष्ण जी दूध पीने की इच्छासे उनके निकट आये और मथानी को पकड़ उनको दही मंथनसे उन्हो ने निवारण किया । इससे उनको अत्यंत आनंद हुआ ॥ ४ ॥ यशोदा जी श्रीकृष्णजी को गोद में ले उनके हंसते हुये मुख को देख देख कर स्नेह से दूध टपकते हुये स्तनों का पान कराने लगीं । इतने में चूल्हे के ऊपर जो दूध रक्खा था वह बहुत आंच लगने के कारण उफन पडा । यह देख यशोदा जी, श्रीकृष्णजी को छोड़ शीघ्रता पूर्वक वहां गई । श्रीकृष्णजी स्तन पान करके उस समय भी तृप्त नहीं हुये थे अतएव वह क्रोधित हुये और दांतों द्वारा फड़कते हुये रक्तवर्ण के ओठों को पीस पीस कर कपट से रोते रोते पत्थर के बाट द्वारा दही का बर्तन फोड़कर फेंक दिया तथा घर के भीतर जाय एकांत में बैठ मक्खन खाना आरम्भ किया ॥ ६ ॥ यशोदा जी ने दूधको चूल्हे पर से उतार कर फिर दधि मथनेके स्थान पर आय कर देखा कि दहीका बर्तन टूटा पड़ा है तथा कृष्णजीकोभी उस स्थान पर न देख पाया तब यह सब अपनेही पुत्रकी करतूति जान कर हंसने लगीं ॥ ७ ॥ परंतु उस ही काल घर में दृष्टि डाल कर देखा कि–कृष्णजी ओखली उलटाय उस के ऊपर खड़े हो छींके पर रक्खा हुआ मक्खन बंदरों को खिलारहे हैं चोरी का काम कर रहे थे इस लिये उनकी आंखे चकित हो रही थीं । यशोदा जी यह देख दबे

मीक्ष्यसत्वरस्ततोऽवरुह्यापससारभीतवत् । गोप्यन्वधावन्नयमापयोगिनांक्षमंप्रवेष्टुंतपसेरितंमनः ॥ ९ ॥ अन्वञ्चमानाजननीबृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा । जवेनविस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसंतंप्ररुदन्तमक्षिणीकर्षन्तमञ्जन्मषिणिस्वपाणिना। उद्वीक्षमाणंभयविह्वलेक्षणं हस्तेगृहीत्वाभिषयन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वायष्टिंसुतंभीतंविज्ञायार्भकवत्सला । इयेषकिलतंबद्धुंदाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ नचान्तर्नबहिर्यस्यनपूर्वंनापिचापरम् । पूर्वापरंबहिश्चान्तर्जगतोयोजगच्चयः ॥ १३ ॥ तंमत्वाऽऽत्मजमव्यक्तंमर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् । गोपिकोलूखलेदाम्नाबबन्धप्राकृतंयथा ॥ १४ ॥ तद्दामबद्ध्यमानस्यस्वार्भकस्य कृतागसः । द्व्यंगुलोनमभूत्तेनसंदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥ यदासीत्तदपिन्यूनं तेनान्यदपि संदधे । तदपिद्व्यंगुलंन्यूनं यद्यदादत्तबन्धनम् ॥ १६ ॥ एवंस्वगेहदामानि यशोदासंदधत्यपि । गोपीनांसुस्मयन्तीनां स्मयन्तीविस्मिताऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुःस्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः। दृष्ट्वापरिश्रमंकृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबन्धनं ॥ १८ ॥ एवंसंदर्शिताह्यंग हरिणाभृत्यवश्यता। स्ववशेनापिकृष्णेन यस्येदंसेश्वरंवशे ॥ १९ ॥ नेमंविरिंचोनभवोन श्रीरप्यङ्गसंश्रया। प्रसादंलेभिरे

घावोंसे पुत्रके पीछे जाखडी हुई ॥ ८ ॥ कृष्णजी ने उन्हें पीछे खड़ा जान पीछे फिर कर देखा कि माता हाथ में लकडी लिये खडी है । यह देखते ही श्रीकृष्णजी भयभीत हो ओखली से कूदकर भागने लगे । हे राजन् ! तप से तदाकार हुआ प्रवेश करने के योग्य योगियों का मनभी जिनको नहीं पहुंचसकता ॥ ९ ॥ सुमध्यमाय यशोदा उन्हींके पीछे २ दौड़ने लगी हिलते हुए बड़े २ नितम्बोंके बोझसे उनकी चाल रुकने लगी शीघ्रतापूर्वक भागनेसे बंधेहुए केशोंके गुथेहुए फूल गिरने लगे वह श्रीकृष्णजीके पीछे २ दौड़नेलगीं । यशोदाजीने कुछ दूर ऐसे दौड़कर कृष्णजीको पकड़ लिया ॥ १० ॥ उन्हों ने देखा कि अपराध करने से कृष्ण रोरहे हैं वह अपने दोनों हाथों से आंखोंको मलरहेहैं इससे आंखोंके दोनोंओर काजल फैलरहाहै और दोनोंनेत्र भयसे व्याकुल होरहे हैं । अतएव यशोदाजीने दोनों हाथ पकड़ भय दिखाय कृष्णजीके धमकाना आरम्भ किया ॥ ११ ॥ पुत्रको भयभीत होतादेख पुत्रपर स्नेह रखनेवाली यशोदाजी हाथकी छड़ीडाल उनके बांधनेपर उद्यत हुई वह श्रीकृष्णजीके पराक्रमको नहीं जानतीथीं ॥ १२ ॥ जिनके बाहर, भीतर, पूर्व और पर (आदि, अन्तमें कोई नहींहै जो जगतके आदि अन्त और भीतर बाहर रहते हैं तथा जो जगन्मयहैं उन अव्यक्त अधोक्षज मनुष्य रूपधारी भगवानको पुत्र बिचारकर साधारण पुत्रकी समान गोपियोंने रस्सी द्वारा ऊखलसे बांधा ॥ १३—१४ । यशोदाजी अपने अपराधी पुत्रको जिसरस्सी द्वारा बांधतीथीं वही रस्सी दोअंगुल कम होजातीथी यह देखकर उन्होंने एक रस्सीमें दूसरीरस्सी बांधा ॥ १५ ॥ वह भी जब उतनीही छोटीहुई तब उसमें और भी एक रस्सी बांधदी वहभी दो अंगुल छोटी होगई अतएव उससे भी उनका बंधन न होसका ॥ १६ ॥ इसप्रकारसे अपने तथा गोपियोंके घरकी सब रस्सियों को भी मिलाकर जब यशोदाजी कृष्णजीको न बांधसकीं तब अत्यन्त विस्मित और लज्जित होगई और गोपियोंकोभी अत्यन्त विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ बांधनेके श्रमके कारण यशोदाजीके समस्त शरीरसे पसीना निकलआया । जूड़ेसे फूलोंकी माला खिसक पड़ी श्रीकृष्णजी अपनी माता का परिश्रम देख कृपाकर स्वयंही बँधगए ॥ १८ ॥ हेमहाराज ! भगवानने कि—जिनके बशमें यह सब जगत् लोकपाल और देवताओं समेतहै इसभांतिसे अपनी भक्त बश्यता स्वतन्त्र होनेपरभी दिखाई ॥ १९ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णजीसे जो

गोपीयत्तत्प्रापविमुक्तिदात् ॥ २० ॥ नायंसुखापोभगवान्देहिनां गोपिकासुतः । ज्ञानिनांचात्मभूतानां यथाभक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तुगृहकृत्येषु व्यग्रायांमातरि प्रभुः । अद्राक्षीदर्जुनौपूर्वं गुह्यकौधनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरानारदशापेन वृक्षतांप्रापितौमदात् ॥ नलकूवरमणिग्रीवाविति ख्यातौश्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजोवाच । कथ्यतांभगवन्नेतत्तयोः शापस्यकारणम् । यत्तद्विगर्हितं कर्मयेनवादेवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौभूत्वासुदृप्तौधनदात्मजौ । कैलासोपवनेरम्येमन्दाकिन्यांमदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणींमादरांपीत्वामदाघूर्णितलोचनौ । स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुःपुष्पितेवने ॥ ३ ॥ अन्तःप्रविश्यगङ्गायामम्भोजवनराजिनि । चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविवकरेणुभिः ॥ ४ ॥ यदृच्छयाचदेवर्षिर्भगवांस्तत्रकौरव । अपश्यन्नारदोदेवौक्षीबाणौसमबुध्यत ॥ ५ ॥ तंदृष्ट्वाव्रीडितादेव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः । वासांसिपर्यधुः शीघ्रंविवस्त्रौनैवगुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौदृष्ट्वामदिरामत्तौश्रीमदान्धौसुरात्मजौ। तयोरनुग्रहार्थायशापंदास्यन्निदंजगौ ॥७॥ नारदउवाच ॥ नह्यन्योजुषतोजोष्यान्बुद्धिभ्रंशोरजोगुणः । श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्रस्त्रीद्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यन्तेपशवोयत्रनिर्दयैरजितात्मभिः । मन्यमानैरिमंदेहमजरामृत्युनश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यन्तेकृमिविड्भस्मसंज्ञितम् । भूतध्रुक्त

बर यशोदाजीने पाया ब्रह्मा, महादेव तथा विष्णुजी के अंगकी आश्रयवाली लक्ष्मीजी भी उसको नहीं प्राप्त करसकतीं ॥ २० ॥ भक्तगण भगवान् श्रीकृष्णजीको जैसे सहज में प्राप्त करसकते हैं आत्मवेत्ता ज्ञानीगण वैसा सहज में नहीं पासकते ॥ २१ ॥ माताको घरके काम में लगजानेपर यमलार्जुन नामक दोवृक्षोंपर श्रीकृष्णजी की दृष्टिपड़ी यह दोनों वृक्ष प्रथम जन्ममें कुबेरके दो पुत्रथे उनका नाम नलकूबर और मणिग्रीवथा वे अत्यन्त लक्ष्मीवानथे। गर्वके मदसे अंधे होरहेथे इसकारण नारदजीके शाप देनेपर वृक्ष हुए ॥ २३ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजा परीक्षित बोले कि–हेब्रह्मन् ! उन दोनोंजनों को नारदजीने क्यों शाप दियाथा उन्होंने कौनसा बुराकार्य किया सो कहिये ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! कुबेर के वे दोनों पुत्र अत्यन्त गर्वित और मतवालेथे वे शिवजीके अनुचरहो कैलाश पर्वतके रमणीय फूलेहुये उपबनमें तथा मंदाकिनीके किनारे फिर रहेथे ॥२॥ मदिरापानसे उनके नेत्र सदैवही घूर्णित रहतेथे। स्त्रियोंको साथलिये गान करते २ वह दोनों यक्षराजके पुत्र सब स्थानोंमें घूमा करतेथे ॥ ३ ॥ एक दिन वे देवगंगाके कमलों युक्त जलमें पैठ जैसे हाथी हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करताहै तैसेही स्त्रियों के साथ बिहार करने लगे ॥ ४ ॥ हे कौरव ! उसही समय में भगवान् देवर्षि नारद उस स्थान पर आये। उन्हें देखकर नारदजी ने बिचारा कि यह मत्त है ॥ ५ ॥ क्योंकि बस्त्र रहित गन्धर्व नारियों ने उन्हें देखकर शापके भयसे तत्कालही वस्त्र पहिन लिये; परन्तु उनदोनों गंधर्वों ने नंगे रहने परभी वस्त्र नहीं पहिने ॥ ६ ॥ देवर्षि नारदजी ने देखाकि कुबेर के दोनोंपुत्र मदिरा से मतवाले होउठे हैं और उनकी आंखें ऐश्वर्य के मदसे अंधी होरही हैं। यह देखकृपा करने के निमित्त शाप देनेकी इच्छा करके कहाकि ॥ ७ ॥ ऐश्वर्य के मदके कारण स्त्री, जुआ और मद्य यह तीन ही हैं; इनही के कारण मनुष्यकी बुद्धि ऐसीभ्रष्ट होजाती है। क्या पाण्डित्य क्या रजोगुण के कार्य हास्यादि किसी सेभी इस भांति बुद्धि भ्रष्टनहीं होती। ऐश्वर्य के गर्वके वशीभूत होकरही अजितेन्द्रिय, निष्ठुर, मनुष्य इस नाशवान देहको अजर और अमर बिचारकर पशुओं की हत्या करतेरहते हैं ॥ ८। ९ ॥ यह नाशवान देह नरदेव और भूदेव आदि नामोंसे विख्यात होकरभी अंत में

त्कृतेस्वार्थंकिंवेदनिरयोयतः ॥ १० ॥ देहःकिमन्नदातुःस्वंनिषेक्तुर्मातुरेवच । मातुः पितुर्वाबलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपिवा ॥ ११ ॥ एवंसाधारणंदेहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् । कोविद्वानात्मसात्कृत्वाहन्तिजन्तूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदान्धस्यदारिद्र्यंपरमाञ्जनम् । आत्मौपम्येनभूतानिदरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कण्टकविद्धाङ्गोजन्तोर्नेच्छतितांव्यथाम् । जीवसाम्यंगतोलिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ।१४। दरिद्रोनिरहंस्तम्भो मुक्तःसर्वमदैरिह । कृच्छ्रंयदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धितस्यपरंतपः ॥ १५ ॥ नित्यंक्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः । इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसाऽपि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैवयुज्यन्ते साधवः समदर्शिनः । सद्भिःक्षिणोति तंतर्षं ततआराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनांसमचित्तानांमुकुन्दचरणैषिणाम् । उपेक्ष्यैःकिं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहंमत्तयोर्माध्व्या वारुण्याश्रीमदान्धयोः । तमोमदंहरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥ यदिमौलोकपालस्य पुत्रौभूत्वातमःप्लुतौ । नविवाससमात्मानं विजानीतःसुदुर्मदौ ॥ २० ॥ अतोऽर्हतःस्थावरतां स्यातां नैवंयथापुनः । स्मृतिःस्यान्मत्प्रसादेन तत्रापिमदनुग्रहात् ।२१ वासुदेवस्यसान्निध्यंलब्ध्वादिव्यशरच्छते वृत्तेस्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्तीभविष्य

कीड़ा, विष्ठा व भस्मके नाम से प्राप्त होती है तब फिर इस देह के निमित्त जो मनुष्य जावोंकी हिंसा करता है वह क्या अपनें अभिप्राय को जानता है ॥ १० ॥ देह क्या अन्नदाताकी या पिता की या माताकी या मातामह की या मोल लेनेवाले की या बलवान मनुष्य की या अग्नि की या कुत्ते की किसकी है यह भली भांति से नहीं जाना जासकता ॥ ११ ॥ जब इस भांति संदेह है तब यह साधारण देह अव्यक्त से उत्पन्न हुई है और अव्यक्तही में लीनहोजायगी फिर मूर्ख के अतिरिक्त और कौन मनुष्य देहका आत्म विचारकर.प्राणियों की हत्या करेगा ॥ १२ ॥ ऐश्वर्य के मदसे जिसकी आंखें अंधी होरही हैं दरिद्रताही उस अंधेपनको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ अंजन है दरिद्री मनुष्य अपने साथ समानता करके सबकोही श्रेष्ठ जानता है ॥ १३ ॥ जिसके शरीर में कांटा लगा है वह दूसरे के मुख मलीनादि चिन्हों को देखकर जानसकता है कि सबकोही यह दुःख समान है फिर वह दूसरे मनुष्य के कांटा लगने की इच्छा नहीं करता परन्तु जिसके शरीरमें कांटा नहीलगा वह दूसरे का दुःख भी नहीं जानसकता अतएव दूसरे का उपकार भी नहीं करसकता ॥ १४ ॥ जो दरिद्री मनुष्य है उसका 'मैं' और 'मेरा' इस भांति का गर्व दूर होजाता है वह इस लोकमें सब गर्वों से छूटजाता है भाग्यबश वह जो कष्ट भोगता है वही उसकी परम तपस्या है ॥ १५ ॥ अन्न हीन दरिद्री मनुष्य की देह भूख से प्रतिदिन क्षीण होती जाती है सब इन्द्रियें निरस होजाती है इस से लोभ और तृष्णा भी शांति होजाती है ॥१६॥ समदर्शी महात्मा मनुष्यों का समागम भी दरिद्री हीको होता है दरिद्री मनुष्य साधुओं की सत्सङ्गति करके तृष्णाको छोड शीघ्रही शुद्ध होजाता है । ॥ १७ ॥ समदर्शी, नाराणय के चरणोंक आश्रयी, महात्मागण धन से गर्वित कुसंगतिबाले असाधू को लेकर क्या करे क्यों कि वह महात्मा तो उनकी उपेक्षाही करने योग्य मानते हैं ॥ १८ ॥ अतएव मैं इन मदमत्त, ऐश्वर्य के मद से अंध, स्त्री लंपट, अजितेन्द्रिय दोनों गंधर्वों के अज्ञान से उत्पन्न हुए अहंकारका नाश करूंगा ॥ १९ ॥ यह लोकपाल कुबेर के पुत्र हैं परन्तु अज्ञानसे इतने ढकेहुए हैं तथा इनका घमंड इतना भारी होगया ह कि अपनें शरीरका नग्नहुआ भी नहीं विचारते ॥ २० ॥ अतएव यह अचर होने योग्य है अचर होनेंपरभी इनकी स्मरणशक्ति मेरी कृपा से नष्ट नहोगी स्मृति बनी रहने से इनको भय रहेगा फिर ऐसा कर्म कभी नकरेंगे ॥ २१ ॥ देवताओं के सौवर्ष बीतने पर भगवान श्रीकृष्णजी के दर्शन पाय फिर स्वर्गमें आकर भगवद्भक्ति

तः ॥२२॥ श्रीशुक उवाच । एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् । नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः । जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ । तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥२५॥ इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ । आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥ बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ । निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रबालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः । कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः । व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः । त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥ त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी । त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः । कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे । आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥ यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः । तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥३४॥ स भवान्सर्वलोकस्य

को प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! नारदजी यह कहकर बैकुण्ठधाम को चलेगए और नलकूबर तथा मणिग्रीव दोनों यमलार्जुन हुए ॥२३॥ हरिभगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजी के बचनोंके सत्य करनेके निमित्त जिसस्थानपर वे दोनों यमलार्जुनथे वहां धीरे २ आये ॥२४॥ नारदजी मेरे प्यारेहैं और वे दोनों यमलार्जुन भी यही हैं अतएव ऋषिने जो कुछ कहाहै उसको पूरा करूंगा ॥ २५ ॥ यह बिचारकर श्रीकृष्णजी उन दोनों यमलार्जुनके बीचमें घुसे । उनके प्रवेश करतेही ऊखल उलट पड़ा और उनकी कमर में जो रस्सी बँधीथी उससे वह उनके पीछे २ घिसटने लगा । कृष्णजीने बलपूर्वक उस उखलको खींचकर उन दोनों वृक्षोंके बीचमें लगाय उनको जड़से उखाड़ डाला श्रीकृष्णजीके अत्यन्त पराक्रम से उन वृक्षोंकी डालियें पत्ते और टहनियें अत्यन्त कांपने लगीं उसीकाल बड़े भयानक शब्दसे वह दोनों वृक्ष गिरपड़े ॥२६-२७॥ हेमहाराज! उन दोनों वृक्षोंसे अग्नि की समान दो सिद्ध पुरुष बाहर निकल कर बड़ाभारी कांति द्वारा दिशाओंको प्रकाशित करनेलगे तथा समीपआय मस्तक द्वारा भगवान् श्रीकृष्णजीको प्रणामकर हाथ जोड़ बिनय भाव सहित नम्र बचनोंसे कहनेलगे, ॥ २८ ॥ हेकृष्ण ! हेमहायोगिन् ! आप बालक नहींहो आदि श्रेष्ठ पुरुष परब्रह्महो । यह व्यक्त और अव्यक्त संसार आप का स्वरूपहै, ॥ २९ ॥ एक मात्र आपही सब प्राणियोंकी देह प्राण, आत्मा और इन्द्रियोंके ईश्वरहो । आप अव्यय ईश्वर बिष्णु भगवानहो इसकारण आपही काल हो ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! आपही महान् अर्थात् कार्य; आपही सत्त्व रज, और तमोमयी सूक्ष्म प्रकृतिहो । हे भगवन् ! आपही पुरुष आपही सबके अध्यक्षहो इसकारण आपही सर्व स्वरूपहो ॥ ३१ ॥ हे विभो ! आप द्रष्टाहो इसही कारण दृश्यत्व रूपसे वर्तमान प्राकृति बिकार रूप इन्द्रियादि आपका ग्रहण नहीं करसकतीं सब जीवोंकी उत्पत्तिके पहिलेसे आप बिराजमानहैं अतएव देहादिसे ढके हुए कौन प्राणी आपको जान सकतेहैं । ॥ ३२ ॥ आप भगवान, बासुदेव, बिधाता, परब्रह्महो । आपको हम प्रणाम करतेहैं ॥ ३३ ॥ जो सब गुण आपसे प्रकाशित हुएहैं वेही सब गुण आपको ढकेहुयेहैं । आप को नमस्कारहै; आपके शरीर तो नहींहै परंतु जो अतुल ऐश्वर्य तथा पराक्रम प्राणियोंके पक्षमें असम्भवहै उन सब पराक्रमों को देखकर प्राणियोंमें आपके अवतारका होना जाना जाताहै ॥ ३४ ॥ सबके ईश्वरआप इससमय

भवायविभवायच । अवतीर्णौऽशभागेनसाम्प्रतंपतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमःपरम कल्याण नमः परममङ्गल । वासुदेवायशान्तायायदूनांपतयेनमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहिनौभूमंस्तवानुचरकिंकरौ । दर्शनंनौभगवतऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वाणीगुणानुकथनेश्रवणौकथायांहस्तौचकर्मसुमनस्तवपादयोर्नः । स्मृत्यांशिरस्तव निवासजगत्प्रणामेदृष्टिः सतांदर्शनेऽस्तुभवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंसंकीर्तितस्ताभ्यांभगवान्गोकुलेश्वरः दाम्नाचोलूखलेबद्धः प्रहसन्नाहगुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातंममपुरैवैतदृषिणाकरुणात्मना । यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनांसमचित्तानांसुतरांमत्कृतात्मनाम् । दर्शनान्नोभवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतंमत्परमौनलकूबर सादनम् । संजातोमयिभावोवामीप्सितःपरमोऽभवः ॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौतौपरिक्रम्य प्रणम्यचपुनःपुनः । बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकउवाच ॥ गोपानन्दादयःश्रुत्वा द्रुमयोःपततोरवम् । तत्राजग्मुःकुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यांनिपतितौतत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ । बभ्रमुस्तद विज्ञाय लक्ष्यंपतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलंविकर्षन्तं दाम्नाबद्धंचबालकम् । कस्येदंकुतआश्चर्य मुत्पातइतिकातराः ॥ ३ ॥ बालाऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखल

सब सृष्टिकी उन्नति और ऐश्वर्योंके निमित्त पूर्णावतार हुएहो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याण ! हे विश्व मंडल ! आपको प्रणामहै, आप वासुदेव, शांत और यदुपति हो आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे भूमन् ! हम आपके दासानुदास हैं नारदजी की कृपासे हमने आपका दर्शन पाया ॥ ॥ ३७ ॥ हमारी जिह्वा आपके गुणोंका कीर्त्तन करने में दोनों कान आपके चरित्र सुनने में, दोनों हाथ आपकी चरणसेवा में, चित्त, आपके दोनों चरणों को ध्यान करने में, मस्तक आपके निवास रूप जगत के प्रणाम करने में, तथा दृष्टि आपके मूर्त्ति भूत साधुओं के दर्शन में तत्पररहे ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णजी रस्सी द्वारा ऊखल में बँधेहुएथे उन दोनों यक्षोंकी स्तुति सुन हास्य मुखहो कहनेलगे, ॥ ३९ ॥ कि—तुम दोनोंही ऐश्वर्य के मदसे अन्धे होरहेथे, तब देवर्षि नारदने तुमको शाप देकर पदच्युत रूपसे कृपा की—मैंने इसको पहिलेही जान लियाथा ॥४०॥ जैसे सूर्यके देखनेसे मनुष्योंकी आंखों का बन्धन नहीं रहता। वैसेही स्वधर्मवर्त्ती, ब्रह्मवेत्ता और उनमें भी फिर मुझमें चित्त अर्पण करनेवाले भक्तों के दर्शन करनेसे मनुष्योंको संसारका बंधन नहीं रहता ॥ ४१ ॥ अतएव हे नलकूबर ! तुम दोनों जन घरको जाओ । मुझमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हुई है अतएव अब तुम्हारी संसारमें आनेकी सम्भावना नहीं है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! यह बात सुनकर वे दोनों गन्धर्व ऊखलमें बँधेहुए श्रीकृष्ण जी की परिक्रमा कर बारम्बार प्रणाम करते हुए आज्ञाले उत्तरकी ओर को चलेगये ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०दशम० सरलाभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे कुरुश्रेष्ठ ! दोनों वृक्षोंके गिरने का शब्द सुन नंदादि गोपगण वज्र गिरने की शंकाकर उस स्थानपर आये ॥ १ ॥ वहां आयकर देखा कि-यमलार्जुन के वृक्ष पृथ्वीपर गिर गयेहैं वृक्षगिरने के कारणभूत—ऊखल खींचने वाले, रस्सी से बँधेहुए बालकको सामने देखा तौभी उस का कारण स्थिर न करसके और यह कहतेर -कि—'यह किसका काम है ?' किस कारणसे ऐसाहुआ ? क्या आश्चर्य है! उत्पातकी आशंका से भयभीतहो इधरउधर घूमनेलगे॥२।३॥

म्। विकर्षतामध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ नतेतदुक्तंजगृहुर्न घटेतेतितस्य तत्। बालस्योत्पाटनंतर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलंविकर्षन्तं दाम्नाबद्धं स्वमात्मजम्। विलोक्यनन्दःप्रहसद्वदनोविमुमोचह ॥ ६ ॥ गोपीभिः स्तोभितोनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित्। उद्गायतिक्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्त्तिक्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम्। बाहुक्षेपंचकुरुते स्वानांचप्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥ दर्शयंस्तद्विदांलोक आत्मनोभृत्यवश्यताम्। व्रजस्योवाहवैहर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ क्रीणीहिहिभोफलानीति श्रुत्वासत्वरमच्युतः। फलार्थीधान्यमादाय ययौसर्वफलप्रदः ॥ १० ॥ फलविक्रयिणीतस्य च्युतधान्यंकरद्वयम्। फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरिच ॥ ११ ॥ सरित्तीरगतंकृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत्। रामंचरोहिणीदेवी क्रीडन्तंबालकैर्भृशम् ॥ १२ ॥ नोपयातांयदाहूतौक्रिडासङ्गेनपुत्रकौ। यशोदांप्रेषयामासरोहिणीपुत्रवत्सलाम् ॥ १३ ॥ क्रीडंतंसाग्रुजंबालैरतिवेलंसहाग्रजम्। यशोदाऽजोहवीत्कृष्णंपुत्रस्नेहस्नुतस्तनी॥ १४॥ कृष्णकृष्णारविंदाक्षतातएहिस्तनंपिब। अलंविहारैःक्षुत्क्षांतःक्रीडाश्रांतोऽसिपुत्रक ॥ १५ ॥ हेरामागच्छताताशुसानुजःकुलनन्दन। प्रातरेवकृताहारस्तद्भवान्भोक्तुमर्हति ॥ १६ ॥ प्रतीक्षतेत्वांदाशार्हभोक्ष्यमाणोव्रजाधिपः। एह्यावयोःप्रियंधेहि स्वगृहान्यातबालकाः ॥ १७ ॥ धूलिधूसरिताङ्गस्त्वंपुत्रमज्जनमावह। जन्मर्क्षंतेऽ-

॥ ३ ॥ अन्य बालकों ने कहा कि—" कृष्ण न बीचमें आकरके ऊखलको टेढ़ाकर उसकोबलपूर्वक खींच इन दोनों वृक्षों को गिरा दिया है। केवल इतनाही नहीं, बरन वृक्षसे हमने दो दिव्य पुरुषों को भी निकलते देखा है ॥ ४ ॥ हे राजन्! बालकों की इस बात को गोपों ने असम्भव जानकर उस पर विश्वास नहीं किया और किसीर ने विश्वास करभीलिया कि ऐसाहोभी सकता है ॥५॥ नन्दजी ने पुत्रको रस्सी से बँधा और ऊखल खींचतेहुए इधरउधर घूमता देखकर हँसते२ खोलदिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार से बाललीला करतेहुए श्रीकृष्णजी कभी गोपियों के ताली बजाने से प्रसन्न होकर नाचने लगते, कभी कठपुतली की सदृश उनके बशीभूतहोकर गानकरते रहते ॥ ७ ॥ तथा कभी उनकी आज्ञा से उनकी कोई वस्तु लेआते कभी उनके कहने से पट्टे, पायली, पादुकाउठाते, कभी अपने सम्बन्धियों को प्रसन्न करतेहुए केवलहाथही फैलाते और कभी अपने सेवक ग्वालबालों को प्रसन्न करने के लिये श्रीकृष्णजी नानाप्रकार की क्रीड़ाकरतेथे ॥ ८। ९ ॥ हेराजन्! एक दिन फल बेचनेवाली की (फललो) इस बात को सुनकर सबके फल देनेवाले श्रीकृष्णजी फल लेनेको इच्छा से अन्न ले शीघ्रता पूर्वक वहां गए ॥ १० ॥ श्रीकृष्णजी के धान्य डालनेपर उस फल बेचनेंबाली नें जैसेही उनके दोनों हाथ फलों से भरे तैसेही उसका पात्र रत्नों से परिपूर्ण होगया ॥११॥ हे राजन्! यमलार्जुन वृक्षों के टूटने के उपरांत एक दिन राम और कृष्ण नदी के तीरपर घूम २ कर खेलरहे थे उसी समय रोहिणीजी नें उनको बुलाया ॥ १२ ॥ खेल में लगेहुए दोनों पुत्र उनका शब्द सुनकर भी जब नआए तब पुत्र वत्सला रोहिणी नें यशोदा को वहां भेजा ॥ १३ ॥ कृष्णजी बलराम और अन्य गोप बालकों के साथ कुसमय में खेलरहे हैं यह देख पुत्र स्नेह के कारण यशोदाजी के दोनों स्तनों से दूध टपकनेंलगा उन्होनें कृष्णजी को बुलाकरकहा ॥ १४ ॥ हे कृष्ण! हे कमल नयनवत्स! आ, दूधपी अब खेलनें का समय नहीं है भूख से व्याकुल होगयाहोगा चलकर भोजन कर ॥१५॥ वत्स कुलनन्दनराम! छोटे भाई को लेकर शीघ्रआओ कृष्ण नें प्रातःकाल में भोजन किया था देखती हूं कि खेलनें के कारण अत्यन्त श्रमित होरहा है ॥ ॥ १६ ॥ व्रजपति नंद भोजन करनेंको बैठेहुए तेरी राहदेखरहे हैं अब आओ और हमको प्रसन्न करो हे बालकों! अब तुम अपनें २ घरको जाओ ॥ १७ ॥ वत्स कृष्ण! तेरा शरीर धूल से धूसित

द्यभवतिविप्रेभ्योदेहिगाःशुचिः ॥१८॥पश्यपश्यवयस्यास्तेमातृमृष्टान्स्वलंकृतान् । त्वंचस्नातःकृताहारोविहरस्वस्वलंकृतः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंयशोदातमशेषशेखरंमत्वासुतंस्नेहनिवद्धधीर्नृप । हस्तेगृहीत्वासहराममच्युतंनीत्वास्ववाटंकृतवत्यथोदयम् ॥ २० ॥ गोपवृद्धामहोत्पातानुभूयवृहद्वने । नन्दादयःसमागम्यव्रजकार्यममन्त्रयन् ॥ २१ ॥ तत्रोपनन्दनामाऽऽहगोपोज्ञानवयोधिकः । देशकालार्थतत्त्वज्ञःप्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २२ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्यहितैषिभिः । आयांत्यत्रमहोत्पाताबालानांनाशहेतवः ॥ २३ ॥ मुक्तःकथंचिद्राक्षस्याबालघ्न्याबालकोह्यसौ । हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरिनापतत् ॥ २४ ॥ चक्रवातेननीतोऽयंदैत्येनविपदंवियत् । शिलायांपतितस्तत्रपरित्रातःसुरेश्वरैः ॥ २५ ॥ यन्नम्रियेतद्रुमयोरंतरंप्राप्यबालकः । आसावन्यतमोवापितदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २६ ॥यावदौत्पातिकोऽरिष्टोव्रजंनाभिभवेदितः । तावद्बालानुपादाययास्यामोऽन्यत्रसानुगाः ॥ २७ ॥ वनंवृंदावनंनामपशव्यंनवकाननम् । गोपगोपीगवांसेव्यंपुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २८॥ तत्तत्राद्यैवयास्यामःशकटान्युङ्क्तमाचिरम् । गोधनान्यग्रतोयांतुभवतांयदिरोचते॥२९॥तच्छ्रुत्वैकधियोगोपाःसाधुसाध्वितिवादिनः ।व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्यययूरूढपरिच्छदाः ॥ ३० ॥ वृद्धान्बालान्स्त्रियोराजन्सर्वोपकरणानिच । अनस्स्वारोप्यगोपालायत्ताआत्तशरासनाः ॥ ३१ ॥ गोधनानिपुरस्कृत्यशृङ्गाण्या

होरहा है आकर स्नान कर आ आज तेरी जन्म गांठ है पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान चलकेकर ॥ १८ ॥ देख अपनें साथियोंको तो देख उनकी माताओंनें उनको स्नान कराकर सजा दिया है तूभी स्नानकर सुंदर वस्त्रादि पहन भोजन करके खेलनें को आना ॥ १९ ॥ हे राजन् ! स्नेहमयी यशोदाजी भगवान् अच्युतको इस भांति से पुत्र मानकर हाथपकड़ राम सहित अपने घरलाई और आकर सब मंगलकारी कार्यों को किया ॥ २० ॥ हे राजन् उस बड़ेवन में नित्य प्रति बहुत से उत्पातों को होतादेख नन्द आदि सब वृद्ध गोपगण एक स्थानपर इकट्ठेहुए और इस बिषयका परामर्श करनेलगे क्या यत्न कियाजावे कि जिससे गोकुल का कल्याण होवे ॥ २१ ॥ उस सभामें एक उपनन्द नामक ज्ञानवान और वृद्ध होगयाथा । वह मनुष्य देशकाल और कार्य के तत्वका जाननेवाला तथा राम और श्रीकृष्णजीका हितकारीथा । उपनन्दने कहा कि ॥ २२ ॥ यदि गोकुलके कल्याण की इच्छा करतेहो तो हमको इस बनसे उठही जाना उचितहै ! इसस्थान में ब्रज नाशके निमित्त यहां नित्य नित्य महाउत्पात होनेलगेहैं ॥ २३ ॥ इस बालकने दैवकी कृपा से बालकोंके नाश करनेवाली राक्षसीके हाथसे छुटकारा पायाहै वह भी भगवानहीकी कृपाहुई कि इसके ऊपर शकट नै गिरपड़ा ॥ २४ ॥ बौड़र रूपी दैत्यने. इसको आकाशमें लेजाकर आपत्तिमें डालाथा परन्तु वह आपही शिलामें गिरा केवल भगवान्हीकी कृपासे बालक बचा ॥ २५ ॥ इसके उपरांत दोनों वृक्षोंके बीचमें प्रवेश करनेसे यह तथा दूसरे बालक भी न मरे यह केवल नारायण कीही कृपाहै ॥ २६ ॥ अतएव अब दूसरा कोई उत्पात ब्रजमे न होवे ऐसे रक्षित स्थानमें बालकों तथा सेवकों समेत सब सामान लेकर चलना चाहिये ॥ २७ ॥ बृन्दाबन नामक एक पवित्र बन पर्वत; तृण और लताओंसे परिपूर्णहै उसके आस पास घने २ बनहैं । पशु वहांपर भलीभांतिसे चर सकतेहैं, गो, गोपी तथा गोपगण भी सुखसे रहेंगे ॥ २८ ॥ यदि तुम्हारी इच्छाहो तो लोचलो अभी हम सब उस बनमें जावें, सब गाडोंको जोतो, बिलम्ब न करो गाय आगे २ चलें ॥ २९ ॥ यह बात सुनकर समस्त गोप एक मतहो 'साधु २ कह अपने २ गाड़ेजोत उनपर सब सामान आदि लाद बृन्दाबन की ओर चले ॥ ३० ॥ हेराजन् ! गोपोंने बड़े यत्न समेत गाड़ोंके ऊपर सब

पूर्यस्वर्वतः । तूर्यघोषेणमहताययुःसहपुरोहिताः ॥ ३२ ॥ गोप्योरूढरथानूत्नकुच कुंकुमकांतयः । कृष्णलीलाजगुःप्रीतानिष्ककण्ठयःसुवाससः ॥३३॥ तथायशोदा रोहिण्या वेकंशकटमास्थिते । रेजतुःकृष्णरामाभ्यांतत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४ ॥ वृंदावनंसंप्रविश्यसर्वकालसुखावहम् । तत्रचक्रुर्व्रजावासंशकटैरर्धचन्द्रवत्॥ ३५॥ वृंदावनंगोवर्धनंयमुनापुलिनानिच । वीक्ष्यासीदुत्तमाप्रीतीराममाधवयोर्नृप ॥३६॥ एवंव्रजौकसांप्रीतिंयच्छंतौबालचेष्टितैः । कलवाक्यैःस्वकालेनवत्सपालौवभूवतुः ॥ ३७ ॥ अविदूरेव्रजभुवःसहगोपालदारकैः । चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३८ ॥ क्वचिद्वादयतोवेणुंक्षेपणैःक्षिपतःक्वचित् । क्वचित्पादैःकिङ्किणीभिःक्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३९ ॥ वृषायमाणौनर्दंतौयुयुधातेपरस्परम् । अनुकृत्यरुतैर्जंतूंश्चेरतुःप्राकृतौयथा ॥ ४० ॥ कदाचिद्यमुनातीरेवत्सांश्चारयतोःस्वकैः । वयस्यैःकृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्यआगमत् ॥ ४१ ॥ तंवत्सरूपिणंवीक्ष्यवत्सयूथगतंहरिः । दर्शयन्बलदेवायशनैर्मुग्धइवासदत् ॥ ४२ ॥ गृहीत्वापरपादाभ्यांसहलांगूलमच्युतः । भ्रामयित्वाकपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ सकपित्थैर्महाकायः पात्यमानैःपपातह ४३ ॥ तंवीक्ष्यविस्मिताबालाःशशंसुःसाधुसाध्विति । देवाश्च परिसंतुष्टाबभूवुःपुष्पवर्षिणः ॥ ४४ ॥ तौवत्सपालकौभूत्वासर्वलोकैकपालकौ ।

सामग्री रखी तथा वृद्ध, बालक और स्त्रियोंको उनपर बिठाया और अस्त्र शस्त्रले गौओं को आगे आगेकर सींग और तुतारीका शब्द करतेहुये पुरोहितों को साथले वृन्दावन को चले ३१—३२ गोपियें रथपर सवःरहो कृष्ण लीलाका गान करतीहुई उनके पाछे२ चलीं । उनके कुच मंडल केसर से रंगेहुएथे कानोंमें मनोहर कुण्डल और अंगमें सुन्दर वस्त्र धारण कियेथीं ।! ३३ ।। यशोदा और रोहिणी भी एक रथपर बैठ कृष्ण तथा बलराम समेत शोभा पानेलगीं कृष्ण जीके चरित्र सुन २ कर वे अति आनन्दित हुईं।।३४।।हे राजन् ! वृन्दावन सब कालमेंहो सुखदायकहै गोपगणों ने वहां प्रवेशकर गाड़ोंको अर्द्ध चन्द्राकारस्थापितकर उसी स्थानपर गौओं का बासस्थान बनाया ।। ३५ ।। हेराजन् ! बलरामजी तथा श्रीकृष्णजी वृन्दाबन तथा यमुना की रेतीको देख अत्यन्त आनन्दितहुये।।३६।।राम, कृष्ण पहिले कहेके अनुसार बालचरित्र तथा मधुरबाक्योंसे व्रजबासियों को आनन्द देतेहुये योग्यकालमें गौ चराने के कार्यमें प्रवृत्तहुये ।। ३७ ।। नानाप्रकार के खेलोंसे उनका समय बीतने लगा नानाअलंकार धारणकर वह गोप बालकों के साथ वृन्दाबन के निकट बछड़ोंको चराने लगे ।। ३८ ।। कभी बंशीबजाते; कभी बेल और आंवले आदि फलों को गोफन में रखकर फेंकते, कभी किंकणी पहिनेहुए पावों से दौड़ २ कर पृथ्वी पर खेलते, कभी २ बालकों को कमरी ओढ़ाय उन्हें गोवृष का रूप धारण कराते ।। ३९ ।। तथा कभी आपभी उसी भांति से वृष बन वृषकासा शब्द करतेहुए उनके साथ युद्ध करते रहते । कभी अनेकों जंतुओं का अनुकरण कर उन्हीं का शब्द करते ॥ ४० ।। कुमारावस्था में वे राम और कृष्णजी इसहीप्रकार से साधारण बालकों की समान क्रीड़ाकर २ के भ्रमण करने लगे । एक दिन श्रीकृष्णजी तथा बलरामजी अपने संगियों समेत यमुना के किनारे अपने २ बछड़ों को चरारहेथे—उसी समय उनके नाश करने की इच्छा से एक दैत्य वहां पर आया ।। ४१ ।। श्रीकृष्णजी ने उस दैत्य को बछड़े का रूप धारण किये हुए बछड़ों के बीच में घूमताहुआ देख बलदेवजी को दिखाया तदनन्तर अजानकी समानहो धीरे २ उस के पीछे पहुँचे ।। ४२ ।। श्रीकृष्णजी ने उस के दोनों पिछले पैरों को पकड़ घुमाय, प्राण निकाल कैथ के पेड़पर पटका । उस महाकाय के बोझ से वह कैथ गिरने लगाऔर उस वृक्ष के साथही वह असुरभी पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ४३ ।। बालकगण उस को मराहुआ देख 'साधु' 'साधु' कहने लगे तथा देवतागण अत्यन्त संतुष्टहो फूलों की बर्षा करने लगे ॥ ४४ ।।

सप्रातराशौगोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥ ४५ ॥ स्वंस्वंवत्सकुलंसर्वेपाययिष्यंत एकदा। गत्वाजलाशयाभ्याशंपाययित्वापपुर्जलम् ॥ ४६ ॥ तेतत्रददृशुर्बालामहासत्वमवस्थितम्। तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नंगिरेः शृङ्गमिवच्युतम् ॥ ४७ ॥ सवैबकोनाममहानसुरोबकरूपधृक्। आगत्यसहसाकृष्णंतीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४८ ॥ कृष्णंमहाबकग्रस्तंदृष्ट्वारामादयोऽर्भकाः। बभूवुरिन्द्रियाणीवविनाप्राणंविचेतसः॥४९॥ तंतालुमूलंप्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुंपितरंजगद्गुरोः चच्छर्दसद्योऽपिरुषाऽक्षतं बकस्तुण्डेनहन्तुंपुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥ तमापतन्तंसनिगृह्यतुण्डयोर्दोर्भ्यांबकंकंससखंसतांपतिः पश्यत्सुबालेषुददारलीलयामुदावहोवीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५१ ॥ तदाबकारिंसुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः। समीडिरेचानकशङ्खसंस्तवैस्तद्वीक्ष्यगोपालसुताविसिस्मिरे ॥ ५२ ॥ मुक्तंबकास्यादुपलभ्यबालकारामादयः प्राणमिवेन्द्रियोगणः। स्थानागतंतंपरिरभ्यनिर्वृताःप्रणीयवत्सान्व्रजमेत्यतज्जगुः ॥ ५३ ॥ श्रुत्वातद्विस्मितागोपागोप्यश्चातिप्रियादृताः। प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्ततृषितेक्षणाः ॥ ५४ ॥ अहोबतास्यबालस्यबहवोमृत्यवोऽभवन्। अप्यासीद्विप्रियंतेषांकृतंपूर्वंयतोभयम् ॥ ५५ ॥ अथाप्यभिभवन्त्येनंनैवतेघोरदर्शनाः। जिघांसयैनमासाद्यनश्यन्त्यग्नौपतङ्गवत् ॥ ५६ ॥ अहोब्रह्मविदांवाचोनास

हेराजन्! सबलोकों के श्रेष्ठपालक राम तथा श्रीकृष्णजी दोनों भाई वत्सपालहोकर प्रातःकालके भोजन की सामग्री साथले बछड़ों को चराते फिरतेथे ॥ ४५ ॥ एक दिन सब गोपों के बालकों ने जलाशय के समीपजाय अपने २ बछड़ों को जल पिलाय और आपभी जल पिया ॥ ४६ ॥ उस समय उन्होंने देखा कि—उस स्थान में वज्र से मारेहुए पृथ्वी पर गिरे पहाड़की सदृश एक बड़ा भारी जीव बैठा है ॥ ४७ ॥ वह एक बड़ाभारीअसुर बगले का रूप धारण कियेथा। वह अत्यन्त बलवान तथा उसकी चोंच बड़ी तीक्ष्णथी! वह बकासुर शीघ्रतापूर्वक वहां पर आय श्रीकृष्णजी को निगल गया ॥ ४८ ॥ यह देखकर राम आदि सब बालक प्राण रहित इंद्रियों की समानअचेत होगये ॥ ४९ ॥ इस ओर जबबकासुर श्रीकृष्णजी को निगलगया तबश्रीकृष्णजी ने अग्निकी सदृश उसका गलाजलाना आरम्भ किया। जब बकासुर उस ज्वाला का सहननकरसका तव उस ने भगवान् श्रीकृष्णजी को तत्कालही उगल दिया, और बधकरने के निमित्त उनके निकट चोंचों से मारने को आया ॥ ५० ॥ साधुओं के आश्रय श्रीकृष्णजी ने दोनों हाथोंसे उस सामने आते हुए कंस के मित्र बककी दोनों चोंचें पकड़, देवताओं को आनन्द देतेहुए, बालकों के सामनेसहजही से तिनके की समान चीरडाला ॥ ५१ ॥ तब सुरलोक निवासी देवतागण भगवान श्रीकृष्णजी के ऊपर नन्दनबन के फूल आदि वर्षाने तथा ढक्का और शंख बजाय स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुतिकरने लगे। यह देखकर गोपों के बालक अत्यन्तही विस्मितहुए ॥ ५२ ॥ राम आदि बालकगण बकासुरके मुख से श्रीकृष्णजी को छूटाहुआ देख उनसे मिल ऐसे आनंदितहुए कि जैसे प्राण के स्थान पर आने से इंद्रियें चैतन्य होती हैं तदनन्तर बछड़ों को एकत्रितकर बनसे ब्रज में आय बालकों ने उस सब वृत्तांतको कहा॥५३॥ गोप और गोपियें उसे सुनकर विस्मितहो बहुत स्नेह से आदर युक्त श्रीकृष्णजी को ऐसे उत्सुक चित्त से देखनेलगे कि मानों परलोक से फिर लौट आये हैं अनन्तर उन सब मनुष्यों ने कहा ॥ ५४ ॥ कैसाआश्चर्य है कि इस बालक की कितनीही बार मृत्यु आई परन्तु जो घातकरने आये वह स्वयंही इसके हाथ से मारे गये क्योंकि उन्होंनें पहिले दूसरों को भयउत्पन्न किया ॥ ५५ ॥ यह लोग बड़े भयङ्कर रूप हैं तौभी इसको परास्त नहीं करसके मारनेकी कामना से इस के निकटआय, अग्नि में गिरकर जैसे पतंग नष्टहोता है वैसेही नष्टहोगये

त्याः सन्तिकर्हिचित् । गर्गोयदाहभगवानन्वभावितथैवतत् ॥ ५७ ॥ इति नन्दादयोगोपाः कृष्णरामकथांमुदा । कुर्वन्तोरममाणाश्चनाविन्दन्भववेदनाम् ॥ ५८ ॥ एवंविहारैः कौमारैः कौमारंजहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥५९॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशायमनोदधद्व्रजात्प्रातः समुत्थायवयस्यवत्सपान् । प्रबोधयञ्छृङ्गरवेणचारुणाविनिर्गतोवत्सपुरः सरोहरिः ॥ १ ॥ तेनैवसाकंपृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः । स्वान्स्वान्सहस्रापरिसंख्ययाऽग्रिवतान्वत्सान्पुरस्कृत्यविनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्यस्ववत्सकान् । चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजहुस्तत्रतत्रह ॥ ३ ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः । काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिताअप्यभूषयन् ॥ ४॥ मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीञ्ज्ञातानाराच्चचिक्षिपुः । तत्रत्याश्चपुनर्दूराद्धसन्तश्चपुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरंगतः कृष्णोवनशोभेक्षणायतम् । अहंपूर्वमहंपूर्वमितिसंस्पृश्यरेमिरे॥६॥केचिद्वेणून्वादयन्तोध्मान्तः शृङ्गाणिकेचन । केचिद्भृङ्गैःप्रगायन्तःकूजन्तःकोकिलैःपरे॥७विच्छायाभिः प्रधावन्तोगच्छन्तःसाधुहंसकैः।बकैरुपविशन्तश्चनृत्यन्तश्चकलापिभः ॥८॥ विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्चतैर्द्रुमान् । विकुर्वन्तश्चतैः साकंप्लवन्तश्चपलाशिषु॥९॥ साकंभेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः । विहसन्तः प्रतिच्छायाः श

॥ ५६ ॥ अहो ! वेदवेत्ताओं का वाक्य कभी मिथ्यानहीं होता; महर्षि गर्ग जोकुछ कहगये हैं– ठीक वैसाही होताहै॥५७॥नंद आदि गोपगण इसप्रकार से आनन्द प्रकाशकर,रामकृष्णकेचरित्रकहते हुए समय बितानेलगे संसार के कष्ट उनको दुःख न देसके ॥ ५८ ॥ इस प्रकार छिपना पुलिन बांधना बानरकी समान कूदना इत्यादि कुमारअवस्था के खेलों से इन दोनों भाइयों ने कुमार अवस्था बिताई ॥ ५९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजा ! एकदिन श्रीकृष्णजी बनमें भोजन करनेकी इच्छाकर प्रातःकालही उठे तथा गोपालकोंके लड़कोंको जगाय सुन्दर शृंगध्वनि करते २ बछड़ों को आगेकर ब्रजसे बाहरहुये ॥ १ ॥ सहस्र सहस्र स्नेहयुक्त बालक सुंदर छींके, लकड़ी; सींग और बेणु हाथमें ले अपने २ सहस्रों बछड़ोंको आगेकर ब्रजसे निकले ॥ २ ॥ सबने श्रीकृष्णजीके असंख्य बछड़ों के साथ अपनें बछड़ों का यूथ बांधलिया तथा चराते २ उन्हीं बनोंमें बालक्रीड़ा करके खेलने लगे ॥ ३ ॥ वह काच, मोती मणि और सोनेसे सजे हुयेथे तौ भी बनसे फूल; फल कोमल गुच्छा मोर पिच्छ और धातुओंसे अपनेको अलंकृत करनेलगे ॥ ४ ॥ एक दूसरे के छींके आदि चुराने लगे और जैसेही उनमेंसे कोई पदार्थ निकलते तैसेही दूर फेंकदेनेलगे फिर जो बालक उस स्थान पर खड़े होते वे उस पदार्थको लाकर देनेलगे ॥ ५ ॥ कृष्णजी बनकी शोभा देखनेको दूर चले जाते तो वह सब मैं आगे मैं आगे ऐसा कहकर उनको छूछूकर खेलनेलगे ॥ ६ ॥ कोई २ बंशी बजानेलगा कोई २ सींग कोई भौरोंके साथ गाने और कोई कोयलके साथ टहूका देनलगा ७ ॥ कोई २ उड़तेहुए पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़नेलगा; कोई हंसोंके साथ अच्छीतरहसे चलनेलगा कोई २ बकपांतिके साथ बैठगए किसी २ ने मोरोंके साथ नाचना आरम्भ किया॥ ८ ॥ कोई २ बालक वृक्षकी शाखापर चढ़ेहुये बन्दरोंके बच्चोंकी पूंछ पकड़कर खंचनेलगे किसी किसाने उनके साथही पेड़पर चढ़कर एक डालसे दूसरी डालपर फांदना आरम्भ किया ॥ ९ ॥ कोई २ उनके साथ दांत आदि दिखा मुह टेढ़ा करनेलगे कोई मेढ़कोंके साथ बोलते कोई २ नदीमें नहाने कोई

पन्तश्चप्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थंसतांब्रह्मसुखानुभूत्यादास्यंगतानांपरदैवतेन । मायाश्रितानांनरदारकेणसाकंविजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतोधृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः । सएवयद्दृग्विषयः स्वयंस्थितः किंवर्ण्यतेदिष्टमतोव्रजौकसाम् ॥ १२ ॥ अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषांसुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः । नित्यंयदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः सबकीबकानुजः । अयंतुमेसोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनंसबलंहनिष्ये ॥ १४ ॥ एतेयदामत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदानष्टसमाव्रजौकसः । प्राणेगतेवर्ष्मसुकाऽनुचिन्ताप्रजासवः प्राणभृतोहियेते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरंबृहद्वपुः सयोजनायाममहाद्रिपीवरम् । धृत्वाऽद्भुतंव्यात्तगुहाननंतदापथिव्यशेतग्रसनाशयाखलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठोजलदोत्तरोष्ठोदर्याननान्तोगिरिशृङ्गदंष्ट्रः । ध्वान्तान्तरास्योवितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वातंतादृशंसर्वेमत्वावृन्दावनश्रियम् । व्यात्ताजगरतुण्डेनह्युत्प्रेक्षन्तेस्मलीलया ॥ १८ ॥ अहोमित्राणिगदतसत्त्वकूटंपुरः स्थितम् । अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायतेनवा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्धनम् । अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रति

कोई अपनी छायाको देखकर हंसने और प्रतिध्वनिका सुनकर गाली देनेलगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! जो भगवान् हरि विद्वानोंके ब्रह्म सुख और अनुभव रूपहैं भक्तोंके परमदैवत रूप हैं और मायासे मोहित मनुष्योंके नर बालकरूपहैं उन्हीं भगवान् हरिके साथ वे गोप बालक इसभांति विहारकरने लगे निश्चयही उन्होंने पुण्योंके समूहका सञ्चयकियाहै॥ ११॥जितेंद्रिय योगीगण बहुतजन्म कष्टकरके भी जिनकी चरणरजको नहीं पासकते वे भगवान् जिनके दृष्टिगोचर होकर निवास करते हैं उन ब्रजबासियों के सौभाग्य को और क्याकहूं ? ॥१२॥हेराजन् ! तदनन्तर बालकोंका ऐसे सुखकी क्रीड़ा करतेहुए देख उसकासहन न कर उसीसमय अघ नामक एकभयंकर असुर उसीस्थानपर आ पहुंचा अघासुर बड़ाही प्रचण्ड राक्षसथा । देवतागण अमृत पानकर अमर होकरभी अपने२ प्राणोंके बचानेकी इच्छासे निरंतरही अघका छिद्र ढूंढ़ाकरतेथे ॥ १३ ॥ वह अघासुर पूतना और बकका छोटा भाईथा । कंसका पठायाहुआ आकर कृष्ण आदि बालकोंको देखकर बिचारने लगा कि" इसी बालकने मेरे भाई और बहिनका नाश कियाहै अतएव आजमैं दल समेत इसकोमारूंगा ॥ १४ ॥ ये सब जब मेरे सहोदरोंके तिलांजलि रूप होजायंगे । तब सब ब्रजबासीही नाश होजायंगे । क्योंकि यह उनके प्राण स्वरूपहैं प्राण बाहर होनेसे देह फिर किसकाम की रहसकतीहै ॥ ॥ १५ ॥ दुष्ट असुरने इसभांति निश्चयकर एक योजन लम्बा पर्वतके समान मोटा बड़े अजगरका रूप धारणकिया तथा गुफाकी समान मुखको फैलाय निगललेनेकी इच्छासे मार्गमें सोरहा १६ ॥ उसका नीचेका ओष्ठ पृथ्वीको और ऊपरका ओष्ठ बादलोंका स्पर्श करताथा दोनों गलफेर दोदरों की समान फटेहुयेथे एक २ दांत पहाड़की चोटीके सदृश देख पड़ताथा । मुखका भीतरी भाग घोर अंधकारकी समान जिह्वा मार्गकी समान विस्तारित श्वास प्रचण्ड बायुके समान और दोनों आंखें दावाग्निकी समान प्रज्वलित प्रतीत होतीथीं ॥ १७ ॥ उसको देखकर बालकोंको वृन्दावन की सम्पत्तिका भ्रमहुआ सब बालक खेलते २ उस अजगरके फैलाहुये मुंहकी अपेक्षा (निरादर) करके कहनेलगे कि— ॥ १८ ॥ हेवयस्यगण ! देखो हमारे सामने यह कुछ प्राणीके आकारका देख पड़ताहै यह हमारे निगलनेके निमित्त सर्पकासा मुख फैलायहै कि नहीं ? सो कहो ॥ १९ ॥ यह देखो सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे लाल बादल उसके ऊपरके ओष्ठकी समान तथा उस बादल

च्छाययारुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेतेसृक्किभ्यां सव्यासव्येनगोदरे । तुङ्गशृङ्गालयो प्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्चपश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृतायाममार्गोऽयंरसनांप्रतिगर्जति । एषा मन्तर्गतध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोयंश्वासवद्भातिपश्यत। तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३ ॥ अस्मान्किमत्रग्रसिता निविष्टा नयंतथाचेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति । क्षणादनेनेतिबकार्युशन्मुखंवीक्ष्योद्धसन्तः करताड नैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थंमिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितंश्रुत्वाविचिन्त्येत्यमृषामृषायते। र क्षोविदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः स्वानांनिरोद्धुंभगवान्मनोदधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टा स्त्वसुरोदरान्तरंपरंनगीर्णाः शिशवः सवत्साः । प्रतीक्षमाणेनबकारिवेशनंहतस्व कान्तस्मरणेनरक्षसा ॥२६॥ तान्वीक्ष्यकृष्णःसकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरा दवच्युतान् । दीनांश्चमृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेनविस्मितः ॥ २७॥ कृत्यंकिमत्रास्यखलस्यजीवनं नवाअमीषांचसतांविहिंसनम्। द्वयंकथंस्यादिति सं विचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥ तदाघनच्छदादेवा भयाद्धा हेतिचुक्रुशुः । जहृषुर्येचकंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवा न्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् । चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसाववृधेगले ॥ ३० ॥त तोऽतिकायस्यनिरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः । पूर्णोऽन्तरंगेपवनो

की छायासे लालहुई पृथ्वी उसके निचले होंठकी समान होरहीहै ॥ २० ॥ बायें और दक्षिण दो पहाड़की कन्दरायें गलफरेकी समान देखपड़तीहैं और यह सब पहाड़की चोटियें उसकी डाढ़ोंकी समान प्रतीत होतीहैं ॥ २१ ॥ यह बिशाल मार्ग जीभके समान और यह सब पहाड़की चोटियों के भीतरका अंधेरा उसके मुखके भीतरी भागकी सदृश जान पड़ताहै ॥ २२ ॥ दावाग्निसे तपी हुई अति उष्ण बायु उसके श्वासकी सदृश ज्ञातहोतीहै तथा दावाग्निसे जलेहुये प्राणियोंकी दुर्गंध सर्पकी देहके भीतरी मांसकी गन्धके समान प्रतीत होतीहै, ॥ २३ ॥ यह क्या हमको निगल जायगा ? हमारा नाश तो कभी न होगा । यदि यह सर्पहीहै तो ऐसा होनेसे बकासुरकी समान कृष्णके हाथसे अभी अभी माराजावेगा । यह कहकर बालकगण बकारि भगवान् श्रीकृष्णजीके सुन्दर मुखको देखते २ हँसतेहुए ताली बजाय अघासुरके उदरमें प्रवेश करगये ॥ २४ ॥ बालक गणोंने अनजान होकर यह बातें कहीं श्रीकृष्णजी यह सुनकर चिंता करने लगे कि—यह यथार्थ में सर्प सर्पदेहधारी असुरहै परन्तु हमारे मित्रोंको यह असत्य जानपड़ताहै,, सब प्राणियोंके अंत-र्यामी भगवान्ने यह यथार्थ निश्चयकर उनके निवारण करनेकी इच्छाकी ॥ २५ ॥ इतनेमेंही सब बालक अपने २ बछड़ोंकोले असुरके पेटमें प्रवेश करगये, परन्तु राक्षसने अपना मुहँ बन्द न किया, क्योंकि वह अपने आत्मीयजनोंका स्मरणकर श्रीकृष्ण भगवान् के प्रवेश करनेकी राह देखरहाथा॥२६॥सबके अभयदाता श्रीकृष्णजी उन दीनबालकोंको अपनेसे बिछुड़ाहुआ तथा मृत्यु की जठराग्निमें भस्म होताहुआ देख इसको दैवी घटना जान अत्यन्त विस्मितहुये॥२७॥अनन्तर उन्होंने बिचारा कि-यहांपर क्या करना चाहिये? कि जिससे यह दुष्ट असुर भी मरे और बालकों के प्राणभी न नाश होवें । अनन्तर शोच बिचारकर समदर्शी भगवान् सर्पके मुँहमें प्रवेश करगये ॥२८॥देवतागण जो आकाशमें स्थितथे वह भगवान्को अघासुरके मुंहमें प्रवशकरतेदेख अत्यन्त चीत्कार और बिलाप करनेलगे और अघासुरके बांधव कंस आदि राक्षसों के आनन्द की सीमा न रही॥२९॥अव्यय भगवान् श्रीकृष्णजीने उनका हाहाकारसुन, उससर्पके गलदेशमें बालक और बछड़ों समेत अपनेवेगको बढ़ाया । इससे असुरका गलाघुटकर उसके दोनोंनेत्र निकलपड़े ॥३०॥ वह व्याकुलहोकर इधरउधर चक्कर खाने लगा । थोड़ीही देर में बायु उसकी देहमें रुकजानेसे भर

निरुद्धो मूर्द्धन्विनिष्पाट्यविनिर्गतोवहिः ॥३१॥ तेनैवसर्वेषुवहिर्गतेषुप्राणेषु वत्सा न्सुहृदःपरेतान् । दृष्ट्यास्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिःस्वधाम्ना ज्वलयद्दिशोदश । प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेशतस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैःसुराअप्सरसश्च नर्तनैः। गीतैःसुगावाद्यधराश्चवाद्यकैः स्त वैश्चविप्राजयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्स- वमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वास्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरंचर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसांबहुतिथं व भूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजंकर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् । मृत्योःपौगण्ड- केबाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिताव्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रंमनुजार्भमायिनः परावराणांपर मस्यवेधसः । अघोपियत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतांसुदुर्लभम् ।३८। सकृद्यदंगप्रतिमान्तराहिता मनोमयीभागवतीं ददौगतिम् । सएव नित्यात्मसुखा- नुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हिकिंपुनः ॥ ३९ ॥ सूतउवाच । इत्थंद्विजायादव देवदत्तः श्रुत्वास्वरातुश्चरितंविचित्रम् ॥ प्रपच्छभूयोऽपितदेवपुण्यं वैयासकिंय- न्निगृहीतचेताः॥४०॥राजोवाच । ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनंकथंभवेत् । यत्कौ

गई और ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर बाहर निकली ॥ ३१ ॥ उस बायु के साथही सब इंद्रियां बाहर निकल पड़ीं, तब श्रीकृष्णजी, अमृत बरसाय मरहुए बछड़ों और अपने साथियों को फिर से जिलाय उन के साथ बाहर निकले ॥ ३२॥ उस सर्प के स्थूलदेहवाली शुद्ध,सत्वमय,अद्भुत,महत् ज्योति अपने तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, भगवान् के निकलने की राहदेखतीहुई आकाश में रुकीथी–, श्रीकृष्णजी के बाहर निकलतेही–वह ज्योति देवताओं के सामने श्रीकृष्णजी में प्रवेश करगई ॥ ३३ ॥ तदनन्तर देवतागण फूल बरसाने, अप्सरायें नाचने, गन्धर्वगण गाने, औरविद्या धर गण बाजे बजाने लगे । ब्राह्मणगण स्तुति और चारणगण जयध्वनि से अपने कार्यसाधक श्री कृष्णजी की पूजा में प्रवृत्तहुए । नानाप्रकार की उत्सवयुक्त अद्भुत स्तुतियें, सुन्दरबाजे, गानेऔर जयआदि के मङ्गलकारी शब्द सुनकर पितामह ब्रह्माजी शीघ्र वहां पर आय भगवान् की महिमा को देख विस्मित होगये ॥ ३५ ॥ हेराजन् ! वृन्दाबन में अजगर का अद्भुत चमड़ा सूखकर बहुत दिनोंतक ब्रजबासियों के खेलने की गुफाहुआथा ॥ ३६ ॥ हरि ने पांचबर्ष की बय में अघा सुर रूपी मृत्युके हाथ से सबको बचायाथा, परन्तु जिन ब्रजबालकों ने वह कर्म देखाथा, उन्होंने भगवान् का छहबर्ष की आयु में ब्रज में कहाथा कि–" आजही यह घटनाहुई है' ॥ ३७॥ असाधु मनुष्य किसी भांति सेभी भगवान् के रूप को नहीं पासकता किंतु अघासुर केवल भगवान् के अंग स्पर्श सेही सब पापोंसे छूट उनकी समान रूप को प्राप्तहुआ;माया से मनुष्य बालकरूप,श्रेष्ठ नीच सब पदार्थों में उत्तम भगवान् के ऐसे कार्यों में कुछ आश्चर्य नहीं है- ॥३८॥ जिनकीकेवल श्रीमूर्ति की मनोहर आभा ने हृदय में बलपूर्वक प्रतिष्ठितहो प्रह्लादादि परमभक्तों को भागवती गतिदीथी, उन्हीं नित्य, आत्मसुख के अनुभव से माया के निवासकर्त्ता भगवान् ने स्वयंही उस असुरके भीतर प्रवेश कियाथा तब क्या वह मुक्त न होते ? ॥ ३९ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे द्विजो ! यदुकुल देवता से पालेहुए राजा परीक्षित ने श्रीकृष्णजी के ऐसेरविचित्र चरित्र सुन श्री· शुकदेवजी से इस पवित्र चरित्र कहने का प्रश्न किया; भगवद्चरित्रों को सुनकर उनकामन भग- वान् के बशीभूत होगयाथा ॥ ४० ॥ राजा ने कहा कि–हेमुने ! जो कार्य पाहिले किया है वह

मारेहरिकृतंजगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥ तद्ब्रूहिमेमहायोगिन्परं कौतूहलंगुरो। नूनमेतद्धरेरव मायाभवतिनान्यथा ॥ ४२ ॥ वयंधन्यतमालोके गुरोऽपिक्षत्रबन्धवः यत्पिबामोमुहुस्त्वत्तः पुण्यंकृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूतउवाच ॥ इत्थंस्मपृष्टःसतु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः। कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ साधुपृष्टंमहाभाग त्वयाभागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपिकथांमुहुः ॥१॥ सतामयंसारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि। प्रतिक्षणंनव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रियाविटानामिवसाधुवार्ता ॥२॥ शृणुष्वावहितोराजन्नपि गुह्यंवदामिते। ब्रूयुःस्निग्धस्यशिष्यस्य गुरवोगुह्यमप्युत ॥ ३ ॥ तथाऽघवदनान्मृत्योरक्षित्वा वत्सपालकान्। सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यंपुलिनंवयस्याःस्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढंक्षुधार्दिताः। वत्साःसमीपेऽपःपीत्वा चरन्तुशनैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेतिपाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वाशिक्यानिबुभुजुः समंभगवतामुदा ॥७॥

वर्तमान का कैसे होसकता है? भगवान् ने जो काम पांचवर्ष की आयु में कियाथा बालकों ने उस कर्म को छहवर्ष की आयु में क्यों तत्कालका हुआकहा ? ॥ ४१ ॥ हे महायोगिन् आप इसप्रश्न का उत्तरदो। हे गुरो ! मुझे अत्यन्त कतूहल उत्पन्न हुआ है, निश्चयही यह भगवान् की माया है ॥ ४२ ॥ मैं नीचक्षत्री जाति तोहूं परन्तु संसार में सर्वापेक्षा धन्यहूं क्योंकि आपके मुख से पवित्र कृष्ण-कथामृत—का पान करताहू ॥ ४३ ॥ सूतजी ने कहा कि—हे भागवतश्रेष्ठ शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितके प्रश्न करने पर भगवान् का स्मरणआतेही पहिले तो शुकदेवजी की सब इंद्रियां भगवान् में लीन होगईं, तौभी उन्हों ने कष्टपूर्वक फिर बाहिरी दृष्टि प्राप्त करके धीरे २ उनको उत्तरदेना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

शुकदेवजीने कहा कि—हेमहाभाग ! भागवत श्रेष्ठ ! तुमने अतिउत्तम विषयको पूछाहै। तुम ईश्वरकी कथामृत का बारम्बार पान करके प्रश्नों द्वारा उसको नई करतेहो ॥ १ ॥ सारग्राही महात्माओंकी बाणी कान और चित्त यह सब परमेश्वरही की कथामेंलगे रहते हैं तौभी जैसे स्त्री लंपट मनुष्यों का स्वभाव स्त्रियोंकी बार्त्ताको क्षण २ में नवीन करताहै तैसेही महात्माओंका भी स्वभाव भगवान्‌की बार्त्ताको क्षण २ में नवीन करताहै, ॥ २ ॥ हेराजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनो अति गूढ़ रहस्य तुमसे कहताहूं, गुरुगण प्रिय शिष्यको गुप्त विषयकाभी उपदेश करते हैं। ॥३॥ श्रीकृष्णजी अघके मुखरूपी मृत्युसे गोपबालकोंकी रक्षा करने के उपरांत सबको यमुनातट पर लायकर कहनेलगे कि—४ ॥ अहो, वयस्यगण ! यह रेती अति रमणीयहै हमारे खेलने की सब सामग्रियें यहांपर प्रस्तुतहैं, यहांकी बालू अति कोमलहै खिलेहुये कमलोंकी गन्धसे खिंचकर भौंरे आदि जलमें होतेहुये शब्द कररहेहैं, रेतीके ऊपर शब्दों की प्रतिध्वनिसे शोभायमान वृक्ष चारोंओर व्याप्त होरहेहैं ॥ ५ ॥ आओ ! हम सब इसीस्थानपर भोजन करें समय व्यतीत जाने से भूख के मारे दुःखित होरहेहैं। बछड़े भी पानी पीकर समीपही धीरे २ घास चराकरेंगे ६ बालकोंने 'अच्छा, कहकर बछड़ोंको जलपिलाय हरीघासके जंगलमें छोड़दिया, तथा सब अपने २

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशोव्रजार्भकाः । सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः । शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥ सर्वेमिथोदर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिंपृथक् । हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रेच कक्षेवामे पाणौमसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदोहासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गेलोके मिषति बुभुजेयज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥ भारतैवंवत्सपेषु भुजानेष्वच्युतात्मसु । वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वाभयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् । मित्राण्याशान्माविरमते-हानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाऽद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् । विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलोययौ ॥ १४ ॥ अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायाभकस्येशितुर्द्रष्टुंमञ्जु महित्वमन्यदपितद्वत्सानितो वत्सपान् । नीत्वाऽन्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितोयःपुरादृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणम् प्रभवतःप्राप्तः परंविस्मयम् ॥ १५ ॥ ततोवत्सानदृष्ट्वैत्यपुलिनेऽपिच वत्सपान् । उभावपिवनेकृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥ १६ ॥ क्वाप्यदृष्ट्वाऽन्तर्विपिने वत्सान्पालांश्चविश्ववित् । सर्वं विधिकृतंकृष्णः सहसाऽवजगामह ॥ १७ ॥ ततःकृष्णोमुदंकर्तुं तन्मातॄणांचकस्यच

छींकोंको निकाल आनन्द सहित भगवान् के साथ भोजन करनेलगे ॥ ७ ॥ प्रफुल्लित नेत्रवाले व्रजबालक बन में श्रीकृष्णजी के चारोंओर मंडल बनाय उन के सन्मुख मुख करके बैठ गये वह बालक कमलकर्णिकाके पत्तों की सदृश शोभा पाने लगे ॥ ८ ॥ किसी २ ने फूल किसी २ ने पत्ते, किसी २ ने अंकुर, किसी २ ने फल, किसी २ ने कोंपल, किसी २ ने छींके, किसी २ ने छाल, किसी २ ने पत्थरों के बासन बनायकर भोजनकरना आरम्भ किया ॥ ९ ॥ सब अपने २ पृथक् २भोजन के पदार्थों का स्वाद दिखाते,हँसते हँसातेहुएभगवान के साथ भोजन करनेलगे ॥१०॥ श्रीकृष्ण भगवान् भी यज्ञभोजी होकर बालकों की समान केलि करनेलगे तथा पेट में बँधेहुए वस्त्र के बीचमें बेणु, बाईं कांख में सींग; बाएँ हाथ में बेंत, सब अंगुलियों में खाने योग्य नानाप्रकारके फल तथा दहिने हाथ में दहीभातकाग्रासले,मध्यभागमेंकर्णिका की समान स्थित,अपने हँसी के बचनों से अपने चारों ओर बैठेहुए बन्धुओंको हँसाते भोजन करने लगे ॥ ११ ॥ स्वर्गवासी और मृत्युबासी सबही इस कार्य को देखकर आश्चर्य करने लगे, वत्सपालक व्रजबालक भगवान के साथ एकात्माहो इस भांति भोजन करतेथे कि-इतने में बछड़े घास के लोभ से चरतेहुये बन में बहुत दूर तक चलेगये ॥ १२ ॥ इस से बालकों को भयहुआ; श्रीकृष्णजी जगत् के भयके भी भय देनेवाले हैं। उन्हों ने मित्रों को व्याकुल देखकर कहा कि-' भोजन को मतछोड़ो, मैं तुम्हारे सबके बछड़ोंको लिये आताहूं ॥ १३ ॥ यह कहकर वह हाथ में खाने का ग्रासले पहाड़, गुफा, कुंज,और घने जंगलों में साथियों के बछड़ों को ढूंढते २ फिरनेलगे पद्मयोनि ब्रह्माजी आकाश में स्थितहोकर कृष्णजी के, अघासुरसे बालकों के बचने आदि के चरित्र देखकर अत्यन्त विस्मितहुए। माया बालकरूपी भगवानकी दूसरी महिमा को देखने की इच्छा से यहां से बालकों और बछड़ों को हर दूसरे स्थान में लेजाय अन्तर्ध्यान होगये ॥ १५ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजी वहां बछड़ों को कहीं न देखपाये फिर रेती में लौट आये। उस स्थान में भी बालकों को न देखवह उनको खोजने लगे ॥ १६ ॥ किंतु कहीं भी बछड़े और बालकों को न देख सहसा जानलिया कि-यह करतूत ब्रह्माहीकी है ॥ १७॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजीने बालकों

उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् । यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकंसर्वं विष्णुमयंगिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपोबभौ ॥१९॥ स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः । क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥२०॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवश्यसः । तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्मप्रविष्टवान् ॥२१॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्यदोर्भिः परिरभ्यनिर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं मत्वापरंब्रह्मसुतानपाययन् ॥ २२ ॥ ततोनृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः । संलालितःस्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेनमाधवः ॥२३॥ गावस्ततोगोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् । स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः । ॥ २४ ॥ गोगोपीनांमातृताऽस्मिन्सर्वास्नेहर्द्धिकांविना । पुरोवदास्वपिहरेस्तोकता माययाविना ॥ २५ ॥ व्रजौकसांस्वतोकेषुस्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् । शनैर्निःसीम वव्रृधेयथाकृष्णेत्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानंवत्सपालमिषेणसः ।

की माताओं तथा ब्रह्मा को संतोष उत्पन्नकरने के निमित्त, विश्वकर्ता ने स्वयंही बछड़ों औरबालकों की मूर्ति धारणकी । उनके ऐसा करने का यह अभिप्रायथा कि—यदिबछड़ों को लाये देता हूं तो ऐसा होने से ब्रह्मा का मोह नहोगा तथा यदिस्वयंही बालकनहीं बनता तो उनकी माताऐं शोकितहोंगी । इसही कारण हरि ने दोनों रूप धारण किये ॥ १८ ॥ जितने बालक और बछड़े जैसा उनकाछोटाशरीर, जैसे जिसके हाथ पांव; जैसी जिसकी लाठी, सींग, वेणु और छींके, जिस के जिस प्रकार के वस्त्र आभूषण, जिसका जैसा शील, गुण नाम आकृति और वय, तथा जिसके जैसे आहार विहारादिथे, भगवान् ने उसहीप्रकार सबप्रकार से प्रकाशितहो " सर्व जगत विष्णुमय इस वाक्यको सार्थक किया, ॥ १९ ॥ भगवान्ने आपही इसरूपसे सर्वात्माहो व्रजमें प्रवेशकिया । वह स्वयंही हांकनेवालेहो आत्मस्वरूप बछड़ोंको हांकते हांकते आपही खेलते खिलाते चले ॥ २० ॥ हेराजन् ! वह व्रजमें प्रवेशकर विशेष २ बछड़ों को पृथक् २ गोष्ठमेंकर विशेष २ बालकोंके घरमें गये, ॥ २१ ॥ बालकोंकी मातायेंभी वेणु का शब्द सुन शीघ्रता पूर्वक उठीं तथा अपना २ पुत्र जान भगवान को दोनों भुजाओंसे भलीभांति आलिंगन कर उठालिया और स्नेह वशहो टपकतेहुये स्तनोंका दूध जो अमृतके सदृश सुस्वादु और आसव की समान मादकथा पिलाया ॥ २२ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी बालकोंके स्वभावानुसार खेलते, तथा उन्हींके अनुसार सायंकालको घरमें आय सुन्दर आचरणों द्वारा माताओंका आनन्दित करते वह उनका मर्दन (उबटन लगाना) स्नान, चन्दन आदि लगाने वस्त्र आभूषण पहिनाने तथा तिलक लगानेव भोजन कराने आदिसे और उनकी रक्षाका विधानकर लालन पालन करनेलगीं ॥ २३ ॥ तदनन्तर गायेंभी शीघ्रतासे गोष्ठमें आय हुंकारकर अपने बछड़ोंको चाटने और टपकतेहुये दूधका पान करानेलगीं ॥ २४ ॥ पहिले भी श्रीकृष्णजी पर गायों और गोपियों का मातृभावथा, परन्तु इससमय स्नेह अधिक बढ़गया, तथा इनमें भगवान्की बाल भावना तो पूर्ववत रही परन्तु' यह मेरी माताहै और मैं इसका पुत्रहूं ऐसा मोह न रहा ॥ २५ ॥ पहिले श्री कृष्णजी पर व्रजवासियोंका जैसा अधिक स्नेहथा तैसा स्नेह इससमय एक बरषतक अपने पुत्रों में बढ़ा श्रीकृष्णजी इसभांतिसे वत्सपालहो बछड़े और उनके पालकगणोंका रूप धारणकर अपने आपको पालन करते २ बन और गोष्ठमें क्रीडाकरने लगे ॥ २६ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने वत्स

पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् । पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥ ततोऽविदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् । गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः । द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्रुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् । गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना । दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् । उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः । कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥ व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् । मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि । व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी । प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि । सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि । सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदे

पालक होकर वत्स और बालकोंके बहानेसे अपनेही रूपको आपही पालन करते एकवर्ष पर्यंत और ब्रजमें क्रीड़ाकी ॥ २७ ॥ हेराजन् ! एकवर्ष पूर्ण होनेमें पांच व छहादिन शेष रहेथे कि उस समय कृष्णजी रामके साथ बछड़े चराते २ बनमें गये, ॥ २८ ॥ बहुत दूर गोवर्द्धन पहाड़ की चोटियोंपर सब गायें चररहीथीं । उन्होंने उस स्थानसे देखपाया कि ब्रजके निकट सब बछड़े चरतेहैं ॥ २९ ॥ यह देखकर अपनेंको भी भूलगईं । इसप्रकार समस्त गौएँ स्नेहसे खिंचकर हुंकार छोड़तीहुई रक्षकोंके लौटानेपर भी न लौटीं, तथा विषम मार्गसे कूदती फांदती शीघ्रतापूर्वक ब्रजके निकट पहुंचीं । उनके शीघ्रतापूर्वक दौड़नेसे जान पड़ताथा कि यह दोही पांवोंसे दौड़तीहैं सबही अपनी गर्दन लाठपर लगाय पूछको ऊंची उठाय दौड़ आईं । गौओंका दूध चारोंओरको झररहाथा ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके दूसरे बारभी बछड़े उत्पन्न होगयेथे तौभी गोवर्द्धनके नीचे बछड़ों से मिल, ग्रास करनेकी समान उनके अंग और अपने, दूधसे झरतेहुए स्तनों को पिलाने लगीं॥ ३१॥ सबगोपों ने उनगायों के रोकनका प्रयत्न किया परन्तु न रोकसके, इससे लज्जित और क्रोधित हुए। दुर्गम मार्गमें चलनेसे वह अत्यन्त श्रमितहोगये;इससमय बछड़ों के साथअपने२पुत्रोंको देखकर उनको प्रेमरस उत्पन्नहोआया ॥३२॥ इससे उनकामन भरआया और अनुराग उत्पन्नहोने से क्रोध दूरहोगया उन्होंने बालकोंको गोदमेंले दोनों हाथोंसे आलिंगन किया और उनके मस्तक सूंघ परमानन्दका अनुभवकरने लगे॥३३॥वृद्धगोपों ने बालकों से मिलकर अत्यन्त संतोष प्राप्तकिया; यद्यपि उन्होंने अतिकष्ट से धीरे २ आलिंगन त्याग किया परन्तु बालकों के स्मरण से उनके नेत्रों में जल भरआया ॥ ३४ ॥ जिन बच्चों ने स्तनपान करना छोड़ दियाहै उनके ऊपरभी ब्रजवासियों का प्रेम बढ़ते देखकर बलरामजी इसकारण स्थिर न करसके । इसकारण वह अत्यन्त चिंता करने लगे ॥ ३५ ॥ कि-यह क्या आश्चर्य है । पहिले कृष्णपर ब्रजबासियों की जैसी प्रीतिथी इस समय अपने २ पुत्रों पर वैसी प्रीति क्यों बढ़ी है ? ॥ ३६ ॥ मेरामनभी उनके स्नेह से क्यों स्नेहार्द्र होता है ? यह क्या माया है ? यह मायाकहांसे आई ? यह क्या दैवी, मानुषी या आसुरी माया है ? निश्चयजानपड़ता है कि यह मेरेही प्रभुकी माया है; क्योंकि यहमाया मुझेभी मोहित करती है- ॥ ३७ ॥ बलरामजी ने ऐसी चिंताकरके ज्ञानमय नेत्र खोलकर देखा कि—सबबछड़े और बालक श्रीकृष्णही स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ तदुपरांत श्रीकृष्णजी से पूछा कि—हेतातकृष्ण ! मैं

त्युक्तेनवृत्तंप्रभुणाबलोऽवैत् ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेनत्र्युट्यनेहसा । पुरोवदब्दंक्रीडन्तंददृशेसकलंहरिम् ॥ ४० ॥ यावन्तोगोकुलेबालाः सवत्साः सर्वएवहि । मायाशयेशयानामेनाद्यापिपुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥ इतएतेऽत्रकुत्रत्यामन्मायामोहितेतरे । तावन्तएवतत्राब्दंक्रीडन्तोविष्णुनासमम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषुभेदेषुचिरंध्यात्वासआत्मभूः । सत्याःकेकतरेनेति ज्ञातुंनेष्टेकथंचन ॥४३॥ एवंसंमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् । स्वयैवमाययाऽजोऽपि स्वयमेवविमोहितः ॥ ४४ ॥ तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि । महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युंजतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वेवत्सपालाः पश्यतोऽजस्यतत्क्षणात् । व्यदृश्यन्तघनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनोहारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः । नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ अंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः । कोमलैःसर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥ चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः । स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥ आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः । नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्य-

पहिले से जानताहूं कि यहसबबछड़े ऋषिगणतथा यह सब वत्सपाल देवताओं के अंशहैं; किंतु इस समय अब वह रूप नहीं देखता । इस समय देखताहूं कि इन सब में पृथक २ आपही वर्तमान हो, इसका क्याकारण है आप कहिये । बलदेवजी के इस भांति पूछनेपर श्रीकृष्णजी ने सबव्यौरा बलदेवजी से कहा॥३९॥हेमहीपते ! इसप्रकारसे श्रीकृष्णजी उन मायारचित बालकों और बछड़ों के साथ क्रीडाकरनेलगे । धीरे२ एकबरस बीतगया । हेराजन्! वह ब्रह्माका एक त्रुटि काल है । ब्रह्माजीने आन उस त्रुटिकालके बीतनेपर आकरदेखा कि कृष्णजी पहिलेकासमान अपनेसाथियों के साथ क्रीडाकररहे हैं ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी कृष्णजीका प्रेम रूमेन क्रीडाकरते देख मन २ में तर्क वितर्क करनेलगे कि-गोकुलमें जितने बालक और बछड़े थे सबही मेरीमाया मय शय्यामें सोते हैं, अबतक वह नहीं उठे,॥४१॥तब फिर वही सब इसस्थानपर कहांसे आये ? जानपड़ताहै कि उन सबने एकबर्षतक कृष्णजीके साथ एसेही क्रीडा कीहै॥४२॥बड़े देरतक भी इसप्रकारसे विचारकरने पर ब्रह्माजीको सत्यासत्यका ज्ञान न हुआ॥४३॥ब्रह्माजी इसभांतिसे मोहरहित विश्वमोहन विष्णुजी को मोहनेगये थे परन्तु वहां स्वयंही अपनीही मायासे मोहितहोगये ॥ ४४ ॥ जैसे कुहरेसे उत्पन्न हुआ अन्धकार अँधेरी रातमें पृथक् २ आवरण नहीं करसकता, रातही के अन्धकारमें लीनहोजाताहै, तथा जैसे जुगनू दिनमें स्वयं पृथक प्रकाश नहीं करसकता तैसेही जो मनुष्य बड़े मनुष्यों पर मायाका प्रयोग करता है तो उसकी नीचमाया उसहीकी सामर्थ्य नाश करती रहती है ४५॥ हे महाराज ! इसके अतिरिक्त और एक आश्चर्य जनक घटना सुनो कि ब्रह्माजी यह सबघटना देख रहेथे इतनेहीमें सहसा उन्होंने देखा कि—क्या बालक, क्या, बछड़े, क्या छड़ी सींग आदि सबही मेघकी समान श्यामवर्ण के हैं; सबही पीताम्बर धारण कियेहुए॥४६॥सबही चतुर्भुज,सबही के हाथमें शंख,चक्र,गदा,पद्म,सबही के मस्तकमें किरीट,सबहीके कान में कुंडल सबहीके गलोंमेंहार बनमाला शोभायमान हैं ॥ ४७ ॥ सबहीकी भुजाओंमें श्रीवत्स की प्रभासे प्रकाशित बाजूबंद सबही के हाथ में रत्नों के बनेहुए शंखकी समान कंकण, तथा सबही नूपुर, मेखला, कटक, और मुँदरी धारण कियेहुए शोभायमान हैं॥४८॥ पुण्यवान मनुष्योंने जो कोमल नवीन तुलसीदल अर्पण किये हैं उससे शिरसे पांवतक परिपूर्ण होरहे हैं ॥ ४९ ॥ चन्द्रिकाकी समान निर्मल मन्द मुसकानोंसे अपने भक्तोंकी कामनाओंको मानो सत्वगुणसे पालनकरते और अरुणवर्णकी कटाक्ष दृष्टिद्वारा रजोगुणसे सृजतेहुए ज्ञातहोते हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृणतक समस्त चराचर जीव

महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः । चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीतामहादादिभिः ॥५२॥ कालस्वभाव संस्कारकामकर्मगुणादिभिः । स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः । अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दशाम् ॥ ५४ ॥ एवंसकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्यभासासर्वमिदं विभातिसचराचरम् ॥५५॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः । तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीवपुत्रिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिक परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ । अनीशेऽपिद्रष्टुंकिमिदमिति-वामुह्यतिसति चच्छादाजो ज्ञात्वासपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७॥ ततोऽर्वाक्प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः । कृच्छ्रादुन्मील्यवै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् । वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णंसमाप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्रनैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः । मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥ तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् । वत्सान्सखीनिवपुरः परितो विचिन्वदेकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ॥६१॥ दृष्ट्वात्वरेणनिजधारणतोऽवतीर्य पृथ्व्यांवपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य । स्पृष्ट्वाचतुर्मुकुटकोटिभिरंघ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायो

मूर्तिमानहो नृत्य गीतादि नाना पूजाके साधनों द्वारा सबही पृथक २ उपासना करते हैं ॥ ५१ ॥ सबही अणिमादि महिमा माया आदि शक्ति और चौबीस तत्वोंद्वारा व्याप्त होरहे हैं ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुणादिक पदार्थ मूर्तिमानहो प्रत्येककी सेवा करते हैं, इन सबकी स्वाधीनता परब्रह्मके सामनेनष्ट होगई है ॥ ५३ ॥ सबही सत्य, ज्ञानानन्दरूप, अनंत मूर्त्ति, भेदरहित, तथा सर्वदा एकरूप हैं अतएव आत्मज्ञानही जिसके नेत्रहैं ऐसे महात्माभी उनके माहात्म्यका स्पर्श नहीं करसकते ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जिन परब्रह्मकी ज्योतिसे यह चराचर विश्व प्रकाशित होताहै, ब्रह्माजीने इसभांतिसे एक समयमेंही इन सबको परब्रह्ममय देखा ॥५५॥ ब्रह्माजी यह देखकर कौतुकसे विस्मितहोगये उनमूर्तियों के तेजसे उनकी इन्द्रियें जड़ होगई, और वह कठपुतली की समान खड़े रहगये कि जिससे यह जानपड़ा कि व्रजके अधिष्ठाता देवता के समीप एक सोने की चौमुखी प्रतिष्ठा विराजमान है ॥ ५६ ॥ जो ब्रह्म बाणी के अधीश्वर, अतर्क्य असाधारण महिमा युक्त, स्वप्रकाश, सुख स्वरूप जन्मरहित और प्रकृति से परे तथा ब्रह्मसे भिन्न जो स्वयंही प्रकाशित हैं वह ब्रह्मा "यह क्या,, ऐसे कहकर अचेत होगए, और दर्शन करनेकी शक्ति न रही । श्रीकृष्णजी ने यह जानकर अपनी अद्भुत माया को खींचलिया ॥ ५७ ॥ अनन्तर ब्रह्माजीको बहिर्दृष्टि प्राप्तहुई । मराहुआ मनुष्य जैसे कुछ एक उठताहै तैसे उन्होंने बडे कष्टसे उठकर आंखें खोल अपने साथ इसजगतको देखा यह देखकर चारोंओरको दृष्टि डालनेलगे।इतनेमें प्राणियोंको आहार देनेवाला नानावृक्षों से युक्त चारोंओर से इच्छित पदार्थोंसे परिपूर्ण वृन्दाबन उन्होंने देखा ॥ ५९ ॥ जिनका स्वभावसेही बैरभावहै यह सब प्राणी वृन्दाबनमें मित्रभावसे एकत्र बास करतेथे । और श्रीकृष्णजी के बास करनेसे क्रोध लोभ आदि वहांसे दूर होगयथे ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने देखा कि—उस वृन्दाबनमें अद्वय पर अनंत अगाध बोध एक ब्रह्म बालक भावका नाटक करतेहुए श्रीकृष्णजी हाथमें खानेकी सामग्रीका कवलले पहिलेकी समान इधर उधर घूमकर बछडों और बालकोंको ढूंढरहे हैं ॥ ६१ ॥ यह देखकर ब्रह्माजी अपने बाहन परसे उतर, और पृथ्वीपर सोनके दण्डकी समान गिरकर चारों मुकुटों के अग्रभागसे दोनों चरणोंको प्रणामकर आनन्दाश्रुरूप सुन्दर जलसे उन्हें भिगानेलगे ॥ ६२ ॥ श्री

त्थायकृष्णस्य चिरस्यपादयोःपतन् । आस्तेमहित्वंप्राग्दृष्टं स्मृत्वास्मृत्वापुनःपुनः ॥ ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थायविमृज्यलोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्यविनम्रकन्धरः ॥ कृतांजलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंध त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्यतेऽभ्रवपुषेतडिदम्बरायगुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय । वन्यस्रजेकवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रियेमृदुपदेपशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥ अस्यापि देववपुषोमदनुग्रहस्यस्वेच्छामयस्यनतुभूतमयस्यकोऽपि । नेशेमहित्ववसितुंमनसान्तरेणसाक्षात्तवैवकिमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञानेप्रयासमुदपास्यनमन्तएव जीवन्तिसन्मुखरितांभवदीयवार्ताम् । स्थानेस्थिताः श्रुतिगतांतनुवाङ्मनोभिर्येप्रायशोऽजितजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयः सृतिंभक्तिमुदस्यतेविभोक्लिश्यन्तियेकेवलबोधलब्धये । तेषामसौक्लेशलएवशिष्यतेनान्यद्यथास्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेहभूमन्बहवोऽपियोगिनस्त्वदर्पितेहानिजकर्मलब्धया । विबुद्धयभक्त्यैवकथोपनीतयाप्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युततेगतिंपराम् ॥ ५ ॥ तथापिभूमन्महिमाऽगुणस्यतेविबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः । अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतोह्यनन्यबो

कृष्णजीकी पहिली देखीहुई महिमा जितनी बार याद आनेलगी उतनीही बार उठ २ कर चरणों में गिरने लगे ॥ ६३ ॥ इसप्रकार ब्रह्माने बहुत देरतक यह कार्यकिया । तदुपरांत धीरे २ उठकर दोनों आंखें पोंछ तथा श्रीकृष्णजीको देख माथा नीचाकर, हाथजोड़ विनीत भावसे एकाग्रचित्तहो कांपतेहुये शरीरसे गद्गद् वाक्यों द्वारा स्तुति करनेलगे ॥ ६४ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०दशम० सरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्माजीने कहाकि—हेस्तुति करने के योग्य ! मैं आपकी प्रसन्नताके निमित्त आपहीकी स्तुति करता हूं । आपके नवीन बादलकी सदृश श्यामशरीर में बिजली की समान पीताम्बर शोभायमान होरहा है, गुञ्जाके बनेहुये कानों के आभूषण तथा मोरपंखों से आपके मुख मण्डलकी कांति बढ़रही है । गले में बनमाला शोभित है । खानेकी सामग्री के कवल, छड़ी, सींग और बंशी इन सबचिन्हों से आपकी अपूर्व शोभाहोरही है । हेनन्दनन्दन ! आपके दोनों चरण अत्यन्त कोमल हैं ॥ १ ॥ हेदेव ! आपकी यह देहभक्तों को अतिप्यारी है इस देहसे मेरे ऊपरभी कृपाप्रकाशित होती है, यह आपकी मूर्तिशुद्ध सत्त्वगुण से उत्पन्न हुई पंचभूतोंसे बनीहुई नहींहै अतएव दमन कियेहुये मन द्वारा भी कोई इस स्वरूप के माहात्म्य को नहीं जानसकता हेप्रभो ! जब इस गुणमय रूपकीही महिमा नहीं जानीजाती तब आपके साक्षात् आत्म सुखानुभव स्वरूपकी महिमाको कौन जानसकताहै? हेहरि! यद्यपि आपकी महिमा जानने योग्य नहींहै तौभी इस संसारके बंधनसे छूटनेकी असंभावना नहीं देखीजाती क्योंकि जो ज्ञान लाभके निमित्त थोड़ासा भी परिश्रम करके अपने स्थानपर स्थितहो महात्माओंके कहेहुए कानमें गये आपके चरित्र सुनकर वाक्य और मन द्वारा उसका आदर करतेहुये केवल जीवन धारण करतेहैं हेअजित ! त्रिलोकीमें वही आपको जीतसकतेहैं उनके पक्षमें आप दुर्लभ नहींहो । जो थोड़ेसे अन्नको छोड़कर बहुतसा भूसा लेताहै उसको जैसे कोई फल नहीं प्राप्तहोता, उसीभांति आपकी कल्याणकारी भक्तिको छोड जो केवल ज्ञानही प्राप्त करनेका यत्न करतेहैं उनको क्लेशही प्राप्त होताहै । हेअपरिच्छिन्न ! हेअच्युत ! इस पृथ्वीमें पहिले बहुतसोंने योगी होकरभी ज्ञान न प्राप्त करसकनेपर आपकी चेष्टाका ध्यान करतेहुये अपने २ कर्मोंको अर्पणकर आपकी कथाका निरंतर श्रवणकिया उससे आपपर जो उनकी भक्ति उत्पन्न हुई उस भक्ति योगसेही उन्होंने आत्माको जानकर आपके श्रेष्ठपदको प्राप्त किया अतएव भक्ति द्वाराही ज्ञान उत्पन्न होता रहताहै॥२–५॥ हेभूमन् ! क्या सगुण क्या निर्गुण तुम

ध्यात्मतयानचान्यथा ॥ ६ ॥ गुणात्मनस्तेऽपिगुणान्विमातुंहितावतीर्णस्यकईशिरेऽस्य । कालेनयैर्वाविमिताःसुकल्पैर्भूपांसवःखेमिहिकाद्युभासः ॥ ७ ॥ तत्तेऽनुकम्पांसुसमीक्षमाणोभुञ्जानएवात्मकृतंविपाकम् । हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्तेजीवेतयोमुक्तिपदेसदायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येशमेऽनार्यमनन्तआद्येपरात्मनित्वय्यपिमायिमायिनि । मायांवितत्येक्षितुमात्मवैभवंह्यहंकियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥ अतःक्षमस्वाच्युतमेरजोभुवोह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः । अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुषएषोऽनुकम्प्योमयिनाथवानिति ॥ १० ॥ क्वाहंतमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः । क्वेदृग्विधाऽविगणिताण्डपराऽणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्यचतेमहित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणंगर्भगतस्यपादयोःकिंकल्पतेमातुरधोक्षजागसे । किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितंतवास्तिकुक्षेःकियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥ जगत्त्रयान्तोदधिसंप्लवोदेनारायणस्योदरनाभिनालात् । विनिर्गतोऽजस्त्वितिवाङ्नवैमृषाकिंत्वीश्वरत्वन्नविनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वंनहिसर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशाऽखिललोकसाक्षी । नारायणोऽङ्गंनरभूजलायनात्तच्चापिसत्यंनतवैवमाया

दोनोंप्रकारसेहीनहीं जानेजासकते तौभी जिसने इन्द्रियोंको विषयोंमेंसे खींचकर अन्तःकरणमें रोक रक्खाहै वह जितेंद्रिय पुरुष अन्तःकरणके साक्षात्कारसे निर्विकारता विषयभाव और स्वप्रकाशता रूपसे ही तुम्हारी महिमाको कुछ एक जानसकताहै। निपुण मनुष्य चाहे तो बहुत जन्मोंमें पृथ्वीके- परमाणु आकाशके हिमकण और गगनमण्डलके नक्षत्रादिकी किरणोंके परमाणुओंकी गिनती कर- सकताहै परन्तु इस विश्वके मंगलकारी गुणोंके अधिष्ठाता भगवान् श्रीकृष्णजीके गुणोंकी गणना का कोई भी वर्णन नहीं करसकता। अतएव जो आदरपूर्वक तुम्हारी कृपाकी अभिलाषा कर, अपने कर्मफलोंका भोग करताहुआ अन्तःकरण, वाक्य और देहद्वारा तुमको नमस्कारकर जीवित रहताहै वही मोक्षरूपी धनकर अधिकारी होसकताहै। हेराजन्! ब्रह्माजी इसप्रकारसे स्तुतिकरके अपने अपराध के क्षमा करानके निमित्त अपने अपराध को कहने लगे कि—हेईश्वर! मेरी दु- र्जनता तो देखो। आप अनन्त, आदि, परमात्मा तथा माया जीवियों को भी मोहनेवालेहो, मैं इतना मूर्खहूं कि आपसेभी माया विस्तारकरके अपने ऐश्वर्य दिखानेकी इच्छाकीथी जैसे अग्नि के सामने ज्वाला कुछ नहीं है वैसेही मैं भी आप के निकट कुछ नहीं हूं॥ ६—९॥ हे भग- वन्! मेरे ऊपर दयाकरो, मेरी उत्पत्ति रजोगुण से है अतएव न जानकर "मैंहीजगतकर्त्ता हूं" इस अहंकार से मेरी दोनों आंखें अन्धी होगईथीं; इसी से जानताथा कि आपसे भिन्न दूसरा भी ईश्वर है। हे अच्युत! इस समय मुझको अपना दासजानकर मेरा अपराध क्षमाकरो॥ १०॥ अपने परिमाण से सातबालिश्त का प्रकृति, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से बना हुआ यह ब्रह्मांड यद्यपि मेरी देह है परन्तु आप के प्रत्येक रोमकूप में ऐसे असंख्य ब्रह्मांड निरन्तर आते जाते हैं। इस कारण मैं किस प्रकार से आपकी महिमाजानसकूंगा ॥ ११ ॥ हे अज! गर्भ में रहाहुआ बालक जो दोनों पैरों से मारता है, माताक्या उसकाअपराध ग्रहणकरती है? स्थूल और सूक्ष्म, कार्य कारण के नाम से कहेहुए इन समस्त पदार्थोंमेंक्याकोई आप के उदर से बाहर है॥ १२ ॥ प्रलयकालके परस्पर मिलेहुए समुद्रके जलमें स्थितनारायण के उदर के नाभि देश से ब्रह्मा उत्पन्नहुए; यह वाक्य यद्यपि सत्य है; तथापि हे ईश्वर! क्या मैं आप से उत्पन्न नहीं हुआ? आप सबप्राणियों के आत्मा और समस्तलोकों के साक्षीहो ॥१३॥ तो फिर क्या आप नारायण नहींहो? जीवसमूह जिस से उत्पन्नहुएहैं और नरसे उत्पन्न चौबीस तत्व और जल जिसका आश्रयहोने से नारायण नाम के द्वारा विख्यात है वह भी आपही का

॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थंतवसज्जगद्वपुः किंमेनदृष्टंभगवंस्तदैव । किंवासुदृष्टंहृदिमे तदैवकिंनोसपद्येवपुनर्व्यदर्शि ॥१५॥ अत्रैवमायाधमनाऽवतारेह्यस्यप्रपञ्चस्यबहिः स्फुटस्य । कृत्स्नस्यचान्तर्जठरेजनन्यामायात्वमेवप्रकटीकृतंते॥१६॥यस्यकुक्षाविदं सर्वंसात्मंभातियथातथा । तत्त्वय्यपीहतत्सर्वंकिमिदंमाययाविना ॥ १७॥ अद्यैवत्व दृतेऽस्यकिंममनतेमायात्वमादर्शितमेकोऽसिप्रथमंततोव्रजसुहृद्वत्साः समस्ताअपि तावन्तोऽसिचतुर्भुजास्तदखिलैः साकंमयोपासितास्तावंत्येवजगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयंशिष्यते ॥ १८ ॥ अजानतांत्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मनाभासिवितत्यमा याम् सृष्टाविवाहंजगतोविधानइवत्वमेषोऽन्तइवत्रिनेत्रः १९॥सुरेष्वृषिष्वीशतथैवनृ ष्वपितिर्यक्षु यादस्स्वपितेऽजनस्य । जन्मासतांदुर्मदनिग्रहाय प्रभोविधातःसद नुग्रहायच ॥२०॥ कोवेत्तिभूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् । क्व वाकथंवाकतिवाकदेति विस्तारयन्क्रीडसियोगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगद शेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् । त्वय्येवनित्यसुखबोधतनाव नन्तेमायात उद्यदपियत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मापुरुषःपुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्तआद्यः । नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखोनिरंजनः पूर्णोऽद्वयोमुक्तउपाधि-

अंश है । सबही आपकी माया है ॥ १४ ॥ हे देव ! जगतकी आश्रयभूत यह देह जल के बीच में स्थितथी यदि यह बात सत्य है । तो कमलनाल के मार्ग से जल में प्रवेशकर सौ वर्ष तक खोज करने परभी आपको क्यों न देखपाया ? और अन्तःकरण में भी क्यों न देखपाया ? परंतु तपस्या करनेपरही—मेरे दृष्टिगोचर क्योंहुए ? ॥ १५ ॥ हे माया विनाशक ! यहसब प्रपंचबाहर भली भांति प्रकाशमानतो होरहा है तौभी उदर में माता को यह समस्त दिखाकर आपनेअवतार मेंही अपनी माया दिखाई ॥ १६ ॥ जैसे यह विश्व आपके साथ आप के उदर में प्रकाश पाता है वैसेही बाहरभी ठीक उसी भांति से प्रकाशित होता हैं; तब यहसबही आपकी माया के कार्य के अतिरिक्त और क्या होसकता है ? ॥ १७ ॥ इस समयही आपने मुझे दिखाया कि आप के अतिरिक्त सब विश्वही माया है । आप प्रथम एक थे; तदुपरांत व्रजबालक और बछड़ों का रूप धारण किया ! फिर देखा कि सबही चतुर्भुज रूप से वर्तमान हैं और मैं समस्ततत्वों समेत उन सब मूर्तियों की उपासनाकरताहूं । तदुपरांत उतनेही ब्रह्माण्डरूप बनगये । इस समय वहां आप परिच्छेद रहित, अद्वैत परब्रह्मरूप से बिराजमानहो ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! आपही प्रकृति में स्थित हुए आत्माहो । जो मनुष्य आप के स्वरूपको नहीं जानता, उस के पक्ष में आपकीमाया स्वयंही प्रकाशपाती है; जैसे जगत की उत्पत्ति में मुझ ब्रह्माण्डरूप से और पालन में स्वयंही विष्णुरूपसे और संहार में रुद्ररूप से भासतेहो ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! बिधाता ! ईश्वर ! आप अजन्माहो, तौ भी देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी तथाजलचरों में जो आपका जन्म होता है वह केवल दुष्टों का नाशऔर भक्तों पर कृपा करने के निमित्तही होता है ॥ २० ॥ हे भूमन् ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर ! त्रिलोकी में कौनपुरुष कहांपर है, किसप्रकार से है और किस काल में हैं यह केवल आपकी लीलाही से विदित होसकता है ॥ २१ ॥ आप योगमाया का विस्तारकरके क्रीडाकरतेहो अतएवयह असत्स्वरूप स्वप्नकी समान, प्रतिभासरहित, अशेषसंसार—आप के नित्यसुख, चैतन्यमय अनन्त स्वरूप में माया से उत्पन्न होने और लय होने के कारण नित्य सुख चैतन्य रूप सा प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ एक आपही सत्यहो ! क्योंकि आप आत्मा और पुरुष होने के कारण सृष्ट्यादि कार्यों के पहिलेही से वर्तमानऔर आदिहो—आपही नित्य, अनन्त, और अद्वयहो, आपकासुख निरवच्छिन्न है । आप का क्षय, विनाशनहीं है, आप स्वयंही

तोऽमृतः ॥२३॥ एवंविधंत्वांसकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतयाविचक्षते। गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषाये तेतरन्तीवभवानृताम्बुधिम् ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैवजातं निखिलंप्रपंचितम् ॥ ज्ञानेनभूयोऽपितत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौयथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौभवबन्धमोक्षौ द्वौनामनान्यौ स्तऋतज्ञभावात् । अजस्रचित्यात्मनिकेवलेपरेविचार्यमाणेतरणाविवाहनी ॥२६॥ त्वामात्मानंपरंमत्वापरमात्मानमेवच । आत्मापुनर्बहिर्मृग्यअहोऽज्ञजनताऽज्ञता।२७। अन्तर्भवेऽनन्तभवन्तमेवह्यतत्त्यजन्तोमृगयन्तिसन्तः। असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेणसन्तंगुणंतंकिमुयन्तिसन्तः ॥ २८ ॥ अथापितेदेवपदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीतएवहि । जानातितत्त्वंभगवन्महिम्नोनचान्यएकोऽपिचिरंविचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तुमेनाथसभूरिभागोभवेऽत्रवाऽन्यत्रतुवातिरश्चाम् । येनाहमेकोऽपिभवज्जनानांभूत्वानिषेवेतवपादपल्लवम् ॥ ३० ॥ अहोऽतिधन्याव्रजगोरमण्यःस्तन्यामृतंपीतमतीवतेमुदा । यासांविभोवत्सतरात्मजात्मनायत्तृप्तयेऽद्यापिनचालमध्वराः ॥३१॥ अहोभाग्यमहोभाग्यंनन्दगोपव्रजौकसाम् । यन्मित्रं परमानन्दंपूर्णंब्रह्मसनातनम् ॥ ३२ ॥ एषांतुभाग्यमहिमाऽच्युततावदास्तामेकादशैवहिवयंबतभूरिभागाः । एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवंते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभा

प्रकाशवान्, निर्मल और उपाधि रहित हैं ॥ २३ ॥ जो इसप्रकार से समस्त प्राणियों के आत्म स्वरूप आपको मुख्य आत्मस्वरूप से देखते रहते हैं,वे सूर्यरूपी गुरु से प्राप्तहुए ज्ञाननेत्रों के द्वारा संसाररूप मिथ्यासागर से पारहोजाते हैं ॥ २४ ॥ जैसे रस्सी से महासर्प की उत्पत्ति और अस्वीकारता होती रहती है, वैसेही जो आत्माको आत्मा कहकर नहीं जानते, उन्हके सामनेही उसी अज्ञान से यहसब प्रपंच प्रकट प्रकाशित होते हैं और ज्ञानके उत्पन्न होतेही वे सब नाश होजाते हैं ॥ २५ ॥ भवबन्धन और मोक्ष यह दोनों नामही अज्ञानकल्पित है,यह दोनों सत्य ज्ञानस्वरूप आत्मा से भिन्न नहीं हैं। सूर्य में जैसे रात्रि दिन कुछ नहीं है, शुद्ध, चैतन्य ब्रह्म में भी वैसेही बन्धन और मोक्षभी कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ यह मूर्खों की मूर्खता है—कि आप जो आत्मा हो उन आप को वह आत्मा से पृथक् तथा देहादिकोंही आत्मा जानते हैं। आत्मा का क्या बाहर खोजकियाजाता है ॥ २७ ॥ हे अनन्त ! सबसाधू जड़पदार्थों को छोडकर देहके भीतरही आत्मा का अनुसन्धान करते हैं। निकटसर्प नहीं है तौभी सर्प को अस्वीकार न कर कौनमनुष्य उसको रस्सी जानसकता है ? ॥ २८ ॥ हेभगवन् ! ज्ञानद्वारा मोक्षतो प्राप्तहोसकती है तौभी हे देव ! जो तुम्हारे चरणकमलों की प्राप्तिके अंशमात्रभी अनुग्रहीत हुए हैं वेही आपकी महिमा के तत्व को जानसकते हैं; इस के अतिरिक्त और चाहे कोई होवे, विना मिथ्या परित्यागकिये चाहेबहुत काल तक विचार किया करे तौभी नहीं जानसकता ॥ २९ ॥ अतएव हेनाथ ! इसही जन्म में हूं चाहे पशु पक्षियों आदि किसी दूसरे जन्म में हूं परन्तु आप के भक्तों का एक सेवक होकर उन के चरणों की सेवा करसकूं यह मुझे सौभाग्य प्राप्तहो ॥ ३० ॥ अहो ! व्रजनारियें और व्रजगायें बड़ीही भाग्यशाली हैं। हेविभो ! आपने एक बर्षतक पुत्ररूप से आनन्दित होकर उनके स्तन्यामृतका पान कियाहै समस्त यज्ञभी अबतक आपकी तृप्ति नहीं कर सके ॥ ३१ ॥ अहो ! नन्दगोपआदिक व्रजवासीगण कैसे भाग्यशालीहैं कि परमानन्द स्वरूप पूर्ण सनातन ब्रह्म उनके आत्मीय हैं ॥ ३२ ॥ हेअच्युत ! दश इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारके अधिष्ठाता हम तेरह देव और हम सबों में मुख्य शिवजीभी भाग्यशाली हैं क्योंकि इन व्रजबासियोंके इन्द्रियमय प्यालोंसे आपके चरणारबिंद के मकरन्द रूप मधुर आसवका बारम्बार पान करतेहैं ॥

यमिहजन्मकिमप्यटव्यांयद्गोकुलेऽपिकतमांघ्रिरजोभिषेकम् । यज्जीवितंतुनिखिलंभगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापियत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥ एषांघोषनिवासिनामुतभवान् किंदेवरातेतिनश्चेतोविश्वफलात् फलं त्वदपरंकुत्राप्ययन्मुह्यति ॥ सद्वेषादिवपूतनापिसकुला त्वामेवदेवाऽऽपिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥ तावद्रागादयःस्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्। तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्णनतेजनाः ॥ ३६ ॥ प्रपंचंनिष्प्रपंचोऽपि विडम्बयसिभूतले । प्रपन्नजनताऽऽनन्दसंदोहंप्रथितुंप्रभो ॥ ३७ ॥ जानन्तएवजानन्तु किंबहूक्त्यानमेप्रभो मनसोवपुषोवाचो वैभवतवगोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहिमांकृष्ण सर्वंत्वंवेत्सिसर्वदृक् । त्वमेवजगतांनाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् । उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यभिष्टूयभूमानं त्रिःपरिक्रम्यपादयोः । नत्वाऽभीष्टंजगद्धाता स्वधामप्रत्यपद्यत॥४१॥ततोऽनुज्ञाप्यभगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् । वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखंस्वकम् ॥ ४२ ॥ एकस्मिन्नपियातेऽब्दे प्राणेशंचान्तरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धंमेनिरेऽर्भकाः ॥ ॥ ४३ ॥ किं किंनविस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं

॥३३॥ इसजीव लोकमें उसमेंसे बनमें और बनमेंसे गोकुलमें जिसका जन्महो वहीबडा भाग्यशाली है क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेसे किसी न किसी गोकुलबासीके चरणकी रज शरीरमें पडहीसकती है।जिन परमात्माकी चरणरजको वेदभी ढूंढ़ते हैं वह श्रीकृष्ण भगवान् जिनके अखिल जीवन रूपहैं उन ब्रजबासियोंकी चरणरज मिलना बड़ाही कठिन कार्य है ॥ ३४ ॥ हेदेव ! आपके भक्तों का अनुकरण मात्र करके जब पूतना, बकासुर, और अघासुर आदि राक्षसगण अपने आत्मीयजनों समेत आपको प्राप्तहुए तब आप इन ब्रजबासियोंको सर्वफलके देनेवाले अपनेसेभी श्रेष्ठ और कौनसा फल दोगे, मेरा चित्त सबकुछ विचार करके भी इसका निश्चय नहीं करसकता क्योंकि आप ब्रजबासियोंके गृह, धन बन्धु, प्रियजन, पुत्र, प्राण और अभिलाषाके एक मात्र कारणहो अतएव उनकोभी पूतनाही की समान लाभमिले तो वह पूरा नहीं होसकता ॥३५॥ हे श्रीकृष्णजी जबतक आपकी मनुष्यसे पूर्ण भक्ति नहीं होसकती तबतक रागादि चोररूपी घर काराग्रहरूपी और मोह पैरको बेडी रूप रहताहै ॥ ३६॥ हेविभो ! आप निष्प्रपंच होकरभी दुःखित शरणागत मनुष्योंके आनन्द देनेके कारण पृथ्वीपर प्रपंचका अनुकरण करतेहो, ॥ ३७ ॥ हे विभो ! जो जानतेहों वे जानें परन्तु आपका वैभव मेरे शरीर मन, वाक्य का विषय नहीं है आज्ञा करिये मैं जाऊँ ॥ ३८ ॥ आप सर्वदर्शीहो अतएव कुछ जानतेहो । आप जगतके अधीश्वरहो अतएव ममता का विषय यह जगत और शरीर आपको अर्पण करताहूं ॥ ३९ ॥ हेकृष्ण ! हेवृष्णिकुल कमल के प्रकाश करनेवाले सूर्य ! हेपृथिवी, देव, द्विज और पशु और सागर के बढ़ानेवाले चन्द्रमा ! हेपाखण्ड धर्मरूपी रात्रिके अन्धकार को नाश करनेवाले ! हेसूर्य आदि पूज्य देवताओंके पूज्य ! कल्प पर्यंत आपको मेरा प्रणामहै ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! जगत् स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान की इसभांति स्तुति और तीन परिक्रमा व चरणोंको प्रणामकर अपने लोकको सिधारे ४१ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजी, ब्रह्माजी की आज्ञा ले पूर्ववत् स्थितहो सबबछड़ों को यमुनातटपर ले आये; रेती भी पहिले की समानसखाओं से परिपूर्ण होगई ॥ ४२॥ हेराजन् ! अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्णजी के बिना यद्यपि बालकों को एक क्षण वर्ष से भी अधिक ज्ञातहोताथा तौभी उन्होंने माया से मोहितहो एक वर्ष के बीतजाने को आधा क्षण जाना ॥ ४३ ॥ जिस मायासे मोहित

विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा । नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥ ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः । वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना । हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच । ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् । योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच । सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः । इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥ तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् । न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम । यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः । यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् । जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च । भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः । तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समा

होने पर संसार क्षण २ में आत्मा को भूलजाता है-संसार में उसी माया से जिनके चित्त मोहित होजाते हैं वे क्या नहीं भूलसकते ॥ ४४ ॥ व्रजबालकों ने श्रीकृष्णजी से कहा कि—हे सखे ! तुम बहुतही शीघ्र आगये हमने एक ग्रासतक भक्षणनकरपाया। इस ओर आओ, भोजन करो, विलम्ब न करो ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णजी हँसे और बालकों के साथ भोजन कर अजगर का चमड़ा देखते२ व्रजधाम में जाने लगे ॥ ४६ ॥ धीरे २ श्रीकृष्णजी ने व्रज में प्रवेश किया । मोरपंख फूल और नवीन धातुओं से उनका श्रीअंग चित्रितथा । वह उच्चस्वर से वंशीबजाय और सींग के शब्द से आनन्दयुक्तहो आदर पूर्वक बछड़ों को बुलाते थे । उनकी श्रीमूर्ति गोपियों के कमलरूपी नेत्रों को प्रफुल्लितकरतीथी ॥ ४७ ॥ हेराजन् ! बालकों ने व्रजमें आयकर कहा कि—यशोदा और नन्दके इसपुत्र ने आज अजगर को मारा, हमने इस से रक्षापाई है ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित् ने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णजी तो दूसरे के पुत्रथे । अपने अपने पुत्रों पर व्रजवासियों का जो स्नेहथा उसकी अपेक्षा श्रीकृष्णजी पर उनका अधिकस्नेह क्यों हुआ ? आप इस बातको कहिये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! आत्माही सबप्राणियों को प्रिय है; पुत्रसम्पत्ति आदि समस्तपदार्थ आत्माही के प्रियहोने से प्रिय हैं ॥ ५० ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! अपनी २ आत्मा के ऊपर प्राणियों को जितना स्नेह है, ममताश्रयी धन, पुत्र और घरपर उतनानहीं है ५१ हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! जो देहकोही आत्मा कहते हैं उनकोभी देह जितनी प्रिय है कि देह के अनुवर्त्ती पुत्रादि उतने नहीं हैं ॥ ५२ ॥ देह, ममता का भाजनतो है, परन्तु आत्मा की समान प्रिय नहीं है । देखो-देह यद्यपि जीर्ण भी होजावे तौभी जीवनकी आशा प्रबलरहती है ॥ ५३ ॥ अतएव अपना आत्माही सबप्राणियों को प्रिय है, और यह चराचर जगत्भी आत्माही के कारण प्रिय है ॥५४॥ और श्रीकृष्णजी सबआत्माओंके आत्मा हैं । वे जगत् के कल्याण के निमित्त महायोग से इस पृथ्वी पर प्राणियों की समान प्रकाशपाते हैं ॥ ५५ ॥ जो श्रीकृष्णजी को सबजगत्काकारण रूप जानते हैं उनके सामने समस्त चराचर भगवत्रूप हैं उन से भिन्न और कोई पदार्थहीनहीं है ॥ ५६ ॥ समस्तपदार्थों के परमार्थ कारण से स्थितहुए कृष्णजी उन कारणों के भी कारण हैं

श्रितायेपदपल्लवप्लवंमहत्पदंपुण्ययशोमुरारेः । भवाम्बुधिर्वत्सपदंपरंपदं पदंपदं यद्विपदांनतेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयत्पृष्टोऽहमिहत्वया । यत्कौमारेहरिकृतं पौगण्डेपरिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितंमुरारेरघार्दनंशाद्वलजेमनंच । व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवंशृण्वन्गृणन्नेतिनरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥ एवंविहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चपौगण्डवयः श्रितौव्रजेबभूवतुस्तौपशुपालसंमतौ । गाश्चारयन्तौसखिभिः समंपदैर्वृन्दावनंपुण्यमतीवचक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवोवेणुमुदीरयन्वृतोगोपैर्गृणद्भिः स्वयशोबलान्वितः । पशून्पुरस्कृत्यपशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरंवनम् ॥ २ ॥ तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःस्वच्छपयः सरस्वता । वातेनजुष्टंशतपत्रगन्धिनानिरीक्ष्यरन्तुंभगवान्मनोदधे ॥ ३ ॥ सतत्रतत्रारुणपल्लवश्रियाफलप्रसूनोरुभरेणपादयोः । स्पृशच्छिखान्वीक्ष्यवनस्पतीन्मुदास्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहोअमीदेववराम रार्चितंपादाम्बुजंतेसुमनःफलार्हणम् । नमन्त्युपादायशिखाभिरात्मनस्तमोऽपहत्यै तरुजन्मयत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तवयशोऽखिललोकतीर्थंगायन्तआदिपुरुषानु

अतएव भगवान से कोई भी पदार्थ भिन्ननहीं होसकता ॥ ५७॥ महात्मा मनुष्य, पवित्रकीर्तिवाले भगवान के जिन नौकारूपी चरणकमलों की पूजाकरते रहते हैं, जिन्होंने उसी नौकाका आश्रय किया है; उनके लिये भवसागर गौ के खुरकी समान है । वही परमपद बैकुण्ठको प्राप्तकरसकते हैं; बिपदके आश्रय संसाररूपी कारागार में फिर वह नहीं आते ॥ ५८ ॥ हेराजन् ! तुमने जो मुझ से पूछाथा कि—भगवान् ने पांचवर्ष की वय में जो कर्म कियेथे वह उनके छठवें वर्ष में किस भांति कहे गय । मैंने तुमसे इसका सबकारणकहा ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य, भगवान् के बन्धुओं के साथ क्रीड़ाकरने, अघासुर के मारने, हरियाली भूमि में भोजन करने शुद्धसत्वात्मक बछड़े और बालकों का रूप धारण करने और ब्रह्माजीकी स्तुति,को सुनेगा अथवा कहेगा उसको सबपुरुषार्थ प्राप्तहोंगे ॥ ६० ॥ हे महीपाल ! राम,कृष्ण ने इसप्रकारसे पुलबांधने और बालकों के साथखेलने आदि की लीला द्वारा ब्रज में कौमार अवस्था के खेल खेलकर उस अवस्था को व्यतीतकियाथा

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! राम, कृष्ण छठवें वर्षमें पदार्पण करतेही पशु पालन के योग्य हुये,तब साथियों समेत गौ चराते हुये अपने चरण स्पर्श द्वारा सब दिशाओं में वृन्दावनको पवित्र करने लगे ॥ १ ॥ एक दिन श्रीकृष्णजी खेलने की इच्छा से, बंशी बजाते बजाते पशुओंको आगेकर, बलरामजी के साथ उस फूलों के बनमें गये गोपगण यशका गान करते २ उनके साथ २ चले ॥ २ ॥ भगवान् ने देखाकि—बन—सुंदरपक्षी, भौंरों से और मृगोंसे परिपूर्ण है; वहां महात्माओं के अंतःकरण की समान स्वच्छ सरोवर कमलों से शोभायमान है—वायुकमलों की सुगंधिसे सुगंधित हो बनके चारो ओर विहार कररहा है । यह देखकर श्रीकृष्णजी उस स्थान में विहार करने लगे ॥ ३ ॥ बनमें वृक्षोंको फल फूलके बोझसे लचेहुए लालपत्तों की कांतिसमेत शाखाओंको पैरों में लगता देख वे आनंदित हुये और हंसकर बलदेवजी से कहने लगे ॥ ४ ॥ कैसा आश्चर्य है ! कि जिनपापों से इन सब वृक्षोंका वृक्ष जन्म हुआ है उन्हीं पापों के नाश करने के निमित्त यह फूल फलोंको भेटमें लेकर अपनी शाखा के अग्रभाग द्वारा, देवताओं से पूजित आपके चरणकमलों को नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ हे आदि पुरुष ! यह सबभौंरे आपके सब लोकको पवित्र करने वाले

पदं भजन्ते । प्रायोअमीमुनिगणाभवदीयमुख्यागूढंवनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥ नृत्यन्त्यमीशिखिनईड्यमुदाहरिण्यः कुर्वन्तिगोप्यइवतेप्रियमीक्षणेन । सूक्तैश्चकोकिलगणागृहमागतायधन्यावनौकसइयान्हिसतांनिसर्गः ॥ ७॥ धन्येयमद्यधरणीतृणवीरुधस्तत्पादस्पृशोद्रुमलताः करजाभिमृष्टाः । नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योन्तरेणभुजयोरपियत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृंदावनंश्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् । रेमेसंचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सुसानुगः ॥ ९ ॥ क्वचिद्गायतिगायत्सुमदान्धालिष्वनुव्रतैः । उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्चकलहंसानामनुकूजतिकूजितम् । अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणंहासयन्क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगम्भीरयावाचा नामभिर्दूरगान्पशून् । क्वचिदाह्वयतिप्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्चबर्हिणः । अनुरौतिस्मसत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्संगोपबर्हणम् । स्वयंविश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतोगायतःक्वापि वल्गतोयुध्यतोमिथः । गृहीतहस्तौगोपालान्हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः । वृक्षमूलाश्रयःशेते गोपोत्संगोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनंचक्रुः केचित्तस्यमहात्मनः । अपरेहतपाप्मानो व्यजनैःसमवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्येतदनुरूपाणि मनोज्ञानिमहात्मनः गायन्तिस्मम

सुयशका गानकर आपके साथ २ जाते हैं। हे अनंत ! निश्चयही यह आपके सेवक ऋषिगण हैं। देखो–आप वनमें गुप्तभाव से रहतेहो तौभी यह आपको परित्याग नहीं करते; आप इनके आत्म दैवतहो ॥ ६ ॥ हे पूज्य ! यह सब वनवासी अत्यंत भाग्यशाली हैं! यह सबमोर आपको घरसे आयादेख आनंद युक्तहो आपके निकट नाचते हैं और यह हरिणियें गोपियों की समान आनंद पूर्वक देखती हैं तथा कोकलायें सुंदर स्वरसे गाय गायकर आपको संतोष उत्पन्न कराती हैं; सत्पुरुषोंका यही स्वभाव है ॥ ७॥ आज यह पृथ्वी, घास और लताएँ आपके स्पर्शसे; वृक्ष, लता सब आपके नखों से छिन्न होकर; नदी, पहाड़ पक्षी और हिरण आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करके तथा गोपियें लक्ष्मी कोभी वांछनीय आपकी भुजाओं को प्राप्त होकर धन्य और कृतार्थ हुई ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोलकि–हे राजन्! श्रीकृष्णजी अनुचरों समेत आनंदित और प्रसन्न चित्तहो वृन्दा वनमें पशुओंको चराय २ पहाड़ और नदी के किनारों पर विहार करनेलगे ॥ ९ ॥ मार्गमें संगी उनके चरित्रोंका गान करते रहते, बलरामजी के संग मतवाले भौंरों के साथ वहभी गानेलगे ॥१०॥ कभी मधुरभाषी तोतों के साथ बातकरने लगते, कभी कोकिल की मधुरवाणीका अनुकरण करके दौड़ने लगते; कभी कलहंसों के मधुर शब्दके साथ मधुरनाद करने लगते; कभी साथियोंको हँसाय मोरों के साथ नाचना आरंभ करते ॥ ११ ॥ कभी मेघकी समान गंभीर और गोप, गायों को प्रियलगे ऐसी बाणी से दूर गयेहुये पशुओं को प्रीतिपूर्वक बुलाते ॥ १२ ॥ कभी चकोर, कौंच, चक्रवाक, भारद्वाज और मोरोंका अनुकरणकर शब्द करते २ इधर उधर भागे २ फिरते कभी ऐसा दिखाते कि–मानो पशुओं के बीचमें बाघ और सिंहके आनेसे भयभीत हुये हैं ॥ १३ ॥ कभी क्रीड़ासे थकेहुये बलरामजीको गोपोंकी गोदरूप शय्यामें लिटाय स्वयं उनके पैरचाप उनका श्रम दूरकरते ॥ १४ ॥ कभी दोनोंभाई परस्पर हाथ पकड़कर सहते २ नाचते, गाते, कूदते, फांदते; और कभी सब मल्लयुद्ध करने वाले बालकों की प्रशंसा करतेथे॥ १५ ॥ जबक्रीड़ा से श्रमितहो वृक्षोंकी जड़में गोपोंकी गोदपर मस्तक रखकर शयन करते,हे महाराज ! उस समय कोई २ पाप रहित बालक श्रीकृष्णजी के चरणचापते, कोई २ बीजनसे पवन करते; कोई २ स्नेहके वशीभूत

हाराज स्वहृक्लिवधियःशनैः ॥१८॥एवंनिगूढात्मगतिःस्वमायया गोपात्मजत्वं चरितै र्विडम्बयन् । रेमेरमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैःसमंग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥ श्रीदामानामगोपालो रामकेशवयोःसखा । सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाःप्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ रामरामहाबाहो कृष्णदुष्टनिबर्हण । इतोऽविदूरेसुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥ फलानितत्रभूरीणि पतितानिपतन्तिच ॥ सन्तिकिंत्ववरुद्धानि धेनुकेनदुरात्मना ॥ २२ ॥ सोऽतिवीर्योऽसुरोराम हेकृष्णखररूपधृक् । आत्मतुल्य बलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् । नसेव्यते पशुगणैःपक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानिसुरभीणिच । एषवैसुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छतानिनःकृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् । वाञ्छास्तिमहतीराम गम्यतांयदिरोचते ॥ २६ ॥ एवंसुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया । प्रहस्यजग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनंप्रभू ॥ २७ ॥ बलःप्रविश्यबाहुभ्यां तालान्संपरिकम्पयन् । फलानिपातयामास मतंगजइवौजसा ।२८। फलानांपततांशब्दं निशम्यासुररासभः । अभ्यधावत्क्षितितलं सनगंपरिकम्पयन् । ॥२९॥ समेत्यतरसाप्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यांबलंबली. । निहत्योरसिकाशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्यसंरब्ध उपक्रोष्टापराक्स्थितः । चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ सतंगृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना । चिक्षेपतृणरा-

हो मृदुस्वर से श्रीकृष्णजी के चरित्रोंका गानकरते ॥ १६—१८ ॥ लक्ष्मी जिनके चरणों की सेवा करती हैं वही ईश्वर अपने स्वरूपको गुप्तकर अपनी माया द्वारा क्रीडा करते हुये गोप बालकोंका अनुकरणकर साधारण बालकों के साथ उन्ही की समान क्रीडा करनेलगे, वहां बीच २ में कभी ईश्वर की लीलाभी दिखाई पडतीथी ॥ १९ ॥ बलराम ने और श्रीकृष्णजी के सखा श्रीदामा नामक गोप और सुबल स्तोक कृष्ण आदि दूसरे गोपोंने एकदिन प्रीतिपूर्वक कहा कि—॥ २० ॥ हेराम ! हेमहाबलराम ! हेदुष्टदमन कृष्ण ! इसस्थान से बहुतही समीप एक ताल बनहै, वहां नित्य बहुतसे फल गिरतहैं और अबभी पड़ेहुएहैं । परंतु दुष्ट धेनुका सुर उन फलोंकी रक्षा करताहै २१—२२ हेराम ! हेकृष्ण ! वह असुर अत्यन्त पराक्रमीहै, गधेकारूप धारणकर वह नित्य वहां बासकरताहै । उसकेसमानहीं बलवान औरभी दूसरी जातिवाले असुर उसके साथहैं ॥ २३ ॥ हे शत्रुघ्न! वह मनुष्यका आहार करता है; अतएव सब मनुष्य उसके भयसे भीत रहतेहैं उस स्थानमें बहुतसे सुगन्धित फल पड़ेहुयेहैं उनका भोजन अबतक किसीने नहीं करपाया । यह देखो चारोंओरसे सुगन्धि चली आरहीहै ॥ २४—२५ ॥ इस सुगन्धिसे हमारा चित्त मोहित होगयाहै इससे उन फलोंके खानेका बड़ाही लोभ उत्पन्नहोआयाहै हेकृष्ण ! हमें उन सब फलोंको देवो; हे राम ! हमारी अत्यन्त इच्छाहै यदि तुम्हारी इच्छाहो तो चलो ॥ २६ ॥ हेराजन् ! प्रभु राम कृष्ण मित्रोंकी इसबातको सुनकर उनकी इच्छापूर्ण करनेके निमित्त हंसते २ गोपोंके साथ उस तालबनको गये ॥ २७ ॥ बलदेवजी तालबनमें प्रवेश करके मतवाले हाथीके सामन हाथोंसे तालबनको हिलाय २ कर फल गिरानेलगे ॥ २८ ॥ फलोंके गिरने का शब्द सुनकर गधारूपी असुर पर्वतकी समान पृथ्वीको कम्पाताहुआ दौड़कर आया॥२९॥ उसने आतेही पिछले दोनों पैरोंसे बलपूर्वक बलराम की छातीपर आघात किया, तदनन्तर गधे की समान घोर शब्द करताहुआ चारोंओर को भागनेलगा ॥ ३० ॥ हेराजन् ! फिर उस क्रोधित गधेने क्रोधसे बलरामजीके ऊपर दोनों पिछले पैरोंका प्रहार किया ॥ ३१ ॥ बलरामजीने एक

जाग्रे भ्रामणव्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाहतोमहातालो वेपमानोबृहच्छिराः । पार्श्वस्थंकम्पयन्भग्नः सचान्यंसोऽपिचापरम् ॥३३॥ बलस्यलीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः । तालाश्चकम्पिरेसर्वे महावातेरिताइव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रंभगवति ह्यनन्तेजगदीश्वरे । ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वंगयथापटः ॥ ३५ ॥ ततःकृष्णंचरामञ्च ज्ञातया धेनुकस्ययो । क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धाहतबान्धवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततःकृष्णो रामश्चनृपलीलया । गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥ फलप्रकरसंकीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः । रराजभूःसतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥३८॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्यविबुधादयः मुमुचुःपुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणंच पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णःकमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः । स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजोव्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥ तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् । वेणुंक्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि । तत्सत्कृतिंसमधिगम्य विवेशगोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोःपुत्रवत्सले । यथाकामंयथाकालं व्यधत्तांपरमाशिषः ॥ ४४ ॥

हाथसेही उसके दोनों पैर पकड़ घुमाय ताल वृक्षपर देमारा ॥ ३२ ॥ इसप्रकार घुमानेहीमें उसके प्राण निकल गयेथे । अति ऊँचा ताल वृक्ष गधेके शरीरसे आहत हो कांपते २ पासके वृक्षों को कम्पायमान करताहुआ गिरपड़ा । वह पासका वृक्ष दूसरेको और वह दूसरा तीसरेको कम्पाने लगा ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने सहजसेही उस गधेकी देहको फेंका कि जिसके द्वारा हताहतहुये समस्त ताल वृक्ष ऐसे कांपनेलगे कि जैसे महाबायुके चलनेसे कांपतेहों ३४ ॥ हेमहाराज ! भगवान् जगदीश्वर शेषजीके इस कार्यमें कुछ आश्चर्य नहीं है तंतु समूहमें बस्त्रकी समान यह संसारउनमें ओतप्रोत भावसे विराजमान है ॥ ३५ ॥ धेनुककी जातिवाले जो दूसरे गधेथे वे बांधवके मरनेसे क्रोधितहो राम और कृष्णजीके ऊपर आक्रमण करनेको दौड़े॥३६॥ हेराजन् ! वे जैसे२ दौड़-दौड़कर आने लगे; वैसे २ राम और श्रीकृष्णजी सहजसेही पैर पकड़ २ ताल वृक्षोंपर उनको पटकनेलगे ॥ ३७॥ बनभूमि असंख्य दैत्योंके शरीर तथा ताल वृक्षोंके फलोंसे परिपूर्णहो बादलों से ढकहुए आकाश की समान शोभा पानेलगी ॥ ३८ ॥ बलरामजी व कृष्णजीके उस अद्भुत कर्मको सुन देवता आदि फूल बरसाने दुन्दुभी बजाने और नानाप्रकारकी स्तुति करनेलगे ३९ ॥ उस दिनसेही सब लोग निर्भय होकर उस तालवनमें ताल फल ग्रहण करनेलगे तथा पशुगण तृण भक्षण करनेलगे; ॥ ४० ॥ हेराजन् ! जिनके नामादि सुनने और कहनेसे पवित्रता उत्पन्न होतीहै वे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णजी बलदेवजीके साथ ब्रजकी ओरचले, ॥ ४१ ॥ गोपगण स्तुति करते २ उनके पीछे२चले । गायोंके खुरोंकी उड़ीहुई धूलसे श्रीकृष्णजीके केश धूसरित होगयेहैं उनमें मोरपंखका मुकुट व बनके फूल गुथेहुएहैं वह सुन्दर नेत्र व सुन्दर हास्ययुक्त और बंशी बजारहेहैं । उनके देखनेके निमित्त सब गोपियोंके नेत्र उत्सुकथे इससमय उनको आयादेख सब मिलकर निकट आईं ॥ ४२ ॥ दिनभर कृष्णजीके वियोगसे जो ताप उत्पन्नहुआथा ब्रजनारियोंने नेत्ररूपी भौरों द्वारा श्रीकृष्णजी के मुखरूपी मधुका पानकर उसको दूरकिया । श्रीकृष्णजीभी उनके लज्जायुक्त हास्य और बिनययुक्त कटाक्ष बिक्षेपरूप पूजाको स्वीकारकर ब्रजमेंगये ॥ ४३ ॥ पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने दोनों पुत्रोंको गोदमेंले समयोचित श्रेष्ठ आशीर्वाद दिया

गताध्वानश्रमौतत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवींवसित्वारुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतंप्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ । संविश्यवरशय्यायां सुखसुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवंसभगवान्कृष्णो वृन्दावनचरःक्वचित् । ययौराममृते राजन्कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथगावश्चगोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टंजलंपपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः । निपेतुर्व्यसवःसर्वे सलिलान्तेकुरूद्वह ॥४९॥ वीक्ष्यतान्वैतथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥५०॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् । आसन्सुविस्मिताःसर्वे वीक्षमाणाःपरस्परम् । ५१। अन्वमंसततद्राजन्गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।पीत्वा विषंपरेतस्यपुनरुत्थानमात्मनः५२

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ विलोक्यदूषितांकृष्णां कृष्णःकृष्णाहिनाविभुः । तस्याविशुद्धिमन्विच्छन् सर्पंतमुदवासयत् ॥१॥ राजोवाच ॥ कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानाहिम् । सचैबहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्रकथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नःस्वच्छन्दवर्तिनः । गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतंजुषन् ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिंद्यांकालियस्यासीद्ध्रदःकश्चिद्विषाग्निना । श्रप्यमाणपयायस्मिन्पतन्त्युपरिगाःखगाः ॥ ४॥ विप्रुष्मताविषोदोर्मि मारुतेनाभिमर्शिताः । म्रियन्तेतीरगा

॥ ४४ ॥ राम और कृष्णजीने उबटन स्नान द्वारा मार्ग का श्रम दूरकिया और सुन्दर वस्त्र पहिन दिव्यमाला और सुगन्धित पदार्थों से विभूषितहुए ॥ ४५ ॥ तदनन्तर माताओंने जो सुस्वादु अन्न लाकर दिया उसको आदर समेतखाय श्रेष्ठ शय्यामें लेट सुखसे सोने लगे ॥ ४६ ॥ हेराजन् ! वह भगवान् श्रीकृष्णजी इस प्रकार से वृन्दावन में विचरण करते थे, एक दिन वह बलरामजी को साथ न ले सखाओं सहित यमुना तटपरगये ॥ ४७ ॥ गाय और गोपगणों ने गरमी से संतप्त और प्यासेहो उस स्थानपर विष दूषित जलपान किया ॥४८॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! देववश मोहित चित्त होने से उस विष जलकापानकर सबही अचेतहो नदी की रेती पर गिरपड़े ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णजी ने उनको ऐसी दशा में प्राप्तहुआ देख अमृतवर्षिणी दृष्टिद्वारा फिर जीवित किया और तत्कालही उनकी स्मृति शक्ति आगई ॥ ५० ॥ हे राजन् ! वह जल के निकट से उठकर बड़ेही विस्मितहुए और विस्मय सहित एक दूसरे का मुख देखने लगे ॥५१॥ सबने बिचार किया कि—हमसब बिषपान से परलोकगामी होकर जो फिर जाकर उठखड़ेहुएयह केवल श्रीकृष्णजीही की दया दृष्टि का कारण है ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा०दशम० सरलाभाषाटीकायांपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! कालियसर्प द्वारा कालिंदी का जल दूषितहोताहुआ देख सर्वशक्तिमान भगवान ने उस के शुद्ध करनेकी इच्छाकी भगवान् नेउस सर्प को वहां से निकाल कर बाहर करादिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—हेमहात्मन् ! भगवान् ने अगाध जल में से किस प्रकार सर्प को निकालाथा ? और वह सर्प भी जलचर न होकर किसप्रकारसे बहुत दिनों तक जल में रहा ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वव्यापी भगवान ने अपनी इच्छानुसार जो २ कार्य किय हैं वहसबही चरित्र अमृत के तुल्य हैं; बहुत सेवनकरने परभी उनसे कोई भी उकता नहीं सकता ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! यमुना में एक कुण्डथा, कालिय उसी में बास करताथा । उस सर्प की विषाग्नि के संयोग से उस कुण्ड का जल सदैव खौलतारहताथा यदि उस के ऊपर से कोई भी पक्षी उडता तो वह उसही में गिरपडताथा ॥ ४ ॥ इस कुण्ड में होती

यस्य प्राणिनःस्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥ तंचण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्यतेनदुष्टानांदमनहेतोःखल संयमनावतारः । कृष्णःकदम्बमधिरुह्यततोऽतितुङ्गमास्फोट्यगाढरशनोन्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदःपुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः । पर्यक्प्लुतोविषकषायविभीषणोर्मिर्धावन्धनुःशतमनन्तबलस्यकिंतत् ॥ ७ ॥ तस्यह्रदेविहरतोभुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्गवरवारणविक्रमस्य । आश्रुत्यतत्स्वसदनाभिभवंनिरीक्ष्य चक्षुःश्रवाःसमसरत्तदमृष्यमाणः ॥८॥ तंप्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनंस्मितसुन्दरास्यम् । क्रीडन्तमप्रतिभयंकमलोदराङ्घ्रिंसंदश्य मर्मसुरुषाभुजयाचच्छाद ॥९॥ तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्यतत्प्रियसखाः पशुपाभृशार्ताः । कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियोनिपेतुः ॥ १० ॥ गावोवृषावत्सतर्यः क्रन्दमानाःसुदुःखिताः । कृष्णेन्यस्तेक्षणाभीता रुदत्यइवतस्थिरे ॥ ११ ॥ अथव्रजेमहोत्पातास्त्रिविधाह्यतिदारुणाः । उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्यभयोद्विग्ना गोपानन्दपुरोगमाः । विनारामेणगाःकृष्णं ज्ञात्वाचारयितुंगतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वाप्राप्तमतद्विदः । तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्गपशुवृत्तयः । निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥ तांस्तथा कातरान्वीक्ष्यभगवान्माधवोबलः । प्रहस्यकिंचिन्नोवाचप्रभावज्ञोऽनुजस्यसः ॥१६॥

हुई विषैली वायु का जिसको स्पर्श होजाता वह तत्कालही मरजाता।दुष्टोंके दमनकरने के निमित्तही भगवानने अवतार लियाथा वह इस घोर वेगवाले विष के पराक्रम से जल को दूषितहोताहुआ देख कदम्ब के वृक्षपर चढ़गये और भलीभांति कांछाकस, खमठोंक उस अतिऊंचे वृक्षपर से कुण्डके जल में कूदपड़े ॥ ५ । ६॥ भगवान के कूदने के वेग से सबसर्पगण व्याकुलहोगये । उनव्याकुल हुएसर्पगणों के विषसे कालियदहका जल खौलने लगा । हे धीमन ! उस खौलतेहुए जल की विषैली, भयंकर तरंगें सौधनुषतक फैलकर चारों ओर को छूटनेलगीं ॥ ७ ॥ हेराजन ! गजराज की समान पराक्रमशाली भगवान उस कुण्ड में क्रीडाकरने लगे. । उनके भुजदण्डकी ठोकरों से जल घूमनेलगा । उस जल के शब्द को सुनकर तथा अपने घरपर आक्रमण होता देख सर्प सहन न करसका वह तत्कालही भगवान के समीप आय उन दर्शनीय, सुकुमार, श्रीवत्स औरपीताम्बर धारी, कमलसे चरणवाले, निर्भयतासे क्रीड़ाकरनेवाले हास्यसे शोभितहुएमुँहवाले श्रीनन्दनन्दन के मर्मस्थानों में क्रोधपूर्वक काटनेलगा और उनके समस्त शरीर को अपने शरीरसे लपेट लिया८।९ श्रीकृष्णजीही जिनके प्रिय हैं, उन सर्व गोपाल गणोंने जिन श्रीकृष्ण भगवान में आत्मा, आत्मीय, प्रयोजन, स्त्री और अभिलाष, सबही समर्पण करदिया है, उन भगवानको गोपगण सर्पसे वेष्टित और चेष्टारहित होतेदेख अत्यंत कातर होगये तथा दुःख, अनुताप, और भयसे ज्ञान रहितहो पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ १० ॥ गाय, वृष, बछड़े और बछियें सबही अत्यंत दुःखितहो शोक के जतलाने वाले शब्द करने लगे तथा श्रीकृष्णजीकी ओर एकटक देख, भयभीतहो इसप्रकार से रम्भाने लगीं कि मानो वह रोती हैं ॥ ११ ॥ इधर व्रजमें अति दारुण, तत्काल भय दिखलाने वाले बड़े २ उत्पात पृथ्वी, आकाश और शरीर में होनेलगे ॥ १२ ॥ इन सब उत्पातोंको देख तथा श्रीकृष्णजी रामको न ले गौ चरानेगये हैं यह जान, नंद आदि गोपगण भयसे कांपनेलगे ॥ १३ ॥ वह श्री कृष्णजी के प्रभावको नहीं जानतेथे । भगवान कृष्णजी उनके प्राण और मनथे; अतएव सबही बड़े बूढ़े, स्त्री, लड़के इन सब उत्पातोंको देख विचारने लगे 'जानपड़ता है कि श्रीकृष्ण मारेगये' इस कारण दुःख, शोक, और भयसे कातरहो वह श्रीकृष्णजी के देखने की इच्छा से दीन भाव युक्तहो गोकुल से बाहर निकले ॥ १४-१५ ॥ मधुकुल में उत्पन्न हुये भगवान् बलदेवजी उनको

तेऽन्वेषमाणादयितंकृष्णंसूचितयापदैः । भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ तेतत्रतत्राब्जयवाङ्कुशाऽशनिध्वजोपपन्नानिपदानिविश्पतेः । मार्गेगवामन्यपदान्तरान्तरेनिरीक्षमाणाययुरङ्गसत्वराः ॥ १८ ॥ अन्तर्ह्रदेभुजगभोगपरीतमारात्कृष्णंनिरीहमुपलभ्यजलाशयान्ते । गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्चसंक्रन्दतःपरमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसोभगवत्यनन्तेतत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः । ग्रस्तेऽहिनाप्रियतमेभृशदुःखतप्ताः शून्यंप्रियव्यतिहृतंददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टांतुल्यव्यथाः समनुगृह्यशुचः स्रवन्त्यः । तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयन्त्यआसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशोमृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशतोनन्दादीन्वीक्ष्यतंह्रदम् । प्रत्यषेधत्सभगवान्रामःकृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥ इत्थंस्वगोकुलमनन्यगतिंनिरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः । अज्ञायमर्त्यपदवीमनुवर्तमानःस्थित्वामुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३ ॥ तत्प्रथ्यमानवपुषाव्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्यकुपितःस्वफणान्भुजङ्गः । तस्थौश्वसञ्छ्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखोहरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥ तंजिह्वयाद्विशिखयापरिलेलिहानंद्वेसृक्वणीह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् । क्रीडन्नमुंपरिससारयथाखगेन्द्रोबभ्रामसोऽप्यवसरंप्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥ एवंपरि-

इस प्रकार से कातर देख हँसकर रहगये, कुछकहा नहीं क्योंकि वह छोटे भाईके प्रभावको भली प्रकार से जानते थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! गोप और गोपियें प्यारे कृष्णजीको ढूंढते २ उनके ध्वज वज्रांकुश चिह्नितपैरों के चिह्नोंद्वारा सूचित मार्ग देखते हुये यमुना के तीरगये ॥ १७ ॥ हे महाराज ! जैसे योगीगण वेद मार्गमें विशेष २ उपाधियोंको छोड़कर परम तत्वका खोज करते हैं, उसी प्रकार गोप और गोपीगण—जिसमार्ग से गायें गईथीं उसी मार्ग से, दूसरे पदचिह्नों के बीच २ विशेष २ पदचिह्नोंको छोड़ पद्म, यव, अंकुश, बज्र, और ध्वज से चिह्नित श्री कृष्णजी के पैरोंके चिह्नों को देखते हुये चलनलगे ॥ १८ ॥ दूरसेही कुंडमें श्रीकृष्णजीको सांपके शरीर से घिराहुआ, व यमुना के किनारे सब गोपालों को अचेत तथा चारो ओर से पशुओं को रोतदेख घोर दुःख से सबही व्याकुल होकर मूर्च्छितहो गिरपड़े ॥ १९ ॥ गोपियोंका मन भगवान् श्रीकृष्णजी में लगाहुआ था। उन प्रियतम श्रीकृष्णजी को सर्प से घिराहुआ देख, और उनकी सुहृदता, हास्य, दृष्टि और वाक्य का स्मरण कर वह अत्यंत दुःखसे कातर होगईं और प्रियके विरहसे त्रिलोकीको शून्य माननेलगीं ॥ २० ॥ यशोदाजी कृष्णजी के कारण अत्यंतही कातर होगईं, वह निकट जाय शोक करते करते ब्रजके प्रिय श्रीकृष्णजीके चरित्र कहनेलगीं और भगवान् श्रीकृष्णजीकी ओर दृष्टि लगाय मृतक की समान होगईं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजी नंदादि गोपों के प्राणथे । वे शोकसे विह्वलहो कुंड में कूदनेको तत्पर हुये परन्तु कृष्णजीके प्रभावको जाननेवाले भगवान् बलदेवजी ने उनको निवारण किया ॥ ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी मनुष्य स्वभावका अनुकरण करतेथे । वह अपनेको ऐसी अवस्था में घिराहुआ देख तथा स्त्री बालक आदि गोकुल बासियोंको अपने निमित्त दुःखी जान एक क्षण भर उसी अवस्थामें रहकर फिर सर्पके बंधनसे छूटगए, ॥ २३ ॥ भगवान्के बढ़ेहुए शरीर द्वारा सांपका शरीर व्यथित होगया । वह भगवान् को छोड़कर क्रोधपूर्वक अपना फणा उठाय उनकी ओर देखने और बड़े२ श्वास छोड़नेलगा। उसकाल उसकी नाकके नथनोंसे विषनिकल रहाथा उसकी आंखें और मस्तक जलतेहुए आंवेकी समान संतप्तथा तथा मुखसे बड़ी२आग की लपटें निकलतीथीं ॥ २४ ॥ सांप दोहरी फटीहुई जीभसे दोनों गलफरोंको चाटता और घोर विषाग्नियुक्त दृष्टि डालताथा भगवान् श्रीकृष्णजी गरुड़की समान खेलतेहुये उसके चारोंओर फिरनेलगे सर्पभी

भ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढआद्यः । तन्मूर्द्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥ तंनर्तुमुद्यतमवेक्ष्यतदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः । प्रीत्यामृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥२७॥ यद्यच्छिरोननमतेऽङ्गशतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्दखलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः।क्षीणायुषोभ्रमतउल्बणमास्यतोऽसृङ्नस्तोवमन्परमकश्मलमापनागः२८ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतःशिरस्सुयद्यत्समुन्नमतिनिःश्वसतोरुषोच्चैः । नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूवपुष्पैःप्रपूजितइवेहपुमान्पुराणः ॥ २९ ॥ तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रोरक्तंमुखैरुरुवमन्नृपभग्नगात्रः । स्मृत्वाचराचरगुरुंपुरुषंपुराणंनारायणं तमरणंमनसाजगाम ॥३०॥ कृष्णस्यगर्भजगतोऽतिभरावसन्नंपार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् । दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्यपत्न्यआर्ताःश्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥ तास्तंसुविग्नमनसोऽथपुरस्कृतार्भाः कायंनिधायभुविभूतपतिंप्रणेमुः । साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्यभर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदंशरणंप्रपन्नाः ॥ ३२ ॥ नागपत्न्यऊचुः ॥ न्याय्योहिदण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय । रिपोः सुतानामपितुल्यदृष्टेर्धत्सेदमंफलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयंभवता कृतोहिनोदण्डोऽसतांतेखलुकल्मषापहः । यद्दन्दशूकत्वममुष्यदेहिनः क्रोधोऽपिते

भागने का अवसर देखताहुआ भ्रमण करनेलगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार घूमत २ उसका बल हीन होआया, और दोनों कन्धे ऊँचे होगये । तब जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णजी उसके ऊँचे कंधोंको नीचाकर मस्तकोंपर चढ़ नाचनेलगे । इससे सर्पके शिरकी मणियोंसे भगवान्के चरणकमल अत्यन्त लालवर्ण होगये ॥ २६ ॥ भगवान् कृष्णजी को नाचनेपर तत्पर देख गन्धर्व, सिद्धि, मुनि और देवांगना प्रीतिपूर्वक मृदंग, पणव आदि अनेकों बाजे बजाय गीत गाने तथा फूलोंकी बर्षा कर करके प्रीतिपूर्वक उनके समीप यह सब आये ॥ २७ ॥ हेराजन् ! वह दुष्ट सर्प क्षीण जीवन होकरभी प्राणोंके भयसे इधर उधर घूमता रहा । उसके प्रधान सौमस्तकोंमें जो जो मस्तक नीचे न हुये दुष्टोंके दमन करनेवाले कृष्णजीने नाचके मिषसे पैरोंकी ठोकरें मार २ कर उनको नीचा किया । इसकारण मुख और नासिकाके छिद्रों द्वारा सर्प रुधिर उगिलता हुआ एकबारही अचेत होगया ॥ २८ ॥ वह बारम्बार क्रोधसे लम्बे सांस छोड़ता नेत्रों द्वारा विष उगिलतारहा वह सर्प भगवानके नाचसमय जिस२ शिरको उठाता भगवान्ने नाचकरते २ पैरों द्वारा उस २ मस्तकको नचाय कृपापूर्वक उसका कल्याणकिया । यह देखकर देवता और गन्धर्वगण अत्यन्त आनन्दित हो शेषजीकी शय्यापर पौढ़ेहुए नारायणकी समान श्रीकृष्णजीको अनेक फूलोंकी भेटसे पूजनेलगे ॥ २९ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी के नानाप्रकार से ताड़नेपर सर्प के सब फन और शरीर भग्न होगया वह मुखोंसे रक्त उगलते २ मनही मन चराचर गुरु पुराण पुरुष भगवान् का स्मरणकर उन्हीं के शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ समस्त जगत् जिसके पेटमें स्थित है सर्प उन्हीं श्रीकृष्णके भारसे दुःखित होगया तथा उन्हीं के चरणों के प्रहार से उसके सब फनरूपी छत्र अत्यन्त भग्न होगये हैं यह दखकर उसकी स्त्रियें बाल खोल; बस्त्र आभूषण ढीलेकिये तथा अत्यन्त दुःखयुक्तहो भगवान् के निकट आईं ॥ ३१ ॥ अति विह्वल चित्त उन सबपतिव्रता स्त्रियोंने, अपने बच्चोंको आगेकर भगवान् के चरणोंमें गिर उनको प्रणामकर पापात्मा पतिके मोक्षकी इच्छासे आश्रय देनेवाले भगवानका आश्रय लिया ॥ ३२ ॥ नाग पत्नियोंने कहा कि—हे भगवन् ! आपने जो इसके कियेहुए पापका दण्डदिया वह उचितही किया दुष्टोंको दण्डदेनेके निमित्तही आपनेअवतार लियाहै । मित्र और शत्रुपर आपकीसमान दृष्टि है ॥३३॥ आप फलका विचारकरकेही दण्ड देत हैं । इससे आपने हमारे ऊपर निश्चयही अनुग्रह

ऽनुग्रहएवसंमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तंकिमनेनपूर्वंनिरस्तमानेनचमानदेन । धर्मोऽथवासर्वजनानुकम्पयायतोभवांस्तुष्यतिसर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्यन देवविद्महेतवांघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः । यद्वाञ्छयाश्रीर्ललनाचरत्तपोविहायकामान्सुचिरंधृतव्रता ॥ ३६ ॥ ननाकपृष्ठंनचसार्वभौमंनपारमेष्ठ्यंनरसाधिपत्यम् । नयोगसिद्धीरपुनर्भवंवावाञ्छन्तियत्पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तदेषनाथाऽऽपदुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः । संसारचक्रेभ्रमतः शरीरिणोयदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यंभगवतेपुरुषायमहात्मने । भूतावासायभूतायपरायपरमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधयेब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अगुणायाविकारायनमस्तेप्राकृतायच ॥४०॥ कालायकालनाभायकालावयवसाक्षिणे । विश्वायतदुपद्रष्ट्रेतत्कर्त्रेविश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने । त्रिगुणेनाभिमानेनगूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनन्तायसूक्ष्मायकूटस्थायविपश्चिते । नानावादानुरोधायवाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलायकवयेशास्त्रयोनये । प्रवृत्तायनिवृत्तायनिगमायनमोनमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णायरामायवसुदेवसुतायच । प्रद्युम्नायानिरुद्धायसात्वतांपतयेनमः ॥ ४५ ॥ नमोगुणप्रदीपायगुणा

किया है। क्योंकि आप जो दुष्ट मनुष्योंपर दण्डकरतेहो उसके पाप नष्टहोजाते हैं। इस प्राणीको जिससे सर्प शरीर मिला वह पाप आपके कोपसे शांतहुआ अतएव आपके कोपकोभी कृपाही मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे हरि ! इसने पूर्वजन्म में अभिमानरहितहो सन्मान पूर्वक ऐसी कौनसी तपस्या या धर्म किया है; कि सबजीवोंके जीवनदाता आप इसपर प्रसन्नहुए ॥ ३५ ॥ आपके जिन चरणरेणुके प्राप्तकरनेकी इच्छासे लक्ष्मीने स्त्रीहोकरभी सबकाम छोड़ व्रतधारण कर बहुत काल तपस्या कीथी ॥ ३६ ॥ किस महापुण्यके बलसे आज यह भुजंग आपके उन्हीं कमला-वांछित चरणरजको मस्तक में धारणसका? हेदेव ! हम इसको नहीं जानसकतीं जो प्राणी आपकी चरणरजको प्राप्त होतेहैं वे स्वर्ग, चक्रवर्तित्व, ब्रह्मपद, पृथ्वीका राज्य, योग सिद्धि व मुक्ति की भी कामना नहीं करते ॥ ३७ ॥ संसार चक्रमें भ्रमताहुआ जीव जो चरण रजकी इच्छाकरता है वही सब ऐश्वर्योंको प्राप्त करसकताहै तथा प्रेमादि दूसरे उपायोंसे जो चरणरज प्राप्त होना कठिनहै, अहोनाथ! यह सर्प तमोगुण युक्त और क्रोध बशहोकरभी उसी चरणरजको प्राप्तहुआ यह बड़ा भाग्यशालीहै ॥३८॥ हेभगवान् ! आप अन्तर्यामी रूपसे समस्त देहोंमें बिराजमान रहते हो परन्तु उन देहोंसे परिच्छिन्न नहींहो क्योंकि आप आदि कारण और पहिलेसे बर्तमानहो, अत-एव आकाशादि भूतोंके आश्रय स्वरूपहो आप परमकारणहो आपको नमस्कारहै ॥ ३९ ॥ आप ज्ञान और विज्ञानके भंडारहो क्योंकि आप प्रकृतिके प्रवर्त्तक, अधिकारी, निर्गुण और अनंतशक्ति परब्रह्महो आपको नमस्कारहै ॥ ४० ॥ आप कालस्वरूप कालशक्तिके आश्रय और कालके अवयव सबके साक्षीहो अतएव आप बिश्वरूप बिश्वके द्रष्टा, कर्त्ता और कारणहो ॥ ४१ ॥ भूत पंच-तन्मात्र, इन्द्रिय, इन्द्रियवृत्ति, प्राण मन बुद्धि और चित्त यह सब आपके स्वरूपहैं। त्रिगुणद्वारा आच्छन्न करके आप अपने अंशभूत आत्मा को सबके लिये नहीं जाननेदेते ॥ ४२ ॥ आप अनन्त तथा सूक्ष्महो, आप सर्वव्यापक और सर्वज्ञहो, आप अनेकों बादानुवाद का अनुवर्त्तन करते रहतेहो। शब्द और अर्थभी आपकी शक्ति हैं आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ आप सबप्रमाणों के मूल; चक्षुरादि इंद्रियों के इंद्रियरूपहो अतएव आप कवि अर्थात् निरपेक्ष ज्ञानशाली और शास्त्रों के योनिहो। आप प्रवृत्त, निवृत्त और अंतिमपदार्थहो, आपको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे हरि ! आप शुद्धसत्वसे प्रकाशमान श्रीकृष्ण, बासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अ-

त्मच्छादनायच । गुणवृत्त्युपलक्ष्यायगुणद्रष्ट्रेस्वसंविदे ॥ ४६ ॥ अव्याकृतविहारा यसर्वव्याकृतसिद्धये । हृषीकेशनमस्तेऽस्तुमुनयेमौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञायसर्वाध्यक्षायतेनमः । अविश्वायचविश्वायतद्द्रष्ट्रेऽस्यचहेतवे ॥ ४८ ॥ त्वंह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभागुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् । तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोध यन्सतः समीक्षयाऽमोघविहारईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैवतेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यांशान्ता अशान्ताउतमूढयोनयः । शान्ताः प्रियास्तेह्यधुनाऽवितुंसतांस्थातुश्चतेधर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रासोढव्यः स्वप्रजाकृतः । क्षन्तुमर्हसिशान्तात्मन्मूढस्यत्वामजानतः ॥ ५१ ॥ अनुगृह्णीष्वभगवन्प्राणांस्त्यजतिपन्नगः । स्त्रीणांनःसाधुशोच्यानांपतिः प्राणःप्रदीयताम् ॥५२॥ विधेहितेकिंकरीणामनुष्ठेयंतवाज्ञया । यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वैमुच्यतेसर्वतोभयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ॥ मूर्च्छितंभग्नशिरसं विससर्जांघ्रिकुट्टनैः ॥ ॥५४॥ प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियःशनकैर्हरिम् । कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्कृष्णंदीनः प्राहकृतांजलिः ॥५५॥ वयंखलाःसहोत्पत्त्या तामसादीर्घमन्यवः । स्वभावोदुस्त्यजो नाथ लोकानांयदसद्ग्रहः ॥५६॥ त्वयासृष्टमिदंविश्वं धातर्गुणविसर्जनम् । ना

निरुद्धहो; आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ आप का अन्तःकरण सबका प्रकाशक है।आपअंतःकरण के समूहद्वारा अपने को आच्छन्न करके नानारूप से प्रकाश पाते रहतेहो ।अंतःकरणकी सबवृत्तियों द्वारा आप का अनुमान होतारहता है ।आप समस्त अंतःकरणों के दृष्टिगोचरहो आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! आपकी महिमा अतर्क्य है अतएव आपही सर्वकार्यों की उत्पत्तिक प्रकाशक और कारणरूपहो आप इंद्रियों के प्रवर्त्तकहो परन्तु आत्मारामहो और आत्मारामताही आप का स्वभाव है; आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! आप स्थूल और सूक्ष्म के गति और सबके अधिष्ठाताहो । यह विश्व आप में अधिष्ठितनहीं है और आपही विश्वस्वरूप, विश्वकेद्रष्टा, और विश्व के कारणरूपहो आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे विभो ! आप चेष्टारहितहो; किन्तु कालशक्ति धारण करके गुणोंद्वारा इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करतेरहतेहो।संस्कार रूप से वर्त्तमान विशेष २ स्वभावों को बुद्धिशक्तिद्वारा उद्बोधन करके क्रीड़ा करतेहो ॥ ४९ ॥ त्रिलोकी में शांत, अशांत और मूढ़ अर्थात् सात्विक, राजस, तामस जितने देह हैं वे सब आपही की क्रीड़ा के साधनरूप हैं, तौभी आप को शांत स्वरूपही प्यारा है क्योंकि आप ने सत्पुरुषोंही के धर्म पालन के निमित्त अवतार लिया है ॥ ५० ॥ आप जगत् के स्वामीहो, आपको अपनेदास का प्रथम अपराध क्षमा ही करना उचित है । हे शांतात्मन् ! यह सर्प अत्यन्तमूर्ख है—आपको यह नहीं जानता; इस का अपराध आपको क्षमाकरना उचित है ॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! प्रसन्नहोवो, सर्प के प्राण जाते हैं । हम इसकी स्त्री हैं, इस के मरने से हमारी अत्यन्त दुर्दशा होजायगी;हमारे स्वामीको प्राणदानकरो॥५२॥हम आपकी दासियें हैं; जोआज्ञा हो वह हमकरें । जोमनुष्य आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक सम्पादन करते हैं उन मनुष्योंको किसी स्थान मेंभी भय नहीं रहता ॥५३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—नागपत्नियों के इस प्रकार से स्तुतिकरने पर भगवान ने, पैरों के प्रहार से मूर्च्छित व भग्नशिरा सांपको छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ कालिय धीरे २ इन्द्रिय शक्ति और प्राण प्राप्त करके अति कष्टसे श्वास छोड़ता हुआ हाथजोड़ कातर वचनों से भगवान से कहने लगा ॥ ५५ ॥ हे नाथ ! मैं जन्म सेही दुष्ट तमोगुण युक्त और अत्यंत क्रोधी हूं । जिस स्वभाव से शरीर उत्पन्न होता है उस स्वभाव का त्याग करना भी अत्यंत दुःसाध्य है ॥ ५६ ॥

नास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥ वयंचतत्रभगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः। कथन्त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजांमोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान्हिकारणंतत्र सर्वज्ञोजगदीश्वरः। अनुग्रहंनिग्रहंवा मन्यसेतद्विधेहिनः ॥ ५९ ॥ श्रीशुकउवाच। इत्याकर्ण्यवचःप्राह भगवान्कार्यमानुषः। नात्रस्थेयंत्वयासर्प समुद्रंयाहिमाचिरम् ॥ ६० ॥ स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतांनदी। यएतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥ कीर्तयन्नुभयोःसंध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात्। योऽस्मिन्स्नात्वामदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः। उपोष्यमांस्मरन्नर्चेत्सर्वपापैःप्रमुच्यते॥६२ द्वीपंरमणकंहित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः। यद्भयात्ससुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलांछितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच। एवमुक्तोभगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा। तंपूजयामास मुदा नागपत्न्यश्चसादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपिभूषणैः। दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वाजगन्नाथं प्रसाद्यगरुडध्वजम्। ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवंद्यतम्। सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगामह ॥ ६६ ॥ तदैवसाऽमृतजला यमुनानिर्विषाऽभवत्। अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

हे विधाता! आपने इस विश्वको उत्पन्न किया है, यह नानागुणों मे उत्पन्न हुआ है इसी से स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकृति भी नाना प्रकार की हुई है ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! मैं इस जगतमें सर्पजाति हूं किस प्रकार से आपकी दुस्त्यज मायाको छोड़सकता हूं ॥५८॥ हे सर्वज्ञ! जगदीश्वर आपही अपनी मायाको परित्याग करासकतेहो। दया और दंड इन दोनों में जिसको आप अच्छा जानतेहो मुझपर वही करो ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—हे महीपते! भगवान्ने सर्पके एस बचनोंको सुनकर कहा कि हे सर्प! तुम अब इस स्थानपर नहीं रहसकते; जातिवाले, पुत्र और स्त्रियोंको ले शीघ्रही समुद्रमें जाओ। गौ ब्राह्मण इस नदीका जल पीतेरहते हैं; तुम्हारे इस स्थानपर रहने से वह यहां नहीं आसकते ॥ ६० ॥ और मैंने जोतुमको दंडदिया है उसको जोमनुष्य प्रातःकाल व संध्याको स्मरण व कीर्त्तन करेगा उसे तुम्हारा भय नहीं होगा ॥ ६१ ॥ मेरे क्रीड़ा के स्थान इस कुंडमें जोमनुष्य स्नानकर जल द्वारा देवादिका तर्पण और उपवासकर श्रद्धापूर्वक मेराभजन करेगा वह सब पापों से छूटकरमुक्तिको प्राप्त होवेगा ॥६२॥ तुम इस देहको छोड़कर रमणक द्वीपको जावो। मेरावाहन गरुड तुम्हारा कुछभी अनिष्ट नहीं करसकेगा अबतुम्हारे मस्तकमें जबतक मेरे पैरों के चिह्नरहेंगे तबतक गरुड़ से तुम्हें कुछभी भय नहीं होगा ॥६३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णजी के छोड़नेपर नाग और उसकी स्त्रियां आनंदितहो दिव्यरत्न, मणि, महामूल्य के वस्त्र आभूषण, दिव्य सुगंधित पदार्थ और बहुत से कमलों की मालाओं से भगवान की पूजाकरने लगीं ॥ ६४—६५ ॥ कालिय, भगवान श्रीकृष्णजी की पूजाकर उनकी आज्ञानुसार, आनंदितहो उन भगवान की परिक्रमा और उनको प्रणामकर स्त्री, पुत्र तथा जातिवालों को ले समुद्र के मध्यवाले रमणक द्वीपमें गया। क्रीडाकरने वाले मनुष्य रूपी भगवान की अनुग्रह से उसी समय से कालिंदी का जल बिषरहितहो अमृत की समान सुस्वादु होगया ॥ ६६—६७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

राजोवाच । नागालयंरमणकं कस्मात्तत्याजकालियः ॥ कृतं किंवासुपर्णस्य तेनैकेनासमंजसम् ॥ १॥ श्रीशुक उवाच । उपहार्यैःसर्पजनैर्मासि मासीहयोबलिः वानस्पत्योमहाबाहो नागानांप्राङ्निरूपितः ॥२॥ स्वंस्वंभागंप्रयच्छन्ति नागाःपर्वणि पर्वणि । गोपीथायात्मनःसर्वे सुपर्णायमहात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तुकालियः । कदर्थीकृत्यगरुडं स्वयंतंबुभुजेबलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वाकुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः । विजिघांसुर्महावेगः कालियंसमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ तमापतन्तंतरसाविषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः । दद्भिःसुपर्णंव्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तंताक्ष्र्यपुत्रःसनिरस्य मन्युमान्प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः । पक्षेणसव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रुसुतमुग्रविक्रमः। ॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीवविह्वलः । ह्रदंविवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदाजलचरं गरुडोभक्ष्यमीप्सितम् । निवारितःसौभरिणा प्रसह्यक्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राहतत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्रप्रविश्यगरुडोयदिमत्स्यान्सखादति। सद्यः प्राणैर्वियुज्येतसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥११॥ तंकालियः परंवेदनान्यः कश्चनलेलिहः । अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेनचाविवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णंह्रदाद्विनिष्क्रान्तंदिव्यस्रग्गन्धवाससम् । महामणिगणाकीर्णंजाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपल

राजा परीक्षितने कहा कि—हेब्रह्मन् ! कालियने किसकारण नागगणोंके बासस्थानको छोड़दियाथा ? उसने गरुड़का क्या अप्रिय कियाथा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! पहिले यह निश्चयहुआ कि गरुड़के भक्ष्यरूप नाग गरुड़की पीड़ा हरनेके निमित्त महीने २ में उनके खानेके लिये वृक्षके मूलमें बलिदान रख जायाकरें ॥ २ ॥ नागगण अपनी २ रक्षाके निमित्त पर्व २ में महात्मागरुड़ को वे समस्त बलिदानदेते ॥३॥ परन्तु कद्रूसुत कालियबिष और बिक्रमसे उन्मत्तहो गरुड़का निरादर कर बलिदान न देता और जो कोई दूसरा बलिदेता उसेभी आप खाजाता॥४॥हेराजन् ! यह वृत्तांत जानकर भगवत्प्रिय गरुड़को क्रोध उत्पन्नहुआ। वह उसके मारनेका क्रोधित होकर बड़े बेगसे दौड़ा॥५॥ बिषही जिसका अस्त्रहै ऐसा कालियनाग गरुड़को आतेदेख अपने मस्तक उठाय सन्मुख चला और गरुड़को दांतोंसे काटने लगा क्योंकि दांतही उसके शस्त्र थे उस काल इसकी जिह्वा बड़ी भयावनी, नेत्र स्तम्भित और उग्रप्रतीत होतेथे॥६॥भगवानके आसन, प्रचंड बेग व बड़े पराक्रमवाले गरुड़जीने सोने की समान प्रकाशित बांए पंखसे कालिय पर प्रहार किया ॥ ७ ॥ कालिय गरुड़ के पक्षाघात से अत्यन्त बिह्वलहोकर उस अगाध ह्रद में किजहां गरुड़के भी जाने का सामर्थ्य नथा प्रवेशकरगया । हे राजन् ! यमुना के उस कुण्ड में गरुड़ क्यों नहीं जासकताथा वह भी कहताहूं सुनो ॥ ८ ॥ एक समय गरुड़ उस कुण्ड में एक मछली के खाने पर तत्परहुआ तो सौभरि ऋषि ने उसे निषेध किया; परन्तु भूखा गरुड़ उनका कहनानमान उस को खागया ॥ ९ ॥ मीनस्वामी के नष्ट होजाने से दीन मछलियों को अत्यन्त दुःखित देख सौभरि ऋषि ने वहां कल्याण होने के निमित्त कृपापूर्वक कहा कि—॥ १०॥ "अब से यदि इस स्थान पर गरुड़ प्रवेश करके किसी प्राणी को खायगा तो वह तत्कालही मरजावेगा मैं सत्य कहताहूं" ॥ ११ ॥ कालिय के अतिरिक्त औरकोई भी इस वृत्तांत को नहीं जानताथा। इसही कारण गरुड़से भयभीतहो उस ने वहां बासकिया फिर श्रीकृष्णजी ने उसे वहां से भी निकाला ॥ १२ ॥ हेराजन् ! इस ओर श्रीकृष्णजी दिव्यमाला, गन्ध, और दिव्यवस्त्रोंयुक्त,महामणियों से अलङ्कृत और सुवर्ण से बिभूषितहो कुण्डसे वाहर निकले ॥ १३ ॥ उन्हें देखतेही,

श्योत्थिताः सर्वेलब्धप्राणाइवासवः । प्रमोदनिभृतात्मानोगोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥ १४ ॥ यशोदारोहिणीनन्दोगोप्योगोपाश्चकौरव । कृष्णंसमेत्यलब्धेहाआसँल्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिङ्ग्यजहासास्यानुभाववित् । नगागावोवृषावत्सालाभेरपरमांमुदम् ॥१६॥ नन्दंविप्राः समागत्यगुरवः सकलत्रकाः । ऊचुस्तेकालियग्रस्तादिष्ट्यामुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥ देहिदानंद्विजातीनांकृष्णनिर्मुक्तिहेतवे । नन्दः प्रीतमनाराजन्गाः सुवर्णंतदाऽदिशत् ॥ १८ ॥ यशोदापिमहाभागानष्टलब्धप्रजासती । परिष्वज्याङ्कमारोप्यमुमोचाश्रुकलांमुहुः ॥ १९ ॥ तांरात्रिंतत्रराजेन्द्रक्षुत्तृड्भ्यांश्रमकर्षिताः । ऊषुर्व्रजौकसोगावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदाशुचिवनोद्भूतोदावाग्निः सर्वतोव्रजम् । सुप्तंनिशीथआवृत्यप्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥ ततउत्थायसंभ्रान्तादह्यमानाव्रजौकसः । कृष्णंययुस्तेशरणंमायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्णकृष्णमहाभागहेरामामितविक्रम । एषघोरतमोवह्निस्तावकान्ग्रसतेहिनः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नःस्वान्पाहि कालाग्नेःसुहृदःप्रभो । नशक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थंस्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्यजगदीश्वरः । तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

प्राणआने से इंद्रियवर्ग की समान समस्तगोप उठखड़े हुए और आनन्दितमनसे प्रीतियुक्तउनका आलिंगन करने लगे ॥ १४ ॥ हे कौरव ! यशोदा, रोहिणी, नन्द और अन्यान्य गोप तथागोपियें श्रीकृष्णजीसे मिलकर सचेष्टहुईं और उनका मनोरथ परिपूर्णहुआ ॥ १५ ॥ बलदेवजी कृष्णजी के प्रभावको जानतेथे वह उनसे मिलकर हँसने लगे और गोद में बिठलाय बारम्बार मुख देखने लगे । गाय, बैल, बछड़े सब अत्यन्तही आनन्दितहुए ॥ १६ ॥उस समय सबब्राह्मण स्त्रियोंसमेत आय कर कहने लगे कि हेनन्द ! तुमबड़े भाग्यशालीहो, इसहा कारण तुम्हारा पुत्र कालियसे बिर कर फिर बचआया ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णजी के छूटआने के कारण ब्राह्मणों को धनदानकरो।हेराजन्! नन्दराय ने भी प्रीतिपूर्वक सबब्राह्मणों का बहुतसा सुवर्ण तथा गायें दानकीं ॥ १८ ॥ महाभागा सती यशोदा गएहुएपुत्रको पाय आलिंगनकर गोद में ले बारम्बार आनन्दाश्रु बहानेलगीं ॥ १९ ॥ गायें और ब्रजवासी सब भूँखप्यास से अत्यन्त कातर होरहेथे अतएव उस रात्रको वहीं यमुना तटपर विश्राम किया ॥ २० ॥ अर्द्धरात्रिके समय वरकण्ड बन से दावाग्नि उठ निद्रितब्रजवासियों को चारोंओर से घेर जलानेलगी ॥ २१ ॥ फिर जलतेहुए ब्रजवासी गण शीघ्रता से उठ मायामनुष्य भगवान् श्रीकृष्णजी के शरणागतहोकर कहनेलगे कि-॥ २२ ॥ हेमहाभागकृष्ण! हेअमित विक्रमराम ! हम तुम्हारे हैं, यह घोर अग्नि तोहमको ग्रासकिये जाती है ॥ २३ ॥ हेप्रभो ! हम तुम्हारे मित्र, आत्मीय और स्वजन हैं; इस दुस्तर कालाग्नि से हमारा उद्धारकरो हम अपने मरने से नहीं डरते परन्तुआपके चरणों से हम वियुक्त होजायँगे इसही भयसे हम व्याकुल होतेहैं ॥२४॥ हम आपके युगलचरणों को परित्याग नहीं करसकते । अनन्त शक्तिधारी, जगदीश्वर, आत्मीयजनों की ऐसी कातरता देख उस घोर दावानलको पीगये ॥ २५ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० । धन वृन्दाबन धामहैं, धन वृन्दाबन नाम । रहत जहां आनँद सहित, श्रीयुत राधा श्याम १
वृन्दावन जे बासकर, साग पात नितखाहिं । तिनके वैभवको निरखि, ब्रह्मादिक ललचाहिं २
हम न भये ब्रजमें प्रकट, यही रही मन आश । नितप्रति निरखें जुगलछबि, कर वृन्दाबन बाश ३

श्रीशुक उवाच । अथकृष्णःपरिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः । अनुगीयमानो न्य विशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥ व्रजेविक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया । ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥ सचवृन्दावनगुणैर्वसन्तइव लक्षितः । य त्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सहकेशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लि कम् । शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥ सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कल्हारकंजोत्पलरेणुहारिणा । नविद्यतेयत्रवनौकसांदवो निदाघवन्ह्यर्कभवोतिशा द्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैःसमन्ततः । नयत्र च ण्डांशुकरा विषोल्बणाभुवो रसं शाद्वलितंचगृह्णते ॥ ६ ॥ वनंकुसुमितं श्रीमन्न- दच्चित्रमृगद्विजम् । गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाण- स्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः । वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत्॥८॥प्रवा लबर्हस्तवकस्रग्धातुकृतभूषणाः । रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृ- ष्णस्य नृत्यतःकेचिज्जगुः केचिदवादयन् । वेणुपाणितलैःशृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥ ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवागोपालरूपिणः । ईडिरेकृष्णरामौच नटाइवनटंनृ प ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः । चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षध रौक्वचित् ॥ १२ ॥ क्वचिन्नृत्यत्सुचान्येषु गायकौवादकौस्वयम् । शशंसतुर्महा राज साधुसाध्वितिवादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचिद्बिल्वैःक्वचित्कुम्भैःक्व चामलकमुष्टि

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! फिर श्रीकृष्णजी आत्मीय स्वजनों के साथ गोसमूह परि- पूर्ण व्रजधाम में गये, जातिवाले आनन्द चित्तसे उनका यश गाते २ उनके पीछे चले, ॥ १ ॥ गोपाल के मिषसे माया करके व्रजमें दोनों भाइयों को क्रीड़ा करतेहुए ग्रीष्मऋतु आया जो प्रा- णियों को अतिप्यारा नहींहै ॥ २ ॥ परन्तु साक्षात् भगवान बलरामजी के साथ जिस वृन्दाबनमें बिहार करतेथे उस वृन्दाबन के गुणसे ग्रीष्मने भी बसन्तकी समान शोभा धारणकी ॥ ३ ॥ उस ग्रीष्मकालमें भी झरनोंके शब्द के आगे झिल्ली का शब्द सुनाई न देताथा और निरन्तर झरनोंके जलकी बूंदोंसे लहलहे वृक्षोंका समूह वृन्दाबनमें शोभायमान होरहाथा॥४॥ जो स्थान तृण रहितथे उन स्थानोंमेंभी ग्रीष्मकालकी अग्नि और सूर्यसे व्रजवासियोंको सन्ताप नहीं उत्पन्न होता क्योंकि झरने और लहरोंसे मिश्रित ठंढ कल्हार, कमल और उत्पलकी रजपर होकर बहनेवाली सुगन्धित पवन चलने लगी ॥ ५ ॥ अगाध जलसे भरीहुई नदियोंकी तरंगें उनके तटका स्पर्श करके किनारे की रेतको निरन्तर भीगीहुई रखनेलगीं सूर्यकी किरणें बिषकी समान तीव्र होनेपरभी सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण वृन्दाबनकी भूमिके रस और नई घासको सुखा न सकीं ॥ ६ ॥ रमणीय बन फूलों से परिपूर्ण होगया वहां नानाप्रकारके मृग और पक्षी शब्द करने तथा मोर और भौंरे मधुर गानसे गानेलगे और कोकिल व सारसें निरन्तर शब्द करनेलगीं ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी बलराम जीके साथ गोप और गो समूहसे घिर बेणु बजाते २ खेलनेके अभिप्राय उस बनमेंगये ॥ ८ ॥ प्रबाल मोर पिच्छ फूलोंके गुच्छोंकी माला और धातुओंके गहने बनाय श्रीकृष्णजीने बलरामजी व गोप बालकोंके साथ नाचने मल्लयुद्ध और क्रीड़ा करनेका आरम्भ किया ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णजी नाचने कोई २ गोपालगण गाने और कोई २ ताली व सींग बजाने और कोई उनकी प्रशंसा क- रने लगे ॥ १० ॥ नट जैसे नटकी सेवा करतेहैं उसीप्रकार देवरूपी गोपजाति गोपालरूपी राम व कृष्णजीकी पूजा करते रहते॥११॥हेमहाराज ! उससमयमें काकपक्ष (पट्टे) धारण किये राम व कृष्णजी चक्करखाना, फांदना, कूदना खम ठोंकना, खेंचना मल्लयुद्ध करना इत्यादि नानाप्रकारके अद्भुत खेल करते रहते ॥ १२ ॥ कभी दूसरे गोप नाचते राम और कृष्ण गाने व बजानेवाले होकर उनकी प्रशंशा करते ॥ १३ ॥ कभी बेलों से कभी कुंभी के फलों से कभी आंवला व मु-

भिः। अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः । कदाचित्स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौलोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने। नद्यद्रिद्रोणिकुंजेषु काननेषुसरस्सुच॥१६॥ पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः । गोपरूपीप्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तंविद्वानपिदाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः । अन्वमोदततत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राहविहारवित् । हेगोपा विहरिष्यामोद्वन्द्वीभूययथायथम् ॥ १९ ॥ तत्रचक्रुः परिवृढौगोपारामजनार्दनौ । कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्यचापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडावाह्यवाहकलक्षणाः । यत्रारोहन्तिजेतारोवहन्तिचपराजिताः ॥ २१ ॥ वहन्तोवाह्यमानाश्चचारयन्तश्चगोधनम् । भाण्डीरकंवटंनामजग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनोयर्हिश्रीदामवृषभादयः । क्रीडायांजयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयोनृप ॥ २३ ॥ उवाहकृष्णोभगवान् श्रीदामानंपराजितः। वृषभंभद्रसेनस्तुप्रलम्बोरोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यंमन्यमानः कृष्णंदानवपुङ्गवः वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतत्परम्। ॥ २५ ॥ तमुद्वहन्धरणिधरेन्द्रगौरवंमहासुरोविगतरयोनिजंवपुः । सआस्थितःपुरटपरिच्छदोबभौतडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्यतद्वपुरलमम्बरे

ठियों से खेलते; कभी आंख मिचौनी खेलते कभी एक दूसरे के छूनेको दौड़ते । कभी मृग व अन्य पक्षियों की समान घूमते व शब्द करके क्रीड़ा में मत्तहाते ॥ १४ ॥ कभी मेंडककी समान कूद २ कर चलते । कभी एक दूसरे की हंसी करते २ झूलेपर झूलते रहते, कभी राजाबन नाना प्रकार के कौतुकों से समय बिताते ॥ १५ ॥ बलराम और कृष्णजी इस प्रकार लोक प्रसिद्ध नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से वृन्दावन के नदी, पर्वत, गुफा, कुंज; कानन और सरोवर में नाना प्रकार की क्रीड़ा किया करते थे ॥ १६ ॥ दोनोभाई एक दिन गोपों के साथ उस वृन्दावन में पशुचराते थे—उसी समय में प्रलम्ब नामक असुर श्रीकृष्णजी व बलरामजी को हरने के निमित्त गोपरूप धारणकर वहां आया ॥१७॥ सर्वज्ञ श्रीकृष्णजी उसको जानगये और उसके मारनेकी इच्छाकर मित्रभाव से उसके साथ खेलनेलगे ॥१८॥ क्रीडाके जाननेवाले श्रीकृष्णजी उस स्थानमें गोपालों को बुलवाकर कहनेलगे कि–हेगोपो ! आओ हमवयस और बलके अनुसार दोदलहोकर विहारकरें ॥१९॥तब गोपोंने उनके कथनको स्वीकारकर राम और कृष्णजीको नायककिया और कुछेकगोप बलरामजी व कुछेकगोप श्रीकृष्णजीकी ओर हुए॥२०॥ तदनन्तर वह चढ़ने और चढ़ाने इत्यादि नानाप्रकार के खेल खलनेलगे जिसमें जो हारें वह जीतनें वालोंको चढ़ाकर लेजांय और जोजीतें वह चढ़ें ॥ २१ ॥ ऐसे खेलतेहुये चढ़ते चढ़ाते गायों को चराते कृष्णजीको आगे किये वहसब भाण्डीरकनामक बटके निकट पहुंचे ॥ २२ ॥ जब बलरामजीके पक्षवाले श्रीदामआदि गोप क्रीडा में जीते, तब श्री कृष्णजी आदि ने उनको अपने ऊपर चढाय ॥ २३ ॥ हारेहुये भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीदामाको लेकर चले तथा भद्रसेन वृषभको और प्रलम्ब बलरामजीको लेकरचला॥ ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजीको तेजस्वी विचार उनकी दृष्टि बचाताहुआ वह प्रलम्बासुर बलरामजीको नियत स्थानसे बहुत दूरतक लिये चलागया ॥ २५ ॥ दैत्यकी देह, बिजली युक्त बादलकी समान श्यामबर्ण की और सोने के आभूषणों से भूषितथी । पर्वतकी सदृश बलदेवजीका भारीभार उठाने से उसका वेग बन्द होगया तब उसने अपना दैत्य शरीर धारण किया वह असुर बिजली की समान प्रकाशित चन्द्रमायुक्त मेघकी समान शोभापानेलगा ॥ २६ ॥ वह शरीर अति वेगसे

चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् । ज्वलच्छिखंकटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतंहलधरईषदत्रसत् ॥ २७ ॥ अथाऽऽगतस्मृतिरभयोरिपुंबलोविहायसार्थमिवहरन्तमात्मनः । रुषाऽहनच्छिरसिदृढेनमुष्टिनासुराधिपोगिरिमिववज्ररंहसा ॥ २८ ॥ सआहतः सपदिविशीर्णमस्तकोमुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः । महारवंव्यसुरपतत्समीरयन्गिरिर्यथामघवतआयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाप्रलम्बंनिहतंबलेनबलशालिना । गोपाः सुविस्मिताआसन्साधुसाध्विवितिवादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणन्तस्तंप्रशशंसुस्तदर्हणम् । प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्यप्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥ पापेप्रलम्बेनिहते देवाःपरमनिर्वृताः । अभ्यवर्षन्बलंमाल्यैः शशंसुःसाधुसाध्विति ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषुगोपेषुतद्गावोदूरचारिणीः । स्वैरंचरन्त्योविविशुस्तृणलोभेनगह्वरम् ॥ १ ॥ अजागावोमहिष्यश्चनिर्विशन्त्योवनाद्वनम् । इषीकाटवींनिर्विविशुः क्रन्दन्त्योदावतर्षिताः ॥ २ ॥ तेऽपश्यन्तः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा । जातानुतापानविदुर्विचिन्वन्तोगवांगतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् । मार्गमन्वगमन्सर्वेनष्टाऽऽजीव्याविचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाटव्यांभ्रष्टमार्गंक्रन्दमानंस्वगोधनम् । संप्राप्यतृषिताः श्रान्तास्ततस्तेसंन्यवर्तयन्

आकाशतक ऊंचा होगया, दोनों नेत्रों से आगकी चिनगारियें निकलनेलगीं और भयानक दृष्टि भ्रकुटियों तक जा मिलीं । उसके केश जलतीहुई अग्नि शिखाकी समान प्रकाशित होगये तथा किरीट और कुण्डलके प्रकाश से उसका अद्भुत शरीर और भी प्रकाशित होगया । बलरामजी उस भयानक दृश्यको देखकर कुछएक भयभीतहुये ॥ २७ ॥ परन्तु थोडीही देरके उपरांत स्मृति आतेही निडरहो, इन्द्रने जैसे बज्रके बेगसे पर्वतों पर प्रहार कियाथा तैसेही उन्होंने दृढमुष्टिद्वारा अपने शत्रुके मस्तकपर आघातकिया ॥ २८ ॥ हेराजन् ! घूंसे के लगतेही उसका शिर चूरहोगया मुंह से रक्त बहनेलगा और स्मृतिशक्तिकानाश होगया । वह प्राणरहितहो इन्द्रके बज्रसे घायल हुये पर्वतकी समान एक घोरशब्द करके गिरपडा ॥ २९ ॥ बलशाली बलदेवजीने प्रलम्बासुरको मारडाला यह देखकर गोपगण विस्मितहो बारम्बार उनको प्रशंसा करनेलगे ॥ ३० ॥ कोई २ आशीर्वाद देतेहुए बडाईके योग्य बलरामजीकी बडाई करनेलगे और प्रेमसे विह्वलचित्तहो मरनेके उपरांत आयेहुएकी समान उनका आलिंगनकरनेलगे ॥ ३१ ॥ दुष्ट प्रलम्बासुर के नाश होने से देवतागण आनन्दितहो बलदेवजीके ऊपर फूलों की वर्षाकर करके उनकी प्रसंशाकरनेलगे ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! एक दिन गोपगण क्रीड़ा में आशक्त होरहेथे—उसी समय में उनकी गायें अपनी इच्छानुसार चरते २ तृणके लोभसे बहुत दूरतक जंगलमें चलीगईं ॥ १ ॥ बकरी, गाय, भैंस आदि एक बनसे जाकर दूसरे बनमें घास चरती थीं—दैवात् दावाग्नि से संतप्त और तृषितहो चिल्लाते चिल्लाते मूंजके बनमें चलीगईं ॥ २ ॥ इस ओर कृष्णजी बलरामजी तथा दूसरे गोप आदि पशुओंको न देख संतप्त हृदयसे उनको खोजनेलगे, परन्तु कहीं पता न पाया ३ पशुगणही गोपोंके जीवनोपायहैं उस जीवनो पायके नष्ट होजानेसे प्रायः सबही अचतसे होगये उन गोपोंने अपने पशुओंके खुर और उनके खायेहुए तृण तथा पैरोंसे खुदीहुई भूमिके मार्गसे चलकर उनको खोजना आरम्भ किया ॥ ४ ॥ अन्तमें मूंजके बनमें भूले भटके रोतहुये अपने गोधन समूहको देखा, यद्यपि गोपालगण थकित होगयेथे तौभी वह वहांसे न लौटे ॥ ५ ॥ भगवान्

॥ ५ ॥ ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा । स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् । समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम । दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम् । वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान्हरिः । निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् । पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः । निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् । दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० पुराणे द० दावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच । तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः । गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ म-

---

श्रीकृष्णजी के द्वारा मेघकी सदृश गम्भीर बाणीसे बुलानेपर अपने नामों का शब्दसुन सबगायें आनन्दितहो रंभाने लगीं ॥ ६ ॥ तदनन्तर वनवासियों का नाशकरनेवाली भीषणअग्नि वायु से चलायमानहो बड़ी २ लपटों की तरंगें लेती हुई समस्त चराचर का ग्रास करते२यदृच्छा से चारोंओर को फैलगई। गाय और गोपगण उस दावाग्नि को समीप देखकर भय से व्याकुल होगये। जैसे मनुष्य मृत्यु से पीड़ितहो भगवान से प्रार्थनाकरता रहता है वैसेही गोपगणकातरहो बलराम व कृष्णजी से कहनेलगे ॥ ७ । ८ ॥ हे कृष्ण ! हेराम ! हम दावाग्नि से जलतेहुए कातर होरहे हैं हमारीरक्षाकरना तुमको उचित है ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे महावीर्य ! जो तुम्हारे बन्धु हैं उनको दुःख देना उचितनहीं । हे सर्वधर्मज्ञ ! तुम्हीं हमारे नाथ और अंतिमआश्रयहो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! भगवान हरि बांधवोंके ऐसे दीनबचन सुनकर कहनेलगे कि–"भय मतकरो, आंखें बंदकरलो" ॥ ११ ॥ उन के कहने के अनुसार गोपों ने आंखें बंदकरलीं, योगाधीश्वर भगवान् ने मुख से उस भयानक अग्नि का पानकर उनको आपत्ति से बचाया ॥ १२ ॥ फिर गोपों ने आंखें खोलकर देखा तो अपने को भाण्डीरकबन के समीप पाया । और गोपगण तथा वह स्वयं दावाग्नि से बचगये । यह देखकर सब विस्मितहुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण के उस अनिर्वचनीय योग पराक्रम और योगमाया के अद्भुतप्रभाव तथा अपने को दावाग्निसे निस्ताररूप कल्याणकारी विषयविचार वह कृष्णजी को देवता जानने लगे ॥ १४ ॥ सन्ध्या होतेही भगवान श्रीकृष्णजी गायों को लौटाय बंशी बजाते २ बलरामजीकेसाथ गोष्ठ में लौटआये । गोपगणउनकी स्तुति करते २ पीछे२ चले ॥ १५ ॥ भगवान् को देखकर गोपियों को परमआनन्द उत्पन्नहुआ बिनाश्रीकृष्णजी के वह सब गोपियें एक क्षणमात्रको सौयुग जानतीथीं ॥ १६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम०सरलाभाषाटीकायांएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् गोपों ने घर में आकर दावाग्नि से अपने रक्षापाने और प्रलम्बासुर का बधरूप राम, कृष्णका अद्भुतकर्म स्त्रियों से कहा ॥ १ ॥ वृद्धगोप और गोपियें

निरेवेप्रवरौ कृष्णरामौव्रजंगतौ ॥ २ ॥ ततःप्रावर्ततप्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा । विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥३॥ सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योमस्त विद्युत्स्तनयित्नुभिः । अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेवसगुणंबभौ ॥ ४ ॥ अष्टौमासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयंवसु । स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यःकालआगते ॥ ५ ॥ तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः । प्रीणनंजीवनंह्यस्य मुमुचुःकरुणाइव ॥ ६ ॥ तपःकृशादेवमीढा आसीद्वर्षीयसीमही । यथैव काम्यतपसस्तनुःसंप्राप्यतत्फलम् ॥७॥ निशामुखेषुखद्योतास्तमसाभान्तिनग्रहाः । यथापापेन पाखण्डा नहि वेदाःकलौयुगे ॥ ८ ॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूकाव्यसृजन्गिरः । तूष्णींशयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः । पुंसोयथाऽस्वतन्त्रस्यदेहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिताहरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्चलोहिता । उच्छिलीन्ध्रकृतच्छायानृणांश्रीरिवभूरभूत् ॥ ११ ॥ क्षेत्राणिसस्यसंपद्भिः कर्षकाणांमुदंददुः । धनिनामुपतापंचदैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥ जलस्थलौकसः सर्वेनववारिनिषेवया । अबिभ्रद्रुचिरंरूपं यथाहरिनिषेवया ॥ १३॥ सरिद्भिःसंगतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् । अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना नविव्यथुः । अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ।

उस को सुनकर विस्मितहुए और मन में विचारने लगे कि कोई श्रेष्ठ देवता लीलाकरने के निमित्त व्रज में अवतीर्णहुए हैं ॥ २ ॥ कुछ दिन के उपरांत बर्षा आई । बर्षामें सबप्राणियों को उत्पत्ति होती है और दिशाएं उज्ज्वल व आकाश क्षुभित रहता है ॥ ३ ॥ बर्षा के आने से आकाश—श्यामघटा और बिजली व गर्जना से परिपूरित तथा मेघों से आच्छनहो अव्यक्त ज्योति सगुणब्रह्म की समान प्रकाश पानेलगा ॥ ४ ॥ राजा जैसे समय पर द्रव्यले पीछे समय पर देता है वैसेही सूर्यनारायणभी आठमास तक पृथ्वी का जल रूप धन अपनी किरणों द्वारा लेकर समय पर देने लगे ॥ ५ ॥ जैसे कृपालु मनुष्य दुःखित मनुष्यको देखकर दयावशहो उसकी प्रसन्नता के लिये जीवनतक त्यागदेते हैं वैसेही प्रचण्डवायुसे चलायमान बिजली से शोभित महा मेघ समूह-जगत के कल्याण के निमित्त जल बरसाने लगे ॥ ६ ॥ जैसे काम्यतपश्चारी का शरीर उसी तपस्या के फलको प्राप्तहो पुष्ट होता रहताहै वैसेही ग्रीष्मसे कृशहुई पृथ्वीने बर्षाद्वारा सिंचकर पुष्टि प्राप्तकी ॥ ७ ॥ जैसे कलियुगमें पापके बलसे पाखण्डीही प्रकाश पाते रहते हैं किंतु बेदवक्ता ब्राह्मण प्रभा रहित होजाते हैं ऐसेही वर्षासमय में रात्रिको मेघोंसे नक्षत्र व ग्रह ढकगये और जुगनू प्रकाश पानेलगे ॥ ८ ॥ जैसे नित्य कर्मके उपरांत आचार्यका शब्द सुनकर उसके शिष्य ब्राह्मणगण अध्ययन करने लगते हैं—वैसेही, वर्षाके पहिले जो मेढक मौनभावसे सोरहेथे, मेघध्वनि सुनकर वह शब्द करनेलगे ॥ ९ ॥ क्षुद्रनदियें—अजितेन्द्रिय पुरुषके देह, धन और सम्पत्तिके समान उलटे मार्गसे चलनेलगीं ॥ १० ॥ पृथ्वी किसी स्थानपर तृणद्वारा हरीहोकर किसी स्थानमें छत्राक (बरसातीपेड़) द्वारा छायायुक्त होकर राजाओं की सेना सम्पत्तिके समान शोभा पानेलगी॥ ११॥ सबखेत अन्नरूपी सम्पत्तिद्वारा किसानोंको आनन्द उपजाने लगे,—और लाभहोना दैवाधीन है ऐसे न जान अन्नके व्यापारी दुःखीहुए ॥ १२ ॥ भगवानकी सेवाकरके मनुष्य जैसे सौंदर्यता प्राप्त करते हैं वैसेही समस्त जल थल बासियों ने नवीन जलसे अभिषिक्तहो मनोहररूप धारण किया ॥ १३ ॥ पवनसे तरंगें लेताहुआ समुद्र नदियोंसे मिलकर ऐसे क्षुभित होनेलगा कि जैसे अपक्व योगीका चित्त कामबासना और बिषयोंसे युक्तहो क्षुभित होजाताहै ॥ १४ ॥ जिसका चित्त भगवान् में लगाहुआहै वह बिषय बासनाओंसे घिरकरभी जैसे व्यथित नहीं होता वैसेही

॥१५॥ मार्गाबभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः । नाभ्यस्यमानाःश्रुतयो द्विजैः कालहताइव ॥ १६ ॥ लोकबन्धुषुमेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः । स्थैर्यंनचक्रुःकामिन्यः पुरुषेषुगुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियतिमाहेन्द्रं निर्गुणंचगुणिन्यभात् । व्यक्तेगुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ नरराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः । अहंमत्याभासितया स्वभासापुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवाहृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः । गृहेषुतप्तानिर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे ॥ २० ॥ पीत्वाऽपःपादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः । प्राक्क्षामास्तपसाश्रान्ता यथाकामानुसेवया ॥ २१ ॥ सरःस्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरंगापिसारसाः । गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्याइवदुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवोवर्षतीश्वरे । पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौयथा ॥ २३ ॥ व्यमुंचन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योथामृतंघनाः । यथाऽऽशिषो विश्पतयः कालेकालेद्विजेरिताः ॥ २४ ॥ एवंवनंतद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् । गोगोपालैर्वृतोरन्तुं सबलःप्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनुवोमन्दगामिन्य ऊधोभारेणभूयसा । ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतंप्रीत्यास्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसःप्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः । जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशेगुहाः ॥ २७ ॥ क्वचिद्वनस्पति

पर्वतभी मूसलाधार वर्षा होनेपरभी दुःखित नहीं है ॥ १५ ॥ जैसे ब्राह्मणोंके अभ्यास न करने और समय बीत जानेसे सब श्रुतियें लोपहोजाती हैं वैसेही मनुष्योंके न आने जाने और तृण ढक जानेसे समस्त मार्गभी लोप होगये ॥ १६ ॥ जैसे व्यभिचारिणी स्त्री गुणवान पुरुषोंमें स्थिरता नहीं करतीं वैसेही लोकोपकारी बादलोंमें बिजली स्थिर नहींहोती ॥१७॥ गुणयुक्त प्रपंचमें निर्गुण पुरुषकी समान, गर्जित शब्दसे पूरित आकाशमें गुण (रस्सा) शून्य इन्द्र धनुष शोभापानेलगा ॥ १८ ॥ जैसे जीव अपनी चैतन्यताके द्वाराही प्रकाशमानहो अहंकारसे ढककर प्रकाश नहीं पासकता वैसेही चन्द्रमा अपनी चन्द्रिकासे प्रकाशितहोकरभी बादलोंसे ढककर प्रकाश नहीं पाता ॥ १९ ॥ घरमें बासकरने से जिनका अंतःकरण दुःखित होरहा है वह हरिभक्त बिरागी पुरुष को जैसे घर में आताहुआ देखकर संतुष्ट होता है—वैसेही मोर बादलोंको आया देख अति प्रसन्नहो आनन्द प्रकाश करने लगे ॥ २० ॥ घोर तपस्या करने से जिन ऋषियों के शरीरकृश होरहे हैं वह जैसे तपस्या सिद्ध होने पर तपका श्रम दूर करने के निमित्त नानाप्रकार के उपभोगों को भोगकर नानारूप के शरीर धारणकरते हैं, ग्रीष्म से तपेहुए सबवृक्षभी वैसेही मूलद्वारा जलपानकर नानाप्रकारकी देह धारणकरतेहुए शोभाको प्राप्तहुए ॥ २१ ॥ हे राजन् ! गृहस्थाश्रम में भयानक कर्मोंका अभावनहीं है तौभी नीचमनुष्य जैसे उस में रहना अच्छाजानते हैं वैसेही सबचकवेभी, कीच और कांटों से व्याप्त तालाबों में बासकरने लगे ॥ २२ ॥ जैसे कलि में पाखण्डियों के कुतर्क से वेदमार्ग नष्टहोजाताहै, वैसेही इंद्र के बर्षाकरने से जल के बेगद्वारा सब फल नष्टहोगये ॥ २३ ॥ जैसे राजागण पुरोहितों की आज्ञानुसार समय २ पर नानाकाम्य पदार्थोंका दान करते हैं वैसेही जलयुक्त मेघ पवन से चलायमानहो प्राणियों के ऊपर अमृत बरसाने लगे ॥ २४ ॥ बन उपबन आदि इस प्रकार से समृद्धिशाली होगये और खजूर व यमुना के फलपक उठे । भगवान् श्रीकृष्णजी बलरामजी को साथले गौ और गोपगणों से घिर क्रीड़ा करनेकेनिमित्त वहां गये ॥ २५ ॥ गौएं थनों में दूधहोने के बोझ से बोझिलहो धीरे २ चलतीथीं; परन्तुभगवान के बुलाने से प्रीतिबशहो शीघ्रतापूर्वक चलने लगीं । चलने के समय उनके थनों से दूध टपकने लगा ॥ २६ ॥ भगवान् ने बनके चारो ओर दृष्टि डालकर देखा कि;—सबही बनबासीआनन्दित होरहे हैं; वृक्ष मधु बरसाते हैं, और पहाड़ों से जल की धारा गिररही है—तथा सबगुफाएं उस

क्रोडे गुहायांचाभिवर्षति । निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥ दध्योदनंसमानीतं शिलायां सलिलान्तिके । संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥ ॥ २९॥ शाद्वलोपरिसंविश्य चर्वतोमीलितेक्षणान् । तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३०॥ प्रावृट्श्रियंचतांवीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् । भगवान्पूजयांचक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवंनिवसतोस्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदानीरजोत्पत्त्या नीराणिप्रकृतिंययुः । भ्रष्टानामिवचेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दंभूतशाबल्यं भुवःपंकमपांमलम् । शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णेभक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥ सर्वस्वंजलदाहित्वा विरेजुःशुभ्रवर्चसः । यथात्यक्तैषणाःशान्ता मुनयोमुक्तकिल्बिषाः ॥ ॥ ३५ ॥ गिरयोमुमुचुस्तोयं क्वचिन्नमुमुचुःशिवम् । यथाज्ञानामृतंकाले ज्ञानिनोददतेनवा ॥ ३६ ॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलंगाधजलेचराः । यथायुरन्वहंक्षय्यं नरामूढाःकुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविन्दन्शरदर्कजम् । यथादरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ शनैःशनैर्जहुःपंकं स्थलान्यामंचवीरुधः । यथाहंममतांधीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे । आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥४०॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्क

जल के गिरने के शब्द से परिपूरित होरहा हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज! वनमें वृष्टि होने से श्रीकृष्णजी कभी वृक्षों के तले कभी गुफा में प्रवेश कर बलरामजी के साथ कन्द, मूल और फलखाकर क्रीड़ाकरने लगे ॥ २८ ॥ भोजन के निमित्त लारहेहुये दही और अन्नको, बलदेवजी के साथ जल के निकटवालीशिलापर बैठ, साथ भोजन करनेवाले गोपों के संग भक्षण करते ॥ २९ ॥ वनमें आयन के भार से श्रमितहुई गौएं, बैल और बछड़े चाराचरके परितृप्तहो नई घासपर बैठ, आंखें मूंद कर पागुर करते थे ॥ ३० ॥ भगवान उन सबको और सबको सब समय में सुख देनेवाली बर्षा लक्ष्मी को देखकर आनंदित हुए और अपनी शक्ति से बढ़ी हुई बर्षाकी लक्ष्मी की प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार से खेल कूदमें आसक्त रहकर राम और कृष्णजी इसप्रकार से ब्रजमें दिन विताने लगे । क्रमसे बर्षा ऋतुगई और शरद ऋतु आई । तब फिर आकाश में मेघन दिखाई दिया, जल निर्मल होगया और वायु ने अपनी प्रचण्डता छोड़दी ॥ ३२ ॥ जैसे भ्रष्ट योगियों के चित्त फिर योग के सेवन से स्वच्छ होजाते हैं वैसेही शरद ऋतुमें कमल उत्पन्न होने से जल निर्मल होगया ॥ ३३ ॥ जैसे श्रीकृष्णजी की भक्ति करनेसे आश्रमी मनुष्य अमंगलों से छूट जाता है; वैसेही शरत्ने—आकाशके मेघ, बर्षा की अधिकता से प्राणियों का एकत्रवास; पृथ्वीकाकीच और जलकी मलीनता को दूर करदिया ॥३४॥ जैसे पापों से छूटे हुए मुनिगणसब बासनाओंको छोड़ शांतहोकर शोभा पाते हैं वैसेही मेघ अपना सर्वस्व छोड़ श्वेत वर्ण धारणकर शोभायमानहुए॥३५॥जैसेज्ञानी पुरुष यथोचित समयमें ज्ञानामृत किसीको देते हैं किसीकोनहीं बर्षाके व्यतीत होजानेसे पहाड़भी उसीप्रकार कहीं निर्मल जल छोड़नेलगे कहीं नहीं,॥३६॥जैसे मूर्खकुटुम्बी मनुष्य परमायुके प्रतिदिन क्षय होनेको नहीं जानसकते,वैसेही थोड़ेही जलमें बिहार करनेवाले जलचर गण उस जलका नित्य कम होते नहीं जानसकते ॥ ३७ ॥ दीन दरिद्री, अजितेंद्रिय,कुटम्बी के समान थोड़ेही जलमें बिहार करनेवाले जलचरगण शरत्काल के सूर्यके तापसे संतप्त होनेलगे ॥ ३८ ॥ जैसे धीर मनुष्य आत्माके अतिरिक्त देहादिसे ममता छोड़देतेहैं वैसेही भूमि, कीच और लताओंने अपक्वता त्यागदी ॥ ३९ ॥ सबप्रकारकी क्रियाओंसे निवृत्त होकर मुनि जैसे वेदपाठ भी परित्याग करदेतेहैं, शरत्कालके आनेसे जल निश्चल होकर समुद्रने वैसेही शांतिभाव धारण

षैका दृढसेतुभिः । यथाप्राणैःस्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेनयोगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजां स्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् । देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभतनिर्मेघं शरद्विमलतारकम् । सत्त्वयुक्तंयथाचित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ॥ ४३ ॥ अखण्डमण्डलोव्योम्नि रराजोडुगणैःशशी । यथायदुपतिःकृष्णो वृष्णिचक्रावृतोभुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्यसमशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् । जनास्तापंजहु र्गोप्यो नकृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावोमृगाःखगानार्यः पुष्पिण्यःशरदाऽभवन् । अन्वीयमानाःस्ववृषैः फलैरीशक्रियाइव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना । राज्ञातुनिर्भया लोका यथादस्यून्विनानृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरे न्द्रियैश्च महोत्सवैः । बभौभूःपक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरांहरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धा. यथा सिद्धास्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे विंशोऽध्याय ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंशरत्स्वच्छजलंपद्माकरसुगन्धिना । न्यविशद्वायुनावा तंसगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरः स रिन्महीध्रम् । मधुपतिरवगाह्यचारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूजवेणुम् ॥२॥ त

क्रिया ॥ ४० ॥ जैसे योगी लोग इन्द्रियमार्गको रोक उस मार्गसे जातेहुये प्राणको रोक रखतेहैं वैसेही किसानोंने मेंड़ बांधकर खेतोंके भीतरका जल रोकदिया ॥ ४१ ॥ जैसे विद्यासे देहाभिमान का और भगवान् श्रीकृष्णजी के दर्शनसे गोपियोंका ताप नाश होताहै वैसेही रात्रिका चन्द्रमा शरत्काल के सूर्यके तापसे संतप्तहुए प्राणियोंका ताप हरनेलगा ॥ ४२ ॥ जैसे सत्वगुणावलम्बी का चित्त वेदमार्गको देखकर शोभा पाताहै उसीभांति आकाश, शरत्के आनेसे निर्मलहो तारोंको प्रकाशितकर रात्रिके समय शोभायमानहुआ, ॥४३॥ जैसे श्रीकृष्णजी यदुकुलसे परिवृतहो अपना चक्र धारणकर शोभापावें, उसीप्रकार चन्द्रमा आकाशमें ताराओं से घिर अखण्ड मण्डल द्वारा प्रकाशित होनेलगा ॥ ४४ ॥ जैसे श्रीकृष्णजीका आलिंगनकर गोपियोंका संताप दूरहोजाता वैसेही फूलेहुए बनकी सुगन्धित, समशीतोष्ण बायुका सेवनकर मनुष्योंने अपना संताप दूरकिया; ॥ ४५ ॥ जैसे भगवदाराधन की क्रियायें आराधन करनेवालेकी इच्छा बिना भी सफल होजाती हैं वैसेही इच्छा न होनेपरभी शरत्कालमें स्वामियोंके बलपूर्वक अनुगमन करनेसे गायें मृगी, पक्षिणी और स्त्रियें गर्भिणी होगईं ॥४६ ॥ हेराजन् ! जैसे राजाके उदयहोनेसे चोरके अतिरिक्त सब मनुष्योंको प्रसन्नता होताहै वैसेही सूर्यके उदय होनेसे कुमुदके अतिरिक्त और जलसे उत्पन्नहुए फूल खिलउठे ॥ ४७ ॥ ग्राम और नगरोंमें नवीन अन्नके भोजनके निमित्त वैदिक तथा इन्द्रियों के सुखकारक लौकिक महोत्सव होनेलगे । हरिके दो अंशोंद्वारा पृथ्वी अत्यन्त शोभाको प्राप्तहुई ॥४८॥ ऋषिमन्त्र और योगादिके प्रभावसे सिद्धपुरुष आयु द्वारा रुककर समय आनेपर जैसे योगादि से प्राप्तहुये, देवादि शरीरोंको प्राप्त होते हैं, वैसेही बनिये मुनि, राजा और ब्रह्मचारी जो वर्षा के कारण अपने २ स्थनानोंमें रुके हुएथे इससमय बाहर हो २ कर अपने २ कार्योंमें लगे ४९॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशम० सरलाभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! शरत्के आनेसे बनका जल स्वच्छ होगया और वायु कमलों के संसर्ग से सुगंधित होकर चलनेलगी; भगवान् ने गाय तथा गोपाल गणोंको साथले उस बनमें प्रवेशकिया ॥ १ ॥ फूलेहुये वृक्षोंकी श्रेणी के ऊपर मतवाले भौंरे और पक्षी बैठेहुये शब्द करतेथे, उनके शब्द से बनके सरोवर, नदी और पर्वत सभी प्रतिध्वनित होरहे थे। भगवान् ने उस बनमें

द्व्रजस्त्रियआश्रुत्यवेणुगीतंस्मरोदयम् । काश्चित्परोक्षंकृष्णस्यस्वसखीभ्योऽन्वव र्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यःकृष्णचेष्टितम् । नाशकन्स्मरवेगेनविक्षि प्तमनसोनृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडंनटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारंबिभ्रद्वासः कनककपि शंवैजयन्तींचमालाम् । रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यंस्वपदरम णंप्राविशद्गीतकीर्त्तिः ॥ ५ ॥ इतिवेणुरवंराजन्सर्वभूतमनोहरम् । श्रुत्वाव्रजस्त्रि यः सर्वावर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतांफलमिदंनपरंविदा मः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः । वक्त्रंव्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टंयैर्वानिपीतम नुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधान विचित्रवेषौ । मध्येविरेजतुरलंपशुपालगोष्ठ्यांरङ्गेयथानटवरौक्वचगायमानौ ।८। गोप्यः किमाचरदयंकुशलंस्मवेणुर्दामोदराधरसुधामपिगोपिकानाम् । भुङ्क्तेस्वयं यदवशिष्टरसंह्रदिन्योहृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवोयथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥ वृन्दावनंसखिभु वोवितनोतिकीर्तिंयद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि । गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याःस्ममूढमतयोऽपि हरिण्यएताया

प्रवेशकर बलराम जी और अन्य बालकों के साथ गौ चराते २ बंशी बजाई ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी के उस वेणुगीतको सुनकर गोपियों के मनमें कामदेव उत्पन्न हुआ; उनमें से कोई २ एकांत में अपनी सखियों के निकट उनके गुणका वर्णन करनेलगीं ॥ ३ ॥ परन्तु वर्णन करतेही उनके चारित्रोंका स्मरण होने से कामदेव के वेगके कारण उनका चित्त चंचल होउठा अतएव उनका यत्न फलीभूत न हुआ ॥ ४ ॥ वे मनमें बिचारने लगीं कि नटवर श्रीनंद नंदनने, अधरामृतसे बंशीके छिद्रोंको पूर्णकर श्रीवृन्दाबन में प्रवेश किया । उनके मस्तक में मोरपंखका बनाहुआ मुकुट, दोनो कानों में कनेर के फूल शरीर में सुवर्ण के रंगकासा पीतांबर और गलेमें वैजयंता माला शोभाय-मान होरही थी । वृन्दाबन उनके पदचिह्नों से चिह्नितहो रति उत्पन्न करने वाला होउठा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सब प्राणियों को प्यारी बांसुरी की ध्वनि सुनकर समस्त ब्रजनारियें इस प्रकार से वर्णन करते २ क्षण २ में परमानंद मूर्त्ति भगवान् का आलिंगन करने लगीं ॥ ६ ॥ गोपियों ने कहाकि हे सखियों । इस समय ब्रजेश्वर राम कृष्णदोनो भ्राताओं ने अपने साथियों के साथ पशुओं को ले बनमें प्रवेश किया है। उनके मुखमें बांसुरी लगी रहती है और वह सुंदर कटाक्ष चलाया करते हैं जिन्हों ने इनदोनो मुखार विंदों के मकरंद का पानकिया है उन्हीं के नेत्र सफल हैं और दूसरे के नहीं ॥ ७ ॥ यह सुनकर दूसरी ब्रजनारी ने कहाकि—अहो ! गोपोंका कैसा बड़ा पुण्य है ! कि उनकी सभाके बीचमें राम और कृष्ण नील और पीतवस्त्रों से बिचित्र वेश धारणकर अत्यंत शोभा से बिराजते हैं। उनके वहनील और पीतवस्त्र आमकी कोपल, मोरपिच्छ, उत्पल और कमलोंकी माला धारण करने से और भी शोभायमान होरहे हैं ॥ ८ ॥ दूसरी गोपी ने कहाकि-हे गोपियों ! इस बंशी ने ऐसा क्या पुण्य कियाथा ! देखो—श्रीकृष्णजी के जोअधरामृत केवल गोपिकाओंही के भोगके योग्य हैं उनका रसमात्र शेष रखकर अकेलेही सबका भोग करती है । जिसके जलसे इसकी पुष्टिहुई थी वह सब नदियें इसके अपूर्व सौभाग्यको देखकर खिलेहुये कमलों के रूप से रोमांचित होरही हैं । और वृक्ष अपने बंशमें पुण्यात्माको जन्मादेख रसके मिषसे ऐसे आंसूबहा-रहे हैं कि जैसे कुलवृद्ध अपने वंशमें भगवद्भक्तको देख पुलकित आनंदाश्रु गिरातेहों ॥ ९ ॥ किसी २ स्त्री ने कहाकि—हे सखि ! देखो, देखो, ! श्रीवृन्दावन श्रीकृष्णजी के चरण कमलों के संसर्ग से कैसी शोभापाता है ! श्रीकृष्णजी की मुरली ध्वनिको सुनकर मोर मतवाले होकर नाचरहे हैं। उनके नृत्यको देखकर बनके दूसरे समस्त प्राणी सब कामनाए छोड़कर इकट्ठे हो हो पर्वतकी तराईमें दौड़रहे हैं । सुखमय वृन्दावन पृथ्वीकी कीर्त्तिका विस्तार करता है ॥ १० ॥ और २ स्त्रियों ने

नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् । आकर्ण्यवेणुरणितंसहकृष्णसाराःपूजांदधुर्विरचितांप्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णंनिरीक्ष्यवनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वाच तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् । देव्योविमानगतयःस्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरामुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैःपिबन्त्यः । शावाःस्नुतस्तनपयःकवलाःस्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाःस्पृशन्त्यः॥१३॥ प्रायोवताम्बविहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितंकलवेणुगीतम् । आरुह्यये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालाञ्छृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥ नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः । आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलंकमलोपहाराः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाऽऽतपेव्रजपशून्सहरामगोपैःसंचारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् । प्रेमप्रवृद्धउदितःकुसुमावलीभिःसख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥ पूर्णाःपुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेनदयितास्तनमण्डितेन। तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्यआननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥ हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्योयद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः । मानंतनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥ गागोपकैरनुवनं न

कहाकि—हे सखि ! हरणियें पशुयोनि में उत्पन्न तोहुई हैं परन्तु यह भी मुरली की ध्वनि सुनकर हिरणों के समेत एकत्र होकर विचित्र वेशधारी श्रीकृष्णजी की ओर प्रेमकी दृष्टिसे देखकर सन्मान करती हैं॥ ११ ॥ दूसरी गोपी ने कहाकि—हे गोपीगण ! श्रीकृष्णजी के रूप व चरित्रको देखकर किस स्त्रीको आनंद उत्पन्न न होगा ? उनको देख तथा उनकी बंशीकी ध्वनि सुनकर देवनारियें भी प्रियतम की गोद में शयन करते हुये कामदव के वेगसे व्याकुलहो उठती हैं । उस समय उनके बालों के जूडे से फूल गिरने लगते हैं और कमर बंधन ढीला पडजाता है ॥ १२ ॥ सबगायें कान उठायेहुये, श्रीकृष्णजी के मुखसे निकले गीतामृतका पानकर मनमें नेत्रोंद्वारा उनका आलिंगनकर आंसू भरेहुये नेत्रों से देखती हुईखडी रहती हैं। दूधको पीतेहुये बछडे भी यदिकान उठाकर उस गीतामृतका पानकरते हैं तो स्तनों से निकले हुये दूधका ग्रास उनके मुंहहीमें रहजाता है और नेत्र भी एक प्रकार की अश्रुधारा से परिपूर्ण होजाते हैं॥ १३ ॥ हे सखि! इस बनमें जो पक्षी हैं वह मुनिहोने योग्य हैं; क्योंकि जैसे मुनिगण भगवान्का दर्शन करते हैं वैसेही यह भी मनोहर पत्तोंयुक्त वृक्षोंपर बैठकर दूसरी वार्त्ताको छोड, आंखे बंदकिये श्रीकृष्णजी के सुंदर वेणु गीतको सुनाकरते हैं ॥ १४ ॥ सचेतनों की बातदूर रही; श्रीकृष्णजी के गीत सुनकर सब नदियें भी भंवर पडने के मिषसे कामका बेग प्रकाश करती है। कामके वेगसे उनका वेग न्यून होजाता है। वह तरङ्ग स्वरूप भुजाओं से कमलों को भेटमे ले, आलिंगन के साथ आच्छादन करती हुई श्रीकृष्णजी के चरणोंको धारण करती हैं ॥ १५ ॥ बलराम और गोपालों समेत अपने सखाको बंशी बजाते २ ब्रजके पशुओंको धूपमें चराते देख मेघ मस्तकों के ऊपर उदयहोते हैं और प्रेमके बशीभूतहो पुष्पकी समान नन्हीं २ बूंदें बरसाय अपनी देहों से उनकी छत्ररचना करते है ॥१६॥ भीलनियों कोभी धन्य है; क्योंकि जोकेसर स्त्रियों के स्तन में लग रहनके कारण श्रीकृष्णजी के चरण कमलों म लगता रहता है वह श्रीकृष्णजी के बनमें बारंबार भ्रमण करने के कारण चरणों से छूटकर तृणमें लगता है उसी केसरको देखकर कामदेव से व्याकुलहो भीलनियें उसीको शरीर और कुचोंमें मलकर कामदेव की व्यथाको नाश करती हैं ॥ १७ ॥ हे सखियों ! देखो यह गोवर्धन पर्वत श्रीकृष्णजी के भक्तों में श्रेष्ठ है क्योंकि राम कृष्णको देखकर यह आनंदितहो जल, सुंदरतृण, गुफा, कंद, मूल द्वारा उन श्रीकृष्णजी की पूजाकरता है ॥ १८ ॥ हे सखागण ! देखो

यतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सुसख्यः । अस्पन्दनंगतिमतांपुलकस्तरूणांनिर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥ एवंविधाभगवतोयावृन्दावनचारिणः । वर्णयन्त्योमिथोगोप्यः क्रीडास्तन्मयतांययुः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

श्रीशुक उवाच ॥ हेमन्तेप्रथमेमासिनन्दव्रजकुमारिकाः । चेरुर्हविष्यंभुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्याम्भसिकालिन्द्याजलान्तेचोदितेऽरुणे । कृत्वाप्रतिकृतिंदेवीमानर्चुर्नृपसैकतीम् ॥ २ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः । उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनिमहामायेमहायोगिन्यधीश्वरि । नन्दगोपसुतंदेविपतिंमेकुरुतेनमः । इति मन्त्रंजपन्त्यस्ताः पूजांचक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥ एवंमासंव्रतंचेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः । भद्रकालींसमानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ ५ ॥ उषस्युत्थायगोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः । कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यांस्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥ नद्यांकदाचिदागत्यतीरेनिक्षिप्यपूर्ववत् । वासांसिकृष्णंगायन्त्योविजह्रुः सलिलेमुदा ॥ ७ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्यकृष्णोयोगेश्वरेश्वरः । वयस्यैरावृतस्तत्रगतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥ तासांवासांस्युपादायनीपमारुह्यसत्वरः । हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाचह ॥ ९ ॥ अत्रागत्याबलाः कामंस्वंस्वंवासः । प्रगृह्यताम् सत्यंब्रवाणिनोनर्मयद्यूयंव्रतकर्शिताः ॥ १० ॥ नमयोदितपूर्वंवाअनृतंतदिमेविदुः । एकैकशः प्रतीच्छध्वंसहैवोत

क्या आश्चर्य का विषय है ! कि राम, कृष्ण पैरके बांधनेवाली रस्सियें और पाश लेकर गोपालगणों के साथ गायोंको एक वनसे दूसरे बनमें लेजाते हैं, इनके मधुर वेणुनादको सुनकर जीवआदि निश्चल और वृक्षआदि पुलकित होजाते हैं ॥ १९ ॥ भगवान् ने वृन्दावन में घूम २ कर जो २ क्रीड़ा कीथी गोपियें उन सबका इस प्रकार से वर्णन कर २ तन्मयताको प्राप्त हुईं ॥ २० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! हेमन्तकाल के प्रथम मास में नन्द व्रजकी कुमारियेंने हविष्यान्नभोजन कर कात्यायनी देवी के पूजनका व्रतधारण किया ॥ १ ॥ हेराजन् ! सबकुमारियें अरुणोदय होतेही कालिंदी के जल में स्नानकर जल के निकट बालूकी देवी की मूर्ति बनायसुगंधि गंध,माला, नैवेद्य, धूप, दीप, श्रेष्ठ २ सामग्रियों और ताम्बूल द्वारा पूजाकरतीं ॥ २ । ३ ॥ और यह मन्त्र पढ़तीं कि—हेकात्यायनि ! हेदेवि ! नन्दगोपके पुत्र को हमारा स्वामी करदो; आप को हम नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥ "कृष्णही हमारे पति होवें" इस इच्छासे श्रीकृष्णजीमें चित्तसमर्पण कर कुमारियों ने इस प्रकार से एक महीने तक व्रतका आचरण कर भद्रकाली की पूजाकी ॥५॥ वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठ, एक दूसरे का हाथ पकड कालिंदी में स्नानकरने को जाते समय अपने २ नामों सहित कृष्णजी का गुण गातीरहतीं ॥ ६ ॥ एक दिन उन सब व्रजकुमारियों ने नदी में जायकर और दिनों की समान किनारे पर अपने २ वस्त्रधर कृष्णजी के गुणों का गान किया व आनन्द पूर्वक जलक्रीड़ाकरने का आरम्भकिया ॥७॥ योगेश्वरों के ईश्वर भगवान कृष्णजी उनकी कामना को जान, उनके कर्मों का फल देने के निमित्त, साथियों को साथले उस स्थानपर आये और उन के सबवस्त्रों को हरणकर कदम्ब के वृक्षपर चढ़ हँसनेवाले बालकों के साथ हँसते हँसते परिहास करके कहने लगे कि—॥ ८ । ९ ॥ हे अबलागण ! तुमइस स्थान परआय प्रसन्नता पूर्वक अपने २ वस्त्रों को लो; मैं सत्यकहताहूं—परिहास नहीं करता क्योंकि तुम व्रतकरके अत्यंत दुबली होरहीहो ॥ १० ॥ यहसब बालक जानते हैं कि मैं मिथ्या नहीं कहता । हेसुमध्यमा !

सुमध्यमाः ॥११॥ तस्यतत्क्ष्वेलितंदृष्ट्वागोप्यः प्रेमपरिप्लुताः । व्रीडिताः प्रेक्ष्यचा न्योऽन्यंजातहासानर्निर्ययुः॥१२॥एवंब्रुवतिगोविन्देनर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः। आकण्ठ मग्नाशीतोदेवेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयंभोः कृथास्त्वांतुनन्दगोपसुतंप्रि यम् । जानीमोऽङ्गव्रजश्लाघ्यंदेहिवासांसिवेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुन्दरतेदास्यः करवामतवोदितम् । देहिवासांसिधर्मज्ञनोचेद्राज्ञेब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवा च । भवत्योयदिमेदास्यो ममोक्तंवाकरिष्यथ । अत्रागत्यस्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततोजलाशयात्सर्वा दारिकाःशीतवेपिताः । पाणिभ्यां यो निमाच्छाद्य प्रोत्तेरुःशीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाहतावीक्ष्य शुद्धभावप्रसादि तः । स्कन्धेनिधायवासांसि प्रीतःप्रोवाचसस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयंविवस्त्रायदपोधृ तव्रता व्यगाहतैतत्तदुदेवहेलनम् । बद्ध्वांजलिंमूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वानमोऽधोव सनंप्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितंव्रजाबला मत्वाविवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्यु तिम् । तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतंनेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथा वनतादृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः । वासांसिताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ ॥ २१ ॥ दृढंप्रलब्धास्त्रपयाच हापिताः प्रस्तोभिताःक्रीडनवच्चकारिताः । वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं तानाभ्यसूयन् प्रियसंगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधायस्ववासां- सि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः । गृहीतचित्तानो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥ ता·

एक २ आवो चाहे सब एकत्रितहोकर आवो, आकर अपने वस्त्र लेजावो ॥ ११ ॥ उनके इस परिहास करने को देखकर गोपियें विह्वल और लज्जितहो परस्पर एक दूसरे को देखकर हंसनेलगीं—जलसे तीरमें न आसकीं ॥ १२ ॥ गोपियों का चित्त क्रीड़ामें आसक्तथा, ठंढे जल में कण्ठतक डूबे रहनेसे उनका शरीर कांपनेलगा । श्रीकृष्णजीके बारम्बार ऐसा कहनेपर वह कां- पते कांपते कहनेलगीं कि— ॥१३॥ हे कृष्ण ! अन्याय न करो आप नन्दगोप के पुत्रहो तमको हम भलीभांति जानती हैं । हम जानतीहैं कि व्रजमें तुम सबसे श्रेष्ठहो । हमारे वस्त्र देदो हम कंप रहीहैं ॥ १४ ॥ हेश्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासीहैं । आप जो आज्ञाकरें वहीकरें । हे धर्मज्ञ ह- मारे वस्त्र देदो नहींतो हम राजासे जाकर कह देंगी ॥१५॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हेसुवासिनी गण ! यदि तुम हमारी दासीहो और मेरी आज्ञाका प्रतिपालनभी करना चाहतीहो तोलो मैं आज्ञा करताहूं कि—इसस्थानपर आकर अपने वस्त्र लेवो ॥ १६ ॥ ऐसा न करने से मैं वस्त्र न दूंगा, बुद्ध राजा हमरा क्या करेगा ? स्त्रियें शीतसे कष्ट पारहीथीं, वह अन्तमें दोनों हाथोंसे अंगको ढककर शीतसे कांपते २ जलसे तीरपर आईं ॥ १७ ॥ भगवान् उनको विशुद्ध भावसे खड़ाहुआ और उनके अक्षत अंगको देखकर प्रसन्नहुए और सब वस्त्रों को कन्धेपर रख हंसतेहु बोले कि— ॥ १८ ॥ तुमने व्रतका आचरण करतेहुये नंगी होकर जलमें स्नान कियाहै । इससे निश्चयही देवता का अपराध हुआहै । अतएव इस पापको दूर करनेके निमित्त मस्तकपर हाथजोड़ मस्तक नवाय नमस्कार कर वस्त्रलो, ॥ १९ ॥ हेराजन् ! व्रजांगनाओंने, भगवान् का यह बचन सुन, निश्चयही व्रत भंग होना जान उसकी परिपूर्णताकी कामनाकर उस व्रतके तथा और नानाप्रकारके कर्मोंके फल स्वरूप उन श्रीकृष्णजीको प्रणाम किया उन्होंने विचार किया कि यही पापोंके नाश करनेवाले हैं ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी उनको इस प्रकार से नम्रहुआ देख संतुष्टहुए और कृपापूर्वक वस्त्र देदिये ॥ २१ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी ने उन ब्रजकुमारियों को ठगा, निर्लज्ज किया, उपहास किया, वस्त्रहरण किये—अधिकक्या कठपुतलीकी समान नचाया तौभी उन स्त्रियों ने उनपर दोषारोपण न किया; क्योंकि प्यारे के संग वह आनन्द में मग्नहोगईथीं ॥ २२ ॥ हेराजन् ! वस्त्र पहिनकरभी वहसब स्त्रियें वहां से न चलसकीं; क्योंकि प्यारे के संगम से वशीभूतहोकर उनका

सांविज्ञायभगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया । धृतव्रतानांसंकल्पमाह दामोदरोऽब-
लाः ॥ २४ ॥ संकल्पोविदितःसाध्व्यो भवतीनांमदर्चनम् । मयाऽनुमोदितःसोऽ-
सौसत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ नमय्यावेशितधियां कामःकामायकल्पते । भर्जि
ताःक्वथिताधानाप्रायो बीजायनेष्यते ॥ २६ ॥ याताऽबलाव्रजंसिद्धा मयेमारंस्य
थक्षपाः । यदुद्दिश्यव्रतमिदं चेरुरार्यार्चनंसतीः ॥ २७ ॥ श्रीशुकउवाच । इत्यादि
ष्टाभगवता लब्धकामाःकुमारिकाः । ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्र-
जम् ॥ २८॥ अथगोपैःपरिवृतो भगवान्देवकीसुतः । वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन्गाः
सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिःस्वाभिरात्मनः । आतपत्त्रायि-
तान्वीक्ष्य द्रुमानाहव्रजौकसः ॥ ३० ॥ हेस्तोककृष्णहअंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥
विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥ पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजी
विनः । वातवर्षातपहिमान्सहन्तो वारयन्तिनः ॥ ३२ ॥ अहोएषांवरंजन्म सर्वप्रा-
ण्युपजीवनम् । सुजनस्येवयेषांवै विमुखायान्तिनार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छा
यामूलवल्कलदारुभिः । गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥ ३४ ॥
एतावज्जन्मसाफल्यंदेहिनामिहदेहिषु । प्राणैरर्थैर्धियावाचाश्रेयआचरणंसदा
॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः । तरूणांनम्रशाखानांमध्येनयमुनां
गतः ॥ ३६ ॥ तत्रगाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः । ततोनृपस्वयंगो

चित्त भगवान की ओर खिंचगयाथा; इसहीकारण वह श्रीकृष्णजीकी ओर सलज्जभावसे देखन
लगीं ॥ २३ ॥ इन्होंने मेरे चरणस्पर्श की कामनामेंही व्रतधारण किया है–उनकी इसइच्छाको
भगवान ने जानकर कहा कि– ॥ २४ ॥ हेसाध्वी स्त्रियों ! तुमने जिस संकल्प से यह व्रत किया
उस को मैं जानताहूं और स्वीकारभी करताहूं । अतएव उसका पूर्ण होना उचित है ॥२५॥जिस
का चित्त मुझमें लगाहुआ है–उसकी इच्छा पूर्ण होजाने पर फिर उसको फल नहीं भोगनापड़ता,
भुनाहुआ व औटाहुआ बीज दूसरे बीज को नहीं उत्पन्न करसकता ॥ २६ ॥ हे अबलाओं! तुम
व्रज में जाओ; तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी । हे सतीगण ! आगामी रात्रियों में तुममेरे साथ बिहार
करसकोगी । क्योंकि यही कामना करके तुमने देवी का व्रत किया है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने
कहा कि–हेराजन् ! कृतार्थहुई गोपियें भगवान की इस आज्ञा को पाय उनके चरणकमलों की
चिंता करते २ अतिकष्ट से व्रज में आईं ॥ २८ ॥ अनन्तर भगवान् देवकीनन्दन–बलदेवजी
समेत गोपों को संगले गौ चराते २ वृन्दावन से दूर निकल गये ॥ २९ ॥ वहां ग्रीष्म की प्रचण्ड
धूप से वृक्षों को अपने मस्तकके ऊपर छाते की समानछायाकरते देख व्रजबासियों से बोले कि
॥ ३० ॥ हे स्तोककृष्ण ! हे अंशु ! हे श्रीदामन् ! हे सुबल ! हेअर्जुन ! हे विशाल ! हे वृषभ !
हे ओजस्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरुथप ! ॥ ३१ ॥ इनसब महाभाग वृक्षों को देखो; यह दूसरे
के स्वार्थ के निमित्त जीवित होरहे हैं । देखो––स्वयं वात, वर्षा, धूप और शीत सहनकर हमारी
सबकी रक्षाकरते हैं ॥ ३२ ॥ अहो ! इनका जन्म अत्यन्तही श्रेष्ठ है । यहसब प्राणियों कोजीवि
का देते हैं । दानी मनुष्य के निकट से याचककी समान, इन के निकट से प्राणिगण कभी भी
विमुखनहीं होते ॥ ३३ ॥ यहपत्र, फूल, फल, छाया, मूल, छाल, गोंद,काठ,भस्म, अस्थि, कोंपल
आदि से सबकी कामना पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ प्राणियों में उन्हीं प्राणियों का जन्म सफल है
कि–जो प्राण, धन और बाक्य द्वारा सबका कल्याण करते हैं ॥ ३५ ॥ हेराजन् ! इस प्रकार से
प्रशंसा करतेहुए कोंपल, गुच्छक, फल, फूल और पत्तों के बोझ से लचीहुई डालियों के बीच में
होतेहुए भगवान् यमुना तटपर पहुँच ॥ ३६ ॥ महाराज !गोपगणों ने उस स्थान में अतिस्वच्छ

पाः काममस्वादुपयर्ज्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्याउपवनेकामंचारयन्तः पशून्नृप । कृष्णरामावुपागम्यक्षुधार्ताइदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

गोपा ऊचु ॥ रामरामहावीर्य कृष्णदुष्टनिबर्हण । एषावैबाधतेक्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिविज्ञापितोगोपैर्भगवान्देवकीसुतः । भक्तायाविप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥२॥ प्रयातदेवयजनंब्राह्मणाब्रह्मवादिनः । सत्रमाङ्गिरसंनामह्यासतेस्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्रगत्वौदनंगोपायाचतास्मद्विसर्जिताः । कीर्तयन्तोभगवतआर्यस्यममचाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टाभगवतागत्वाऽयाचन्तनेतथा । कृतांजलिपुटाविप्रान्दण्डवत्पतिताभुवि ॥ ५ ॥ हेभूमिदेवाः शृणुतकृष्णस्यादेशकारिणः । प्राप्ताञ्जानीतभद्रंवोगोपान्नोरामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयन्ताविदूरओदनंरामाच्युतौवोलषतोबुभुक्षितौ । तयोर्द्विजाओदनमर्थिनोर्यदिश्रद्धाचवोयच्छतधर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्चसत्तमाः । अन्यत्रदीक्षितस्यापिनान्नमश्नन्हिदुष्यति ॥ ८ ॥ इतितेभगवद्याच्ञांशृण्वन्तोऽपिनशुश्रुवुः । क्षुद्राशाभूरिकर्माणोबालिशावृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यंमन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः । देवतायजमानश्चक्रतुर्धर्मश्चयन्मय ॥ १० ॥ तंब्रह्मपरमंसाक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् । मनुष्यदृष्ट्यादुष्प्रज्ञामर्त्यात्मानोनमेनिरे ॥ ११ ॥ नतेयदामितिप्रोचुर्ननेतिचपरन्तप । गोपानिराशाः प्रत्येत्यतथोचुः कृष्णरामयोः

पवित्रजल गौओं को पिलाय आपभी पान किया ॥३७॥ कालिंदीकेवनमें इच्छानुसार गाय चराते २ भूखसे व्याकुलहोकर गोपगण—श्रीकृष्णजी व बलरामजीके निकट जाय यह बचन बोले ॥ ३८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

गोपों ने कहा कि—हेराम ! हेमहावीर्यराम ! हेदुष्टदमनश्रीकृष्ण ! हम भूख से दुःख पारहे हैं इस के दूरकरने का आपको प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! गोपों के इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्णजी ने, अपनी भक्त द्विजनारियों पर कृपा करने की इच्छा से यह कहा कि—॥२॥ तुम देवयज्ञ में जाओ, वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने स्वर्गकी कामनाकर आंगिरस नामक यज्ञका आरम्भ कियाहै ॥ ३ ॥ हेगोपगण ! मैं तुमको भेजताहूं । तुम उस स्थानमें जाकर भगवान् बलदेवजी और मेरा नाम लेकर अन्न मांगना॥४॥ गोपगणोंने भगवान्की इस आज्ञाको पाय उस स्थान में जाय,पृथ्वीपर गिर हाथजोड़ ब्राह्मणोंसे अन्न मांगा ॥५॥ गोपोंनेकहा कि—हेब्राह्मणगण! आपका कल्याणहो सुनो, हम श्रीकृष्णजीके भेजेहुए आयेहैं, हम गोपोंको रामने आपके समीप भेजाहै, ॥ ६ ॥ राम और कृष्ण इस स्थानके निकटही गौ चराते २ भूखसे कातर हुएहैं, उन की इच्छाहै कि—आपके अन्नका भोजन करें । हेधर्मज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणगण ! यदि आपकी श्रद्धाहो तो आप अन्न देवें,वह प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥ हेसाधुओं ! जबसे दीक्षा आरम्भहो, तबसे अग्निस्वामीका पशुमरे उसके पहिल दीक्षित अन्न खानेका दोषहै परन्तु पशु मरनेके उपरांत नहीं तैसेही सौत्रामणि नामक यज्ञ बिना दीक्षितका अन्न खानमें कोइदोष नहीं॥८॥ हेराजन्! वह सब ब्राह्मण इसप्रकार कृष्णजीकी प्रार्थनाको सुनी अनसुनी करगए । साधारण स्वर्गादिकी आशा करके—वह क्लेशकारक कर्मोंको करतेथे और अपनेको बड़ाज्ञानी मानतेथे । इसहीकारण भगवान्की आज्ञाको सुनकर उस आज्ञा का प्रतिपालन न किया ॥ ८ ॥ उन भूखे ब्राह्मणोंने—देश, काल, भिन्न २ पदार्थ, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक् अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्मजिसके स्वरूपहैं उन्हीं भगवान् परब्रह्मको सामान्य पुरुष जानकर सन्मान न किया ॥ ११ ॥ हेपरंतप ! जब उन्हों

॥१२॥ तदुपाकर्ण्यभगवान्प्रहस्यजगदीश्वरः । व्याजहारपुनर्गोपान्दर्शयंल्लौकिकींगतिम् ॥ १३ ॥ मांज्ञापयतपत्नीभ्यःससंकर्षणमागतम् । दास्यन्तिकाममन्नंवः स्निग्धामय्युषिताधिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथपत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः । नत्वाद्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिताइदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमोवाविप्रपत्नीभ्योनिबोधतवचांसिनः । इतोऽविदूरेचरताकृष्णेनेहापिताववयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्सगोपालैः सरामोदूरमागतः । बुभुक्षितस्यतस्यान्नंसानुगस्यप्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायान्तंनित्यंतद्दर्शनोत्सुकाः । तत्कथाक्षिप्तमनसोबभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधंबहुगुणमन्नमादायभाजनैः । अभिसस्रुः प्रियंसर्वाः समुद्रमिवनिम्नगाः॥१९॥ निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः । भगवत्युत्तमश्लोकेदीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते । विचरन्तंवृतंगोपैः साग्रजंददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामंहिरण्यपरिधिंवनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे । विन्यस्तहस्तमितरणधुनानमब्जंकर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः । अन्तः प्रवेश्यसुचिरंपरिरभ्यतापंप्राज्ञंयथाभिमतयोविजहुर्नरेन्द्र ॥ २३ ॥ तास्तथात्यक्तसर्वाशाः

ने "हां,, "ना,, कुछ न कहा तब गोपगणों ने निराश होकर कृष्णजी व बलदेवजीके समीप आय यह सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ १२ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी उस बातको सुन हंसकर गोपोंसे कहने लगे कि—हेगोपालगण ! कार्य करतेहुए कोई निराश नहीं होता, जो कार्य पूर्ण करनेकी इच्छा करतेहैं उनको निराश न होना चाहिये ॥ १३ ॥ तुम द्विजनारियों के यहां जाकर कहो, कि—मैं राम समेत यहां उपस्थितहूं । वह तुमको अन्न देंगी, वह मुझे बहुत चाहतीहैं उन्होंने मुझमेंही अपनी बुद्धि लगारक्खीहै, ॥ १४ ॥ अनन्तर गोपोंने पत्नीशालामें देखा कि—द्विजपत्नियें सुन्दर अलंकार धारण कियेहुए बैठीहैं । गोपोंने विनय भाव से कहा कि—१५ ॥ हेविप्रपत्नियों ! आपको प्रणामहै । हमारी बात सुनो, श्रीकृष्णजी इस स्थानके समीप भ्रमण कररहे हैं ॥१६॥ वह गोपालगण और बलरामजीके साथ गौ चराते२ बाहरचले आयेहैं इसकारण भूखसे अत्यन्त दुःखित होरहेह । आप उनको और उनके सेवकोंको अन्नदानकरें।१७॥श्रीकृष्णजीके चरित्रों से द्विजनारियोंका मन उनकीओर खिंचगयथा; इसहीकारण वह उनके दर्शन करने की कामना बहुत दिनों से कररहीथीं । इससमय उनके आनेका समाचार सुनकर अत्यंत अधीर होउठीं॥१८॥बहुतदिनों से भगवान् की लीलाओंको सुनतेहुये उनका चित्त पवित्र कीर्त्ति श्रीकृष्णजीमें बंधगयाथा अतएव पति, पिता,भ्राता, और बंधुओंके निवारण करनेपरभी समुद्र में गिरने वाली नदीके समान, सबही पात्रोंमें भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय अन्न लेकर प्यारेके निकट दौड़चलीं ॥ १९ । २० ॥ यमुना तीरपर पहुंचकर देखाकि—श्रीकृष्णजी अशोक वृक्षके नवीन पत्तोंसे विभूषित यमुनाके उपवनमें गोपगण तथा बड़ेभाई के साथ घूमरहे हैं ॥ २१ ॥ उनका श्यामवर्ण है पीतवस्त्र पहिने, गले में बनमाला धारण किये; मोरपंख धातु और पत्तोंद्वारा अपना वेश बनाये नटकी समान शोभा पा रहे हैं । वह एक हाथ सेवकों के कंधेपर रखदूसरे हाथ से एक नलि कमल घुमारहे हैं । उनके दोनो कानों में कमल, कपोलों पर अलकें, और कमल मुखमें हास्य शोभित होरहा है ॥ २२ ॥ बारंबार प्रियतम के श्रेष्ठ चरित्रोंको सुनकर उनके कर्ण छकित होरहे थे इसही कारण सब ब्राह्मणियों का मन श्रीकृष्णजी में निमग्न होरहाथा । उन भगवानूको नेत्ररूप द्वारों से अपने हृदय में बिठलाय, बड़ी देरतक आलिंगनकर; बुद्धिमान पुरुष के आलिंगन से अहं बुद्धिकी समान सब

प्राप्ता आत्मदिदृक्षया । विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् । यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ न न्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शिनाः । अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥ प्राणबुद्धिमनः स्वात्मदारापत्यधनादयः । यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोऽन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः । स्वसत्रं पारयिष्य न्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् । प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलं घ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥ गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कु त एव चान्ये । तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः लोकाश्च वो मयोपे ता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह । तन्मनो मयि यु ञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता द्विजपत्न्यस्ता यज्ञ वाटं पुनर्गताः । ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् । हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गो विन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् । चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥ एव

संतापोंको दूर करदिया ॥ २३ ॥ वह सब स्त्रियें आश छोड़कर आई हैं--यह जानकर भगवान् श्रीकृष्णजी ने हंसते हुये उनसे कहाकि—॥ २४ ॥ हे महाभाग ! तुमसब सुख से तो आईहो ? आओ बैठो । क्या करनेकी आज्ञा है ? हमारे दर्शन की इच्छा से जोतुम आईहो यह तुमको उचितही है ॥२५॥ जोविवेकी मनुष्य विवेक द्वारा अपने २ अभिप्रायको देखते रहते हैं वह मुझप्रिय आत्मा की भक्ति फलाभिसंधान रहित और निरवच्छिन्न होकर करते हैं ॥ २६ ॥ कारण कि— आत्मा सबसे प्यारा-प्राण, बुद्धि, जातिवाले, देह, धन, पुत्र, कलत्र आदि जिसके संबंध से प्यारे लगते हैं उससे अधिक फिर कौनप्यारा है ॥ २७ ॥ अतएव अबतुम कृतार्थ हुईं; इस समय देव यज्ञको जावो। यद्यपि तुमको याग, यज्ञकी आवश्यकता नहीं है तौभी गृहस्थ ब्राह्मण तुम्हारे स्वामी तुम सबको लेकर उस यज्ञको पूर्ण करेंगे ॥ २८ ॥ द्विजनारियों ने कहाकि -हे विभो ! ऐसे निष्ठुर बचन कहना आपको उचित नहीं है । हम अपने सब स्वजनों की अवज्ञा करके तिरस्कार सभी दीहुई तुलसीकी मालाके सदृश धारण करनेको अर्थात् दासी होनेको आपके समीप आई हैं ॥२९॥ दूसरे की बाततो दूररही पति, पिता, माता, पुत्र, भ्राता जातिवाले और बंधुगण भी हमको ग्रहण न करेंगे । अतएव हे रिपुदमन ! जिससे हमारी दूसरा गति न होवे आपवही करदेवें । हम आपके चरणों की शरण में आई हैं ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् ने कहाकि—पति, पिता, भ्राता और पुत्रादि तथा और मनुष्यभी तुमको दोषन करसकेंगे और देखो, देवताभी मेरी आज्ञाको स्वीकार करते हैं इस जगत् में मनुष्यको अंगसंग सेही सुख प्राप्त होताहो, सोनहीं है तुम मुझमें अपना मन समर्पणकर मुझको प्राप्त होगी मेरे नामादि के सुनने, मुझे देखने, मेरे ध्यान करने और मेरे गुणोंका वर्णन करने से जैसामुझ में प्रेम उत्पन्न होता है केवल मेरे निकट रहने से वैसा प्रेममुझ में नहीं होसकता । अतएव तुम घरको लौटजावो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के इसभांति कहनेपर वह द्विजनारियें फिरयज्ञ स्थानमें लौटआई । ब्राह्मणों नेभी दोष न देखकर स्त्रियोंको साथले यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ एक स्त्री स्वामी से पकड़ी जाकर श्री कृष्णजी के दर्शनोंको न जासकी; इस कारण उसने जैसा सुनाथा उसी प्रकार भगवान्‌का हृदय द्वारा आलिंगनकर कर्मकी अनुगामी देहको छोड़दिया ॥ ३४ ॥ यहां श्रीकृष्णजी ने गोपोंको उस

लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् । रेमेगोगोपगोपीनांरमयन्रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्यविप्रास्तेअन्वतप्यन्कृतागसः । यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्मनृविडम्बयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वास्त्रीणांभगवतिकृष्णेभक्तिमलौकिकीम् । आत्मानंचतयाहीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३८ ॥ धिग्जन्मनस्त्रिवृद्विद्यांधिग्व्रतंधिग्बहुज्ञताम् । धिक्कुलंधिक्क्रियादाक्ष्यंविमुखायेत्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनंभगवतोमायायोगिनामपिमोहिनी । यद्वयंगुरवोनृणांस्वार्थेमुह्यामहेद्विजाः ॥ ४० ॥ अहोपश्यतनारीणामपिकृष्णेजगद्गुरौ । दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥ नासांद्विजातिसंस्कारोन निवासोगुरावपि । नतपोनात्ममीमांसानशौचंनक्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापिह्युत्तमश्लोकेकृष्णेयोगेश्वरेश्वरे । भक्तिर्दृढानचास्माकंसंस्कारादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननुस्वार्थविमूढानांप्रमत्तानांगृहेहया । अहोनःस्मारयामासगोपवाक्यैः सतांगतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथापूर्णकामस्यकैवल्याद्याशिषांपतेः । ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४५ ॥ हित्वाऽन्यान्भजतेयंश्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् । आत्मदोषापवर्गेणतद्याच्ञाजनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यंमन्त्रतन्त्रर्त्विजोग्नयः । देवतायजमानश्चक्रतुर्धर्मश्चयन्मयः ॥ ४७ ॥ सएषभगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः । जातोयदुष्वित्यशृण्मह्यपिमूढानविद्महे ॥ ४८ ॥ अहोवयंधन्यतमायेषांनस्तादृशीः स्त्रियः । भक्त्यायासांमतिर्जाताह्यस्माकंनिश्चलाहरौ ॥ ४९ ॥ नम

चारो प्रकारका अन्न खिलाय आपभी खाया ॥ ३५ ॥ लीला के निमित्त नर शरीरधारी भगवान् इस प्रकार से मनुष्योंका अनुकरण करते हुये रूप, वाक्य और कर्मद्वारागौ, गोप और गोपियों को क्रीड़ा कराने तथा स्वयं क्रीड़ा करनेलगे ॥ ३६ ॥ तदनंतर वह ब्राह्मणगण यह विचारकर कि "नररूप धारी भगवान् बलराम जी व कृष्णजी की प्रार्थना का हमने निरादर किया इस से अपराधी हुए" अत्यंत संताप करनेलगे ॥ ३७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी में अलौकिक भक्ति और अपनेको भक्ति रहित देखकर वह अनुताप के साथही साथ अपनेको धिक्कारनेलगे ॥ ३८ ॥ हम भगवान से विमुख हैं । हमारे तीनो जन्मोंको, व्रतको, पाण्डित्यको, कुल, कर्म, और निपुणताको धिक्कार है ॥ ३९ ॥ निश्चयही जानते हैं कि भगवान् की माया योगियों कोभी मोहित करडालती है। हम मनुष्यों के गुरु ब्राह्मण होकर भी अपने स्वार्थको न समझसके ॥ ४० ॥ अहो ! भगवान श्रीकृष्णजी में स्त्रियों की तो प्रीतिदेखो कि जिसने घररूप मृत्यु पाशोंको काटदिया ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणों की समान इनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ; इन्हों ने गुरुकुल में वास नहीं किया; तपस्याभी नहीं की; और न आत्म तत्वका अन्वेषणही किया । इनके पवित्रता नहीं है; संध्यावंदनादि शुभ कार्य भी नहीं हैं ॥ ४२ ॥ तौभी योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी में इनकी दृढ़भक्ति है! हम संस्कारादि युक्त होनेपरभी उस भक्तिसे विमुख हैं ॥ ४३ ॥ निश्चयही जानते हैं कि हम स्वार्थ भूलकर घरके कामों में प्रमत्त होरहे हैं; साधुओंको गतिदेने वाले भगवान् ने गोपोंके बचनों द्वारा हमको सद्गति का स्मरण करादिया ॥ ४४ ॥ यदिऐसा न होतातो पूर्णकाम, मोक्षदाता, वरदेने वाले भगवान् हमसे याचनाही क्यों करते ? निश्चयही यह भगवान् की बिडंबना है ॥ ४५ ॥ लक्ष्मी, चरण स्पर्श की इच्छा करके अपनी चंचलताको छोड़ दूसरों का परित्यागकर बारबार जिसका भजन करती हैं, उनकी याचना देखकर मनुष्योंको केवल बिस्मयही उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ देखो—काल, भिन्न २ द्रव्य, मंत्र, तंत्र, ऋत्विक्, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म जिस के स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ उन साक्षात् भगवान् योगेश्वरों के ईश्वर विष्णुजी ने यदुकुल में जन्मलिया है यह हमने सुनाथा; तौभी इतने मूर्ख—कि उनको जान न सके ॥ ४८ ॥ अहो हमबड़े धन्य हैं, क्योंकि जिनहमारी स्त्रियां ऐसी भगवत भक्त हैं, जिनकी भक्तिसे हमारी भी हरिमें दृढबुद्धि हुई

स्तस्मैभगवतेकृष्णायाकुण्ठमेधसे । यन्मायामोहितधियोभ्रमामःकर्मवर्त्मसु ॥५०॥ सवैनआद्यःपुरुषःस्वमायामोहितात्मनाम् । अविज्ञातानुभावानांक्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥ इतिस्वाघमनुस्मृत्यकृष्णेतेकृतहेलनाः । दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोःकंसाद्भीतानचाऽचलन् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपितत्रैवबलदेवेनसंयुतः । अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपिभगवान्सर्वात्मासर्वदर्शनः । प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथ्यतांमेपितःकोऽयंसंभ्रमोवउपागतः । किंफलंकस्यचोद्देशःकेनवासाध्यतेमखः ॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहिमहान्कामोमह्यंशुश्रूषवेपितः । नहिगोप्यंहिसाधूनांकृत्यंसर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् । उदासीनोरिवद्वर्ज्यआत्मवत्सुहृदुच्यते॥५॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाचकर्माणिजनोऽयमनुतिष्ठति । विदुषःकर्मसिद्धिःस्यात्तथानाविदुषोभवेत् ॥ ६ ॥ तत्रतावत्क्रियायोगोभवतांकिंविचारितः । अथवालौकिकस्तन्मेपृच्छतःसाधुभण्यताम् ॥ ७ ॥ नन्द उवाच ॥ पर्जन्योभगवानिन्द्रोमेघास्तस्यात्ममूर्तयः । तेऽभिवर्षन्तिभूतानांप्रीणनंजीवनंपयः ॥ ८ ॥ तंतातवयमन्येचवार्मुचांपतिमीश्वरम् । द्रव्यैस्तद्रेतसासिद्धैर्यजन्तेक्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवंति

॥ ४९ ॥ जिन अकुंठित मेधाशाली भगवान श्रीकृष्णजी की माया से मोहित बुद्धि होकर हमकर्म मार्गमें भ्रमण करते हैं उनको नमस्कार है ॥ ५० ॥ उन भगवान की मायासे हम मोहित होकर उनके प्रभावको न जानसके; यह हमसे अपराध हुआ वह आदि पुरुष हमारे अपराधको क्षमाकरें ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजीका अनादरकर उन सब ब्राह्मणोंने इसप्रकार से अपने अपराधका स्मरणकर व्रजमें जानेकी इच्छाकी परन्तु कंसके भयसे न जासके ॥ ५२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! ब्राह्मणगण कंस के भय से अपनेही अपने आश्रमों में रहकर भगवान की पूजा करने लगे । इस ओर भगवान श्रीकृष्णजी ने बलरामजी के साथ व्रज में बासकरते २ देखा कि—गोपगण इन्द्रयज्ञ करने के लिये उद्योग कर रहे हैं ॥ १ ॥ सर्वदर्शी भगवान यद्यपि उस का सबभेद जानतेथे; तौभी बिनयपूर्वक नन्द आदि गोपों से पूछने लगे कि- ॥ २ ॥ हे पिता ! आप इतने अधीर क्यों होरहेहो ? किस कारण किस के द्वारा यह यज्ञ सिद्धहो सकता है ? इस का फल क्या है ? हमसे कहो; इस के सुननेकी मेरी अत्यन्त इच्छा है ॥ ३ ॥ जो सबकोही आत्मवत् देखते हैं; और जिसको अपने पराए का ज्ञान नहीं है; भेद ज्ञान के नहोने से जिसका कोई शत्रुभी नहीं है; उदासीन नहीं है उनसे कोई कार्य गुप्तनहीं है और भेद ज्ञानके होने से उदासीन कोभी शत्रु की समान छोड़ देना चाहिये । सुहृद्‌गण आत्मतुल्य होते हैं, इस कारण परामर्श के समय उनका त्याग न करना चाहिये ॥ ४ । ५ ॥ मनुष्यों में कोई जानकर और कोई अनजानकर कर्म करते रहते हैं । जो जानकर करते हैं उन्हीं का काम सिद्ध होताहै और जो अनजानकर करतेहैं उनका कार्य भलीभांतिसे पूर्ण नहींहोता ॥ ६ ॥ आपने यह कार्य करना लौकिक रीतसे विचारा है या शास्त्रसे ? यह आप मुझसे भलीप्रकार कहिये, ॥७॥ नन्दजी ने कहा कि—हे तात ! भगवान् इन्द्र मेघरूपहैं, मेघ उनकी प्रियमूर्तिहैं—। वह प्राणियों के कल्याणके निमित्त प्राणके देनेवाले जलकी बर्षा करते रहतेहैं ॥ ८ ॥ हे वत्स ! उन मेघपति के बरसायेहुए जलसे जो पदार्थ उत्पन्न होतेहैं उन्हीं द्वारा यह यज्ञ कियाजाताहै ॥ ९ ॥ यज्ञकर

त्रिवर्गफलहेतवे । पुंसांपुरुषकाराणांपर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ यएवंविसृजेद्धर्मं पारम्पर्यागतंनरः । कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्सवैनाप्नोतिशोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचोनिशम्यनन्दस्यतथान्येषांव्रजौकसाम् । इंद्रायमन्युंजनयन्पितरंप्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणाजायतेजन्तुःकर्मणैवविलीयते । सुखं दुःखंभयंक्षेमंकर्मणैवाभिपद्यते ॥१३॥ अस्तिचेदीश्वरःकश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् । कर्तारंभजतेसोपिनह्यकर्तुःप्रभुर्हिसः ॥ १४ ॥ किमिंद्रेणेहभूतानांस्वस्वकर्मानुव र्तिनाम् । अनीशेनान्यथाकर्तुंस्वभावविहितंनृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतन्त्रोहिजनः स्वभावमनुवर्तते । स्वभावस्थमिदंसर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चाव चाञ्जन्तुःप्राप्योत्सृजतिकर्मणा । शत्रुर्मित्रमुदासीनःकर्मैवगुरुरीश्वरः ॥१७॥ तस्मा त्संपूजयेत्कर्मस्वभावस्थःस्वकर्मकृत् । अञ्जसायेनवर्तेततदेवास्यहिदैवतम् ॥ १८ ॥ आजाव्यैकतरंभावंयस्त्वन्यमुपजीवति । नतस्माद्विन्दतेक्षेमंजारंनार्यसतीयथा १९॥ वर्तेतब्रह्मणाविप्रोराजन्योरक्षयाभुवः । वैश्यस्तुवार्तयाजीवेच्छूद्रस्तुद्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाःकुसीदंतुर्यमुच्यते । वार्ताचतुर्विधातत्रवयंगोवृत्तयोऽ निशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वंरजस्तमइति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । रजसोत्पद्यतेविश्वमन्यो न्यंविविधंजगत् ॥ २२ ॥ रजसाचोदितामेघावर्षन्त्यम्बूनिसर्वतः । प्रजास्तैरेवसि ध्यंतिमहेंद्रःकिंकरिष्यति ॥ २३ ॥ ननःपुरोजनपदानग्रामानगृहावयम् । नित्यंवनौ कसस्तातवनशैलानिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद्गवांब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतांमखः ।

ने स जो शेष रहताहै मनुष्य धर्म, अर्थ और काम सिद्धके निमित्त उसके द्वारा जीवन धारण करतेहैं मनुष्योंके जो कुछ व्यापार व वृत्तियेंहैं उन सबका उत्पन्न करनेवाला मघहीहै ॥ १० ॥ यह धर्म बहुत समयोंसे चला आताहै । जो मनुष्य काम, द्वेष, भय व लोभके वशहो इस धर्मको छोड़ देताहै उसका कल्याण कभी नहींहोता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! नन्दजीकी और दूसरे ब्रजवासियोंकी इसबातको सुनकर कृष्णजीने इन्द्रको क्रोधयुक्त करनेके कारण पितासे कहा कि—१२ ॥ हेपिता ! प्राणी कर्मके वशसेही सुख दुःख भय और कल्याण पाते रहते हैं । और यदि दूसरे के कर्मोंका फल देनेवाला एक ईश्वरही रहताहै तो ऐसा होनेस वहभी कर्म कर ने वालेके आधीनहै क्योंकि जो कर्म नहीं करे वह उसको फल भी नहीं देसकता १३—१४ अतएव जीवगण जब कर्मोंकेही अनुसारसे वर्ततेहैं तब फिर इन्द्रका क्या प्रयोजन ? पूर्व संसकारोंके अनुसारसे मनुष्यके भाग्यमें जो होताहै इन्द्र इसके विपरीत कभी नहीं करसकता, ॥ १५ ॥ मनुष्य स्वभावकेही आधीन होकर स्वभावकाही अनुसरण करता रहताहै । देवता असुर, मनुष्य स्वभाव मेंही अवस्थित रहतेहैं ॥ १० ॥ जीवकर्म वशसेही ऊँची नीची देह प्राप्तकर कर्मवशसेही उसका परित्याग करता रहताहै । कर्मही शत्रु, मित्र, उदासीन और ईश्वरहै, ॥ १७ ॥ अतएव स्वभाव स्थित कर्म करनेवाले प्राणीको कर्महीकी पूजा करनी चाहिये ॥ १८ ॥ यथार्थमें जिससे आजीविका चले वही देवताहै जैसे व्यभिचारिणी स्त्री उपपतिको पाकर सुख नहीं करसकती वैसेही जो मनुष्य एककी दीहुई आजीविका खाकर दूसरेकी सेवाकर उसको कल्याण कभी नहीं प्राप्त होसकता ॥ १९ ॥ ब्राह्मण को वेदाध्ययनसे क्षत्रीको पृथ्वी शासनसे वैश्यको वार्तासे और शूद्रको तीनोवर्णों की सेवा करके जीविकाका निर्वाह करना चाहिये ॥२०॥ व्यापार चारप्रकारकाहै—खेती, वनिज, गौ पालन करना और ब्याजलेना । इनचार प्रकारों में से हमगौ पालन करते हैं ॥ २१ ॥ सत्व,रज और तम—पालन, उत्पत्तिऔर संहार के कारण हैं । यह संसार तथा और भी जगत रज से उत्पन्नहोते हैं,मेघसमूह रजसे चलितहो सबस्थानों पर जल बर्षाते हैं;जल से धान्यउत्पन्न होता है और उसी धान्य से प्रजा जीती है; अतएव इस में इन्द्रकी क्या आवश्यकता ? ॥ २३ ॥

यइन्द्रयागसंभारास्तैरयंसाध्यतांमखः ॥ २५ ॥ पच्यन्तांविविधाःपाकाःसूपांताःपायसादयः । संयावापूपशष्कुल्यःसर्वदोहश्चगृह्यताम् ॥२६॥ हूयन्तामग्नयःसम्यग्ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । अन्नंबहुगुणंतेभ्योदेयंवोधेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्योयथार्हतः । यवसंचगवांदत्त्वागिरयेदीयतांबलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृताभुक्तवन्तःस्वनुलिप्ताःसुवाससः । प्रदक्षिणंचकुरुतगोविप्राऽनलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मममतंतातक्रियतांयदिरोचते । अयंगोब्राह्मणाद्रीणांमह्यंचदयितोमखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मनाभगवताशक्रदर्पजिघांसता । प्रोक्तंनिशम्यनन्दाद्याःसाध्वगृह्णंततद्वचः ॥ ३१ ॥ तथाचव्यदधुःसर्वंयथाहमधुसूदनः । वाचयित्वास्वस्त्ययनंतद्द्रव्येणगिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्यबलीन्सर्वानादृतायवसंगवाम् । गोधनानिपुरस्कृत्य गिरिंचक्रुःप्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥ अनांस्यनडुद्युक्तानितेआरुह्यस्वलंकृताः । गोप्यश्चकृष्णवीर्याणिगायन्त्यःसद्विजाशिषः॥३४॥कृष्णस्त्वन्यतमंरूपंगोपविश्रम्भणंगतः।शैलोऽस्मीतिब्रुवन्भूरिबलिमादद्बृहद्वपुः ॥३५॥ तस्मैनमोव्रजजनैःसचक्रेआत्मनाऽऽत्मने । अहोपश्यतशैलोऽसौरूपीनोऽनुग्रहंव्यधात् ॥३६॥एषोऽवजानतोमर्त्यान्कामरूपीवनौकसः । हन्तिह्यस्मैनमस्यामःशर्मणआत्मनोगवाम् ॥३७॥ इत्यद्रिगोद्विजमखंवासुदेवप्रणोदिताः । यथाविधायतेगोपाःसहकृष्णाव्रजंययुः॥३८॥ इतिश्रीमद्भा०म०दशम०पू०चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

हमारे नगर, बस्ती, गांव, घर कुछभी नहीं है हम वनवासी हैं ॥ २४ ॥ अतएव गौ, ब्राह्मण और पर्वत इनकी पूजाके निमित्तही यज्ञ करना चाहिये इंद्र के यज्ञके निमित्त यह जो सामग्री इकट्ठी हुई है उस से इस यज्ञ का आरम्भकरो ॥ २५ ॥ खीर से लेकर दालतक, हलवा, लपसी, मालपुवा पूरी, कचौरी, करो और सब गौओं का दूध दुहलो ॥ २६ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मणों के हाथ से अग्नि में होम करनेका आरंभकरो । और उनको नाना प्रकारके अन्नदान व गोदान दो ॥ २७ ॥ श्वपच चाण्डाल और पतित आदि अन्यान्य मनुष्यों कोभी यथा योग्य दानकरो । गौओं को तृण और पहाड़को बलिदानकरो ॥ २८ ॥ भोजन के अंतमें उत्तम वस्त्र आभूषण पहिन तथा चंदन लेपन करगौ, ब्राह्मण, अग्नि और पर्वत की परिक्रमाकरो ॥ २९ ॥ हे पिता ! यही मेरी इच्छा है; यदि अच्छा समझो तो करो । यह यज्ञगौ ब्राह्मण आदिको तथा मुझको भी प्रिय है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेव जी बोलेकि—हे राजन ! काल रूपी भगवान श्रीकृष्णजी ने इन्द्रका अहंकार नाश करने की इच्छा से जोकुछ कहा उनको सुनकर नंदादि गोप संतुष्ट हुये और उनको "साधु साधु" कह उनके कथनानुसार यज्ञ करनेलगे ॥ ३१ ॥ स्वस्ति वाचन कराय आदर पूर्वक पहाड़ और ब्राह्मणो को वह सब सामग्री भेंटमेंदे गौओंको तृणदिया और गोधनको आगेकर पहाड़की परिक्रमा करनेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ गोपियें भी भली प्रकार से वस्त्र आभूषण पहिन श्रेष्ठ बैलों युक्त गाड़ीपर सवार हो श्रीकृष्णजी के चरित्रोंका गान करती हुई पहाड़ की परिक्रमा करने लगीं । ब्राह्मण आशीर्वाद देनेलगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी गोपोंको विश्वास उत्पन्न करानेके निमित्त दूसरे प्रकारका रूपधारण कर "मैंपर्वतहूं" यह कहकर ढेरोंबलिका भोजन करनेलगे । उस समय उनका शरीर दीर्घ होगया ॥ ३५ ॥ अनंतर ब्रज बासियों के साथ आपने भी उस पर्वत रूपी अपनको नमस्कार करके कहा कि—इस आश्चर्यकोतो देखो ! इस पर्वत ने देह धारणकर हमारे ऊपर अनुग्रहकी है । यह कामरूपी है । जोवनवासी इसका निरादर करते हैं उनको यह नाश करते रहते हैं । हम—अपने और गौओं के कल्याण के निमित्त इसको प्रणाम करते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णजी की आज्ञानुसार इस प्रकार यथारीति से यज्ञकर गोपगण उनके साथ ब्रजमें लौटआये ॥ ३८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजांविज्ञायविहतांनृप । गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्योनन्दादिभ्यश्चकोपसः ॥ १ ॥ गणंसांवर्तकंनाममेघानांचान्तकारिणाम् । इन्द्रप्राचोदयत्क्रुद्धोवाक्यंचाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहोश्रीमदमाहात्म्यंगोपानांकाननौकसाम् । कृष्णंमर्त्यमुपाश्रित्ययेचक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥ यथादृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः । विद्यामान्वीक्षिकींहित्वातितीर्षन्तिभवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालंबालिशंस्तब्धमज्ञंपण्डितमानिनम् । कृष्णंमर्त्यमुपाश्रित्यगोपामेचक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ श्रियावलितानांकृष्णेनाध्मायितात्मनाम् । धुनुतश्रीमदस्तम्भंपशूञ्च यतसंक्षयम् ॥ ६ ॥ अहंचैरावतंनागमारुह्यानुव्रजेव्रजम् । मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंमघवताऽऽज्ञप्तामेघानिर्मुक्तबन्धनाः । नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमानाविद्युद्भिः स्तनन्तःस्तनयित्नुभिः । तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्नाववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूलावर्षधारामुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः । जलौघैः प्लाव्यमानाभूर्नादृश्यतनतोन्नतम् ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेनपशवोजातवेपनाः । गोपागोप्यश्चशीतार्तागोविन्दंशरणंययुः ॥ ११ ॥ शिरः सुतांश्चकायेनप्रच्छाद्यासारपीडिताः । वेपमानाभगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्णकृष्णमहाभागत्वन्नाथंगोकुलंप्रभो । त्रातुमर्हसिदेवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेनहन्यमानमचेतनम् । निरीक्ष्यभगवान्मेनेकुपितेन्द्रकृतंहरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणंवर्षमतिवातंशिलामयम् । स्वयागेनिहतेऽस्माभि

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अपनी पूजाका भंगहोना सुनकर इन्द्र–कृष्णजीके आधीन नन्दादि गोपोंपर क्रोधित हुये ॥ १ ॥ इन्द्रको स्वयं ईश्वरता का गर्वथा । उसने क्रोधित होकर संवर्तक नामक प्रलयकारी मेघोंको बुलाकर कहा कि—२ ॥ अहो ! बनबासी गोपगणोंके धन ऐश्वर्यका कैसा माहात्म्यहै । उन्होंने साधारण मनुष्य कृष्णका आश्रयले देवताओंका निरादरकिया ॥ ३ ॥ जैसे मनुष्य ब्रह्म विद्याको त्याग—असमर्थ नाममात्रकी नौका स्वरूप कर्ममय यज्ञोंसे भवसागर पार होनेकी कामना करताहै ४ ॥ तैसेही गोपगणोंने-चंचल बालक, बिनयरहित अभिमानी मूर्ख, कृष्णका अवलम्बन कर मेरा अप्रिय किया, ॥ ५ ॥ ऐश्वर्यके गर्वसे गर्वित हुये सब गोप कृष्णसे बढ़हैं अतएव इनके ऐश्वर्यके गर्वको दूरकरो और इनके पशुओं का नाश करो ६ । मैं भी ऐरावत हस्तिपर चढ़कर महावेगसे देवताओंको साथले नन्दके गोष्ठको ध्वंस करनेके निमित्त शीघ्रही आताहूं, ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! सब मेघ इन्द्रकी इस आज्ञाको पाय बन्धन से छूटे और बलपूर्बक बरस २ कर नन्दके गोकुलमें उत्पात करनेलगे ॥८॥ बिजली चमकने बादल गरजने और प्रचण्ड पवनकी प्रेरणासे ओले पड़नेलगे ॥ ९ ॥ मेघ निरन्तर मूसलाधारसे बरसने लगे, पृथ्वी जलसे परिपूर्ण होगई कि जिससे ऊँची नीचा पृथ्वी का बोध न रहा, ॥ १० ॥ महाबर्षा और प्रचण्ड बायुसे सब पशु कांपनेलगे गोप और गोपीगणभी शीतसे दुःखित हो भगवान् श्रीकृष्णजीकी शरणमें गये, ॥ ११ ॥ ये सब मस्तक और सन्तानोंको ढक जलकी धारासे पीड़ितहो कांपते २ श्रीकृष्णजीकी चरण शरणमें गये, ॥ १२ ॥ गोपोंने उनकी शरणमें जायकर कहा कि—हेकृष्ण ! हेमहाभाग ! तुमही गोकुलके स्वामीहो हेभक्तवत्सल ! क्रोधित इन्द्रसे हमारी रक्षा करना तुम्हारा कामहै ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णजीने गोकुलमें ओले पड़ते और प्रचण्ड बायु चलते देखकर पहिलेही जानलियाथा कि क्रोधित इन्द्रकीही यह सब करतूतहै, ॥ १४ ॥ उन्होंने सोचा कि—मैंने इन्द्रका यज्ञ भंगकियाहै अतएव वह गोकुल के नाश करने के निमित्त अकालमें

रिन्द्रोनाशायवर्षति ॥ १५ ॥ तत्रप्रतिविधिंसम्यगात्मयोगेनसाधये । लोकेशमानि नांमौढ्याद्धरिष्येश्रीमदंतमः ॥ १६ ॥ नहिसद्भावयुक्तानांसुराणामीशविस्मयः । मत्तोऽसतांमानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणंगोष्ठंमन्नाथंमत्परिग्रहम् । गोपायेस्वात्मयोगेनसोऽयंमेव्रतआहितः १८ ॥ इत्युक्त्वैकेनहस्तेनकृत्वागोवर्धनाचलम् । दधारलीलयाकृष्णश्छत्राकमिवबालकः ॥ १९ ॥ अथाहभगवान्गोपान्हेऽम्बतातव्रजौकसः । यथोपजोषंविशतगिरिगर्तंसगोधनाः ॥ २० ॥नत्रासइहवः कार्योमद्धस्ताद्रिनिपातिते । वातवर्षभयेनालंतत्त्राणंविहितंहिवः ॥ २१ ॥ तथानिर्विविशुर्गर्तंकृष्णाश्वासितमानसाः । यथावकाशंसधनाःसव्रजाःसोपजीविनः२२॥ क्षुत्तृड्व्यथांसुखापेक्षांहित्वातैर्व्रजवासिभिः । वीक्ष्यमाणोदधावद्रिंसप्ताहंनाचलत्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावंतंनिशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः । निस्तम्भोभ्रष्टसंकल्पःस्वान्मेघान्संन्यवारयत् ॥ २४ ॥ खंव्यभ्रमुदितादित्यंवातवर्षंचदारुणम् । निशाम्योपरतंगोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यातत्यजतत्रासंगोपाःसस्त्रीधनार्भकाः । उपारतंवातवर्षंव्युदप्रायाश्चनिम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्तेनिर्ययुर्गोपाःस्वंस्वमादायगोधनम् । शकटोढोपकरणंस्त्रीबालस्थविराःशनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तंशैलंस्वस्थानेपूर्ववत्प्रभुः । पश्यतांसर्वभूतानांस्थापयामासलीलया ॥ २८ ॥ तं

बर्षा कर रहाहै और अति प्रचण्ड बायु व ओले बरसा रहाहै, ॥ १५ ॥ मैं अपने प्रभावसे इसका यत्न करूंगा । यह मोहके बशहो अपनेही को समस्त संसारका ईश्वर कहकर अभिमान करताहै मैं इसके ऐश्वर्य गर्वरूपी तमका नाश करूंगा ॥ १६ ॥ सत्व गुणवाले देवता गर्बके बशीभूतहोकर कभी अपनेको ईश्वर नहीं जानते । मैं जिस अहंकार का नाश करूंगा उससे असाधुओंको भी बिनयही उत्पन्न होती रहतीहै ॥ १७ ॥ मैंही गोष्ठका शरणद और स्वामीहूं । गोष्ठ मेराही परिवार है । मैं आत्मयोग द्वारा इस गोष्ठकी रक्षा करूंगा यही मैंने निश्चय किया है ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजी नें यह बात कहकर, बालक जैसे छाते को उठाता है उसी भांति अपने हाथ में गोवर्धन पर्वत को उठालिया ॥ १९ ॥ अनंतर भगवान ने गोपों से कहा कि हे पिता ! हे माता ! हे व्रजवासीगण ! तुम अपनी इच्छानुसार सुख पूर्वक गोधन समेत पहाडकी कंदरामें प्रवेशकरो ॥२०॥ तुम यह भय नकरो कि यह पर्वत मेरे हाथसे गिरजावेगा पवन और वर्षा काभी भय नकरो इससे बचनेंके निमित्त ही मैंने यह यत्न किया हैं ॥ २१ ॥ कृष्णजी की धैर्य युक्त वातोंसे व्रजवासीगण धैर्यवान हो उनके वाक्यानुसार धन, शकटमंडल, और सेवक पुरोहितादिकों को ले पहाडकी कंदरा में सुख पूर्वक गए ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी भूख प्यास दुःख सुख छोडकर सातदिनतक पर्वत धारण कियेरहे क्षणभर केभी निमित्त उस स्थान से चलायमान नहुए ॥२३॥ सब व्रजवासी इस अद्भुत घटना को देखकर विस्मित होगए श्रीकृष्णजी के पराक्रम को देखकर इन्द्र कोभी अत्यंत विस्मय हुआ उसने गर्व और अहंकार त्यागकर सब मेघों को बरसनेसे निवृत्त किया ॥ २४ ॥ तदनंतर आकाश मेघ रहित होगया और सूर्य प्रकाशित हुआ प्रचंड पवन और बर्षा वंद होगई यह देख कर गोबर्द्धन धारी श्रीकृष्णजी ने गोपो से कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपगण ! स्त्री, धन, संपत्ति लेकर बाहर निकलो भय नहीं है वायु और पानी का बरसना वंद होगया नदी काभी जल कमहोगया । ॥ २६ ॥ तव स्त्री, बालक, और वृद्ध गोपगण अपने २ गोधनको साथ ले गाडों में सब समाभर धीरे २ बाहर निकले ॥ २७ ॥ श्रीकृष्ण भगवान नें भी सव के सामनेही लीलापूर्वक उस पर्वत को पहिले की समान उसी स्थानपर रखदिया ॥ २८ ॥ सब व्रजवासी प्रेम से परिपूर्ण हो श्रीभग-

प्रेमवेगान्निभृताव्रजौकसोयथासमीयुःपरिरम्भणादिभिः । गोप्यश्चसस्नेहमपूजयन्मुदादध्यक्षताद्भिर्युयुजुःसदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदारोहिणी नन्दोरामस्यबलिनांवरः । कृष्णमालिङ्ग्ययुयुजुराशिषःस्नेहकातराः ॥ ३० ॥ दिविदेवगणाःसाध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः । तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाःपुष्पवर्षाणिपार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुन्दुभयोनेदुर्दिविदवप्रणोदिताः । जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखानृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैःपशुपैः परिश्रितोराजन्स्वगोष्ठंसबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधान्यस्यकृतानिगोपिकागायन्त्य ईयुर्मुदिताहृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० दशम०पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानिकर्माणिगोपाः कृष्णस्यवीक्ष्यते । अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्यसुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्ययदेतानिकर्माण्यत्यद्भुतानिवै । कथमर्हत्यसौजन्मग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनोबालः करेणैकेनलीलया । कथंबिभ्रद्गिरिवरंपुष्करंगजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेणपूतनायामहौजसः । पीतः स्तनः सहप्राणैः कालेनेवचयस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्यचरणावुदक् । अनोऽपतद्विपर्यस्तंरुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायनआसीनोह्रियमाणोविहायसा । दैत्येनयस्तृणावर्तमहन्कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्येमात्राबद्धउलूखले । गच्छन्नर्जुनयोर्मध्येबाहुभ्यांतावपातयत् ॥ ७ ॥ वनेसंचारयन्वत्सान्सरामोबालकैर्वृतः । हन्तुकामंबकंदोर्भ्यांमुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥

वान के निकट आय यथोचित रीति से उनका आलिङ्गनादि करनेलगे गोपियें भी आनंद से स्नेह पूर्वक दही अक्षत और जल द्वारा उनकी पूजाकर आशीर्वाद देने लगीं ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी नंद और बलरामजी स्नेह से विह्वल हो आलिंगन कर कृष्णजी को आशीर्वाद देनेलगे ॥ ३० ॥ स्वर्ग में देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, और चारणगण आनंद से स्तुति करनें और फूल बरसाने तथा शंख और दुंदुभी बजानेलगे और देवताओं की आज्ञा से तुंबरु आदि गंधर्व पति गान करनेलगे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ अनंतर प्रेम युक्त गोपोंसे वेष्ठित हो बलरामजी के साथ भगवान व्रजमें गए गोपियें भी आनंद चित्त से मनोहर चरित्रों का गान करतीहुईं साथ साथ चलीं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंध सरला भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन् ! गोपगण श्रीकृष्णजी का पराक्रम नहीं जानते थे; वह सब श्रीकृष्णजी के चरित्रोंको देख विस्मितहो आपस में कहने लगे ॥ १ ॥ किसप्रकार से गोपजाति में इस अपूर्व बालक ने जन्म लिया ? यह मनुष्य जन्मतो इसके योग्य नहीं था क्योंकि इसके सब चरित्रोंको देखकर हमेंबड़ा आश्चर्य होता है ॥ २ ॥ जिस प्रकार से गजराज कमलको धारणकरे उसी प्रकार से इस सातवर्ष के लडके नेसहजही में पहाडको धारण करलिया ॥ ३ ॥ काल जैसे जीवकी आयुका पानकरता है उसी प्रकार इसने बचपन में आंखें बंदकर महाबल शालिनी पूतना के स्तनपान कियेथे ॥ ४ ॥ तीन महीने की वयमें जब शकट के नीचेसोते हुए रोते २ दोनो पैर ऊपरको उठाये थे तब इसके पैरोंके अग्रभाग द्वारा आहत होकर शकट किस प्रकार से उलटगया था ॥ ५ ॥ यह एक वर्षका होकर एकदिन बैठाहुआ था, कि उसी समय दैत्य तृणावर्त्त इसको हरण करके आकाशको उडगया था परन्तु बालकने उसका कंठ पकड़ पीडितकर कैसे मारडाला ॥ ६ ॥ और एक दिन मक्खन हरने के कारण माताने इसको बांधदिया था, इसने उसी अवस्थामें दोनो अर्जुन वृक्षों के बीचमें जाय दोनो बाहुओं से किस प्रकार वृक्षोंको गिरादिया ॥ ७ ॥ जब बलदेवजी गोपों के साथ बनमें बछड़े चरारहे थे उस समय मारनेकी इच्छा करके जो बकासुर दैत्य

वत्सेषुवत्सरूपेणप्रविशन्तं जिघांसया । हत्वान्यपातयत्तेनकपित्थानिचलीलया ॥ ९ ॥ हत्वारासभदैतंयतद्बन्धूंश्चबलान्वितः चक्रेतालवनंक्षेमंपरिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलम्बंघातयित्वोग्रंबलेनबलशालिना । अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहीन्द्रंदमित्वाविमदंहृदात् । प्रसह्योद्वास्ययमुनांचक्रेऽसौनिर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषांनोव्रजौकसाम् । नन्दतेतनयेऽस्मासुतस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥ क्वसप्तहायनोबालः क्वमहाद्रिविधारणम् । ततोनोजायतेशङ्काव्रजनाथतवात्मजे ॥ १४ ॥ नन्द उवाच ॥श्रूयतांमेवचोगोपाव्येतुशङ्काचवोर्भके । एनंकुमारमुद्दिश्यगर्गोमेयदुवाचह ॥ १५॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन्गृह्णतोऽनुयुगंतनूः । शुक्लोरक्तस्तथापीतइदानींकृष्णतांगतः ॥ १६ ॥ प्रागयंवसुदेवस्यक्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेवइतिश्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनिसन्तिनामानिरूपाणिचसुतस्यते । गुणकर्मानुरूपाणितान्यहंवेदनोजनाः ॥ १८ ॥ एषवःश्रेयआधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः अनेनसर्वदुर्गाणियूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेनव्रजपतेसाधवोदस्युपीडिताः । अराजकेरक्ष्यमाणाजिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ २० ॥ यएतस्मिन्महाभागाः प्रीतिंकुर्वन्तिमानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयंतेनारायणसमोगुणैः । श्रियाकीर्त्यानुभावेनतत्कर्मसुनाविस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा

आयातो उस दुष्टकी चोंचहाथों से पकड़ कैसे चीरडाली ॥ ८ ॥ मारने की इच्छा से वत्सासुरने वत्स रूप धारणकर वत्सपालों के बीचमें प्रवेशकिया तब किस प्रकार से सहजही में खेलते हुये उसे कपित्थ के वृक्षपरदे माराथा ॥९॥ बलरामजी के साथ मिलकर धेनुकासुर और उसके जातिवालोंको मार किस प्रकार से पकेहुये फलोंयुक्त ताल वनको निर्भय किया ॥ १० ॥ किसप्रकार भगवान बलदेवजी से दुष्ट प्रलंबासुरको मरवाय व्रजके गोपों और पशुओंको छुडाया ॥ ११ ॥ किस प्रकार से अति तीक्ष्ण सांपको बलपूर्वक दमन और गर्व रहितकर दहसे निकाल कालिंदीका जल निर्मल किया ॥ १२ ॥ हे नंद ! तुम्हारे बालकपर हमारा अत्यंत अनुराग उत्पन्न हुआ है, इसका भी हमारे ऊपर स्वाभाविक अनुराग क्यों है ॥ १३ ॥ कहांतो यह सात वर्षका बालक, और कहां इतना ऊंचा यह गोवर्द्धन पर्वत ! परन्तु तौभी इस बालक ने उसे सहजही में उठालिया ! हे व्रज नाथ ! तुम्हारे बालकपर हमें संदेह होताहै ॥१४॥ नंदजीने कहा कि–हे गोपो! मेरीबात सुनो। इस बालक पर जो तुम्हारा संदेह है उसको दूरकरो। गर्गाचार्य इस बालके निमित्त जोकुछ कहगये हैं उसको कहताहूं सो सुनो ॥ १५ ॥ उन्हों ने कहाथा कि यह युग २ में शरीर धारण करता है । श्वेत, रक्त और पीत यही तीन इसकेवर्ण हैं, इस समय यह कृष्ण वर्ण होकर अवतीर्ण हुआ है ॥ १६ ॥ तुम्हारे इस पुत्रने पहिले वसुदेव के वीर्यसे जन्म ग्रहण कियाथा इसी कारण पंडितलोग इसको श्रीमान् 'वासुदेव, कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे इस पुत्रके गुण और कर्मों के अनुसार अनंत रूप और अनेक नाम सुनेजाते हैं वह मुझेज्ञात हैं और मनुष्य भी नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह गोप और गोकुलका आनंद उत्पन्न कराने वाला होकर तुम्हारा कल्याण करेगा । तुम इसकी सहायता से सब आपत्तियों से छूटजावोगे ॥ १९ ॥ हे व्रजपते ! पहिले चोरोंने साधुओंको पीडा उत्पन्नकी और देश अराजक होगयाथा तब साधुओं की इसने रक्षाकी । इसकी कृपासेही प्रजाने वृद्धिप्राप्त करके दस्युगणों को जीताथा ॥ २० ॥ जोमनुष्य इस महाभाग से प्रेम करेंगे–असुर जैसे विष्णु भक्तोंको पराजित नहीं करसकते तैसेही शत्रुगण उनको नहीं परास्त करसकेंगे ॥ २१ ॥ अतएव हे नंद ! यह कुमार गुण, श्री, कीर्त्ति और प्रभाव में नारायणकी समान होगा। अतएव हे गोपो !

मांसमादिश्यगर्गेचस्वगृहंगते । मन्येनारायणस्यांशंकृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥ इतिनन्दवचः श्रुत्वागर्गगीतंव्रजौकसः । दृष्टश्रुतानुभावास्तेकृष्णस्यामिततेजसः । मुदितानन्दमानर्चुः कृष्णंचगतविस्मयाः ॥ २४ ॥ देवेवर्षतियज्ञविप्लवरुषावज्राश्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रिआत्मशरणंदृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् । उत्पाट्यैककरेण शैलमवलोलीलोच्छिलीन्ध्रं यथा विभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्नइन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ गोवर्धनेधृतेशैल.आसाराद्रक्षितेव्रजे । गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिःशक्रएवच ॥ १ ॥ विविक्तउपसंगम्य व्रीडितःकृतहेलनः । पस्पर्शपादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः । नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आहकृताञ्जलिः॥३॥इन्द्रउवाच ॥ विशुद्धसत्त्वंतवधामशान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् । मायामयोऽयंगुणसंप्रवाहोनविद्यतेतेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतोनुतद्धेतवईश तत्कृतालोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः । तथाऽपिदण्डंभगवान् बिभर्तिधर्मस्यगुप्त्यैखलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पितागुरुस्त्वंजगतामधीशो दुरत्ययःकाल उपात्तदण्डः । हितायस्वेच्छातनुभिःसमीहसेमानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥ येमद्विधाज्ञाजगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्यकालेऽभयमाशुतन्मदम् । हित्वाऽऽ

इसके कामोंको देखकर आश्चर्य मतकरो ॥ २२ ॥ जबसे गर्गाचार्य यह कहकर अपने घरकोगये हैं तबही से मैं इसको नारायण का अंश मानता हूं क्योंकि कृष्ण क्लेशोंका नाश करता है ॥ २३ ॥ ब्रजवासियों ने गर्गाचार्य के कथनको नंदजीके मुखसे सुनकर विस्मयको छोडदिया और आनंदित हो उन्हों ने नंदराय व श्रीकृष्णजी की पूजाकी ॥ २४ ॥ यज्ञभंग होने के कारण क्रोधातुर इन्द्रने वर्षा करने का आरंभकिया, ब्रज, ओले और प्रचंडवायु से गोप, गोपाल, और स्त्रियें व्याकुल होगई; जिन्हों ने दयाके बशसे हंसते हुये जैसे बालक छातेको धारणकरे वैसेही सहज से उखाडकर एक हाथसे पहाड़ धारणकर स्वयं जिनने ब्रजकी रक्षा की वह इन्द्र के गर्वका नाश करने वाले भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ २५ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के गोवर्द्धन पर्वत उठानें और बर्षा से ब्रजकी रक्षा करनेपर इन्द्र और गोलोक से कामधेनु श्रीकृष्णजी के निकट आई ॥ १ ॥ आज्ञाकारी इन्द्र ने लज्जित भाव से आयकर सूर्य की समान कांतिवाले किरीट द्वारा एकांत में श्रीकृष्णजी के चरणों का स्पर्श किया ॥ २ ॥ मैं त्रिलोकी का स्वामी हूं ऐसाजो उसे अहंकार था अमित तेजवालेश्री कृष्णजी के प्रभाव के देखने सुनने से वह नाश होगया वह हाथ जोडकर कहने लगा कि ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आप के स्वरूप में रज और तमोगुण की स्थिति नहीं है इस कारण आप शांत एक रूप अत्यंत ज्ञानयुक्त हो। मायाका कार्य यह संसार आपके नहीं है क्योंकि अज्ञान सेही इसकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ अतएव हे ईश्वर ! लोभादि जो कुछ हैं वे अज्ञान और देह सेही उत्पन्न होते हैं जीव के सद्भाव से देखनेंपर उस अज्ञान को जानाजाता है वह सब आपमें किस भांति होवेंतौ भी आप धर्म की रक्षा के कारण और दुष्टोंके दमन करनेंके निमित्त आप दंड धारणकरतेहो अतएव दंड के निमित्तही मेरा अभिमान नाश किया ॥ ५ ॥ आप जगत के पिता, गुरु, अधीश्वर और दुर्निवार्य काल हो हित के निमित्त अपनी इच्छानुसार नाना देह ग्रहण पूर्वक दंड धारण कर, जो अपनें को जगत का ईश्वर जानते हैं उनका अभिमान नाश करते रहते हो ॥ ६ ॥ मेरे समान

श्र्येमार्गंप्रभजन्त्यपस्मयाईहा खलानामपितेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ सत्वंममैश्वर्यमद-
प्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषःप्रभावम्। क्षन्तुंप्रभोऽथार्हसिमूढचेतसो मैवंपुनर्भून्म
तिरीशमेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम्।
चमूपतीनामभवायदेव भवाययुष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥९॥ नमस्तुभ्यंभगवते पुरुषाय
महात्मने। वासुदेवायकृष्णाय सात्वतांपतयेनमः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय
विशुद्धज्ञानमूर्तये। सर्वस्मैसर्वबीजाय सर्वभूतात्मनेनमः ॥ ११ ॥ मयेदंभगवन्
गोष्ठनाशायासारवायुभिः। चेष्टितंविहतेयज्ञे मानिनातीव्रमन्युना ॥१२॥ त्वयेशानु
गृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भोहतोद्यमः। ईश्वरंगुरुमात्मानं त्वामहंशरणंगतः ॥१३॥
श्रीशुकउवाच ॥ एवंसंकीर्तितःकृष्णो मघोनाभगवानमुम्। मेघगम्भीरयावाचा
प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मयातेऽकारिमघवन् मखभङ्गोऽनु-
गृह्णता। मदनुस्मृतयेनित्यं मत्तस्येन्द्रश्रियाभृशम् ॥ १५ ॥ मामैश्वर्यश्रीमदान्धो
दण्डपाणिंनपश्यति। तंभ्रंशयामिसंपद्भ्यो यस्यचेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां
शक्रभद्रंवः क्रियतांमेऽनुशासनम्। स्थीयतांस्वाधिकारेषु युक्तैर्वःस्तम्भवर्जितैः
॥ १७ ॥ अथाहसुरभिःकृष्णमभिवाद्यमनस्विनी। स्वसंतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिण-
मीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्णकृष्णमहायोगिन् विश्वात्मन्विश्वसंभव।
भवतालोकनाथेन सनाथावयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वंनःपरमकंदैवं त्वंनइन्द्रोजगत्पते।

जो मूर्ख मनुष्य अपनें आपही को ईश्वर जानकर अभिमान करते हैं वे भय के समय मेंभी निर्भय आपको देख तत्कालही अहंकार को छोड गर्व रहित हो श्रेष्ठ मार्ग का सेवन करते हैं इससेही जो आप के चरित्र हैं वह खलों के दंड रूप हैं ॥ ७ ॥ मैं ऐश्वर्य के मदसे मत्त होकर आप के प्रभाव को नहीं जानतथा इससे मैं अपराधी हूं मेराचित्त अज्ञानके अंधकारमें ढकाहुआथा हे प्रभो ! मुझे क्षमा करो ! हे ईश्वर ! मेरी ऐसी कुबुद्धि और कभी नहोवे ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! हे देव ! यह आपका अवतार स्वयंभार रूप और भार रूप सेनापतियों के नाश के निमित्त है जो आपके चरणों की सेवा करता है उसका कल्याण होताहै ॥ ९ ॥ आप अंतर्यामी, सर्वज्ञ, अपरिच्छिन्न और या दवों के अधिपति हो आपको नमस्कार है ॥ १० ॥ आप विशुद्ध, ज्ञान मूर्ति; अपनी इच्छानुसार देह धारण करते हो आप सर्वस्वरूप, सर्वातीत और सर्वभूतमय हो आपको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! मैं अभिमानी हूं इससे मेरा क्रोध भी अत्यंत प्रचंड है कि यज्ञनष्ट होंनेसे जलकी बर साय और वायुद्वारा व्रजके नाश करने की मैंने चेष्टाकी ॥ १२ ॥ हे ईश्वर ! आपनें मेरा गर्वनाश कर मेरे ऊपर अति अनुग्रह किया मेरा उद्यम व्यर्थ होनेसे मेरा गर्व दूर होगया आप ईश्वर गुरू, और आत्माहो मैं आपकी शरणागत हुआहूं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इन्द्र के इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान हंसे और मेघकी समान गंभीर वाणी से बोले कि ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य से अतिमतवाले होगएथे तुम मेरा स्मरण करसको इसी कारण मैंनें कृपा करके तुम्हारे यज्ञ का भंग किया है ॥ १५ ॥ मनुष्य ऐश्वर्य के मदसे अंधे होकर मुझे भूल जाते हैं और हाथ में लियेहुए मेरे दंड को नहीं देखते उनमें से मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करना चाहता हूं उसी को ऐश्वर्य रहित करदेताहूं ॥१६॥ हे देवेन्द्र ! इस समय तुम जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो तुम्हारा कल्याण होगा तुम गर्व रहित और अभिमान शून्य होकर अपने २ पदोंपर स्थितहो ।१७। अनंतर मनस्विनी कामधेनु अपने बंश वालोंको साथले गोप रूपी भगवान श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके कहने लगी कि ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्व के उत्पादक हे अ च्युत ! हे लोकनाथ ! आपने हमको क्रोधित इन्द्र के ध्वंस करनेसे बचालिया आप हमारे परमदे-

भवायभवगोविप्रदेवानांयेचसाधवः ॥ २० ॥ इन्द्रंनस्त्वाभिषेक्ष्यामोब्रह्मणानोदितावयम् । अवतीर्णोऽसिविश्वात्मन्भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंकृष्णमुपामन्त्र्यसुरभिः पयसाऽऽत्मनः । जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥ २२ ॥ इन्द्रः सुरर्षिभिः साकंनोदितोदेवमातृभिः । अभ्यषिञ्चतदाशार्हंगोविन्दइतिचाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयोगन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः । जगुर्यशोलोकमलापहंहरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तंतुष्टुवुर्देवनिकायकेतवोह्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः । लोकाः परांनिर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयोगावस्तदागामनयन्पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाःसरितोवृक्षाआसन्मधुस्रवाः । अकृष्टपच्यौषधयोगिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्तएतानिसत्त्वानिकुरुनन्दन । निर्वैराण्यभवंस्तातक्रूराण्यपिनिसर्गतः ॥ २७ ॥ इतिगोगोकुलपतिंगोविन्दमभिषिच्यसः । अनुज्ञातोययौशक्रोवृतोदेवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यांनिराहारःसमभ्यर्च्यजनार्दनम् । स्नातुंनन्दस्तुकालिंद्याद्वादश्यांजलमाविशत् ॥ १ ॥ तंगृहीत्वाऽनयद्भृत्योवरुणस्यासुरोऽन्तिकम् । अविज्ञायासुरींवेलांप्रविष्टमुदकंनिशि ॥२॥ चुक्रुशुस्तमपश्यन्तःकृष्णरामेतिगोपकाः । भगवांस्तदुपश्रुत्यपितरंवरुणाहृतम् ॥ ३ ॥ तदंतिकंगतोराजन्स्वानाम

वताहो अतएव हे जगत्पते ! गौ, ब्राह्मण, देवता और साधु मनुष्य इन सबके कल्याण के निमित्तही हमारे इन्द्र होजाओ ॥ १९ ॥ २० ॥ ब्रह्माने हमको आज्ञा की है कि हम आपका इन्द्रत्व के लिये अभिषेक करें हे विश्वात्मन् ! आपने पृथ्वी का भार दूर करनें के निमित्त ही अवतार लिया है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले किं हे राजन् ! गौ नें भगवानसे इस प्रकार कह उनको अपनें दुग्ध से और इन्द्र नें ऐरावत हाथीकी सूंड से लायेहुए आकाश गंगा के जल से अभिषिक्त किया।२२। और देवमाताओंकी आज्ञानुसार सब देवताओंने इन्द्रसमेत भगवानका अभिषेककर गोविंदनाम रक्खा ॥ २३ ॥ तुंबुरु, नारद, विद्याधर और चारण आदि सब उसस्थानमें आकर पापनाशक भगवानके चरित्रोंका गान करनेलगे और देवांगनाएंभी आनन्दित होकर नाचनेलगीं॥२४॥देवता स्तुति करने और फूल बरसाने लगे, उससमय तीनोंलोकोंको परम आनन्द उत्पन्नहुआ, गौओं ने दूधसे पृथ्वीको तर करदिया ॥ २५ ॥ समस्त नदियें नानारसोंको और वृक्ष मधुको बहाने लगे, औषधियें बिना बर्षाकेही पकउठीं और मणियेंने भीतरसे निकलकर पर्वतों के ऊपरी भागमें शोभा धारण की ॥ २६ ॥ हे कुरुनन्दन ! कृष्णजीके अभिषेक से जो प्राणीस्वभावसेही दुष्ट. व परस्पर बैर रखनेवाले थे वह निर्वैरहोगये ॥ २७ ॥ इन्द्र और गौ गोकुलपति श्रीकृष्णजीका इसप्रकार से अभिषेककर उनकी आज्ञानुसार देवताओं के साथ स्वर्ग में गये ॥ २८ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! गोपराज नन्दजीने एकादशीका व्रतकर भगवानकी पूजा की, और द्वादशीके दिन स्नान करनेके निमित्त कालिन्दीके जलमें ज्यों प्रवेश किया ॥ १ ॥ त्यों एक वरुण का सेवक दैत्य उन्हें पकड़कर वरुणजीके पासलेगया । क्योंकि वे आसुरी बेलाको न जानकर रात्रिमें जलमें घुसगयेथे ॥ २ ॥ गोपगण उनको न देखकर हेराम ! हेकृष्ण ! कहकर चिल्लाने लगे । हेराजन् ! वरुण पिताको लेगयेहैं, यह सुनकर श्रीकृष्णजीने गोपोंको धीरज बँधाय अभयदान दिया और आप वरुणके निकट गये ॥ ३ ॥ उनको आते देखकर लोकपाल वरुणजी अत्यन्तही आनन्दितहुए और बड़ी सामग्रीके साथ उनकी पूजाकरके बोले ॥ ४ ॥ हेप्रभो ! आज

भयदोविभुः। प्राप्तंवीक्ष्यहृषीकेशंलोकपालःसपर्यया॥ महत्यापूजयित्वाऽऽहतद्दर्शनमहोत्सवः॥ ४॥ बरुण उवाच॥ अद्यमेनिभृतोदेहोऽद्यैवार्थोऽधिगतःप्रभो। त्वत्पादभाजोभगवन्नवापुःपारमध्वनः॥ ५॥ नमस्तुभ्यंभगवतेब्रह्मणेपरमात्मने। नयत्रश्रूयतेमायालोकसृष्टिविकल्पना॥ ६॥ अजानतामामकेनमूढेनाकार्यवेदिना। आनीतोऽयंतवपितातद्भवान्क्षन्तुमर्हति॥ ७॥ ममाप्यनुग्रहंकृष्णकर्तुमर्हस्यशेषदृक्। गोविंदनीयतामेषपितातेपितृवत्सल॥ ८॥ श्रीशुक उवाच॥एवंप्रसादितःकृष्णोभगवानीश्वरेश्वरः। आदायागात्स्वपितरंबन्धूनांचावहन्मुदम्॥ ९॥ नन्दस्त्वतीन्द्रियंदृष्ट्वा लोकपालमहोदयम्। कृष्णेचसन्नतिंतेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत्॥ १०॥ तेत्वौत्सुक्यधियोराजन् मत्वागोपास्तमीश्वरम्। अपिनःस्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः॥ ११॥ इतिस्वानांसभगवान् विज्ञायाखिलदृक्स्वयम्॥ संकल्पसिद्धयेतेषां कृपयैतदचिन्तयत्॥ १२॥ जनोवैलोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः। उच्चावचासुगतिषु नवेदस्वांगतिंभ्रमन्॥ १३॥ इतिसंचिन्त्यभगवान् महाकारुणिकोहरिः। दर्शयामासलोकंस्वं गोपानांतमसःपरम्॥ १४॥ सत्यंज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिःसनातनम्। यद्धिपश्यन्तिमुनयो गुणापायेसमाहिताः॥ १५॥ तेतुब्रह्महृदंनीता मग्नाःकृष्णेनचोद्धृताः। ददृशुर्ब्रह्मणोलोकं यत्राऽक्रूरोऽध्यगात्पुरा॥ १६॥ नन्दादयस्तुतंदृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः। कृष्णंचतत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानंसुविस्मिताः॥ १७॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

मेरा शरीर सफल हुआ, आज यथार्थही सम्पत्ति प्राप्तहुई। हे भगवन्! जो आपके चरणोंकी सेवा करते हैं वे मोक्षपद प्राप्तकरतेहैं॥ ५॥ आप अत्यन्त ऐश्वर्यरूपी और पूर्ण स्वरूपहो। जो माया भ्रांति उत्पन्न करनेके निमित्त तीनोंलोकोंको उपजातीहै, आपमें उसका सद्भाव नहीं है, अतएव आप समस्त प्राणियोंके नियन्ताहो आप को नमस्कारहै॥ ६॥ मेरा सेवक मूर्खहै उसको कार्याकार्यका बिचार नहींहै। वह अनजाने आपके पिताको लेआया, अतएव हेप्रभो क्षमाकरो, ॥ ७॥ हेपितृवत्सल गोविन्द! आपके पिता यहहैं इनको आप लेजाइये॥ ८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! भगवान् श्रीकृष्णजी इसप्रकार बरुणसे पूजितहो अपने पिताको लेकर लौटआये॥ ९॥ उनको और नन्दजीको देखकर बन्धुगण प्रसन्नहुए गोपराज नन्दने बरुणके अदेखे (अदृष्ट) ऐश्वर्य और श्रीकृष्णके प्रति उनकी पूजादेख अत्यन्त विस्मितहो सब वृत्तांत जातिवालोंसे कहा१०॥ हेराजन्! वे गोपाल उन्हें भगवानजान जामें उत्कण्ठा करनेलगे कि क्या परमेश्वर हम भी निजधाम ब्रह्मपदको लेजावेंगे॥ ११॥ सर्बदर्शी भगवान् अपने आत्मीयकी इस इच्छाको जान उसके पूर्ण करनेके निमित्त कृपावशहो बिचारने लगे कि—१२॥ यह जीव इसलोकमें अविद्या, काम और कर्मके योगसे ऊँची नीची गतिमें भ्रमण करताहुआ अपनी गतिको नहीं जानसकता॥ १३॥ महादयालु भगवानने यह बिचारकर गोपोंको प्रकृतिसे परवर्ती अपने वैकुण्ठ लोकको दिखादिया। ॥ १४॥ जिसका कोई बाधक नहीं है, जो अजड़, अपरिच्छिन्न, स्वप्रकाश, नित्य और सनातन है कि जिसको ज्ञानीजन गुणोंके उपाय में एकमनहो देखतेहैं उस ब्रह्मरूपको भगवानने कृपाकर के गोपोंको दिखादिया॥ १५॥ तदुपरान्त उन्हें ब्रह्मकुंडके निकटलेगये। उन्होंने उसमें डूबकर वैकुंठलोकको देखा, अक्रूरनेभी इसीकुंडमें श्रीकृष्णजीके पदको देखाथा॥ १६॥ श्रीकृष्णजी के फिर उठानेपर वे पहिलेकी समान रूपदेखकर अत्यन्त विस्मितहुये। और परमानंदमें मग्नहो भगवानकी नानाप्रकारके वेद बाक्योंसे स्तुति करनेलगे॥ १७॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायांअष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

श्रीशुकउवाच । भगवानपिताारात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः । वीक्ष्यरन्तुंमनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥ तदोडुराजःककुभः करैर्मुखंप्राच्याविलिम्पन्नरुणेन शंतमैः । सचर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियायाइवदीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभंनवकुंकुमारुणम् ॥ वनंचतत्कोमलगोभिरंजितं जगौकलंवामदृशांमनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्यगीतंतदनंगवर्धनं व्रजस्त्रियःकृष्णगृहीमानसाः आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः सयत्रकान्तोजवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥ दुहन्त्योऽभिययुःकाश्चिद्दोहं हित्वासमुत्सुकाः । पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरायुः ॥ ५ ॥ परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यःशिशून्पयः । शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥ लिंपन्त्यःप्रमृजन्त्योऽन्या अंजन्त्यःकाश्चलोचने । व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकंययुः ॥ ७ ॥ तावार्यमाणाःपतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः । गोविन्दापहृतात्मानोन न्यवर्तन्तमोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः । कृष्णंतद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः । ॥ ९ ॥ दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः । ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमंगलाः ॥ १० ॥ तमेवपरमात्मानं जारबुद्ध्याऽपिसंगताः । जहुर्गुणमयंदेहं सद्यःप्र

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान ने गोपकुमारियों से आगामी शरदऋतु में विहार करने को कहाथा । वही शारदीया सुहावनी रात्रि आई । उस सुखमयी रात्रि में मल्लिका के फूलों को फूलाहुआ देख भगवान ने योगमाया का आश्रय ग्रहणकर विहारकरने की इच्छाकी ॥ १ ॥ आकाश में चन्द्रमाउदयहुआ । स्वामी जैसे बहुत दिनों में आकर केसर से अपनी प्यारी का मुख रंगता है, चन्द्रमाभी वैसेही सुखमय किरणों द्वारा अरुण राग से पूर्व दिशाका मुख रंग मनुष्यों का क्लेश दूर करने लगा ॥ २ ॥ लक्ष्मी देवी के मुख मण्डलकी समान चन्द्रमाअखण्ड मण्डल और केसर की समान अरुण वर्ण का होकर उदयहुआ । बन में उसकी सुन्दर किरणों को फैलाहुआ देख श्रीकृष्णजी स्त्रियों को मोहित करनेवाले गीतों को गाने लगे ॥ ३ ॥ उस से सब ब्रजनारियों के चित्त भली प्रकार से खिंचगये । वह उन आनन्द उत्पादकगीतों को सुनकर अपनी इच्छा एक दूसरे को न जनाय उनके निकट जाने लगीं । शीघ्रतापूर्वक चलने से उन के कुण्डल चलायमानहोरहेथे ॥ ४ ॥ कोई २ गोपी दूध दुहते २ श्रीकृष्णजी के गीतों को सुनकर अपने कार्य को छोड़ उत्कण्ठा पूर्वक चलीं । कोई चूल्हे पर के चढ़हुए दूधको बिनानीचे उतारे तथा कोई गेहूंका पकापदार्थ बिना चूल्हे से उतारे चलदीं ॥ ५ ॥ कोई २ परोसतीथीं,कोई २बच्चों को दूधपिलातीथीं; कोई २ स्वामी की सेवाकरतीथीं—परन्तु वे सब कामों को छोड़२कर चलदीं कोई २ भोजन करने को बैठीहीथीं । वे बिना पूराअन्नखायेही उठचलीं ॥६ ॥ कितनीएक लीपती थीं, कोई २ उबटन लगातीथीं, कोई २ देह मलतीं और कोई २ आंखों में सुरमालगातीथीं;काम समाप्त न कर वहां से दौड़चलीं । कोई २ गोपी वस्त्र अलंकारादि से बिभूषितहो श्रीकृष्णजी के समीप चलीं गमन करने में शीघ्रता करने के कारण उनके वस्त्र आभूषण उलटे पुलटे होगये ॥ ७ ॥ पिता, पति, भाई और बन्धुगण उनका निवारणकरते थे परन्तु वे निवृत्त नहुईं; क्योंकि-उन के चित्त श्रीकृष्णजी से हरण होकर मोहित होगये थे ॥ ८ ॥ अन्तःपुरवासिनी जो कोई २ गोपी बाहरही न होनेपाई वे अपने नेत्र बन्दकर श्रीकृष्णजी का ध्यानकरने लगीं ॥ ९ ॥ एकतो उन का चित्त पहिलेही से भगवान में लगाहुआथा; इस समय उन्हीं का ध्यान करने लगीं।प्रियतमके दुःसह बिरह से जो सन्ताप उत्पन्नहुआ; उसी से उन सब गोपियों के अकल्याणका नाश होगया और ध्यान योग में प्राप्तहो श्रीकृष्णजी का आलिंगनकर जोसुख सम्भोग प्राप्तहुआ इस से उनके पुण्यका शेष होगया ॥ १० ॥ अतएव वह यद्यपि उनको उपपति जानतीथीं तौभी

क्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच । कृष्णंविदुःपरंकान्तं नतुब्रह्मतयामुने । गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियांकथम् ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच । उक्तंपुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिंयथागतः । द्विषन्नपिहृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतोनृप । अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्यगुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामंक्रोधंभयंस्नेहमैक्यं सौहृदमेवच । नित्यंहरौ विदधतो यान्ति तन्मयतांहिते । १५। नचैवंविस्मयःकार्यो भवताभगवत्यजे । योगेश्वरेश्वरेकृष्णे यतएतद्विमुच्यते ।१६। ताद्दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान्व्रजयोषितः । अवदद्वदतांश्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतंवोमहाभागाः प्रियंकिंकरवाणिवः । व्रजस्यानामयंकच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥ रजन्येषाघोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता । प्रतियातव्रजंनेह स्थेयंस्त्रीभिःसुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरःपितरःपुत्रा भ्रातरः पतयश्चवः । विचिन्वन्तिह्यपश्यन्तोमा कृढ्वंबन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टंवनं कुसुमितंराकेशकररञ्जितम् । यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यातमाचिरंगोष्ठंशुश्रूषध्वंपतीन्सतीः । क्रन्दन्तिवत्साबालाश्चतान्पाययतदुह्यत ॥ २२ ॥ अथवामदभिस्नेहाद्भवत्योयन्त्रिताशयाः । आगताह्युपपन्नंवः प्रीयन्तेमयिजन्तवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणंस्त्रीणांपरोधर्मोह्यमायया । तद्बन्धूनांचकल्याण्य

उन परमात्मा को प्राप्त होकर उसी काल सुख दुःख से अशेष कर्मों को नाशकर उन्होंने त्रिगुणात्मक देह छोड़दी ॥ ११ ॥ राजा परीक्षित ने कहा कि—हे मुने ! गोपिकायें श्रीकृष्णजी को उपपति जानतीथीं; वह उनको परब्रह्म नहींजानतीथीं । फिर किसप्रकार वे संसार से विरतहुई ? उनकी बुद्धितो गुणोंही में आसक्तथी ॥ १२ ॥ शुकदेवजी बोले कि हेराजन् ! मैंने पहिलेही यह बात कही है । शिशुपाल भगवान से शत्रुता करके भी जब सिद्धहुआथा तब जो उनकीप्यारी हैं उनकी बातमैं क्या कहूं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! भगवान अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणों के नियंता हैं । साधुओं के कल्याण के निमित्तही उनका रूप प्रकाश पातारहता है ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, भक्ति और संबंध चाहे जोहो—इनमें से केवल एक केही द्वारा जिसका चित्त भगवान में लगजाता है वह तन्मयताको प्राप्तहोता है ॥ १५ ॥ तुम—भगवान योगेश्वर श्रीकृष्णजी पर ऐसा विस्मय न करो कारण कि इनसे स्थावर आदि कीभी मोक्षहोती है ॥ १६ ॥ बोलने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भगवान उन व्रज नारियोंको समीप आयादेख बातों से उन्हें मोहित करके बोलेकि ॥१७॥ हे बड़भागिनियों ! सुख से तो आई हो ? तुम्हारा क्या कार्य करूंसोकहो ? व्रज में मंगलतो है ? तुम्हारे यहां आनेका क्या कारण है ॥ १८ ॥ इस भयंकर रात्रिमें इस बनमें हिंसक जीव इधर उधर घूमते फिरते हैं, अतएव तुम व्रजको लौटजाओ । हे सुमध्यमागण ! इस स्थान में स्त्रियों का रहना उचित नहीं ॥ १९ ॥ तुम्हारे माता, पिता, भ्राता और पति तुम्हें न देखकर खोज करेंगे । तुम बंधुओं को शंकागत उत्पन्न कराओ ॥ २० ॥ इतना बचन सुनकर गोपियें प्रेमके क्रोध से दूसरी ओर देखने लगीं । तब भगवान ने फिर कहाकि फूला हुआवन, चन्द्रमाकी पूर्ण किरणों से रंजित होरहा है, यमुनाजी का जल हवासे कंपित हुये वृक्षों के पत्तोंसे शोभायमान होरहा है, तुम यदि यह देखने आई होतो देखलिया अब गोष्ठ में जाओ, बिलंब न करो । तुम पतिव्रताहो अपने २ घर जाकर पतियों की सेवाकरो । बछड़े और बालक रोतेहोंगे उनको जाकर दूध पिलाओ ॥२१॥ ॥ २२ ॥ और यदिमेरेही स्नेह से चित्त वशीभूत हुआहो इससे आई होतो इस में भी दोष नहीं है क्योंकि सबप्राणी मुझसे प्रीति करते हैं॥२३॥हेकल्याणियों ! निष्कपट होकर स्वामीकी और स्वामी

प्रजानांचानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलोदुर्भगोवृद्धोजडोरोग्यधनोऽपिवा । पतिः स्त्रीभिर्नहातव्योलोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यंचफल्गुकृच्छ्रंभयावहम् । जुगुप्सितंचसर्वत्रऔपपत्यंकुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयिभावोऽनुकीर्तनात् । नतथासन्निकर्षेणप्रतियाततत्तोगृहान् ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिविप्रियमाकर्ण्यगोप्योगोविन्दभाषितम् । विषण्णाभग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वामुखान्यवशुचः श्वसनेनशुष्यद्बिम्बाधराणिचरणेनभुवंलिखन्त्यः । अस्त्रैरुपात्तमाषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजन्त्यउरुदुःखभराः स्मतूष्णीम् । ॥ २९ ॥ प्रेष्ठंप्रियेतरमिवप्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः । नेत्रेविमृज्यरुदितोपहतेस्म किंचित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः । मैवंविभोऽर्हतिभवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्यसर्वविषयांस्तव पादमूलम् । भक्ताभजस्वदुरवग्रहमात्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषोभजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणांस्वधर्मइतिधर्मविदा त्वयोक्तम् । अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशेप्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किलबन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वन्तिहित्वयिरतिंकुशलाः स्वआत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् । तन्नःप्रसीदपरमेश्वर मास्मछिंद्याआशांभृतां त्वयिचिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तंसुखेनभवताऽपहृतंगृहेषु यन्निर्विशत्युतकरावपिगृह्यकृत्ये ॥ पादौपदंनचलतस्तव पादमूलाद्यामःकथंव्रजमथो

के बंधुओं की सेवा और बच्चोंका लालन पालन करना यही स्त्रियोंका परम धर्म है ॥ २४ ॥ पति चाहे दुष्ट स्वभाव, अभागा, वृद्ध, जड़, और निर्धनहो परन्तु सद्गति चाहने वाली स्त्रीको उसका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये ॥२५॥ कुल स्त्रीको जार पुरुषका सेवन स्वर्गका नष्ट करनेवाला कीर्त्तिको मिटाने वाला, तुच्छ, कष्ट देनेवाला, भयकारी और सब स्थानो पर निंदनीय है ॥ २६ ॥ मेरेनामक सुनने, मेराध्यान और मेरागुण कीर्त्तन करने से मुझमें जैसा स्नेहउत्पन्न होताहै वैसा मेरे निकट रहने से नहीं उत्पन्न होता, अतएव तुम घरको लौटजाओ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! गोविंद के इस अप्रिय वाक्यको सुनकर गोपियें मनोरथ पूर्ण न होने से अत्यंत विषाद को प्राप्त हुईं ॥ २८ ॥ शोक के कारण उनके बड़े २ श्वास चलनेलगे, इससे कुंदुरू से होंठ सूखगये वह अत्यंत दुःख से व्याकुल हो नीचा मुखकर, पैरके अंगूठ से भूमि खोदने लगीं और काजल युक्त आंसुओं की धारा से कुचोंकी केसरको धो मौन भाव से खड़ी रहगईं ॥ २९ ॥ गोपियें श्रीकृष्णजी की अनुरागिनी थीं और उनकेही कारण उन्होंने और सब कामनाओंको त्यागदियाथा, । वह उनके अत्यन्त प्यारेथे इससमय वे उनके मुखसे शत्रुकी समान बातें सुन कुछ कुपित हुई क्रोधसे उनका गला रुकगया । वह आंसुओंको रोक आंखोंको पोंछ गद्गद स्वरसे कहने लगीं कि—३० ॥ हेविभो ! ऐसे निठुर बाक्य कहना तुम्हें उचित नहीं है । हम समस्त विषय बासनाओंको छोड़कर तुम्हारेही चरणकमलोंको भजतीहैं । हेस्वाधीन ! जैसे देवआदि पुरुष मुमुक्षु मनुष्योंको ग्रहण करतेहैं तैसेही आप हमको ग्रहण करो ॥ ३१ ॥ हे अंग ! पति, पुत्र और बन्धुओं की सेवा करनाही स्त्रियों का स्वधर्महै,, हेधर्मज्ञ ! तुमने जो यह उपदेश दिया हम वही करेंगी । परन्तु उपदेश के देनेवाले ईश्वर, तुम्हारीही सेवा करनेसे हमारी वे सब सेवायें होजावेंगी क्योंकि आपही सब प्राणियोंके प्यारे, बन्धु आत्मा और नित्यप्रियहो ॥ ३२ ॥ शास्त्रवेत्ता मनुष्य तुम्हींसे प्रेम किया करतेहैं । पति पुत्रादि तो दुःख दायक हैं उनको लेकर क्या होगा ? अतएव हेईश्वर ! हमपर प्रसन्नहो । हेकमललोचन ! तुम बहुत दिनोंकी पोषण की हुई हमारी आशाको भंग न करो ॥ ३३ ॥ हमारा जो चित्तजो दोनों हाथ अबतक स्वाधीनता

करवामकिंवा ॥ ३४ ॥ सिंचांगनस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् । नोचेद्वयंविरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेनयामपदयोः पदवींसखेते ॥ ॥ ३५ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्षतवपादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्मतत्प्रभृतिनान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाऽभिरमिताबतपारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपिवक्षसि पदंकिलभृत्यजुष्टम् । यस्याःस्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयंच तवपादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तन्नःप्रसीदवृजिनार्दन तेंऽघ्रिमूलंप्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः । त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षण तीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषणदेहिदास्यम् ॥ ३८ ॥ वीक्ष्यालकावृतमुखंतव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् । दत्ताभयंचभुजदण्डयुगंविलोक्य वक्षःश्रियैकरमणंच भवामदास्यः ॥३९॥ कास्त्र्यङ्गतेकलपदायतमूर्च्छितेनसंमोहिताऽऽर्य चरितान्न चलेत्रिलोक्याम् । त्रैलोक्यसौभगमिदंच निरीक्ष्यरूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तंभवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता । तन्नोनिधेहिकरपंकजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषुच शिरस्सुच किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवाच । इतिविक्लवितंतासां श्रुत्वायोगेश्वरेश्वरः । प्रहस्यसदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥ ताभिःसमेताभिरुदारचेष्टितः प्रिये

से घरके कामोंमें लगे रहतेथे उनको आपने हरलिया । आपके चरणमूलको छोड़कर हमारे चरण एक पगभी नहीं चलते । अतएव व्रजमें जाकर क्याकरें ? और कैसे जांय ? ॥ ३४ ॥ तुम्हारी हास्य युक्त दृष्टि और मधुर गीतोंसे जो कामाग्नि उत्पन्न हुईहै तुम अपने अधरामृतकी धारासे उसका सिंचन करो ? नहीं तो हेसखे ! हम बिरहाग्निसे दग्ध देहहो ध्यान योगसे तुम्हारे चरणोंको प्राप्त होंगी ॥ ३५ ॥ हेकमलनयन ! तुम्हार चरण लक्ष्मीको आनन्द उत्पन्न करातेहैं हेअरण्यजन प्रिय ! तुम्हारे उन चरणोंका जिससमय से हमने स्पर्श कियाहै और इस अरण्यमें जबसे तुमने हमको आनन्द दियाहै उससमय से हम दूसरे के निकट नहीं रहसकतीं, ॥ ३६ ॥ जिन लक्ष्मीके कटाक्ष प्राप्त करनेके कारण दूसरे देवता निरन्तरही अधीर रहतेहैं वह लक्ष्मी हृदयमें स्थान पाकरभी तुलसीके साथ मिल भक्तोंके भोगेहुए जिन चरण रजके संभोगकी इच्छा करतीहैं हम उन्हींके समान उस चरण रजके शरणागत हुईहैं ॥ ३७ ॥ अतएव हेपापनाशक ! हमारे ऊपर प्रसन्नहो तुम्हारी सेवा करनेके निमित्त हम आई हैं । तुम्हारे सुन्दर हास्यको देखकर हमारे तीव्रकामाग्नि उत्पन्न होती है हम उससे संतप्त होती हैं हेपुरुषभूषण ! हमको दासी होनेदो । ॥ ३८ ॥ तुम्हारा सुन्दर मुख अलकोंसे घिरा हुआहै दोनों कपोलोंपर दोकुण्डल शोभायमान हैं और अधरमें अमृतहै उससे सुन्दर मन्द हास्ययुक्त दृष्टि शोभित होरहीहै तुम दोनों भुजदण्डों से अभयदान दो तुम्हारा वक्षःस्थल लक्ष्मीको रति का उत्पन्न करनेवालाहै । यह सब देखकर हम तुम्हारी दासीहुईहैं ॥ ३९ ॥ त्रिलोकी में ऐसी कौन स्त्रीहै जो तुम्हारे मधुर पदरूप अमृतमय वेणु गीतसे मोहित हो सत्मार्गसे बिचलित न होवे ? तुम्हारे इस त्रिलोक मोहन रूपको देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष, और मृगोंको रोमांच होआताहै ॥ ४० ॥ हम निश्चय जानतीहैं कि—जैसे आदि पुरुष देवलोकके रक्षक होकर देवताओंकी पीड़ा हरतेहैं तुमभी वैसेही व्रजकी पीड़ा नाश करनेके निमित्त अवतीर्ण हुयेहो । अतएव हेदीनबन्धो ! हमारे संतप्त स्तनों और मस्तकको अपनाकरकमलदान करो हम आपकी दासीहैं ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् श्रीकृष्णजी योगेश्वरोंके ईश्वर, आत्माराम हैं; तौभी उनसब गोपियोंके ऐसे कातर बचन सुन दयावशहो हँसकर उनको क्रीड़ा कराने लगे ॥ ४२ ॥ उदार कर्मा भगवान के हास्य और दांतोंकी पंक्तिसे कुंद कुसुम की आभा

क्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः । उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणांकइवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः । मालांबिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याःपुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् । रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः । क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन्रतिपतिं रमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवंभगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानंमेनिरेस्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥ तासांतत्सौभगमदंवीक्ष्य मानंचकेशवः ॥ प्रशमायप्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अन्तर्हितेभगवति सहसैवव्रजाङ्गनाः । अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्यइवयूथपम् ॥१॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमाऽऽलापविहारविभ्रमैः । आक्षिप्तचित्ताःप्रमदारमापतेस्तास्ताविचेष्टाजगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषुप्रियाःप्रियस्यप्रतिरूढमूर्तयः । असावहंत्वित्यबलास्तदात्मिकान्यवेदिषुःकृष्णविहारविभ्रमाः॥३॥गायन्त्यउच्चैरमुमेवसंहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् । पप्रच्छुराकाशवदन्तरंबहिर्भूतेषुसन्तंपुरुषंवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ दृष्टोवःकच्चिदश्वत्थ प्लक्षन्यग्रोधनोमनः । नन्दसूनुर्गतोहृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

निकलने लगी । वह प्रियदर्शन के कारण, प्रसन्न मुखी उनसब गोपिकाओं से वेष्टितहो तारागणों से घिरेहुये चंद्रमाकी समान, शोभा पानेलगे ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णजी सौस्त्रियों के मध्यमें यूथपतिहो कभी आपगाते कभी औरोंका गाना सुनते और वैजयंती माला धारण कियेहुये बनको शोभायमान करते वहां विचरनेलगे ॥ ४४ ॥ कालिंदीका वह प्रकाशित किनारा शीतल वायुसे परिपूर्ण था; वायु कमलोंकी सुगंधिसे सुगंधितहो वहां मंदभावसे चलरहाथा॥४५॥श्रीकृष्णजी उसमनोहर रेतीमें प्रवेशकर, हाथ पसारना, आलिंगन करना, हाथ, अलक, जांघ, नीवी और स्तनों का स्पर्श कर हास्य के बचन, नखों के अग्रभाग का चुभोना, क्रीड़ा, देखना, हंसना, आदि से ब्रजानारियों के कामदेवको उद्दीप्तकर उनको विहार करानेलगे ॥ ४६ ॥ अनासक्त चित्त भगवान से इस प्रकार मानपाकर गोपिकाएं मानवती होगईं, और अपनेको पृथ्वीमें सबस्त्रियोंसे श्रेष्ठ जाननेलगीं ॥४७॥ भगवान उनके उस सौभाग्य के अभिमानको देखकर गर्वनाश करने और प्रसन्न होने के निमित्त उसी स्थान में अंतर्धान होगये ॥ ४८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषटीकायांएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! गजराज के खोजाने से जैसे हथिनियें व्याकुल होजाती हैं तैसेही हठात् भगवान के अंतर्धान होने से व्रजानारियें संतप्त होने लगीं गति, अनुराग, हास्य, विभ्रमदृष्टि, सुंदरवार्त्ता, विलास और भ्रम से स्त्रियोंका चित्त खिंचगयाथा इस कारण वह तन्मयताको प्राप्त होगईं थीं, इस समय वह श्रीकृष्णजी के नाना चारित्रों का अनुकरण कर क्रीड़ा करनेलगीं ॥ २ ॥ प्यारेकी गति, हास्य, देखना और वार्त्ता करना सब प्यारियों की मूर्ति में प्रवेशकरगये थे, अतएव उनका विहार और विभ्रम श्रीकृष्णजी कीही समान होनेलगा। इस कारण सबही कृष्णात्मिकाहो 'मैंहीकृष्णहूं' इसप्रकार कहनेलगीं ॥३॥ फिरवे, एकत्रितहो ऊंचेस्वरसे गान करते२ भगवान के खोजनेको उन्मत्त की समान बन २ में घूमने लगीं । और जोभगवान आकाश की समान प्राणियों के बाहर भीतर स्थित हैं उन परम पुरुष भगवान की वार्त्ता वे वनस्पतियों से पूछने लगीं ॥ ४ ॥ कि—हे पीपल ! हे पाकर ! हे वट ! श्रीनंद नंदन प्रेम और हास्य से सुंदर कटाक्षों

कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः । रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये । सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके । प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसाऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः । येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि । अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः । कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ ११ ॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः । अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः । नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः । लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम् । तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन्शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् । रिङ्गयामास काऽप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोष-

द्वारा हमारे चित्तका हरणकर भगगये हैं; क्या तुमने उनको देखा है ॥ ५ ॥ हे कुरवक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे चम्पक ! जिसका हास्य मानवतियों के मानको हरण करता है वह बलराम जी के छोटे भैया क्या इधर से गये हैं ॥ ६ ॥ हे कल्याणि तुलसि ! हे गोविंद चरण प्रिये ! तुम्हारे अति प्रिय अच्युत भौंरों समेत तुमको धारण करते रहते हैं तुमने क्या उनको देखा है ॥ ७ ॥ हे मालति ! हे मल्लिके ! हे जाति ! हे यूथिके ! माधव क्या हाथ से स्पर्शकर तुम्हें आनंद देतेहुये इसमार्ग से गये हैं ॥ ८ ॥ हे आम ! हे प्रियाल ! हे पनस ! हे असन ! हे कोविदार ! हे जामुन ! हे अर्क ! हे बिल्व ! हे बकुल ! हे चूत ! हे कदम्ब ! हे नीव ! हे दूसरों के स्वार्थ के निमित्त उत्पन्न हुये समस्त यमुनातीर बासीवृक्ष ! श्रीकृष्णजी किसमार्ग से गए हैं— तुमने क्या उनको देखा है ? हमारा चित्त शून्य होगया है ॥ ९ ॥ अहो ! पृथ्वी ! तुमने क्या तपस्या कीथी ? कि—जिससे कृष्णजी के पैरोंके स्पर्श से तुम्हें आनंद उत्पन्न हुआ है; इसही कारण जानपड़ता है कि तुमवृक्षों द्वारा रोमांचितसी होरहीहो। क्यायही पादस्पर्श होनेका आनंद है ? या-त्रिविक्रम के चरणोंको पायकर आनंदित होरहीहो ? अथवा इससे भी पहिले वराहके आलिंगन से आनंद हुआ है ॥ १० ॥ हे हरिण पत्नीगण ! हमारे अच्युत अपने अंग प्रत्यंग से तुम्हारे नेत्रों को तृप्त करते हुये प्यारी के साथ क्या इस स्थानपर आयेथ ? क्योंकि यह स्थान श्रीकृष्णजी के प्यारीके अंगस्पर्श होनेके कारण कुचोंके केसरसे रंगेहुये कुंद कुसुमकी मालाकी गंधसे सुगंधित है ॥ ११ ॥ हे तरुगण ! एक हाथ प्यारी के कंधपर धर, दूसरे हाथमें कमल लिये, तुलसी की गंध से पीछेजाते हुये भौंरोंके संग श्रीकृष्णजी ने इस स्थानपर विचरते २ स्नेह दृष्टिसे क्या तुम्हारे प्रणाम को स्वीकार किया है ॥ १२ ॥ हे सखि ! इन लताओं से पूंछो । यद्यपि यह प्रियतम की भुजा पकड़े रहती हैं तौभी निश्चयही देखाजाता है कि श्रीकृष्णजी ने नखोंद्वारा इनका स्पर्श किया था। अहो ! इसही कारण यह पुलकित गात होरही हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी को ढूंढते २ अति विह्वलहो श्रीकृष्णात्मिका गोपिका गण इस प्रकार उन्मत्त केसे वाक्य कहते २ अंतमें उनके नानाप्रकारकी क्रीड़ाओं का अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ एक गोपी कृष्णहुई; और एकगोपी पूतना होकर उस का स्तन पान करनेलगी । एक जन शकटहुई; दूसरी एक जनने कृष्णहोकर उस शकट पर पैरोंका प्रहारकिया ॥ १५ ॥ एक रमणी श्रीकृष्णजी के लड़कपनेका अनुकरण

निस्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायितेद्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन । वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुवर्तती । वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु । कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ माभैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया । इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥ आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप । दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥ बद्धाऽन्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले । भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् । व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः । लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याता यानन्दसूनुना । अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः । यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः । यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ।

करतीथी और एक रमणी दैत्यहोकर उस का हरण करलेगई। एक गोपी घुंघरू का शब्दसुन अपने चरणों को घसीटती घुटनों से चलने लगी ॥ १६ ॥ दो कामिनी कृष्ण और राम हुईं; कुछेक रमणी गोपहुईं। एक जनने बत्सासुर के वेश धरनेवाली को दूसरी ने बकासुर के रूपधरने वालीको मारा ॥ १७ ॥ एक जन श्रीकृष्णजी की समान बंशी बजाते २ दूरगई हुई गौओं को बुलाकर क्रीड़ा करनेलगी; और कुछेक ने "साधु साधु" करके बड़ाई की ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजी की प्यारी कोई गोपी दूसरी एक गोपी के कन्धे पर हाथ रख विचरण करते २ दूसरी गोपिकाओं से कहने लगी,—कि—"मैं कृष्णहूं" कैसे भलीप्रकारसे चलताहूं देखो ! ॥ १९ ॥ बायु और बर्षासे भयभीत नहोना; मैंने उसकी रक्षाका उपाय निश्चय किया है यह कहकर एक हाथ से अपना उत्तरीयवस्त्र उठालिया ॥ २० ॥ हेराजन् ! एकस्त्री दूसरी स्त्री के मस्तकपर बैठ लातें मार २ कर कहनेलगी कि—रेदुष्ट सर्प यहां से चलाजा; मैं दुष्टों को दण्डदेनवालाहोकर अवतीर्ण हुआहूं ॥ २१ ॥ एक गोपी ने कहाकि—हे गोपगण ! भयानक दावाग्नि को देखो ! तुम अपने नेत्र बन्दकरलो; मैं इसी समय तुम्हारी रक्षाकरताहूं ॥ २२ ॥ एक गोपी को दूसरी ने माला से ऊखल में बांधदिया वह गोपी भयभीत होतीहुई अपनामुहँ छिपा भयका अनुकरण करने लगी ॥ २३ ॥ गोपिकाएं पहिले के कहेहुए के अनुसार फिर वृन्दावन के तरुलताओं से कृष्णजीकी बार्त्ता पूंछ २ कर उन्हें ढूंढने लगीं वहां बनभूमि में ढूंढते २ उन्होंने श्रीकृष्णजी के चरणों के चिह्न देखे ॥ २४ ॥ देखतेहीं वहसब कहनेलगीं कि—ध्वज, पद्म, बज्र और अंकुश देखकर यह निश्चयही जानाजाता है कि यहसब पदचिह्न महाराज नन्दनन्दन के हैं ॥ २५ ॥ हेराजन् ! उन सब गोपियों ने उन पदचिह्नोंद्वारा श्रीकृष्णजी को ढूंढ़ते २ कुछ दूर आगे जाकर देखा कि—उन पैरों के चिह्नों के साथही साथ किसी स्त्रीके भी पैरोंके चिह्न मिलेहुएहैं। यह देखतेही वहसब कातरहोकर कहने लगीं कि—॥२६॥ यह किस स्त्री के पैरों की पंक्तियें हैं, हथिनी की समान किस स्त्रीने हाथी के समान श्रीकृष्णजी का अनुसरण किया है ! ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजी ने निश्चयही उसके कंधे में अपनाहाथ रक्खाथा। इस स्त्री ने आराधनाद्वारा निश्चयही भगवान हरिको सन्तुष्ट किया है; नहीं तो भला श्रीकृष्णजी हमको छोड़कर इसे क्यों एकांतमें लेजाते ? ॥२८॥ देखिये ! श्रीगोविंदकी

॥ २९ ॥ तस्याअमूनिनःक्षोभं कुर्वन्त्युच्चैःपदानियत् । यैकापहृत्यगोपीनां रहोभुं-क्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ नलक्ष्यन्तेपदान्यत्र तस्यानूनंतृणांकुरैः । खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसींप्रियः॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानिवहतोवधूम् । गोप्यःपश्यतकृष्णस्य भाराक्रान्तस्यकामिनः । अत्रावरोपिताकान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ १ ॥)अत्रप्रसूनावचयः प्रियार्थेप्रेयसाकृतः । प्रपदाक्रमणेएत पश्यताऽसकलेपदे ॥ ३२ ॥केशप्रसाधनंत्वत्र कामिन्याःकामिनाकृतम् ॥ तानिचूडयताकान्तामुपविष्टमिहध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमेतयाचात्मरत आत्मारामोप्यखण्डितः । कामिनांदर्शयन्दैन्यं स्त्रीणांचैवदुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवंदर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः । यांगोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याःस्त्रियोवने ॥ ३५ ॥ साचमेनेतदात्मानं वरिष्ठंसर्वयोषिताम् । हित्वागोपीःकामयाना मामसौभजतेप्रियः ॥ ३६ ॥ ततोगत्वा वनोद्देशं दृप्ताकेशवमब्रवीत् । नपारयेऽहंचलितुं नयमांयत्रतेमनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तःप्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति । ततश्चांतर्दधेकृष्णः सावधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥ हानाथरमणप्रेष्ठ क्वासिक्वासिमहाभुज । दास्यास्तेकृपणायामे सखेदर्शयसन्निधिम् ॥ ३९ ॥ अन्विच्छन्त्योभगवतो मार्गंगोप्योविदूरतः । ददृशुःप्रियविश्लेषमोहितां दुःखितांसखीम् ॥ ४० ॥ तयाकथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिंचमाध-

यह चरणरज अत्यन्तही पवित्रहै । ब्रह्मा महादेव और लक्ष्मी देवी पाप नाश करनेके कारण इसे अपने मस्तकमें धारण करतेहैं आओ हम सब इसपवित्र चरणरजसे स्नानकरें ॥ २९ ॥ उस स्त्री के यह चरणचिह्न हमको अत्यंत क्षुभित करतेहैं क्योंकि वह गोपियोंसे छिपकर एकांतमें अच्युतके अधरका पान करतीहै॥३०॥इस स्थान में उसके चरण चिह्न देखही नहीं पड़ते इससे जानाजाता है कि तृणके अंकुरोंसे प्यारीके कोमल पैरोंके तलुवों में घाव होगयेथे इसलिये प्यारेने उसको उठालियाहै ॥ ३१ ॥ हेगोपियों ! देखो; कामी श्रीकृष्ण प्यारीके बोझसे बहुत बोझिल होगयेथे, क्योंकि यहां पृथ्वीपर उनके पैर बहुत धसेहुएहैं । श्रीकृष्णजीने फूलोंके हेतु इसस्थानपर प्यारी को उताराहै, प्यारेने इसस्थानपर प्यारीके निमित्त फूल बीनेहैं, देखो पृथ्वीपर केवल पैरोंका अग्रभागही रक्खाहै इसहीकारण पैरोंके चिह्न असंपूर्ण होरहेहैं, । कामीने इसस्थानपर कामिनीके केश बांधेहैं और निश्चयही इसस्थानपर बैठकर प्यारीके जूड़ेमें फूल गूंधेहैं ३२—३३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेमहाराज ! श्रीकृष्णजी आत्मा रामहैं वह अपने आपही क्रीड़ा करतेहैं, स्त्रियों का विलास उनको मोहित नहीं करसकता, तौ भी कामी पुरुषोंकी दीनता और स्त्रियोंकी दुरात्मता दिखानेके निमित्त गोपियोंके साथ क्रीड़ाकीथी॥३४॥जो हो वह सब गोपियें इसप्रकार पैरोंके चिह्नों को देखतीहुई अचेतकी समान भ्रमण करनेलगीं, । हे राजन् ! श्रीकृष्णजी दूसरी स्त्रियोंको छोड़कर जिस स्त्रीको बनमें लेगयेथे उसके मनमें यह अहंकारहुआ कि—मेरी समान और कोई स्त्री नहीं है मैं सब स्त्रियों में उत्तमहूं कि—मेरीही इच्छासे मेरा प्यारा सबगोपियों को छोड़ मेरा भजन कररहाहै ॥ ३५—३६ ॥अनन्तर वह बनमें घूमतीहुई अहंकार पूर्वक श्रीकृष्णजीसे कहने लगी कि—मैं चलनहीं सकती जिसस्थान पर चाहो उस स्थानपर मुझे चढ़ाकर लेचलो, ३७ ॥ यह बात सुनकर श्रीकृष्णजीने प्यारीसे कहा कि आओ कन्धेपर चढ़लो अनन्तर वह जैसेही चढ़नेको उद्यतहुई कि—तैसेही श्रीकृष्णजी अन्तर्धान होगये॥३८॥तब वह स्त्री संताप करके कहने लगी कि—हानाथ ! हाप्रियतम ! हारमण ! हामहाबाहो ! कहांहो ? हेसखे ! मैं दुःखिनी तुम्हारी दासीहूं तुम कहांहो मुझे दर्शनदो, ॥ ३९ ॥ हेमहाराज ! इसओर सब गोपियों ने भगवान को ढूंढते २ देखपाया कि—उनकी सखी विरहसे मोहित और दुःखित यहांपर स्थित है, ॥ ४० ॥

वात् । अवमानंच दौरात्म्याद्विस्मयं परमंययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते । तमःप्रविष्टमालक्ष्य ततोनिववृतुःस्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः । तद्गुणानेवगायन्त्यो नात्मागाराणिसस्मरुः ॥ ४३ ॥ पुनःपुलिनमागत्य कालिन्द्याःकृष्णभावनाः । समवेताजगुःकृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

गोप्य ऊचुः ॥ जयतितेऽधिकंजन्मनाव्रजः श्रयतइन्दिराशश्वदत्रहि । दयित दृश्यतांदिक्षुतावकास्त्वयिधृतासवस्त्वांविचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशयेसाधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषादृशा । सुरतनाथतेशुल्कदासिकावरदनिघ्नतोनेहकिंवधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् । वृषमयात्मजाद्विश्वतोभयादृषभतेवयंरक्षितामुहुः ॥ ३ ॥ नखलुगोपिकानन्दनोभवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् । विखनसाऽर्थितोविश्वगुप्तयेसखउदेयिवान्सात्वतांकुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयंवृष्णिधुर्यतेचरणमीयुषांसंसृतेर्भयात् । करसरोरुहंकान्तकामदंशिरसिधेहिनः श्रीकरग्रहम् ॥५॥ व्रजजनार्तिहन्वीरयोषितांनिजजनस्मयध्वंसनस्मित । भजसखेभवत्किङ्करीः स्मनोजलरुहाननंचारुदर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनांपापकर्शनं

उसके मुखसे श्रीकृष्णजीसे मान प्राप्त होना और दुरात्माके कारण तिरस्कारका होना सुनकर वह अत्यन्त विस्मित हुईं ॥ ४१ ॥ तदुपरांत जबतक चन्द्रमाका प्रकाशरहा तबतक उन्होंने बनमें भ्रमण किया । शेषमें अन्धकार होनेसे उन्होंने श्रीकृष्णजीका ढूंढ़ना बन्द करदिया परन्तु तौ भी घरकी सुधि किसीको न आई, ॥ ४२ ॥ क्योंकि सबही श्रीकृष्णजी के बिषय की बातें करतीं श्रीकृष्णजीकी समान कार्य करतींथीं इससे सबही श्रीकृष्णमय होगईथी इसकारण सबही उनके गुणोंको गाने लगीं, ॥ ४२—४३ ॥ इसप्रकार से श्रीकृष्णजी का ध्यान करते २ वह फिर यमुनाकी रेतीमें आईं, और श्रीकृष्णजी के आनेकी इच्छा से वह सब एकत्र हो उनका गुण गाने लगीं— ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

गोपियों ने कहाकि—हे कांत ! तुम्हारे जन्म से हमारा व्रज अत्यंतही श्रेष्ठ होगया है और लक्ष्मी इसको भूषित करके निरंतर यहां बासकरती है । इससे सबही व्रजबासी सुखी हैं । किंतु हे नाथ ! जोतुम्हारेही कारण प्राण धारण करती हैं वह तुम्हारी अभागिनी गोपियें तुम्हारे बिरह से अत्यंत कातरहो इस स्थानपर दिशाओंमें तुम्हें ढूंढती फिरती हैं अतएव हमें दर्शनदो ॥१॥ हे संभोगपते! हेअभीष्टप्रद ! तुम्हारेनेत्र शरत्कालमें उत्पन्नहुये सुंदर कमलकी कांतिका हरणकरते हैं; हम तुम्हारी बिनावेतन की दासी हैं; तुम अपने उन नेत्रों से प्रहार करतेहो क्या वह बधनहीं है ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ ! तुमने हमको विषके जलपीने से जोमृत्यु हुई उससे और अघासुर, वर्षा–पवन, बज्रपात, अग्नि, वृषभासुर, व्योमासुर, और दूसरे अनेकों प्रकारके डरोंसे वारंवार बचाया है तब इस समय रक्षाक्यों नहीं करते ॥ ३ ॥ तुम यशोदा के पुत्र नहींहो; समस्त प्राणियों की बुद्धिके साक्षीहो । तुम ब्रह्माकी प्रार्थना से विश्वके पालनेके निमित्त यदुकुलमें जन्मेहो। हम तुम्हारे भक्त हैं; अतएव हमारी इच्छा पूर्णकरो ॥ ४ ॥ हे यदुकुल धुरंधर ! जोसंसार के भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरणलेते हैं और तुम उनके ऊपरकर कमलरख अभय दानदे उनकी इच्छा पूरण करतेहो उन्हीं कर कमलोंने लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण किया है स्वामी! तुम हमारे मस्तकपर वहीकर कमल रक्खो ॥ ५ ॥ हे ब्रज वासियोंके दुःख नाशक ! हे वीर ! तुम्हारा हास्य तुम्हारे भक्तोंका गर्वनाश करता है; हे सखे ! हम दासियोंको आप भजिये और अपने सुंदर कमल मुखका दर्शन दीजिये ॥ ६ ॥

तृणचरानुगंश्रीनिकेतनम् । फणिफणार्पिततेपदाम्बुजंकृणुकुचेषुनः कृन्धिहृच्छयम् ॥ ७ ॥ मधुरयागिरावल्गुवाक्ययाबुधमनोज्ञयापुष्करेक्षण । विधिकरीरिमावीरमुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्वनः ॥ ८ ॥ तवकथाऽमृततप्तजीवनंकविभिरीडितंकल्मषापहम् । श्रवणमङ्गलंश्रीमदाततंभुविगृणन्तितेभूरिदाजनाः ॥ ९ ॥ प्रहसितंप्रियप्रेमवीक्षणंविहरणंचतेध्यानमङ्गलम् । रहसिसंविदो याहृदिस्पृशः कुहकनोमनः क्षोभयन्तिहि ॥ १० ॥ चलसियद्व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरंनाथतेपदम् । शिलतृणांकुरैः सीदतीतिनः कलिलतांमनः कान्तगच्छति ॥ ११ ॥ दिनपरिक्षयेनीलकुन्तलैर्वनरुहाननंबिभ्रदावृतम् । घनरजस्वलंदर्शयन्मुहुर्मनसिनः स्मरंवीरयच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदंपद्मजार्चितंधरणिमण्डनंध्येयमापदि । चरणपङ्कजंशन्तमंचतेरमणनः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनंशोकनाशनंस्वरितवेणुनासुष्ठुचुम्बितम् । इतररागविस्मारणंनृणांवितरवीरनस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटतियद्भवानह्निकाननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुन्तलं श्रीमुखंचते जडउदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥ पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः । गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितःकस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥

तुम्हारे चरण कमल–जोशरणागत प्राणियों के पाप नाशक और पशुओं के पीछे फिरने वाले हैं; लक्ष्मी उनमें बासकरती हैं, तुमने सर्पके फणपर उनको अर्पण किया है; इस समय हमारे कुचों को दान करके हमारे कामदेव की व्यथाहरो ॥ ७ ॥ हे कमल लोचन ! हम तुम्हारी दासी हैं; आपके मधुर पदोंयुक्त पण्डितोंकेभी हृदय ग्राही वाक्यों से हम मोहितहुई हैं अधरामृत द्वारा हमको चैतन्यकरो ॥ ८ ॥ पृथ्वीपर संतप्त जनोंको जीवन देनेवाले कवियों से पूजित, काम और कर्मके निवारक, श्रवण करने सेही कल्याण देनेवाले आपके सुन्दर कथामृत का जोविस्तार पूर्वक उच्चारणकरते हैं उन्हों ने पूर्वजन्म में अनेकों दानकिये हैं ॥ ९ ॥ हे प्रिय ! हे कपटी ! जिसका ध्यान करनेसे कल्याणहोता है, तुम्हारी वह हास्य,वह प्रेमयुक्त कटाक्ष,वह बिहार, और वह मनको मोहित करने वाली क्रीड़ाका स्मरण आनें से हमारा चित्त क्षुभित होता है ॥ १० ॥ हे कांत ! हे नाथ ! जबतुम पशुचराते चराते व्रजसे चलेजातेहो, तब यह विचारकरकि—तुम्हारे कोमलचरण कंकर और कांटों से दुःख पातेहोंगे हमारा मन अत्यंत व्याकुल होजाता है ॥ ११ ॥ हे वीर ! दिनके अंतमें जब तुमगाऐं लेकर लौट आतेहो तब अपने केशों से घिरेहुये, गोरज से व्याप्त कमल मुख का दर्शनदे हमको कामपीड़ा उत्पन्न करदेतेहो परन्तु संग नहीं देते; इससे तुमको कपटी कहें या न कहें ॥ १२ ॥ हे रमण ! हे आर्त्तिहर ! तुम्हारे चरण कमल—शरणागतों की अभिलाषाको पूर्ण करने वाले, लक्ष्मी के कर कमलों से सेवित, पृथ्वीके भूषण विपत्ति कालमें ध्यान करने योग्य, और सेवा के समय में सुख देनेवाले हैं; इस समय उन चरणोंको हमारे स्तनोंपर धरो ॥ १३ ॥ तुम्हारा अधरामृत,—कामोद्दीपक और शोकनाशक है; शब्दायमान बंसी भली प्रकार से उसका चुंबन करती रहती है । उस अधरामृत से मनुष्यों की सार्व भौमादि सुखेच्छा भी विस्मृत होती है । आप हमको उसी अधरामृतका पान कराओ ॥ १४ ॥ दिनमें जब आप बृन्दावन में भ्रमण करते हो तब तुमको न देखकर हम आधेक्षणको भी युगकी समान जानती हैं । इसके अनंतर जबतुम दिनके अंतमें आतेहो तब सुंदर घूंघर वाले बालों से युक्त आपके श्री मुखका दर्शन अनिमिष नेत्रों से करती हैं; उस काल पलकें बनाने वाला ब्रह्मा हमें मूर्ख जानपड़ता है ॥ १५ ॥ हे अच्युत ! तुमगीतों की गतिसे अवगतहो; तुम्हारे उच्चगीतों से मोहितहो हम पति, पुत्र, जातिवाले, भ्राता और बांधवोंका निरादरकर तुम्हारे समीप आई हैं। हे शठ ! रात्रिकाल में शरण में आईहुई स्त्रियों

रहसिसंविदंहृच्छयोदयं प्रहसितानन्नंप्रेमवीक्षणम्। बृहदुरःश्रियोवीक्ष्यधामते मुहुरतिस्पृहामुह्यतेमनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरंगते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्। त्यजमनाक्वनस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥ यत्तेसुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषुभीताःशनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु। तेनाटवीमटसितद्व्यथतेन किं स्वित्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषांनः ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इतिगोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्चचित्रधा। रुरुदुः सुस्वरंराजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वीसाक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तंविलोक्यागतंप्रेष्ठंप्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः। उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित्कराम्बुजंशौरेर्जगृहेऽञ्जलिनामुदा। काचिद्दधारतद्बाहुमंसेचन्दनभूषितम् ॥ ४ ॥ काचिदञ्जलिनाऽगृह्णात्तन्वीताम्बूलचर्वितम्। एकातदंघ्रिकमलं सन्तप्तास्तनयोरधात् ॥ ५ ॥ एकाभ्रुकुटिमाबध्यप्रेमसंरम्भविह्वला। घ्नन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यांजुषाणातन्मुखाम्बुजम्। आपीतमपिनातृप्यत्सन्तस्तच्चरणंयथा ॥ ७ ॥ तंकाचिन्नेत्ररन्ध्रेणहृदिकृत्यनिमील्यच। पुलकाङ्ग्यु

को तुम्हारे अतिरिक्त और कौन छोड़सकता है ॥ १६ ॥ तुम्हारी काम उत्पन्न करने वाली सुंदर क्रीड़ा, हंसता हुआमुख, प्रेमयुक्त कटाक्ष, और लक्ष्मी के निवास भूतविशाल वक्षःस्थलको देखकर हमारा चित्तवारंबार मोहित होता है ॥ १७ ॥ हे सखे ! तुम्हारा प्रगट होना व्रजवासियोंका दुःख नाशक, और जगतका मंगल स्वरूप है। तुम्हारे मिलने का इच्छा से हमारा चित्त व्याकुल होरहा है जिससे तुम अपने भक्तों के हृदयका रोगनाश करतेहो, आप कृपणता छोड़ कृपाकर वही औषधि हमको दीजिये ॥ १८ ॥ हे प्यारे ! तुम्हीं हमारे जीवनहो; पीछे दुःख होताहोगा,—इसही भयसे हम तुम्हारे जिनचरण कमलोंको अपने कठिन कुचोंके तृप्तकरने के निमित्त धारण करती हैं तुम उन्हीं पांवों से जंगल में भ्रमण करतेहो। क्या कंकरों से उन्हें दुःख न पहुंचताहोगा ? यही बिचारकर हमारा हृदय व्याकुल होता है ॥ १९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! गोपिका गण श्रीकृष्णजी के दर्शनों की अभिलाषा से इसप्रकार गानकरतीं और बहुत प्रकारसे बिलापकर २ रोरहीथीं ॥ १ ॥ कि उसी समय हास्य मुख, पीताम्बरधारी, साक्षात् कामदेव को भी मोहित करनेवाले श्रीकृष्णजी उनके निकट आये॥ २ ॥ प्यारे को सामने देखकर गोपियें अति आनन्दितहुई, उन के कमल से नेत्र खिल गये प्राणों के लौटआने से जैसे हाथ पांव सचेतहोजाते हैं वैसेही वह श्रीकृष्णजी को पाय पुनर्जीवितहो फिर एकबार उठखड़ी हुईं ॥ ३ ॥ किसी गोपी ने आनन्दितहो श्रीकृष्णजी के दोनों कर कमल पकड़ लिये। किसी ने उनकी चन्दन चर्चित भुजा अपने कन्धे में रखली ॥ ४ ॥ किसी रमणी ने उन का खायाहुआ पान अंजुली में लेलिया, किसी बिरह से सन्तप्तहुई गोपस्त्री ने उन के दोनों चरण अपने दोनों स्तनों पर रखलिये ॥ ५ ॥ और एक स्त्री प्रेम के कोप से बिह्वलहो भृकुटी चढ़ाय, होंठ काटतीहुई कटाक्ष मार कर देखने लगी ॥ ६ ॥ कोई २ रमणी अनिमिष दोनों नेत्रों से बारम्बार उन के कमलमुख का पानकरने लगी; किंतु श्रीकृष्णजीके चरणों को देखकर जैसे साधुओं को तृप्तिनहीं होती तैसेही उन स्त्रियों की तृषा शांतिनहुई ॥ ७ ॥ कोई स्त्री नेत्रमार्ग से उनको

पगुह्यास्तेयोगीवानन्दसंप्लुता ॥८॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः । ज
हुर्विरहजंतापंप्राज्ञंप्राप्ययथाजनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतोवृतः
व्यरोचताधिकंतातपुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादायकालिन्द्यानिर्विश्य
पुलिनंविभुः । विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चन्द्रांशुस
न्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् । कृष्णायाहस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥
तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजोमनोरथान्तंश्रुतयोयथाययुः । स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कु
माङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥ तत्रोपविष्टोभगवान्सईश्वरोयोगेश्वरान्त
र्हृदि कल्पितासनः । चकास गोपीपरिषद्गतोर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत
॥ १४ ॥ सभाजयित्वातमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा । संस्पर्शनेनांक-
कृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्यईषत्कुपिताबभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्यऊचुः । भजतोऽनुभ-
जन्त्येक एकएतद्विपर्ययम् । नोभयांश्चभजन्त्यन्य एतन्नोब्रूहिसाधुभोः ॥ १६ ॥ श्री
भगवानुवाच ॥ मिथोभजन्तियेसख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमाहिते ॥ नतत्रसौहृदंधर्मः
स्वार्थार्थंतद्धिनान्यथा ॥ १७ ॥ भजन्त्यभजतोयेवै करुणाःपितरोयथा । धर्मोनिर-

हृदय में लेजाय, दोनों आंखें बन्दकर, उनका आलिंगनकर पुलकित शरीर और आनन्दमयहोकर
योगियों की समान आनन्द में मग्नहोगई ॥ ८ ॥ हेराजन् ! जैसे मुमुक्षु मनुष्य ईश्वर को पाकर
संसार के ताप को दूरकरता है, वैसेही श्रीकृष्णजी के दर्शन के कारण परमानन्द में सुखीहो सब
गोपिकाओं ने विरह से उत्पन्नहुए सन्ताप को दूर किया ॥ ९ ॥ हेतात ! भगवान् अच्युत उन
सब पापरहित गोपियों से घिरकर, सत्वादि गुणों से वेष्टित परमात्माकी समान अत्यन्त शोभा
को पानेलगे ॥ १० ॥ मदन—मोहन उन सब गोपियों को ले यमुना की सुखदाई रेती में जाय
क्रीड़ा करनेलगे उस रेती में खिलेहुए कुन्द और मन्दारकी सुगंधि से सुगंधित हुई पवन चलरही
थी और भौंरे गूंजरहेथे ॥ ११ ॥ शारदीय चन्द्रमाकी किरणों से रात्रि का अन्धकार दूरहोगया,
यमुनाजी ने अपने हाथों की समान लहरों से सुन्दरबालू बिछादीथी ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णजी का
दर्शन पायकर गोपियों की कामव्यथा नाशहोगई । श्रुतियें कर्मकाण्डमें परमेश्वर को नहीं देखतीं
कर्मों का अनुगमनकर जैसे अपूर्ण काम की समानरहती हैं परन्तु ज्ञानकाण्ड में परमेश्वरको देख
आनन्द से पूर्णकामहो कामनाओं को त्यागकरती हैं; वैसेही श्रीकृष्णजी के दर्शन से सबगोपियें
पूर्णकामहुई । उन्होंने कुच केसर से रंगेहुए अपने २ उत्तरीयबस्त्र से भगवान का आसन बना
दिया ॥ १३ ॥ योगेश्वरों के हृदय में जिनका आसन विराजमान रहता है; आज वेही भगवान
श्रीकृष्णजी गोपियों की सभाके बीचमें उनके बनायेहुए उस आसन पर बैठे । त्रिलोकीमें जितनी
शोभा है भगवान उतनी सबशोभा का केवल एक शरीर धारणकर गोपियों की मण्डली के बीच
सन्मानितहो शोभा पानेलगे ॥ १४ ॥ उनके चरण और हाथों को गोपियें गोद में ले चापती हुई
हास्य व विलास सहित शोभायमान भ्रकुटी से कामदेव का उद्दीपन करनेवाले भगवानकासन्मान
कर कुछ एक कुपित होकर कहनेलगीं ॥ १५ ॥ हे श्रीकृष्ण ! कोई मनुष्य एक जनके भजन
करनेपर उसका भजन करता है, कोई मनुष्यइसके बिपरीत करतारहता है, कोई मनुष्य स्वयंही
परस्पर एक दूसरे का भजन नहीं करते हैं हे सखे ! इसका भलीप्रकारसे निर्णयकरके हमसेकहो
॥ १६ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि—हेसखीगण! जो स्वार्थ साधन की इच्छाकरते हैं वेही परस्पर
भजन करते रहते हैं वहां कोई सुहृदपन व धर्म नहीं है; स्वार्थही उनका अभिप्राय है,-इस के
अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १७ ॥ किंतु जो नहीं भजनेवाले को भजते हैं वह कृपालु और

पवादोऽत्र सौहृदंचसुमध्यमाः ॥ १८ ॥ भजतोऽपिनवै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञागुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहंतुसख्योभजतोऽपि जन्तून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये । यथाऽधनोलब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयाऽन्यन्निभृतोनवेद ॥ २० ॥ एवंमदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हिवो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः । मयापरोक्षं भजतातिरोहितं माऽसूयितुंमार्हथतत्प्रियंप्रियाः ॥ २१ ॥ नपारयेऽहंनिरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापिवः । याऽमाभजन्दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्यतद्वःप्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ इत्थंभगवतोगोप्यः श्रुत्वावाचः सुपेशलाः । जहुर्विरहजंतापंतदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभतगोविन्दोरासक्रीडामनुव्रतैः । स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवःसंप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः । योगेश्वरेणकृष्णेन तासांमध्येद्वयोर्द्वयोः । प्रविष्टेनगृहीतानां कण्ठस्वनिकटंस्त्रियः । ॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् । दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥ ततोदुन्दुभयो नेदुर्निपेतुःपुष्पवृष्टयः । जगुर्गन्धर्वपतयःसस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानांनूपुराणां किंकिणीनांचयोषिताम् । सप्रिया-

स्नेही हैं जैसे माता पिता—ऐसे भजन से दयालु मनुष्यों को निष्काम धर्म और स्नेहमयमनुष्यों को सुहृदता प्राप्त होती रहती है ॥ १८ ॥ यहांपर अनिन्दित धर्म और सुहृदता दोनोंही हैं । जो आत्माराम, पूर्णकाम, अकृतज्ञ व गुरुद्रोही हैं वह—भजन नहीं करते सो उनकी बाततो दूररही, जो भजन करते हैं उनकाभी भजन नहीं करते॥१९॥हे सखीगण ! मैंतो—अपनेभजन करनेवालोंका भी भजन नहीं करता। क्योंकि ऐसा होनेसे वह निरंतरही मेराध्यान किया करते हैं । जैसे दरिद्री पुरुष धनपाकर, उसके खोजानेसे उस धनकी जैसे चिन्ता कियाकरता है और दूसरी सब चिन्ताको भूलजाता है ॥ २० ॥ हे अबलाओं ! इसी प्रकार तुमनेभी मेरे निमित्त धर्मा धर्मका विचार न कर लोक और जातिवालोंको छोड़दिया है; तुमने निरंतरही मेराध्यान किया इसही कारण मैं अंतर्धान होगयाथा; और अदृश्य रहकर, तुम्हारे प्रेमके बचन सुनताथा, अतएव हे प्यारियों ! प्यारे परदोषारोपण करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ २१ ॥ तुमबड़ा दृढ़घरका बंधन छोड़कर मेरे साथमिलीहो इस मिलाप से कुछनिंदा नहीं की जासकती । मैं देवताओं कीसी परमायुपाकर भी तुम्हारा प्रत्युपकार नहीं करसकता । अतएव मैं तुम्हारी सुशीलताही से अऋणी होसकता हूं प्रत्युकार द्वारा नहीं होसकता ॥ २२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अत्यन्त कोमल चित्तवाली गोपिकाओंने भगवानके ऐसे सांत्वना युक्त वाक्य सुन पूर्णकामहो विरहसे उत्पन्न हुये सन्तापको छोड़ परमानन्दितहो परस्पर एक दूसरे की भुजायें पकड़लीं । श्रीगोविंद उन सब स्त्री रत्नोंसे वेष्टितहो रासलीला करने लगे ॥ १—२ ॥ रासोत्सवके आरम्भ होनेपर गोपी मण्डलसे घिर भगवान् श्रीकृष्णजीने दो २ जनोंके बीचमें प्रवेशकर गोपियोंके गलेमें हाथडाललिये इससे प्रत्येक गोपीने जाना कि—श्रीकृष्णजी हमारेहो निकटहैं ॥ ३ ॥ रासके आरम्भ होतेही आकाश में देवता अपनी २ स्त्रियों समेत रास देखनेको आये उनके बिमानों से आकाश मण्डल परिपूर्ण होगया ॥ ४ ॥ उन्होंने आकाशसे दुंदुभी बजाने तथा फूल बरसानेका आरम्भ किया और स्त्रियों समेत गन्धर्व पति श्रीकृष्णजी के निर्मल यशको गानेलगे ॥ ५ ॥ रास मण्डलमें प्यारेके [illegible] नूपुर और किं-

णामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देकीसुतः ॥
मध्यमणीनां हैमानां महामरकतोयथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितै
र्भ्रुविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः। स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्र-
न्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडितइवता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥ उच्चैर्जगुर्नृत्यमा
ना रक्तकण्ठ्योरतिप्रियाः। कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचि
त्समंमुकुन्देनस्वरजातीरमिश्रिताः। उन्निन्येपूजितातेन प्रीयतासाधुसाध्विति। त
देवध्रुवमुन्निन्ये तस्यैमानंचबह्वदात् ॥ १० ॥ काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य
गदाभृतः ॥ जग्राहबाहुनास्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतंबाहुं
कृष्णस्योत्पलसौरभम्। चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमाचुचुम्बह ॥ १२ ॥ कस्याश्चि
न्नाट्यविक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम्। गण्डंगण्डे संदधत्या आदात्तांबूलचर्वितम्
॥ १३ ॥ नृत्यन्तीगायतीकाऽपि कूजन्नूपुरमेखला। पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रांता
ऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्योलब्ध्वाऽच्युतंकान्तं श्रियएकान्तवल्लभम् ॥
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तंविजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंककपो-
लघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः। गोप्यःसमंभगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्र-
जो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥ एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामवि

उन सब गोपियोंके बीचमें स्वर्ण
किंणीका बड़ाभारी शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी
वर्णकी मणियोंसे मण्डित मरकत मणिकी समान शोभा पानेलगे ॥ ७ ॥ पैरों का चलाना भुज
कंपाना हंसकर भौंहें चलाना कमर लचकाना कुचोंको चंचलकरना आदि और कपोलोंके ऊपर कु-
ण्डलोंके हिलनेसे उन गोपियों के कमल मुखसे पसीना निकलआया उनका जूड़ा और नारा ढीला
पड़गया श्रीकृष्णजीका गान करतीहुई मेघमण्डल में बिजली की समान शोभा पानेलगीं ॥ ८ ॥
वे रक्तकण्ठवाली गोपियें श्रीकृष्णजीके अंगस्पर्शसे आनन्दितहो उच्चस्वरसे गाने लगीं उस गानसे
ब्रह्माण्डपरिपूर्ण होगया ॥ ८—९ ॥ श्रीकृष्णजी जिस स्वरसे जिसप्रकार गातेथे गोपियें उनके
उस स्वरसे गीत न मिलाय कर नानाप्रकारसे स्वयं गानेलगीं। श्रीकृष्ण जी उससे आन-
न्दितहो उनकी प्रशंसा करनेलगे। गोपियें इसीस्वर को ही ध्रुवताल से बदलकर गानें लगीं,।
श्रीकृष्णजीने उनका यथोचित सत्कारकिया रासके श्रमसे श्रमितहो किसी गोपीके बलय और किसी
की मल्लिका ढीली पड़गयी, उन्हों ने बाहुद्वारा पार्श्व में खड़ेहुए माधव के कंधेपर हाथ रखलिये
॥ १०–११ ॥ एक गोपी—भगवान की कमल की समान सुगंधितचंदन से चार्चित भुजाको अपने
कंधेपर रख उसेसूंघ, रोमांचितहो चुंबन करने लगी ॥ १२ ॥ नृत्य करतेहुये उन गोपियोंके चंचल
कुंडलों की आभा से भगवान के कपोल शोभित होनेलगे। किसी गोपीने अपने कपोलपर भगवान
का कपोल रखलिया और उनने उसको अपना चबाया हुआ बीड़ा देदिया ॥ १३ ॥ और एक
गोपी गानकरते हुए नाचरहीथी उसके दोनो पैरोंकी नूपुर और मेखला बजनेलगीं, उनने अंत में
श्रमित होकर भगवान् के मंगल दायी करकमलोंको अपने दोनो स्तनोपर रखलिया ॥ १४ ॥ गो-
पिएं लक्ष्मी कांत भगवानको एकांत में पाकर अपने गलेमें उनकी भुजाएं डालगान कर २ बिहार
करनेलगीं ॥ १५ ॥ भौंरे रास—सभामें गानकर रहेथे, सबगोपी उस सभामें बलय, नूपुर, और
किंकिणी के बाजेके साथ जब भगबान के संग नाचने लगीं, तब कानोके कमल, अलकों से शोभाय
मान कपोल और पसीने के विंदुवों द्वारा उनका मुख मंडल अत्यंत शोभाको प्राप्तहुआ उनके च-
लायमान केशों से फूल गिरनेलगे ॥ १६ ॥ हे राजन्! बालक जैसे अपने प्रतिबिंबको लेकरक्रीड़ा

लासहासैः । रेमेरमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ १७ ॥ तदंगसंगप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान्दुकूलंकुचपट्टिकांवा । नांजःप्रतिव्योढुमलंव्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितंवीक्ष्य मुमुहुःखेचरस्त्रियः । कामार्दिताःशशांकश्च सगणोविस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वातावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः । रेमेस भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानिसः । प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनांगपाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन मानंदधत्यऋषभस्यजगुःकृतानि पुण्यानितत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजःस कुचकुंकुमरञ्जितायाः । गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोऽम्भस्यलंयुवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग । वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमेस्वयंस्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्चकृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे । चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्द्विरदःकरेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजितानिशाः स सत्यकामोनुरताबलागणः । सिषेवआत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच । सं

करता है तैसेही भगवान् रमापति इसी प्रकार से आलिंगन, करमर्दन, कटाक्ष विक्षेप, और हास्य विलास से व्रजनारियों के संग क्रीड़ा करने लग ॥ १७ ॥ उनके अंगसंग से गोपियोंको जोआनंद उत्पन्न हुआ उससे व्रजनारियों की सब इन्द्रियें व्याकुल होगई। हे कुरुश्रेष्ठ! वह–गिरेहुये,माला; आभूषण, रेशमी वस्त्र, और स्तनों के ऊपर के वस्त्र पहिले की समान धारण न करसकीं ॥१८॥ श्रीकृष्णजी के विहारको देखकर देवांगनाऐं कामातुरहो मोहित होगई। चन्द्रमा भी तारागणों समेत विस्मित होगया और विस्मित होकर अपनी गतिको भूलगया; अतएव रात्रिबड़ीभारी होगई इस ही कारण विहार भी बहुत देरतक हुआ॥ १९ ॥ भगवान यद्यपि आत्माराम हैं तौभी जितनी गोपियें थीं आपभी उतनेही हो उनके साथ क्रीडा करने लगे ॥ २० ॥ हे राजन्! बहुत देरतक क्रीड़ा करके जब वह श्रमित होगई, तब उन दयालु भगवान ने प्रेमवशहो अपने शुभहाथों द्वारा उनका मुखपोंछा। उनके नखके स्पर्श से गोपियों को अति आनंद उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ वह भगवान् के प्रकाशित स्वर्ण कुंडल और उनसे प्रकाशित हुये कपोलों की शोभा और सुंदर हास्य कटाक्षको देख उनका सन्मान करके उनका यशगाने लगीं। अंतमें भगवान्, हथिनियों से घिरे हुये, पुलतोड़ने से श्रमितहुये गजराजकी समान श्रमनाश करने के निमित्त उन सब गोपिकाओं समेत जलमें घुसे उस समय अंगके संगसे मर्दनकी हुई तथा स्तनकी केसर से रंगीहुई माला के पीछे गंधर्व पतिके समान भौंरेगान करते हुयेचले ॥ २२—२३ ॥ हे राजन्! जलमें सब स्त्रियां हंसते २ प्रेमयुक्त चारोंओर से जल उछाल २ कर श्रीकृष्णजी को भिगोने लगीं, उस काल देवताओं ने फूल बरसाय २ उनकी पूजाकी। वह स्वयं आत्माराम होकरभी गजराज की समान इस प्रकार विहार करनेलगे ॥ २४ ॥ अनंतर श्रीकृष्णजी ने, भौंरे और स्त्रियों से घिरकर, हथिनियों के साथ मत्त गजराज की समान, उपवन में भ्रमण करना आरंभकिया स्थल और जलसे उत्पन्न हुये फूलोंकी सुगंधि से सुगंधित होकर वायु उस उपवनमें चल रहीथी॥ २५ ॥ हे महाराज! सत्य संकल्प, प्रेमी स्त्रियों के मंडल में परिवृत्त श्रीकृष्णजी ने अपने शुक्रको रोककर, शरत् काल के चन्द्रमा की शोभायमान रात्रिमें शास्त्र कथित सब रसयुक्त क्रीड़ाओंको किया ॥ २६ ॥ राजा

स्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्यच । अवतीर्णोहिभगवानंशेन जगदीश्वरः ।२७। सकथंधर्मसेतूनां वक्ताकर्त्ताऽभिरक्षिता । प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ ॥ २८ ॥ आप्तकामोयदुपतिः कृतवान्वैजुगुप्सितम् । किमभिप्रायएतंनः संशयंछिन्धिसुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुकउवाच । धर्मव्यतिक्रमोदृष्ट ईश्वराणांचसाहसम् । तेजीयसांनदोषाय वन्हेःसर्वभुजोयथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपिह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजंविषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणांवचः सत्यं तथैवाचरितंक्वचित् । तेषांयत्स्ववचोयुक्तंबुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥ कुशलाचरितेनैषामिहस्वार्थोनविद्यते । विपर्ययेणवाऽनर्थोनिरहङ्कारिणांप्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्त्वानांतिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् । ईशितुश्चेशितव्यानांकुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्तायोगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः । स्वैरंचरन्तिमुनयोऽपिननह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुतएवबन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनांतत्पतीनांचसर्वेषामेवदेहिनाम् । योऽन्तश्चरतिसोऽध्यक्षः क्रीडनेनेहदेहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहायभक्तानांमानुषंदेहमास्थितः । भजतेतादृशीः क्रीडायाः श्रुत्वातत्परोभवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन्खलुकृष्णायमोहितास्तस्यमायया । मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्रउपावृत्तेवासुदेवानुमोदिताः । अनिच्छन्त्योययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितंव्रजवधू

परीक्षितने कहाकि-हे ब्रह्मन् ! धर्मकी रक्षा और अधर्म के नाश करने के निमित्तही भगवान् ने पृथ्वीपर अवतार लियाथा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्! उन्हों ने धर्म सेतुकेवक्ता, कर्त्ता और रक्षक होकर क्योंकर परस्त्रियोंसे संभोग रूप अधर्मका अनुष्ठान कियाथा ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णजी तो पूर्णकाम हैं; तौ फिरऐसे निंदनीय कार्य से उन्हें क्या अभिप्राय था ? मेरे इस संदेहको दूरकरो ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! ईश्वरोंको धर्मका उल्लंघन और साहस करते देखागया है। परन्तु तेजस्वियोंको उसका दोष नहींहोता । अग्नि जैसे सबपदार्थोंका भक्षणकरती रहती है तैसेही ईश्वर को कोई दोषनहीं लगता ॥ ३० ॥ जोईश्वर नहीं हैं वह कभी ऐसा आचरण नहीं करता रुद्रने समुद्रमें उत्पन्न हुये विषको पिया यदिकोई और पियेतो मरजाय ॥ ३१ ॥ ईश्वरों के बचन सत्य होते हैं और कहीं२ आचरण भी सत्य होते हैं । अतएव वह जोकहते हैं बुद्धिमान् पुरुष वही करते हैं ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! उन निरहंकारी ईश्वरों के न तो धर्माचरण से अभिप्राय है और न अधर्माचरण से अनर्थही है ॥ ३३ ॥ अतएव जोपक्षी, मनुष्य और देवताआदि समस्त जीवोंके ईश्वर हैं, जोसमस्त ईश्वरों के अधिपति हैं तो उनकी कुशल और अकुशल की संभावना कहां से हो ॥३४॥ जिनके चरणोंके सेवक भक्तगण और ज्ञानीगणभी योगके प्रभावसे समस्तकर्मके बंधनोंको काटकर स्वाधीन होकर विचरा करते हैं और कभी संसार में नहीं फंसते, तद इच्छानुसार देह धारण करने वाले उन भगवान्को बंधन कैसे होसकता है ॥ ३५ ॥ जोगोपियों, के स्वामी, और समस्तप्राणियों के हृदय में विराजमान और बुद्धि आदिके साक्षी हैं उन्हींभगवान्ने लीलाके कारण देह धारण कीथी ॥ ३६ ॥ प्राणियों के कल्याण के निमित्त वह मनुष्य मूर्त्ति गृहणकर इसप्रकार क्रीड़ा करते रहते हैं; प्राणी उनसब चरित्रोंको सुनकर उनपर भक्तिवान होसकता है ॥३७॥ हे राजन्! ब्रज वासियों ने श्रीकृष्णजी पर दोषारोपण न किया क्योंकि उन्हों ने माया से मोहित होकर अपने मनमें यही जानाकि—हमारी स्त्रियां हमारे पास सोती है ॥ ३८ ॥ अनंतर ब्राह्म मुहूर्त्त आनेपर कृष्णजीकी प्यारी सब गोपियें श्रीकृष्णजी की आज्ञापाय इच्छा विनाभी अपने२घरगई ॥३९॥ जो

भिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः। भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः। अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्। आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः। ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः। रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः। यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम्। सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः। ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः। तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः। भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम्। दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः। कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः। श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरन्दिशः ॥ १२ ॥

व्रजनारियों समेत श्रीकृष्णजी की इस लीलाको श्रद्धापूर्वक सुनेंगे व कहेंगे वह बहुतही शीघ्र भगवान् में परमभक्ति प्राप्तकर धीरचित्तहो कामरूप मानसिक पीड़ाओं से छूटजावेंगे ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधसरलाभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले कि–हे राजन् ! किसी समय देवयात्रा उपस्थित होनेपर, गोपगण प्रसन्न चित्त हो वृषभ युक्त शकटों में चढ़ अम्बिका के बनमें गये ॥ १ ॥ वहां सरस्वती में स्नानकर नाना भेटोंसे भक्ति युक्त महादेवजी तथा अम्बिका देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ "देव हमारे ऊपर प्रसन्न हो" इस इच्छासे सबही ने आदर पूर्वक ब्राह्मणों को गायें, सुवर्ण, बस्त्र और सुंदर मधुयुक्त मिष्टान्न दान किये ॥ ३ ॥ नंद और सुनंदादि महाभाग गोप गणों ने केवल जल पानकर उपवास किया और व्रत धारण कर उस रात्रि को सरस्वती ही के तीर रहे ॥ ४ ॥ नंदराय बन में सोरहे थे, कि उसी समय एक सर्प ने भूखे हो इच्छानुसार वहां आय नंदजी को ग्रस लिया ॥ ५ ॥ सर्पसे ग्रस्त होतेनहीते "कृष्ण ! कृष्ण ! यह अजगर मुझे निगले जाता है हे वत्स ! मुझ शरणागत को छुड़ावो यह कहकर नंदजी चिल्ला उठे ॥ ६ ॥ उनका चिल्लाना सुनकर गोपालगण सहसाउठ खड़े हुये और नंदजीको सांपसे ग्रसित होता देख व्याकुल चित्त हो मशालों द्वारा उसको जलाने लगे ॥ ७ ॥ अजगर ने जलते हुये अंगारों से जलकर भी उनको न छोड़ा। अनंतर भक्त पति भगवान् ने वहां पर आयकर उस के लात मारी ॥ ८ ॥ भगवानके श्रीचरण के स्पर्श होतेही उसके सब अशुभ दूरहोगये और वह अपनी सर्प देह छोड़ विद्याधरोंसे वन्दित परममनोहर रूप धारणकर उनके चरणोंमें लोटनेलगा ॥ ९ ॥ भगवान्ने उस स्वर्ण मालाधारी पुरुषसे पूछा कि– तुम कौनहो जो उत्तम वेश धारण करके शोभायमान होरहेहो ? तुम अद्भुत पुरुषहो किसप्रकार से परवशहो ऐसी निन्दित गतिको प्राप्त हुयेथे, ॥ १०—११ ॥ सर्पने कहा कि—हे प्रभो ! मैं एक गन्धर्वहूं लक्ष्मीकी कृपा और अपने सुन्दर रूपके कारण मैं सुदर्शन नामसे प्रसिद्धथा एक-

ऋषीन्विरूपानाङ्गिरसः प्राहसंरूपदर्पितः । तैरिमांप्रापितोयोनिंप्रलब्धैः स्वेनपाप्मना ॥ १३ ॥ शापोमेऽनुग्रहायैवकृतस्तैः करुणात्मभिः । यदहंलोकगुरुणापादस्पृष्टोहताशुभः ॥ १४ ॥ तंत्वाऽहंभवभीतानांप्रपन्नानांभयापहम् । आपृच्छेशापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥ प्रपन्नोऽस्मिमहायोगिन्महापुरुषसत्पते । अनुजानीहि मांदेवसर्वलोकेश्वरेश्वर॥१६॥ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहंसद्यस्तेऽच्युतदर्शनात् । यन्नामगृह्णन्नखिलाञ्छ्रोतृनात्मानमेवच ॥१७॥सद्यःपुनातिकिंभूयस्तस्यस्पृष्टःपदाहिते इत्यनुज्ञाप्यदाशार्हंपरिक्रम्याभिवन्द्यच । सुदर्शनोदिवंयातः कृच्छ्रान्नन्दश्चमोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्यकृष्णस्यतदात्मवैभवंव्रजौकसोविस्मितचेतसस्ततः । समाप्यतस्मिन्नियमंपुनर्व्रजंनृपाऽऽययुस्तत्कथयन्तआदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथगोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः । विजह्रतुर्वनेरात्र्यांमध्यगौव्रजयोषिताम् ॥ २० ॥ उपगीयमानोललितंस्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः । स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौस्रग्विणौविरजोम्बरौ ॥ २१ ॥ निशामुखंमानयन्तावुदितोडुपतारकम् । मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टंकुमुदवायुना॥२२॥ जगतुः सर्वभूतानांमनः श्रवणमङ्गलम् । तौकल्पयन्तौयुगपत्स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥२३॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्यमूर्च्छितानाविदन्नृप । स्रंसद्दुकूलमात्मानंस्रस्तकेशस्रजंततः ॥ २४ ॥ एवंविक्रीडतोः स्वैरंगायतोः संप्रमत्तवत् । शंखचूडइतिख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतोराजंस्तन्नाथंप्रमदाजनम् । क्रोशन्तं

दिन मैं अपने रूपसे गर्वितहो विमान में बैठ दिशाओं में घूमता २ अंगिरा बंशी ऋषियों की कुरूपता को देख हंसा इससे उन्होंने शाप दिया कि जिससे मैं सर्पयोनि को प्राप्तहुआ॥१२—१३॥ उन दयालु ऋषियोंने मेरे ऊपर कृपा करकेही मुझे यह शाप दियाथा इसहीकारण आज आपके त्रिलोक बन्दित चरणोंका स्पर्श हुआ, ॥ १४ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! आपके श्री चरणों के स्पर्शसे मेरे सब अशुभ दूरहोगये । हेदुःखनाशन ! भवभयभंजन ! अब आज्ञा करिये मैं अपने नगर को जाऊँ ॥१५ ॥ हेमहायोगिन् ! हेमहापुरुष! मैं आपकी शरणहूं । हेदव ! हेसर्व लोकेश्वरोंके ईश्वर ! मुझे आज्ञादो॥ १६॥ हेअच्युत ! केवल आपको देखतेही मैं ब्रह्मशापसे छूटगया, । जो आपका नाम लेताहै वह सब श्रोताओंको व अपनेको पवित्र करताहै फिर जिसके अंगमें आपके पैरोंका स्पर्श हुआ उसके मुक्त होनेमें सन्देहही क्या, ? ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सुदर्शन इसप्रकार आज्ञाले श्रीकृष्णजीको प्रणाम व परिक्रमा कर स्वर्गमें गया, । श्रीनन्दरायकी बिपद दूरहोगई ॥ १८ ॥ ब्रजबासीगण श्रीकृष्णजीके अद्भुत पराक्रम को देख बिस्मित होगये और उस स्थानमें ब्रत समाप्त कर आदर पूर्वक इस चरित्र को कहते २ फिर ब्रजमे आये, ॥ १९ ॥ कुछ दिनों के उपरांत बीर पराक्रमी राम और कृष्ण रात्रिको ब्रजांगनाओं के साथ क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त हुये, ॥ २० ॥ वह सुंदर अलंकार, अनुलेपन, माला और सुन्दर बस्त्रोंसे अलंकृतथे । स्त्रियें स्नेहके बशीभूतहो सुन्दर स्वरोंसे उनकी स्तुति गानेलगीं ॥ २१ ॥ उससमय रात्रिका प्रथम प्रहरथा । चन्द्रमा और ताराओं से आकाश शोभायमान होरहाथा और फूलोंसे सुगन्धितहुई बायु मन्द २ चलतीथी॥२२॥ राम कृष्णने उस रात्रिके आरम्भका सन्मान किया वह दोनों जन एक साथही सब स्वरोंकी मूर्च्छना कर जिसप्रकार प्राणियोंके मन और कानोको आनन्द उत्पन्न होवे उसीप्रकार से गाने लगे ॥ २३ ॥ उन मनोहर गीतोंको सुनकर गोपनारियों के शरीरसे अचैतन्यता के कारण रेशमी बस्त्र और केशोसे मालाखिसक पड़ीं ॥ २४ ॥ राम, कृष्ण प्रमत्तकी समानहो इसप्रकार क्रीड़ा कररहे थे कि उसीसमय शंखचूड़ नामक एक असुर कुबेरका सेवक वहांआया ॥ २५ ॥ वह उन दोनों

कालयामास्रदिश्युदच्यामशाङ्कितः ॥२६॥ क्रोशन्तंकृष्णरामेतिविलोक्यस्वपरिग्रहम् । यथागादस्युनाग्रस्ताभ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७ ॥ माभैष्टेत्यभयाऽऽरावौशालहस्तौतरस्विनौ । आसेदतुस्तंतरसात्वरितंगुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ सवीक्ष्यतावनुप्रातौकालमृत्यूइवोद्विजन् । विसृज्यस्त्रीजनंमूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद्गोविन्दोयत्रयत्रसधावति । जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नंतस्थौरक्षन्स्त्रियोबलः ॥ ३२ ॥ अविदूरइवाभ्येत्यशिरस्तस्यदुरात्मनः । जहारमुष्टिनैवाङ्गसहचूडामणिंविभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडंनिहत्यैवंमणिमादायभास्वरम् । अग्रजायाददत्प्रीत्यापश्यन्तीनांचयोषिताम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

श्रीशुकउवाच । गोप्यःकृष्णेवनंयाते तमनुद्रुतचेतसः । कृष्णलीलाःप्रगायन्त्योनिन्युर्दुःखेनवासरान् ॥ १ ॥ गोप्यऊचुः । वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् । कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्यईरयतियत्रमुकुन्दः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताःसह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः । काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥ हन्तचित्रमबलाःशृणुतेदं हारहासउरसिस्थिरविद्युत् । नन्दसूनुरयमार्तजनानांनर्मदोयर्हिकूजितवेणुः ॥४॥ वृन्दशोव्रजवृषामृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् । दन्तदष्टकवलाधृतकर्णा निद्रितालिखिताचित्रमिवासन् ॥५॥ बर्हिणस्तवकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः । कर्हिचित्सबल आलि

भाइयोंके सामनेही उनश्रीकृष्णजीकी प्यारी अबलाओंको बलपूर्वक उत्तर दिशाकी ओर लेचला । ॥ २६ ॥ स्त्रियें " हे कृष्ण ! हे राम ! ,, कहकर रोनेलगीं । तब राम कृष्ण सिंहसे घिरी गायोंकी समान व्याकुल उन गोपियोंके पीछे २ दौड़े ॥ २७ ॥ दुष्ट यक्ष शीघ्रतापूर्वक भागा जाताथा इन दोनों भाइयोंने भय न करना कहकर हाथमें शालका वृक्षले उसके पीछे दौड़ना आरम्भ किया ॥ ॥ २८ ॥ वह मूर्ख शंख चूड़ काल और मृत्युकी समान उन दोनों जनोंको आता देख अत्यन्त व्याकुल हुआ और स्त्रियोंको छोड़ बचने की इच्छासे भाग निकला, ॥ २९ ॥ परन्तु वह जिस २ स्थान में भागकर गया भगवान् उसके शिरका रत्न लेनेके निमित्त उसके पीछे २ दौड़ गये, । हे राजन्! बलदेवजी स्त्रियोंके रक्षकहोकररहे॥३०॥ भगवान्ने बहुत दूरजाकर घूंसेके द्वाराही उस दुष्टका मस्तक छेदनकिया ॥३१॥ और स्त्रियोंके सामनेही वह निर्मल शिरोमणि लाकर प्रीतिपूर्वक बलरामजीकोदी॥३२॥ इतिश्री मद्भा०महा० दशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्णजी के बन में जाने पर गोपियां कि—जिनका चित्त भगवान में लग रहाथा, भगवान के चरित्रोंका गानकरतीहुईबड़े दुःख से समय बितातीथीं ॥ १ ॥ गोपियें कहतीं कि—हे सखिवृन्द ! श्रीकृष्णजी जब बाएं भुजा की जड़ में बाएं कपोल को रख, भौंह नचाते२,कोमल अंगुली द्वारा स्वरों के छिद्रों को रोक अधरपर रखकर बंशीबजाते हैं; तब उस बंशी को सुनकर सिद्धगणों के निकट बैठीहुई सिद्धांगनाओं को प्रथम तो विस्मय उत्पन्नहोता है तदुपरांत कामदेव के बाण से लज्जित चित्त होकर मोहित होजाती हैं । उस समय वह नारे के छूटजाने से वस्त्र काभी बांधना भूलजाती हैं ॥ २ । ३ ॥ हे अबलागण ! एकआश्चर्य की घटना तो सुनो;जिन का हास्यहारकी समान प्रकाशित होता है, जिन के वक्षःस्थल में बिजली की सदृश चंचललक्ष्मी भी स्थिर रहती है और जो पीड़ित मनुष्यों को आनन्द देनेवाले हैं वह श्रीनन्दनन्दनजब बंशी बजाते है-तब दूर रहने परभी, चित्त के खिंचजाने से,व्रज के वृष, मृग, और गायें दांतों में तृणदाब और कान उठाय निद्रित की समान चित्र लिखे से खड़े रहजाते हैं ॥ ४ । ५ ॥ हे सखिगण ! श्रीकृष्णजी बलराम और गोपालगण सहित मयरपुच्छ, धातु, और

स्वगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम्। स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजास्तिमितापः ॥ ७ ॥ अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः। वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥ वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यंजयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः। प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः। अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥ १० ॥ सरसि सारसहंसविहंगाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य। हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः। हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ १२ ॥ महदतिक्रमणशंकितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः। सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥ विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः। तव सुतः सति यदाऽधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४ ॥ सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः। कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजांकुशविचित्रललामैः। व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥ व्रजति तेन वयं स

पलाशद्वारा मल्ल का वेश धारणकर जब गायों को बुलाते हैं तब पवन से उड़ीहुई उनकी चरण रज की इच्छाकर सबनदियें अपनी गति बंदकरदेती हैं; परन्तु निश्चयही हमारीसमान उनकाभी पुण्य अत्यन्त अल्प है; क्योंकि प्रेमवश से उन के तरंगरूप हाथ केवल एकबारही कंपित होते हैं किंतु थोड़ीही देर में निश्चल होजाती हैं ॥ ६ । ७ ॥ आदिपुरुषके समान अचललक्ष्मीवाले देवतादिभी जिन के पराक्रम का वर्णन किया करते हैं; वह भगवान् जबबन में प्रवेशकर पहाड़ के तट में विचरनेवाली अपनी गायों को वेणु के गानसे बुलाते हैं, तब भार से जिनकी शाखा लचरही हैं ऐसी लतायें मानो अपने मन में प्रगटहुए विष्णु का सूचन करतीहुईहों ऐसे स्नेह से पुष्टहो, फूल फल से युक्त मधुकी धारा बरसाने लगती हैं और उनके पति वृक्षोंकोभी वैसाही आनन्द होता है ॥ ८ । ९ ॥ वनमाला के मध्य में स्थित दिव्य सुगंधवाली तुलसी के मधुसे मत्तहो भ्रमर जो अनुकूल उच्चगीत करते हैं, उनगीतों का आदरकरसुन्दर श्रेष्ठ भगवान जब वेणु बजाते हैं, तब तालाबमें बैठेहुए सबसारस, हंस और दूसरे पक्षी उन मनोहर गीतों से प्रसन्नचित्तहो वहां आय एकाग्रचित्त से आंखें बन्दकर चुपचापहो भगवान् का ध्यान करने लगते हैं ॥ १० । ११ ॥ हे गोपिकागण ! फूलों से बनेहुए दोनों कर्णभूषणों द्वारा उनकी अपूर्व शोभा होती रहती है। वह जबबलरामजी के साथ पर्वत के सानुदेश को हर्षितकर बंशी का शब्द पूर्ण करते हैं, तब मेघ, महात्मा के अपराध के डर से भयभीतहो बंशी के शब्दके साथही साथ मंद २ गर्जना करते रहते हैं और बिश्व कीपीड़ा हरने से अपने धर्म की समान धर्मवाले अपने सुहृद उन गोबिंद के ऊपर फूल बरसाय २ छायाद्वारा उनकी छत्ररचना करते हैं ॥ १२ । १३ ॥ हे यशोदे ! तुम्हारा पुत्र नानाप्रकारकी गोपक्रीड़ा में अति निपुण है। इस ने बंशीबजाने के विषय में स्वयंही अपनी बुद्धि से स्वरजाति उत्पन्नकी है, अधर में बंशी लगाकर जबअलापता है तब इंद्र, महादेव और ब्रह्मा आदि देवतागणभी, ऊंचे नीचे और मध्य के भेद क्रम से उन समस्तगीतों का अलापसुनकर पंडितहोकर भी मोह को प्राप्त होते हैं। उस समय गीतध्वनि से मोह होने के कारण उन के कन्धे और चित्त नीचे होजाते हैं। वह उस अलाप के स्वर भेद को नहीं जानसकते ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ हे गोपियो ! श्रीकृष्णजबपद्म और अंकुशद्वारा विचित्र रूप से चिह्नित अपने चरणरूप कमल की व्रजभूमि के गोखुर के प्रहार से उत्पन्नहुई व्यथा शांतकर गजराज की समान भ्रमण

विलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः। कुजगतिंगमितानविदामः कश्मलेनकबरंवसनंवा ॥ १७ ॥ मणिधरःक्वचिदागणयन्गा मालया दयितगन्धतुलस्याः । प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥ क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसतकृष्णगृहिण्यः । गुणगणार्णमनुगत्यहरिण्यो गोपिकाइवविमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥ कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतोयमुनायाम् ॥ नन्दसूनुरनघे तववत्सो नर्मदःप्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥ मन्दवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन । वन्दिनस्तमुपदेवगणाये वाद्यगीतबलिभिःपरिवव्रुः ॥ २१ ॥ वत्सलोव्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणःपथिवृद्धैः । कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥ उत्सवंश्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् । दित्सयैतिसुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥ मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली । बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४ ॥ यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते । मुदितवक्त्र उपयातिदुरन्तं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥ २५ ॥ श्रीशुकउवाच । एवंव्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः । रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

करते हैं तब उन का बिलासयुक्त टेढ़ कटाक्ष हममें काम बेग उत्पन्नकरता है;—उस समयहमारी वृक्षकीसी दशा होजाती है और मोहके कारण—हमको वस्त्र और केशों का भान नहींरहता १६॥ ॥ १७ ॥ वह गायों के गिनने के समय सुन्दर मणिमाला और प्रियगन्धा तुलसी की मालाधारण किये रहते हैं । जब प्रेमी सेवकों के कन्धे पर हाथ रखकर श्रीकृष्णजी गौगणना करतेहुए गान करते तथा बेणु बजाते हैं तब उस बेणु के शब्दको सुनकर मोहित हुई हरिणियें उन के निकट आजाती हैं और घरकी आश छोड़ीहुई गोपियों की समान उन के समीपही खड़ी रहती हैं ॥१८ ॥ १९ ॥ हे निष्पापे ! तुम्हारे पुत्र कृष्ण खेलसे कुन्दकी मालाद्वारा वेश रचकर जब गायोंसे घिर अपने साथियों को आनन्द देतेहुए यमुना के किनारे भ्रमण करते हैं तबसुन्दर सुमंद बायु चंदन के स्पर्श से सुगंधितहो उनका सन्मान कर उन्हीं के अनुकूल चलती है और देवतागण स्तुतिकरते हुए वाद्य, गीत और पूजाकी सामग्री द्वारा चारोंओर से उनकी सेवा करते हैं ॥ २० । २१ ॥ हे सखि ! अब दिन अस्तहोने पर आया; देवकी के गर्भ से उत्पन्नहुए गोकुल के चन्द्रमा समस्त गोधनको एकत्रितकर, हम लोगों के मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त बेणु बजाते २ वह आरहे हैं वह परमकृपालु है; क्योंकि उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत को धारणकर ब्रज और गायों की रक्षाकी । उन के लौटने पर मार्ग में ब्रह्मादि बृद्धगण उनके चरणों की बन्दना करते हैं ! इसी से आने में देरी होजाती है । वह सुनो, अनुचर उनके यशका गान कररहे हैं । देखो ! देखो ! उनकी कांति मलीन होरही है तौभी नेत्र अधिक आनन्द देनेवाले हैं । उनकी माला गौओं के खुरोंकी धूलसे धूसरीहोरही है । वह देखो संध्याकालमें चन्द्रमाकी समान प्रसन्नमुख यदुपति ब्रजमें बँधीहुई गायोंका ताप दूर करतेहुए गजेन्द्रकी समान समीप आरहे हैं । देखो ! उनके दोनोंनेत्र मदसे कुछेक घूर्णित होरहे हैं । वह अपने बंधुओंको आनंद उत्पन्न करारहे हैं । उनके गलेमें बनमाला शोभायमान है । कपोल, कुंडलों की कांतिसे दीप्तिवान् हैं इसही कारण मुख कुछेक पकेहुए बेरकी समान पाण्डुवर्ण का होरहा है ॥ २२—२५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! व्रजनारियोंका चित्त और मन श्रीकृष्णजी में अर्पितथा इससे वह परम आनंदित रहतीथीं । इसही कारण विरह में भी श्री कृष्णजी के चरित्रोंको गाय २ कर सुखपाती थीं ॥ २६ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथतर्ह्यागतोगोष्ठमरिष्टोवृषभासुरः । महींमहाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥ रम्भमाणः खरतरंपदाचविलिखन्महीम् । उद्यम्यपुच्छं वप्राणिविषाणाग्रेणचोद्धरन् ॥ २ ॥ किञ्चित्किञ्चिच्छकृन्मुञ्चन्मूत्रयन्स्तब्धलोचनः । यस्यनिर्ह्रादितेनाङ्गनिष्ठुरेणगवांनृणाम् ॥ ३ ॥ पतन्त्यकालतोगर्भाः स्रवन्तिस्म भयेनवै । निर्विशन्तिघनायस्य ककुद्यचलशंकया ॥ ४ ॥ तंतीक्ष्णशृंगमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्चतत्रसुः । पशवोदुद्रुवुर्भीता राजन्सन्त्यज्य गोकुलम् ॥५॥ कृष्णकृष्णेति तेसर्वे गोविन्दं शरणंययुः । भगवानपितद्वीक्ष्य गोकुलंभयविद्रुतम् ॥ ६ ॥ माभैष्टेतिगिराऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् । गोपालैःपशुभिर्मन्द त्रासितैःकिमसत्तम ॥७॥ बलदर्पहाऽहंदुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् । इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितोहरिः । सोऽप्येवंकोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् । उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् । कटाक्षिप्याऽद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वाशृंगयोस्तंवा अष्टादशपदानिसः । प्रत्यपोवाह भगवान्गजं प्रतिगजोयथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धोभगवता पुनरुत्थायसत्वरः । आपतत्स्विन्नसर्वांगो निःश्वसन्क्रोधमूर्छितः ॥ १२ ॥ ॥ तमापतन्तंसनिगृह्यशृंगयोःपदासमाक्रम्य निपात्यभूतले । निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरंकृत्वा विषाणेनजघानसोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः । जगा

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! कुछदिनों के उपरांत अरिष्टासुर बैलका आकार धरणकर खुरोंसे पृथ्वी कोक्षत विक्षत और कंपायमान करता हुआ गोठमें आया उसका ककुद और शरीर अत्यंत विशालथा ॥ १ ॥ वह घोरशब्द करता, पृथ्वी खोदता, पूंछउठाये सींगों से दीवारोंको गिराता ॥ २ ॥ और बीच २ में कुछेक मलमूत्र त्यागता उसके दोनो नेत्रभयङ्कर होरहे थे । उसका इतना भयानक शब्द था जिससे अकाल मेंही गायों और स्त्रियों के गर्भपात होतेथे । मेघ उसके विशाल ककुदको पहाड़ समझकर उसपर बैठते थे उसके सींग अत्यंत तीक्ष्ण थे । उस बैलको देखकर गोप और गोपी अत्यंतही भयभीत हुये और पशु गोकुलको छोड़कर भागनेलगे ॥ ३—५ ॥ गोकुलवासीगण "हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! रक्षाकरो यह कहकर सबही गोविंद के शरणागत हुए । गोकुलको भयसे विह्वल हुआ देखकर भगवान् "भय न करना" कहकर सबको धैर्य बंधाया और वृषभासुरको ललकार कर कहनेलगे कि—"रेदुष्ट ! तेरीसमान दुष्टोंको दंडदेने वाला मेरे वर्तमान रहते हुए तू पशुओंको भय दिखाता है हे राजन् ! श्रीकृष्णजी ने इस प्रकार से कह भुजा फैलाय तालठोंक अरिष्टको क्रोधित किया तथा आप स्वयंसखा के कंधेपर हाथडाले खडेरहे । अरिष्टभी क्रोधितहो खुरोंसे पृथ्वीको खोदनेलगा और पूँछउठाय मेघ मंडलको कंपाता हुआ श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा ॥ ६—९ ॥ वह सींगोंको फैलाय और लाल लाल आंखें निकाल भगवान् की ओर देखता २ इन्द्रके फेंकेहुए वज्रकी समान शीघ्रता पूर्वकचला ॥१०॥ गजके प्रतिद्वंदी गजके समान भगवान् ने उसके दोनो सींगपकड़ पीछेकी ओर १८ पगतक ढकेलकर गिरादिया ॥ ११ ॥ वह गिरकर शीघ्रही फिरखडा होगया। उसका समस्त शरीर पसीने से भीगगया और वह क्रोध से ज्ञान रहितहो बड़े २ श्वाँस छोडता हुआ फिर श्रीकृष्णजी की ओर दौडा ॥ १२ ॥ भगवान् ने सन्मुख आतेहुये वृषभके दोनो सींगपकड लातोंसे मार पृथ्वीपर गिरादिया और गीलेवस्त्र की समान उसे निष्पीडन करनेलगे । फिरसींग उखाडकर उसी से मारनेलगे ॥१३॥ अरिष्ट गिरकर रक्त उगलने और बीच २ में मलमूत्र त्यागने लगा; वह अपने हाथ पांव इधर उधर फैंकन लगा और उसकी

मक्कुष्ठंनिष्कृतेरथक्षयंपुष्पैःकिरन्तोहरिमीडिरेसुराः ॥ १४ ॥ एवंककुद्मिनंहत्वास्तूयमानः स्वजातिभिः । विवेशगोष्ठंसबलोगोपीनांनयनोत्सवः ॥ १५ ॥ अरिष्टेनिहतेदैत्येकृष्णेनाद्भुतकर्मणा । कंसायाथाहभगवान्नारदोदेवदर्शनः ॥ १६ ॥ यशोदायाः सुतांकन्यांदेवक्याः कृष्णमेवच । रामंचरोहिणीपुत्रंवसुदेवेनबिभ्यता ॥१७॥ न्यस्तौस्वमित्रेनन्देवैयाभ्यांतेपुरुषाहताः । निशम्यतद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ निशातमसिमादत्तवसुदेवजिघांसया । निवारितोनारदेनतत्सुतौमृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वालोहमयैः पाशैर्बबन्धसहभार्यया । प्रतियातेतुदेवर्षौकंसआभाष्यकेशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामासहन्येतांभवतारामकेशवौ । ततोमुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अमात्यान्हस्तिपांश्चैवसमाहूयाहभोजराट् । भोभोनिशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥ नन्दव्रजेकिलासातेसुतावानकदुन्दुभेः । रामकृष्णौततोमह्यंमृत्युः किलनिदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिहसंप्राप्तौहन्येतांमल्ललीलया । मञ्चाः क्रियन्तांविविधामल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥ पौराजानपदाः सर्वेपश्यन्तुस्वैरसंयुगम् ॥२४॥ महामात्रत्वयाभद्ररङ्गद्वार्युपनीयताम् । द्विपःकुवलयापीडोजहितेनममाहितौ ॥ २५ ॥ आरभ्यतांधनुर्यागश्चतुर्दश्यांयथाविधि । विशसन्तुपशून्मेध्यान्भूतराजायमीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञआहूययदुपुङ्गवम् । गृहीत्वापाणिनापाणिंततोऽक्रूरमुवाचह ॥ २७ ॥ भोभोदानपतेमह्यंक्रियतांमैत्रमा

आंखें घूमगईं । इस प्रकार से वह कष्टभोगता हुआ अंतमें यमपुरीको सिधारा । यह देखकर देवतागण फूल बरसाय २ भगवान की स्तुति करनेलगे ॥ १४ ॥ गोपियों के नेत्रोंको आनंद देनेवाले नंदनंदन श्रीकृष्णजी इस प्रकारसे वृषकोमार बलदेवजी के साथ गोष्ठमें आए, गोपगण उनकी स्तुति करनेलगे ॥ १५ ॥ हे राजन ! जब कृष्णजी ने अरिष्टासुरको मारडाला तब एकदिन नारदजी कंस के समीप जायकर कहनेलगे कि ॥१६॥ "हे असुरराज ! देवकी के आठवें गर्भमें जोकन्या हुई वह यशोदाकी कन्याथी; कृष्ण और राम रोहिणी के पुत्र हैं देवकी और बसुदेव भयपाकर अपने मित्र नंदके निकट उन दोनोंको रखआये हैं । उन्हीं दोनो भ्राताओं के हाथसे तुम्हारे सेवक मारेगये हैं। यहबात सुनकर भोजपति कंसकी सब इन्द्रियां व्याकुल होउठीं ॥ १७—१८ ॥ उसने बसुदेव के मारने के निमित्त तीव्रखड्ग धारण किया, किंतु नारदजी के निवारण करनेसे बधतो न कियाबरन उनके तथा देवकी के पैरोंमें लोहेकी बेड़ी डालदी । देवर्षि के चलेजानेपर कंसने केशीको आज्ञादी कितुम राम और कृष्णका नाशकरो इसके उपरांत भोजराज कंसनेमुष्टिक, चाणूर, शल और तोशलादि, मंत्रियों और महावतों को बुलायकर कहाकि—अहो वीर चाणूर ! अहो बीर मुष्टिक ! मैं जोकहताहूं उसको सुनो ॥ १९—२२ ॥ राम और कृष्ण नामक बसुदेव के दोपुत्र व्रजमेंबास करते हैं । देवर्षि नारद कहगए हैं ॥ २३ ॥ कि उनके हाथसे मेरी मृत्युहोगी । यह सुनतेही वह दोनो दानव उसी समय व्रजमें जानेको उद्यत हुए परन्तु असुर राजने निवारण करके कहाकि—तुम उस स्थानमें न जावो; उन दोनो भाइयोंको इसी स्थानपर बुलाकर मल्लक्रीड़ा करके मारडालो नाना प्रकारके मंच और अखाडे बनाओ पुरबासी और नगरबासी सबही इस युद्धकोदेखें ॥२४॥ हे भद्रमहावत ! तू रंगद्वारमें कुबलयापीड़ हाथीको खड़ाकरदेना, उससे हमारे शत्रुओं को मारना ॥ २५ ॥ चतुर्दशीसे पवित्र धनुषयज्ञका आरंभहो और वरदेनेवाले महादेवजी की पूजाके निमित्त पशुहत्याकी जाय ॥ २६ ॥ कार्यके सिद्धांतको जानने वाला कंस यह आज्ञाकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरको बुलाय और उनका हाथपकड़ आग्रह पूर्वक कहनेलगा कि ॥ २७ ॥ हे अक्रूर ! तुम हमारे सुहृद

हृतः। नान्यस्त्वत्तोहिततमोविद्यतेभोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम्। यथेन्द्रोविष्णुमाश्रित्यस्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥ गच्छनन्दव्रजंतत्रसुतावानकदुन्दुभेः। आसातेताविहानेनरथेनानयमाचिरम् ॥३०॥ निसृष्टः किलमेमृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः। तावानयसमंगोपैर्नन्दाद्यैःसाभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्यइहानीतौकालकल्पेनहस्तिना। यदिमुक्तौततोमल्लैर्घातयेवैद्युतोपमैः ॥३२॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान्वसुदेवपुरोगमान्। तद्बन्धून्निहनिष्यामिवृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनंचपितरंस्थविरंराज्यकामुकम्। तद्भ्रातरंदेवकंचयेचान्येविद्विषोमम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषामहीमित्र भवित्रीनष्टकण्टका। जरासन्धोममगुरुर्द्विविदोदयितः सखा ॥ ३५ ॥ शम्बरोनरकोबाणोमय्येवकृतसौहृदाः। तैरहंसुरपक्षीयान्हत्वाभोक्ष्येमहींनृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वाऽऽनयक्षिप्रंरामकृष्णाविहार्भकौ। धनुर्मखनिरीक्षार्थंद्रष्टुंयदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन्मनीषितंसम्यक्तवस्वावद्यमार्जनम्। सिद्ध्यसिद्ध्योः समंकुर्याद्दैवंहिफलसाधनम् ॥ ३८ ॥ मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनोदैवहतानपि। युज्यतेहर्षशोकाभ्यांतथाप्याज्ञांकरोमिते ॥ ३९ ॥ श्रीशुकउवाच एवमादिश्य चाक्रूरंमन्त्रिणश्चाविसृज्यसः। प्रविवेशगृहंकंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा दशमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

हो; सुहृदका एक कामकरो। यदु और भोजबंशमें तुम्हारी अपेक्षा आदरणीय और हितकारी मित्र मेराकोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे सौम्य ! जैसे सर्वशक्तिमान् इन्द्रने विष्णुके आश्रय से कार्य पूराकिया था वैसेही मैं कार्य साधन के निमित्त तुम्हारा आश्रय करता हूं ॥ २९ ॥ तुम नंदके ब्रजमें जाओ वहांपर बसुदेव के दोपुत्र हैं। इस रथमें बैठालकर उन दोनो पुत्रोंको लेआवो, देरनकरो ॥ ३० ॥ विष्णुके आश्रित देवताओं ने उनके हाथसे मेरीमृत्युका होना निश्चय किया है। भेटों (कर) समेत नंदादि गोपोंको और उनकोभी इस स्थानपर लेआवो ॥ ३१ ॥ इस स्थानपर आतेही काल की समान गजराज द्वारा उसको यमपुरी में भेजदूंगा। यदि उससे बचजायंगेतो ब्रजकी समान शरीर वाले मल्लों से मरवाडालूंगा ॥ ३२ ॥ उनके नाश होनेपर, उनके दुःखसे दुःखी भाई वसुदेवआदि वृष्णिवंशी, भोज और दाशार्ह बंशियों कोभी सहजहीमारसकूंगा ॥ ३३ ॥ राज्यहीन मेरावृद्धपिता उग्रसेन और उसका भाई देवक तथा और भी दूसरे जोमेरे विद्रोही हैं उनको भी नष्ट करदूंगा ॥३४॥ हे सुहृद ! ऐसा होने से यह पृथ्वी कंटक रहित होजावेगी। जरासंध मेरागुरू है; द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबर नरक और बाणकाभी मेरे साथ बन्धुत्व है। मैं इन्हीं केद्वारा देवपक्षी राजाओं का नाश करके सुखसे पृथ्वी को भोगूंगा ॥ ३६ ॥ यह जानकर अब इस के पूर्ण करने के निमित्त राम, कृष्णको शीघ्रही यहां लआवो। 'धनुषयज्ञ और यदुपुरीकी शोभा देखो' यह कहकर उन्हें लाना ॥ ३७ ॥ अक्रूर ने कहा कि हेराजन् ! तुमने जो उपाय सोचा है वह बहुतही उत्तम है। इस उपायसे तुम्हारी मृत्यु निवारण होसकती है। परन्तु इस काम के सिद्धहोने की जैसी सम्भावना है वैसीही सम्भावना असिद्धहोने की भी है। क्योंकि कार्य दैवही सिद्ध करता रहता है ॥ ३८ ॥ ऊंची आशाओं का दैवसही विनाशहोता है; तौभी मनुष्य वैसी इच्छाकरके दुःख सुख भोगा करते हैं। चाहे जोहो—आपकी आज्ञा का पालन करूंगा ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! कंसअक्रूर को ऐसी आज्ञा दे मंत्रियों को विदाकर अपने घरमेंआया और अक्रूरभी अपने घर में आये ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ केशीतुकंसप्रहितःखुरैर्महीं महाहयोनिर्जरयन्मनोजवः। सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभोहेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ (विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलोनीलमहाघनोपमः। दुराशयःकंसहितंचिकीर्षुर्व्रजं सनन्दस्य जगामकम्पयन् ॥१॥) तंत्रासयन्तंभगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णिताम्बुदम्। आत्मानमाजौमृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत्सव्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥ सतंनिशाम्याभिमुखोमुखेन खंपिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः। जघानपद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवोदुरत्ययः ॥३॥ तद्वञ्चयित्वातमधोक्षजोरुषा प्रगृह्यदोर्भ्यां परिविध्यपादयोः। सावज्ञमुत्सृज्यधनुःशतान्तरे यथोरगंतार्क्ष्यसुतोव्यवस्थितः ॥४॥ सलब्धसंज्ञःपुनरुत्थितोरुषा व्यादायकेशीतरसाऽपतद्धरिम्। सोऽप्यस्यवक्त्रेभुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामासयथोरगंबिले ॥ ५ ॥ दन्तानिपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशोयथा। बाहुश्चतद्देहगतोमहात्मनोयथाऽऽमयःसंववृधेउपेक्षितः ॥ ६ ॥ समेधमानेनसकृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्चविक्षिपन्। प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपातलण्डंव्यसृजत्क्षितौव्यसुः ॥७॥ तद्देहतःकर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्यभुजंमहाभुजः। अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैःप्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥८॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरोनृप। कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥९॥ कृष्णकृष्णाप्रमेयात्मन्योगेशजगदीश्वर। वासुदेवाखिलावास सात्वतांप्रवर

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! इसओर केशी कंसका भेजाहुआ मनकी समान वेगशाली विशाल अश्वकी मूर्त्ति धारणकर सब को भय उत्पन्न कराता और खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ गोकुलमें आया मेघ उसकी सटाके वेगसे और विमान इधर उधर तितर बितरहो आकाश में व्याप्त होगये और भयानक हिनहिनाहट से विश्व कांप उठा ॥ १ ॥ उसको इसप्रकारसे भीम रूप धारणकिये युद्धके निमित्त आता देखकर श्रीकृष्ण भगवान् उसके आगे निकले और 'निकट आ, ऐसा कहकर उसको बुलाया। केशीभी उससमय सिंहकीसी गर्जना करउठा ॥ २ ॥ अनन्तर प्रचण्ड वेगवाला वह दुष्ट केशी मुख फैलाय मानो आकाशको पान करताहो ऐसे उनकी ओर दौड़ आया और आतेही अत्यन्त क्रोधसे अपने पिछले दोनोंपांव उन भगवान् के मारे ॥ ३ ॥ परन्तु भगवान् ने सहजहीसे उस प्रहारको बचालिया। तब उस असुरने फिर भगवान्के लात मारनेकी इच्छाकी उसकाल श्रीकृष्णजीने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और गरुड़ जैसे सर्प फेंकताहै वैसेही सहजही उसको सौधनुष पर फेंक आप वहींपर खड़ेरहे ॥ ४ ॥ केशी चैतन्य होकर फिर उठा और क्रोधसे मुख फैलाय बड़ीशीघ्रतासे श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा। भगवानने भी हंसतेहुये बांबीमें सर्पकी समान उसके मुंहमें अपनी भुजा डालदी ॥ ५ ॥ भगवान् की भुजाका स्पर्श होतही उसकेदांत ऐसेगिरगये कि—जैसे तपेहुए, लाहके स्पर्शसे गिरजाते हैं श्रीकृष्णजीकी भुजाभी उसके हृदयमें प्रवेशकर उपेक्षा कियेहुए जलोदर रोगकी समान बढ़नेलगी ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णजी की बाहुके बढ़नेसे उसकी वायु रुकगई, शरीरमें पसीना निकलआया और दोनों आंखें उलटपड़ीं। वह चारों पैर फैलाय मल त्यागताहुआ प्राण रहितहो पृथ्वीपर गिरपड़ा, ॥ ७ ॥ हे-राजन्! ककड़ी जैसे पककर फैल जातीहै उसीप्रकार केशीकी देह विदीर्ण होगई। महाभुज श्रीकृष्णजीने उसकी देहसे अपनी भुजा बाहर करली। इनके मुखमें किसीप्रकार काभी विस्मयका चिह्न न देखपड़ा उन्होंने सहजहीमें शत्रुको मारडाला। देवतागण फूल बरसाकर इनकी स्तुति करनेलगे ॥ ८ ॥ उसीसमय में भागवत प्रधान नारद उपस्थितहो भगवान श्रीकृष्णजीसे एकांतमें कहनेलगे ॥ ९ ॥ कि—हेकृष्ण! हेअप्रमेयात्मन्! हेयोगेश! हेजगदीश्वर! हेवासुदेव! हेसर्वाश्रय

प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मासर्वभूतानामेकोज्योतिरिवैधसाम् । गूढोगुहाशयःसाक्षी महापुरुषईश्वरः ॥ ११॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयःपूर्वं माययाससृजेगुणान् । तैरिदंसत्य सङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥ सत्वंभूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् । अवतीर्णोविनाशाय सेतूनांरक्षणायच ॥ १३ ॥ दिष्ट्यातेनिहतोदैत्यो लीलयायं हयाकृतिः । यस्यहेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषादिवम् ॥ १४॥ चाणूरंमुष्टिकंचैव मल्लानन्यांश्चहस्तिनम् । कंसंचनिहतंद्रक्ष्ये परश्वोऽहनितेविभो ॥ १५ ॥ तस्यानु शंखयवनमुराणांनरकस्यच । पारिजातापहरणमिन्द्रस्यचपराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहंवीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।नृगस्यमोक्षणं पापाद्द्वारकायां जगत्प ते ॥ १७ ॥ स्यमन्तकस्यच मणेरादानं सहभार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानंच ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौण्ड्रकस्यवधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् । दन्तवक्रस्य नि धनं चैद्यस्यचमहाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानिचान्यानिवीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्ताद्रक्ष्याम्यहंतानि गेयानिकविभिर्भुवि ॥ २० ॥ अथतेकालरूपस्य क्षपयिष्णोर मुष्यवै । अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥ विशुद्धविज्ञानघनंस्व संस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् । स्वतेजसानित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवा· हंभगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेष विशेष कल्पनम् । क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मिधुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम्॥२३॥

श्रीशुकउवाच । एवंयदुपतिंकृष्णं भागवतप्रवरोमुनिः।प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौत हेसात्वतगणोंमें श्रेष्ठ ! हेप्रभो ! ॥ १० ॥ काठके मध्यमें आगकी समान आप सब प्राणियों के भीतर सदैव आत्मरूपसे स्थित रहते हैं । अतएव आप गूढ़ बुद्धिके साक्षी और अप्रगटहो आप महापुरुषहो इसहीकारण ढकीहुई बुद्धिसे जीव आपके स्वरूपको नहीं जानसकते, हे प्रभो ! आप सबके ईश्वरहो, आप स्वतन्त्र और सत्यप्रतिज्ञहो, आपने पहिले अपनी माया द्वाराही गुणोंको उ- त्पन्न कियाथा । उन सब गुणों द्वारा आप विश्वकी उत्पत्ति पालन और संहार करतेहो ११-१२ वही आप रजोरूपी दैत्यों और राक्षसोंको मारने तथा साधुओंकी रक्षाकरने के निमित्त पृथ्वीपर अवतीर्ण हुयेहो ॥ १३ ॥ अहो ! कैसा अच्छा हुआ, कि—जिसकी हिनहिनाहट के शब्दसे भय पाकर देवताओंने स्वर्ग त्याग दियाथा, उस घोड़ेके स्वरूपवाले राक्षस को आपने सहजहीमें मार- डाला ॥ १४ ॥ कुछही दिनमें देखूंगा कि—आपने चाणूर मुष्टिक और दूसरे शत्रुगण तथा हाथी और कंसकोभी मारडाला ॥१५॥ हेजगतपते ! इसके उपरांत शंख, यवन, मुर और नरककी मृत्यु पारिजात हरण, इन्द्रकी पराजय ॥ १६ ॥ पराक्रम और शुल्कादिसे बीर कन्याओं का बिवाह, द्वा- रकामें नृगराजाका पाप मोचन ॥ १७ ॥ स्त्री समेत स्यमंतक मणिका ग्रहण करना महाकाल पुर से ब्राह्मणके मरे पुत्रोंको लाकर देना ॥ १८ ॥ पौंड्रक बध; काशीपुरीका जलाना और महायज्ञ में दन्तवक्र व शिशुपालका मरना देखूंगा ॥ १९ ॥ आप द्वारकामें रहकर जिन पराक्रमों को करेंगे उन सबको देखपाऊंगा कविगण पृथ्वीमें आपके पराक्रमका बर्णन करेंगे; ॥ २० ॥ अन्तमें आप भूभार हरने के निमित्त अर्जुनके सारथीहो जिन अक्षोहिणी सेनाओं का नाश करेंगे उन सबको देखूंगा ॥ २१ ॥ हेहरि ! केवल ज्ञानही आपकी प्रधान मूर्त्तिहै अतएव अपने रूपके यथोचित स- मावेशसेही आपको समस्त अर्थ भलीप्रकार प्राप्त होतेहैं आप सत्य संकल्पहो आप अपनेही तेज से नित्य गुणोंके प्रवाहको निवृत्त करते रहतेहो मैं आपके चरणोंकी शरणहूं ॥ २२ ॥ आप ईश्वर और स्वाधीनहो आप अपनी मायासे सर्वप्रकार के बिषयोंकी कल्पना और क्रीड़ाके निमित्त मनुष्य देहधारण करते रहतेहो ? आप वृष्णि, यदु, और सात्वत गणोंके धुरन्धरहो मैं आपको नमस्कार करताहूं ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्णजीको देखकर भगवद्भक्त मुनि के

दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपिगोविन्दो हत्वाकेशिनमाहवे । पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥ एकदाते पशून्पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु । चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन्कतिचिच्चोराः पालाश्चकतिचिन्नृप । मेषायिताश्चतत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रोमहामायो व्योमोगोपालवेषधृक् । मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितोबहून् ॥ २८ ॥ गिरिदर्यांविनिक्षिप्यनीतंनीतंमहासुरः । शिलयापिदधेद्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥ २९ ॥ तस्यतत्कर्मविज्ञाय कृष्णःशरणदःसताम् । गोपान्नयन्तंजग्राह वृकंहरिरिवौजसा ॥ ३० ॥ स निजंरूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशंबली । इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥ तंनिगृह्याच्युतोदोर्भ्यां पातयित्वामहीतले । पश्यतां दिविदेवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानंनिर्भिद्य गोपान्निःसार्यकृच्छ्रतः । स्तूयमानःसुरैर्गोपैः प्रविवेशस्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपिचतांरात्रिंमधुपुर्यांमहामतिः । उषित्वारथमास्थाय प्रययौनन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथिमहाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे । भक्तिंपरामुपगतएवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥ किंमयाचरितंभद्रंकिंतप्तंपरमंतपः । किंवाऽथाऽप्यर्हतेदत्तंयद्द्रक्ष्याम्यद्यकेशवम् ॥ ३ ॥ ममैतद्दुर्लभंमन्यउत्तमश्लोकदर्शनम् ।

अति आनन्द उत्पन्न हुआ । वह इसप्रकारसे श्रीकृष्णजी को प्रणामकर उनसे आज्ञाले अपने स्थान को गए ॥ २४ ॥ ब्रजको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी भी युद्धमें केशीको मारकर अपने प्यारे पशुपालकोंके साथ पशु पालनेलगे, ॥२५॥ एकसमय वे ग्वाल पर्वतकी चोटियों पर पशु चराते चोर व पालक बनकर छिपनेका खेलखेलनेलगे॥२६॥उसखेलमें कोई तो चोर कोई पशुपाल और कोई बालक मेष बनकर परस्पर खेलकरनेलगे ॥ २७ ॥ उससमय मयकापुत्र महामायावी व्योमासुर पशुपालकका रूप धारणकर चोरबन, मेषरूपधारी बालकोंका हरण करनेलगा ॥२८॥ उस महासुरने धीरे २ इसप्रकारसे बहुतसे बालकोंको लेजाय पहाड़की कंदरामें डाल पत्थर से उसका मुँह बन्द करदिया । क्रीड़ा स्थानमें केवल चार पांचबालक रहगये ॥ २९ ॥ साधुओंको शरण देनेवाले श्रीकृष्णजी उसके कर्मोंको जानगये । जैसेही वह गोपोंको लिये जाताथा, वैसेही सिंह जैसे बैलपर आक्रमणकरे उन्होंने वैसेही बलपूर्वक उसको पकड़ा ॥ ३० ॥ उस बलवान असुरने पहाड़की समान अपना रूप धारण कर अपने छूटने का यत्न किया; परंतु श्री कृष्णजीसे पकड़ा जाकर वह अत्यन्त पीड़ितहोगयाथा इससे वह अपनेको न छुटासका ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजीने उसे दोनोंहाथों से पकड़ पृथ्वीपर गिरादिया और देखनेवाले देवताओंके सामने उस को पशुकीसमान मारडाला॥३२॥तदनन्तर उन्होंने ढकीहुई कंदराको खोलकर गोपोंको कष्टदायक स्थान से निकाला और अनुचरों तथा देवताओंसे स्तुति कियेजाते अपने गोकुल में आए॥३३॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सरलाभाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! महा बुद्धिवान् अक्रूरजीभी उसरात्रिको मथुराहीमें रह, प्रातःकाल रथपर बैठ नन्दरायजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ मार्ग में जाते २ वह भगवान्की परम भक्तिको प्राप्तहो इसप्रकार चिंता करनेलगे कि ॥ २ ॥ मैंने ऐसा क्या पुण्यकिया है ? ऐसी क्या तपस्या की है ? ऐसे किस योग्य पात्रको दान दियाहै ? कि आज कृष्णजीके दर्शन पाऊंगा॥३॥ मैं जानताहूं कि पवित्र कीर्त्ति भगवान का दर्शन होना मुझे दुर्लभ है; शूद्रके बीर्य से उत्पन्नहुए मनुष्य के जैसे वेदोच्चार दुर्लभ है कि—उसी प्रकार कृष्णजी के दर्शन मुझे दुर्लभ हैं अथवा ऐसे

विषयात्मनोयथाब्रह्मकीर्तनंशूद्रजन्मनः॥ ४ ॥ मैवंममाधमस्यापिस्यादेवाच्युतदर्शनम्। ह्रियमाणः कालनद्याक्वचित्तरतिकश्चन॥ ५ ॥ ममाद्यामङ्गलंनष्टंफलवांश्चैवमेभवः। यन्नमस्येभगवतोयोगिध्येयांघ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥ कंसोबताद्याऽकृतमेऽत्यनुग्रहंद्रक्ष्येंऽघ्रिपद्मंप्रहितोऽमुनाहरेः। कृतावतारस्यदुरत्ययंतमःपूर्वेऽतरन्यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥ यदर्चितंब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रियाचदेव्यामुनिभिः ससात्वतैः। गोचारणायानुचरैश्चरद्वनेयद्गोपिकानांकुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥ द्रक्ष्यामिनूनंसुकपोलनासिकंस्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम्। मुखंमुकुन्दस्यगुडालकावृतंप्रदक्षिणंमेप्रचरन्तिवैमृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्यविष्णोर्मनुजत्वमीयुषोभारावतारायभुवोनिजेच्छया। लावण्यधाम्नोभवितोपलम्भनंमह्यंनस्यात्फलमञ्जसादृशः ॥१०॥ यईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः। स्वमाययाऽत्मन्रचितैस्तदीक्षयाप्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचोविमिश्रागुणकर्मजन्मभिः। प्राणन्तिशुम्भन्तिपुनन्तिवैजगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभनामताः ॥ १२ ॥ सचावतीर्णः किलसात्वतान्वयेस्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत्। यशोवितन्वन्व्रजआस्तईश्वरोगायन्तिदेवायदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥ तंत्वद्यनूनंमहतांगतिंगुरुंत्रैलोक्यकान्तंदृशिमन्महोत्सवम्। रूपंदधानंश्रियईप्सितास्प

नहीं, यद्यपि मैं अधमहूं तौभी भगवान के दर्शन होसकते हैं; कालरूपी नदी में बहताहुआ कोई मनुष्य कभी पारभी होजाता है ॥ ४। ५ ॥ आज मेरे समस्त अकल्याण नाशहोगये, आज मेरा जन्म सार्थक हुआ क्योंकि आज मैं योगियों के ध्यान करने योग्य भगवान के चरण कमलों का दर्शन करूंगा ॥ ६ ॥ कैसा आश्चर्य है ! कि—आज कंस ने भी मेरे ऊपर अनुग्रहकी मैं उसीकंस का भेजाहुआ जाकर अवतारधारी कृष्णजी के पाद पद्म का दर्शन करूंगा; पूर्व समयके अम्बरीष आदि महोदयगण जिन चरणकमल के नखों की कांति से सहायपाय दुस्तर भवसागर से पार होगए ॥ ७ ॥ देवों के देव महादेव, ब्रह्मादि देवतागण, लक्ष्मी देवी, तथा मुनि और भक्तगण उनकी पूजाकरते रहते हैं। फिर गऊ चराने के निमित्त अनुचरों के साथ बनमें विचरतेहुए वह गोपियों के स्तनों की केसर से रंगते हैं। भगवान का मुख—सुन्दर कपोल व नासिका से शोभायमान तथासुंदर हास्ययुक्त दृष्टि से प्रति समयशोभित और कमल से अरुण नेत्रों युक्त व घूंघरवाले बालों से आच्छादित रहता है मैं निश्चयही उस मुखको देखूंगा; क्योंकि मृगगण मेरी परिक्रमा करतेहुए विचरण कर रहे हैं। तदनन्तर वह मनही मन में और विचारकरने लगे कि—श्रीकृष्णजी ने अपनी इच्छानुसार पृथ्वी का भार हरने के निमित्त मनुष्यरूप धारण किया है; आज क्या उन के लावण्य के खान शरीर को देखपाऊंगा ? यदि ऐसाहोवे तो निश्चयही मेरीआंखेंसफल हों ॥ ८। ९। १० ॥ जो केवल दृष्टि सेही कार्य और कारण के कर्त्ता हैं, जिनको अहंकारनहीं है; जो अपने तेजद्वारा तमसे उत्पन्नहुए भेद के हेतु भ्रम को दूर करते हैं; तौभी अपनीही दृष्टि से प्राण, इंद्रिय, और बुद्धिद्वारा अपने रचेहुए प्राणियों के साथ वृन्दाबन में और गोपियों के घर में लीला के वश से कर्म करआसक्तकी समान प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ जिनके गुण, कर्म, और जन्मचरित्र नानाप्रकार के पापों को नाशकरते तथा जगतको जीवित, शोभित और पवित्रकरते हैं ऐसे बर्णन से रहितबाणी, वस्त्रादि से अलंकृत शव के समान मानीजाती है ॥ १२ ॥ औरजो अपने रचेहुए वर्णाश्रम धर्म के पालनकर्त्ता, श्रेष्ठ देवताओं को सुख देनेवाले हैं वहीभगवान्सात्वत बंश में अवतार ले यश का विस्तार करतेहुए व्रज में विराजमान हैं, देवतागण उन के समस्त कल्याणकारी यशों का गानकरते हैं ॥ १३ ॥ उन्होंने जो रूप धारण किया है—त्रिलोकी के मध्य

दंद्रक्ष्येममाऽऽसन्नुषसः सुदर्शनाः॥१४॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसो श्चरणंस्वलब्धये । धियाधृतंयोगिभिरप्यहं ध्रुवंनमस्य आभ्यां चसखीन्वनौकसः ॥ ॥ १५ ॥ अप्यंघ्रिमूलेपतितस्यमेविभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् । दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानांशरणैषिणांनृणाम् ॥१६॥ समर्हणंयत्रनिधायकौशिक स्तथा बलिश्चापजगत्त्रयेन्द्रताम् । यद्वाविहारेव्रजयोषितांश्रमं स्पर्शेनसौगन्धिकग न्ध्यपानुदत् ॥ १७॥ नमय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतःकंसस्यदूतःप्रहितोऽपिविश्वदृक् योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञईक्षत्यमलेनचक्षुषा ॥ १८ ॥ अप्यंघ्रिमूलेऽवहि- तंकृतांजलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रयादृशा। सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदंवीतविशंकऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमंज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यांबृहद्भ्यांपरिर- प्स्यतेऽथमाम् । आत्माहितीर्थीक्रियते तदैवमेबन्धश्च कर्मात्मकउच्छ्वसित्यतः ॥ ॥२०॥ लब्ध्वांगसंगंप्रणतं कृतांजलिंमां वक्ष्यतेऽक्रूरतेत्युरुश्रवाः । तदावयंजन्म भृतोमहीयसा नैवादृतोयोधिगमुष्यजन्मतत् ॥ २१ ॥ नतस्यकश्चिद्दयितःसुहृत्तमो नचाप्रियोद्वेष्यउपेक्ष्यएववा। तथाऽपिभक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रि तोऽर्थदः ॥ २२ ॥ किंचाऽग्रजोमाऽवनतं यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्यगृहीतमंजलौ ॥

में केवल सुन्दर दृष्टियुक्त मनुष्य उस के दर्शन से असीम आनन्द प्राप्त करते हैं; वह लक्ष्मी के बांछितआश्रय हैं। वह भगवान हरि महात्मा मनुष्योंकी गति और गुरु हैं। आज मैं उनको निश्चयही देखपाऊंगा; क्योंकि आज प्रातःकालसेही बहुत मंगल चिह्नों को देखरहाहूं ॥ १४॥उन श्रीमूर्त्तिधारी हरि के दर्शन होतेही मैं रथसे उतरूंगा और योगीजन अपने लाभ के निमित्त प्रधान पुरुष राम कृष्ण के जिनचरणोंको केवल बुद्धिद्वारा धारण किया करते हैं उन चरणों को निश्चयही नमस्कार करूंगा। इस के उपरांत उन के साथवाले उन के आत्मीय गोपगणों को भी नमस्कार करूंगा ॥ १५ ॥ जो मनुष्य कालसर्प के बेग से अत्यन्त व्याकुलहो उनकी शरणलेता है भगवान अपने कर कमलों से उस को अभयदान देते हैं; मैं नारायण के चरणों में गिरूंगा, तो वह क्या अपने वही करकमल मेरे मस्तक पर न धरेंगे ? ॥ १६ ॥ उन करकमलों में पूजाआदि अर्पण कर इंद्र और बलि ने तीनों जगत का इन्द्रत्व प्राप्त कियाथा । कमल की समान सुगन्धित उन्हीं करकमलों ने रास के समय गोपियों के श्रमको नाशकियाथा। अतएव वह मोक्ष चाहनेवालों को संसार निवारक, सकाम मनुष्यों को उन्नति देनेवाले और भक्तोंको परम सुखदायकहैं ॥ १७ ॥ कंसने मुझे भेजाहै अतएव कंसका दूत समझकर भगवान् पद्मनयन मुझको यह मनुष्य शत्रु पक्षका है ऐसा न विचारेंगे क्योंकि वह सर्वदर्शी हैं अतएव अपने नित्यज्ञानसे वह मेरे मनकी और बाहरकी चेष्टाको जानतेहैं,॥१८॥ मैंजब उनके चरण मूलमें गिर हाथ बांधकर खड़ाहोजाऊँगा तब क्या वह हंसकर अपनी दयामयी दृष्टिसे मेरीओर देखैंगे ? यदि ऐसा करेंगे तो उसीसमय मेरे समस्त पाप नष्टहोजावेंगे और मैं सब भयसे छूट परमानन्दको प्राप्त हूंगा ॥१९॥ मैं उनका श्रेष्ठ मित्र और उनकी जातिवालाहूं उनकेअतिरिक्त मेरा और कोई देवता नहींहै यदि वहअपनी दोनों लम्बी भुजाओंसे मेरा आलिंगन करेंगे तो मेरी आत्मा पवित्र होजायगी उसीसमय समस्त कर्म बन्धन देहसे ढीले पड़जावेंगे ॥ २० ॥ मैं जब उनका अंग संग प्राप्तकर हाथ जोड खड़ाहूंगा तब यदि भगवान् मुझको ' अक्रूर , कहकर बुलावेंगे । तो मेरा जन्म सुफलहोगा जो पूजनीय के निकट आदर नहीं प्राप्तकरसकता उसके जन्मको धिक्कार है ॥ २१ ॥ नारायण का न तो कोई प्यारा है न मित्र, न शत्रु न उदासीन तौ भी जैसे कल्पवृक्ष आश्रित मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करता है तैसेही वह भक्तों को भजते हैं ॥ २२ ॥ मैं प्रणाम करके

गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं सम्प्रेक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥ श्रीशुकउवाच इतिसंचिंतयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि । रथेनगोकुलंप्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिंनृप ॥२४॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्शगोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमःप्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः । रथादवस्कन्द्यसतेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहोइति ॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वादम्भंभियंशुचम् ॥ सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्शकृष्णंरामंच व्रजेगोदोहनंगतौ । पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥२८॥ किशोरौश्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौबृहद्भुजौ । सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥ ध्वजवज्रांकुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् । शोभयन्तौमहात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥ उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौवनमालिनौ । पुण्यगन्धानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतूजगत्पती । अवतीर्णौजगत्यर्थे स्वांशेनबलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशोवितिमिराराजन्कुर्वाणौ प्रभयास्वया । यथामारकतः शैलो रौप्यश्चकनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्यसोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः । पपातचरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादवाष्पपर्याकुलेक्षणः । पुलकाचितांग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्यानेनाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना । प-

जब हाथ जोडूंगा तब मेरा हाथपकड़ हंसतेहुये आलिंगन कर घरमेंलेजाय सबप्रकार सन्मानकर बड़े भाईबलरामजी अपने आत्मीयजन व कंसका वृत्तांत पूंछेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हेराजन् ! इसप्रकारसे अक्रूर चिंता करतेहुये रथपर सवारहो गोकुल में आये इसओर सूर्यनारायण भी अस्ताचल पहुंचे ॥२४॥ समस्त लोकपाल जिनकी निर्मल चरण रजको किरीट से धारण करते हैं अक्रूरने गोष्ठमें उन्हीं श्रीकृष्णजी के पद्म, यव, अंकुशआदि द्वारा चिह्नित पृथ्वीके अलंकारभूत चरण चिह्नको देखा ॥ २५ ॥ उनको देखने से आनंदपाय पुलकित होगये और नेत्रों से आनंदाश्रु बहानेलगे । वह "अहो ! यह सब भगवान् की चरणरज है" ऐसे कहकर उनमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! दंभ और शोकको छोड़कर, भगवान के चिह्नदर्शन व श्रवण आदिसे अक्रूरजीकी समान आचरण करनाही प्राणियोंका पुरुषार्थ है ॥ २७ ॥ हे महाराज ! अक्रूरने देखा कि ब्रजमें जिस स्थानपर गोदोहन होता है, राम, कृष्ण उसी स्थानपर खडे हैं वह नीले और पीले बस्त्र पहिने हुए हैं, उनके नेत्रशरत् कालके कमल की समान शोभायमान होरहे हैं ॥ २८ ॥ किशोरवय, श्वेत व श्यामवर्ण, लक्ष्मी के—आश्रय, बड़ी भुजावाले, सुंदरमुख, हाथी की शदस पराक्रमी सर्वश्रेष्ठ ॥ २९ ॥ ध्वज, व्रज, अंकुश, व कमल के चिह्नवाले चरणों से भूमिको शोभायमान करते सुंदर मंद मुसकान व दयादृष्टियुक्त है ॥ ३० ॥ वह उदार क्रीड़ावाले, वनमाला पहिने, रत्नोंके हार धारण किये, चंदन लगाए स्नान किये, सुंदर वस्त्र पहिने हैं ॥ ३१ ॥ वह प्रधान पुरुष, आद्य, जगत के कारण, और जगत के पति पृथ्वीका भार हरने के निमित्त मनुष्य रूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३२ ॥ कनक मण्डित मरकत मय और रौप्यमय पर्वत की समान वह अपनी २ प्रभासे दिशाओंको प्रकाशितकर बिराजमान होरहे हैं ऐसे उन दोनों भाइयोंको देखकर॥३३॥अक्रूरजी रथसे शीघ्रता पूर्वक उतरे और स्नेहसे विह्वलहो राम, कृष्णके चरणों में दंडकी समान गिरपड़े॥३४॥ भगवान्के दर्शन होनेके कारण आनंदसे उनकी आंखों में आनंदाश्रु आगये और शरीर पुलकायमान होगया । वह चित्तकी चंचलता के कारण अपना परिचय भी न देसके ॥ ३५ ॥ प्रणत वत्सल भगवान्–यह अक्रूर हैं और इस निमित्त

रिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतःप्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्चप्रणतमुपगुह्य महामनः गृहीत्वापाणिनापाणी अनयत्सानुजोगृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाथस्वागतंतस्मै निवेद्यच वरासनम् । प्रक्षाल्यविधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्यगांचातिथये संवाह्यश्रान्तमादृतः । अन्नंबहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥ तस्मैभुक्तवतेप्रीत्या रामःपरमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परांप्रीतिंव्यधात्पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छसत्कृतंनन्दः कथंस्थनिरनुग्रहे । कंसेजीवतिदाशार्ह सौनपाला इवावयः । ॥४१॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशन्त्या असुतृप्खलः । किंनुस्वित्तत्प्रजानांवः कुशलंविमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थंसूनृतयावाचा नन्देनसुसभाजितः । अक्रूरःपरिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यङ्केरामकृष्णोरुमानितः । लेभेमनोरथान्सर्वान्पथियान्सचकारह ॥ १ ॥ किमलभ्यंभगवतिप्रसन्नेश्रीनिकेतने । तथाऽपितत्पराराजन्नहिवाञ्छन्तिकिंञ्चन ॥ २ ॥ सायन्तनाशनंकृत्वाभगवान्देवकीसुतः । सुहृत्सुवृत्तंकंसस्यपप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तातसौम्यागतः कच्चित्स्वागतंभद्रमस्तुवः । अपिस्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किंनुनः कुशलंपृच्छेएधमानेकुलामये । कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥ अहोअस्मदभूद्भूरिपित्रोर्वृजिनमार्ययोः । यद्धेतोः पुत्रमरणंयद्धेतोर्बन्धनंत

आए हैं उनका यह सब अभिप्राय जान, प्रीति पूर्वक चक्र चिह्नित हाथों द्वारा उनको उठाकर आलिंगन किया ॥ ३६ ॥ बड़े मनवाले बलरामजी भी प्रणत से मिलहाथ से हाथ पकड़ भाई के साथ उनको घरलेआए ॥ ३७ ॥ अनंतर कुशल प्रश्नकर उनको श्रेष्ठ आसनदिया और यथाविधि से पैर धोकर मधुपर्क अर्पणकिया ॥ ३८ ॥ भगवानने अक्रूरजी का नम्रवचनों से सत्कार किया और आदर सहित श्रमनाश होने के निमित्त स्वयं बीजना करने लगे। तदनंतर श्रद्धायुक्त पवित्र अन्नका उन्हें भोजनकराया ॥ ३९ ॥ उनके भोजन करनेपर परम धर्मज्ञ रामने प्रीतिपूर्वक बीड़ा, चंदन, फूलोंकी माला, अर्पणकर स्नेहप्रगट किया ॥ ४० ॥ अनंतर श्रीनंदजी ने, पूजित अक्रूर से पूछाकि–हे दाशार्ह! दया रहित कंसके जीवित रहते हुए, कसाई केघर बकरी की समान तुम किस प्रकार जीवन धारण करते हो ॥ ४१ ॥ दुष्ट कंस–प्राणों के तृप्त करने वाले ने अपनी रोती हुई बहिन की संतानों को मार डालाथा । तुम उसकी प्रजाहो; उसके निकट तुह्मारा जीवनमात्र दुर्लभ है, अतएव तुह्मारी कुशलाकुशल क्या पूंछू ॥ ४२ ॥ इसप्रकार मधुर वाक्यों से नंदजी ने बहुत आदर किया और ऐसे प्रश्नोंको सुन अक्रूर जीके मार्ग काश्रम दूर हुआ ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! अक्रूरने मार्ग में आते हुए जिन २ कामनाओंको किया था, राम, कृष्ण के निकट आदर पाय सेज के ऊपर सुख से बैठ उन समस्त कामनाओंको प्राप्त किया । श्रीभगवान् के प्रसन्न होने से दुर्लभ क्या रहता है ? तौभी हे राजन् ! जो भगवद्भक्त हैं वह कुछभी कामना नहीं करते ॥ १–२ ॥ भगवान् देवकी नंदन सायंकाल का भोजनकर फिर अक्रूर के समीप आये और बंधुओं पर कंस कैसा आचरण करता है और क्या करनेकी इच्छा है यह सब बात पूछी ॥ ३ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि–हे तात ! सुख से तो आयेहो ? तुम्हारी स्वयं कुशलतो है ? सुहृद, जातिवाले और बन्धुगण सुख से और आरोग्य तो हैं ? अथवा जब हमारे कुल का रोग मामाकंस वृद्धि पारहा है तब फिर तुम्हारी व जातिवालों की तथा प्रजागण की क्या कुशल पूछूं ? ॥ ४ । ५ ॥ अहो ! हमारे निरपराधी माता पिता हमारे कारण बहुतकष्ट

योः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्यदर्शनंस्वानांमह्यंवः सौम्यकाङ्क्षितम् । संजातंवर्ण्यतांतात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टोभगवतासर्वंवर्णयामाससमाधवः । वैरानुबन्धंयदुषुवसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्सन्देशोयदर्थंवादूतः संप्रेषितः स्वयम् । यदुक्तंनारदेनास्यस्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णोबलश्च परवीरहा । प्रहस्यनन्दंपितरंराज्ञाऽऽदिष्टंविजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान्समादिशत्सोऽपिगृह्यतांसर्वगोरसः । उपायनानिगृह्णीध्वंयुज्यन्तांशकटानिच ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वोमधुपुरींदास्यामोनृपतेरसान् । द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्वयान्तिजानपदाः किल । एवमाघोषयत्क्षत्त्रानन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्यबभूवुर्व्यथिता भृशम् । रामकृष्णौपुरींनेतुमक्रूरंव्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः । स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्चकाश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्चतदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः । नाभ्यजानन्निमंलोकमात्मलोकं गताइव ॥ १५ ॥ स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः । हृदिस्पृशश्चित्रपदागिरः संमुमुहुःस्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिंसुललितांचेष्टांस्निग्धहासावलोकनम् । शोकापहानिनर्माणिप्रोद्दामचरितानिच ॥ १७ ॥ चिन्तयन्त्योमुकुन्दस्यभीताविरहकातराः । समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहोविधातस्तवनक्वचिद्दयासंयोज्य मैत्र्याप्रणयेनदेहिनः तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकंविक्रीडितंतेऽर्भकचेष्टितंय

भोग रहे हैं उनकेही पुत्र मरे और वही कारागार में बन्दहुए ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! यह बहुतही अच्छाहुआ कि आज अपनी जातिवालों में से आपका दर्शन हुआ । यही मेरी इच्छाभीथी।हेतात! तुम अपने आने का कारण कहो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–हेराजन् ! मधुवंश में उत्पन्न हुए अक्रूर ने भगवान के इसप्रकार से पूछने पर समस्तवृत्तांत वर्णन किया ॥ ८ ॥ कंस का यदुवंशियों से शत्रुताकरना; वसुदेव के मारने का उद्योग करना तथा स्वयं जो संदेशा लायेथे व जिस निमित्त उनको दूतबनाकर भेजाथा; और " वसुदेव से श्रीकृष्णका जन्महुआ है "–नारदजी का कंस से यह कहना यह समस्त बातें यथार्थ कहीं ॥ ९ ॥ शत्रु बीर नाशक राम और कृष्ण इस बात को सुनकर हँसने लगे और राजाकी आज्ञा को नन्दराय से जाकरकहा ॥१०॥ नन्दजीने भी गोपोंको आज्ञादी कि—सबकोई गोरस व नानाप्रकारका सामग्रियें लेकर शकटों में भरलो;॥११॥ कलमधुपुरी को चलनाहोगा; राजा को सबरस चलकर देंगे और वहां का उत्सव देखेंगे;—सब नगर और गांव के निवासी जारहे हैं । नन्दजीने रक्षक से गोकुल में इस का ढिंढोरा पिटवादिया ॥ १२ ॥ इस ढिंढोरेको सुनकर जब गोपियों ने सुना कि राम कृष्ण के लेनेको मधुपुरी से अक्रूर व्रज में आये हैं तब उनके दुःख की सीमा न रही; और कामदेवकी पीड़ा से वह अत्यन्तही दुःखितहुईं ॥ १३ ॥ इस सम्बाद को सुनकर जो सन्ताप उत्पन्नहुआ उस से कितनीही गोपियों के मुख की कांति मलीन होगई; अनेकों के वस्त्र, कंकण और बालों की ग्रंथिखुल गई । श्रीकृष्णजी का ध्यानकरते २ कितनीही गोपियों की इंद्रियों की वृत्तियें रुकगईं; अतएव मुक्त मनुष्यकी समान उन्हें अपनी २ देह काभी भान न रहा ॥ १४ ॥ १५ ॥ और कितनीही स्त्रियें उन के अनुराग व मंदमुसकान की उच्चारित, हृदयकी लुभानेवाली विचित्र पदयुक्तबाणी का स्मरण कर मोहित होगईं ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी की सुन्दर गति, चेष्टा,प्रीतिपूर्वक मुसकानि सहित देखना शोकके दूरकरनेवाले हास्ययुक्त बचन,सर्वोत्तम चरित्र व ॥१७॥ क्रीड़ाका ध्यानकरतीहुईं बिरह से संतप्त भगवान में चित्तलगाये गोपियों का समूह एकात्रित हो आंसू बहाय बहाय परस्पर कहने लगा॥१८॥गोपियोंने कहा कि-अहोविधाता! तुझेकुछभी दयानहींहै, तूप्राणियोंको बंधुता द्वारा मिलाकर

था ॥ १९ ॥ यस्त्वंप्रदर्श्यासितकुन्तलावृतंमुकुन्दवक्रंसुकपोलमुन्नसम् । शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरंकरोषिपारोक्ष्यमसाधुतेकृतम् ॥ २० ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्ययास्मनश्चक्षुर्हिदत्तंहरसेबताज्ञवत् । येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवंत्वदीयमद्राक्ष्मवयंमधुद्विषः ॥ २१ ॥ ननन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षतेनः स्वकृतातुराबत । विहायगेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगतानवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखंप्रभातारजनीयमाशिषः सत्याबभूवुः पुरयोषितांध्रुवम् । याः संप्रविष्टस्यमुखंव्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासांमुकुन्दोमधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि । कथंपुनर्नः प्रतियास्यतेऽबलाग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्यध्रुवंतत्रदृशोभविष्यतेदाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् । महोत्सवः श्रीरमणंगुणास्पदंद्रक्ष्यन्तियेचाध्वनिदेवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नामभूदक्रूरइत्येतदतीवदारुणः । योसावनाश्वास्यसुदुःखितंजनंप्रियात्प्रियंनेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेषसमास्थितोरथंतमन्वमीचत्वरयन्तिदुर्मदाः । गोपाअनोभिः स्थविरैरुपेक्षितंदैवंचनोऽद्यप्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुप

उनकी इच्छा पूर्ण न होतेर उनका व्यर्थही वियोग करदेताहै तू अति मूर्खहै तेराकाम बालकों की समान है ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णजी का मुख मण्डल कृष्णवर्ण कुण्डलों से आवृत्त सुन्दर कपोल और नासिकासे शोभित व कुछेक हास्यसे अति रमणीयहै तू उस मुखको दिखाकर फिर दृष्टि से दूर किये देताहै, अतएव तेरा कार्य निंदनीयहै ॥ २० ॥ तू क्रूरहै तुझ बिना दूसरे किसीसे ऐसा काम नहीं होसकता कि हमको जो आंखेंदीहैं उन आंखोंसे हम श्रीकृष्णजी को एक स्थानसे देखकर तेरी सम्पूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता देखतीं हैं परन्तु तू अक्रूरका नामधर अजानकी समान हमारी उन आंखोंका हरण करताहै ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजीके बिरह के कारण हम आजसे अन्धी होजावेंगी । हेसखीगण ! श्रीनन्दनंदनकी सुहृदता चंचलहै उन्हें तो नयाही नया प्यारा रहताहै परन्तु हम तो उनके कार्य, उनके गूढ़हास्य द्वारा बशीभूत होकर घर, पुत्र सुजन और स्वामी आदिको छोड़कर साक्षात् उन्हींके बशीभूतहोगयी हैं अब यह क्या हमारी ओर स्नेहकी दृष्टिसे न देखेंगे ? हे सखि ! ऐसा न होगा कि हम उन्हें छोड़दें २२ ॥ आज निश्चयही मधुपुरकी स्त्रियों के लिये सुप्रभात हुआहै—आज निश्चयही उनका आशीर्वाद सफल हुआ आज वह भगवान् के मुखका कि—जो कटाक्षसे बढ़हुए और मन्द मुसकानके कारण आसव रूपहै पान करेंगी ॥ २३ ॥ उन सब स्त्रियों के मधुर बाक्यसे मुकुन्दका चित्त खिंचजायगा और उनके सलज्ज हास्य और विलास से वह मोहित होजायंगे; इसलिये यद्यपि वह पित्रादिके आधीन व धीरहैं तौभी फिर क्या वह हमारे समीप लौटकर आसक्तेहैं ॥ २४ ॥ हाय ! हमारे उत्सव को दूसरे भोगेंगे ? आज निश्चयही मधुपुरीमें दाशार्ह, भोज, अंधक और वृष्णि बंशियोंके नेत्रोंका महोत्सवहोगा क्योंकि वह आज लक्ष्मी के आनन्द देनेवाले और गुणोंके आश्रय कृष्णजीके कमल मुखको देखेंगे आज उस मधुपुरी को धन्यहै अहो ! जब वह मधुपुरीके मार्गसे जावेंगे तब सब नगर निवासी उन्हें देखकर आनन्दित होंगे, ॥ २५ ॥ अहो यह अक्रूर अति निर्दयी और निठुरहै कि दुःखित मनुष्यों को धैर्य बँधाय कर प्राणसेभी प्यारे प्रियको नेत्रोंसे दूर स्थलमें लिये जाताहै अतएव इसका नाम अक्रूर न होना चाहिये ॥ २८ पाषण हृदय अक्रूर रथपर बैठ गयाहै मदोन्मत्त गोपगण भी उसके पीछे गाड़ियों पर सवारहुए चलने को व्यग्रहोरहे हैं वृद्धभी निवारण नहीं करते । दैवभी आज हमारे ऊपर प्रतिकूलता कररहा है यदि दैव प्रतिकूल न होता तो इनमें से कोई एक अवश्य मरजाता नहीं तो अकस्मात् बज्र गिरता या कोई उत्पात होजाता परंतु वह कुछभी नहीं देखती ; अतएव दैवही प्रतिकूल है ॥ २७ ॥ चलो—सब मिलकर माधवको निवारण

त्यमाधवंकिंनोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबान्धवाः। मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम्। नीताः स्म नः क्षणमिवक्षणदाविनातंगोप्यः कथन्वतितरेम तमोदुरन्तम् ॥ २९ ॥ योऽह्नः क्षयेव्रजमनन्तसखः परीतोगोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक्। वेणुंक्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेनचित्तंक्षिणोत्यमुमृतेनुकथंभवेम। ३०। श्रीशुक उवाच॥ एवंब्रुवाणाविरहातुराभृशंव्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः। विसृज्यलज्जां रुरुदुःस्मसुस्वरं गोविन्ददामोदरमाधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवंरुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ। अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिकोरथम् ॥ ३२ ॥ गोपास्तमन्वसज्जन्तनन्दाद्याःशकटैस्ततः। आदायोपायनंभूरि कुम्भान्गोरससंभृतान् ॥ ३३॥ गोप्यश्चदयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरंजिताः। प्रत्यादेशंभगवतः कांक्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथातप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थानेयदूत्तमः। सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्यइतिदौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणूरथस्यच ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ तानिराशानिववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने। विशोकाअहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥भगवानपिसंप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप। रथेनवायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्यपानीयं पीत्वामृष्टंमणिप्रभम्। वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामोरथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामन्त्र्यनिवेश्यच रथोपरि। कालिन्द्याह्रदमागत्य स्नानंविधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ नि

करें, कुलके बूढ़े और बांधवगण हमारा क्या करेंगे ? श्रीकृष्णजीका साथ हम एक मुहूर्तको भी नहीं छोड़ सकतीं , दुर्दैव वश उनसे बिछुड़ जांयगी , इससे हमारा चित्त अत्यन्त दीन होरहाहै ॥२८॥ हे गोपियां ! राससभा में जिनके प्रीतियुक्त वार्तालाप, सुन्दर कटाक्ष विक्षेप, क्रीड़ा और आलिंगन द्वारा हम सबरात्रिको क्षणभर में व्यतीत करदेती थीं उनको छोड़कर हम कैसे दुरन्त बिरहके दुःख से पारहोंगी ॥ २९ ॥ जो दिनके अंतमें खुरोंसे उड़ीहुई धूलिसे धूसरित अलकें, और मालाधारणकिये गोपोंके साथ बंशी बजाते २ हास्ययुक्त कटाक्ष बिक्षेप से ब्रजमें प्रवेशकर हमारे चित्तका हरण करते हैं उनके बिना हम कैसे जीवित रहसकती हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! श्रीकृष्ण में आसक्त चित्तवाली गोपियें बिरह से अत्यन्त कातरहो यह बातें कहते २ लज्जा छोड़कर "गोविंद" ! "माधव" कह ऊंचे स्वरसे रोनेलगीं ॥ ३१ ॥ इसओर सूर्य भगवान् उदय होआये । स्त्रियों के इसप्रकार रोतेहुएभी अक्रूरने उनका कुछ ध्यान न कर सन्ध्यावन्दनादि कार्य समाप्तकर रथको चलाया ॥ ३२ ॥ नन्दादि गोपगण गोरसके असंख्य कलस भेटको ले गाड़ी में चढ़ उनके पीछे २ चले ॥ ३३ ॥ गोपियां अपने प्यारे श्रीकृष्णजीके पीछे २ चलीं और उनकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देखती हुईं जिधरको वह जारहेथे उधरको मुँहकर के खड़ी होगईं ॥ ३४ ॥ गोपिकाओंको इसप्रकार से दुःखित देखकर श्रीकृष्णजीने शीघ्र "आऊंगा" इन प्रेमयुक्त बाक्योंद्वारा उनको संतोष दिया ॥ ३५ ॥ उनका चित्त श्रीकृष्ण जीके पीछे २ दौड़रहाथा , तौभी जबतक रथकी ध्वजा और धूलि दिखाईदी तबतक लिखेहुए चित्रकी समान वहींपर खड़ी रहीं । अन्त में गोविंदके लौटनेसे निराशहो वह अपने २ घर लौटआईं और प्रियके चरित्रोंका गान करतेहुये शोकको शांतिकर दिन बितानेलगीं ॥ ३६ । ३७ ॥ हे राजन् ! भगवान भी बलराम और अक्रूरके संग पवनबेगगामी रथपर आरूढ़हो पापनाशिनी यमुना के तटपरआये ॥ ३८ ॥ वहां स्नानकर स्वच्छ मणिकी समान निर्मल जलका पानकिया, तदनन्तर वृक्षोंके बीचमेंसे होतेहुए बलराम जीके साथ रथपर आ बैठे ॥ ३९ ॥ अक्रूरजी उन दोनोंको रथपर बैठाय

मज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्मसनातनम् । तावेवददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौसमन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौरथस्थौकथमिह सुतावानकदुन्दुभेः । तर्हिस्वित्स्यन्दनेन स्त इत्युन्मज्ज्यव्यचष्टसः ॥४२॥ तत्रापिच यथापूर्वमासीनौ पुनरेवसः । न्यमज्जद्दर्शनंयन्मे मृषाकिंसलिलेतयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् । सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसंदेवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलाम्बरंविसश्वेतं शृंगैः श्वेतमिवस्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगेघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् । पुरुषंचतुर्भुजंशान्तं पद्मपत्त्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् । सुभ्रून्नसंचारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलम्बपीवरभुजंतुंगांसोरः स्थलश्रियम् । कम्बुकण्ठंनिम्ननाभिं बलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् । चारुजानुयुगंचारु जंघायुगलसंयुतम् ॥४९॥ तुंगगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् । नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥५०॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः । कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥ भ्राजमानंपद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभंवनमालिनम् ॥ ५२ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः । सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्चद्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः । स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥ श्रियापुष्ट्यागिराकान्त्या कीर्त्यातुष्ट्येलयोर्जया । वि-

उनकी आज्ञा ले कुण्ड में नहाने गये और वहां जलमें डुबकी लगाय सनातन ब्रह्मका जपकरते २ देखा कि राम कृष्ण वहां एकहीसाथ विराजमान है ॥ ४० । ४१ ॥ "वसुदेवके दोनों पुत्र रथपर बैठे हैं, वह इस स्थान पर कहांसे आये ? क्या वह रथपर नहीं हैं ?" —यह कहकर वह विस्मित होगये और उठकर देखा कि पहिले की समान वह उसी स्थान पर बैठे हैं ॥ ४२ ॥ मेरा उनको जलके भीतर देखना क्या मिथ्या है ? यह विचारकर अक्रूर ने फिर जलमें डुबकी लगाई ॥ ४३ ॥ और फिरदेखा—कि उसी स्थान में शेषजी विराजमान हैं । सिद्ध, उरग, और असुरगण मस्तक नीचेकिये उनकी स्तुतिकररहे हैं ॥४४॥ अनंत देवके सहस्र मस्तक, सहस्र फणोंमें सहस्र किरीट शोभापारहे हैं । वह नीलांबर धारण किये हैं, कमल नालकी समान उनका श्वेतवर्ण है; अतएव शिखर समूह द्वारा विराजमान कैलासपर्वत की समान शोभायमान हैं ॥ ४५ ॥ उनकी गोदमें घनश्याम, पीतवस्त्र धारी पुरुष चतुर्भुज रूप धारण किये और शांत स्वभाव से विराजमान है । उनके नेत्र कमल पत्रकी समान रक्तवर्ण के मुख सुंदर और प्रसन्न। दृष्टि मनोहर हास्ययुक्त; भौंहसुंदर, नासिका ऊंची, कर्णमनोहर, सुंदर कपोल, रक्तवर्ण के अधर भुजा मांसयुक्त और विशाल, दोनो कंधेऊंचे हैं और वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी विराजमान होरही हैं। उनका कण्ठशंखकी सामान, गंभीरनाभि, पीपलके पत्तेकी समान उदर(पेट)कमर और श्रोणि विशाल, दोनो उरु दोनोंजानु, और दोनोजंघा अत्यंत मनोहर हैं, उनके चरण कमल कुछ एक ऊंचे, ऊंचे गुल्फ, लाल नखों के समूह की कांति से वेष्टित, व कोमल अंगुली व अंगूठे रूप पंखुरियों से शोभायमान चरण कमल शोभित होरहे हैं। वह महामूल्य के मणियों से खचित किरीट कटक, अंगद, कटिसूत्र, यज्ञोपवीत, हारनूपुर, और कुंडल धारण कियेहुए शोभा पारहे हैं ॥ ४६–५१ ॥ उनके हाथमें कमल, शंख, चक्र, गदा, वक्षःस्थल में श्रीवत्स, और प्रकाशित कौस्तुभ और गलेमें बनमाला शोभायमान है ॥५२॥ निर्मल चित्त सुनंद, नंद और सनकआदि पार्षद, ब्रह्मा, रुद्रआदि सुरेश्वर, मरीच्यादि ब्राह्मणगण, और प्रह्लाद, नारद और बसुआदि भागवत प्रधान भिन्न २ वाक्यों द्वारा उनकी स्तुतिकररहे हैं ॥ ५३–५४ ॥ और श्री, पुष्टि, वाणी, कांति, कीर्त्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या,

द्ययाविद्ययाऽशक्त्या माययाचनिषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्यसुभृशंप्रीतो भक्त्या परमयायुतः । हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरागद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः । प्रणम्यमूर्ध्नावहितः कृतांजलिपुटःशनैः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अक्रूरउवाच । नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् । यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत एषलोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निःपवनःखमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि । सर्वेन्द्रियार्थाविबुधाश्चसर्वे येहेतवस्तेजगतोंगभूताः ॥२॥ नैतेस्वरूपंविदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतयागृहीताः । अजोऽनुबद्धःसगुणैरजाया गुणात्परंवेदनतेस्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वांयोगिनोयजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् । साध्यात्मंसाधिभूतंच साधिदैवंचसाधवः ॥ ४ ॥ त्रय्याचविद्ययाकेचित् त्वां वै वैतानिकाद्विजाः । यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एकेत्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमंगताः । ज्ञानिनोज्ञानयज्ञेन यजन्तिज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥ अन्येचसंस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेनते । यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्येशिवोक्तेन मार्गेणशिवरूपिणम् । बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥ ८ ॥ सर्वएवयजन्तित्वां सर्वदेवमयेश्वरम् । येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियःप्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवानद्यः पर्जन्याऽऽपूरिताःप्रभो । विश-

और अविद्या शक्ति और माया उनकी सेवा कररही हैं ॥५५॥ हेभरत नंदन ! अक्रूर बहुत देरतक इस अपूर्व दृश्यको देखते रहे; उनको अत्यंत स्नेह होआया, शरीर पुलकायमान होगया और चित्त तथा नेत्र द्रवीभूत हुए ॥ ५६ ॥ उन्हों ने सत्व गुणका अवलंबनकर ध्यान पूर्वक प्रणाम सहित हाथजोड़ गद्गद वाक्य से स्तुति करना आरंभ किया ॥ ५७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अक्रूरजी बोले कि—हे श्रीकृष्णजी ! मैं आपको प्रणामकरताहूं आप बालक नहीं हो, आदि पुरुषहो;आप सब कारणों के कारण, अव्यय, नारायणहो, आपकी नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआथा; उसी से ब्रह्माजी ने उत्पन्नहोकर समस्तसृष्टि की रचनाकीथी; —ऐसे आप को प्रणाम है ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, और आकाश, और अग्नि; अहंकार तत्व, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, मन, इंद्रियों के विषयसमूह तथा सम्पूर्ण देवता यहसब जगत के कारण आपके अंग से उत्पन्नहुए हैं ॥ २ ॥ प्रकृति आदि यहसब प्रत्यक्षादि द्वारा दृष्ट होते रहते हैं; अतएव यहजड़ हैं और इसही कारण यह आप के स्वरूप को नहीं जानसकते।ब्रह्माभी प्रकृति के गुणों से आच्छन्न हैं अतएव वह भी गुणों के परवर्त्ती आप के स्वरूपको नहीं जानसकते ॥ ३ ॥ योगी साधुगण-अध्यात्म, आधिभूत, और आधिदैव के साक्षी; आपकी आराधना महापुरुष और नियंतारूप से क्रिया करते हैं; कुछेक वेदविद्याद्वारा आपकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ कर्म योगिगण नानारूप और नानानाम से नाना विस्तृत यज्ञों द्वारा आप का भजन करते रहते हैं ॥ ५ ॥ जो ज्ञानीपुरुष सबकर्मों को छोड़कर शांत होरहे हैं वह ज्ञान यज्ञद्वारा ज्ञानरूपी आपकी पूजाकरते हैं ॥ ६ ॥ और दूसरे जिन मनुष्यों के चित्त बैष्णव, शैव आदिदीक्षासे दीक्षित हैं वह आपकी कहीहुई पंचरात्रादि के विधानों द्वारा बहुत रूप और एक रूप से आपकीही सेवा करते रहते हैं ॥ ७ ॥ और कितनेही शिवोक्त विधान से अनेकों आचार्य भेद से शिवरूपी भगवान आपकीही आराधना करते रहते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवमय ! हे प्रभो ! जो नाना देवताओं के भक्त हैं उनकी बुद्धि यद्यपि दूसरे में आसक्त है तौभी सबही आप ईश्वरकी पूजाकरते हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वत से

न्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोन्ततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः । तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे । गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः । द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः । निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः । यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि । तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च । हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे । क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह । वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे । नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने । म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते क

निकली हुई सबनदियें वर्षा के जल से पूर्णहो सब ओर से बहकर समुद्रही में जा गिरती हैं; तैसेही समस्त गति भी अन्त में आपही में जा मिलती हैं ॥ १० ॥ क्योंकि प्रकृति आपकी है; सत्व, रज, और तम प्रकृति के गुण हैं और ब्रह्मासे लेकर अचरतक प्रकृति के कार्य इन्हींगुणों के अंतर्गत हैं ॥ ११ ॥ आपको प्रणाम है, आप सर्वात्मा और साक्षीहो, अतएव आपकी बुद्धि किसी में लिप्त नहीं है और आप सर्व बुद्धिके साक्षीहो । हे प्रभो ! देव, मनुष्य, पक्षी जिनके आत्मा हैं और जो देवादि, शरीराभिमानी हैं उन सबही के मध्यमें आपका यह अविद्या कृतगुण प्रवाह प्रवृत्त रहता है, अतएव उनमें और आपमें बहुतभेद है ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! अग्नि आपका मुख, पृथ्वी आपका चरण, सूर्य आपके नेत्र, आकाश आपकी नाभि, दिशाऐं आपके कान, स्वर्ग आपका मस्तक, देवतागण भुजा, सब समुद्र आपकी कुक्षि, वायु आपका प्राण, और जल, वृक्ष तथा औषधियें आपके केश, पर्वत समूह आपके नख और अस्थि, रात्रि और दिन आपके निमेष, प्रजापति लिंग और वृष्टि आपका वीर्य है ॥ १३—१४ ॥ जलमें जलचर और गूलर के फलमें भुनगों की समान बहुत से जीव लोकपालों समेत लोकों में अव्ययात्मा मनोमय पुरुष आपसे विरचितहो विचरा करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से न जानने योग्य आपके स्वरूपको साधूगण अवतार कथामृत से सेवन करते रहते हैं ! आप क्रीड़ा के निमित्त इस पृथ्वीपर जो २ रूप धारण करतेहो मनुष्य उन्हीं के द्वारा सबशोकों कोछोड़ आनंद से आपके यशका गानकरते रहते हैं ॥ १६ ॥ आपआदि मत्स्यहो प्रलय सागर के जलमें विचरे थे, आपको नमस्कार है। आपने हयग्रीव होकर मधुकैटभको मारा था, आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ आपने बृहत् कूर्म होकर मंदर पर्वतको धारण किया था, आपने बराह मूर्त्तिहो पृथ्वी का उद्धारकर बिहार कियाथा आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे साधुजन के भय दूरकरने वाले! आपने अद्भुत नृसिंह रूप धारणकर हिरण्य कशिपुको माराथा, आपने वामन होकर त्रिभुवनको नाप लियाथा आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ आपने भृगुकुलके अधिपति परशुरामहो अहंकारी क्षत्रियोंका नाश कियाथा, आपने रघुकुल के धुरंधरहो रावणका वधकिया था आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ आप सङ्कर्षणहो आपही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सात्वतगणों के अधिपतिहो आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ आपदैत्य, दानवों के मोहन कारीशुद्ध बुद्धहो—आपको

ल्किरूपिणे ॥ २२॥ भगवञ्जीवलोकोऽयंमोहितस्तवमायया । अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यतेकर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहंचात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु । भ्रमामिस्वप्न कल्पेषुमूढः सत्यधियाविभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषुविपर्ययमतिर्ह्यहम् । द्व न्द्वारामस्तमोविष्टोनजानेत्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधोजलंहित्वाप्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः । अभ्येतिमृगतृष्णांवैतद्वत्वाऽहंपराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहंकृपणधीः कामकर्महतंमनः । रोद्धुंप्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७॥ सोऽहंतवांघ्र्यु पगतोऽस्म्यसतांदुरापंतच्चाप्यहंभवदनुग्रहईशमन्ये । पुंसोभवेद्यर्हिसंसरणापव र्गस्त्वय्यब्जनाभसदुपासनयामतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमोविज्ञानमात्रायसर्वप्रत्ययहे तवे ।पुरुषेशप्रधानायब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥ नमस्तेवासुदेवायसर्वभूतक्षयाय च । हृषीकेशनमस्तुभ्यंप्रपन्नंपाहिमांप्रभो ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

श्रीशुकउवाच । स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जलेवपुः । भूयःसमाहरत्कृ- ष्णो नटानाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोऽपिचान्तर्हितं वीक्ष्यजलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वाचावश्यकंसर्वं विस्मितोरथमागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किंतेदृष्टमि- वाद्भुतम् । भूमौवियतितोयेवा तथात्वांलक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूरउवाच । अद्भुता

नमस्कार है आपकल्की होकर म्लेच्छ राजाओंका नाशकरते रहतेहो, आपको नमस्कार है ॥२२॥ हे भगवन् ! यह समस्त लोक आपकी माया से मोहित है इसही कारण 'मैं, और 'मेरा, ऐसा मिथ्या अभिमानकर कर्म मार्गमें भ्रमण कररहे हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! मैं मूढभी स्वप्नकी समान देह, पुत्र, घर स्त्री, अर्थ और स्वजन आदिको सत्य जानकर भ्रमित होरहाहूं ॥ २४ ॥ अज्ञानसे आच्छन्न हुआ मैं अनित्य, अनात्म, दुःखों में चित्तलगाय द्वंद्व क्रीड़ा करता रहताहूं आत्मा और प्रिय आपको नहीं जानसकता ॥ २५ ॥ जैसे मूर्ख मनुष्य जलसे उत्पन्न हुए तृणादिकों से ढके जलको छोडकर मृगतृष्णा की ओर दौडता है तैसेही मैं आपको छोडकर देहादि की ओर चित्त लगारहा हूं ॥ २६ ॥ मेरीबुद्धि विषय वासनाओं से भ्रमित होगईहै मैं काम और कर्मों से क्षुभित और मतवालाहो इन्द्रियगणों से इधर उधर चलायमान मनको सावधान नहीं करसकता ॥ २७॥ ऐसे परवश हुआ मैं आपके चरणों की शरण में आया हूं। हे अंतर्यामिन् ! दुष्ट मनुष्य आपके चरणों की शरण नहीं पाता, अतएव मैं जानता हूं कि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है। हे पद्मनाभ ! जब मनुष्य के संसार की समाप्तिहो जाती है तभी साधुओंकी सेवाद्वारा आपमें उसकी बुद्धिहोती है, किंतु आपकी कृपानहोने से साधुसेवा आपमें उसकी बुद्धिकभी नहीं होती, फिरतो मुक्तिका होना भी असंभव है ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! आप विज्ञान मात्र और समस्त ज्ञानों के कारणहो । आप प- रिपूर्णहो और आपकी शक्ति अनंत है अतएव आप सबके नियंताहो, आपको नमस्कार है ॥२९॥ आप हृषीकेश, बुद्धि और मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धहो, मैंने आपके चरणों की शरणली है, हे प्रभो ! आप मेरीरक्षाकरो ॥ ३० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! अक्रूर स्तुति कररहेथे श्रीकृष्णजी नें नटके नाट्य की स- मान जलमें अपने शरीरको दिखाय फिर अन्तर्ध्यान करलिया ॥ ११ ॥ वह भी उन्हें न देख जल से उठे और शीघ्र आवश्यक कार्योंको समाप्तकर विस्मितहो रथमें लौटआये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजीने उनसे पूछा कि—हेअक्रूर ! तुम्हें देखकर जान पड़ताहै कि तुमने यहां जलमें अथवा आकश में

नीहयावन्ति भूमौवियतिवाजले । त्वयिविश्वात्मकेतानि किंमेऽदृष्टं विपश्यतः ।४। यत्राद्भुतानिसर्वाणि भूमौवियतिवाजले । तंत्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन्किंमे दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वाचोदयामास स्यंदनंगान्दिनीसुतः । मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥ मार्गेग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः । वसुदेवसुतौवीक्ष्य प्रीताद्दृष्टिनचाऽऽददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः । पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः । गृहीत्वापाणिनापाणिंप्रश्रितंप्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रेसहयानः पुरींगृहम् । वयंत्विहावमुच्याथततोद्रक्ष्यामहेपुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूरउवाच ॥ नाहंभवद्भ्यांरहितः प्रवेक्ष्येमथुरांप्रभो । त्यक्तुंनार्हसिमांनाथभक्तंतेभक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छयाम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज । सहाग्रजः सगोपालैःसुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहिपादरजसागृहान्नोगृहमेधिनाम् । यच्छौचेनानुतृप्यन्तिपितरः साग्नयःसुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीच्छ्लोक्योबलिर्महान् । ऐश्वर्यमतुलंलेभेगतिंचैकान्तिनांतुया ॥ १४ ॥ आपस्तेंघ्र्यवनेजन्यस्त्रीँल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् । शिरसाऽधत्तयाः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेवजगन्नाथपुण्यश्रवणकीर्तन । यदूत्तमोत्तमश्लोकनारायणनमोऽस्तुते ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्येभवतोगेहमहमार्यसमन्वितः । यदुचक्रद्रुहंहत्वावितरिष्येसुहृत्प्रियम् १७ श्रीशुकउवाच ॥ एवमुक्तोभगवतासोऽक्रूरो विमनाइव । पुरींप्रविष्टः कंसायकर्माऽऽवेद्यगृहंययौ ॥ १८ ॥ अ

कुछ अद्भुत सा देखाहै ॥ ३ ॥ अक्रूर ने कहा कि हे भगवन् ! जल थल व आकाशमें जो कुछ अद्भुतहै सबआपहीमें विराजितहै जब आपकेदर्शन भलीप्रकारसे करचुका तब किस अद्भुतके दर्शन न किये? हेपरमेश्वर ! आपहीमें सब अद्भुत प्रकाशित होतेहैं ॥४॥ हेभगवन् ! जब मैं आपहीका दर्शन करताहूं तब पृथ्वी आकाश व जलमें आप बिना दूसरा क्या अद्भुत देखाहोगा ॥ ५ ॥ हेमहाराज ! अक्रूर ने यह बात कहकर रथ चलाया और राम व कृष्णजी को लेकर संध्याकाल में मथुरा पहुंचे ॥ ६ ॥ हेराजन् मार्गसे जानेके समय राम कृष्ण जिन २ गांवों में होकर गये उन २ गावोंके मनुष्य आय २ कर उनके दर्शन कर २ आनन्दित हुये और अपनी दृष्टिको नहीं हटासके ॥ ७ ॥ नन्दादि ब्रजवासीगण पहिलेहीसे पहुंचकर नगर के उपवनमें ठहरे और श्रीकृष्णजी के आनेकी राह देखनेलगे ॥८॥ भगवान् जगदीश्वर नन्दादि से मिल विनीत अक्रूरका हाथ अपने हाथपर रख उनसे कहनेलगे कि—९ ॥ हेतात ! तुम रथ लेकर आगे २ नगरमें व घर में जाओ मैं इसस्थानमें बिश्रामकर फिर पुरीको देखूंगा ॥ १० ॥ अक्रूरने कहा कि—हेप्रभो ! मैं आपको बिनालिये पुरीमें प्रवेश नहीं करसकता हे भक्तवत्सल ! मैं आपका भक्तहूं मुझे त्यागना आपको उचित नहींहै ॥ ११ ॥ हेअधोक्षज ! हेसुहृत्तम गोपालगण और बन्धुओंके साथ मेरेघर में चलकर मुझे सनाथ करो ॥१२॥ मैं गृहस्थहूं आप अपने चरण रज द्वारा मेरे घरको पवित्रकरो उन चरणों के धोनेके जलसे पितृगण और अग्नि सहित देवतागण तृप्त होते हैं ॥ १३ ॥ उन चरणों को धोकर महात्मा बलिने पवित्र कीर्ति अतुल ऐश्वर्य और भक्तोंकी गति प्राप्त कीथी, ॥ १४ ॥ आपके चरणोंदक से त्रिलोकी पवित्र हुई है । महादेवजीने स्वयंही उस जलको शिरमें धारणकिया सगरकी संतानको उसी जलके प्रभाव से स्वर्गमें जानेकी शक्तिहुई ॥ १५ हेदेवदेव ! हेजगन्नाथ ! हेपवित्रकीर्ते ! हेपुण्यश्रवण ! हेपुण्यकीर्तन ! हेयदुश्रेष्ठ ! हेनारायण आपको नमस्कारहै ॥ १६ ॥ श्रीभगवानने कहा कि—अक्रूरजी ! बड़े भाई बलदेवजीके संग तुम्हारेघर आऊँगा और यदुकुलके हिंसकका मार सुहृदोंका कार्य पूराकरूंगा ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! भगवान्की इस बातको सुनकर अक्रूरजी कछेक मलीनहुए और पुरीमें प्रवेशकर कंससे सबवृत्तांत कह अपने

थापराह्णेभगवान्कृष्णः सङ्कर्षणाऽन्वितः । मथुरांप्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥ ददर्शतांस्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारांबृहद्धेमकपाटतोरणाम् । ताम्रारकोष्ठांपरिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् । वैदूर्यवज्राऽमलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषुवेदिषु ॥ २१ जुष्टेषुजालमुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् । संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरांप्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः । सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहांसपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तांसम्प्रविष्टौवसुदेवनन्दनौवृतौवयस्यैर्नरदेववर्त्मना । द्रष्टुंसमीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियोहर्म्याणिचैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणाविस्मृत्यचैकंयुगलेष्वथापराः । कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरानाङ्क्त्वाद्वितीयंत्वपराश्चलोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नन्त्यएकास्तदपास्यभोजनमभ्यज्यमानाअकृतोपमज्जनाः । स्वपन्त्यउत्थायनिशम्यनिःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्यमातरः ॥ २६ ॥ मनांसितासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः । जहारमत्तद्विरदेन्द्रविक्रमोदृशांददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा मुहुःश्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः । आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशा-

घरगये ॥ १८ ॥ तदनंतर भगवान ने मथुरा के देखने की इच्छा से गोपोंके साथ बलदेवजी कोले सायंकालको मथुरा में गये ॥ १९ ॥ वहां देखाकि—स्फटिक मणिके गोपुर और द्वार हैं, उसमें बडी २ तोरणें शोभा पारही हैं और सोने के कपाट लगरहे हैं। सब कोठेतांबे और पीतल के बने हुए हैं। वह पुरी चारों ओर से विशाल खाई द्वारा घिरीहुई हैं, इस कारण उस पुरीपर आक्रमण करना दुःसाध्य है। बाग, बगीचे, सुंदर उपवन उसकी शोभा बढारहे हैं ॥ २० ॥ सुंदर सुवर्ण के चौराहे, धनिकों के भवन, गृहके योग्य गृहमें उपवन, एकही प्रकार के व्योपारियों की मंडली और आन्यन्य दूसरे गृहोंने उसको अलंकृत कररक्खा है। वैदूर्यमणि, हीरा, स्फटिकमणि, नील मणि, मूंगा, मोती और हरित मणियों से जडेहुए झरोखों के छिद्र, छज्जे, वेदी शोभायमान होरहे हैं, सुवर्णमय वेदियों में मोर और कबूतर शब्द कररहे हैं। राजमार्ग, गली, बाजार और आंगन सबही में जल छिड़का हुआ है उन में फूल, अंकुर, लावा और चावल बिखरेहुए हैं ॥२१।२२॥ वहां के समस्तघर—दही और चन्दन से सिंचे, कुसुम और दीपकों की माला से सजे हैं, पत्र युक्त कदली के खम्भ और फलों के गुच्छों समेत सुपारी के वृक्ष तथा पट्टियें उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ २३ ॥ हेराजन्! राम और कृष्ण वयस्यगण से घिर राजमार्ग से होतेहुए पुरी में पहुंचे पुरनारियें उनके देखने को शीघ्रतापूर्वक घरोंकी छतपरचढ़गईं ॥ २४ ॥ शीघ्रताके कारण किसी किसी ने उलट वस्त्र आभूषण पहिन लिये, किसी २ ने एक कंकण के स्थानपर दो कंकणपहिन लिये, किसी २ ने कानपर एक २ पत्रलगाया, किसी २ ने एकही नूपुरपहिना, और कोई २ तो एकही आंखमें अंजनलगाकर दौड़ीं॥२५॥कोईतो भोजनकररहीथीं वे भोजन छोड़, कोई तैलमर्दन करवातीथीं वे बिना स्नानकिये श्रीकृष्णजीके देखनेको दौड़ीं,कोई२ सोरहीथीं वहशब्द सुनतेही उठीं औरमाता सन्तानोंको दूधपिलातेहुएभी उन्हेंछोड़कर चलीआईं॥२६॥ हेराजन्! मतवाले गजराज की समान, पराक्रमी, कमलाक्ष हरि ने सुन्दर लीला सहित कटाक्ष विक्षेप और लक्ष्मी को आनन्द देनेवाले अपने शरीरद्वारा नेत्रों को आनन्द उत्पन्नकर उनका मन हर लिया ॥ २७ ॥ हे शत्रुदमन! बारम्बार कृष्णजी के चरित्रों को सुनकर उन स्त्रियों के चित्त उन्हींकीओर दौड़े थे; इस समय उनके दर्शन कर उनके हास्ययुक्त कटाक्षरूप अमृत से मान प्राप्त किया औरनेत्रों

स्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥ २८ ॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः । अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः । तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् । या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ रजकं कंचिदायातं रंगकारं गदाग्रजः । दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥ ३२ ॥ देह्यावयोः समुचितान्यंग वासांसि चार्हतोः । भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः । साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥ ३४ ॥ ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः । परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा । बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥ ३६ ॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः । रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान्विसृज्य वै । दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा । शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् । विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपयतः ॥ ४० ॥ नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः । स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः । श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रि

के मार्गद्वारा उनको हृदय में स्थापित करके आलिंगनकर पुलकायमान होगई ॥ २८ ॥ प्रीति के वश से स्त्रियों के कमल मुख प्रफुल्लित होउठे वह महलों की चोटियों पर चढ़ राम और कृष्ण जी के ऊपर फूल बरसाने लगीं ॥ २९ ॥ ब्राह्मणों ने भी आनन्दित होकर स्थान प्रतिस्थान में जलयुक्त अक्षत, फूल, गंध, और भेट आदि से उनकी पूजाकी ॥ ३० ॥ नगर नारियें परस्पर कहनेलगीं कि—अहो ! गोपियों ने क्याबड़ी तपस्याकीथी कि—जिसके कारण इन परमआनन्द देनेवाले दोनों भ्राताओं का दर्शन प्रत्येक समय करती हैं ॥ ३१ ॥ हेराजन् ! उसी मार्ग से एक रंगकार धोबी आरहाथा, श्रीकृष्णजी ने उसे आता देख धुलेहुए उत्तम २ वस्त्र मांगे ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी ने कहा कि अहो रजक ! हमको उत्तम २ वस्त्रदो वस्त्र देने से निश्चयही तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ३३ ॥ वह रजक राजाकंस का सेवक होनें के कारण अत्यन्त अभिमानी था । पूर्णब्रह्म के वस्त्र मांगने को सुना अनसुना कर निजघमण्ड से अत्यन्त कुपितहो, तिरस्कार करके कहनेलगा कि— ॥ ३४ ॥ रेउदवृत्त तू पहाड़, जंगलों में घूमतारहता है, क्या नित्य ऐसेही वस्त्र पहिनता है जो राजा के वस्त्रों की प्रार्थना करता है ॥ ३५ ॥ शीघ्र दूरहो ! रेमूर्ख ! यदि तुझे अपने जीने की इच्छा है तो ऐसी प्रार्थना न करना । राजा के सेवक अभिमानी मनुष्यों को बांध देते, नाशकरदेते और उनकी सम्पत्ति छीन लेते हैं ॥ ३६ ॥ हेराजन् ! उस धोबी ने इस प्रकार से तिरस्कार करना आरम्भ किया तब श्रीकृष्णजी ने कुपित होकर हाथ द्वारा उस के शिर को धड़से हटादिया ॥ ३७ ॥ उस के सेवकगण सबवस्त्रों के गट्ठों को छोड़ चारों ओर को भगगये ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी व बलदेवजी ने उन सबवस्त्रों को ले अपनी इच्छानुसार उत्तम वस्त्र पहिन शेष वस्त्र गोपों को दे कुछेक पृथ्वी पर फेंकदिये ॥ ३९ ॥ तदुपरांत एक दर्जी आनन्दितहोकर वहां आया और बहुत २ उत्तम वस्त्र आभूषणोंद्वारा उस ने उनदोनों की वेशरचनाकी ॥ ४० ॥ राम कृष्ण नानाप्रकार के वेश धारणकर, उत्सव सिंगारकियेहुए श्वेत वर्ण और कृष्णवर्ण के बालगजकी समान शोभा पानेलगे ॥ ४१ ॥ भगवान ने प्रसन्न होकर उस

यम् ॥ ४२ ॥ ततःसुदाम्नोभवनं मालाकारस्यजग्मतुः । तौदृष्ट्वाससमुत्थाय ननामशिरसाभुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यंचार्घ्यार्हणादिभिः । पूजांसानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राहनःसार्थकंजन्म पावितंचकुलंप्रभो । पितृदेवर्षयोमह्यंतुष्टा ह्यागमनेनवाम् ॥ ४५ ॥ भवन्तौकिलविश्वस्य जगतःकारणंपरम् अवतीर्णाविहांशेन क्षेमायचभवायच ॥ ४६ ॥ नहिवांविषमादृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः । समयोःसर्वभूतेषु भजन्तंभजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतंभृत्यं किमहंकरवाणिवाम् । पुंसोत्यनुग्रहोह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्यराजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः । शस्तैःसुगन्धैः कुसुमैर्मालां विरचितांददौ ॥४९॥ताभिःस्वलंकृतौप्रीतौ कृष्णरामौसहानुगौ । प्रणतायप्रपन्नाय ददतुर्वरदौवरान् ॥ ५० ॥ सोऽपिवव्रेऽचलांभक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि । तद्भक्तेषुचसौहार्दं भूतेषुचदयांपराम् ॥ ५१ ॥ इतितस्मैवरान्दत्त्वा श्रियंचान्वयवर्धिनीम् । बलमायुर्यशःकान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच । अथव्रजन्राजपथेनमाधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्यकुब्जांयुवतींवराननां पप्रच्छयान्तींप्रहसन्रसप्रदः ॥ १ ॥ कात्वंवरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्यांगनेवा कथयस्वसाधुनः । देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते

दरजी को मुक्तिदी और इस लोक में लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मृति शक्ति और इंद्रिय पटुता प्रदान की ॥ ४२ ॥ तदनन्तर दोनों भाई सुदामा नाम माली के घरगये । सुदामा उनको देखतेही उठा और पृथ्वी पर गिर प्रणामकिया ॥ ४३ ॥ आसन पर बिठलाय पाद्य, अर्घ्य, पूजोपकरण, फूल, ताम्बूल और चन्दनादि से उनकी पूजाकर कहनेलगा कि—॥ ४४ ॥ हेप्रभो ! आप के आने से मेराजन्म सार्थक और कुल पवित्रहुआ तथा देवतागण व पितृगण मेरे ऊपर सन्तुष्टहुए ॥ ४५ ॥ आप निश्चयही जगतके परमकारणहो; आप कल्याण और कुशलता के निमित्तही अंशों समेत पृथ्वी पर अवतीर्ण हुएहो ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! जो आप का भजन करते हैं; यद्यपि आपभी उस को भजतेही रहतेहो तौभी आप में विषम दृष्टिनहीं है; क्योंकि आप जगतके आत्मा और बन्धुहो; आप के सबप्राणी समान हैं ॥ ४७॥ मैं आप का दासहूं ; आज्ञा करो; मैं आप का कौनसाकार्य करूं ? आपकी आज्ञा का पालन करना मनुष्यों को अत्यन्तही मंगलकारक है ॥ ४८ ॥ हेराजेन्द्र सुदामा ने इस प्रकार प्रार्थना कर,उनका अभिप्रायसमझ, आनन्दितहो फूलों की मालाबनायश्री कृष्णजी को पहिनाई ॥ ४९ ॥ राम, व कृष्णजी ने अनुचरों समेत उसमाला से भली प्रकार अलंकृतहो शरणागतसुदामा को अनेक बर दिये ॥ ५० ॥ उस माली ने—अखिलात्माभगवान् से अचलभक्ति, भक्तों का सत्संग और सबप्राणियों पर दया रहने की प्रार्थना की ॥ ५१ ॥ श्री कृष्णजीने उसको वही सब बरदानदिये और इस के प्रार्थना न करने परभी कहा कि–"हेमाल्य कार !तेरे वंशमें सदैव लक्ष्मी की वृद्धि रहेगी और तेरा बल, आयु, यश और कांति बढ़ती रहेगी इस प्रकार से बरदेकर वह भाई समेत वहां से आगे चले ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! तदनन्तर सुख देनेवाले श्रीकृष्णजीने राजमार्गमें जाते २ देखा कि—एक तरुण सुमुखी कुब्जा स्त्री चन्दनका पात्र हाथमें लिये उसी मार्गसे जारहीहै माधवने उसे देख हंसकर पूछा कि— १ ॥ हेवरोरु ! हेअंगने ! तुम कौनहो ? यह चन्दन किसके

नचिराद्भविष्यति॥२॥सैरन्ध्र्युवाच।दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामाह्य नुलेपकर्मणि । मद्भावितंभोजपतेरतिप्रियं विनायुवां कोऽन्यतमस्तदर्हति॥३॥रूपपे शलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः।धर्षितात्माददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम्॥४॥ततस्ता वंगरागेण स्ववर्णेतरशोभिना। संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ५ प्रसन्नोभग वान्कुब्जां त्रिवक्रांरुचिराननाम् । ऋज्वींकर्तुंमनश्चक्रे दर्शयन्दर्शनेफलम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यामाक्रम्यप्रपदेद्व्यंगुल्युत्तानपाणिना।प्रगृह्यचुबुकेऽध्यात्म सुदनीनमदच्युतः७ सातदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा। मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूवप्रमदोत्तमा८ ततोरूपगुणौदार्य संपन्नाप्राहकेशवम् । उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्तीजातहृच्छया ॥ ९ एहिवीरगृहंयामो नत्वांत्यक्तुमिहोत्सहे । त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीदपुरुष र्षभ ॥ १० ॥ एवंस्त्रियायाच्यमानः कृष्णोरामस्यपश्यतः । मुखंवीक्ष्यानुगोपानां प्रहसंस्तामुवाचह ॥ ११ ॥ एष्यामितेगृहंसुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् । साधिता र्थोगृहाणां नः पान्थानांत्वंपरायणम् ॥ १२ ॥ विसृज्यमाध्व्यावाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः । नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैःसाग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्मरक्षो भादात्मानंनाविदन्स्त्रियः । विस्रस्तवासःकवरवलयालेख्यमूर्तयः॥१४॥ ततःपौरा-न्पृच्छमनो धनुषःस्थानमच्युतः । तस्मिन्प्रविष्टोददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितंपरमर्द्धिमत् । वार्यमाणोनृभिःकृष्णः प्रसह्यधनुराददे ॥ १६॥

लगाओगी?मुझसे सत्य२कहो । हमदोनों भाइयों के तुम चन्दन लगादो तो तुम्हारा बहुत कल्याण होगा॥२॥कुब्जाने कहा कि—हेसुन्दर! मेरा नाम त्रिवक्राहै मैं राजा कंसकी दासीहूं और राजाके चन्दन लगातीहूं कार्यमें निपुण होनेसे राजा मेरा बहुत सन्मान करतेहैं और मेरे हाथका घिसा-हुआ चन्दन राजा को प्याराभी लगताहै इस चन्दनको आपके अतिरिक्त और कौन पासक्ताहै ? ॥ ३ ॥ हेराजन् ! भगवान् के रूप मधुरता युक्त हास्य बातचीत और दृष्टिसे बशीभूतहो कुब्जा ने उन दोनों भ्राताओं के चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ उस पीतादि चंदनके लगानेसे वह दोनों भाई परमशोभायमान हुये ॥ ५ ॥ भगवान्‌ने प्रसन्न होकर दर्शनों का फल देनके निमित्त उस कुब्जा त्रिवक्रा को सीधा पांवके करने की इच्छा की ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णजी ने अपने दोनों पैरोंसे उसके दोनों अग्रभाग को दाब हाथकी दोउंगलियां उठाकर ठोढ़ी के नीचे लगाय उसकी देहको उठा-दिया ॥ ७ ॥ भगवान का करस्पर्श होतेही कुब्जका अंग सुन्दर और समान होगया तथा नितम्ब और स्तन बड़े होनेसे एक उत्तम स्त्री होगई ॥ ८ ॥ हेराजन् ! वह रमणी—रूप गुण और उ-दारता युक्त होनेसे कामदेवके बशीभूत होगई और अहंकार सहित केशवके दुपट्टेका छोर खींच कर कहने लगी कि—९ ॥ हेवीर ! आओ घरचलें मैं इसस्थानसे तुमको छोड़कर नहीं जासकती हेपुरुषश्रेष्ठ ! तुमने मेरे चित्तको क्षुभित करदियाहै मेरे ऊपर कृपाकरो ॥१०॥ कुब्जाके इसप्रकार कहनेपर श्रीकृष्णजी राम और गोपोंके मुखको देख हँसते २ उससे कहने लगे कि—११ ॥ हे-सुन्दर भौंहवाली ! मैं कार्य सिद्ध होनेके उपरांत तेरेघरपर तेरे मनका दुःखदूर करनेको आऊँगा हे सुन्दरि ! स्त्री रहित हम पथिकों को तो तेराही परम आश्रयहै १२ ॥ श्रीकृष्णजी मधुर बाक्यों से उसको बिदाकर राजमार्ग से बणिक मार्गमें हो चलने लगे । बनियोंने अनेक भेट, ताम्बूल माला और गन्धसे बलरामजी समेत उनकी पूजाकी ॥ १३ ॥ उनको देखकर कामदेवके बेगसे स्त्रियों के बस्त्र करबी और कंकण गिरपड़े चित्रलिखी पुतलियों की समान रहगईं, ॥ १४ ॥ कुछ ज्ञान न रहा । हेराजन् ! तदनन्तर भगवान् ने नगर निवासियों से धनुर्यज्ञशाला को पूछ वहां प्रवेश किया और वहां इन्द्र धनुषकी समान अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ वह धनुष परम समृद्धि युक्त था बहुत मनुष्य उसकी रक्षा और पूजा करतेथे श्रीकृष्णजीने रक्षकोंसे निवारित होनेपरभी हंसते

करेणवामेनसलीलमुद्धृतं सज्यंचकृत्वानिमिषेणपश्यताम् । नृणांविकृष्यप्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डंमदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषोभज्यमानस्य शब्दःखंरोदसी दिशः । पूरयामासयंश्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणःसानुचराः कुपिताआततायिनः । ग्रहीतुकामाआवव्रुर्गृह्यतांवध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथतान्दुर-भिप्रायान्विलोक्यबलकेशवौ । क्रुद्धौधन्वनआदाय शकलेतांश्चजघ्नतुः ॥ २० ॥ ब लंचकंसप्रहितंहत्वाशालामुखात्ततः निष्क्रम्यचेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्यपुरसम्पदः ॥२१॥ तयोस्तदद्भुतंवीर्यं निशाम्यपुरवासिनः । तेजःप्रागल्भ्यंरूपंच मेनिरेविबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोःस्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् । कृष्णरामौवृतौ गोपैःपुराच्छ कटमीयतुः ॥ २३ ॥ गोप्योमुकुन्दविगमेविरहातुराया आशासताशिषऋतामधु-पुर्यभूवन् । संपश्यतांपुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नुभजतश्चकमेऽयनंश्रीः ॥२४॥ अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वाक्षीरोपसेचनम् ऊषतुस्तांसुखंरात्रिं ज्ञात्वाकंसचिकीर्षि तम् ॥ २५ ॥ कंसस्तुधनुषोभङ्गं रक्षिणांस्वबलस्यच । वधंनिशम्यगोविन्दरामवि-क्रीडितंपरम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरोभीतो दुर्निमित्तानिदुर्मतिः । बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणिच ॥२७॥ अदर्शनंस्वशिरसः प्रतिरूपेचसत्यपि । असत्यपिद्वितीये च द्वैरूप्यंज्योतिषांतथा ॥ २८॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः । स्वर्ण प्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्नेप्रेतपरिष्वङ्गःखरयानंविषादनम् ।

हुये उस धनुष को उठालिया ॥ १६ ॥ और देखनेवाले मनुष्योंके सामनेही बायेंहाथ से पकड़ पनच चढ़ाय खैंचकर एक क्षणभरमें बीचसे तोड़डाला कि—जैसे मतवाला हाथी ऊखके दण्डको तोड़डाले ॥ १७ ॥ धनुष जब टूटनेलगा तब उसका शब्द आकाश अन्तरिक्ष और दिशाओं में भरगया । उस भयानक शब्द से कंसका हृदय व्याकुल होउठा ॥ १८ ॥ धनुषके टूटने से धनुषके रक्षकगण कुपितहो सेवकों समेत उनके पकडने को । 'पकडो' 'मारो' कहकर सामने दौडे ॥ १९ ॥ राम, कृष्ण उनकी दुष्टता जानकर क्रोधित हुए और धनुषके दोनो खंडलेकर उनका नाश करनेलगे ॥ २० ॥ कंसने भी बहुतसी सेनाभेजी; परन्तु राम कृष्णने उस काभी नाश करदिया और अंतमें शाला से बाहरहो नगरकी सजावट देखते हुए प्रसन्न चित्तसे घूमनेलगे ॥ २१ ॥ पुरवासियों ने उनदोनो के अद्भुत पराक्रम, तेज, दृढता और रूपको देखकर उन्हें श्रेष्ठ देवतामान ॥ २२ ॥ राम कृष्णके भ्रमण करते २ सूर्यभी अस्तहोगये; तबगोपों के साथ अपने उस स्थानमें कि जहां शकट खड़थे आये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजी के यात्रा कालमें गोपियों ने मथुरा के सौभाग्य संबंध में जो २ कहाथा मथुरा निवासियों की इच्छा पूरीहुई; क्योंकि ब्रह्मादि देवतागण जिनलक्ष्मी की कृपाकटाक्ष पानेके निमित्त उनका भजन करते रहते हैं वही लक्ष्मी भी जिनका रातदिन भजन करती हैं आज नगर निवासियों ने उन्हीं भगवान के दर्शन किये ॥ २४ ॥ हे राजन्! अनंतर राम, कृष्णने पांवधोय दूधमिले हुए अन्नका भोजन किया, और कंसका अभि-प्राय समझ उस रात्रिको तोवहीं सुख से विताया ॥ २५ ॥ हे महीपते ! जबदुष्ट कंसने सुना कि—राम कृष्णने सहजहीसे धनुषको तोडा उसके रक्षकों सहित मेरीसेनाका नाशकर दिया, तब फिर उसके भयकी सीमा न रही । उस रात्रिको उसे नींद भी न आई और जागते व सोते दोनो अ-वस्थाओं में वह मृत्यु सूचक भयानक दृश्य देखनेलगा ॥ २६—२७ ॥ कंसने देखाकि—जलादि में अपना प्रतिबिंबतो देखपडता है परन्तु उसमें शिरही नहीं है; अंगुली आदिकोई पदार्थ आंख की कोरमें न लगाने परभी सब पदार्थ दो २ दिखाई देनेलगे ॥ २८ ॥ प्रतिबिंब में छिद्र प्रतीत होनेलगे, अंगुली से कानबंद करनेपर प्राणशब्द सुनाई नहीं आता । वृक्षगण सुनहले जान पडने लगे, धूल कीचआदिमें पांवोंके चिह्न नहीं देखपडते ॥ २९ ॥ स्वप्नमें प्रेतके साथ आलिंगन करने

यायाच्चलद्माल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च । पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते । कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तुर्यभेर्यश्च जघ्निरे । मञ्चाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः । यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥ कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमञ्चउपाविशत् । मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च । मल्लाः स्वलंकृताः दृप्ताः सोपाध्यायाः समासत ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च । त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः । निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मञ्चआविशन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भा०म०द०पू०मल्लरङ्गोपवर्णनंनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ॥ मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः । १ ॥ रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् । अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् । नो चेत्सकुंजरं त्वाऽद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः

लगा, गधेपर सवार होकर फिरने और मृणाल भक्षण करनेलगा । और देखा कि एक पुरुष तैल लगाए, नंगेबदन, जवाके लाल फूलोंकी माला धारण किये सन्मुख आरहा है । जागते और सोते में राजा कंस ऐसे ऐसे अशुभदृश्योंको देख अत्यंत भयभीत हुआ, इस दारुणदृश्य के कारण वह रात्रिको कुछ देरभी न सोसका ॥ ३०–३१ ॥ हे कुरुनंदन ! रात्रिव्यतीत हुई प्रभात हुआ, देखते २ सूर्यदेव जलसे बाहर निकले । तब कंसने मल्लक्रीडा महोत्सव के आरंभ करने की आज्ञादी ॥ ३२ ॥ मनुष्य रंगभूमिको सजाय तूरी, भेरीआदि बजानेलगे; सबमंच माला, पताका, वस्त्र और तोरणसे अलंकृत हुए ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रीआदि सब नगर निवासी व देश निवासी उनपर सुख पूर्वक बैठे और राजालोग भी अपने २ आसनोंपर बैठे ॥ ३४ ॥ कंसभी राजमंत्रियों से घिर राजमंचमें मंडलेश्वर राजाओं के बीचसंतप्त अंतःकरण से बैठा ॥ ३५ ॥ तदनंतर बाजे बजनेलगे । जब मल्लों का ताल बड़ेशब्द से सुनाई देनेलगा तब अहंकारी मल्लगण भलीप्रकार से अलंकृतहो गुरूओं के साथ सभामें आये ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल–यह सब मनोहर बाजोंको सुनकर प्रसन्न चित्तहो अखाड़े में आये ॥ ३७ ॥ नंदादि गोपगण भी कंसका बुलावा पाय वहां आय राजाको भेटआदि दे एक मंचपर बैठगये ॥ ३८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेपरंतप ! अनन्तर राम, कृष्ण, मल्ल, दुन्दुभी का शब्द सुनकर देखने के निमित्त मल्ल रंगमें आए । उन्होंने पहिलेही दिन यह बिचार कियाथा कि—हमने धनुर्भंगादि द्वारा अपने ऐश्वर्य को प्रकाशित कियाहै परंतु तौ भी दुष्ट कंसने हमारे माता पिताको न छोड़ा हमारे मारनका भी उद्योग कररहाहै अतएव वह मामा होकर भी मारने योग्य है इसके मारनेसे हमें कोई दोष नहींहै ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजीने रंगद्वारमें पहुंचकर देखा कि महावतसे प्रेरित कुबलया पीड़ हाथी वहांपर खड़ाहै ॥ २ ॥ यह देखकर भगवान् युद्ध वेशकी रचना कर टेढ़ी अलकोंको बांध मेघकी समान गम्भीर बचन महावत से कहनेलगे कि—॥ ३ ॥ हे महावत ! अहो महावत! हम दोनों भाइयोंको मार्गदो, शीघ्र हटजाओ नहीं तो हाथीसमेत इसीसमय तुझे यमपुरी

कोपितं गजम्। चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम्॥ ५॥ करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत्। कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत॥ ६॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम्। परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः॥ ७॥ पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पंचविंशतिम्। विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया॥ ८॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः। बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः॥ ९॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम्। प्राद्रवन्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे॥ १०॥ स धावन्क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः। तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनात्क्षितिम्॥ ११॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुंजरेन्द्रोऽत्यमर्षितः। चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा॥ १२॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः। निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले॥ १३॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया। दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः॥ १४॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्। अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरंकितः॥ १५॥ विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ। वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ रंगं विविशतू राजन्गजदन्तवरायुधौ॥ १६॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः। मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥ १७॥ हतं कुबलयापीडं दृष्ट्वा

भेजूंगा॥ ४॥ महावत ऐसे तिरस्कार के वाक्य सुन कुपित हुआ और कालांतक यमतुल्य हाथी को कुपित करके श्रीकृष्णजी के ऊपर चलाया॥ ५॥ गजराजने उनके सन्मुख दौड़कर उन्हें सूंड से पकड़ लिया। वह शुण्डसे निकल हाथीके पांवपर प्रहारकर अदृश्य होगये क्रोधित हाथीने श्रीकृष्णजीको न देखकर सूंघते २ फिर उनको सूंडसे पकड़ा परन्तु वह फिर बलपूर्बक निकलगए। ॥ ७॥ गरुड़ जैसे खेलसेही सांपको खींचताहै श्रीकृष्णजी वैसेही अति बलसे हाथीकी पूँछपकड़ २५ धनुष तक पीछे घसीट लेगये॥ ८॥ हाथी जैसे बाईं ओर दाहिनी ओर घूमनेलगा भगवान भी वैसेही उसको घुमातेहुये गौ बछड़ोंके साथ बालकों की समान उसके साथ भ्रमण करनेलगे। श्रीकृष्णजीने उसकी पूँछ पकड़ली थी उनके पकड़नेके निमित्त कुबलया जैसेही बाईंओरको फिरता तैसेही वहउसके दाहिनी ओर और वह दाहिनी ओर जाता तो वह बाईंओर भ्रमणकरातेथे॥ ९॥ तदनंतर भगवान ने हाथी के सन्मुख आय हाथसे उसके ऊपर प्रहार किया और चारों ओर दौड़ २ उसके पैरोंमें ठोकरें मार मार गिरादिया॥ १०॥ भगवान क्रीडा क्रमसे दौडते २ पृथ्वीपर गिर तत्काल उठ खडेहुए। वह गिरपड़े हैं—यह विचारकर क्रोधित हाथी दोनोदांतों से पृथ्वीपर आघात करनेलगा॥ ११॥ परन्तु अपने पराक्रमको व्यर्थ हुआ जान गजराज अत्यंत क्रोधित हुआ और महावत से प्रेरितहो क्रोध पूर्वक श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा॥ १२॥ वह जैसेही निकट आया तैसेही भगवान मधुसूदन ने हाथों से उसकी सूंड पकड़ पृथ्वीपर गिरादिया॥ १३॥ हाथी के गिरतेही; सिंहकी समान सहजही में भगवानने उसको लातों से मार दांतउखाड लिय और उन्हीं दांतों से उसे व महावतको मारडाला॥ १४॥ तदनंतर मरहुए हाथीका छोड श्रीकृष्णजी दांत हाथमें ले रंगभूमि में आये कांधे में दांत धरेहुए, सब शरीर रुधिर और हाथीके मदकणों से भीगाहुआ वदन में पसीना निकल रहाथा, इससे वह अत्यंत शोभायमान होरहे थे॥ १५॥ हे राजन्! बलदेवजी व भगवान् श्रीकृष्णजी कुछएक गोपोंको साथलिये, दंतरूप श्रेष्ठअस्त्र धारणकिये, रंगभूमिमें आये ॥ १६॥ वह भाई के साथ प्रवेश करके,—मल्लोंके पक्षमें वज्र, मनुष्योंको मनुष्य श्रेष्ठ, स्त्रियोंको मूर्तिमान कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको शासन कर्त्ता, अपने पितामाताको पुत्र, कंस को मृत्यु, गंवारोंको गंवार, योगियोंको परमतत्व, और वृष्णिगणको परम देवता रूप से जानपडे

तावपिदुर्जयौ । कंसोमनस्व्यपितदा भृशमुद्विविजेनृप ॥१८॥ तौरंजितुरंगगतौमहाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ । यथानटावुत्तमवेषधारिणौ मनःक्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्यताउत्तमपूरुषौ जना मंचस्थितानागरराष्ट्रकानृप । प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणानना पपुर्नतृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥ पिबन्तइवचक्षुर्भ्यां लिहन्तइवजिह्वया । जिघ्रन्तइवनासाभ्यां श्लिष्यन्तइवबाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुःपरस्परंतैवै यथादृष्टंयथाश्रुतम् । तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिताइव ॥ २२ ॥ एतौभगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्यहि । अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्यवेश्मनि ॥ २३ ॥ एषवैकिलदेवक्यां जातोनीतश्चगोकुलम् । कालमेतंवसन्गूढो ववृधेनन्ददेश्मनि ॥ ॥ २४ ॥ पूतनानेननीतान्तं चक्रवातश्चदानवः । अर्जुनौगुह्यकःकेशी धेनुकोन्येचतद्विधाः ॥ २५ ॥ गावःसपालाएतेन दावाग्नेःपरिमोचिताः । कालियोदमितःसर्पइन्द्रश्चविमदःकृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोद्रिप्रवरोऽमुना । वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातंचगोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् । पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमंमुदा ॥ २८ ॥ वदन्त्यनेनवंशोऽयं यदोःसुबहुविश्रुतः । श्रियंयशोमहत्त्वंच लप्स्यतेपरिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयंचास्याग्रजःश्रीमान्रामःकमललोचनः । प्रलम्बोनिहतोयेन वत्सकोयेबकादयः ॥३०॥ जनेष्वेवंब्रुवाणेषु तूर्येषुनिनदत्सुच । कृष्णरामौसमाभाष्य चाणूरोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ हेनन्दसूनोहेराम भवन्तौवीरसंमतौ । नियुद्धकुशलौश्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौदिदृक्षुणा ३२

॥ १७ ॥ हे महाराज! कुवलया पीड़को मराहुआ देखकर दुष्टकंस राम, कृष्ण के जीतनेको दुःसाध्य जानकर मनमें अत्यंत भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ महाभुज दोनोभ्राता—विचित्रवेश, आभरण, माला और वस्त्र धारणकर रंगभूमि में आय, श्रेष्ठ वेशधारी दोनटों की समान, अपने प्रकाश द्वारा दर्शकों के मनको विचलित करनेलगे ॥ १९ ॥ हेराजन्! उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषोंको देख मंचपर बैठेहुए नगर निवासी और राजाओं के मुख और नेत्र हर्ष से प्रफुल्लितहो उठे; वह नेत्रोंद्वारा उनके मुखका पानकरने लगे परन्तु तौभी उनकी तृषा न बुझी ॥ २० ॥ वे लोग नेत्रों से मानोपान करतेहों, जिह्वा से चाटतेहों, नासिकासे सूँघतेहों, भुजासे मिलतेहों ऐसे ज्ञातहोरहे थे॥२१॥उन्होंने जिसप्रकारदेखा और सुनाथा उसी प्रकार आपस में बात करनेलगे। उस समय राम, कृष्णकेरूप गुण, मधुरता, और धृष्टताने मानों उनको स्मरण दिलादिया॥२२॥ वह कहनेलगेकि—यह दोनों जन साक्षात् भगवान के अंश से पृथ्वीपर बसुदेव के घर में अवतीर्ण हुए हैं॥२३॥ यही देवकी के गर्भ से उत्पन्नहुएथे, इन्हीं को गोकुल लेजायागयाथा। वहांपर इतने समयतकगुप्तभावसे रहकर नन्दके घरमेंही वृद्धि पाई है ॥ २४ ॥ इन्हीं के हाथसे पूतना, तृणावर्त्त, यमलार्जुन, धेनुक, केशी, शंखचूड़, औरभी कई एक अघासुरादि दैत्य नष्टहुए हैं ॥ २५ ॥ इन्होंने ग्वालोंसमेत गायों को दावाग्निसे छुटायाथा; इन्हीं ने कालिय सर्पका दमन कियाथा, इन्द्रका गर्व इन्हींसे खर्व हुआ था ॥ २६ ॥ इन्होंने सातदिनतक एकहाथसे पहाड़को धारण कियाथा तथा इन्होंने वर्षा, वायु, और वज्रसे गोकुलकी रक्षाकी थी ॥ २७ ॥ इनके मुखसे निरंतर हास्य और कटाक्ष प्रकाशित रहते हैं, गोपियें इन्हींके किंचित् हास्यको देखकर आनंदितहो अनेक संतापोंको दूर करतीरहती हैं ॥२८॥ यदुका विख्यात् बंश इन्हीं से रक्षितहोकर लक्ष्मी, यश और महत्व प्राप्त करेगा २९॥ कमल लोचन भगवान् बलदेवजी इनके बड़े भाई हैं; इन्होंने प्रलम्बको माराथा। बत्स और बकादिभी इन्हींके हाथसे मारेगये थे ॥३०॥ मनुष्यगण इसप्रकारसे कहरहेथे और बाजे सबबजरहे थे—कि उसीसमय में चाणूर ने राम कृष्णको ललकारकर कहा कि ॥ ३१ ॥ हे नंदतनय! हे राम! तुम दोनोंजन बड़े पराक्रमी और मल्लयुद्धमें बड़े निपुणहो, राजाने यह सुनकर परीक्षाके

प्रियंराज्ञःप्रकुर्वत्यः श्रेयोविन्दन्तिवैप्रजाः। मनसाकर्मणावाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यंप्रमुदितागोपा वत्सपालायथास्फुटम्। वनेषुमल्लयुद्धेन क्रीडन्त श्चारयन्तिगाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञःप्रियंयूयं वयंचकरवामहे। भूतानिनःप्रसीदन्ति सर्वभूतमयोनृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितंवचः। नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्यच ॥ ३६ ॥ प्रजाभोजपतेरस्य वयंचापिवनेचराः करवामप्रियंनित्यं तन्नःपरमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बालावयंतुल्यबलैः क्रीडिष्यामोयथोचितम्। भवेन्नियुद्धंमाऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥ चाणूरउवाच। नबालोनकिशोरस्त्वं बलश्चबलिनांवरः। लीलयेभोहतोयेन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥३९॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्रवै। मयिविक्रमवार्ष्णेय बलेनसह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंचर्चितसङ्कल्पोभगवान्मधुसूदनः। आससादाथचाणूरं मुष्टिकंरोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यांहस्तयोर्बद्ध्वापद्भ्यामेवचपादयोः। विचकर्षतुरन्योन्यंप्रसह्यविजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नीद्वेअरत्निभ्यांजानुभ्यांचैवजानुनी। शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः। उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यंप्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनै

निमित्त तुम्हें बुलाया है ॥ ३२ ॥ प्रजागण—कर्म, मन और वाक्यद्वारा राजाका प्रियकरकेही कल्याण प्राप्त करते हैं, इसका अन्यथाहोने से विपरीत फल प्राप्तहोता है ॥ ३३ ॥ औरभी कहा है कि—गोपगण नित्य आनंदित मनसे बनमें मल्लयुद्ध क्रीड़ाकरके गोचारण करतेहुए घूमते रहते हैं ॥ ३४ ॥ अतएव आओ तुम और हम राजाकी इच्छा पूर्णकरें। ऐसा होनेसे सबमनुष्य हमारे तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहोंगे, क्योंकि राजाही सर्वभूत स्वरूपहोते हैं ॥३५॥ बाहु युद्धही श्रीकृष्णजीका अभीष्टथा, अतएव चाणूर के वचनोंको सुन उसका सनमानकर देश और कालके अनुसार उससे कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि यद्यपि हम बनचर हैं तौभी राजाकंसकी प्रजाही हैं। "राजाकी इच्छा पूर्ण करूं" यह आज्ञा मेरे पक्षमें अत्यन्तही अनुग्रह की है—परन्तु हम बालक हैं अतएव हमारी समान बलशाली बालकोंके साथ जैसे बाहु युद्ध होताहै वैसेही क्रीड़ा करना चाहिये। ऐसा होनेसे मल्लसभासदों को अधर्म स्पर्श न करेगा ॥ ३७—३८ ॥ चाणूरने कहाकि—तुम अथवा बलदेव, इनमें से कोई न तो बालक हैं न किशोरही हैं तुम बलवानों में श्रेष्ठहो; जिसहाथी में सहस्रहाथियों का बलथा उसहाथीको तुमने सहजही में मारडाला ॥ ३९ ॥ अतएवजो बलवानहो उसी के साथ तुमको युद्धकरनायोग्य है; इससे किसीप्रकारकाभी अधर्मनहीं है। हे वृष्णिनन्दन! आओ, तुम मेरे ऊपर अपना पराक्रम प्रकाशकरो, और मुष्टिक बलभद्र के साथ मल्लयुद्धमें प्रवृत्तहो॥४०॥

इतिश्री मद्भा० स० दशम० सरलाभाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! इसप्रकार दृढ़ निश्चय होनेपर भगवान् श्रीकृष्णजीचाणूर से और रोहिणीनन्दन मुष्टिक से भिड़े ॥ १ ॥ दोनों हाथोंसे दोनों हाथ, और दोनों पैरों से दोनों पैर लपेट जय करने की इच्छासे दोनों एक दूसरे को परस्पर खींचने लगे ॥ २ ॥ एकजनअपनी अरत्नि दूसरे की अरत्नि में, घुटनों में घुटना, शिर में शिर, छाती में छाती, परस्पर भिड़ाने लगे ॥ ३ ॥ चारोंओर घुमाना, दोनों बाहों से धक्कादेना, हाथ में लेकर दबाना, नीचे गिराना, आगे बढ़ना, पीछे हटना, ऐसे पेचों से एक दूसरेको घुमाने लगे ॥ ४ ॥ घुटना और पांव समेटकरपड़

स्थापनैरपि। परस्परंजिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः॥ ५॥ तद्बलाबलवद्युद्धंसमेताः सर्वयोषितः। ऊचुः परस्परंराजन्सानुकम्पावरूथशः॥ ६॥ महानयंबताऽधर्मएषांराजसभासदाम्। येबलाबलवद्युद्धंराज्ञोऽन्विच्छन्तिपश्यतः॥ ७॥ क्ववज्रसारसर्वाङ्गौमल्लौशैलेन्द्रसन्निभौ। क्वचातिसुकुमाराङ्गौकिशोरौनाप्तयौवनौ। ८। धर्मव्यतिक्रमोह्यस्यसमाजस्यध्रुवंभवेत्। यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्नस्थेयंतत्रकर्हिचित्॥ ९॥ नसभांप्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन्। अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञोनरः किल्बिषमश्नुते॥ १०॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्यवदनाम्बुजम्। वीक्ष्यतांश्रमवार्युप्तंपद्मकोशमिवाम्बुभिः॥ ११॥ किंनपश्यतरामस्यमुखमाताम्रलोचनम्। मुष्टिकंप्रतिसामर्षंहासंरम्भशोभितम्॥ १२॥ पुण्याबतव्रजभुवोयदयंनृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषोवनचित्रमाल्यः। गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्चवेणुंविक्रीडयाऽञ्चतिगिरित्ररमार्चितांघ्रिः॥ १३॥ गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्यरूपंलावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्। दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवंदुरापमेकान्तधामयशसः श्रियऐश्वरस्य॥ १४॥ यादोहनेऽवहननमथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ। गायन्तिचैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्योधन्याव्रजस्त्रियउरुक्रमचित्तयानाः॥ १५॥ प्रातर्व्र

हुए को सरकाना, उठाना, चलाना, और चिपटेहुए को दूरकरना इसप्रकार से ऐसी क्रियाएं कर कर दोनों एक दूसरे के जीतने की इच्छा से अपनी २ देहों का तिरस्कार करनेलगे॥ ५॥ हे राजन्! उस युद्ध में एक ओर बलवान और एक ओर निर्बल देखकर सबस्त्रियें एकत्रितहो दयार्द्र चित्तसे परस्पर कहनेलगीं कि—॥ ६॥ यह मल्लयुद्ध अत्यन्त अयोग्य है! अहो! यहांकेराज सभासद् अत्यन्तही अधर्मी हैं। बालक के साथ बलवान का मल्लयुद्ध देखकरराजा को तो निवारण करना चाहिए बरन ऐसा न करके वह स्वयंही उसका अनुमोदन करते हैं॥ ७॥ पर्वतराज की समान इन दोनों मल्लों के सर्वांग बज्रकी समान कठोरहैं—और यह दोबालक सुकुमार किशोर अवस्था के हैं—इस समय तक युवावस्था में नहीं आये; इनका परस्पर युद्धहोना कभी उचितनहीं है॥ ८॥ निश्चयही इस सभा में धर्म का उल्लंघन होरहा है; जिस स्थान में अधर्म होवे उस स्थान में कभी नहीं रहना चाहिये॥ ९॥ सभा में जो जानबूझकर भी नहीं कहते, जो बिपरीत कहते हैं, या जो कहते हैं किहम कुछ नहीं जानते; वहसब दोषी होते हैं अतएव सभासदों के दोष जाननेवाले बुद्धिमानपुरुष को ऐसी अधर्म की सभा में न जानाचाहिए॥ १०॥ देखो—शत्रु के चारों ओर घूमने से श्रीकृष्णजी का मुख कमल, जल से व्याप्त कमलकी समान पसीने से व्याप्त होरहा है॥ ११॥ तब दूसरी सखी ने कहा कि—तुमव्याकुल क्यों होतीहो, तुमक्या नहींदेखतीं कि-राम का कुछक लालवर्ण का सुन्दर मुख, मुष्टिकके ऊपर क्रोधयुक्त होने परभी हास्य के बग से कैसा शोभायमान होरहा है॥ १२॥ व्रज की भूमि बड़ी पुण्यवान है; क्योंकि शिव और लक्ष्मी जिनके चरणों की पूजाकरती हैं; वही पुराण पुरुष मनुष्यरूप धारणकर, बन से उत्पन्नहुए मालादिन बंशीबजाते२ बलरामजीके साथ गौचरातेहुए वहां भ्रमण करते हैं॥ १३॥ गोपियोंने क्या तपस्या कीथी—कि जो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कि जो लावण्यसे श्रेष्ठ, नित्यप्रति नवीनदुर्लभ, कीर्त्ति, लक्ष्मी, और ऐश्वर्यका अविचलधाम, स्वयं सिद्ध, और सृष्टि में न कोई उसके समानहै न अधिक है उसे नेत्रोंसे मानो पीजातीहों ऐसे देखतीहैं,॥ १४॥ सब ब्रजांगनाओं का धन्यहै, कि—वह गद्गद कण्ठहो दोहन, अवस्थित, मंथन उपलेपन और बालकों के रोदन सेचन और मार्जन इत्यादि सब समय में ही इनको पवित्र कीर्तिका गान करती रहती हैं उनकी बुद्धि इन्हीं भगवान्में लगी रहतीहै अतएव इनमें जिनका चित्त अर्पित है उनको सब बिषय प्राप्त होजाते हैं। जब हरि

जाद्व्रजतआविशतश्चसायंगोभिः समंक्वणयतोऽस्यनिशम्यवेणुम् । निर्गम्यतूर्णमबलाः पथिभूरिपुण्याः पश्यन्तिसस्मितमुखंसदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवंप्रभाषमाणासुस्त्रीषुयोगेश्वरोहरिः । शत्रुंहन्तुंमनश्चक्रेभगवान्भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाःस्त्रीगिरः श्रुत्वापुत्रस्नेहशुचातुरौ । पितरावन्वतप्येतांपुत्रयोरबुधौबलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ । युयुधातेयथान्योन्यंतथैवबलमुष्टिकौ ॥१९॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः । चाणूरोभज्यमानाङ्गोमुहुर्ग्लानिमवापह ॥२०॥ सश्येनवेगउत्पत्यमुष्टीकृत्यकरावुभौ । भगवन्तंवासुदेवंक्रुद्धोवक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत्तत्प्रहारेणमालाहतइवद्विपः । बाह्वोर्निगृह्यचाणूरंबहुशोभ्रामयन्हरिः ॥२२॥ भूपृष्ठेपोथयामासतरसाक्षीणजीवितम् । विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वजइवापतत् ॥ २३ ॥ तथैवमुष्टिकः पूर्वंस्वमुष्ट्याभिहतेनवै । बलभद्रेणबलिनातलेनाभिहतोभृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः सरुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः । व्यसुः पपातोर्व्युपस्थेवाताहतइवांघ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तंरामः प्रहरतांवरः । अवधील्लीलयाराजन्सावज्ञंवाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येवहिशलः कृष्णपदापहतशीर्षकः । द्विधाविदीर्णस्तोशलकउभावपिनिपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरेमुष्टिकेकूटेशलेतोशलकेहते । शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वेप्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान्वयस्यानाकृष्यतैः संसृज्यविजह्रतुः । वाद्यमानेषुतूर्येषुवल्गन्तौधृतनूपुरौ ॥ २९ ॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वेकर्मणा

बेणु बजाते २ गोपोंके साथ प्रातःकाल ब्रजसे बाहर होते हैं तब बेणुके शब्दको सुनतेही वह सब स्त्रियें बाहर निकलकर दया दृष्टि से मार्गमें इनके मुखको देखा करतीहैं उनके अनेक पुण्यहैं ॥ ॥ १५—१६ ॥ हेभरतश्रेष्ठ ! स्त्रियें इसभांति कहतीथीं उसीसमय योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्ण जीने शत्रुके मारनेकी इच्छाकी ॥ १७ ॥ स्त्रियों के बाक्य सुन २ कर राम कृष्णके पिता माता पुत्र स्नेह के कारण शोकसे कातर होगए, और दोनों पुत्रोंके पराक्रम को न जान सन्ताप करने लगे ॥ १८ ॥ चाणूर और केशव जिसप्रकारसे मल्लयुद्ध करतेथे बलदेवजी और मुष्टिकभी ठीक उसीप्रकारसे करनेलगे ॥१९॥ भगवान् के तीक्ष्ण बज्रपातकी समान कठिन अंगके प्रहारसे भग्नांग होकर चाणूर बारम्बार कष्ट पानेलगा ॥ २० ॥ श्येन (बाज) की समान बेगवाले चाणूर ने दोनों हाथोंसे मूठी बांध छलांग मार क्रोधसे भगवान् की छातीपर प्रहार किया ॥ २१ ॥ किंतु वह फूलोंसे मारेहुए हाथीकी समान उसके प्रहारसे कुछभी बिचलित न हुए श्रीकृष्णजी चाणूर को दोनों बाहोंसे पकड़ उसको बारम्बार घुमानेलगे, इससे उसकी जीवनी शक्ति क्षीण होआई, फिर बलपूर्वक पृथ्वीपर पछाड़ दिया पछाड़तेही उसके गहने केश और माला बिखरगये और वह इन्द्रध्वज की समान प्राण रहित होगया ॥ २२ ॥ मुष्टिकने भी पहिले अपनी मूठा द्वारा बलभद्र जी पर प्रहार कियाथा और बलशाली बलभद्रने भी मूठी द्वारा उसपर घोर प्रहार किया, २४ ॥ उनके प्रचण्ड प्रहारसे मुष्टिक कांपने लगा और व्यथित होकर मुख से रक्त उगलते २ बायुसे गिरेहुए बृक्षकी समान प्राण रहितहो पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! मुष्टिकके प्राण त्याग करनेंपर कूट नामक दैत्य बलभद्रजी के सन्मुख हुआ । प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ बलरामजी ने उसका निरादर कर बाएं घूसेसे प्रहारकर सहजही में उसको मारडाला ॥ २६ ॥ ठीक उसी समय में शल और तोशल नामक दोमल्लों ने श्रीकृष्णजी के पैरों के प्रहार से भग्नशिर तथा दोनों भागों से बिदीर्ण होकर प्राण त्याग दिये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल को निहत होता देख सब मल्ल प्राण रक्षाके निमित्त वहां से भागगए ॥ २८ ॥ उस काल सबबाजे बजरहे थे । तदनंतर राम और कृष्ण चरणों में रत्ननूपुर धारणकर साथवाले

रामकृष्णयोः कृतेकंसंविप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥३०॥ हतेषुमल्लवर्येषु विद्रुतेषुचभोजराट् । न्यवारयत्स्वतूर्याणिवाक्यंचेदमुवाचह ॥३१॥ निःसारयतदुर्वृत्तौवसुदेवात्मजौपुरात् । धनंहरतगोपानांनन्दंबध्नीतदुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधाहन्यतामाश्वसत्तमः । उग्रसेनः पिताचापिसानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमानेवैकंसेप्रकुपितोऽव्ययः । लघिम्नोत्पत्यतरसामञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ।३४। तमाविशन्तमालोक्यमृत्युमात्मनआसनात् । मनस्वीसहसोत्थायजगृहेसोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तंखड्गपाणिंविचरन्तमाशुश्येनंयथादक्षिणसव्यमम्बरे । समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजायथोरगंतार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्यकेशेषुचलत्किरीटंनिपात्यरङ्गोपरितुङ्गमञ्चात् । तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपातविश्वाश्रयआत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥ तंसंपरेतंविचकर्षभूमौहरिर्यथेभंजगतोविपश्यतः । हाहेतिशब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥ सनित्यदोद्विग्नधियातमीश्वरंपिबन्वदन्वाविचरन्स्वपञ्छ्वसन् । ददर्शचक्रायुधमग्रतोयथातदेवरूपंदुरवापमाप ।३९ तस्याऽनुजाःभ्रातरोऽष्टौकङ्कन्यग्रोधकादयः । अभ्यधावन्नभिक्रुद्धाभ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४०॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तुसंयत्तान्रोहिणीसुतः अहन्परिघमुद्यम्यपशूनिवमृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुर्दुन्दुभयोव्योम्निब्रह्मेशाद्याविभूतयः । पुष्पैः किरन्तस्तंप्रीत्याशशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषांस्त्रियोमहाराजसुहृन्मरणदुःखिताः । तत्रा

गोपोंको ले उनके साथ मिल नृत्यादि और विहार करनेलगे ॥ २९ ॥ कंसके अतिरिक्त ब्राह्मणादि समस्त साधूलोग राम, कृष्णके कर्मों से प्रसन्न चित्तहो "साधु". "साधु" कहनेलगे ॥३०॥ श्रेष्ठ २ मल्लोंमें से कुछ एकके मरने और कुछ एकके भागजाने से भोजराज कंसने अपने सब बाजों को बंदकरवाकर कहाकि—॥ ३१ ॥ वसुदेव के इनदोनो दुष्ट पुत्रोंको नगरसे दूरकरदो, गोपोंकी धन सम्पत्तिको छीनलो, दुष्ट नंदको बांधदो ॥ ३२ ॥ दुर्मति वसुदेवका शीघ्र बधकरो, शत्रुके पक्षपाती मेरे पिता उग्रसेन कोभी अनुचरा समेत मारडालो ॥ ३३ ॥ कंसने इस प्रकार के अहंकार युक्त वचनों के कहने का आरंभ कियातो अव्यय भगवान अत्यंत क्रोधित हुए और बहुत शीघ्रता से छलांग मारऊंचे मंचपर चढगये ॥ ३४ ॥ मनस्वी कंसने अपने मृत्युरूपी श्रीकृष्णको मंचमें प्रवेश करता देख सहसा आसन से उठढाल तलवार लेली॥३५॥ और आकाश मंडल में घूमते हुए बाज की समान दहिने बाएं घूमनेलगा प्रचंड तेजवाले श्रीकृष्णजी ने—गरुड़ जैसे सर्पको पकडता है वैसे ही उसको बलपूर्वक ग्रहण किया॥ ३६ ॥ उसके केशोंको पकडतेही उसका किरीट गिरगया, उसको इसी अवस्था में ऊंचे मंचसे रंगभूमिके ऊपर गिराय, विश्वके आश्रय, स्वाधीन कृष्ण भगवान स्वयं उसके ऊपर कूदपडे ॥ ३७ ॥ असुर राजकंस उनके कूदतेही पिचकर मरगया । सिंह जैसे हाथीको खींचता है भगवान तैसेही कंसको देखने वाले मनुष्यों के सामने पृथ्वीपर खींचनेलगे । हे राजन् ! उस काल "हा" "हा" शब्द मनुष्योंके मुखसे निकलकर भारीशब्द होनेलगा ॥३८॥ चित्तके व्याकुल रहने से कंस—खाने, पीने, चलने, फिरने, निद्रा और जागरण सब समय मेंही चक्रधारी नारायणको सन्मुख देखा करताथा, इस समय उनके हाथ से निहतहो उसी दुष्प्राप्य रूप को प्राप्तहुआ ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! कंक, और न्यग्रोधादि कंसके आठ छोटेभाई बडेभाई के ऋणशोध करनेमें प्रवृत्तहो अत्यन्त क्रोधसे श्रीकृष्णपर आटूटे ॥ ४० ॥ परन्तु रोहिणी नन्दन बलरामजीने परिघ उठाकर, सिंह जैसे पशुओं को संहार करता है, तैसेही अति वेगमान् और उद्यम शीलउन सबों को मारडाला ॥ ४१ ॥ आकाश में दुन्दुभी बजनेलगीं ब्रह्मारुद्रादि देवतागण स्नेह पूर्वक फूल बरसाय२ उनकी स्तुति करनेलगे; सब अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४२ ॥ हेमहाराज ! कंसादि

स्त्रियुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायांपतीना लिंग्यशोचतीः । विलेपुः सुस्वरंनार्योविसृजन्त्योमुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हानाथप्रियधर्मज्ञकरुणानाथवत्सल । त्वयाहतेननिहतावयंतेसगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वयाविरहितापत्यापुरीयंपुरुषर्षभ । नशोभतेवयमिवनिवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसांत्वंभूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् । तेनेमांभोदशांनीतो भूतध्रुक्कोलभेतशम् ॥४७॥ सर्वेषामिहभूतानामेषहिप्रभवाप्ययः । गोप्ताचतद्वध्यायी नक्वचित्सुखमेधते ॥ ॥ ४८ ॥ श्रीशुकउवाच । राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः । यामाहुर्लौकिकींसंस्थां हतानांसमकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरंपितरंचैव मोचयित्वाऽथबन्धनात् । कृष्णरामौववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्यपादयोः ॥ ५० ॥ देवकीवसुदेवश्च विज्ञायजगदीश्वरौ । कृतसंवन्दनौपुत्रौ सस्वजातेनशंकितौ ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० कंसवधोनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वापुरुषोत्तमः । माभूदितिनिजांमायां ततानजनमोहिनीम् ॥ १ ॥ उवाचपितरावेत्य साग्रजःसात्वतर्षभः । प्रश्रयावनतःप्रीणन्नम्बताततेतिसादरम् ॥ २ ॥ नास्मत्तोयुवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि । बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन्क्वचित् ॥ ३ ॥ नलब्धोदैवहतयोर्वासोनौभवदन्तिके । यांबालाःपितृगेहस्था विन्दन्तेलालितामुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसं

की स्त्रियें अपने २ स्वामी के मरणसे दुःखितहो आंसू बहाती छातीपीटतीं उसी स्थानपर आईं ॥ ४३ ॥ सबस्त्रियें वीरशय्या में सोयेहुए स्वामियों का आलिंगन कर शोक करतेहुए रोते२बारम्बार बिलाप करने लगीं ; ॥ ४४ ॥ हानाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हादयालो ! हा अनाथवत्सल ! तुमने हतहोकर घर और पुत्रों सहित हमाराबध किया ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुमहमारे स्वामी हो तुम्हारे बिरहसे समस्त उत्सव और मंगल नष्टहोगये—यह नगरी हमारी समान प्रभा रहितहो गई ॥ ४६ ॥ हे स्वामिन् ! तुमने निरपराध मनुष्यों से बड़ी भयानक शत्रुता कीथी इसी कारण इस दशाको प्राप्तहुए । प्राणियों के अनिष्ट की इच्छाकरके कौनमनुष्य कल्याण प्राप्त करसक्ता है ॥ ४७ ॥ यह श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करनेवाले पालने और संहारनेवाले हैं इन से द्वेष करके कभी सुख नहीं प्राप्त होसकता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! लोकभावन भगवान ने राजस्त्रियों को धैर्य बँधाय उनकेद्वारा मृतमनुष्यों की लौकिक मृतक्रियासम्पादन कराई ॥ ४९ ॥ अनन्तर बलदेव और श्रीकृष्णजी ने माता और पिता को बन्धनसे छोड़ाय उनके चरणों पर शिररक्खा ॥ ५० ॥ बसुदेव और देवकी दोनों पुत्रों को जगत्का ईश्वरजानतेथे अतएव श्रीकृष्णजी के नमस्कार करतेहुए उनसे नहीं मिले केवल हाथ जोड़कर सामने खड़े रहगये ॥ ५१ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीनेजानाकि—माता पिताको ज्ञान उत्पन्न हुआ, यह ज्ञान अभीठीक नहीं ऐसा बिचार अपनी जन मोहिनीमायाका विस्तार किया ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी बलदेवजीके साथ माता पिताके समीप आय विनययुक्त नम्र बचनोंसे उनको प्रसन्नकरतेहुए हेतात ! हेमात ! कहकर ऐसा सनमानयुक्त बचन बोले कि ॥ २ ॥ हे पिता ! हम आपके पुत्र हैं आप हमारे निमित्त सदैव उत्कण्ठित रहतेथे तौभी हमारीबाल्य पौगण्ड और किशोर अवस्था से आप सुखनहीं प्राप्त करसके ॥ ३ ॥ हमहीं मन्दभागी हैं कि जो आपके निकट निवास नहीं करसके माबापके घरपर रहने से बालकोंको जोसुख प्राप्तहोते हैं उनका हमभोग

भवोदेहो जनितःपोषितोयतः । नतयोर्यातिनिर्वेशं पित्रोर्मर्त्यःशतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजःकल्प आत्मनाचधनेनच । वृत्तिंनदद्यात्तंप्रेत्य स्वमांसंखादयन्तिहि॥ ॥ ६ ॥ मातरंपितरंवृद्धं भार्यांसाध्वींसुतंशिशुम् । गुरुंविप्रंप्रपन्नंच कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥ तत्र वकल्पयोःकंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः । मोघमेतेव्यतिक्रान्ता दिवसावामनर्चतोः ॥ ८ ॥ तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौपरतन्त्रयोः । अकुर्वतोर्वांशुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदाभृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इतिमायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनोगिरा । मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिंचन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेनचावृतौ । नकिंचिदूचतूराजन् वाष्पकण्ठौविमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्यपितरौ भगवान्देवकीसुतः । मातामहंतूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आहचास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि । ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यंनृपासने ॥ १३ ॥ मयिभृत्यउपासीने भवतोविबुधादयः । बलिंहरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥१४॥ सर्वान्स्वान्ज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यःकंसभयाकुलान् । यदुवृष्ण्यन्धकमधु दाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान्समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् । न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैःसन्तर्प्यविश्वकृत्॥ ॥ १६ ॥ कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्तालब्धमनोरथाः । गृहेषुरेमिरेसिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षन्तोऽहरहःप्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् । नित्यंप्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिब-

नहीं करसके ॥ ४ ॥ समस्त अर्थ देहही से उत्पन्न होते हैं, यह देह जिसके द्वारा पोषित हुई है मनुष्य सौवर्ष जीवित रहकर भी उनपिता माताके ऋणसे उद्धार नहीं होसक्ते ॥ ५ ॥ जोपुत्र धन वा देहसे सामर्थ होकर माता पिताका पोषण नहीं करता, उसे परलोक में यमके दूत उसीका मांस भक्षण कराते हैं ॥ ६ ॥ समर्थ मनुष्य यदिवृद्ध पिता, माता, साध्वीभार्या, शिशुसन्तान, ब्राह्मण और शरणागत मनुष्यका भरण पोषण नहीं करता वह जीताहुआमुर्दा है ॥७॥ अतएव हमारे इतने दिन व्यर्थही बीतगये, हम समर्थ होकर भी कंसके भयसे नित्यभीत चित्तहो आपकी सेवा न करसके ॥ ८ ॥ अतएव हे पिता ! हे माता ! हमको क्षमाकरो हम पराधीन होकर आपकी सेवा नहीं करसके, दुष्ट कंससे हमने अनेक कष्टपाये हैं ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! वसुदेव और देवकी—माया मनुष्य विश्वात्मा भगवान् की ऐसी बातोंसे मोहितहो उनको गोदमें ले और आलिंगनकर परमानंद से पुलकित होगये ॥ १० ॥ आंसुओं से कंठपूर्ण होगया । स्नेह के पाशसे बंध और मोहितहो उनको आंसुओं की धारासे सींचनेलगे,–कुछभी न कहसके ॥ ११ ॥ भगवान देवकीनंदन नें इस प्रकार से पिता माताको धैर्यबंधाय, मातामह उग्रसेनको यदुओं के राज सिंहासन पर बिठाया ॥ १२ ॥ और कहनेलगे कि–हे महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं, हमें आज्ञाकरो। ययातिके शापके कारण यदुगण राज्यासन पर नहीं बैठसकते ॥ १३ ॥ मैं सेवक होकर आपके निकट रहूंगा, दूसरे राजाओं की बात दूररही, देवता भी शिरझुकाकर आपको भेटेंदेंगे ॥ १४॥ हे भरतनंदन ! विश्वकर्त्ता श्रीकृष्णजी के जातिवाले और संबंधी, यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, और कुकुरादि कंस के भय से दूरदेशों में जाय अत्यंत क्लेश भोगरहे थे । उन्हों ने उनको आदर पूर्वक बुलाय धनद्वारा संतुष्टकर उनको उनके घरोंमें बसाया ॥ १५—१६ ॥ राम, कृष्णके भुज बलसे रक्षित होकर उनके समस्त मनोरथ सिद्धहुए। वह राम कृष्णद्वारा संताप रहित होगये और निरंतर श्रीकृष्णजी के प्रफुल्लित, श्रीयुक्त, सदय हास्य और कटाक्ष से शोभित मुख देखकर आनंद से अपने २ घरमें समय बितानेलगे ॥ १७—१८ ॥ वहां वृद्धभी बारंबार नेत्रोंद्वारा श्रीकृष्णजी

न्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधांमुहुः ॥ १९ ॥ अथनन्दसमासाद्य भगवान्देवकीसुतः । संकर्षणश्चराजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पित्रर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यांपोषितौ लालितौभृशम् । पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपिहि ॥ २१ ॥ सपिताखाचजननीयौ पुष्णीतांस्वपुत्रवत् । शिशून्बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥ यातयूयंव्रजंतात वयंचस्नेहदुःखितान् । ज्ञातीन्वोद्रष्टुमेष्यामो विधायसुहृदांसुखम् ॥ २३ ॥ एवंसान्त्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः । वासोऽलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौपरिष्वज्य नन्दःप्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजंययौ ॥ २५ ॥ अथशूरसुतो राजन्पुत्रयोःसमकारयत् । पुरोधसाब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणागावो रुक्ममालाःस्वलंकृताः । स्वलंकृतेभ्यःसंपूज्य सवत्साःक्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ याःकृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्तामहामतिः । ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥२८॥ ततश्चलब्धसंस्कारौ द्विजत्वंप्राप्यसुव्रतौ । गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥२९॥ प्रभवौसर्वविद्यानां सर्वज्ञौजगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौनरेहितैः ॥ ॥३०॥ अथोगुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः । काश्यंसान्दीपनिंनाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥३१॥यथोपसाद्यतौदान्तौ गुरौवृत्तिमनिन्दिताम् । ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्यादेवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्ध भावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच

के मुख कमल रूप अमृतको पीकर युवा और अत्यंत बलवान होगये ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! अनंतर भगवान् देवकीनंदन और रामने नंदराय के पास आय आलिंगन करके कहा कि— ॥ २० ॥ हे पिता ! आपने स्नेह पूर्वक बहुत कालतक हमारा पोषण और पालन किया और माता पितासे भी अधिक आपने हमपर प्रीति रक्खी ॥ २१ ॥ अपनी देहसे भी अधिक पुत्रके ऊपर माता पिताका स्नेह रहता है । पोषण से असमर्थ, बंधुओंसे छोड़ेहुए पुत्रोंका जोपालन करता है वही पिता माता है ॥ २२ ॥ हे पिता ! इस समय आप व्रजको जाओ । मैंभी अपने आत्मीयजनों को सुखदे, स्नेह से दुःखित ज्ञातिवाले और आपके दर्शनोंको आऊंगा ॥ २३ ॥ भगवान अच्युत नें व्रजवासियों समेत नंदरायको इसप्रकार से सांत्वना दे वस्त्र, अलंकार और कांस्यादि पात्रों से सादर उनकी पूजाकी ॥ २४ ॥ नंदराय यह बात सुन स्नेह से विह्वल होगये, और राम कृष्ण का आलिंगनकर आंसू बहाते हुए गोपोंके साथ व्रजको गये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अनन्तर बसुदेवजी ने गर्गाचार्य और ब्राह्मणों द्वारा दोनों पुत्रों का यथाविधि से उपनयन संस्कार कराया ॥ २६ ॥ और उन सब ब्राह्मणों को भलीभांति से अलंकृत कर, अर्चना पूर्वक सोने की मालाओं से विभूषित, भली प्रकार से सजीहुई, बछड़ोंयुक्त, रेशमी वस्त्र पहिनाय गौएं दक्षिणा में दीं ॥ २७ ॥ बसुदेवजीने राम कृष्ण के जन्म समयमें मन २ में जो गायें दान कीथीं, दुष्ट कंसने जानकर उन सबका अधर्मसे हरण करलिया । इससमय उसका स्मरण होतेही राजगोष्ठ से उतनीही धेनु मंगाकर ब्राह्मणोंकोदीं ॥ २८ ॥ तदनन्तर सुव्रत राम कृष्णने यदुकुलके आचार्य गर्गद्वारा उपनयन संस्कारसे संस्कृतहो द्विजत्व प्राप्तकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ यद्यपि यह दोनों भाई जगदीश्वर सर्व विद्याओं के उत्पादक और सर्वज्ञथे तौ भी मनुष्य लीलासे स्वतः सिद्ध ज्ञान को गुप्त रखतेथे ॥ ३० ॥ इससमय गुरुकुलमें बास करनेकी इच्छासे दोनो भाई उज्जैन निवासी काश्यप गोत्रज सांदीपन नामक मुनिके निकट गए ॥ ३१ ॥ सब इन्द्रियोंका दमनकर प्रीतिपूर्वक गुरुभक्ति करनेलगे । बहुतोंको इसप्रकारकी शिक्षादी कि—गुरूकी सेवा किसप्रकार से करना चाहिये।इसप्रकार बशीभूत और श्रद्धायुक्तहो वह भक्ति भाव से देवता की समान गुरू की सेवा

वेदानखिलान्सांगोपनिषद्गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यंधनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा। तथाचान्वीक्षिकींविद्यां राजनीतिंचषड्विधाम् ॥ ३४ ॥ सर्वंनरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्त्तकौ। सकृन्निगदमात्रेणतौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ठ्या संयतौ तावतीःकलाः। गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तंमहिमानमद्भुतंसंलक्ष्यराजन्नतिमानुषींमतिम्। संमन्त्र्यपत्न्यासमहार्णवेमृतंबालंप्रभासेवरयाम्बभूवह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्यमहारथौरथंप्रभासमासाद्यदुरन्तविक्रमौ। वेलामुपव्रज्यनिषीदतुःक्षणंसिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशुगुरुपुत्रःप्रदीयताम्। योऽसाविहत्वयाग्रस्तोबालकोमहतोर्मिणा ३९॥ समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहंदेव दैत्यःपञ्चजनोमहान्। अन्तर्जलचरःकृष्णशंखरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥ आस्तेतेनाहृतोनूनंतच्छ्रुत्वासत्वरंप्रभुः।जलमाविश्यतंहत्वानापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदङ्गप्रभवंशंखमादायरथमागमत्।ततःसंयमनींनाम यमस्यदयितांपुरीम् ॥ ४२ ॥ गत्वाजनार्दनःशंखंप्रदध्मौसहलायुधः।शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्यप्रजासंयमनोयमः ॥ ४३ ॥ तयोःसपर्यांमहतींचक्रेभक्त्युपबृंहिताम्। उवाचावनतःकृष्णंसर्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्यहेविष्णोयुवयोःकरवामकिम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम्। आनयस्वमहाराजमच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेतितेनोपानीतंगुरुपुत्रंयदूत्तमौ। दत्त्वास्वगुर

करनेलगे ॥ ३२ ॥ द्विजवर सांदीपन उनकी शुद्ध भक्तियुक्त सेवासे संतुष्ट हुये तथा उनको अंग और उपनिषद समेत सब वेदोंकी शिक्षादी ॥ ३३ ॥ राम कृष्णने उनके निकट मन्त्र और देवता ज्ञानसहित धनुर्वेद विविध धर्म, नीतिमार्ग, आन्वीक्षिकीविद्या और षड्प्रकारकी राजनीति कीभी शिक्षापाई ॥३४॥ हेराजन् ! सब विद्याओं के प्रवर्त्तक उन दोनों देवश्रेष्ठ भाइयोंने केवल एकबार सुनकरही समस्त विद्या पढ़ली ॥ ३५ ॥ इसप्रकारसे उन्होंने जितेन्द्रिय होकर केवल ६४ दिनों में ६४ कला सीखलीं। हेराजन् ! इसप्रकारसे उन्होंने समस्त विद्या ग्रहणकर अन्तमें गुरूसे गुरुदक्षिणा ग्रहण करनेको कहा ॥ ३६ ॥ प्रभास क्षेत्रमें महासागर के बीच द्विजवर सांदीपनका पुत्र मरगयाथा इससमय उन्होंने राम कृष्ण की अद्भुत महिमा और चमत्कारिक बुद्धिको देख स्त्रीके परामर्श से उसी पुत्रको दक्षिणा स्वरूप में मांगा ॥ ३७ ॥ महारथ अतिपराक्रमी राम कृष्ण तथास्तु,, कह रथपर सवारहो प्रभास तीर्थमें आय समुद्रके किनारे कुछ देरतक खड़ेरहे समुद्रने उन्हें आया जान वहां आय उनकी पूजाकी ॥ ३८ ॥ भगवान् ने उससे कहा कि—तुमनें जिस को इसस्थान से बड़ी २ तरंगों द्वारा ग्रास कियाहै मेरे उसी गुरुपुत्रको शीघ्र लेआओ॥३९॥ समुद्र ने कहा कि—हेदेव ! मैंने उस बालकका हरण नहींकिया पंचजन नामक एक महासुर शंखरूप धारण कर मेरे जलमें वास करताहै॥४०॥ उसीने निश्चय बालकका हरण कियाहोगा यह बातसुन प्रभुने तत्काल जलमें प्रवेशकर पंचजनको मारडाला किन्तु उसके पेटमें बालक को न देखा ४१॥ तदनन्तर उसके अंगसे उत्पन्न हुए शंखकोले फिर रथमें लौटआये और बलभद्रजी के साथ संयमनी नामक यमकी प्यारी पुरीमें आकर शंख बजाया,॥४२॥हेराजन् ! प्रजासंहारक यमनें उस प्रचंड शंखके शब्दको सुन वहांपर आय उनकी बड़ी पूजाकर और शिर झुकाय सर्व प्राणियों के अन्तर्यामी श्रीकृष्णजीसे कहा। कि—हेप्रभो ! आप दोनोंजन साक्षात् विष्णुहो लीलाहीके निमित्त पृथ्वीपर मनुष्य रूपसे अवतीर्ण हुएहो। मैं आपका कौनसा कार्यकरूं आज्ञा करिये ४३—४४ ॥ भगवान् ने कहा कि—हेमहाराज ! मेरागुरुपुत्र अपने कर्म बन्धननोंसे इसस्थानपर आयाहै इससमय मेरी आज्ञा को मान उसको लेआओ ॥ ४५ ॥ "जो आज्ञा,, यह कहकर यमराज गुरुपुत्र

वेभूयोवृणीष्वेतितमूचतुः॥४६॥गुरुरुवाचासम्यक्सम्पादितोवत्सभवद्भ्यांगुरुनिष्क्रयः।कोनुयुष्मद्विधगुरोःकामानामवशिष्यते॥४७॥गच्छतंस्वगृहंवीरौकीर्तिर्वामस्तु पावनी। छन्दांस्ययातयामानिभवन्त्विहपरत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौरथेनानिलरंहसा। आयातौस्वपुरंतातपर्जन्यनिनदेनवै ॥ ४९॥समनन्दन्प्रजाःसर्वादृष्ट्वा रामजनार्दनौ।अपश्यन्त्योबह्वहानिनष्टलब्धधनाइव ॥.५० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशमस्कन्धेपञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४५॥

श्रीशुकउवाच ॥ वृष्णीनांप्रवरोमन्त्री कृष्णस्यदयितःसखा। शिष्योबृहस्पतेःसाक्षादुद्धवोबुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाहभगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनंक्वचित्। गृहीत्वापाणिनापाणिं प्रपन्नार्तिहरोहरिः ॥२॥ गच्छोद्धवव्रजंसौम्य पित्रोर्नौप्रीतिमावह। गोपीनांमद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ तामन्मनस्कामत्प्राणा मदर्थेत्यक्तदैहिकाः। येत्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थेतान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयिताः प्रेयसांप्रेष्ठे दूरस्थेगोकुलस्त्रियाः। स्मरन्त्योऽङ्गविमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥५॥ धारयंत्यतिकृच्छ्रेण प्रायःप्राणान्कथंचन। प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्योमेमदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्तउद्धवो राजन्संदेशंभर्तुरादृतः। आदायरथमारुह्य प्रययौनन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तोनन्दव्रजंश्रीमान्निम्लोचतिविभावसौ। छन्नयानः

को लेआये। राम और कृष्णजी उस बालक को ले गुरूके निकट आय पुत्रकोदे गुरूसे कहने लगे कि—अब क्या आज्ञाहै ॥ ४६ ॥ गुरूने कहा कि—हेवत्स ! तुम दोनोंने गुरुदक्षिणा भलीप्रकारसे दी जो तुम्हारी समान शिष्यके गुरूहैं उनकी कौनसी अभिलाषा शेष रहतीहै ॥४७॥ हेवीरद्वय ! घरको जावो। तुम्हारा लोकपावन यश होवे और इसलोक तथा परलोकमें तुम्हारे वेद सदा सफलहों ॥ ४८ ॥ हेराजन् ! गुरूके इसप्रकारसे कहनेपर राम और केशव उनकी आज्ञाले बायु की समान वेगवाले रथ पर सवारहो अपने नगरमें आये ॥ ४९ ॥ प्रजागण ने बहुतसमय से राम और कृष्णको न देखाथा, इससमय उनको देखकर जैसे गयाहुआ धन प्राप्तहो ऐसा आनन्द उनको प्राप्त हुआ ॥ ५० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्ण जी के प्यारे मित्र साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य बुद्धिमान उद्धवजी वृष्णि वंशियोंके श्रेष्ठ मंत्रीथे ॥ १ ॥शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् केशव प्यारे भक्त उद्धवके हाथमें हाथ रखकर कहने लगे कि— ॥ २ ॥ हेसौम्य उद्धव ! शीघ्र व्रजमें जाकरहमारे माता पिता को आनन्ददो और हमारे बिरहसे गोपियोंको जो सन्ताप उत्पन्न हुआहै मेरे सम्बाद द्वारा उसको नाश करआओ ॥ ३ ॥ गोपियोंका मन मुझहीमें अर्पितहै मैं ही उनका प्राणहूं। मेरे निमित्त उन्होंने अपने पति पुत्रादि छोड़दिये और प्रिय आत्मा मुझको मन द्वारा प्राप्तहुई। जिसने मेरे निमित्त इसलोक और परलोक का सुख छोड़दिया मैं निरंतर उसको सुखी करता रहताहूं ४ ॥ हेउद्धव ! गोपियें सब पदार्थोंसे मुझे अधिक प्यारीहैं। मेरे दूरहोनेसे मेरा स्मरण कर बिरहसे उत्पन्नहुई उत्कण्ठासे व्याकुलहो मोहित होतीहैं॥ ५ ॥ गोकुलसे मथुरा आनेके समय मैंने उनसे यह कहकर कि—शीघ्र आऊंगा उन्हें धीरज बँधायाथा, । इसी धीरज से वह अबतकभी बड़े कष्टसे प्राण धारण कररहीहैं। उनकी आत्मा मुझपरही है इसहीकारण बोध होताहै कि—वह अत्यन्त कष्टसे जीवन धारण कररही हैं नहीं तो अपनी २ देहमें उनका आत्मा होनसे इतने दिनोंमें वह विरहानल से दग्ध होजातीं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजन् ! उद्धव इसबातको सुनकर संतुष्टहुये और आदरपूर्वक स्वामीके समाचारको ले रथपर बैठ नन्द के गोकुलकोचले ॥ ७ ॥ सूर्यास्त होते २ वह नन्दरायके ब्रजमें पहुंचे। उससमय सब पशु गोष्ठको

प्रविशतांपशूनांखुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासिताऽर्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितंशुष्मिभिर्वृषैः । धावन्तीभिश्चवास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततोऽविलंघद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितंसितैः । गोदोहशब्दाभिरवंवेणूनांनिःस्वनेनच ॥ १० ॥ गायन्तीभिश्चकर्माणिशुभानिबलकृष्णयोः । स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्चसुविराजितम् ॥ ११ ॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः । धूपदीपैश्चमाल्यैश्चगोपावासैर्मनोरमम् १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनंद्विजालिकुलनादितम् । हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मखण्डैश्चमण्डितम् ॥ १३ ॥ तमागतंसमागम्यकृष्णस्यानुचरंप्रियम् । नन्दः प्रीतः परिष्वज्यवासुदेवधियाऽर्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितंपरमान्नेनसंविष्टंकशिपौसुखम् । गतश्रमंपर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥ कच्चिदङ्गमहाभागसखानः शूरनन्दनः । आस्तेकुशल्यपत्याद्यैर्युक्तोमुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥ दिष्ट्याकंसोहतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना । साधूनांधर्मशीलानांयदूनांद्वेष्टियः सदा ॥ १७ ॥ अपिस्मरतिनः कृष्णो मातरंसुहृदः सखीन् । गोपान् व्रजंचात्मनाथंगावोवृन्दावनंगिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यतिगोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् । तर्हिद्रक्ष्यामतद्वक्त्रंसुनसंसुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्चविषसर्पाच्चरक्षिताः । दुरत्ययेभ्योमृत्युभ्यः कृष्णेनसुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतांकृष्णवीर्याणिलीलापाङ्गनिरीक्षितम् । हासितंभाषितंचांगसर्वानःशिथिलाःक्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशांमुकुन्दपदभूषिताम् ।

लौट रहेथे । उनके खुरोंकी उड़ीहुई धूलसे उनका रथ आच्छादित होगया ॥ ८ ॥ व्रजमें पुष्पवती गायों के निमित्त वृषगण मतवाले होकर शब्द करतेथे थनोंके भारसे बोझिल होकर भी गायें अपने बच्चोंके सामने बेगसे दौड़ी आरहीथीं ॥ ९ ॥ और श्वेतबर्ण के बछड़े इधर उधर कूदफांद कर व्रजकी शोभा को बढ़ारहेथे गो दोहन और बेणुके शब्दसे व्रजके चारोंओर एकप्रकारका शब्द होरहाथा ॥ १० ॥ भलीप्रकारसे अलंकृत गोप और गोपगण बलराम और श्रीकृष्णजीके शुभ चरित्रोंका गानकररहेथे उनके द्वारा व्रजकी शोभा औरभी बढ़रहीथी॥११॥गोपोंके घरमें अग्नि सूर्य अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितृयुक्त और देवताओं की पूजा होरहीथी उन घरोंको धूप व दीप मालासे युक्त देखनेपर अति सुन्दर शोभा होतीथी ॥ १२ ॥ व्रजके चारोंहीओर के फूलेहुए उपवनों में पक्षी और भौरोंका शब्द होरहाथा तथा हंस और करंडवयुक्त कमलोंसे उनकी और भी सुंदरता बढ़रहीथी ॥ १३ ॥ हेराजन् ! श्रीनन्दराय श्रीकृष्णजी के प्रियसखा उद्धवको आतेदेख आनन्द से उनके निकट आए और उनसे मिल उन्हें श्रीकृष्णही जान उनकी पूजाकी ॥ १४ ॥ तदनंतर उद्धवजी श्रेष्ठ अन्न का आहारकर शय्यामें सुखपूर्वक लेटरहे और नन्दजी उनके पैर चापनेलगे श्रम दूरहोनेके उपरांत नन्दजीने उनसे पूछा कि–१५ ॥ हेमहाभाग ! हमारे परममित्र बसुदेव बंधनसे छूटकर सुहृदगण और पुत्र दिकों के साथ कुशलसे तो हैं ॥ १६ ॥ यह अच्छाहुआ कि दुष्ट कंस जो सर्वदा धर्मशील साधुओं और यदुवंशियों से द्वेष रखताथा वह अपने पापोंसेही अनुजों समेत मारागया ॥ १७ ॥ कृष्ण क्या मेरा सुहृदों का सखाओं का गोपों का वह स्वयं जिस के स्वामी हैं उस गोकुलका वृन्दाबन का और पर्वतका कभी एकबार भी स्मरण करतेहैं, ॥ १८ ॥ गोविंद क्या स्वजनोंके देखनेको यहां एकबारभी न आवेंगे ? उनका मुखसुन्दर नासिका वाला मन्दमुसकान युक्त कब देख पाऊंगा ? ॥ १९ ॥ महात्मा श्रीकृष्ण ने दावाग्नि, बात, बर्षा सर्प, वृष और दूसरी मृत्युकी घटनाओं से मेरी रक्षाकीथी ॥ २० ॥ हेउद्धव ! कृष्ण के नानापराक्रम लीलापूर्वक बक्र दृष्टि, हास्य, और बाक्य का स्मरण करके हम सब कामोंको भूल जातेहैं, २४ ॥

आक्रीडानीक्षमाणानांमनोयातितदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्येकृष्णंचरामंचप्राप्ताविह सुरोत्तमौ। सुराणांमहदर्थायगर्गस्यवचनंयथा ॥ २३ ॥ कंसंनागायुतप्राणंमल्लौ गजपतिंतथा। अवधिष्टांलीलयैवपशूनिवमृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयंमहासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट्। बभञ्जैकेनहस्तेनसप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५॥ प्रलम्बोधेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तोबकादयः। दैत्याःसुरासुरजितोहतायेनेहलीलया ॥ २६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिसंस्मृत्यसंस्मृत्यनन्दःकृष्णानुरक्तधीः। अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदावर्ण्यमानानिपुत्रस्यचरितानिच। शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥ तयोरित्थंभगवतिकृष्णेनन्दयशोदयोः। वीक्ष्यानुरागंपरमंनन्दमाहोद्धवोमुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवांश्लाघ्यतमौनूनं देहिनामिहमानद। नारायणेऽखिलगुरौयत्कृतामतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौहिविश्वस्यचबीजयोनीरामोमुकुन्दःपुरुषःप्रधानम्। अन्वीयभूतेषुविलक्षणस्यज्ञानस्यचेशातइमौपुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जनःप्राणवियोगकालेक्षणंसमावेश्यमनोविशुद्धम्। निर्हृत्यकर्माशयमाशुयातिपरांगतिंब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्भवन्तावखिलात्महेतौनारायणेकारणमर्त्यमूर्तौ। भावंविधत्तांनितरांमहात्मन्किंवाऽवशिष्टंयुवयोःसुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेणकालेनव्रजमच्युतः। प्रियंविधास्यतेपित्रोर्भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ३४ ॥ हत्वाकंसंरङ्गमध्येप्रतीपंसर्वसात्वताम्। यदाहवः

मुकुंदके पद चिह्नोंसे भूषित नदी, पहाड़, बन, और क्रीडाके स्थानको देखकर हमारा मन तन्मय हो उठता है ॥ २२ ॥ महामुनि गर्ग के कथनानुसार, मैं जानताहूं कि—श्रीकृष्ण और बलराम दोनों देव श्रेष्ठहैं; देवताओं के बडे कार्य के पूर्ण करने के निमित्त पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं ॥२३॥ दशसहस्र हाथियों के बलवाले कंसको, उसके दोनों मल्लोंको, और हाथीको उन्होंने ऐसे मारडाला कि—जैसे सिंह पशुओंको मारडालता है ॥ २४ ॥ गजराज जैसे लाठीको तोडडालता है कृष्ण ने तैसेही तीनताल लंबे महा कठिन धनुषको तोड़डाला और इसीब्रज में सातदिन तक एक हाथपर पहाडको धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त्त, और बकआदि देवताओं के जीतनेवाले दैत्यगण भी उनके हाथसे सहजहीमें मारेगये ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि— हे राजन् ! कृष्णजीमें अनुरक्त चित्तवाले नंदजी बारंबार उन सबचरित्रोंका स्मरण कर प्रेमसे गदगद और अश्रुकण्ठहो चुपचाप होगये ॥ २७ ॥ पुत्रके वर्णन कियेहुए चरित्रोंको सुनते २ स्नेहमें बँधीहुई यशोदाके स्तनों से दूध टपकनेलगा। वह आंसुओंकी धारा बहाने लगीं ॥२८॥ भगवान् श्रीकृष्णजी पर नंद यशोदाका अत्यन्त अनुराग देख उद्धवजी आनन्दित होकर कहने लगे कि—॥२९॥ हे नारद ! इस लोकमें आप दोनोंप्राणी निश्चयही सराहने योग्यहो क्योंकि अखिलगुरु नारायणमें आपकी इतनी बुद्धि है ॥ ३० ॥ राम और कृष्ण यह दोनों विश्वके बीज और उत्पत्ति के कारण हैं, वह दोनोंजन सब प्राणियों में प्रवेशकर, उन उपाधियोंसे पृथक् २ ज्ञात होते हैं, यही पुराण पुरुष जीवोंके नियन्ता भी हैं ॥ ३१ ॥ हे महात्मन् ! प्राण निकलने के समयमें मनुष्य क्षणमात्र भी जिनमें मन और बुद्धिको लगाय कर्म वासनाओंका दाहकर, ज्ञानी और शुद्ध सत्वमयहो परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥ उन सर्व के आत्मा और कारणरूप ने, प्रयोजनसे मनुष्यरूप धारण किया है, ऐसे परब्रह्ममें आप दोनों निरन्तर भाव रखतेहो अतएव अब आपका कौनसाकार्य शेषरहा ॥ ३३ ॥ सात्वतगण के अधिपति भगवान् थोड़ेही काल में आय पिता माताका कार्य पूराकरेंगे ॥ ३४ ॥ रंगभूमि में कंसको मार समस्त सात्वतगण के

समागत्यकृष्णःसत्यंकरोतितत् ॥ ३५ ॥ माखिद्यतमहाभागौद्रक्ष्यथःकृष्णमंतिके। अन्तर्हृदिसभूतानामास्तेज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ नह्यस्यास्तिप्रियःकश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः। नोत्तमोनाधमोवाऽपिसमानस्यासमोऽपिवा ॥ ३७ ॥ नमातान पितातस्यनभार्यानसुतादयः। नात्मीयोनपरश्चापिनदेहोजन्मएवच ॥ ३८ ॥ नचा स्यकर्मवालोकेसदसन्मिश्रयोनिषु। क्रीडार्थःसोऽपिसाधूनांपरित्राणायकल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वंरजस्तमइतिभजतेनिर्गुणोगुणान्। क्रीडन्नतीतोऽत्रगुणैःसृजत्यवतिहंत्यजः ॥४०॥ यथाभ्रमरिकादृष्ट्याभ्राम्यतीवमहीयते। चित्तेकर्तरितत्रात्माकर्तेवाहंधियास्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेवनैवायमात्मजोभगवान्हरिः। सर्वेषामात्मजोह्यात्मा पितामातासईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टंश्रुतंभूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकंच। विनाऽच्युताद्वस्तुतरांनवाच्यंसएवसर्वंपरमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवंनिशासाब्रुवतो-र्व्यतीतानन्दस्यकृष्णानुचरस्यराजन्। गोप्यःसमुत्थायनिरूप्यदीपान्वास्तून्समभ्यर्च्यदधीन्यमन्थन् ॥ ४४ ॥ तादीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजूरज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः। चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डलत्विषक्त्वपोलारुणकुंकुमाननाः ॥४५॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनंव्रजाङ्गनानांदिवमस्पृशद्ध्वनिः। दध्नश्चनिर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यतेयेन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदितेसूर्येनन्दद्वारिव्रजौकसः। दृष्ट्वारथंशात

सामने कृष्णजीने आयकर आपसे जो कहाथा उसको वह सत्यकरेंगे ॥ ३५ ॥ इससमय आप दुःखित न होवें श्रीकृष्णजी को बहुत शीघ्र देखपावोगे। काठके मध्यमें जैसे अग्नि रहती है तैसे-वह सबप्राणियोंके हृदयके भीतर बासकरते हैं ॥ ३६ ॥ उनको अभिमान नहीं है वह सबकोही समान हैं। उनको कोई अत्यन्त प्रिय व अप्रिय, उत्तम व अधम नहीं है ॥ ३७ ॥ वह किसीके पिता, माता, भार्या, पुत्रादि, अपने, पराये, नहींहैं न उनके देहहै न जन्महै, और न कर्म है॥ ३८ यद्यपि उनके जन्म, कर्म नहीं हैं तौभी क्रीडाके निमित्त वह साधुओंके परिपालन करनेके कारण इसलोकमें देव, मत्स्य आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ वह क्रीडा रहित व निर्गुण हैं तौ भी क्रीडाकरके सत्व, रज और तम इन तीनगुणोंको धारण करते हैं और उन्हीं गुणोंद्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहारभी करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे नेत्रोंमें भ्रांति उत्पन्न होनेसे पृथ्वी भी भ्रमण करती हुई जानपडती है, तैसेही चित्तके कर्म करतेहुएभी, उस चित्तमें आत्माके अध्यास होनेसे आत्माही कर्त्ता विचाराजाता है ॥ ४१ ॥ यह भगवान् हरि कृष्णजी केवल आपकेही पुत्र नहींहैं बरन वह सबके पुत्र, आत्मा, पिता, माता, और ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥ जो देखने औरसुनने में आता है, भूत, भविष्यत्, बर्तमान, स्थावर,जंगम, बड़ा, छोटा कोई भी पदार्थ भगवान बिना नहीं है वेही सर्वरूप और परमार्थ स्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ हेराजन्! कृष्णजी के प्यारे सखा उद्धव ने नन्दजी से ऐसी बातें कहते २ उस रात्रिको बिताया रात्रि के अन्त में गोपियां उठकर दीपक जलाय, शरीर आदि का मार्जन कर दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥उनके मुख में अरुणवर्ण का केसर था और कपोल कुण्डलों की किरणों से प्रकाशित होरहेथे। उन के आभूषणों की मणियां दीपक की आभा से चमक उठीं। वह कंकण पहिनेहुए भुजाओं से मंथन की रस्सी पकड़ कर खींचने लगीं उन के नितम्ब, स्तन और हार हिलनेलगे। इस से वह अत्यन्त शोभायमान हुई ॥ ४५ ॥ व्रजांगनागण श्रीकृष्णजी का यश गानेलगीं, गीतध्वनि दधिमंथन के साथ मिलकर आकाश का स्पर्श करनेलगीं। उस ध्वनि से सबओर के अमंगल नष्ट होजातेथे ॥ ४६ ॥ अनन्तर भगवान सूर्य देव के उदय होने पर व्रज के द्वारमें सुवर्ण निर्मित रथको देख वह गोपियां आपस में कहने लगीं कि— ॥ ४७ ॥ " यह किसका है? कंसके कार्य को पूर्ण करनेवाला अक्रूर इस स्थान से

कौम्भं कस्यायमितिचाब्रुवनम् ॥४७॥ अक्रूरआगतःकिंवा यःकंसस्यार्थसाधकः ॥ येननीतोमधुपुरीं कृष्णःकमललोचनः ॥ ४८ ॥किंसाधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् । इतिस्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृतान्हिकः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६॥

श्रीशुक उवाच । तंवीक्ष्यकृष्णानुचरंव्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुंनवकंजलोचनम् । पीताम्बरंपुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥ शुचिस्मिताःकोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्चकस्याच्युतवेषभूषणः । इतिस्मसर्वाःपरिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २॥ तंप्रश्रयेणावनताःसुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः । रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञायसंदेशहरंरमापतेः ॥३॥जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदंसमुपागतम् । भर्त्रेहप्रेषितः पित्रोर्भवान्प्रियचिकीर्षया ॥ ४॥ अन्यथागोव्रजेतस्य स्मरणीयंनचक्ष्महे । स्नेहानुबन्धोबन्धूनां मुनेरपिसुदुस्त्यजः ॥५॥ अन्येष्वर्थकृतामैत्रीयावदर्थविडम्बनम् । पुम्भिःस्त्रीषुकृता यद्वत्सुमनस्स्विवषट्पदैः ॥ ६॥ निःस्वंत्यजन्तिगणिका अकल्पंनृपतिंप्रजाः । अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७॥ खगावीतफलंवृक्षं भुक्त्वाचातिथयोगृहम् । दग्धंमृगास्तथारण्यं जारोभुक्त्वारतां स्त्रियम् ॥८॥ इतिगोप्योहिगोविन्दे गतवाक्कायमानसाः । कृष्णदूतेव्रजंयाते.उद्धवेत्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायन्त्यःप्रियकर्माणि रुदत्यश्चगत-

---

श्रीकृष्णजी को मथुरा लेगया है क्या वही यहां पर फिरआया है? ॥ ४८ ॥ वह क्या हमारे मांस से परलोक गयेहुए अपने स्वामी की मृतक्रिया करेगा? गोपांगनागण इसीप्रकार से कहरहीथीं-कि उसी समय उद्धव आह्निकक्रिया करके वहां आये ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! श्रीकृष्णजी के अनुचर उद्धवजी,कि-जिनकी लम्बीभुजा हैं, नेत्रनवीन कमल की समान, पीताम्बर पहिनहुए, गले में बनमाला धारण किये, सुन्दर हास्य युक्त कमल मुख और दोकुण्डलों से शोभायमान हैं, उनको देखकर सब ब्रजनारियें अत्यन्त विस्मितहुई और " यह सुन्दर पुरुश कौन है ? कहां से आया है? किस का दूत है ? यह श्रीकृष्णजी की समान अलंकार धारण कियेहुए है" ऐसे परस्पर कहर कर प्रसन्न चित्त से पवित्रयश भगवान के कमलचरण के आश्रयी, उन उद्धवजी को चारों ओर से घेरलिया ॥ १ । २ ॥ वह श्रीकृष्णजी का सम्बाद लेकर आये हैं यह जानकर विनय से शिरझुकाय, सलज्ज हास्ययुक्त, कटाक्ष और मीठे वाक्यादि द्वारा उनकी पूजा करनेलगीं, और उनको आसनपर बैठाय कुशल पूँछकर कहा ॥ ३ ॥ हम जानती हैं कितुम श्रीकृष्णजी के सेवकहो; और इसी ब्रज में आयेहो पिता माता केप्रसन्न करने को तुम्हारे प्रभु ने तुम्हें भेजा है ॥ ४ ॥ नहीं तो इसब्रज में उन माता पिता के अतिरिक्त और कुछ पदार्थ उन महापुरुषका स्मरणीय नहीं देखाजाता;-मुनिगणभी बन्धुओं के स्नेह को नहीं छोड़ सकते ॥ ५ ॥ और दूसरोंके साथ जो मित्रता है वह तो केवल कार्यहीके कारण है-वह तो केवल कार्य पूरे होनेतककी है; स्त्रियों के साथ पुरुष की मित्रता तो केवल फूलों के साथ भौंरे की मित्रता के समान है ॥ ६ ॥ वेश्या—निर्धन मनुष्यको,प्रजा—असमर्थ राजाको, विद्यापढ़ाहुआ शिष्य—आचार्यको, और पुरोहित—दक्षिणादियेहुए यजमान को छोड़ देते हैं ॥७॥ पक्षीफलहीन वृक्षको, अतिथि—भोजन होतेही घरको, मृगगण–दग्धबनको जैसे छोड़ देते हैं तैसेही उपपति, भोगहोने के उपरांतही स्नेहवती स्त्रीको छोड देते हैं ॥ ८ ॥ हेराजन् ! गोपियों के तन, मन और बचन श्रीकृष्णजीमेंही अर्पितथे; श्रीकृष्णजी के दूत उद्धवजी के आने पर वह माधव के किशोर

स्त्रियः। तस्यसंस्मृत्यसंस्मृत्ययानि कैशोरबाल्ययोः॥१०॥काचिन्मधुकरंदृष्ट्वा ध्यायन्तीकृष्णसंगमम्। प्रियप्रस्थापितंदूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्य ऊचुः। मधुपकितवबन्धोमा स्पृशांघ्रिंसपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः। वहतुमधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादंयदुसदसि विडम्ब्यंयस्य दूतस्त्वमीदृक्॥ १२ ॥ सकृदधरसुधांस्वां मोहिनींपाययित्वासुमनसइव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक् । परिचरतिकथंतत्पादपद्मंतुपद्मा ह्यपिबतहृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिहबहुषडंघ्रेगायसित्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नःपुराणम्। विजयसखसखीनां गीयतांतत्प्रसंगः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिविभुविचरसायां काःस्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याःस्युः । चरणरजउपास्ते यस्यभूतिर्वयंकाअपिच कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृजशिरसिपादं वेद्म्यहंचाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्। स्वकृतइहविसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किंनुसन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥ मृगयुरिवकपीन्द्रं विव्यधेलुब्धधर्मास्त्रियमकृत विरूपांस्त्रीजितः कामयानाम्। बलिमपिबलिमत्त्वाऽवेष्टयद्ध्वांक्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्ण-

और बाल्यावस्था के सब चरित्रों का स्मरणकर, निर्लज्जहो, लौकिकव्यवहारों को छोड, प्यारे के चरित्रों का गानकरते रोते २ इसप्रकारसे पूछनेलगीं ॥ ९ । १० ॥ प्यारे के संग का ध्यानकरते करते कोई गोपी भौंरे को देख, प्यारे ने इसको दूतबनाकर भेजा है;—ऐसी कल्पना करके कहने लगीं कि—॥ ११ ॥ हे धूर्त्तके बन्धु भौंरे ! मेरे चरणका स्पर्शनकर;क्योंकि देखती हैं कि-तेरेदाढ़ी मूछ सपत्नी के कुचों से मर्दित मालाकी केसर से रंगेहुए हैं; मधुपति उन्हीं मानवतियों को प्रसन्न रक्खें परन्तु यादवों की सभा में इसबात की अवश्य हंसी होती होगी जिस का तू ऐसादूत है ॥ १२ ॥ हे भृंग ! तेरीही समान दुष्ट कि—जो फूलकी सुगन्धि ले तत्कालही उसे परित्यागकरदेता है वैसाही तेरा स्वामी है, कि जिसने हमको केवल एकबार मोहित करनेवाला अपना अधरामृत पिलाय छोड़दिया । लक्ष्मी कैसे उनके चरणकमल की सेवा करती है ? अहो ! जानती हैं कि—भगवान की मिथ्याबातों से उनकाभी चित्त हरगया है ॥ १३ ॥ हेषट्पद ! हमने यदुपति का अनेकबार अनुभव किया है अतएव वह हमारेनिकट पुराने होगये; तब फिर बारम्बार उनकागान हमारे समीप क्यों करता है ? हम उनकी स्त्री नहीं है । जो श्रीकृष्णजी की नई सखियां हैं उन्हीं के निकट उनकागान कर; वह उनकी प्यारी हैं-उन के आलिंगन करने से उनके कुचों का ताप दूर होता है; वह तुझको इच्छित फल देगीं ॥ १४ ॥ स्वर्ग में, पृथ्वी में और रसातल में ऐसी कौन स्त्री है कि जिसको वह नहीं पासकते ? क्योंकि उनका कपट मनोहर हास्य और विलास ऐसाही है लक्ष्मी जिनके पदरजका सेवनकरती हैं; उनके निकट हमक्या वस्तु हैं ? किंतु जो दुःखी प्राणियों पर कृपाकरते हैं उन्हींको " उत्तम श्लोक " कहाजासकता है ॥ १५ ॥ मेरे पैरों पर शिर मतरख—यह क्यातूने श्रीकृष्णजी से शिक्षा पाई है ? दूतकर्म और बातें बना २ कर प्रार्थना करने में तू बड़ाही निपुण है हम तेरे सब ढंग जानती हैं । अहो ! कृष्णजी का क्या अपराध है ? यह बात न कहो ! देखो—जिसके निमित्त हमने पुत्र, पति, और परलोक को त्यागदिया वह ऐसा चंचल चित्त है कि—उसने हमको छोडदिया । इससे वह क्या विश्वास योग्य होसकता है ? ॥ १६ ॥ वह ऐसा कूर है कि—रामावतार में इसने दाशरथि होकर व्याध की समान बानर राजाबाली का संहार कियाथा स्त्री के वशीभूतहो शूर्पणखा को विरूप कियाथा, और वामनावतार में बलिका भोजनकर काकवत् आचरण कर उसको बांधलिया—उसकी मित्रतासे कुछभी प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ जिन्होंने जिन भगवान्

पीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः। सपदिगृहकुटुम्बंदीनमुत्सृज्य दीनावहवइहविहंगा भिक्षुचर्यांचरन्ति ॥ १८ ॥ वयमृतमिवजिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वोहरिण्यः । ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन्भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥ प्रियसखपुनरागाःप्रेयसा प्रेषितःकिंवरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसिमेऽङ्ग । नयसिकथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसिसौम्य श्रीर्वधुःसाकमास्ते ॥ २० ॥ अपिवतमधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरतिसपितृगेहान्सौम्यबन्धुंश्चगोपान् । क्वचिदपिसकथानः किंकरीणांगृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदानु ॥२१॥ श्रीशुकउवाच । अथोद्धवोनिशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः । सान्त्वयन्प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच । अहोयूयंस्मपूर्णार्था भवत्योलोकपूजिताः । वासुदेवेभगवति यासामित्यर्पितंमनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैःकृष्णेभक्तिर्हिसाध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा । भक्तिःप्रवर्तितादिष्ट्या मुनीनामपिदुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्यापुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानिच । हित्वाऽवृणीतयूयंयत्कृष्णाख्यं पुरुषंपरम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे । विरहेणमहाभागा महान्मेऽनुग्रहःकृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः । यमादायागतोभद्रा अहंभर्तूरहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । भवतीनां वियोगोमे नहिसर्वात्मनाक्वचित् । यथाभूतानिभूतेषु खंवाय्वग्निर्जलंमही

के लीलारूप कर्णामृत के एक कणका एकबार भी पान करलिया है वे राग, द्वेषादि को छोड़ भीख मांगते फिरतेहैं परन्तु तौ भी तो उनकी बातका प्रसंग हमसे नहीं छोड़ाजाता ॥ १८ ॥ जैसे अज्ञान कृष्णसार की स्त्रियां हरिणीगण व्याधके गानेपर विश्वासकर दुःख पाती हैं तैसेही हमभी उस कपटी की बातपर विश्वासकर बारम्बार उसके नखस्पर्श से उत्पन्नहुए कामदेवकी पीड़ाको सहन करतीहैं। अतएव हेदूत ! और कुछ कह ॥ १९ ॥ हेप्यारे के सखा ! क्या प्यारेने तुझे फिर भजाहै? अहो! तू हमारा पूज्यहै क्याइच्छाहै कह। जिनका समागम छोड़ना अत्यंतकठिन है तू हमको इसस्थानसे उनके निकट कैसे लेजायगा—हेसौम्य! लक्ष्मीतो उनके वक्षःस्थलमें साथही रहतीहैं—फिर हमारा क्या प्रयोजनहै ॥२० ॥ आर्यपुत्र इससमय क्या मधुपुरीमेंहैं हेसौम्य! क्या वह कभी पिता माता घर बन्धु और गोपोंका स्मरण करते हैं ? इन दासियोंकी बात कभी कहते हैं ? अहो ! अगर चन्दनकी समान उन सुगन्धित बाहोंको वह कब हमारे मस्तकपर धरेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! उद्धवजीने इसप्रकार सुनकर श्रीकृष्ण दर्शनाभिलाषिणी गोपियोंको प्यारेके सम्वादसे धीरज बंधाय इन बातोंके कहने का आरम्भ किया कि–२२ अहो ! तुम लोकमें पूजनीयहो क्योंकि भगवान् बासुदेवमें तुम अपना मन समर्पित कियेहो २३॥ दान,व्रत, तपस्या, होम, जप, वेदाध्ययन,इन्द्रिय दमन और नानाप्रकार के मांगलिक अनुष्ठानों से श्रीकृष्णजी की भक्तिका साधन किया जासकताहै ॥ २४ ॥ यह अच्छाहुआ कि जो भक्ति मुनि लोगोंको भी दुर्लभहै भगवान् उत्तम श्लोकमें तुम्हारी श्रेष्ठ वही भक्ति प्रवाहित हुई है ॥ २५ ॥ भाग्यबलसे तुमने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घरको छोड़कर श्रीकृष्ण नामक परमपुरुष को स्वीकार कियाहै ॥ २६ ॥ तुमने भगवान की परमभक्ति प्राप्त की है। हेमहाभागगण ! तुम्हारे बिरहने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया, इसहीकारण मैं भगवत् प्रेम सुख देखताहूं, ॥ २७ ॥ मैं प्रभुका गुप्तकार्य करनेको तुम्हारे प्यारेका संदेशा लेकर आया हूं उसको सुनो इससे तुमसुख पावोगी ॥ २८ ॥ देखो–श्री भगवान् ने कहा है कि तुम्हारे साथ मेराकभी भी बियोग नहीं है;

तथाहंच मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजेहन्म्यनु-
पालये । आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३०॥ आत्माज्ञानमयःशुद्धो व्य-
तिरिक्तोगुणान्वयः । सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेन्द्रियार्था
न्ध्यायेतमृषा स्वप्नवदुत्थितः । तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रःप्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥
एतदन्तःसमाम्नायो योगःसांख्यंमनीषिणाम् । त्यागस्तपोदमःसत्यं समुद्रान्ताइ-
वापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहंभवतीनां वै दूरेवर्तेप्रियोदृशाम् । मनसःसन्निकर्षार्थं मद-
नुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथादूरचरेप्रेष्ठे मनआविश्यवर्तते। स्त्रीणांचनतथाचेतः
सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे॥ ३५ ॥ मय्यावेश्यमनःकृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्तियत् । अनुस्म-
रन्त्योमां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ यामयाक्रीडतारात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज
आस्थिताः । अलब्धरासाःकल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३७॥ श्रीशुकउवा
च । एवंप्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः । ताऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशाऽऽग-
तस्मृताः ॥ ३८ ॥ गोप्यऊचुः । दिष्ट्याऽहितोहतःकंसो यदूनांसानुगोऽघकृत् । दि
ष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य
करोतिपुरयोषिताम् । प्रीतिंनः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथंरति-
विशेषज्ञः प्रियंश्चवरयोषिताम् । नानुबध्येततद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥

क्योंकि मैं सबका आत्मा हूं । जैसे पृथ्वी, जल, तेज और आकाश—यह सब महाभूत सब प्रा-
णियों में स्थित हैं तैसेही मैं मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और गुणोंका आश्रय हूं ॥ २९ ॥ मैं भूत,
इन्द्रिय, और गुणरूप अपनी मायाके प्रभाव के साथ अपने द्वाराही अपने में अपनेको सृजता,
पालता और संहार करता रहता हूं ॥ ३० ॥ आत्मा ज्ञानमय होने के कारण भिन्न है अतएव
गुणों के साथ उसका संबंध नहीं है । वह शुद्ध है; सुषुप्ति स्वप्न और जागरण, नामक मनोवृत्ति
द्वाराही विश्व तैजस और प्राज्ञरूप से प्रतीत होताहै ॥३१॥ जैसे निद्रासे उठाहुआ मनुष्य मिथ्या
स्वप्नोंका ध्यान करता है, तैसेही जिसके द्वारा इन्द्रियें विषयों की चिंताकरती हैं और जिसके द्वारा
इन्द्रियें क्षुभित होती हैं उस मनको आलस्य छोड़कर दमन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ जैसेनदी स-
मुद्रमें गिरती है, वैसेही वेद, अष्टांग योग, सांख्य, सन्यास, स्वधर्म, इन्द्रिय निग्रह, और सत्य इन
सबका फलमनो निग्रहही है ॥ ३३ ॥ नेत्रोंका प्यारा मैं जोतुम से दूरबास करता हूं, इसका और
कोई अभिप्राय नहीं है केवल तुम्हारा मन मुझमें लगजाय इसी लियेरहता हूं ॥ ३४ ॥ प्रियतम के
दूर रहने से स्त्रियोंका चित्त जैसा उसमें लगारहता है निकट और आंखों के सामने रहने से उस
प्रकार से नहीं लगता ॥ ३५ ॥ इसही कारण तुमसब कामना छोड़कर मुझमें मन लगाय नित्य
मेरा ध्यानकर शीघ्रही मुझको प्राप्तहोगी ॥ ३६ ॥ हे कल्याणीगण ! वृंदावन में रात्रिको मेरेसाथ
क्रीड़ा करने में जोस्त्रियें अपने पतिआदि से रोकी जाकर मेरे साथ रास न करसकीं थीं, तो वह
मेरे पराक्रम का विचार करती हुई शीघ्रही मुझको प्राप्तहुईं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—
हे राजन् ! व्रजनारियें प्रियतमकी इस आज्ञाको सुन प्रसन्नहुईं और प्रियतम ने जोसंदेशा कहला
भेजाथा उससे पिछली बातोंका स्मरण होतेही गोपियें उद्धव जी से कहनेलगीं कि ॥ ३८ ॥ हे
सौम्य ! अच्छा हुआ कि यदुबंशियोंका दुःख दायीशत्रु कंस सेवकों समेत मरगया ! श्रीकृष्णजी
सब कामनाएं प्राप्तकर इस समय सुखसेतो हैं ? यही परम सुखका विषय है ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण
जी जोहमपर प्रीतिकरते थे, नगर नारियों परभी उनके सुंदर सलज्ज हास्य और उदार कटाक्ष
विक्षेप द्वारा पूजितहो वैसीही प्रीतिकरते हैं ॥ ४० ॥ वह रतिके कार्य में बड़ेचतुर हैं फिर श्रेष्ठ
स्त्रियोंके प्यारे और उनके हास्य, विलास से पूजित श्रीकृष्णजी उनपर कैसे अनुरक्त न होवेंगे ?

अपिस्मरतिनःसाधो गोविन्दःप्रस्तुतक्वचित् । गोष्ठीमध्येपुरस्त्रीणां ग्राम्याःस्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥ ताःकिंनिशाःस्मरतियासुसदा प्रियाभिर्वृन्दावनेकुमुदकुन्दशशांकरम्ये । रेमेक्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्या मस्माभिरीडितमनोज्ञकथःकदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीहदाशार्हस्तप्ताःस्वकृतयाशुचा । संजीवयन्नुनोगात्रैर्यथेन्द्रोवनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥कस्मात्कृष्णइहायाति प्राप्तराज्योहताऽहितः । नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतःसर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वामहात्मनः । श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थःकृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परंसौख्यंहिनैराश्यं स्वैरिण्यप्याहपिंगला । तज्जानतीनांनःकृष्णे तथाऽप्याशादुरत्यया ॥ ४७ ॥ कउत्सहेतसंत्यक्तु मुत्तमश्लोकसंविदम् । अनिच्छतोऽपियस्यश्री रंगान्नच्यवतेक्वचित् ॥४८॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावोवेणुरवाइमे। संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचऽऽरिताःप्रभो ॥ ॥ ४९ ॥ पुनःपुनःस्मारयन्ति नन्दगोपसुतंबत । श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुंनैवशक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्यालळितयोदार हासलीलावलोकनैः । माध्व्यागिराहृतधियः कथंतंविस्मरामहे ॥ ५१ ॥ हेनाथहेरमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन । मग्नमुद्धरगोविन्द गोकुलंवृजिनार्णवात् ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच॥ ततस्ताःकृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः । उद्धवंपूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ४३ ॥ उवासकतिचिन्मासान् गोपीनांविनुदंशुचः । कृष्णलीलाकथांगायन्रमयामासगोकुलम् ॥ ५४ ॥ या

॥ ४० ॥ हे साधो ! हम ग्राम निवासिनी हैं, नगर नारियोंकी सभामें उपस्थित होकर वह कभी २ हमारा भी स्मरण करते हैं ॥४१॥ कुमुद, कुंद और चन्द्रमा से शोभित हुए वृन्दावन के बीचजिन रात्रियों में रासमंडली में प्यारियों के साथ विहार कियाथा-और बिहार के समय में उनके चरणों की नूपुरबजीं थीं और हमने उनकी मनोहर कथाका गान कियाथा क्याकभी उन रात्रियों काभी वह स्मरण करते हैं ॥४३॥ उनके कारण हम नित्यशोक से संतप्त हुआ करती हैं इन्द्र जैसे अमृत रूपीवर्षा करके गर्मी से तप्तवनको जीवित करता है, क्या वैसेही श्रीकृष्णजी भी यहांपर आयकर स्पर्शनादि द्वारा हमारे संतापको दूरकरेंगे ॥ ४४ ॥ और एकदूसरी गोपीने कहाकि—हे सखि ! श्रीकृष्णजी ने राज्यपाया है, शत्रुको मारा है और राज कन्याओं से बिबाहकर सब बंधुओं से वेष्टितहो सुखसे विराजमान हैं, वह ऐसा ऐश्वर्य त्यागकर यहांपर क्यों आवेंगे ॥ ४५ ॥ और एक स्त्री ने कहाकि—हे सखि ! तुम नहीं जानतीं, श्रीकृष्णजी धीर व लक्ष्मीपति हैं, उन्हों ने अपने आपही सब काम किये हैं अतएव वह पूर्ण हैं हमबन वासियों की वह कौन इच्छापुरी करेंगे और राजकुमारी व दूसरी स्त्रियोंहीको क्या करेंगे ॥४६॥ पिंगला वेश्याने भीतो कहा है--"कि आशाको छोड़ देनाही परम सुख है" हम यह जानती हैं परन्तु तौभी आशा कैसे छोड़सकती हैं श्रीकृष्ण जी पर हमारी इतनी आशा है कि वह नहीं छूटसकती ॥ ४७ ॥ जिन भगवान् की इच्छा रहते हुए भी लक्ष्मी उनके अंगसे कभी दूर नहीं होती, उनके एकांत की वार्त्ताको कौन छोड़सकता है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! वलरामजी के साथ श्रीकृष्णजी ने जिनमें रमण कियाथा वेनदी, पर्वत, बन प्रदेश, गौ, वेणुनाद ॥ ४९ ॥ यह सब नंदनंदनका स्मरण करवाते हैं उन स्थानों में उनके चरण चिह्न देखकर हमभी उनका विस्मरण नहीं करसकतीं ॥ ५० ॥ हे उद्धव ! श्रीकृष्णजी के ललित गति, उदार हास्य, लीला, अवलोकन और मधुर वाक्यों ने हमारे चित्तको हरण करलिया है; अतएव अब हम उसे कैसेभूलें ॥ ५१ ॥ हे कृष्ण ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्त्तिनाशन! हे गोबिंद ! एकबार आकर देखजाओ; गोकुल दुःख सागर में डूबगया है; इसका उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के संबाद से गोपियों के बिरह का तापदूर होगया । श्रीकृष्णजी भगवान् और आत्मा हैं यह बिचारकर उद्धवजी की पूजाकी ॥५३॥

वन्त्यहानिनन्दस्य व्रजेऽवात्सीत्सउद्धवः । व्रजौकसांक्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् । कृष्णंसंस्मारयन्रेमे हरिदासोव्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादिगोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् । उद्धवःपरमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताःपरंतनुभृतोभुविगोपवध्वो गोविन्दएव निखिलात्मनिरूढभावाः । वांछन्तियद्भवभियो मुनयोवयंचकिं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥५८॥क्वेमाःस्त्रियोवनचरीर्व्यभिचारदुष्टाःकृष्णेक्वचैषपरमात्मनिरूढभावः । नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराजइवोपयुक्तः॥५९॥नायंश्रियोऽङ्गउनितान्तरतेःप्रसादःस्वर्योषितां नलिनगन्धरुचांकुतोऽन्याः । रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहोचरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनाम् । यादुस्त्यजंस्वजनमार्यपथंच हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१॥ या वैश्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तंस्तनेषु विजहुःपरिरभ्यतापम् ॥ ६२ ॥ वन्देनन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासांहरिकथोद्गीतं पुनातिभुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुकउवाच । अथगोपीरनुज्ञाप्य यशोदांनन्दमेवच । गोपानामन्त्र्यदाशार्हो यास्यन्नारुरुहेरथम् ॥ ६४ ॥ तंनिर्गतंसमासाद्य नानोपायनपाणयः । नन्दादयोऽनुरागेण

उद्धवजी गोपियों के शोक का नाश करते हुए कई महीने गोकुल में रहे और कृष्णजी के चरित्रों का गानकर २ गोकुलको आनंद दिया ॥ ५४ ॥ उद्धवजी जितने दिन नन्दरायके गोकुल में रहे श्रीकृष्णजी सम्बन्धी कथा वार्त्ता से व्रजवासियों को उतने दिन क्षण की समान व्यतीत हुए ॥ ५६ ॥ वह हरिभक्त उद्धवजी—नदी, बन; पर्वत द्रोणी और कुसुमित बन देख; व्रजवासियों को श्रीकृष्णजी का स्मरण कराय आनन्द से समय बिताने लगे ॥ ५७ ॥ उद्धवजी श्रीकृष्णजी में लगेहुए गोपियों के चित्तकी ऐसी कायरता देख अत्यन्त आनन्दितहो उनको प्रणामकर इसप्रकार कहनेलगे कि—५८ ॥ पृथ्वी मण्डलमें इन्हीं गोपियाने यथार्थ देह धारण की है, क्योंकि इन्होंने भगवान् में इसप्रकार का दृढ़ प्रेम जोड़ा है । यह प्रेम साधारण नहीं है संसार से डरेहुए मुनि लोग मुक्ति प्राप्तिकी इच्छा से इसही प्रेम को कहतेहैं । भगवत चरित्रोंमें जिनका चित्त लगरहाहै उसका ब्राह्मण जन्म होनेसे क्या प्रयोजन ॥ ५९ ॥ कहां तो यह बनमें रहनेवाली व्यभिचार के दोषसे दूषित स्त्रियां और कहां श्रीकृष्णजी पर ऐसी दृढ़भक्ति अहो ! अज्ञान मनुष्य भी यदि भक्ति करे तो ईश्वर उसको साक्षात् फल देतेहैं न जानकर भी अमृत पानसे कल्याणही होताहै ॥ ६० ॥ रासोत्सव में भगवान्ने अपना भुजदण्ड गोपियों के कण्ठमें डालकर जो कृपा उनपरकी वैसी कृपा श्रीहरिके बक्षःस्थल में बास करनवाली परमप्यारी लक्ष्मीजी को भी कभी नहीं प्राप्तहुई और न कमलकीसी सुगन्धि व कांतिवाली स्वर्गकी स्त्रियोंहीको वहप्राप्तहुई ॥६१॥ यह सब गोपियें नछोडनयोग्य स्वजन और आर्यधर्म को छोड़कर वेद जिसका खोज करताहै उन भगवान् की सेवा करतीहैं, वृन्दाबनमें जो गुल्म लता और औषधियें इनके चरणरजका सेवन करतीहैं उनमेंसे व्रजके बीच में भी कोई होजाऊं ॥६२॥ लक्ष्मीजी श्रीकृष्णजीके जिन चरण रजका सेवन करती हैं और ब्रह्मादि पूर्णकाम मुनिगण हृदयमें जिनकीपूजाकरतेहैं उन्हींभगवान्के चरणकमलको रासमभामें स्तनोंपरधर आलिंगनकर इन्होंनेअपने सन्तापको दूरकियाथा॥६३॥अतएवमें नन्दके व्रजकी रहनेवाली स्त्रियोंकी चरणरजको बारंबार प्रणाम करताहूं जिनकाभगवतसंबंधी गान त्रिलोकी को पवित्र करताहै ॥६४॥ श्रीशुकदेवजी बोल

प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥ मनसोवृत्तयोनःस्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः । वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्रक्वापीश्वरेच्छया । मंगलाचरितैर्दानैरतिर्नः कृष्णईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवंसभाजितोगोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप । उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याऽऽहंभक्त्युद्रेकंव्रजौकसाम् । वसुदेवाय रामाय राज्ञेचोपायनान्यदात् ६९

इति श्रीमद्भा० महा० सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथविज्ञायभगवान्सर्वात्मासर्वदर्शनः । सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहंययौ ॥ १ ॥ महार्होपस्करैराढ्यंकामोपायोपबृंहितम् । मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः । धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥ २ ॥ गृहंतमायान्तमवेक्ष्यसाऽऽसनात्सद्यः समुत्थायहिजातसंभ्रमा । यथोपसंगम्यसखीभिरच्युतंसभाजयामाससदासनादिभिः ॥३॥ तथोद्धवः साधुतयाऽभिपूजितोन्यषीदकुर्व्यामभिमृश्यचासनम् । कृष्णोऽपितूर्णंशयनंमहाधनंविवेशलोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सामज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः प्रसाधितात्मोपससारमाधवंसव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूयकान्तांनवसंगमह्रियाविशङ्कितांकङ्कणभूषितेकरे । प्रगृह्यशय्यामधिवेश्यरामयारेमऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥ साऽनङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन

कि—हेराजन् ! उद्धवजी इसप्रकारसेकुछ महीने वहां निवासकर गोपीगण यशोदा और नन्दजी से आज्ञाले मथुरा जानेके निमित्त रथपर चढे ॥ ६५ जानेके समय नंदादि गोपगण अनेक भेंटले उद्धवजी के निकट आय प्रेमवश रो २ कर कहनेलगे ॥ ६६ ॥ हमारे मनकी वृत्तियां श्रीकृष्णजी में लगीरहें वाणी उनके नामोंका कीर्तन करें और शरीर उनके प्रणाम आदि करनेमें लगारहे ॥ ६७ ॥ कर्मवशसे भ्रमण करते २ ईश्वरेच्छा से किसी योनिमें क्यों न जांय मंगलाचरण और दानादि द्वारा भगवान् श्रीकृष्णजी में हमारी बुद्धिरहे ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! गोपगणों से श्रीकृष्णजीकी भक्तिद्वारा इसप्रकार पूजितहो उद्धवजी श्रीकृष्णजी से पालित मथुरापुरी में आये ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्णजी को प्रणामकर,ब्रजवासियों की एकान्तकी भक्तिका बर्णनकर उनकीदीहुई भेंटआदि बसुदेवजी, बलभद्रजी और राजाको समर्पणकी ॥ ७० ॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायांसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! तदनन्तर सर्वात्मा, सर्वदर्शी भगवान काम से संतप्तहुई कुब्जा का प्रिय करनेकी इच्छासे उस के घर गये ॥१ ॥ वहघर—महामूल्यघरकी सामग्रियों और कामोद्दीपकपदार्थों से परिपूर्णथा । मोतियों की झालर, पताका, बितान, शय्या और आसन से सुशोभित और सुगंधि, धूप,दीप, माला तथा सुगन्धितपदार्थों से विभूषितथा ॥२॥ कुब्जाश्रीकृष्णजी को घरमें आते देखकर शीघ्रता पूर्वक आसन से उठी और सखियों के साथ उनको व उद्धवजीको आसनादि देकर पूजाकी ॥ ३ ॥ हरिभक्त उद्धवजी आसन छोड़कर पृथ्वी पर बैठगए। श्रीकृष्णजी लोकरीति का अनुकरण करतेहुए शीघ्र महामूल्यशय्या में पधारे ॥ ४ ॥ कुब्जाभी मज्जन, आलेपन, रेशमीवस्त्र, आभूषण, फूल, माला, पान, सुगन्धितपदार्थ, और अमृतकी सदृश आसव पदार्थों से शरीर को सजाय, लाजयुक्त,लीलासे हँसती कटाक्ष विपेक्षकरती श्रीकृष्णजी के निकट आई ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजी नवीन संगम से उत्पन्नहुई लज्जा के कारण कुछ एक डरतीहुई सुन्दरी को बुलाय उस के कंकण से भूषित दोनों हाथ पकड़, शय्या पर लिटायकर क्रीड़ाकरने लगे । कुब्जा ने केवल चन्दन अर्पण करके इसफलको प्राप्त किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुब्जा ने

रुजोमृजन्ती । दोर्भ्यांस्तनान्तरगतंपरिरभ्यकान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवंकैवल्यनाथंतंप्राप्यदुष्प्रापमीश्वरम् । अङ्गरागार्पणेनाहोदुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहोष्यतामिहप्रेष्ठदिनानिकतिचिन्मया । रमस्वनोत्सहेत्युत्सृष्टुंत्वांऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यैकाममवरंदत्त्वामानयित्वाचमानदः । सहोद्धवेनसर्वेशः स्वधामागमदर्चितम् ॥१०॥ दुराराध्यंसमाराध्यविष्णुंसर्वेश्वरेश्वरम् । योवृणीतेमनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनंकृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः । किञ्चिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ सतान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्यस्वबान्धवान् । प्रत्युत्थायप्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्यच ॥ १३ ॥ ननामकृष्णंरामंचसतैरप्यभिवादितः । पूजयामासविधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापोधारयञ्छिरसानृप । अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वाशिरसाऽनम्यपादावङ्कगतौमृजन् । प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥ दिष्ट्यापापोहतः कंसः सानुगोवामिदंकुलम् । भवद्भ्यामुद्धृतंकृच्छ्राद्दुरन्ताच्चसमेधितम् ॥ १७ ॥ युवांप्रधानपुरुषौजगद्धेतूजगन्मयौ । भवद्भ्यांनविनाकिञ्चित्परमस्तिनचापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदंविश्वमन्वाविश्यस्वशक्तिभिः । ईयतेबहुधाब्रह्मञ्छ्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथाहिभूतेषुचराचरेषुमह्यादयोयोनिषुभान्तिनाना । एवंभवान्केवलआत्मयोनिष्वात्मात्मतन्त्रोबहुधाविभाति ॥ २० ॥ सृजस्यथोलुम्पसिपासिविश्वंरजस्तमः सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः । नबध्यसेतद्गुणकर्मभिर्वा

भगवान के चरण सूंघ, कामदेव से सन्तप्तहुए दोनों कुचों,वक्षःस्थल,और दोनों नेत्रों की व्यथा नाशकी, और दोनों स्तनों के अन्तर्गत आनन्दमूर्त्ति भगवान का आलिंगन कर अतिदीर्घ सन्ताप को दूर किया ॥ ७ ॥ अहो ! उस दुर्भगा कुब्जा ने, चन्दन समर्पणकर, मोक्षदेनेवाले दुष्प्राप्य ईश्वर को पाय यह प्रार्थनाकी कि— ॥ ८ ॥ हेप्रियतम ! इस स्थानपर कुछ दिनों बासकर मेरे साथ विहारकरो; हेकमलनयन ! तुम्हारा साथ छोड़ने की मेरीइच्छा नहीं है ॥ ९ ॥ सर्वेश्वर मान देनेवाले भगवान उस कुब्जाको इच्छितवरदे और अलंकारादि दानद्वारा सनमानकर उद्धवके साथ अपने समृद्धिशाली घर आये ॥ १० ॥ सर्वेश्वर भगवान् विष्णु की आराधनाकर जो मनुष्य विषय सुखों की प्रार्थना करता है वह महाअज्ञानी है—क्योंकि विषयसुखतो तुच्छपदार्थ है ॥ ११ ॥ हे राजन ! इस कार्य के उपरांत भगवान् श्रीकृष्णजी अक्रूर के प्रसन्न करनेको उनको हस्तिनापुर भेजने की इच्छासे राम और उद्धव के साथ उनके घरपर गये ॥ १२ ॥ अक्रूर ने दूरसेही उन आत्मबांधव, मनुष्यों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी आदि को आता देख उनका आलिंगन और अभिनन्दन कर प्रणामकिया ॥ १३ ॥ वहभी उनका अभिनन्दनकर आसनपर बैठगये । अक्रूर ने उनकीपूजा की ॥ १४ ॥ हेमहाराज ! अक्रूरजी ने उनके चरणामृत को मस्तकपर धारण किया और भेंट, दिव्यवस्त्र, गन्ध, माला, उत्तम आभूषण ॥ १५ ॥ इन से पूजन व शिरसे प्रणामकर उनके चरण अपनी गोदीमें ले धीरे २ चापतेहुए विनय से नम्रहो राम, कृष्ण से कहा ॥ १६ ॥ अच्छाहुआ कि दुष्ट कंस अनुचरोंसमेत मारागया,और आप दोनों ने अपने वंश को कष्ट से उद्धारकरउसकी वृद्धिकी ॥ १७ ॥ आप दोनोंजन प्रधानपुरुष; जगत् के कारण और जगन्मयहो । आप से भिन्न और कोई कार्य व कारण नहींहै ॥ १८ ॥ हेब्रह्मन् ! रज आदि अपनी शक्तिद्वारा आपही अपने रचेहुएइसजगत में प्रविष्टहो देखने और सुनने में आतेहुए पदार्थरूप अनेकप्रकार से प्रतीत होते हो ॥ १९ ॥ जैसे अपनेही रूपांतर से अभिव्यक्त—चराचर भूतगणों में पृथिव्यादिकारण नाना रूप से प्रकाश पाते हैं तैसेही आप निरवच्छिन्न आत्मा और स्वतंत्रहोकरभी आप अपने कार्यरूप सबपदार्थों में अनेक रूपसे प्रतीत होतेहो ॥ २० ॥ रज,तम, और सत्वगुण आपकी निजशक्तिहैं

ज्ञानात्मनस्तेक्वचबन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवोनसाक्षान्नभिदाऽऽत्मनः स्यात् । अतोनबन्धस्तवनैवमोक्षःस्यातांनिकामस्त्वयिनोऽविवेकः॥२२॥ त्वयोदितोऽयंजगतोहिताययदायदावेदपथः पुराणः । बाध्येतपाखण्डपथैरसद्भिस्तदाभवान्सत्वगुणंबिभर्ति ॥ २३ ॥ सत्वंप्रभोऽद्यवसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेनभारमपनेतुमिहाखिभूमेः ।अक्षौहिणीशतवधेनसुरेतरांशराज्ञाममुष्यचकुलस्ययशोवितन्वन् ॥२४॥ अद्येशनोवसतयःखलुभूरिभागा यःसर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः । यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनातिसत्वं जगद्गुरुरधोक्षजयाः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पंडितस्त्वदपरंशरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदःकृतज्ञात् । सर्वान्ददाति सुहृदोभजतोऽभिकामा नात्मानमप्युपचयापचयौनयस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्याजनार्दनभवानिहनः प्रतीतोयोगेश्वरैरपिदुरापगतिः सुरेशैः । छिन्ध्याशुनः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितःसंस्तुतश्च भक्तेनभगवान्हरिः अक्रूरंसस्मितंप्राह गीर्भिःसंमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । त्वंनोगुरुः पितृव्यश्चश्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा । वयंतुरक्ष्याःपोष्याश्च अनुकम्प्याःप्रजाहिवः ॥ ॥ २९ ॥ भवद्विधामहाभागानिषेव्याअर्हसत्तमाः । श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाःस्वार्थानसाधवः ॥ ३० ॥ नह्यम्मयानितीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरुकाले

आप इन्हीं शक्तियोंद्वारा जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशकरतेहो । किंतु आप इनसबकर्मों व गुणोंद्वारा बँधेनहींहो; क्योंकि आप ज्ञानात्माहो अतएव बन्धन का कारण अविद्याकभी आप में नहीं रहसकती ॥ २१ ॥ विचार करके देखने से देहादि उपाधि का यथार्थ संस्थापन नहीं किया जासकता; अतएव जीवात्मा काभी जन्म व जन्ममूलक भेद नहीं होसकता;इसकारण आप बन्धन व मोक्ष दोनों सेही मुक्तहो । हमारा अज्ञानही आप के बन्ध और मोक्षकी कल्पनाकरता है॥२२॥ जगत के मंगलार्थ आपने जो यह पुराण वेदमार्ग प्रकाशित किया है; यह मार्ग जबरमिथ्यापाखण्ड मार्गद्वारा बाधित होताहै, आप तबही तब सत्वगुण का अवलम्बन करते रहतेहो ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! यहां आप असुरों के अंशसे उत्पन्नहुए राजाओं की सैकड़ों अक्षौहणियों को मारकरपृथ्वी का भार उतारने के निमित्त बसुदेव के घर में अवतारले यदुकुल की कीर्तिको बढ़ारहेहो ॥२४ ॥ हे ईश्वर ! समस्त वेद, पितृ, भूत, नर, और देवतागण जिसकी मूर्त्ति है और जिसकाचरणामृत तीनो जगत को पवित्रकरता है वही अधोक्षज भगवान् आज मेरेघर आये, अतएव आज मेराघर पवित्रहुआ ॥ २५ ॥ आप के आनेसे आज मैं कृतार्थ होगया । आप भक्तप्रियहो इसकारणसत्य वक्ताहो;आप कृतज्ञहो अतएव सबके सुहृदहो—आपकी अधिकता व न्यूनता नहीं है । जो भक्त पुरुष आप का भजन करते हैं;आप चारोंओर से उनकी इच्छा पूर्णकियेरहतेहो किन्तु आप अपने आत्मस्वरूप तकको उसे देदेतेहो;अतएव कौनमनुष्य पण्डितहोकर आपके अतिरिक्त और दूसरेकी शरणागत होगा ॥ २६ ॥ हे योगेश्वर ! देवता, इंद्र आदिभी आपके स्वरूप को नहीं जानसकते; यहांपर आप मेरे दृष्टिगोचर हुए सो यह मेरा बड़ाभारी सौभाग्य है आप जिस माया से पुत्र, स्त्री धन, स्वजन, घर और देहादिरूप मोह उत्पन्न करतेहो आप उस माया को मुझसे दूर करदो ॥ ॥२७॥ हेराजन् ! भक्तअक्रूर के इसप्रकार से अर्चना व स्तुतिकरनेपर भगवान् कुछ एक हँसकर बचनों से उनको मोहित करतेहुएबोले ॥ २८ ॥ कि—हे तात ! तुमहमारे गुरु, चचा और सब समय में प्रशंसायोग्य बन्धुहो । हमतो आपके रक्ष्य, पोष्य औरकृपाके पात्र हैं ॥२९ ॥जो मनुष्य मंगलकी कामना करतेहैं उनको आपकी समान पूज्यतम महाभाग मनुष्यों की सेवाकरनाउचित है । देवतागण तो स्वार्थी होते हैं परन्तु साधू वैसे नहीं होते ॥ ३० ॥ किंतु ऐसा कहने से यह न

न दर्शनादेवसाधवः ॥ ३१ ॥ सभवान्सुहृदां वैनः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया। जिज्ञासार्थंपाण्डवानां गच्छस्वत्वंगजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरतेबालाः सहमात्रासुदुःखिताः आनीताःस्वपुरंराज्ञा वसन्तइतिशुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषुराजाऽम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषुदीनधीः। समोनवर्ततेनूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ३४ ॥ गच्छजानीहितद्वृत्तमधुना साध्वसाधुवा। विज्ञायतद्विधास्यामो यथाशंसुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरंसमादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः। संकर्षणोद्धवाभ्यां वैततःस्वभवनंययौ॥३६

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पूर्वार्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

श्रीशुकउवाच। सगत्वाहास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम्। ददर्शतत्राम्बिकेयं सभीष्मंविदुरंपृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रंचबाह्लीकं भारद्वाजंसगौतमम्। कर्णंसुयोधनंद्रौणिं पाण्डवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः। संपृष्टस्तैःसुहृद्वार्त्तांस्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवासकतिचिन्मासाञ्राज्ञोवृत्तविवित्सया। दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ तेजओजोबलवीर्यं प्रश्रयादींश्चसद्गुणान्। प्रजानुरागंपार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतंच धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम्। आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथाविदुरएवच ॥ ६ ॥ पृथातुभ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्यतम्। उवाचजन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा

जानना कि–सबजलमयतीर्थ-तीर्थ नहीं हैं और मिट्टी पत्थर आदि के बनायेहुए देवता-देवता नहीं हैं; निश्चयही वह सब देवता और तीर्थ हैं;–परन्तु यद्यपि जलमय स्थानतीर्थ और मिट्टी, पत्थर की मूर्त्ति देवता हैं तौभी साधुओं में और उनसबों में बहुत भेद देखाजाता है, क्योंकि देवता और तीर्थों की बहुत दिनों तक सेवाकरने से पवित्रता होती है किंतुसाधुओं की केवल सेवाहीसे शुद्धि उत्पन्नहोती है ॥ ३१ ॥ मेरे जितने आत्मीय हैं तुम उनसबों में श्रेष्ठहो, अतएव तुम पाण्डवों के कल्याणकरने के निमित्त उनकी कुशलक्षेम पूछने को हस्तिनापुरजाओ ॥ ३२ ॥ वह बालक हैं; सुना है कि— पिताके स्वर्गबासहोने से माता समेत वह अत्यन्त दुःखितहुए हैं; राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपने नगर में ले आये हैं; इसकारण वह वहांही बासकररहे हैं ॥ ३३ ॥ अम्बिका के पुत्र दीनबुद्धिराजाधृतराष्ट्र अंधे हैं इस से वह अपनेदुष्ट पुत्रों के बशीभूत होरहे हैं; मैं जानताहूं कि–वह अपने भतीजों पर समानव्योहार नहीं करते ॥ ३४ ॥ इस समय वहांजायकर जानआओ किउनका समाचार भला है याबुरा। जाननेपर आत्मीय जनों का जैसे भलाहोगा वह करूंगा ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जी अक्रूरजी को यह आज्ञादे बलरामजी व उद्धवजी के साथ अपने घर पर आये ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांअष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! अक्रूर श्रेष्ठ पुरुवंशियों की कीर्त्तिसे व्याप्त हस्तिनापुर में जाय धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक और उनके पुत्रगण, भारद्वाज, गौतम, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पांडवगण और दूसरे भी सुहृदों से मिले ॥ १—२ ॥ गांदिनीनन्दनने सब बंधुओंसे मिलकर उनकी कुशल पूंछी, और उन्होंने भी उनकी कुशल पूँछी ॥ ३ ॥ हे महाराज! अक्रूर दुमति राजा के आचरण जाननेको कई एक महीने हस्तिनापुर में रहे उन्होंने देखा कि— राजा के सब पुत्र असत् हैं और वह दुष्ट कर्णादिक की इच्छानुसार कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ कुन्ती और विदुरने पांडवोंके तेज, शास्त्रादिकी निपुणता बल वीर्य, बिनयादि सद्गुण और उनके ऊपर प्रजाके स्नेहका यथार्थ बर्णन किया। और दुष्ट धृतराष्ट्र आदि भी उनके गुणोंका सहनकर बिष आदि देने व दूसरेभी जो कर्म कियेहैं और जो करनेकी इच्छाहै उन सब बातों का अक्रूर जी से बर्णन किया ५—६ ॥ कुन्ती अपने भाई अक्रूर के समीप आय जन्मभूमि, व माता, पिता, का

॥ ७ ॥ अपिस्मरन्तिनःसौम्य पितरौभ्रातरश्चमे । भगिन्योभ्रातृपुत्राश्च जामयःसख्य
एवच ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयोभगवान्कृष्णः शरण्योभक्तवत्सलः । पैतृष्वसेयान्स्मरति रा-
मश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्येशोचन्तीं वृकाणांहरिणीमिव । सान्त्वयिष्यति
मांवाक्यैः पितृहीनांश्चबालकान् ॥ १० ॥ कृष्णकृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभा
वन । प्रपन्नांपाहिगोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥ नान्यत्तव पदाम्भोजा-
त्पश्यामि शरणंनृणाम् । बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽऽपवर्गिकात् ॥ १२ ॥
नमःकृष्णायशुद्धाय ब्रह्मणेपरमात्मने । योगेश्वराययोगाय त्वामहंशरणंगता ॥१३॥
श्रीशुकउवाच । इत्यनुस्मृत्यस्वजनं कृष्णंचजगदीश्वरम् । प्रारुदद्दुःखिता राज-
न्भवतांप्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्चमहायशाः । सान्त्वया-
मासतुःकुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमंपुत्रलाल-
सम् । अवदत्सुहृदांमध्ये बन्धुभिःसौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूरउवाच । भोभो वै
चित्रवीर्यत्वं कुरूणांकीर्तिवर्धन । भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥१७॥
धर्मेणपालयन्नुर्वीं प्रजाःशीलेनरंजयन् । वर्तमानःसमःस्वेषु श्रेयःकीर्तिमवाप्स्य-
सि ॥ १८ ॥अन्यथात्वाचरँल्लोके गर्हितोयास्यसेतमः । तस्मात्समत्वे वर्तस्व पाण्ड
वेष्वात्मजेषुच ॥ १९ ॥ नेहचात्यन्तसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह । राजन्स्वेनापि
देहेनकिमुजायात्मजादिभिः ॥ २० ॥ एकः प्रसूयतेजन्तुरेकएवप्रलीयते । एकोनु

स्मरण कर रो २ कर सहने लगी कि— ॥ ७॥ हेसौम्य ! हमारे पिता, माता, भ्राता, भगिनी,
भाईके पुत्र कलत्री और सखियां क्या कभी मेरा स्मरण करती हैं ? शरण देनेवाले, भक्तवत्सल,
भ्रातृ पुत्र, भगवान् श्रीकृष्णजी और कमलनयन राम क्या अपनी फूफी के लड़कों का स्मरण
करतेहैं ॥ ८—९ ॥ व्याघ्रों के बीचमें पड़ीहुई हरिणी की समान मैं शत्रुओं के बीच में पड़ीहुई
शोक कररहीहूं कृष्ण क्या मुझे और इन सब पिता हीन बालकों को अपने बचनोंसे सांत्वनादेंगे
॥ १० ॥ हेकृष्ण ! हेकृष्ण! हेमहायोगिन् ! हेविश्वात्मन् ! हेविश्वपालक ! मैं आपकी शरणागतहूं
छोटे बच्चों को लेकर मैं उनके साथ बहुत दुःखित होरहीहूं , हेगोविन्द! मेरी रक्षाकरो ॥११,॥
हेईश्वर ! आप के मोक्ष देनेवाले चरणों के अतिरिक्त मृत्यु और संसार के भयसे भीत मनुष्योंको
कोई और शरण देनेवाला नहीं देखपड़ता ॥ १२ ॥ धर्मात्मा, अपरिच्छिन्न प्राणियों के मित्र
अणिमादि गुणों युक्त ज्ञानात्मा श्रीकृष्ण जी को नमस्कारहै, हेप्रभो ! मैं आपकी शरणागतहूं, ॥
॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजन् ! तुम्हारी प्रपितामही अपने स्वजनों और श्रीकृष्ण
जी का इसप्रकार से स्मरण कर दुःखितहो रोनेलगी ॥ १४ ॥ जिनको सब दुःख सुख समानहै
ऐसे अक्रूर व महायशवाले विदुरजी उनके पुत्रों के जन्म के कारणभूत इंद्रादिकोंकी कथा कह २
कर कुन्तीको सांत्वना देनेलगे ॥ १५ ॥ अनंतर अक्रूरजी जानेके समय पुत्रवत्सल बिषमाचारी
राजा धृतराष्ट्र के निकट आए और राम कृष्णने जो कहाथा वह सब कहनेलगे ॥ १६ ॥ अक्रूर
जी ने कहा कि—हेबिचित्र वीर्य नन्दन ! आप कौरवोंकी कीर्तिके बढ़ानेवाले भाई पांडुके मरने
पर इससमय राजगद्दी पर बैठेहो यदि आत्मीय जनोंपर समान व्यवहार करके सुंदर चरित्रोंद्वारा
प्रजाको प्रसन्नरख पृथ्वीका पालन करोगे तो तुम्हें कल्याण प्राप्त होकर यश प्राप्तहोगा ॥ १८ ॥
नहीं तो इसके बिपरीत आचरण करनेसे लोकमें निंदित होगे. । अतएव आप अपने पुत्र और
पांडवोंपर समान व्यवहारकरो ॥१९॥ हेराजन् इसलोक में कोईभी किसीके साथ बहुतदिनों तक
नहीं रहसकता । स्त्री पुत्रादिकोंकी बाततौ दूररही अपनी देहके साथही बहुत दिनोंतक बास नहीं

भुङ्क्तेसुकृतमेकएवचदुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितंवित्तंहरन्त्यन्येऽल्पमेधसः । संभोजनीयापदेशैर्जलानीवजलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णातियानधर्मेणस्वबुद्ध्यातम पण्डितम् । तेऽकृतार्थंप्रहिण्वन्तिप्राणारायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयंकिल्बिषमा दायतैस्त्यक्तोनार्थकोविदः । असिद्धार्थोविशत्यन्धंस्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥ तस्माल्लोकमिमंराजन्स्वप्नमायामनोरथम् । वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानंसमः शान्तोभ वप्रभो ॥२५॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथावदतिकल्याणींवाचंदानपतेभवान् । तथाऽ नपानतृप्यामिमर्त्यः प्राप्ययथाऽमृतम् ॥ २६ ॥ तथाऽपिसूनृतासौम्यहृदिनस्थीय तेचले । पुत्रानुरागविषमेविद्युत्सौदामनीयथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्यविधिंकोनुविधु नोत्यन्यथापुमान् । भूमेर्भारावताराययोऽवतीर्णोयदोः कुले ॥ २८ ॥ योदुर्विमर्श पथयानिजमाययेदंसृष्ट्वागुणान्विभजतेतदनुप्रविष्टः । तस्मैनमोदुरवबोधविहारत न्त्रसंसारचक्रगतयेपरमेश्वराय ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्यनृपतेरभि प्रायंसयादवः । सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥ शशंसरामकृष्णा भ्यांधृतराष्ट्रविचेष्टितम् । पाण्डवान्प्रतिकौरव्ययदर्थंप्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

होता॥२०॥जीव अकेलाही उत्पन्नहोता अकेलाही नाशहोता और अकेलाही सुकर्मों कुकर्मोंका भोग करताहै॥२१॥जलवासी मत्स्यादिके जलकी समान पालेहुए पुत्रादिकानाम धर मूढ़ मनुष्य अधर्मसे इकट्ठे कियेहुए धनकाहरण करतेहैं॥२२॥मूर्ख मनुष्य अपनाजानकर जिन प्राण अर्थ और पुत्रा- दिकोंका अधर्मसे पोषण करताहै परन्तु वह भोगका सुख प्राप्त होनेके पहिलेही उसको छोड़देते हैं ॥२३॥उनके छोड़नेपर वह स्वधर्मसे विमुख, अपने प्रयोजनको न जाननेवाला अपूर्ण काम मनुष्य अपने पापोंको साथले घोरनरक में गिरता है ॥ २४ ॥ अतएव हे राजन् ! हेप्रभो ! इसलोक को स्वप्न माया और मनोरथकी समान जान अपने द्वारा अपनेको दमन कर शांत व सर्वदर्शी होवो ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा कि—हेअक्रूरजी ! आपके यह वाक्य कल्याणकारीहैं मनुष्य जैसे अमृत को पाकर नहीं २ कहता तैसेही मैं यह सचहै अब नहीं ऐसा नहीं कहसकता॥२६॥ किंतुहेसौम्य! मेरा हृदय पुत्रोंके प्रेमके कारण विषम होकर चंचल होरहाहै आपके वाक्य सत्य होनेपर भी सु- दाम पर्वतपर चमकतीहुई बिजलीके समान स्थिर नहीं रहसकते ॥ २७ ॥ जो ईश्वर भूमिका भार हरनेके निमित्त यदुकुल में अवतीर्ण हुए हैं उन्होंने जो यत्न कियाहै कौन मनुष्य उसके विपरीत कार्य करसकता ? ॥२८॥ जो अपनी अतर्क्य माया से इस विश्वको उत्पन्न करके इसके भीतर प्रवेशकर कर्म और कर्मफलोंका विभाग करदेते हैं उन परमेश्वरको प्रणाम करताहूं, २८ ॥ उन- की अज्ञेय क्रीड़ाही संसारका कारण है उसीसे इसकी गति होती रहतीहै ॥२९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजन् ! यदुनन्दन अक्रूर राजा धृतराष्ट्रके अभिप्रायको जान सुहृदोंसे आज्ञा ले फिर मथुरा में आए और पांडवों पर धृतराष्ट्र के उस आचरणका वर्णन श्रीकृष्णजी और बलरामजी को सुनाया ॥ ३०—३१ ॥

इतिश्रीमद्भागवतेमहा० दशम०सरलाभाषाटीकायांएकोनपंचाशोऽध्यायः ४९ ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवत सटीक

दशम स्कन्धउत्तरार्ध

श्रीगणेशायनमः अथोत्तरार्द्धःप्रारंभः॥श्रीशुकउवाच ॥ अस्तिःप्राप्तिश्चकंसस्य महिष्यौभरतर्षभ । मृतेभर्तरिदुःखार्ते ईयतुःस्मपितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रेमगधराजाय जरासन्धायदुःखिते । वेदयांचक्रतुःसर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्यशोकामर्षयुतोनृप । अयादवींमहींकर्तुं चक्रेपरमसुद्यमम् ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापिसंवृतः । यदुराजधानीं मथुरांन्यरुणत्सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्यतद्बलंकृष्ण उद्वेलमिवसागरम् । स्वपुरंतेनसंरुद्धं स्वजनंचभयाकुलम्॥५॥चिन्तयाममासभगवान्हरिःकारणमानुषः । तद्देशकालानुगुणंस्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामिबलंह्येतद्भुविभारंसमाहितम् । मागधेनसमानीतंवश्यानांसर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥ अक्षौहिणीभिःसंख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः । मागधस्तुनहंतव्योभूयःकर्त्ताबलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयंभूभारहरणायमे । संरक्षणायसाधूनां कृतोऽन्येषांवधायच ॥ ९ ॥ अन्योऽपिधर्मरक्षायै देहः संभ्रियतेमया । विरामायाप्यधर्मस्य कालेप्रभवतःक्वचित् ॥ १० ॥ एवंध्यायतिगोविन्द आकाशात्सूर्यवर्चसौ । रथावुपस्थितौसद्यः ससूतौसपरिच्छदौ ११ ॥ आयुधानिचदिव्यानि पुराणानियदृच्छया । दृष्ट्वातानिहृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्या

श्रीशुकदेवजीबोले कि—हे भरतश्रेष्ठ ! अस्ति और प्राप्ति कंसकी दोनों स्त्रियें स्वामी के मरने से दुःखितहो अपने पिता के घरचली गईं ॥ १ ॥ और पिता जरासन्धको अपने विधवाहोने का समस्त कारण कह सुनाया ॥ २ ॥ राजाजरासन्ध इन अप्रियबातों को सुन शोकार्त और क्रोधितहुआ और पृथ्वीको यादवरहित करने का उद्योग करनेलगा ॥ ३ ॥ अनन्तर तेईस अक्षौहिणी सेनाको ले चारोंओर से यदुवंशियों की राजधानी को घेरलिया ॥ ४ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी क्षोभित समुद्रकी समान उस सेनाद्वारा अपनी पुरीको घिराहुआ और स्वजनों को भयातुर होता देख देश और काल के अनुसार अपने अवतार के प्रयोजनका बिचारकरनेलगे ॥ ५—६ ॥ मगधराज ने अपने वशवर्त्ती राजाओंकी जिस पैदल, रथ, गज, घोड़ेवाली कई अक्षौहिणी सेना से मेरे नगरपर आक्रमण किया है, वही पृथ्वीका संचितभार है । मैं इसही सेनाका नाशकरूंगा, मगधराजको न मारूंगा कि जिससे यह फिर सेनाको इकट्ठाकरसके ॥ ७—८ ॥ पृथ्वीका भार हरने, साधुओंकी रक्षा और असाधुओं का नाशकरने के निमित्तही मेरा अवतार हुआ है ॥ ९ ॥ समयानुसार धर्मकी रक्षा और अधर्म के नाशके निमित्तही मुझे जन्मग्रहण करना पड़ता है ॥ ॥ १० ॥ गोविंद इसप्रकारसे विचारकररहेथे कि उसी समय सारथी और सब सामग्री समेत सूर्यकी किरणों के समान प्रकाशमान दो ॥ ११ ॥ विचित्र ध्वजा पताका और दिव्य अस्त्र शस्त्र समेत आकाश से आये । श्रीकृष्णजी ने उन सबको देखकर बलरामजी से कहा कि—॥ १२ ॥

यैऽयसनंप्राप्तं यदूनांत्वावतांप्रभो । एषतेरथआयातो दयितान्यायुधानिच ॥ १३ ॥ यानमास्थायजह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर । एतदर्थंहिनौजन्म साधूनामीशशर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु । एवंसमन्त्र्यदाशार्हौ दंशितौ रथिनौपुरात् ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुःस्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ शंखंदध्मौविनिर्गत्यहरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्परसैन्यानांहृदिवित्रासवेपथुः । तावाहमागधोवीक्ष्यहेकृष्णपुरुषाधम ॥ १७ ॥ नत्वयायोद्धुमिच्छामिबालेनैकेनलज्जया। गुप्तेनहित्वयामन्दनयोत्स्येयाहि बन्धुहन् ॥ १८ ॥ तवरामयदिश्रद्धायुद्ध्यस्वधैर्यमुद्वह । हित्वावामच्छरैश्छिन्नंदेहंस्वर्याहिमांजहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नवैशूराविकत्थन्तेदर्शयन्त्येवपौरुषम् । नगृह्णीमोवचोराजन्नातुरस्यमुमूर्षतः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्यमाधवौमहाबलौघेनबलीयसाऽऽवृणोत् । ससैन्ययानध्वजवाजिसारथीसूर्यानलौवायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौरथावलक्षयन्त्योहरिरामयोर्मृधे । स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरंसमाश्रिताःसंमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥ हरिः परानीकपयोमुचांमुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् । स्वसैन्यमालोक्यसुरासुरार्चितंव्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥ गृह्णन्निषङ्गादथसंदधच्छरान्विकृष्यमुञ्चञ्छितबाणपूगान् । निघ्नन्रथान्कुञ्जरवाजिपत्तीन्निरन्तरंयद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुम्भाः करिणोनिपेतुरनेकशोऽ

हे आर्य ! देखो आप जिनके स्वामी हो उन यदुवंशियोंपर आपत्ति उपस्थित हुई है । हेभ्राता!यह आपकारथ और अस्त्र शस्त्र सब उपस्थित है ॥ १३ ॥ रथमें बैठ शत्रु सेना का नाश और बिपद से स्वजनोंकी रक्षाकरो । हेईश्वर ! साधुओं के कल्याणके निमित्तही हमने जन्मग्रहण किया है ॥ १४ ॥ तेईसअक्षौहिणा नामक भूमिका भार शीघ्रही हरणकरो । यह कहकर दोनों भाइयों ने कवच पहिना और उत्तम २ अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर रथपर बैठ थोड़ीसी सेना लेकर नगर से बाहरको प्रस्थान किया । दारुक श्रीकृष्णजी का सारथी था । श्री हरिने पुरसे बाहर निकलकर शंख बजाया ॥१५-१६॥ उस शंखके शब्दसे शत्रुसेना का हृदय कांपउठा । मगध राजने कृष्णजी व बलरामजीको देखकर कहाकि ॥ १७ ॥ रे पुरुषाधम ! कृष्ण तूबालक है; तेरे साथ युद्ध करने से मुझे लज्जाहोगी इस कारण तेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है। रे बंधुनाशन ! तू गुप्त रहनेवाला है। रे मंद ! तेरेसाथ युद्ध न करूंगा तूजा ॥ १८ ॥ राम ! यदि तेरीइच्छा है तो युद्धकर डरमत । यातो मेरेवाणों द्वारा छिन्न देहको त्याग स्वर्गमें जा नहीं तो मुझको मारकर विजयीहो ॥ १९ ॥ श्रीभगवानने कहाकि–वीरपुरुष अपनी बड़ाई नहीं मारत केवल पौरुषही दिखाते हैं । राजन् ! तुममरना चाहतेहो इसीसे उन्मत्त होरहेहो, तुम्हारी बातोंपर मैं ध्यान नहीं देता ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि–हेराजन् ! वायुजैसे मेघोंद्वारा सूर्यको और धूलिद्वारा अग्निको ढकलेती है मगधराज जरासंध ने वैसेही अग्निमुखहो अपने प्रचंड महाबल स्रोतद्वारा सेना, रथ, ध्वज, अश्व और सारथी के साथ मधुवंशीय राम कृष्णको घेरलिया ॥ २१ ॥ स्त्रियेंनगरी की अटारियों, महलकी छतों, दरवाजों पर चढ़ीहुई युद्ध देखती थीं । हरि और रामको गरुड़ और तालध्वज से चिह्नित दोनों रथोंको रणभूमि में न देखना वह शोक के संतप्तहो क्षण २ में मूर्छित होनेलगीं ॥ २२ ॥ शत्रुसेना रूपी विशाल बादल से जोमाति प्रचंडशरों की वर्षा होतीथी, हरिने उससे अपनी सेना को पीड़ित होतादेख अंगार चक्रकी समान शृंगनिर्मित शार्ङ्ग धनुषको धारण किया ॥ २३ ॥ और उससे तीव्रवाणोंको छोड़कर अनेकानेक रथ, गज, अश्व और पैदलोंका संहार करनेलगे ॥ २४ ॥

श्वाः शरवृक्णकन्धराः । रथाहताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः । भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपाहतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीनानरकेशशैवलाधनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः अच्छूरिकावर्तभयानकामहामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिताभीरुभयावहामृधेमनस्विनांहर्षकरीः परस्परम् । विनिघ्नताऽरीन् मुसलेनदुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥ बलंतदङ्गार्णवदुर्गभैरवंदुरन्तपारंमगधेन्द्रपालितम् । क्षयंप्रणीतंवसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितंतज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवान्तंभुवनत्रयस्ययः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया । नतस्यचित्रंपरपक्षनिग्रहस्तथापिमर्त्यानुविधस्यवर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राहविरथंरामो जरासन्धंमहाबलम् । हतानीकावशिष्टासुंसिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानंहतारातिंपाशैर्वारुणमानुषैः । वारयामासगोविन्दस्तेनकार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ समुक्तोलोकनाथाभ्यांव्रीडितोवीरसंमतः । तपसेकृतसङ्कल्पोवारितः पथिराजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैःपवित्रार्थपदैर्नयनैःप्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्तेपराभवः ॥ ३४ ॥ हतेषुसर्वानीकेषु नृपोबार्हद्रथस्तदा । उपेक्षितोभगवता मगधन्दुर्मनायथौ ॥ ३५ ॥ मुकुन्दोप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः । विकीर्यमाणः

कुंभस्थल विदीर्ण होकर हाथीगिरते हैं, अनेकों घोडों की गरदनें बाणों से कटीजाती हैं रथोंके घोडे मरते, ध्वजाएं टूटती, सारथी और रथी मरते हैं, पैदलों की उरु, भुजा और गरदनें कटीजाती हैं ॥ २५ ॥ अनंत तेजबाले बलदेवजी ने युद्ध भूमिमें मूसल द्वारा दुष्ट शत्रुओंका नाशकर निहतहुए पैदल, हाथी, और अश्वोंके अंगसे उत्पन्न, डरनेवालोंको डरावना और वीरोंको वीररसकी उत्पादक सैकडों नदियें उत्पन्न कीं । वह सब नदियें परस्पर २ बहनेलगीं । भुजाएं नदियों की सर्पसी, शिर कच्छ। से निहतहाथी द्वीप से, घोडे ग्राह से ॥ २६ ॥ हाथ और साथल मत्स्य से, मनुष्यों के केश शिवाल से; धनुष तरंग से; अस्त्र घाससे, ढालें भयंकर भंवरसी और उत्तम २ महामणि और आभूषण उसके पत्थर के टुकडे और रेतीकी सदृश होरहे थे ॥ २७ ॥ अमित बलशाली बलदेवजी ने मूसल द्वारा सैकडों दुष्ट शत्रुओंको मारा, और मगधराज से पालीहुई सागर की समान दुर्गम, भयानक और अगाध सेनाका नाश करडाला । वसुदेव के दोनोपुत्र ईश्वर थे, उनको तो यह कार्य केवल क्रीड़ाहीथा ॥ २८-२९ ॥ जोअनंत गुण भगवान अपनी लीला द्वारा त्रिभुवन की उत्पत्ति पालन और नाश करते हैं, शत्रुका नाश करना उनके लिये कुछ आश्चर्य की बात नहीं हैं तौभी मनुष्यावतार धरने के कारण उनका मैं वर्णन करता हूं ॥ ३० ॥ जोहो, सिंह जैसे दूसरे सिंहपर आक्रमण करता है महाबल रामने उसी प्रकार जरासंधको पकड़लिया । उस समय जरासंध का रथ और सेना नष्ट होगई थी, केवलप्राण बचरहेथे ॥ ३१ ॥ राजा जरासंध ने बहुत से शत्रुओं को माराथा । तौभी बलदेवजी जब वारुण और मानुष पाशद्वारा उसके बांधने पर उद्यत हुए तब भगवान ने जरासंध से और कामके लेनेकी इच्छा से बलदेवजी को निबारण किया ॥ ३२ ॥ राजा जरासंध वीरपुरुषों में माननीय था, इस समय राम कृष्णसे छूटकर उसने लज्जाके कारण तपस्या करने का संकल्प किया ॥ ३३ ॥ परन्तु मार्गमें राजाओं ने धर्मोप देश वाक्यों और लौकिक नीति कथन द्वारा उसको निवारणकरके कहाकि 'अपनेकर्म बंधनोंहीके कारण आपयदुबंशियोंसे पराजित हुएहो ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा।कि–हे राजन्! जब समस्त सेनाके नाशहो जानेपर भगवान ने उसे छोडदिया तब वह जरासंध उदास होकर मगधपुरीको लौटआया ॥३५॥ श्रीकृष्णजी भी शत्रुसैन्य रूपी सागर से पारहो प्रसन्नता पूर्वक मथुरा वासियों समेत अपने नगरकी ओर आये।

कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः । उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥३७॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः वीणावेणुमृदंगानि पुरंप्रविशति प्रभौ ॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गांहृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् । निर्घुष्टांब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः । निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनन्तंवीरभूषणम् । यदुराजाय तत्सर्वमाहृतंप्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः । युयुधेमागधोराजा यदुभिःकृष्णपालितैः ॥४२॥ अक्षिण्वंस्तद्बलंसर्वं वृष्णयःकृष्णतेजसा । हतेषुस्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमसंग्रामे आगामिनितदन्तरा । नारदप्रेषितो वीरो यवनःप्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥ रुरोधमथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः । नृलोकेचाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहोयदूनांवृजिनं प्राप्तं ह्युभयतोमहत् ॥४६॥ यवनोऽयंनिरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः । मागधोऽप्यद्य वाश्वोवापरश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ताजरासुतः । बन्धून्वधिष्यत्यथवा नेष्यतेस्वपुरंबली ॥४८॥ तस्माद्द्यविधास्यामो दुर्गंद्विपदुर्गमम् । तत्रज्ञातीन्समाधाय यवनंघातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमन्त्र्यभगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् । अन्तःसमुद्रेनगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥

उनकी अमृत दृष्टिद्वारा सेनामें से किसी के भी शरीर में क्षत न रहा । देवतागण उनके ऊपर फूल बरसाय २ 'साधु साधु' कह उनके कार्यकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३६ ॥ और सूत, मागध व बंदीजन उनके विजयका गान गानेलगे ॥ ३७ ॥ भगवान के नगरी में प्रवेश करतेही असंख्य शंख, दुंदुभि, भेरी, वीणा, वेणु और मृदंग बजनेलगे ॥ ३८ ॥ नगरी के मार्ग जल से सिंचकर नाना पताकाओं से सुशोभित हुए। उसकाल समस्त मनुष्य प्रसन्न होरहेथे सब स्थानोंपर वेदध्वनि सुनाई देतीथी। उत्सव के कारण नगरीमें तोरण शोभायमान होरहेथे ॥ ३९ ॥ नगर में प्रवेश करनेके समय स्त्रियें भगवान के ऊपर माला, दही ,अक्षत, और दूर्वांकुर डाल २ कर प्रीति के कारण प्रसन्नचित्तहो नेत्रोंसे स्नेह सहित उनको देखने लगीं, ॥ ४० ॥ रणभूमिमें जो अनन्त धन और बीर पुरुषोंके आभूषण गिरेथे उन सबको भगवानने लाय उग्रसेनके अर्पणकिया ॥ ४१ ॥ हेराजन् ! पराजय होकर भी मगधराज निरुत्साह नहींहुआ अगणित सेना ले श्रीकृष्ण जी से रक्षित यदुवंशियोंसे उसने क्रमशः सत्तरह बार युद्धकिया, ॥ ४२ ॥ यदुगण श्रीकृष्णजी के तेजसे प्रतिबारही उस समस्त सेनाका नाशकर विजयीहुए । सत्तरहवीं बार सेनाके नाश होंतेही जरासन्ध शत्रुओंसे छूटकर नीचेको मुख कियेहुए अपनें नगरको आया ॥ ४३ ॥ अनन्तर अठारहवां युद्ध करनेका उसने उद्योग कियाथा कि उसीसमय नारदजी से प्रेरितकालयवन युद्ध भूमिमें आया ॥ ४४ ॥ वह यह सुनकर कि पृथ्वीपर मेरी समान दूसरा कोई नहींथा अब यादव मेरी समान हुयेहैं मथुरा नगरीमें आया और तीन कोटि म्लेच्छों से उसने पुरीको घेरलिया॥४५॥ श्रीकृष्णजी उसे देख बलदेवजी के साथ परामर्श करनेलगे । — " कैसा आश्चर्यहै कि—दोनों ओरसे यदुवंशियों को महा दुःख आन उपस्थित हुआ ॥ ४६ ॥ यह महाबल यवन आज हमारे ऊपर आक्रमण करेगा और मगध राजभी आज या कल या परसों अवश्य आवेगा॥ ४७ ॥ हम दोनों जन इस यवनके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्तहोवें और यदि उसीसमय महाबली जरासन्ध आवे तो वह निश्चयही हमारे बंधुओं का संहार करेगा अथवा बन्दी करके अपनी नगरीको लेजावेगा ॥ ४८ ॥ अतएव आज मनुष्यों का दुर्गम एक गढ़ निर्माणकर और उसमें जातिवालोंकी रक्षा कर इस यवन को विनाश करना चाहिये ॥ ४९ ॥ भगवान ने यह परामर्श कर समुद्रके भीतर

दृश्यतेयत्रहित्वाष्ट्रं विज्ञानंशिल्पनैपुणम् । रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् । हेमशृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजताऽऽरकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः । रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥ वास्तोष्पतीनांच गृहैर्वल्लभीभिश्च निर्मितम् । चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मांपारिजातंच महेन्द्रःप्राहिणोद्धरेः । यत्रचावस्थितोमर्त्यो मर्त्यधर्मैर्नयुज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान् । अष्टौनिधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये । सर्वंप्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगतेनृप ॥ ५७ ॥ तत्रयोगप्रभावेन नीत्वासर्वंजनंहरिः । प्रजापालेनरामेण कृष्णःसमनुमन्त्रितः । निर्जगामपुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशम० पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

श्रीशुकउवाच । तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् । दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकंजारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् । मुखारविन्दंबिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवोह्ययमिति पुमांछ्री

एक बारहयोजन का विस्तारित गढ़ बनवाय उसके बीचमें एक आश्चर्यमय नगरबनवाया ॥५०॥ उससे विश्वकर्मा का ज्ञान और शिल्प.(कारीगरी) की निपुणता दिखाई देनेलगी घरोंके बनाने का स्थानरख राजमार्ग, गली आंगन आदि बनाये, ॥ ५१ ॥ अनेकों उद्यानों में कल्पवृक्ष और लतायें लगा२कर उनको सुशोभितकिया सुवर्ण के शिखरों वाली अत्यन्त उंची २ अटारियें व दरवाज़े सुवर्णके कलशोंसे अलंकृतथे ॥५२॥ चांदी पीतल और लोहेसे बनीहुई अश्वसाला और अन्नशाला आदि जो बनायेगए उनपर सुवर्णकेकलश शोभायमानहोरहे हैं। अमूल्य मरकतमणिके स्थलवाले सुवर्णके घरोंके शिखर माणिक इत्यादि रत्नोंके बनायेगयेहैं ॥५३॥ देवताओंके मन्दिर और आकाशियोंकी सुन्दर रचना बनीहै चारों वर्णोंके मनुष्योंके व्याप्त होनेसे राजभवन शोभायमानहोरहाहै ॥ ५४ ॥ हेराजन् इन्द्रने भगवान के निकट देवसभा और कल्पवृक्ष भेजा जिस सभामें मनुष्य बैठारहे और उसे भूख प्यासादि मर्त्यलोकके धर्म व्याप्त न होवें॥५५॥ बरुणने मनकी समान वेगवान् श्वेतवर्ण केवल एक कानके काले घोड़े, । निधपति कुबरने आठौं निधियें और लोकपालोंने अपनी २ विभूतियें भेजदीं ॥५६॥ हेराजन् ! भगवान ने अपने कार्य साधन के निमित्त दूसरे सिद्धगणों को जो २ आधिपत्य दियाथा उनके पृथ्वीपर अवतार लेनेसे उन्हों (सिद्धगण) ने सब आधिपत्य देदिये ॥ ५७ ॥ भगवान श्रीकृष्णजीने सब प्रजाको अपनी योगमायाके बलसे नगरमें पहुंचाय उनकी रक्षाके निमित्त बलदेवजी को वहांरख आप उनसे परामर्श कर केवल कमलोंकी माला पहिन बिना अस्त्र शस्त्र लिये नगरसे बाहरहुए ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांपचाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजन् ! हरि उदय हुए चन्द्रमा की समान नगर से बाहर हुए । उनका सुंदर श्रेष्ठ श्यामबर्ण था, पीताम्बर पहिने वक्षःस्थलमें श्रीबत्सका चिह्न और गलेमें प्रकाशित कौस्तुभमणि शोभायमान है। मोटे और लंबेचारभुजा धारण किये हैं नवीन कमल की समान रक्तवर्ण के नेत्र हैं ॥ १—२ ॥ सदैव आनंदयुक्त, शोभायुक्त, सुंदर कपोल वाला, सुंदर मुसकान युक्त मुख मकराकृत कुंडलसे प्रकाशित होरहा है ॥ ३ ॥ यवन इस रूपको देख मन २ में बिचार

वत्सलाञ्छनः । चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति । निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेननिरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनःप्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् । अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपियोगिनाम् ॥६॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणासपदेपदे । नीतोदर्शयताद्दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ।७। पलायनंयदुकुले जातस्यतवनोचितम् । इतिक्षिपन्ननुगतो नैनंप्रापाहताशुभः॥ ८ ॥ एवंक्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम् । सोऽपिप्रविष्टस्तत्रान्यं शयानंददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौदूरमानीय शेतेमामिहसाधुवत् । इतिमत्वाऽच्युतंमूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ सउत्थायचिरंसुप्तः शनैरुन्मील्यलोचने । दिशोविलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ सतावत्तस्यरुष्टस्य दृष्टिपातेनभारत । देहजेनाऽग्निनादग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच । कोनामसपुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्यएवच । कस्माद्गुहांगतःशिश्ये किंतेजोयवनार्दनः ॥ १३ ॥ श्रीशुकउवाच । सइक्ष्वाकुकुलेजातो मान्धातृतनयोमहान् । मुचुकुन्दइतिख्यातो ब्रह्मण्यःसत्यसङ्गरः ॥ १४ ॥ सयाचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे । असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वागुहंतेस्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् । राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोकेपरित्यज्य राज्यं निहतक

नेलगा कि देवर्षि नारदने जिसप्रकार कहाथा इस पुरुषका ठीक उसी प्रकारका रूप दिखाई देता है। यह श्रीवत्सके चिह्नसे चिह्नित और अत्यंत सुंदर है। इसका रूप चतुर्भुज है इसके नेत्र कमलकी समान हैं और यह गलेमें वनमाला धारण किये हुए है ॥ ४ ॥ इन सब चिह्नोंके देखने से निश्चय ही जानपड़ता है कि यह वासुदेव है और कोई नहीं है। यह इस समय निरस्त्रहो पैदल जारहा है, अतएव मैंभी इसके साथ निरस्त्र होकर युद्धकरूंगा ॥५॥ यवन इसप्रकार से निश्चयकर, बिमुखहो भागते हुए योगियों कोभी दुष्प्राप्य श्रीकृष्णजी के पकड़ने के निमित्त उनके पीछे २ दौड़ा ॥६॥ भगवान् पग २ में अपना एक हाथका अंतर दिखाते हुए यवन राजको अति दूरवर्त्ती पहाड़ की कंदरा में लेगये ॥ ७॥ यवन "तू यदुकुलमें उत्पन्न हुआ है तुझे भागना उचित नहीं" यह कहता हुआ तिरस्कार करता उनके पीछे२ जानेलगा। परन्तु उसके कर्मोंका क्षय नहीं हुआथा इसकारण वह उनको न पासका ॥ ८ ॥ भगवान उससे तिरस्कारित होतेहुए भी गिरिकंदरा में प्रवेश करगये। यवनने भी उसमें प्रवेश करके देखा कि एक मनुष्य सोरहा है ॥ ९ ॥ उसमूर्ख काल यवनने यह जानकर कि यही दुष्ट मुझको इतनी दूरलाकर अब साधूकी समान सोरहा है उस मनुष्यको श्रीकृष्णजी जान उसके लातमारी ॥ १० ॥ वह मनुष्य बहुत दिनोंसे सोरहाथा। धीरे २ आंखें खोल चारोओर दृष्टिडाल पार्श्वमें उस यवनकोही देखपाया ॥ ११ ॥ वह अत्यंत क्रोधित हुआ, तबही उसकी देहसे अग्नि उत्पन्न हुई। यवन उससे जलकर तत्कालही भस्म होगया ॥१२॥ परीक्षितने पूँछा कि-हेब्रह्मन्! उसपुरुषने कि जिसने यवनकोमारा कौनथा? किसबंशकाथा? क्या नामथा किस का पुत्रथा? उसका ऐसा प्रभाव क्योंकर हुआ? और किस कारण वह गुफामें शयनकररहा था ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहाकि—हे राजन्! उसने इक्ष्वाकुवंशमें जन्म ग्रहण कियाथा, उसका नाम मुचकुंद था और वह मांधाता का पुत्रथा। मुचकुंद बड़ाही सत्य प्रतिज्ञ और ब्राह्मणोंका हितकारीथा ॥ १४ ॥ युद्धमें उसकी प्रतिज्ञा निष्फल नहीं होती थी। इन्द्रादि देवताओं ने असुरों से भयभीतहो अपनी रक्षाके निमित्त उससे सहायताचाही, उसने अनेक दिन उनकी रक्षाकी थी ॥ १५ ॥ अनंतर देवताओं ने कार्त्तिकेयको स्वर्गका रक्षकपा मुचुकुंद से कहाकि हे राजन् तुम हमारे पालन रूप कष्टके सहने से निवृत्तहो ॥ १६ ॥ हेवीर! मनुष्य लोक और निष्कंटक राज्य

ण्टकम्। अस्मान्पालयतोवीर कामास्तेसर्वउज्झिताः ॥ १७ ॥ सुतामहिष्योभवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः। प्रजाश्चतुल्यकालीया नाऽधुनासन्तिकालिताः ॥ १८ ॥ कालोबलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः। प्रजाःकालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९॥ वरंवृणीष्वभद्रंते ऋतेकैवल्यमद्यनः। एकएवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥ एवमुक्तःसवै देवानभिवन्द्य महायशाः ॥ निद्रामेवततोवव्रे स राजाश्रमकर्शितः ॥ २१ ॥ यःकश्चिन्ममनिद्राया भंगंकुर्यात्सुरोत्तमाः। सद्यिभस्मी भवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥२२॥ अशयिष्टगुहाविष्टो निद्रयादेवदत्तया। स्वापंयातंयस्तुमध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ॥ सत्वयादृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतुतत्क्षणात् ॥ ॥ २३ ॥ यवनेभस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः। आत्मानंदर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २४ ॥ तमालोक्यघनश्यामं पीतकौशेयवाससम्। श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेनविराजितम् ॥ २५॥ चतुर्भुजंरोचमानं वैजयन्त्याचमालया। चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥२६ ॥ प्रेक्षणीयंनृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम्। अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः। शंकितःशनकैराजा दुर्धर्षमिवतेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिनेगिरिगह्वरे। पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २९॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजोभगवान्वा विभावसुः। सूर्यःसोमोमहेन्द्रोवा लोकपालोपरोऽपिवा ॥ ३० ॥ मन्येत्वांदेवदेवानां त्रयाणांपुरुषर्षभम्। यद्बाधसेगुहा-

को छोड़कर हमारी रक्षा करने में प्रवृत्तहो तुमने समस्त भोग परित्याग करदिये ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्र, स्त्री, सम्बंधी, मंत्री और तुम्हारे समय के प्रजागण कालसे चलायमानहो अब जीवित नहीं है ॥ १८ ॥ काल—बलवानों में श्रेष्ठ, भगवान, ईश्वर और अव्यय है, क्रीड़ा करता हुआ ग्वाल जैसे पशुओंको चलाता है तैसेही वह प्रजागणको चलायमान करता है ॥ १९ ॥ तुम्हारा कल्याण होवे। मोक्षके अतिरिक्त जोइच्छाहो कहो, वहीवर पाओगे। क्योंकि मुक्तिके अधीश्वर केवल नारायणही हैं ॥ २० ॥ देवताओं कीइस बातके सुनकर महायशा मुचुकुंदने उनको नमस्कार किया और राज्य श्रमसे थकित होनेके कारण उसने देवताओं से निद्राही मांगी ॥ २१ ॥ मुचुकुन्दने कहा कि—हे सुरोत्तमो ! जोकोई आकर मेरी निद्रामें विघ्नकरै, वह तुरन्त भस्महोजाय, यहवर मुझको दो तब देवताओंने 'तथास्तु' कहा ॥२२ ॥ और ऐसावरदान दिया कि आपके सोतेसमय बीचमें जो मूर्ख जगादेगा उसपर आपकी दृष्टि पड़तेही वह तुरत भस्म होजायगा फिर वह देवताओं की दीहुई निद्रासे गुफामें जाकर सोरहा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार से कालयवन के भस्म होनपर सात्वत श्रेष्ठ भगवान ने मुचुकुंदको अपनी मूर्त्ति दिखाई ॥ २४ ॥ उनका मेघकी समान श्यामवर्ण है पीताम्बर पहिने, वक्षःस्थल में श्रीवत्सधारण किये हैं प्रकाशित कौस्तुभमणि उनकी और भी शोभा बढ़ारही है ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, वैजयंती मालासे प्रकाशित, सुंदर प्रसन्न मुखारबिंद धारण किये, मकरा कृतकुंडल पहिने ॥ २६ ॥ मनुष्यों के देखने योग्य, स्नेहयुक्त मंद मुसकान सहित देखते हुए, सुंदर अवस्था व मत्तसिंह की समान पराक्रम वाले ॥ २७ ॥ तेजयुक्त उस रूपको देखकर वह राजा भगवान केतेजसे अभिभूत और भयभीत होगया तथा धीरे २ उन तेजयुक्त भगवान से पूँछनेलगा कि ॥ २८ ॥ आप कौनहो—जोइस बहुत स कंटक युक्त बनके बीचमें आय पहाड़ की कंदरामें प्रवेशकर चरण कमल द्वारा इधर उधर भ्रमणकर रहेहो ॥ २९ ॥ आप क्या तेजस्वियों के तेज या भगवान विभावसुहो ? या सूर्य, चन्द्र,इन्द्र,लोकपाल इनमें से कोई हो ॥ ३० ॥ जानपड़ता है कि तीनदेवों में से आप विष्णुजी हो। क्योंकि आप दीपक की समान

ध्वान्तंप्रदीपः प्रभयायथा ॥ ३१ ॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गवः । स्वजन्मकर्मगोत्रंवाकथ्यतां यदिरोचते ॥ ३२ ॥ वयंतुपुरुषव्याघ्रऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः। मुचुकुन्दइतिप्रोक्तो यौवनाश्वात्मजःप्रभो ॥ ३३ ॥ चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयापहतेन्द्रियः । शयेऽस्मिन्विजनेकामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोपिभस्मीकृतोनूनमात्मीयेनैवपाप्मना । अनन्तरंभवाञ्छ्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसातेऽविषह्येणभूरिद्रष्टुंनशक्नुमः । हतौजसोमहाभागमाननीयोऽसिदेहिनाम् ॥ ३६ ॥ एवंसम्भाषितो राज्ञाभगवान्भूतभावनः । प्रत्याहप्रहसन्वाण्या मेघनादगम्भीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि सन्तिमेऽङ्गसहस्रशः । नशक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापिहि॥३८॥ क्वचिद्रजांसिविममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः।गुणकर्माभिधानानि नमेजन्मानिकर्हिचित्॥३९॥कालत्रयोपपन्नानिजन्मकर्माणिमेनृप। अनुक्रमन्तोनैवान्तंगच्छन्तिपरमर्षयः॥४०॥तथाप्यद्यतनान्यङ्गशृणुष्व गदतोमम । विज्ञापितोविरिञ्चेनपुराऽहंधर्मगुप्तये । भूमेर्भारायमाणानामसुराणांक्षयायच॥४१॥अवतीर्णोयदुकुलेगृहआनकदुन्दुभेः । वदन्तिवासुदेवेतिवसुदेवसुतंहिमाम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतःकंसःप्रलम्बाद्याश्चसद्द्विषः । अयंचयवनोदग्धोराजंस्तेतिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहंतवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः । प्रार्थितःप्रचुरंपूर्वंत्वयाऽहंभक्तवत्सलः ॥ ४४ ॥ वरान्वृणीष्वराजर्षेसर्वान्कामान्ददामिते । मांप्रपन्नोजनःकश्चिन्नभूयोऽर्हतिशोचितुम् ॥ ४५॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तंप्रणम्या

अपने प्रकाश से गुफाका अंधकार दूर करतेहो ॥ ३१ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आपके यथार्थ जन्म, कर्म और गोत्रके सुनने की मेरी अत्यंत इच्छा है, यदि इच्छा होतो कहिये ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकुवंशी विख्यात क्षत्रीहूं मैं युवनाश्व के पुत्र मांधाता का पुत्र मुचुकुन्दहूं ॥ ३३ ॥ अनेक दिनों के जागते रहने से श्रमित और निद्रासे हतेन्द्रियहो इस निर्जनवन में आय इच्छानुसार सोरहाथा, केवल इसी मनुष्य ने मेरी निद्रा भंगकी है ॥ ३४ ॥ निश्चयही यह अभागा अपनेही पापों से भस्महोगया है । इस के भस्महोने के उपरांतही श्रीमान् आपने अपने दर्शन दिये ॥ ३५ ॥ आपके असह्नीय तेजसे मेरा तेज नाशहोगया है इसकारण मैं और वृत्तांत नहीं पूँछ सकता, हे महाभाग ! आप देहधारियों में श्रेष्ठहो ॥ ३६ ॥ भूतभावन भगवान इसप्रकार से पूँछे जानेपर हँसतेहुए मेघकी समान गम्भीर बाणी से बोले कि— ॥ ३७ ॥ हेराजन् ! मेरे सहस्रोंही जन्म, कर्म और नाम हैं उनसबका अन्तनहीं है इसलिये मैंभी उनकी गणना नहीं करसकता ॥ ३८ ॥ पृथ्वी के रजकण गिने जासकते हैं; परतु बहुत जन्मों में भी कभी कोई मेरे गुण, कर्म, नाम और जन्मकी गणनानहीं करसकता ॥ ३९ ॥ परम ऋषिगण मेरे त्रिकाल सिद्धजन्म और कर्मों का यथाक्रम से वर्णन करकेभी अन्त नहीं पाते ॥ ४० ॥ तौभी हे महाराज!मैंअपनेवर्तमान जन्म और कर्म सब आपसे कहताहूं,-सुनो प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने धर्म कीरक्षाऔर पृथ्वी के भारभूत असुरों के नाशके निमित्त मुझ से प्रार्थनाकीथी ॥ ४१ ॥ इसकारण मैने यदुकुल में बसुदेव के घर अवतार लिया है । मैं बसुदेवका पुत्रहूं इसीकारण मनुष्यमुझको बासुदेव कहते हैं ॥ ४२ ॥ साधुओं से द्वेष रखनेवाले कालनेमि–कंस और प्रलम्बादि असुरगण मेरे हाथ से मारेगये हैं । और केवल तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि से इस असुरकोभी नाशकराया ॥ ४३ ॥ तुम्हारेऊपर अनुग्रह करने के निमित्तही मैं इस स्थानमें आयाहूं । मुझ भक्तवत्सलकी प्रथमतुमने अनेक प्रार्थनाएं कीथीं ॥ ४४ ॥ हे राजर्षि ! बरमांगो । मैं सर्वकाम का देनेवालाहूं मुझको पाकर किसी मनुष्य को शोककरना उचितनहीं ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस बात को सुन मुचुकुन्द परम

हमुचुकुन्दोमुदान्वितः ॥ ज्ञात्वानारायणंदेवंगर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्दउवाच ॥ विमोहितोऽयंजनईशमायया त्वदीययात्वांनभजत्यनर्थदृक् । सुखाय दुःखप्रभवेषुसज्जतेगृहेषुयोषित्पुरुषश्चवंचितः ॥ ४७ ॥ लब्ध्वाजनोदुर्लभमत्रमानुषं कथंचिदव्यंगमयत्नतोऽनघ । पादारविन्दं नभजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपेपतितो यथापशुः ॥ ४८ ॥ममैषकालोऽजितनिष्फलोगतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्यभूपतेः । मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्यमानस्य दुरन्त्यचिन्तया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसन्निभे निरूढमानोनरदेवइत्यहम् । वृतोरथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वगणयन्सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् । त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ५१ ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः । सएवकालेनदुरत्ययेनतेकलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५२ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थःसमराजवन्दितः । गृहेषुमैथुन्यसुखेषुयोषितां क्रीडामृगःपूरुषईशनीयते ॥ ५३ ॥ करोतिकर्माणितपस्सुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् । पुनश्चभूयेयमहंस्वराडिति प्रवृद्धतर्षोनसुखायकल्पते ॥ ५४ ॥ भवापवर्गोभ्रमतोयदाभवेज्जनस्य तर्ह्यच्यु

आनंदितहुआ और जो गर्गमुनि ने कहाथा कि " अट्ठाईसवें युग में भगवान अवतार लेंगे " इस समय उस बात का स्मरणकर उनको देवदेव नारायणजान प्रणामकर स्तुति करनेलगा ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्द ने कहा कि–हे ईश्वर ! यह लोक स्त्री और पुरुष इन दो भागों से विभक्तहो आपकी मायासे मोहित है; अतएव परमार्थ सुख स्वरूप आप को नहीं देखपाता और न आपकी सेवाकरे एक दूसरे से बंचितहोकर सुख के कारण दुःख के उत्पत्तिस्थानघर में आसक्त होतारहता है ॥ ४७ ॥ हे निष्पाप ! कर्मानुसार किसी प्रकार से दुर्लभ अविकलाङ्ग मनुष्यजन्म को पाकर मनुष्यों को विषयसुखकीहीवृद्धि होती रहती है । पशुगण जैसे तृण के लोभ से तृण से ढकेहुए अंधे कुए में गिरते हैं वैसेही वहभी घररूपी अंधेकुए में गिरकर आपके चरणकमलों का भजन नहीं करते ॥ ४८ ॥ मैं राजाथा । राज्य सम्पत्ति के कारण मुझे अहंकार उत्पन्नहोगयाथा । मैं आत्मा देहकोही जानकर घोर चिंता के साथ पुत्र, स्त्री, कोष और भूमि आदि में आसक्तथा ॥ ४९ ॥ और घड़े व दीवारकी समान इस शरीर में " मैं राजाहूं " ऐसा अभिमान कर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल वाली सेना से घिर भ्रमण करता २ अत्यंत गर्वित होगयाथा । उससमय मैंने आपका भजन नहीं किया इसकारण मेरा इतना समय व्यर्थहोगया ॥ ५० ॥ भूँखा सांप जैसे गलफड़े चाटताहुआ चूहेपर आक्रमण करता है वैसेही अप्रमत्त कालरूप आपको यह २ कार्य समाप्त करनाचाहिये ऐसी चिंताओं से प्रमत्त विषय वासनाओंसे व्याकुल और बँधेहुए तृष्णान्वित मनुष्यों को हठात् भक्षण करलेतेहो ॥ ५१ ॥ जो शरीर प्रथम राजाके नामसे गर्वितहो सुवर्णसे मढ़ेहुए रथ व हाथीपर भ्रमणकरताहै इससमय आपका अटलनीय काल मूर्त्तिसे विष्ठा कृमि व भस्म नामको पाता है ५२ ॥ हेईश्वर ! जो पुरुष दिशा विदिशाके राजाओं को जीतकर सबसे ऊँचे आसनपर बैठ राजाओंका पूजनीयहुआहै वहभी क्रीड़ा मृगकी समान एक स्त्री के घरसे दूसरी स्त्री के घर घूमता फिरताहै मैथुन धर्महो उन सब घरोंका सुखहै ॥ ५३ ॥ इस समय सब छोड़कर जन्मांतर में जिसप्रकारसे चक्रवर्त्ती होसकूं वह करूं यह बिचारकर वह मनुष्य सब भोगों से निवृत्त होताहै और उस भोगको त्याग तपस्या में अत्यन्तही निष्ठितहो, कर्म करता है । इसप्रकारसे उस की तृष्णा प्रतिदिन बढ़ती रहती है; इसकारणवह सुख को नहींप्राप्त करसकता ॥ ५४ ॥ हे अच्युत ! आपके अनुग्रह से संसारी मनुष्यों के जबसांसारिक कर्म शेष

तस्तत्समागमः । सत्सङ्गमोयर्हितदैवसद्गतौ परावरेशेत्वयिजायमेमतिः ॥ ५५ ॥ मन्येममानुग्रहईशतेकृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया । यःप्रार्थ्यतेसाधुभिरेकचर्यया वनंविविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५६॥ नकामयेऽन्यंतव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो । आराध्यकस्त्वां ह्यपवर्गदंहरे वृणीतआर्योवरमात्मबन्धनम् ॥५७॥ तस्माद्विसृज्याशिषईशसर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः । निरंजनंनिर्गुणमद्वयं परंत्वां ज्ञप्तिमात्रंपुरुषंव्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथंचित् । शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकंपाहिमाऽऽपन्नमीश ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच । सार्वभौममहाराज मतिस्तेविमलोर्जिता । वरैःप्रलोभितस्यापि नकामैर्विहतायतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धितत् । न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥६१॥ युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः । अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६२ ॥ विचरस्वमहींकामं मय्यावेशितमानसः । अस्त्वेवंनित्यदातुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मे स्थिताजन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः । समाहितस्तत्तपसा जह्यघंमदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः । भूत्वा द्विजवरस्त्वंवै मामुपैष्यसिकेवलम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भा०महा० द० उ० एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

होआते हैं, तभी वह साधुओं का संग प्राप्तकरते हैं। जैसेही साधुसंग उत्पन्नहुआ वैसेहीसाधुओं की गति और कार्य कारण के नियंता आप में भक्ति उत्पन्नहोती है ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! तपस्या के निमित्त बनमें प्रवेशकर अभिलाषीहो विवेकी चक्रवर्त्ती गण आप के निकट जो प्रार्थनाकरते हैं उसी राज्यानुराग से मेरीइच्छादूरहोगई है—जानतापड़ता है कि यह आपही की कृपा है ॥५६॥ हे प्रभो ! आप के चरणों की सेवाकरनाही निरहंकारी मनुष्यों की एक प्रार्थना है मैंभी आप से उसी वरको मांगताहूं । हे हरे ! आप मुक्तिके देनेवालेहो कौनमनुष्य आप का आराधन कर इस प्रकार का वरमांगेगा कि जिससे आत्माका बंधनहोवे ॥ ५७ ॥ अतएव हे ईश्वर ! रज, तम, और सत्वगुण से बँधीहुई समस्त कामनाओं को छोड़कर मैं निरंजन, निर्गुण, अद्वय, श्रेष्ठ और विज्ञानमात्र पुरुष आप के चरणों की शरणमें आयाहूं ॥ ५८ ॥ हेपरमात्मन् ! इस संसार में मैं बहुत दिनों से कर्मफलों से पीड़ितहूं, बहुत दिनों से उनसब बासनाओंद्वारा संतप्त होरहाहूं;तौभी मेरे छःशत्रुओं की तृष्णादूरनहींहुई । अतएव किसी प्रकारसे भी शांति न पा आप के सत्य,भयरहित और शोकहीन चरणकमलों का आश्रय किया है । हे ईश्वर मेरी रक्षाकरो विपत्ति मुझको व्याप्त होरही है ॥ ५९ ॥ भगवान ने कहा कि—हे सार्वभौम महाराज ! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त निर्मल और गंभीर है क्योंकि तुमको वरद्वारा मैंने इतने लोभ दिखाये तौभी तुम्हारीबुद्धि इच्छाओं से मोहित न हुई ॥ ६० ॥ तुमको जो वरद्वारा मैंने लोभ दिखाया, निश्चयही जानना कि तुमको भ्रममें डालनेके निमित्त मैंने नहीं कहा, जो एकांत भक्त हैं उनकी बुद्धि, भोग सुखोंको प्राप्तहोकरभी उनमें आसक्त नहीं होती ॥ ६१ ॥ किंतु हे राजन् ! जो भक्त नहीं हैं, देखाजाता है कि उनका मन प्राणायामादिद्वारा मुझमें लगकरभी कभी २ विषयोंकी ओर दौड़ता रहताहै ॥६२॥ तुम अपने मनको मुझमें लगाकर इच्छानुसार पृथ्वी में भ्रमण करो, मुझपर सर्वदाही तुम्हारी ऐसी ही निश्चलाभक्ति रहेगी ॥ ६३ ॥ क्षत्रियधर्म का अवलंबनकर तुमने मृगया में नानाजंतुओंका बध कियाहै, अतएव मेरा आश्रयकर एकाग्र मनसे तपस्याद्वारा पापोंको नाशकरो ॥६४॥ हेराजन् ! दूसरे जन्ममें तुम सर्वप्राणियों के सुहृद श्रेष्ठद्विजहो केवल मझको प्राप्तहोगे ॥ ६५ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे सरलाभाषाटीकायां एकपंचाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थंसोऽनुगृहीतोऽङ्गकृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः । तंपरिक्रम्यसंनम्यनिश्चक्रामगुहामुखात् ॥ १ ॥ संवीक्ष्यक्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् । मत्वाकलियुगंप्राप्तंजगामदिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतोधीरोनिःसङ्गोमुक्तसंशयः । समाधायमनः कृष्णेप्राविशद्गन्धमादनम् ॥३॥ बदर्याश्रममासाद्यनरनारायणालयम् । सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरींयवनवेष्टिताम् । हत्वाम्लेच्छबलंनिन्येतदीयंद्वारकांधनम् ॥ ५ ॥ नीयमानेधने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः । आजगामजरासन्धस्त्रियोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्यवेगरभसंरिपुसैन्यस्यमाधवौ । मनुष्यचेष्टामापन्नौराजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥७॥ विहायवित्तंप्रचुरमभीतौभीरुभीतवत् । पद्भ्यांपद्मपलाशाभ्यांचेलतुर्बहुयोजनम् ॥८॥ पलायमानौतौदृष्ट्वामागधः प्रहसन्बली । अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्यदूरंसंश्रान्तौतुङ्गमारुहतांगिरिम् । प्रवर्षणाख्यंभगवान्नित्यदायत्रवर्षति ॥ १० ॥ गिरौनिलीनावज्ञायनाधिगम्यपदंनृप । ददाहगिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ ततउत्पतरस्तादह्यमानतटादुभौ । दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधोभुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौरिपुणासानुगेनयदूत्तमौ । स्वपुरंपुनरायातौसमुद्रपरिखांनृप ॥ १३ ॥ सोऽपिदग्धावितिमृषामन्वानोबलकेशवौ । बलमाकृष्यसुमहन्मगधान्मागधोययौ ॥१४॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतोरैवतींसुताम् । ब्रह्मणा

श्रीशुकदेवजी बोले-कि हे राजन् ! इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुंद भगवान् श्रीकृष्णजीसे ऐसा अनुग्रह प्राप्तकर उनकी परिक्रमा व दण्डवतकर गुफामेंसे बाहर निकला ॥ १ ॥ बाहर निकलतेही उसने देखा कि–पशु, लता और बनस्पति सबही छोटेहोगये हैं, अतएव 'कलियुग आगया' यह विचारकर वह उत्तरकी ओर गया ॥ २ ॥ और तपस्यामें श्रद्धायुक्त, धीर, निःसंग और निःसंशयहो श्रीकृष्णजीमें मनलगाय गंधमादन पर्वत में उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ वहां नरनारायणके निवासस्थान बदरिकाश्रममें प्राप्तहो सब सुख दुःखादि द्वंद्वोंका सहनकर शांतभाव से तपस्याद्वारा भगवानकी आराधना करनेलगा ॥४॥ हे राजन् ! इधर यवनके नाशहोनेपर भगवान फिर मथुरा में आये और म्लेच्छ सेनाका संहार कर उनके धनको द्वारका के जानेलगे ॥ ५ ॥ वह मनुष्य और बैलोंमें धनलिये जातेथे कि–उसी समयमें जरासंध तेईस अक्षौहिणीका सेनापतिहो फिर वहांआया ॥६॥ हे राजन् ! राम कृष्णने शत्रुसेना के वेगको देख मनुष्य लीलाका अवलबनकर वेगसे भागने का आरंभ किया ॥ ७ ॥ वह यद्यपि निर्भय थे तथापि अत्यंत भीतकी समानहो अमित धनछोड़ कमल पत्रकी समान कोमल चरणों से कई योजनतक भागे चलेगये ॥ ८ ॥ बलवान मगधराज उन दोनों ईश्वरों की ईश्वरताको नहीं जानता था; उनको भागता हुआ देखरथ और सेनाले उनके पीछे २ दौड़ने लगा ॥ ९ ॥ राम और केशव अनेक दूर दौड़कर श्रमित होगये तब विश्राम के निमित्त प्रवर्षण नामक अतिऊंचे पर्वतपर चढगये। इन्द्र उस पर्वतपर सैदवही वर्षाकरता है ॥१०॥ राजा जरासंधने देखाकि राम कृष्ण इस पर्वत में छिपरहे इस कारण उसने इनके ढूंढनेका बहुतसा यत्नकिया परन्तु उनका खोजनपा काष्ठद्वारा अग्निको उत्पन्नकर पर्वतको जलानेलगा ॥ ११ ॥ तब राम कृष्ण उस पर्वतके जलते हुए शिखर से शीघ्रता पूर्वक फांद ग्यारह योजन नीचे भूमिपर कूदपड़े और शत्रु व उसके अनुचरों की दृष्टिको बचाय समुद्रसे घिरीहुई अपनी पुरीमें आए॥१२॥ ॥१३ ॥ मगधराज ने बिचारा कि—बलराम और कृष्ण जल गये हैं अतएव वह सेनाको इकट्ठा कर अपने राज्य को लौटआया ॥ १४ ॥ हेभारत ! आनर्त्त देशके राजा श्रीमान् रैवत नरेश ने

चोदितः प्रादाद्धलायेतिपुरोदितम् ॥१५॥ भगवानपिगोविन्दउपयेमेकुरूद्वह । वैद र्भींभीष्मकसुतांश्रियोमात्रांस्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्यतरसाराज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्ष गान् । पश्यतांसर्वलोकानांतार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भी ष्मकसुतांरुक्मिणींरुचिराननाम् । राक्षसेनविधानेनउपयेमइतिश्रुतम् ॥ १८ ॥ भग वञ्छ्रोतुमिच्छामिः कृष्णस्यामिततेजसः यथामागधशाल्वादीञ्जित्वाकन्यामुपाहर त् ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्यामाध्वीर्लोकमलापहाः । कोनुतृप्येतशृण्वानः श्रु तज्ञोनित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजाऽऽसीद्भीष्मकोनामविदर्भाधिप तिर्महान् । तस्यपञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैकाचवरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजोरुक्मर थोरुक्मबाहुरनन्तरः । रुक्मकेशोरुक्ममालीरुक्मिण्येषांस्वसासती ॥ २२ । सोप श्रुत्यमुकुन्दस्यरूपवीर्यगुणश्रियः । गृहागतैर्गीयमानास्तंमेनेसदृशंपतिम् ॥ २३ ॥ तांबुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् । कृष्णश्चसदृशीं भार्यांसमुद्वोढुंमनोदधे ॥ २४ ॥बन्धूनामिच्छतांदातुंकृष्णायभगिनींनृप । ततोनिवार्यकृष्णद्विड्रुक्मीचैद्य ममन्यत ॥ २५ ॥ तदवेत्यासितापाङ्गीवैदर्भीदुर्मनाभृशम् । विचिन्त्याऽऽप्तंद्विजंकं चित्कृष्णायप्राहिणोद्द्रुतम् ॥२६॥ द्वारकांसससमभ्येत्यप्रतीहारैः प्रवेशितः । अप श्यदाद्यंपुरुषमासीनंकाञ्चनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्यनिजासना त् । उपवेश्यार्हयाञ्चक्रेयथात्मानंदिवौकसः ॥ २८ ॥ तंभुक्तवन्तंविश्रान्तमुपगम्य

ब्रह्माकी आज्ञापाय अपनी पुत्री रेवतीका बलरामजीसे विवाहकिया । सो प्रथमही मैंने तुमस यह कथा कहीहै॥१५॥ हेकुरुश्रेष्ठ! गरुड़ने जैसे देवताओं का मथनकर अमृत हरण कियाथा भगवान कृष्णजीनेभी वैसेही सब मनुष्योंके सामने बलपूर्वक शिशुपालके पक्षवाले शाल्व आदि राजाओंको जीतकर लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई भीष्मक राजाकी पुत्री रुक्मिणी से बिवाह किया १६–१७॥ राजा ने पूँछा कि—हेब्रह्मन् ! भगवान ने राक्षस बिधि के अनुसार–भीष्मककी पुत्री सुंदर मुख वाली रुक्मिणी का विवाह किया,–यह तो मैंने सुना ॥ १८ ॥ किंतु उन्होंने जिसप्रकार जरासंध और शाल्व आदि को जीतकरकन्याको हरण कियाथा; वह सुननेकी मेरीइच्छा है ॥ १९॥हेब्रह्मन्! श्रीकृष्णजीकी कथाका अमित फल है, उस के सुनने से महासुख उत्पन्नहोता है । वह मनुष्यों के पापों को नाशकरनेवाली और नित्यनवीन है; उस के सुनने से किस सुननेवालेकी तृष्णा दूरहो सकती है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—राजन् ! भीष्मकनामक एक राजा विदर्भ देश के सिंहासनपरथा । उस के पांचपुत्र और मनलुभानेवाली एक कन्या उत्पन्नहुई ॥ २१ ॥ उन सब में रुक्मी जेठाथा; और रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली यह उस से छोटेथे साध्वी रुक्मिणी इनकी बहिनथी ॥ २२ ॥ इसने घर में आयेहुए मनुष्यों के मुख से श्रीकृष्णजी के रूप वीर्य, गुण और श्रीका वर्णनसुन उन्हीं को अपने योग्य बर स्थिर किया ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजी ने भी बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुणों की आश्रयभूता उस रुक्मिणीको अपने योग्य पात्री विचार उस के संग बिवाह करनेकी इच्छाकी ॥ २४ ॥ हेराजन् ! यद्यपि बंधुओं ने श्री कृष्णजी को रुक्मिणी देने का विचार किया परन्तु श्रीकृष्णजी के द्वेषी रुक्मी ने उन सबको निवा-रणकर शिशुपाल को रुक्मिणी देने का बिचार किया ॥ २५ ॥ वह श्यामकटाक्षवाली रुक्मिणी यह जानकर अत्यन्त उदासहुई और किसी एक विश्वासी ब्राह्मण कोशीघ्रही श्रीकृष्णजी के निकट भेजा ॥ २६ ॥ वह ब्राह्मण शीघ्रतापूर्वक द्वारका में आया और द्वारपाल से आज्ञाले भीतर जायकर उसने देखा कि आदिपुरुष सुवर्ण के सिंहासनपर बैठेहुए हैं ॥ २७॥ ब्रह्मण्य देव श्रीकृष्णजीउस ब्राह्मणको देख सिंहासनसे उतरपड़े और उसको आसनपर बैठाय उसकी पूजाइसप्रकारकी-कि जैसे देवता उनकी (भगवान) पूजाकरते हैं ॥ २८ ॥ अनन्तर भोजन के उपरांत ब्राह्मणका

सतांगतिः । पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥ कच्चिद्द्विजवरश्रे ष्ठधर्मस्तेवृद्धसंमतः । वर्ततेनातिकृच्छ्रेणसंतुष्टमनसःसदा ॥ ३० ॥ संतुष्टोयर्हि वर्तेतब्राह्मणोयेनकेनचित् । अहीयमानः स्वाद्धर्मात्सह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपिसुरेश्वरः । अकिञ्चनोऽपिसंतुष्टः शेतेसर्वाङ्गविज्व रः ॥ ३२ ॥ विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् । निरहङ्कारिणः शान्तान्न मस्येशिरसाऽसकृत्॥३३॥कच्चिद्वः कुशलंब्रह्मन्राजतोयस्यहिप्रजाः। सुखंवसन्ति विषयेपाल्यमानाः समेप्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतोदुर्गंनिस्तीर्येहयदिच्छ या । सर्वंनोब्रूह्यगुह्यंचेत्किंकार्यंकरवामते ॥ ३५ ॥ एवंसंपृष्टसंप्रश्नोब्राह्मणः परमे ष्ठिना । लीलागृहीतदेहेनतस्मैसर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वागुणा न्भुवनसुन्दरशृण्वतांतेनिर्विश्यकर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् । रूपंदृशांदृशिमतामखि लार्थलाभंत्वय्यच्युताऽऽविशतिचित्तमपत्रपंमे ॥ ३७ ॥ कात्वामुकुन्दमहतीकुल शीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् । धीरापतिंकुलवतीनवृणीतकन्याका लेनृसिंहनरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मेभवान्खलुवृतः पतिरङ्गजायामात्मा र्पितश्चभवतोऽत्रविभोविधेहि । मावीरभागमभिमर्शतुचैद्यआराद्गोमायुवन्मृगपते र्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलंभगवान्परे

श्रम दूरहुआजान साधुओं की गति श्रीभगवान ने हाथों से उसके चरणचापते २ धीरभाव से पूछा ॥ २९ ॥ हे द्विजवर ! आप का मन सदैवसंतुष्ट रहकर आपका वृद्धपुरुषों के माननीय धर्म तो सहज से प्रवर्तता है? ॥ ३० ॥ ब्राह्मण यदि किसी प्रकार से भी संतुष्ट रहकरस्वधर्म से पृथक् नहो जीवनको धारणकरसके तो धर्महीउनकी समस्तइच्छायें पूर्णकरता है ॥ ३१ ॥ जो असंतुष्ट है वह इंद्रहोकरभी बारम्बार इस लोक से उसलोक में चक्कर खातारहता है, और जो संतुष्ट हैं वह दरिद्र होकरभी सुख से समय को बितायाकरते हैं ॥ ३२ ॥ जो स्वयंप्राप्तहुए धनसे संतुष्ट,साधु, प्राणियों के श्रेष्ठबन्धु, अभिमानरहित और शांत हैं, ऐसे ब्राह्मणों को मस्तकझुकाय मैं बारम्बार प्रणामकरताहूं ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप आनन्द से तोहो ? जिस राजा के राज्य में प्रजा रक्षितहो सुख से बासकरती है वही मेरा प्रीति का पात्र है ॥ ३४ ॥ आप जिस कार्य की इच्छा से समुद्र पारकरके इस स्थानपर आयेहो वह यदि गुप्त न होवे तो मुझ से कहिये मुझे क्याआज्ञा है ॥ ३५ ॥ लीला से मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान के इस भांति प्रश्न करने पर ब्राह्मण ने समस्त वृत्तांत उनसे बर्णन किया । और रुक्मिणी ने एकांत में जो पाती लिखीथी उसे थैली से निकाल श्रीकृष्णजी को दिखाया और श्रीकृष्णजी की आज्ञासे उसे पढ़कर कहनेलगा॥३६॥ श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं कि-हेअच्युत ! हेभुवनसुन्दर ! आपके जो गुण कर्णविवरोंद्वारा प्रवेशकर सुननेवालों के शरीर का ताप हरते हैं वहसब गुण और दृष्टिवालों की दृष्टि के सम्पूर्णमनोरथों का लाभस्वरूप आप के रूपका जबसे बर्णनसुना है तबसे मेरा चित्त निर्लज्जहोकर आप में आसक्त होरहा है ॥ ३७ ॥ हेमुकुन्द ! आप कुल, शील, रूप, बिद्या, बय, द्रव्य, संपत्ति और प्रभाव में अपनीहीसमानहो । हे नरश्रेष्ठ ! आप से मनुष्यों को आनन्द उत्पन्नहोतारहता है; बिवाहकाल उप-स्थितहोने पर कौनगुणवती, गुणश्रेष्ठा, बुद्धिमान स्त्री आप के पति होने की इच्छा न करती होगी ॥ ३८ ॥ हे विभो ! इसहीकारण मैं आपको अपना पतिबना आत्मसमर्पण करतीहूं ; अतएव आप इस स्थानपर आय मुझको अपनी स्त्री बनाओ । हेकमलाक्ष ! सियारजैसे सिंहका भाग हरण नहीं करता वैसेही शिशुपाल आकर आपके भागका स्पर्श न करनेपावे ॥३९॥ यदि मैंने बावड़ी, कुआ

शः । आराधितोयदिगदाग्रज एत्यपाणिं गृह्णातुमेन दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वोभाविनित्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्यपृतनापतिभिः परीतः । निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलंप्रसह्यमांराक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमितिप्रवदाम्युपायम् । पूर्वेद्युरस्तिमहतीकुलदेवयात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै । यर्ह्यम्बुजाक्षन लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशांछतजन्मभिःस्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणउवाच । इत्येतेगुह्यसंदेशा यदुदेवमयाऽऽहृताः । विमृश्य कर्तुंयच्चात्र क्रियतांतदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः सतुसंदेशंनिशम्ययदुनन्दनः । प्रगृह्यपाणिनापाणिंप्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपितच्चित्तोनिद्रांचनलभेनिशि । वेदाहंरुक्मिणाद्वेषान्ममोद्वाहोनिवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्यउन्मथ्यराजन्यापसदान्मृधे । मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षंचविज्ञायरुक्मिण्यामधुसूदनः । रथः संयुज्यतामाशुदारुकेत्याहसारथिम् ॥ ४ ॥ सचाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः । युक्तंरथमुपानीयतस्थौप्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्यस्यन्दनंशौरिर्द्विजमारोप्यतूर्णगैः । अनर्तादेकरात्रेण

आदि बनवाय दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरुके पूजनादिद्वारा भगवानकी आराधना की है तो दमघोष पुत्र आदि कोई मेरा स्पर्श न करसकें;-हेभगवान ! आपहीआकर मेरा पाणिग्रहणकरो ॥ ४० ॥ हे भगवान कल बिवाह का दिन है तो आजही आप गुप्तभाव से आओ और सेनापतियों को संगले शिशुपाल और जरासंधकी सेना के बलकामंथनकर बीर्यरूप शुल्क दे राक्षस विधिके अनुसार मेरा विवाहकरो ॥ ४१ ॥ यदि कहोकि-तू अंतः पुरमें रहती है बिनातेरे बंधुओं का मारे किस प्रकार तुझे बिबाहसकताहूं ? तो उसका उपायबह है कि विवाह के प्रथम दिन हमारे यहां कुल देवकी यात्राहोती है, उस यात्रामें व्याही जानेवाली कन्याको नगर के बाहर देवीके मंदिर में जानाहोता है ॥ ४२ ॥ हे कमल लोचन ! महादेवजी के समान बड़े मनुष्य अपने आत्मा के अज्ञान नाशके निमित्त जिन आपके चरण रजमें स्नान करनेकी प्रार्थना करते हैं मैं यदि उन आपका प्रसाद न पाऊंगी तोव्रत द्वारा जीर्णहो अपने प्राणोंको छोड़दूंगी, चाहे सौजन्म मेंभी आपकी अनुग्रह होवे परन्तु उसको अवश्य प्राप्त करूंगी ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि—हे यदुदेव ! मैं इस प्रकार का यह संवाद लायाहूं विचार करके जोकरना उचितहो शीघ्र करिये ॥४४॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलभाषाटीकायांद्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! रुक्मिणी के उस सम्बादको सुनकर श्रीकृष्ण जी अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़ हंसकर उससे कहने लगे कि—१ ॥ मेरा मनभी इसीप्रकार रुक्मिणी में आसक्त होरहाहै इससे मुझको रात्रिको निद्रा भी नहीं आती । मैं जानताहूं कि—रुक्मीने द्वेषके कारण मेरे ब्याह होनेको निवारण करदिया है, ॥ २ ॥ मैं युद्धमें दुष्टक्षत्रियों को मारकर काठसे अग्निकी समान उस अनिंदित अंगवाली रुक्मिणी को लाऊंगा ॥ ३ ॥ हेभरतनन्दन ! परसों रात्रिको रुक्मिणी का विवाह होगा । यह जानकर श्रीकृष्णजीने सारथीसे कहा कि हेदारुक ! शीघ्रही रथको जोतलाओ ॥४॥ दारुकभी सैव्य,सुग्रीव,मेघ, पुष्प और बलाहक नामक चार घोड़ों का रथ जोड़कर लाय और हाथ जोड़ सामने आकर खड़ा होगया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजी

विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजासकुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशंगतः । शिशुपालायस्वां कन्यांदास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरंसंमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् । चित्र ध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोम्बरभूषितैः जुष्टंस्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥९॥ पितॄन्देवान्समभ्यर्च्यविप्रांश्चविधिवन्नृप । भोजयित्वायथान्यायंवाचयामासमङ्गलम् ॥ १० ॥ सुस्नातांसुदतींकन्यांकृतकौतुकमङ्गलाम् ।अहतांशुकयुग्मेनभूषितांभूषणोत्तमैः ॥११॥चक्रुःसामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षांद्विजोत्तमाः । पुरोहितोऽथर्वविद्वैजुहावग्रहशान्तये ॥१२॥ हिरण्यरूप्यवासांसितिलांश्चगुडमिश्रितान् । प्रादाद्धेनूश्चविप्रेभ्योराजाविधिविदांवरः ॥ १३ ॥ एवंचेदिपतीराजादमघोषः सुतायवै । कारयामाससमन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः । पत्त्यश्वसंकुलैःसैन्यैः परीतःकुण्डिनंययौ ॥ १५ ॥ तंवैविदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्यच । निवेशयामासमुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्रशाल्वोजरासंधो दन्तवक्रोविदूरथः । आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याःसहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषोयत्ताः कन्यांचैद्यायसाधितुम् । यद्यागत्यहरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामःसंहतास्तेन इतिनिश्चितमानसाः । आजग्मुर्भूभुजःसर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् । कृष्णंचैकंगतंहर्तुं कन्यांकलहशंकितः ॥ २० ॥ बले

रथपर बैठ ब्राह्मण को भी बैठाय शीघ्रगामी अश्वों द्वारा एक रात्रिमें आनर्त्त देशसे कुण्डिनपुर में आगए ॥ ६ ॥ इसओर कुण्डिनाधिपति राजा भीष्मकने पुत्र स्नेहके बशवर्त्तीहो शिशुपाल को कन्या देनेके निमित्त सब कर्त्तव्य कर्म करवाये ॥ ७ ॥ अनन्तर नगरके राजमार्ग गली चौराहे झाड़े और सींचे गये तथा नानाप्रकारके ध्वजा पताका और तोरण से वह भलीप्रकार भूषितहुए ॥ ८ ॥ नगर के स्त्री पुरुषोंने माला चन्दन और आभूषण धारण किये वह सुन्दर बस्त्रोंसे सज्जित हो अत्यन्त शोभा पानेलगे । श्रीयुक्त सबघर अगर द्वारा धूपितहुए॥ ९॥हेराजन्! राजा भीष्मकनें भी विधिवत् पितरों और देवताओंकी पूजाकर ब्राह्मणोंको भोजन कराया वह सबब्राह्मण न्यायानुसार स्वस्ति बाचन करनेलगे ॥ १० ॥ सुन्दर कन्यायें भलीप्रकारसे स्नानकर मंगल कृत्यकर नवीन बस्त्र और उत्तम अलंकारोंसे सज्जित हुईं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुके मन्त्रोंसे कन्याकी रक्षाकी और अथर्व वेदविद् पुरोहित ग्रह शांतिक निमित्त होम करनेलगे॥ १२॥ विधिके जाननेवाले नर श्रेष्ठराजा भीष्मक ने ब्राह्मणों को सोना, चांदी, बस्त्र; गुड, मिलेहुए. तिल और गायें दान करनेका आरम्भ किया, ॥ १३ ॥ इसीप्रकार से चंदेरीके राजा दमघोषने भी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों द्वारा पुत्रका सब बिबाह कार्य कराया ॥ १४ ॥ फिर मद झरते हुये हाथी स्वर्ण की सामग्री वाले रथ और पैदल व घोड़ों की सेनासे वेष्टितहो कुण्डिन नगर में आया, ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने आगे बढ़कर अगवानीकी और चेदिपति के निमित्त जो निवासस्थान सजाया था उसमें उसको राजा भीष्मक लेगए ॥ १६ ॥ उस स्थानमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र; विदूरथ और पौंड्रक आदि शिशुपाल के पक्षवाले सहस्रों राजा आये ॥ १७ ॥ राम कृष्ण के द्वेषी राजाओं की यही इच्छाथी कि—शिशुपाल कोही कन्या मिले इसहीकारण उन्होंने यह परामर्श किया कि यदि कृष्ण और बलराम आदि यदुबंशी गण यहांपर आकर कन्याका हरण करें, तो सब एकपक्ष होकर उनके साथ युद्ध करेंगे । यह स्थिरकर वह सब अपनी सेना समेत वहांआये, ॥ १८—१९ ॥ भगवान बलरामजी भी "शत्रुओं का ऐसा उद्यम और कृष्ण अकेले कन्या हरन को गयेहैं" यह सम्बाद सुन युद्धके भयसे भ्राताकी रक्षाके निमित्त बड़ी सेनाको संगले रथ; हाथी

नमहता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः। त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद् गजाश्वरथपत्तिभिः २१॥ भीष्मकन्यावरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः । प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्त दा ॥ २२ ॥ अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः । नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २३ ॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्सन्देशहरो द्विजः । अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् । मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥२४॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः । देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥ एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा । न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप । वाम ऊरुर्भुजो नेत्रम स्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः । अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती । आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा नपश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ । अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः । उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः । ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः । यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५॥

और घोड़ों समेत कुण्डिन पुरमें आये ॥ २०—२१ ॥ सर्वांग सुन्दरी भीष्मककी पुत्री श्रीकृष्ण जी के निमित्त अत्यन्त उत्सुक होरहीथी, सूर्योदय होचला परन्तु उस गयेहुये ब्राह्मण को आता न देख वह चिन्ता करनेलगी, ॥ २२ ॥ अहो ! रात्रिके बीततेही प्रातःकाल मुझ अभागिनी का विवाहहै किन्तु भगवान कमललोचन अबतक न आये इसकाकारण कुछ स्थिर नहीं करसकती । जो ब्राह्मण मेरा सम्वाद लेकर गयाहै वहभी अबतक नहीं लौटा॥२३॥अनिंदितात्मा श्रीकृष्णजीने क्या मुझमें कुछ निंदाका कारण देखा ? जो मेरे पाणिग्रहण विषयमें उद्योगीहोकर भी न आए ॥ २४ ॥ मै मंदभागिनीहूं , विधाता और महेश्वर भी मुझसे रूठगए क्या गिरिपुत्री सती रुद्राणी देवीभी मेरे ऊपर दयालु नहीं हैं ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णजीसे हृतचित्त हुई समयके जाननेवाली बालाने आंसू बहाते २ दोनों नेत्र बंद करलिये ॥ २६ ॥ हेराजन् ! रुक्मिणी इसीप्रकार से श्रीकृष्णजी के आनेकी राह देखतीथी कि—उसीसमय उसके मंगल सूचक बाईं साथल, बाईं भुजा और बायां नेत्र फड़कनेलगा ॥ २७ ॥ थोड़ेही बिलम्बके पश्चात् श्रीकृष्णजीका पठाये हुए उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने आकर अंतःपुरमें रहनेवाली राजकुमारीको देखा ॥ २८ ॥ उस साध्वी लक्षणों के जाननेवाली, पवित्र राजपुत्री ने उसके प्रसन्न मुख और शीघ्र गतिको देख उससे पूछा ॥ २९ ॥ ब्राह्मण ने राजपुत्री से श्रीकृष्णजी के आनेका समाचार कहा और उन्हों ने पाणिग्रहण करने के निमित्त जो प्रतिज्ञा कीथी वह भी कहसुनाई ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णजीको आया हुआ जानकर रुक्मिणी मनमें अत्यंत प्रसन्न हुई, वह और कोई दूसरा प्रिय पदार्थ न देख ब्राह्मणको नमस्कार करनेलगी, तदनन्तर उसको बहुतसा द्रव्यभी दिया ॥ ३१ ॥ विदर्भराजने जबसुना कि—पुत्री का विवाहोत्सव देखने के निमित्त राम कृष्ण आये हैं तबवह अत्यन्त आनन्दितहुआ वह पूजाकी सामग्रीले बाजे गाजे के साथ राम कृष्णके समीपआया ॥ ३२ ॥ राजा ने मधुपर्क लाय निर्मलवस्त्र और इच्छित भेंटें अर्पण कर विधिपूर्वक उनका सम्मान किया ॥ ३३ ॥ महामति राजा भीष्मकने सेना और अनुचरों सहित उन दोनों आयेहुए यदुवीरों को अच्छेस्थान में टिकाय उनका सत्कार किया ॥ ३४ ॥ उसने इसीप्रकार से सब आयेहुए राजाओं का सत्कार उनके पराक्रम और सम्पत्तिके

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः।आगत्यनेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥ ॥ ३६ ॥ अस्यैवभार्याभवितुंरुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितःपतिः ३७किंचित्सुचरितंयन्नस्तेनतुष्टस्त्रिलोककृत् ॥अनुगृह्णातुगृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवंप्रेमकलाबद्धा वदन्तिस्मपुरौकसः । कन्याचांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताऽम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यांविनिर्ययौद्रष्टुं भवान्याःपादपल्लवम् । साचाऽनुध्यायतीसम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिःसार्धं सखीभिःपरिवारिता । गुप्ताराजभटैःशूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः । मृदंगशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्चजघ्निरे ॥ ४१॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याःसहस्रशः । स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यःस्वलंकृताः गायंतश्चस्तुवन्तश्च गायकावाद्यवादकाः । परिवार्यवधूं जग्मुःसूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्यदेवीसदनं धौतपादकराम्बुजा । उपस्पृश्यशुचिःशांताप्रविवेशाम्बिकाऽन्तिकम् ॥ ४४ ॥ तांवैप्रवयसोबालां विधिज्ञाविप्रयोषितः । भवानींवंदयांचक्रुर्भवपत्नींभवान्विताम् ॥ ४४ ॥ नमस्येत्वाऽम्बिकेऽभीक्ष्णंस्वसन्तानयुतांशिवाम् । भूयात्पतिर्मेभगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥ अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः । नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिःपृथक् ॥ ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियःपतिमतीस्तथातैःसमपूजयत् । लवणापूपतांबूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यैस्त्रियस्ताःप्रददुः शेषांयुयुजुराशिषः । ताभ्योदेव्यैनमश्चक्रे शेषांचजगृहेवधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथत्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् । प्रगृह्य

अनुसारकिया ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी को आयाहुआसुनकर विदर्भ निवासी सबमनुष्य उपस्थितहो नेत्ररूप अंजलिद्वारा उनके कमल मुख का पान करनेलगे ॥३६॥ और कहनेलगे कि-रुक्मिणीही इनकी स्त्री होनेयोग्य है; और स्त्री नहीं । और यह अनिंदितवरभी रुक्मिणी के पतिहोने योग्य है ॥ ३७ ॥ हमारा जोकुछ थोड़ाबहुत पुण्य है भगवान उस से संतुष्ट होकर कृपापूर्वक रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥ प्रेम के आंसू बहा २ पुरवासी गण इसप्रकार कह रहेथे कि इतनेही में कन्या सैनिकों से रक्षितहो अंतःपुर से देवीजी के मन्दिर को चली ॥ ३९॥ रुक्मिणी अस्त्र शस्त्रयुक्तबीर सैनिकों से रक्षित और सखियों से वेष्टितहो, मौन धारणकर भली प्रकारसे श्रीकृष्णजी के चरणकमलों का ध्यान करते २ माताओं के साथ जैसेही देवी के चरण कमल के दर्शन को चली वैसेही मृदंग, शंख, तूरी और भेरी आदि बाजे बजने लगे ॥४०।४१॥ सहस्रों वेश्याएं नानाप्रकारकी भेंटें और पूजाकी सामग्रीले तथा भलीप्रकार से सजीहुई ब्राह्मणों की स्त्रियें माला, चन्दन, वस्त्र और आभूषणले कन्याको घेरकरचलनेलगीं ॥ ४२ ॥ गवैये,बजवैये सूत, मागध और बन्दीगण गान औरस्तुति करते २ उनके चारोओर दलबांध २ करचले॥४३॥ राजपुत्री ने देवमंदिर में पहुँचकर हाथ, पैर धोय और आचमनपूर्वक पवित्र व शांतहो देवी के निकट प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ बिधि के जाननेवाली वृद्धा विप्रपत्नियों ने उस पुत्री से महादेवजी समेत गौरी की पूजाकराई ॥ ४५ ॥ हे अम्बिके ! मैं मंगलस्वरूप तुम्हें और तुम्हारे गणेश आदि पुत्रों को नमस्कार करतीहूं ; तुम यह बरदान देवो कि भगवान श्रीकृष्णजी मेरे स्वामीहोवें॥४६॥ कुमारी ने इसप्रकार प्रार्थनाकर पृथक् २ जल, चन्दन, अक्षत, फूल, धूप, बस्त्र,भूषण और दीपक आदि से पूजाकी ॥ ४७ ॥ सधवा विप्र पत्नियों ने भी उनसब सामग्री और लवण, हलवा, तांबूल कण्ठसूत्र फल और ईखद्वारा भलीप्रकारसे उनकी पूजाकी ॥ ४८ ॥ अनन्तर उन सब स्त्रियों ने रुक्मिणी को प्रसाद दे आशीर्वाद दिया । रुक्मिणी ने भी उनका और देवी को प्रणाम किया ॥

पाणिनाभृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तांदेवमायामिवधीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम्। श्यामांनितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यंजत्स्तनींकुन्तलशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितांबिम्बफलाधरद्युति शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम्। पदाचलन्तींकलहंसगामिनीं सिंजत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्यवीरामुमुहुस्समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥ यांवीक्ष्यतेनृपतयस्तदुदारहास व्रीडावलोकहृतचेतसउज्झितास्त्राः। पेतुःक्षितौगजरथाश्वगताविमूढा यात्राच्छलेनहरयेऽर्पयतींस्वशोभाम् ॥ ५४ ॥ सैवंशनैश्चलयतीचलपद्मकोशौ प्राप्तिंतदाभगवतःप्रसमीक्षमाणा। उत्सार्यवामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान्ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतंसा ॥ ५५ ॥ तांराजकन्यांरथमारुरुक्षतीं जहारकृष्णोद्विषतां समीक्षताम्। रथसमारोप्यसुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूयमाधवः ॥ ततोययौ रामपुरोगमैःशनैः सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तंमानिनःस्वाभिभवंयशःक्षयं परेजरासंधवशानसेहिरे। अहोधिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इतिसर्वेसुसंरब्धावाहानारुह्यदंशिताः स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ताअन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापततआलोक्ययादवानीकयूथपाः। तस्थुस्तत्संमुखाराजन्विस्फूर्ज्यस्वधनूंषिते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठेगजस्कन्धेरथोपस्थेचकोवि

४९ ॥ तदनन्तर वह मौन व्रतको छोड़ रत्नकी अंगूठी से शोभित हस्तद्वारा दासी को पकड़ देवी के मंदिर से बाहरहुई ॥ ५० ॥ वह देवमाया की समान धीरमनुष्यों को भी मोह उत्पन्नकरातीथी उसका कटिदेश अत्यन्त सुन्दर और मुख कुण्डलों की प्रभा से भूषितथा; रजोदर्शन जिसको अबतक नहींहुआ है, नितम्ब देशमें सुवर्णकीमेखला बँधीहुईथी, स्तन प्रगट और नेत्र कुण्डलोंके भयसे भीत होकर चंचल होरहेथे ॥ ५१ ॥ उसकी सुंदरमुसकान से खुलीहुई दंतपंक्ति कुंदरू के समान होठोंकी कांति से रक्तवर्णकी होरहीथी। वह हंसकी समान गमन करतीथी, चरण शोभायुक्त शब्दायमाननूपुर की आभा से शोभा पारहेथे ॥ ५२ उसको देखकर उस के दर्शनसेउत्पन्न हुए कामदेव से पीड़ितहो संग में आयेहुए यशस्वी वीरगण मोहित होगये ॥ ५३ ॥ घोड़े, रथ और हाथियों में बैठेहुए वह समस्त राजगण उसके उदारहास्य और सलज्ज चितवन से मोहित चित्तहो अस्त्र शस्त्र छोड़ उस को देखने लगे और रुक्मिणी श्रीकृष्णजी के आने की राहदेखती हुई धीरे २ चलने लगी ॥ ५४ ॥ वह रुक्मिणी अलकों को उठाय सलज्ज चितवन से राजाओं को और वहां आयेहुए श्रीकृष्णजी को देखने लगी ॥ ५५ ॥ महाराज! वह कन्या रथ पर बैठ तीहीथी कि उसी समय श्रीकृष्णजी ने वहां उपस्थितशत्रुओं के सामनेही उसे गरुड़ध्वज रथ पर बिठालिया और क्षत्रियों का तिरस्कार कर रुक्मिणी को हर लिया। तदुपरांत वह सियारों के मध्य से अपने भागहारी सिंह की समान बलरामजी को आगेकर धीरे २ गमन करने लगे ५६॥ जरासंध आदि अभिमानी शत्रुगण अपने उस तिरस्कार और कीर्त्तिनाशका सहन न करके अपने संगियों से कहने लगे कि—अहो! हमको धिक्कार है! जिसप्रकार सिंहोंके भागको मृग हर ले जाय, वैसेही आज यह गोपगण धनुषधारीहो हमारे यशको हरण करके लियेजाते हैं ॥ ५७ ॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० सरलाभाषाटीकायांत्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! सब राजाओं ने इस प्रकारसे कह अत्यन्त क्रोधितहो कवच पहिन अपने २ वाहनोंपर आरूढ़हो अपनी २ सेनाको ले धनुषउठाय शत्रुकापीछाकिया ॥१॥ उनको आताहुआ देखकर सेनापति यादवगण अपने २ धनुषका टङ्कारकर उनके सन्मुखहुए ॥

दाः। मुमुचुः शरवर्षाणिमेघाअद्रिष्वपोयथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलंशरासारैश्छन्नंवीक्ष्य सुमध्यमा। सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रंभयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्यभगवानाहमास्मभैर्वामलोचने। विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवंबलम् ॥ ५ ॥ तेषांतद्विक्रमंवीरा गदसंकर्षणादयः। अमृष्यमाणानाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनांगजिनांभुवि। सकुण्डलकिरीटानिसोष्णीषाणिचकोटिशः॥७॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभाऊरवोंऽघ्रयः। अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसिच॥८॥ हन्यमानबलानीकावृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः। राजानोविमुखाजग्मुर्जरासन्धपुरःसराः ॥ ९ ॥ शिशुपालंसमभ्येत्यहृतदारमिवातुरम्। नष्टत्विषंगतोत्साहंशुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥ भोभोपुरुषशार्दूलदौर्मनस्यमिदंत्यज। नप्रियाप्रिययोराजन्निष्ठा देहिषुदृश्यते ॥ ११ ॥ यथादारुमयीयोषिन्नृत्यतेकुहकेच्छया। एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहतेसुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहंवैसंयुगानिपराजितः। त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्यएकमहंपरम् ॥ १३ ॥ तथाऽप्यहंनशोचामिनप्रहृष्यामिकर्हिचित्। कालेनदैवयुक्तेनजानन्विद्रावितंजगत् ॥ १४ ॥ अधुनापिवयंसर्वेवीरयूथपयूथपाः। पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥ रिपवोजिग्युरधुनाकालआत्मानुसारिणि। तदावयंविजेष्यामोयदाकालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ एवंप्रबोधितोमित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम्। हतशेषाः पुनस्तेपिययुः स्वंस्वंपुरंनृपाः॥१७॥ रुक्मी

॥ २ ॥ अस्त्रधारी राजगण घोड़े और हाथियोंपर बैठेहुए बादल जैसे पर्वतके ऊपर पानी बरसाता है उसीप्रकार वह यादवों के ऊपर शरोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ शरोंकी वर्षासे स्वामीकी सेना को घिराहुआ देख सुमध्यमा रुक्मिणी के दोनोंनेत्र विह्वलहो उठे; वह लज्जायुक्त भगवान के मुख को देखनेलगी ॥ ४ ॥ तब भगवान ने हँसकर कहाकि—हेवामलोचने! भयनकर; तेरेपक्षवाले सैनिकों से यह शत्रुबल अभी नष्टहोजावेगा ॥ ५ ॥ गद और सङ्कर्षण आदि बीरगण शत्रुओं के इस पराक्रमका सहन न कर बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े और रथ सबके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ ॥ ६ ॥ रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठेहुए योद्धाओं के कुण्डल और किरीटसे शोभित व पगड़ी बँधेहुएमस्तक; और तलवार, गदा व धनुषलियेहुए हाथ, लम्बी २ साथले व जांघें कट २ कर रणभूमि में गिरनेलगीं और घोड़े, खच्चर, ऊंट, गधे तथा पैदलों के शिर कट २ कर गिरनेलगे ॥ ॥ ७—८ ॥ जयकी इच्छावाले यादवोंसे शूरबीर और सेनाकानाश होतेदेख जरासन्ध आदिराजा विमुख होकर भागगये ॥ ९ ॥ और स्त्री के चलेजाने की समान दुःखी और प्रभा रहितहो, निरुत्साह और सूखे मुँहसे शिशुपालके निकट आकर कहनेलगे ॥ १० ॥ कि अहे! अहे! राजसिंह मनकी इस उत्कण्ठाको छोड़दो हेराजन्! प्राणियों के भले और अनभले की स्थिति नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ मनुष्य जैसे काठकी पुतली को इच्छानुसार नचाता है तैसेही प्राणी ईश्वरके बश हो सुख दुःखका भोगकिया करताहै ॥ १२ ॥ मैं (जरासन्ध) तेईस अक्षौहिणी सेना केवल श्रीकृष्णसे युद्धकरके सत्रहबेरहारा परन्तु अन्त में एक युद्धमें जीतगया ॥ १३ ॥ तथापि न तो मैंने इसका हर्ष शोककिया और न मैंने कुछ बिचारहीकिया हे राजन्! कालदैवसे प्रेरितहो जगतपर आक्रमण करता है ॥ १४ ॥ इस समय हम बीरगण भूपति कृष्णसे रक्षित थोड़ीसी यादवसेनासे हारगये ॥ १५ ॥ अभी उनका दैव अनुकूलहै इससे शत्रुओं की जीतहुई जब दैव हमारे अनुकूल होगा तब हमभी जीतसकेंगे ॥ १६ ॥ मित्रों के इसप्रकार समझानेपर शिशुपाल अपने अनुचरों समेत अपनी नगरी को गया और युद्धमें बचेहुये राजाभी अपने २ नगरोंको लौटगये, ॥ १७ ॥

तु राक्षसोद्वाहं कृष्णाद्विडसहन्स्वसुः। पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्यावृतोबली॥१८॥ रुक्म्यमर्षीसुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम्। प्रतिजज्ञेमहाबाहुर्दंशितः सशरास-नः॥ १९॥ अहत्वासमरे कृष्णमप्रत्यूह्यच रुक्मिणीम्। कुण्डिनंनप्रवेक्ष्यामि सत्य मेतद्ब्रवीमिवः॥ २०॥ इत्युक्त्वारथमारुह्य सारथिंप्राहसत्वरः। चोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्यमेसंयुगंभवेत्॥ २१॥ अद्याहंनिशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः। नेष्ये वीर्यमदंयेन स्वसामेप्रसभंहृता॥ २२॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित्। रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठतिष्ठेत्यथाह्वयत्॥ २३॥ धनुर्विकृष्यसुदृढं जघ्नेकृष्णंत्रि-भिःशरैः। आहचात्रक्षणं तिष्ठ यदूनांकुलपांसन॥ २४॥ कुत्रयासिस्वसारंमे मुषि त्वाध्वांक्षवद्धविः। हरिष्येऽद्यमदंमन्द मायिनःकूटयोधिनः॥ २५॥ यावन्नमेहतो बाणैः शयीथामुंचदारिकाम्। स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याधरुक्मिणम्॥ ॥२६॥ अष्टभिश्चतुरोवाहान्द्वाभ्यां सूतंध्वजंत्रिभिः। सचान्यद्धनुरादाय कृष्णंवि व्याधपंचभिः॥२७॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तुचिच्छेद धनुरच्युतः। पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः॥ २८॥ परिघंपट्टिशंशूलं चर्मासीशक्तितोमरौ। यद्यदायुध-मादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः॥२९॥ ततोरथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया। कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंगइवपावकम्॥ ३०॥ तस्यचापततःखड्गं तिलशश्चर्मचेषु भिः। छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणंहन्तुमुद्यतः॥ ३१॥ दृष्ट्वाभ्रातृवधोद्योगं रु-

हे राजन्! श्रीकृष्णजी का द्वेषी बलवान् रुक्मी बहिनके राक्षसी बिवाहका सहन न करसका उसने एक अक्षौहिणी सेनाको साथले श्रीकृष्णजी का पीछा किया॥ १८॥ क्रुद्ध स्वभाव महाबाहु रु-क्मीने अत्यन्त कोधितहो कवच पहिन धनुष धारण कर सब राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की॥ ॥ १९॥ कि—बिना कृष्णको मारे और बहिनको उद्धार किये मैं कुण्डिनपुरमें न आऊंगा यह मैं सत्य कहताहूं॥ २०॥ यह कह रथपर बैठ शीघ्रतापूर्वक सारथीसे कहने लगा कि—जिधर कृ-ष्ण है उधरही घोड़ोंको लेचल उसके साथ मेरा युद्धहोगा॥ २१॥ अत्यन्त दुष्ट गोप ने अपने पराक्रम के घमण्डसे मेरी बहिनका हरण कियाहै, आज मैं निश्चयही बाणों द्वारा उसके पराक्रम को दूर करूंगा॥ २२॥ हेमहाराज! दुर्मति रुक्मी भगवानके प्रभावको न जानताथा अतएव इसप्रकार से बकवाद करता हुआ रथपर से श्रीकृष्णजी से कहने लगा कि " ठहर ठहर,, २३॥ फिर धनुषको खींच तीनबाणों से श्रीकृष्णजी पर प्रहार किया और कहने लगाकि—रे यदुकुल दूषण! थोड़ी देरयहां ठहर॥ २४॥ कौआ जैसे होमकी सामग्रीले, भागता है, वैसेही तू मेरी बहिन को हरण करके कहांजाता है। तू कैसाछली और मायावी है वह आज देखूंगा, आजमें तेरागर्व दूर करूंगा॥ २५॥ मेरेबाणों से निहतहो शयन करने के प्रथमही मेरी बहिनको छोड़दे। श्री कृष्णजी ने कुछेक हंसकर उसके धनुषको काट छः बाणों से रुक्मीको वेधित किया॥ २६॥ और आठबाणों से चारों घोड़ोंपर तीनबाणों से ध्वज और दोबाणों से सारथीपर प्रहारकिया। रुक्मीने दूसरा धनुष ग्रहणकर पांचबाणों से श्रीकृष्णजी पर प्रहारकिया॥ २७॥ भगवानने उनबाणों से आहतहो शरोंद्वारा उसके धनुषको काटडाला। रुक्मी ने फिरधनुष ग्रहण किया, श्रीकृष्णजी ने फिर उसे काटडाला॥ २८॥ रुक्म परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति, तोमर इत्यादि जो २ अस्त्र ग्रहण करनेलगा भगवान उन सबको काटनेलगे॥ २९॥ अंतमें रुक्म रथसे फांद पृथ्वीपर कूदपड़ा और बधकरने के निमित्त हाथमें खड्गले पतंग जैसे अग्निकी ओर दौड़ता है वैसेही वह क्रोधितहो श्रीकृष्णजीकी ओर दौड़ा॥३०॥बाणद्वारा उसके खड्ग और ढालके टुकड़े२ कर श्रीकृष्णजी भी तीक्ष्ण खड्गले उसके मारने पर उद्यत हुए॥३१॥ भाईके मारे जानेका उ-

क्मिणीभयविह्वला पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणंसती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते । हन्तुंनार्हसि कल्याण भ्रातरंमेमहाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच । तयापरित्रासविकम्पितांगया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया । कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादःकरुणोन्यवर्तत ॥३४॥ चैलेनबद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् । तावन्ममर्दुःपरसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरानलिनींयथागजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् । तथाभूतंहतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः । विमुच्यबद्धंकरुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदंत्वयाकृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् । वपनंश्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदोवधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ॥ सुखदुःखदोनचान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक्पुमान् ॥ ३८ ॥ बन्धुर्वधार्हदोषोऽपिन बन्धोर्वधमर्हति । त्याज्यःस्वेनैव दोषेण हतःकिंहन्यतेपुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयंधर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । भ्राताऽपिभ्रातरं हन्याद्येनघोरस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्यभूमेर्वित्तस्य स्त्रियोमानस्य तेजसः । मानिनोऽन्यस्यवाहेतोः श्रीमदान्धाःक्षिपन्तिहि ॥४१॥ तवेयं विषमाबुद्धिः सर्वभूतेषुदुर्हृदाम् । यन्मन्यसे सदाऽभद्रंसुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया । सुहृद्दुर्हृदुदासीनइति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥

योगदेख रुक्मिणी भयसे विह्वल होगई और स्वामी के दोनों चरणों पर गिरकर कहनेलगी कि— ॥ ३२ ॥ हेयोगेश्वर ! हेअप्रमेयात्मन् ! हेदेवदेव ! हेजगत्पते ! हेकल्याण ! हेमहाभुज ! मेरेभाई को मतमारो ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! त्रास के कारण रुक्मिणी के अंग अत्यन्त कम्पित होरहेथे, शोकसे मुँह सूख रहाथा कण्ठ रुकगया और व्याकुलता के कारण सुवर्ण की माला खिसक पड़ी वह उसी अवस्थामें श्रीकृष्णजी के पैरोंपर गिरपड़ीं तब श्रीकृष्णजी रुक्म के मारनेसे निवृत्त हुये ॥ ३४ ॥ और रस्सीसे उसको बांध डाढ़ी मूँछ और बालोंको स्थान२ पर शेषरख मुण्डन करादिया । मतवाला हाथी जैसे कमलवनको दलता है उससमय यदुबंशी वैसेही शत्रुकी सेनाका मर्दन करनेलगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर उन्होंने श्रीकृष्णजीके निकट आय उसस्थान में रुक्मी को देखा । दयालु स्वभाव बलराम जीने पूर्वोक्त दशासे रुक्म को मृतप्राय देख उसको बंधनसे छोड़दिया और श्रीकृष्णजीसे कहनेलगे कि—३६ ॥ हेकृष्ण ! तुमने यह अन्यायकिया, है बन्धुकी डाढी मूछ मूड़ना कुरूप करना और मारना हमारे पक्षमें निंदनीय है ॥३७॥ हेसाध्वी ! तुमभी भाईकी कुरूपता का विचारकर हमसे द्वेष न करना एक दूसरेको कोई सुख वा दुःख नहीं देसकता, क्योंकि मनुष्य अपनेही कर्मोंका भोग करता रहताहै ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! बंधु यदि बध के दोषसे दूषित होकर बधके योग्य होवे तो उसका बध करना बंधुको उचित नहीं है उसको छोड़ देनाही उचितहै हेभ्राता ! जो अपने दोषसेही हत हुआहै उसको क्या फिर बध करनाचाहिये ॥ ३९ ॥ हेभीष्मक कन्या ! क्षत्रियोंका धर्म यहीहै प्रजापतिने यही धर्म उत्पन्न कियाहै इसही धर्म से भाई भाई का नाश करताहै । यह अत्यन्त दारुण धर्महै इसकारण इसमें हमारा अपराध नहीं है ॥ ४० ॥ हेकृष्ण ! जो लक्ष्मी के मदसे अन्धेहैं वही राज्य, भूमि, धन, लक्ष्मी, मान, तेज, व अन्यान्य कारणों से सम्बन्धियों का तिरस्कार करते हैं हमको यह उचित नहीं ॥ ४१ ॥ हे सति ! तुम्हारा भाई सर्वदा सब प्राणियों का अनिष्ट करता रहता है,—तुम अज्ञान की समान उसके मंगलकी कामना करतीहो, यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है क्योंकि उसका भलाचाहने से दूसरे संबन्धियों का अनभल होगा ॥ ४२ ॥ यह मेरामित्र, यह शत्रु और यह उदासीन है इसभांति जो देहाभिमानियों की बुद्धि है वह अंतःकारण का अज्ञान केवल ईश्वर की मायसे कल्पित है ॥४३॥

एकएवपरोह्यात्मा सर्वेषामपिदेहिनाम् । नानेवगृह्यतेमूढैर्यथा ज्योतिर्यथानभः ॥४४॥ देहआद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः । आत्मन्यविद्ययाक्लृप्तः संसारयतिदेहिनम् ॥४५॥ नात्मनोऽन्येन संयोगोवियोगश्चासतःसति । तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथारवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तुदेहस्य विक्रियानात्मनःक्वचित् । कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥ यथाशयानआत्मानं विषयान्फलमेवच अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे तथाऽऽप्नोत्यबुधो भवम् ॥४८॥तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् । तत्त्वज्ञानेननिर्हृत्य स्वस्थाभवशुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच । एवंभगवतातन्वी रामेणप्रतिबोधिता । वैमनस्यंपरित्यज्य मनोबुद्ध्यासमादधे ।५०। प्राणावशेषउत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ चक्रेभोजकटंनामनिवासायमहत्पुरम् ॥ ५१ ॥ अहत्वादुर्मतिंकृष्णमप्रत्यूह्ययवीयसीम् । कुण्डिनंनप्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वातत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥ भगवान्भीष्मकसुतामेवं निर्जित्यभूमिपान् । पुरमानीयविधिवदुपयेमेकुरूद्वह ॥ ५३ ॥ तदामहोत्सवोनॄणां यदुपुर्यांगृहेगृहे । अभूदनन्यभावानांकृष्णेयदुपतौनृप ॥ ५४ ॥ नरानार्यश्चमुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः । पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥ सावृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः । बभौप्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भाऽगुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्तमार्गांमदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् । गजैर्द्वा

सब प्राणियों में शुद्ध आत्मा एकही है तौभी मूर्ख मनुष्य उसे नाना प्रकार से मानते हैं जैसे जलयुक्त वासन में चन्द्रआदि ज्योति एक है तथापि वह नानारूप से प्रकाशती है और आकाश एक है तौभी घटादिकों में नानारूप से भासता है ॥ ४४ ॥ आदि, अंतयुक्त अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवात्मक देह अविद्याद्वारा आत्मा से रचितहो प्राणीको संसार में भटकाता है ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार सूर्यसे नेत्र और रूपका प्रकाश होता है उसी प्रकार आत्मा से अधिभूतादि का प्रकाश रहता है अतएव वह सब मिथ्या है; इस कारण उनके साथ आत्माका संयोग भी नहीं है और न वियोगही है ॥ ४६ ॥ जन्मादि देहकेही विकार हैं आत्मा के नहीं । जैसे चन्द्रमा में जो घटाव बढाव जानपड़ता है वह कलाओंका है चन्द्रमाका नहीं वहतो सदैव पूर्णरूप है और आत्मा का मरण अमावश्या की समान है ॥ ४७ ॥ जैसे सोताहुआ मनुष्य मिथ्या विषयोंका भोक्ताहो भोग और भोगका अनुभव करता है, वैसही मूर्ख मनुष्यको संसार प्राप्तहोता रहता है ॥ ४८ ॥ इस कारण हे शुचिस्मिते ! आत्मा के शोषक और मोहकारक अज्ञान से उत्पन्न हुए शोकको तत्त्वज्ञानद्वारा नाशकर सावधनहो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! क्षीणांगी रुक्मिणी ने भगवान बलरामजी से इस प्रकारकी बातेंसुन वैमनस्यको छोड़ बुद्धिसे मनको स्थिर किया ॥५०॥ शत्रुके हाथसे रुक्मीका बल और प्रभाव नष्ट होगया, उसके केवल प्राणही शेष रहगये; उसका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ । उसने इस दशासे छूटकर वासकरनेके निमित्त भोजकट नामक एकनगर बसाया । और "बिनाकृष्ण के मारे व बहिनको लाये कुंडिन पुरमें न आऊंगा" इस प्रणका स्मरण कर उसी स्थान में रहने लगा ॥ ५१—५२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान श्रीकृष्णजी ने राजाओं को इस प्रकार से जीत भीष्मक सुताको नगरमें लाय उससे विधिपूर्वक विवाह किया ॥५३॥ राजन् ! श्रीकृष्णजी में अनन्यभक्ति होने से उस समय यदुवंशियों के घर२ में महोत्सव होनेलगा ॥५४॥ स्त्री पुरुष सुंदर मणिकुंडल पहिन आनंदितहो सुंदर वस्त्र पहिने हुए वर कन्याके देने के निमित्त नानाप्रकार की सामग्री लानेलगे॥५५॥यदुवंशियों की वह नगरी इन्द्रध्वज, विचित्रमाला, वस्त्र और रत्नोंके तोरणसे सुसज्जित हुई, लाजा, दूर्वा, फूल और पल्लवादि मांगलिग द्रव्य,भरेहुए कलश अगरु धूप और दीपसे उसकी अत्यंत शोभा होनेलगी ॥ ५६ ॥ निमंत्रित राजाओं के मदस्रवीरूगा,

स्सुपरामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥५७॥ कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः । मिथो मुमुदिरेतस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८॥ रुक्मिण्याहरणंश्रुत्वागीयमानंततस्ततः राजानोराजकन्याश्चबभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् । रुक्मिण्यारमयोपेतंदृष्ट्वाकृष्णंश्रियःपतिम् ॥ ६० ॥

इतिश्रीमद्भा०म०दशम०उ०चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

श्रीशुकउवाच । कामस्तुवासुदेवांशो दग्धःप्राग्रुद्रमन्युना । देहोपपत्तयेभूय स्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ सएवजातोवैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः । प्रद्युम्नइति वि॰ ख्यातः सर्वतोऽनवमःपितुः ॥ २ ॥ तंशम्बरःकामरूपी हृत्वातोकमनिर्दशम् । स विदित्वात्मनःशत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तंनिर्जगारबलवान्मीनः सोऽ प्यपरैःसह । वृतोजालेनमहता गृहीतोमत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तंशम्बरायकैवर्ता उ पाजह्रुरुपायनम् । सूदामहानसंनीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वातदुद रेबालंमायावत्यैन्यवेदयन् । नारदोऽकथयत्सर्वंतस्याः शङ्कितचेतसः । बालस्यत त्त्वमुत्पत्तिंमत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥ साचकामस्यवैपत्नीरतिर्नामयशस्विनी । प त्युर्निर्दग्धदेहस्यदेहोत्पत्तिंप्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिताशम्बरेणसासूपौदनसाधने । कामदेवंशिशुंबुद्ध्वाचक्रेस्नेहंतदाऽर्भके ॥८॥ नातिदीर्घेणकालेनसकार्ष्णीरूढयौव नः । जनयामासनारीणांवीक्षन्तीनांचविभ्रमम् ॥ ९ ॥ सातंपतिंपद्मदलायतेक्षणंप्र लम्बबाहुंनरलोकसुन्दरम् । सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षतीप्रीत्योपतस्थेरतिरङ्गसौर

हाथियों के मदसे मार्ग सिंचने लगा, और केला तथा सुपारियों से प्रतिद्वार की शोभा होनेलगी ॥ ५७ ॥ वहांकुरु, सृंजय, केकय, विदर्भ, यदु और कुंति वंशीय राजगण प्रसन्न चित्तहो चारोंओर दौड़ २ बंधुओं से परस्पर मिलने लगे ॥ ५८ ॥ रुक्मिणी हरण की वार्त्ता के इधर उधर गीत होनेलगे, उनको सुन २ कर राजा और राजकन्यागण अत्यंत विस्मित होतीथीं ॥ ५९ ॥ हे राजन्! द्वारका में श्रीकृष्णजी के साथ लक्ष्मीरूपा रुक्मिणी को देख पुरवासिगण अत्यंत आनंदितहुए॥६०॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! भगवान का अंश कामदेव जो प्रथम महादेवजी के क्रोध से भस्महोगयाथा उसने देह प्राप्ति के निमित्त फिर बासुदेव का आश्रय किया ॥ १ ॥ वही श्री कृष्णजी के बीर्य से बिदर्भ नन्दिनी के गर्भ में जन्म ग्रहणकर प्रद्युम्न नामसे बिख्यातहुआ।प्रद्यु-म्न किसी अंश में भी पिताकी अपेक्षा न्यूननहींथा ॥ २ ॥ कामरूपी शंबर दैत्य प्रद्युम्नको अपना शत्रुजान दशदिन के भीतरही उस का हरणकर समुद्र में डाल अपने घर को चलागया ॥ ३ ॥ एक बलवान मत्स्य उस बालकको निगलगया । वह मत्स्यभी दूसरे मत्स्यों के साथ धीमरों द्वारा बड़े जाल में फँसकर पकड़ागया ॥ ४ ॥ धीमरों ने उस मत्स्यको ले शंबरको भेंट में दिया।रसो-इयेने उस को वहां से लेजाय उस अद्भुतमत्स्य को छुरी से चीरा ॥ ५ ॥ उस के चीरतेही उस ने उस के पेट से एक बालक को निकला देख मायावती को सौंप दिया मायावती मन में शंकित हुई तब नारदजी ने उस से बालक का तत्त्व उत्पत्ति और मत्स्य के उदर में प्रवेश करना यह सब आकर कह दिया ॥ ६ ॥ हे राजन्! वह मायावती काम की पतिव्रता जो रति भस्महुएपति के देह उत्पन्न होने की प्रतीक्षा करतीहुई वहां रहतीथी ॥ ७ ॥ शंबरने उसको रसोई के काम में नियत कररक्खाथा । वह पुत्रको कामदेव जान उसपर स्नेह करनेलगी ॥ ८ ॥ थोड़ेही दिनों में वह प्रद्युम्न युवावस्थाको प्राप्तहुआ,—उसको देखनेवाली स्त्रियें मोहित होकर क्षुभित होने लगीं ॥ ९ ॥ रति सलज्जभावसे हास्यकर ऊंची भृकुटि द्वारा कमल नेत्रों को घुमाय दीर्घभुजावाले मनु-

तैः॥१०॥तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्तेमतिरन्यथा । मातृभावमतिक्रम्यवर्तसेकामिनीयथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शम्बरेणाहृतोगृहात् । अहंतेऽधिकृतापत्नीरतिः कामोभवान्प्रभो ॥ १२ ॥ एषत्वाऽनिर्दशंसिन्धावक्षिपच्छम्बराऽसुरः । मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादितःप्राप्तोभवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमंजहिदुर्धर्षंदुर्जयंशत्रुमात्मनः । मायाशतविदंत्वंचमायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचतितेमाताकुररीवगतप्रजा । पुत्रस्नेहाकुलादीनाविवत्सागौरिवातुरा ॥ १५ ॥प्रभाष्यैवंददौविद्यांप्रद्युम्नायमहात्मने । मायावतीमहामायांसर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६॥ सचशम्बरमभ्येत्यसंयुगायसमाह्वयत् । अविषह्यैस्तमाक्षेपैःक्षिपन्सञ्जनयन्कलिम् ॥ १७ ॥ सोऽधिक्षिप्तोदुर्वचोभिःपदाहतइवोरगः । निश्चक्रामगदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्यतरसाप्रद्युम्नायमहात्मने । प्रक्षिप्यव्यनदन्नादंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतन्तींभगवान्प्रद्युम्नोगदयागदाम् । अपास्यशत्रवेक्रुद्धःप्राहिणोत्स्वगदांनृप ॥ २० ॥ सचमायांसमाश्रित्यदैतेयींमयदर्शिताम् । मुमुचेऽस्त्रमयंवर्षंकार्ष्णौवैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेणरौक्मिणेयोमहारथः । सत्त्वात्मिकामहाविद्यांसर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥ ततोगौह्यकगांधर्वपैशाचोरगराक्षसीः । प्रायुङ्क्तशतशोदैत्यःकार्ष्णिर्व्यधमयत्सताः ॥ २३ ॥निशातमसिमुद्यम्यसकिरीटंसकुण्डलम् । शम्बरस्यशिरःकायात्ताम्रश्मश्रोजसाऽहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणोदिविजैःस्तुवद्भिःकुसुमोत्करैः । भार्ययाम्बरचारिण्यापुरं

ष्यों में सुन्दर अपने स्वामी प्रद्युम्न को देखती ॥ १० ॥ एक दिन भगवान श्रीकृष्णनन्दन ने उस को इसप्रकार देखकर कहा कि—माता ! तुम्हारी बुद्धि अन्य प्रकारकी होगई है तुम मातृभावको छोड़कर स्त्री की समान अवस्थिति करतीहो ॥ ११॥ रति ने कहा कि-तुमश्रीकृष्ण के पुत्रहो;शंबर तुमको हरलाया है, मैं तुम्हारीपत्नी रतिहूं और तुमकामहो ॥ १२॥ इस शंबरने बालकपनमेंही तुम को समुद्र में डाल दियाथा, प्रभो ! मत्स्य ने तुमको निगल लियाथा; उस मत्स्य के उदरसे मैंने तुमको पाया है ॥ १३ ॥ उसी इस दुष्ट दुर्जय मायावी अपने शत्रुको तुम इस समय मोहनादि मायाद्वारा नाशकरो ॥ १४ ॥ पुत्रके नाशहोजाने पर तुम्हारी माता बिछुड़ेहुए बछड़ेवाली गायके समान कातर व दुःखित और कुररी की समान शोककरती है ॥ १५ ॥ मायावती ने इस प्रकार से कह महात्मा प्रद्युम्न को सर्वमाया नाशिनी महामाया विद्यादी ॥ १६॥ प्रद्युम्न शंबर के निकट जाय कठोर तिरस्कार के वाक्यों से उसका तिरस्कार करनेलगे, इस प्रकार दोनोंही में कलह उत्पन्नहोगया ॥ १७ ॥ कठोर बचनों से तिरस्कृतहो लातसे मारेहुए सांपकी समान शंबर के नेत्र क्रोधसे ताम्रवर्ण के होगये । उसने गदा हाथ में ले बाहरनिकल बलपूर्वक गदाको घुमा महात्मा प्रद्युम्नपर प्रहारकिया, उस से वज्र गिरने की समान अत्यन्त घोरशब्द उत्पन्नहुआ ॥१८। १९ ॥ गदाको सन्मुख आता देख महात्मा प्रद्युम्न ने गदाही से उसका निवारण किया और क्रोध से ऊंचाशब्द कर शत्रुपर अपनी गदाका प्रहार किया ॥ २० ॥ वह असुरभी मयदानवकी दीहुई आसुरी मायाका आश्रयकर आकाश में पहुंच प्रद्युम्नपर पत्थर बरसाने लगा ॥ २१ ॥ महारथ प्रद्युम्नने पत्थरकी बर्षासे पीड़ितहो सर्वमाया बिनाशिनी सत्त्वगुण मयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ अनन्तर उस दैत्यने गुह्यक, गन्धर्व, पिशाच, उरग, और राक्षस संबंधी शत शत माया का प्रयोग किया परंतु प्रद्युम्नने उनसबोंही का नाश करदिया ॥ २३ ॥ अंतमें तीक्ष्ण खड्ग उठाय शम्बरके किरीट, भूषित कुण्डल माण्डित ताम्रवर्ण की दाढ़ी मूछवाले शिरको बलपूर्वक काट डाला॥२४॥उसकाल देवता स्तुति करने व फल बरसानेलगे, और आकाश में चलनेवाली

नीतोविहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरंराजन्ललनाशतसंकुलम् । विवेशपत्न्यागगना द्विद्युतेवबलाहकः ॥ २६ ॥ तंदृष्ट्वाजलदश्यामंपीतकौशेयवाससम् । प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षंसुस्मितारुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखाम्भोजंनीलवक्रालकालिभिः कृष्णंमत्वास्त्रियोह्रीतानिलिल्युस्तत्रतत्रह ॥ २८ ॥ अवधार्यशनैरीषद्वैलक्षण्येनयो षितः । उपजग्मुःप्रमुदिताःसस्त्रीरत्नंसुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथतत्रासितापाङ्गी वै-दर्भीवल्गुभाषिणी । अस्मरत्स्वसुतंनष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ कोन्वयंनरवै दूर्यः कस्यवाकमलेक्षणः । धृतःकयावाजठरेकेयं लब्धात्वनेनवा ॥ ३१ ॥ ममचाप्या त्मजोनष्टो नीतोयःसूतिकागृहात् । एतत्तुल्यवयोरूपो यदिजीवतिकुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथंत्वनेनसंप्राप्तं सारूप्यंशार्ङ्गधन्वनः । आकृत्याचयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ॥ ३३ ॥ सएववाभवेन्नूनं योमेगर्भेधृतोऽर्भकः । अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामःस्फु रतिमेभुजः ॥ ३४ ॥ एवंमीमांसमानायां वैदर्भ्यांदेवकीसुतः । देवक्याऽऽनकदु-न्दुभ्यामुत्तमश्लोकआगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपिभगवांस्तूष्णीमासीज्जनार्द नः । नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वामहदाश्चर्यं कृ ष्णान्तःपुरयोषितः । अभ्यनन्दन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकीवसु देवश्च कृष्णरामौतथास्त्रियः । दम्पतीतौपरिष्वज्य रुक्मिणीचययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥ नष्टंप्रद्युम्नमायातमाकर्ण्यद्वारकौकसः । अहोमृतइवायातो बालोदिष्ट्येतिहाऽब्रुव

स्त्रियें उनको आकाश मार्गसे द्वारका में लेगई ॥ २५ ॥ हे राजन् ! बिजली के साथ मेघकी स-मान स्त्री समेत प्रद्युम्नने बहुतसी स्त्रियोंवाले अन्तःपुरमें प्रवेशकिया, ॥ २६ ॥ मेघ सा श्यामवर्ण, पीतांबर पहिने लम्बी भुजावाले अरुण नेत्र सुन्दर मुसकान युक्त व नीले तथा टेढ़ी अलकावली रूप भौरोंसे शोभितमुखवाले प्रद्युम्न को देख सब अंतःपुरकी स्त्रियां श्रीकृष्ण जान लज्जितहोस्थान प्रतिस्थानमें छिपनेलगीं ॥ २७ । २८ ॥ धीरे२ उनमें कुछ बिलक्षणता देख यह श्रीकृष्णनहीं हैं ऐसा निश्चयकर आनन्दित और विस्मितहुई और उस अद्भुतरत्न से विस्मितहो उस के निकट आनेलगीं ॥ २९ ॥ अनन्तर मधुरभाषिणी श्यामकटाक्षवाली रुक्मिणी ने वहां पर आय अपने खोयेहुएपुत्रका स्मरण किया । और स्नेहके कारण उनके स्तनों से दूध गिरनेलगा ॥ ३० ॥ वहकहने लगीं कि यह पुरुष श्रेष्ठ कौन है ? यह कमललोचन किसकापुत्र है ? किस स्त्री ने इसको अपने उदर में धारण किया है? इसने जो स्त्री पाई है वहकौन है ? ॥ ३१ ॥ मेराभी पुत्र जो सूतिकागृह से खोगयाथा वह यदि कहीं जीता होगा तो अवस्था और रूप में इसही की समानहोगा ॥ ३२ ॥ यह क्योंकर आकृति, अवयव, गति, स्वर, हास्य, और चितवन में श्रीकृष्णजी की समानहुआ अथवा मैंने जिसपुत्रको गर्भ में धारण कियाथा क्या यह वही है ? इसपर मुझे बड़ाभारी स्नेहहोता है और मेरी बाईं भुजा फड़कती है ॥ ३४ ॥ राजन् ! रुक्मिणी इस प्रकार से बिचार करतीथीं कि इतनेही में भगवान श्रीकृष्णजी देवकी और वसुदेव के साथ वहांपर आये ॥ ३५ ॥ भगवान जनार्दन उस सब विषयको जानकर भी चुपचाप खडे होगए, उसी समय नारदजी ने आनकर शंबरआदि के हरने का समस्त वृत्तांत कहा ॥ ३६ ॥ उस अद्भुत घटना को सुन श्रीकृष्णजी की स्त्रियाँ मृत्युके घर से आए हुए मनुष्य की समान बहुत दिनों में आयेहुए प्रद्युम्न का आदर कर-नें लगीं ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेव, राम, श्रीकृष्णजी, सब स्त्रियें और रुक्मिणी उस वर कन्या का आलिंगनकर अत्यन्त आनंदित हुए ॥ ३८ ॥ खोयाहुआ प्रद्युम्न आयाहै यह सुनकर द्वारकावासी कहने लगे, अच्छा हुआ कि जो बालक मरेहुए मनुष्यकी समान फिरआया है ॥ ३९ ॥ प्रद्युम्नका

न् ॥ ३९ ॥ यंवैमुहुःपितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरोयदभजन्रहरूढभावाः । चित्रंनतत्खलुरमास्पदबिम्बबिम्बे कामेस्मरेऽक्षिविषयेकिमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० दशमस्कंधे पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५॥

श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितःस्वतनयांकृष्णायकृतकिल्विषः । स्यमन्तकेन मणिनास्वयमुद्यम्यदत्तवान् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सत्राजितःकिमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्यकिल्विषम् । स्यमन्तकःकुतस्तस्यकस्माद्दत्तासुताहरेः ॥२॥ श्रीशुक उवाच॥ आसीत्सत्राजितःसूर्यो भक्तस्यपरमःसखा । प्रीतस्तस्मैमणिंप्रादात्सूर्यस्तुष्टःस्यमन्तकम् ॥ ३ ॥ सतंबिभ्रन्मणिंकण्ठेभ्राजमानोयथारविः । प्रविष्टो द्वारकांराजंस्तेजसानोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तंविलोक्यजनादूरात्तेजसामुष्टदृष्टयः।दीव्यतेऽक्षैर्भग०ते शशंसुःसूर्यशङ्किताः ॥ ५ ॥ नारायणनमस्तेऽस्तुशंखचक्रगदाधर । दामोदरारविंदाक्षगोविंदयदुनन्दन ॥ ६ ॥ एषआयातिसवितात्वांदिदृक्षुर्जगत्पते । मुष्णन्गभस्तिचक्रेणनृणांचक्षूंषितिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छन्तितेमार्गंत्रिलोक्यांविबुधर्षभाः । ज्ञात्वाद्यगूढंयदुषुद्रष्टुंत्वांयात्यजःप्रभो ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच॥ निशम्यबालवचनंप्रहस्याम्बुजलोचनः । प्राहनासौरविर्देवःसत्राजिन्मणिनाज्वलन् ॥ ९ ॥ सत्राजित्स्वगृहंश्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् । प्रविश्यदेवसदने मणिंविप्रैर्न्यवेशयत्१० ॥ दिनेदिनेस्वर्णभारानष्टौससृजतिप्रभो। दुर्भिक्षमार्यरिष्टानिसर्पाधिव्याधयोऽशुभाः।

रूप श्रीकृष्णजी की समान था इसही कारण उनकी माताएँ भी उनको अपना संबंधी और स्वामी जान२ उनका ध्यान करती थीं। । यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है क्यों कि जिसके स्मरण करने सेही क्षोभ उत्पन्न होता है वह नेत्रों के सामने विराजमान है दूसरे वह श्रीकृष्णजी की श्री मूर्तिके प्रतिबिंब ही थे जब उनकी माताओं कोभी भ्रांति होगई तब दूसरी स्त्रियों की तो बातही क्या है

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सरला भाषाटीकायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! सत्राजित ने अपराध कर अपराध दूर करने के निमित्त स्वयं श्रीकृष्णजी को स्यमंतक मणि समेत अपनी पुत्री दी ॥ ॥ १ ॥ राजा ने पूँछाकि सत्राजितने श्रीकृष्णजी का क्या अपराध कियाथा उसने स्यमंतक मणि कहां से पाईथी श्रीकृष्णजी को कन्या क्योंदी ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी नें कहा कि हे राजन्! सत्राजित सूर्य का परमभक्त था और सूर्यभी सत्राजित को परममित्र मानतेथे उन्होंनेंही प्रसन्न और संतुष्ट होकर सत्राजित को स्यमंतक मणि दीथी ॥ ३ ॥ हे राजन्! सत्राजित कंठ में उस मणि को धारणकर सूर्य की समान प्रकाशितहो द्वारका में आया उस मणि से इस प्रकार का प्रकाश होताथा कि उसको कोई नजानसका कियह सत्राजित है ॥ ४ ॥ दूर सेही उसको देखकर सबकी दृष्टि नष्ट होगई भगवान उस समय चौसर खेलरहे थे, सब मनुष्य सूर्य को आताजान उनके समीप आयकर कहने लगे कि ॥ ५ ॥ हे नारायण! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धर! हे दामोदर! हे जलजलोचन! हे गोविन्द! हे यदुनन्दन आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ हे जगत्पते! भगवान सूर्य अपनी किरणों से मनुष्यों की दृष्टि को नष्ट करते हुए आपके दर्शन करने के निमित्त आते हैं ॥ ७ ॥ श्रेष्ठ देवताभी त्रिलोकी में आपही के मार्गका अन्वेषण करते हैं हे प्रभो!आप यदुकुल में गुप्त रीति से रहते हो जानपड़ता है कि आज सूर्य देव आपके दर्शनों की इच्छा से आते हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! अनजान मनुष्यों की बात को सुन भगवान हँसकर कहने लगे कि यह सूर्यदेव नहीं हैं यह सत्राजित यादव स्यमंतक मणिकी किरणों से इसप्रकार प्रकाशित होरहाहै॥९॥इधरसत्राजित ने अपनें श्री युक्त घर में प्रवेश कर विप्रों द्वारा मंगलाचरण कराय देवगृह में मणि स्थापन की ॥ १० ॥ वह मणि प्रति-

नस्सन्तिमायिनस्तत्रयत्रास्तेऽभ्यर्चितोमणिः ॥ ११ ॥ सयाचितोमणिंक्वापियदु राजायशौरिणा । नैवार्थकामुकःप्रादाद्याञ्चाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदामणि कण्ठेप्रतिमुच्यमहाप्रभम् । प्रसेनोहयमारुह्यमृगयांव्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनंसहयं हत्वामणिमाच्छिद्यकेसरी । गिरिंविशञ्जाम्बवतानिहतोमणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोऽपिचक्रेकुमारस्यमणिंक्रीडनकंबिले । अपश्यन्भ्रातरंभ्रातासत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥ प्रायःकृष्णेननिहतोमणिग्रीवोवनंगतः । भ्रातामसेतितच्छ्रुत्वाकर्णेकर्णेऽजप ञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्यदुर्यशोलिप्तमात्मनि । मार्ष्टुंप्रसेनपदवीमन्वपद्य तनागरैः ॥१७॥ हतंप्रसेनमश्वंचवीक्ष्यकेसरिणावने । तंचाद्रिपृष्ठेनिहतमृक्षेणदद शुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलंभीममन्धेनतमसावृतम् । एकोविवेशभगवानव स्थाप्यबहिःप्रजाः ॥ १९ ॥ तत्रदृष्ट्वामणिंश्रेष्ठंबालक्रीडनकंकृतम् । हर्तुंकृतमति स्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकांतिके ॥ २० ॥ तमपूर्वंनरंदृष्ट्वाधात्रीचुक्रोशभीतवत् । तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धोजाम्बवान्बलिनांवरः ॥ २१ ॥ सवैभागवतातनयुयुधेस्वा मिनात्मनः । पुरुषंप्राकृतंमत्वाकुपितोनानुभाववित् ॥ २२ ॥ द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः । आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थेश्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाह मितरेतरमुष्टिभिः । वज्रनिष्पेषपरुषै रविश्रममहर्निशम् ॥ ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः । क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्त

दिन आठ भार सुवर्ण देती और वह पूजित होकर जिस स्थानपर रहती वहां दुःख के कारण दुर्भिक्षि, अकाल मृत्यु, अमंगल, सर्प, व्याधि, आधि, अशुभ और माया कुछ नहीं होता ॥ ११ ॥ एक दिन श्रीकृष्णजी ने सत्राजित से उग्रसेन के निमित्त उस मणि को मांगाथा परन्तु लालची सत्राजित नें उनकी याचना भंगकर उन्हें मणि नदी ॥ १२ ॥ हे राजन् ! अनंतर सत्राजित का भाई प्रसेनजित एक दिन उस महाप्रकाशित मणि को कंठ में धारण कर घोडे पर बैठ बन में मृगया के निमित्त गया ॥ १३ ॥ वहां एक सिंह घोडे समेत प्रसेन को मार मणि ले पर्वत पर चलागया जाम्बवान ने मणि की इच्छा कर उस सिंह को मारा और गुफा में जाय अपने बालकका खिलौना बनाया इधर भाई को न देख सत्राजित संतप्त होकर कहने लगा कि ॥ १४ । १५ ॥ मेरा भाई गले में मणि बांधकर वन में गयाथा निश्चय ही कृष्णनें उसको मारडाला और अन्य मनुष्य भी इस बातकी कानाफूँसी करनेलगे ॥ १६ ॥ भगवान ने भी उसको सुना और अपने कलंकके दूर करने के निमित्त वह नगर के मनुष्यों को साथ ले प्रसेन के ढूंढने को बनमें गये ॥ १७ ॥ बनमें इधर उधर ढूँढतेहुए उन्होंने सिंह से मरेहुए प्रसेन और घोड़े को और इस के उपांतरीछ से मरेहुए उस सिंह को देखा ॥ १८ ॥ वहां रीछ की भयानक गुफाभी उनके दृष्टिगोचरहुई भगवान उस गुफा के द्वारपर अपने मनुष्यों को बैठाय आप उस अंधेरी गुफा में गये ॥ १९ ॥ वहां यह देखकर कि मणि बालक का खिलौनाहुई है उस के लेने की इच्छा से बालकके निकट जाकर खड़ेहोगये ॥ २० ॥ उस अपूर्व मनुष्य को देखकर उस बालककी धाय भयभीतहो बड़े शब्द से चिल्लानेलगी । उस शब्दको सुनकर बलवानों में श्रेष्ठ जाम्बवान वहां दौड़ाआया ॥२१॥ और भगवान के प्रभाव को न जान उन्हें एक साधारणमनुष्य मान उनसे युद्ध करने में प्रवृत्त हुआ । क्योंकि वह उनके प्रभावको नहीं जानताथा ॥ २२ ॥ दोनोंही अपने जयकी इच्छाकरतेथे; मांस के निमित्त दो बाजों की समान अस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओं द्वारा उन दोनों में अत्यंत घोर युद्ध होनेलगा ॥ २३ ॥ अट्ठाईस दिवसतक इसप्रकार का घोरयुद्धहोतारहा वे दोनों अट्ठाईस दिन बराबर रात दिन बिना विश्राम लिये मुष्टिप्रहारकरतेरहे ॥ २४ ॥ अन्त में श्रीकृष्णजी के

माहातीवविस्मितः ॥ २५ ॥ जानेत्वांसर्वभूतानांप्राणओजस्सहोबलम् । विष्णुंपुराणपुरुषंप्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वंहिविश्वसृजांस्रष्टासृज्यानामपियच्चसत् । कालः कलयतामीशः परमात्मातथात्मनाम् ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः । सेतुः कृतः स्वयशउज्ज्वलितापुरलङ्कारक्षः शिरांसिभुविपेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ इतिविज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः । व्याजहारमहाराजभगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिनाशंकरेणतम् । कृपयापरयाभक्तंप्रेमगम्भीरयागिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिहप्राप्तावयमृक्षपतेबिलम् । मिथ्याऽभिशापंप्रमृजन्नात्मनोमणिनामुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वांदुहितरंकन्यांजाम्बवतींमुदा । अर्हणार्थंसमणिनाकृष्णायोपजहारह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वानिर्गमंशौरेः प्रविष्टस्यबिलंजनाः । प्रतीक्ष्यद्वादशाहानिदुःखिताः स्वपुरंययुः ॥३३ ॥ निशम्यदेवकीदेवीरुक्मिण्यानकदुन्दुभिः । सुहृदोज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितंशपन्तस्तेदुःखिताद्वारकौकसः । उपतस्थुर्महामायांदुर्गांकृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषांतुदेव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषासच । प्रादुर्बभूवाकृतार्थः सदारोहर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्यहृषीकेशंमृतंपुनरिवागतम् । सहपत्न्यामणिग्रीवंसर्वेजातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितंसमाहूयसभायांराजसन्निधौ ।

घूंसा मारने से जाम्बवान के अंग के सब बन्धन ढीलेपड़गये , और शरीर पसीने से भीगगया तब उस ने अत्यन्त विस्मितहो भगवान से कहा कि- ॥ २५ ॥ मैं जानताहूं कि आप पुराण पुरुष अधीश्वर, सर्व शक्तिमान् श्री विष्णुजी हैं आप समस्त प्राणियों के प्राण, इंद्रिय बल, देहबल और मनोबलहैं ॥ २६ ॥ जो विश्वको उत्पन्न करते हैं आपने उनकोभी उत्पन्न किया है । सृष्ट पदार्थोंमें से उनके आपही उपादान कारणहो इसीकारण आप पुराण पुरुषहो । जो सबको नाश करता है आप उसकालकेभी काल और सब आत्माओंके परमात्माहो ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! आप के कुछ एक रोषसे कटाक्षपातके कारण समुद्रके मकर और ग्राह क्षुभित होउठेथे ; इससे समुद्रने आपको मार्ग देदियाथा परन्तु तौभी आपने सेतुको बांध अपने यशको प्रकाशित करतेहुए लंका-पुरीको जलाया । आपकेही बाणोंसे छिन्नहोकर राक्षस रावणका मस्तक भूमिपर गिराथा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! ऋक्षराज जाम्बवानको जब इसप्रकारका ज्ञान प्राप्तहुआ तब भगवान देवकीनन्दन ने अपने शुभकारी हाथों से भक्तका स्पर्शकर परम कृपापूर्वक मेघकी समान गंभीर शब्द से कहा ॥ ॥ २९ । ३० ॥ हे ऋक्षराज ! मणिके निमित्तही मैं इसगुफा में आयाहूं , इस मणिसेही मैं अपने मिथ्या कलंकको दूर करूंगा ॥ ३१ ॥ इसबातको सुन संतुष्टहो पूजाके निमित्त श्रीकृष्णजी को मणिसमेत अपनी पुत्री जाम्बवती देदी ॥ ३२ ॥ इसओर प्रजाने गुफा से बाहर निकलने की बारह दिनतक उनकी राहदेखी परन्तु उनको बाहर न होता देख वह अत्यंत दुःखितहो अपने नगरको लौटआये ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी गुफासे न निकले इसबातको सुनकर देवी देवकी और रुक्मिणी व बसुदेव, सुहृद तथा जातिवाले सबही शोक करने लगे ॥३४॥ और द्वारकावासी सत्राजितको गाली देतेहुए दुःखितहो श्रीकृष्णजीके आने के निमित्त चन्द्रभागानाम्नी दुर्गाकी पूजा करनेलगे ॥ ३५ ॥ उनके पूजाकरनेके उपरांत देवीने उनको जैसेही आशीर्वाददिया वैसेही उस आशीर्वादके साथही साथ हरि भगवानने अपनाकार्य पूराकर स्त्रीसमेत वहां आय सबको आनन्दित किया ॥ ३६ ॥ फिरकरआये हुए मृत मनुष्य की समान गले में मणिधारणकिये स्त्री समेत भगवानको पाय सब मनुष्योंको अत्यन्तही आनन्द प्राप्तहुआ ॥ ३७ ॥ अनन्तर भग-

प्रासिंचाख्यायभगवान्मणितस्मैन्यवेदयत् ॥ ३८ ॥ सचातिव्रीडितोरत्नंगृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः । अनुतप्यमानोभवनमगमत्स्वेनपाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघंबलवद्विग्रहाकुलः । कथंमृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किंकृत्वासाधुमह्यंस्यान्नशपेद्वाजनोयथा । अदीर्घदर्शनंक्षुद्रंमूढंद्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥ दास्येदुहितरंतस्मैस्त्रीरत्नंरत्नमेवच । उपायोऽयंसमीचीनस्तस्यशान्तिर्नचान्यथा ॥ ४२ ॥ एवंव्यवसितोबुद्ध्यासत्राजित्स्वसुतांशुभाम् । मणिंचस्वयमुद्यम्यकृष्णायोपजहारह ॥ ४३ ॥ तांसत्यभामांभगवानुपयेमेयथाविधि । बहुभिर्याचितांशीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाहनमणिंप्रतीच्छामोवयंनृप । तवास्तांदेवभक्तस्यवयंचफलभागिनः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

श्रीशुकउवाच । विज्ञातार्थोऽपिगोविन्दो दग्धानाकर्ण्यपाण्डवान् । कुन्तींचकुल्यकरणे सहरामोययौकुरून् ॥ १ ॥ भीष्मंकृपंसविदुरं गान्धारींद्रोणमेवच । तुल्यदुःखौचसंगम्य हाकष्टमितिहोचतुः ॥२॥ लब्ध्वैतदन्तरं राजञ्छतधन्वानमूचतुः । अक्रूरकृतवर्माणौ मणिःकस्मान्नगृह्यते ॥ ३ ॥ योऽस्मभ्यंसम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नंविगर्ह्यनः । कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवंभिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः । शयानमवधील्लोभात्स पापःक्षीणजीवितः ॥५॥ स्त्रीणां

वानने सभामें राजाके सामनेही सत्राजितको बुलाया और जिसप्रकारसे वह मणि मिलीथी उस सब का वर्णनकर उसको मणिदी ॥३८॥ सत्राजितलज्जितहो नीचको मुखकर मणिले अपने अपराध से सन्तप्त होताहुआ अपने घरआया ॥ ३९ ॥ वह उस अपराधकी चिन्ता करनेलगा और बलवान के साथ कलह उपस्थितहोजाने से अत्यन्त व्याकुलहोउठा । सत्राजित विचारनेलगा--कि किसप्रकार से इस अपराधको दूरकरूं ? किसप्रकार से श्रीकृष्णजी प्रसन्नहोंगे ? ॥ ४० ॥ क्या करने से मेरा कल्याणहोगा ? क्या करने से मनुष्य मुझको अविचारी, कृपण, मन्दबुद्धि, धनलोलुप कहकर गाली न देंगे ? ॥ ४१ ॥ मेरी पुत्री स्त्री रत्नहै; मैं उनको यह स्त्री रत्न और मणिदूंगा। इस उपाय के अतिरिक्त और किसी उपाय से इस अपराध की शांति न होगी ॥ ४२ ॥ मनमें इस बातका विचार करके यही निश्चयकर सत्राजित ने अपनी मंगल स्वरूपा कन्या और मणि श्रीकृष्णजी को दी ॥ ४३ ॥ भगवान ने यथारीति से सत्राजित की पुत्री सत्यभामा से विवाह किया। सत्यभामा शील, रूप, उदारता और गुणों से अलंकृत थी । बहुत से मनुष्योंने उससे विवाहहोने की इच्छा कीथी ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णजी मणिको भेटमें देखकर कहने लगेकि-मैं मणिको न लूंगा। आपसूर्य के भक्तहो, यह आपही के पासरहे, मैंही इसके फलका भोगीहूंगा ॥४५॥

इतिश्री मद्भा० म० दशम० उ० सरलाभाषाटीकायांषट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

श्रीशुकदेवजीबोलेकि-हेराजन् !.पाण्डवगण जिस प्रकार सुरंग द्वारसे हो लाक्षा भवनसे निर्विघ्न निकलगये वह सब बात श्रीकृष्णजी भली प्रकार जानते थे तौभी पाण्डव अपनी माता समेत सच मुचहो लाक्षागृहमें जल गये यह बातसुन कुलोचित व्यवहार करनेके निमित्त भाई बलराम जी केसाथ श्रीकृष्णजी कुरुदेश मेंगये और भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और गांधारीके साथ मिल उन्हीं की समान दुःख प्रकाशकर के कहने लगे कि हाय ! बडा कष्टहै ! ॥ २ ॥ हे राजन् ! यह अवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से जाकर कहाकि -अब किस कारणसे मणि नहीं लेता ! ॥ ३ ॥ जिस सत्राजितने हमारे निकट कन्यारत्न देना स्वी कारकर श्रीकृष्णको दी किंतु मणि नहीं दी, वह क्या भाई के पीछे न जाय ॥ ४ ॥ ऐसे उन दोनों के बहकाने से उस नीच पापी क्षीणजीवी, पापचारी ने लोभ के कारण सोतेहुए सत्राजितको जाकर मारडाला ॥ ५ ॥सब

विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् । हत्वापशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामाचपितरं हतंवीक्ष्यशुचाऽर्पिता । व्यलपत्तातताततेति हाहतास्मीतिमुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यांमृतंप्रास्य जगामगजसाह्वयम् । कृष्णायविदितार्थाय तप्ताचख्यौपितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरौराजन्ननुसृत्य नृलोकताम् । अहोनःपरमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥ आगत्यभगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजःपुरम् । शतधन्वानमारेभे हन्तुंहर्तुंमणिंततः ॥ १० ॥ सोऽपिकृतोद्यमंज्ञात्वा भीतःप्राणपरीप्सया । साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत सचाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यांहेलनंरामकृष्णयोः । कोनुक्षेमायकल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितःश्रिया । जरासन्धःसप्तदश संयुगान्विरथोगतः ॥१३॥ प्रत्याख्यातःसचाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत । सोऽप्याहकोविरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ यइदंलीलयाविश्वं सृजत्यवतिहन्तिच । चेष्टां विश्वसृजोयस्य नविदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यःसप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना । दधारलीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मैभगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे । अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मनेनमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातःसतेनापि शतधन्वामहामणिम् । तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगंययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ । अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलाया उपवने

स्त्रियें आर्त्तनाद करने और अनाथ की समान रोनेलगीं । शतधन्वा पशुमारने वाले कसाई की समान सत्राजितको मार मणिलेकर चलागया ॥ ६ ॥ सत्यभामा पिताको मरादेख 'हा तात !' कहकर विलाप करनेलगी ॥ ७ ॥ अनंतर वह तेलके कढ़ाव में पिताकी मृत देहरख हस्तिनापुर को गई और वहां पहुंचकर श्रीकृष्णजी से पिताके मरनेका वृत्तांत कहा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वह दोनो ईश्वर यद्यपि उस घटनाको जानते थे तौभी मनुष्योंका अनुसरणकर 'हा ! हमको महाकष्ट उपस्थित हुआ' यह कह आंसूबहा २ विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ अनंतर भगवान स्त्री और भाई को ले हस्तिनापुर से अपने नगर में आये और शतधन्वाको मारने तथा मणिलेनेपर तत्पर हुए ॥ १० ॥ वह दुराचारी शतधन्वा श्रीकृष्णजी के उद्योगका समाचार पाय भयभीतहो प्राणों की रक्षाके निमित्त कृतवर्मा के निकट आय उससे सहायता मांगनेलगा । कृतवर्माने कहाकि ॥ ११ ॥ राम, कृष्ण ईश्वर हैं मैं उनका अपराध नहीं करसकता उनका अपराध करके कौन कुशल पासकता है ॥ १२ ॥ जब कंस उनसे बैरकर राजलक्ष्मी से च्युतहो मारागया, जब जरासंध सत्रहवेर हारकर भागगया ॥ १३ ॥ तब उनसे बिगाड़कर उनका अपराधीहो किसका कल्याण होसकता है शतधन्वाने वहांसे निराशहो अक्रूर से आकर सहायता की प्रार्थना की ॥ १४ ॥ अक्रूरने कहाकि— दोनों ईश्वरों के प्रभावको जानकर व सुनकर कौन मनुष्य उनसे विरोध करसकता है जोकीड़ासे ही इस बिश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय करते हैं; विश्वको उत्पन्न करनेवाले जिनकी माया से मोहितहो जिनकी चेष्टातक कोभी नहीं जानसकते ॥ १५ ॥ जिन्हों ने सात बर्षकी अवस्था में बालक जैसे छत्रको धारणकरे वैसेही बाएं हाथसे पर्वतको उठाकर धारण किया था ॥ १६ ॥ उन भगवान्, अद्भुतकर्मा, अनंत, आदिभूत, निर्विकार स्वरूप भगवानको बारंबार प्रणाम व नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शतधन्वा अक्रूर केभी निकट से निराशहो उन्हींको मणिदे आप सौ योजन जानेवाले घोड़ेपर सवारहो भाग निकला ॥ १८ ॥ राम और कृष्णजी भी गरुड़ध्वज से शोभित रथपर बैठ शीघ्रगामी घोड़ा द्वारा गुरुद्रोही के पीछे २ दौड़े ॥ १९॥ शतयोजन चलकर शतधन्वा

विसृज्यपतितंहयम् । पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदाते-र्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना । चक्रेणशिरउत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् । ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाऽग्रजान्तिकम् । वृथाहतःशतधनुर्मणिस्तत्र नविद्यते ॥ २२ ॥ ततआहबलोनूनं समणिःशतधन्वना । कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरंव्रज ॥ २३ ॥ अहंविदेहमिच्छामि द्रष्टुंप्रियतमंमम । इत्युक्त्वामिथिलां राजन्विवेशयदुनन्दनः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वासहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः॥२५॥उवासतस्यां कतिचिन्मिथिलायांसमा विभुः । मानितःप्रीतियुक्तेन जनकेनमहात्मना । ततोऽशिक्षद्गदांकाले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥ केशवोद्वारकामेत्यनिधनंशतधन्वनः ॥ अप्राप्तिंचमणेः प्राह प्रियायाःप्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततःसकारयामास क्रियाबन्धोर्हतस्यवै । साकंसुहृद्भिर्भगवान्या याःस्युःसाम्परायिकाः ॥ २८ ॥ अक्रूरःकृतवर्माच श्रुत्वाशतधनोर्वधम् । व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाःप्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् । शारीरामानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्यप्रागुदाहृतम् । मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम्॥३१॥ देवेऽवर्षतिकाशीशः श्वफल्कायागतायवै । स्वसुतांगान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्रयत्रह । देवोऽभिवर्षते तत्रनोप-

का अश्व मिथिलाके किसी उपवन में गिरपड़ा । तब वह उस अश्वको छोड़ डरता हुआ, पैरोंसे भागने लगा, शत्रुको पैरोंभागता देख भगवान स्वयं पैदलचल उसके पीछेदौड़ तीक्ष्णधार के चक्र द्वारा उसका शिरकाट उसके वस्त्रों में मणिको ढूंढने लगे ॥ २०–२१ ॥ श्रीकृष्णजी मणिको न पा बलरामजी के निकट आकर कहने लगेकि–अकारणही शतधन्वाको मारा; उसके निकट मणि नहीं है ॥ २२ ॥ बलरामजी ने कहाकि–शतधन्वा ने वह मणि निश्चयही किसी दूसरे मनुष्य के निकट रक्खीहोगी तुम नगर में जाकर उस मनुष्यका खोजकरो ॥ २३ ॥ मेरीइच्छा प्यारे विदेह राजासे मिलने की है । हे राजन् ! यह कहकर बलरामजी मिथिला में गये ॥ २४ ॥ मिथिला के राजाने पूजनीय बलदेवजीको आया देखस्नेह पूर्वक उठकर पूजनकी सामग्रीद्वारा यथाविधि से उनकी पूजाकी ॥ २५ ॥ बलरामजी उस मिथिला में कुछवर्ष सुखसे रहे । पूर्वोक्त घटना के कुछ दिन उपरांत धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन मिथिला में आया और महात्मा जनक से पूजित व सन्मानितहो उसने बलरामजी से गदायुद्ध सीखा ॥ २६ ॥ इधर प्यारी के प्रियकरने वाले भगवान् द्वारका में आय शतधन्वा के मारने और मणि न मिलनेका वृत्तांत प्यारी से कहा ॥ २७ ॥ तदनंतर सुहृदों के संग मरेहुए सत्राजितकी सब पारलौकिक क्रिया करवाई ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इधर शतधन्वा के मरनेका समाचार पाय उसेमणि हरनेको प्रेरित करने वाले अक्रूर और कृतवर्मा त्रसितहो द्वारकासे भागगये ॥ २९ ॥ अक्रूर के द्वारकापुरी छोड़देने से उस देशके निवासी सदैवही शारीरिक, मानसिक, दैविक और भौतिक नाना प्रकार के संतापोंको भोगने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के महात्म्यको भूलकर कोई २ अक्रूरकेनगर छोडदेने सेही उस सब उपद्रवों के होनेका निश्चय करने लगे । किंतु यह बात सत्य नहीं जानपड़ती, क्योंकि मुनिलोगों के निवास भूत श्रीकृष्णजी के रहते हुए यह अरिष्ट कैसे होसकता है ॥ ३१ ॥ अक्रूरजी के जानेपर द्वारका के वृद्ध पुरुष कहने लगे कि जब एक समय इन्द्र ने बरसा न की तब काशी के राजा ने अपनी नगरी में आये हुए अक्रूर के पिता श्वफल्क को गांदिनी नाम अपनी पुत्रीदी तब काशी में जलकी वर्षाहुई ॥ ३२ ॥ अक्रूर उसी से उत्पन्नहुए पुत्र हैं अतएव उनका भी ऐसाही

तापानमारिकाः ॥ ३३ ॥ इतिवृद्धवचःश्रुत्वा नैतावादिहकारणम् । इतिमत्वासमानाय्य प्राहाक्रूरंजनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वाप्रियाःकथाः । विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमानउवाचह ॥ ३५ ॥ ननुदानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना । स्यमन्तकोमणिःश्रीमान्विदितः पूर्वमेवनः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः । दायंनिनीयाऽपः पिण्डान्विमुच्यर्णंच शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रतेमणिः । किंतुमामग्रजः सम्यंन प्रत्येतिमणिंप्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्वमहाभाग बंधूनां शान्तिमावह । अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवंसामभिरालब्धः श्वफल्कतनयोमणिम् । आदायवाससाच्छन्नं ददौसूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकंदर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रजआत्मनः । विमृज्यमणिनाभूयस्तस्मैप्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवतईश्वरस्यविष्णोर्वीर्याढ्यंवृजिनहरंसुमङ्गलंच । आख्यानंपठतिशृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्ययातिशान्तिम् ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महा० दशम० उ० सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदापाण्डवान्द्रष्टुंप्रतीतान्पुरुषोत्तमः । इन्द्रप्रस्थंगतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वातमागतंपार्थामुकुन्दमखिलेश्वरम् । उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणामुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतंवीराअङ्गसङ्गहतनसः । सानुरागस्मितंवक्त्रंवीक्ष्यतस्यमुदंययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्यभीमस्यकृत्वापादाभिव

प्रभावहैं वह जिस २ स्थान में निवास करते हैं उसी २ स्थानमें देवता वर्षा करतेहैं वहां रोग व उपद्रवों की शंका नहीं रहती, ॥ ३३ ॥ वृद्धोंकी इसबातको सुनकर भगवान ने बिचारा कि— अक्रूर के न रहनेका यह कारण नहींहै मणिके खोजाने काही यह कारणहै वह बिचारकर उन्होंने अक्रूरजीको बुलवाया, ॥ ३४ ॥ और यथाविधि से उनका सम्मानकर सुन्दर बातें कह हंसते २ कहा कि— ॥ ३५ ॥ हे दानपते ! शतधन्वाने निश्चयही तुमको स्यमन्तक मणिदी है मुझे यह प्रथमही से ज्ञातहै ॥ ३६ ॥ सत्राजित निःसन्तान है इसकारण उस मणिके अधिकारी उसकी बेटीके पुत्रहैं क्योंकि जो मनुष्य पितृ पुरुष का ऋण चुकाता व जल पिंड देताहै शास्त्रानुसार वही मृत पुरुष के सम्पत्तिका अधिकारी होता है ॥ ३७ ॥ किंतु उस मणिको दूसरा धारण नहीं करसकता अतएव वह आपहीके निकटहै क्योंकि आप सुन्दर व्रतके धारण करनेवालेहो मणिके विषय में हमारे बड़े भाई भी मुझपर विश्वास नहीं करते ॥ ३८ ॥ अतएवतुम मुझे उसे एकबार दिखाकर बन्धुओं के शांति का यत्नकरो । देखताहूं कितुम सुवर्ण की वेदीवाले अखण्डयज्ञकरते हो ॥ ३९ ॥ जब भगवान ने अक्रूर से इसप्रकार कहा तब अक्रूर ने सूर्य की समान प्रकाशित मणि वस्त्र में लपेटकरलाय भगवान के हाथ मेंदी ॥ ४० ॥ भगवान ने ज्ञातिवालों को वह मणि दिखाय उस मणिसे अपना कलंक उतार फिर वह अक्रूर के हाथ में देदी ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य भगवान के पराक्रमयुक्त, अनिष्टनिवारक, कल्याणकारी इसआख्यान को पढ़े,सुने वा स्मरणकरेगा वह दुष्कीर्ति और कलंकों से छूटकर शांतिको पावैगा ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांसप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! एक समय श्रीभगवान सात्यकि आदि आत्मीय जनों को साथले पाण्डवों के देखने के निमित्त इंद्रप्रस्थ को गये ॥ १ ॥ जिस प्रकार प्राणों के आने से सब इंद्रियां सचेतहोजाती हैं वैसेही भगवान को आते देख सबवीरपाण्डव एकसाथ उठ खड़ेहुए २ ॥ भगवान का आलिंगनकर उनके अंग स्पर्श से सब बीरों के पाप नाशहोगये वह प्रेम व मुसकान संयुत मुखारविंद को देख परमानन्द को प्राप्तहुए ॥ ३ ॥ भगवान ने भी युधिष्ठिर व भीम के

न्दनम् । फाल्गुनंपरिरभ्याथयमाभ्यांचाभिवन्दितः ॥ ४ ॥ परमासनआसीनंकृष्णा कृष्णमनिन्दिता । नवोढाव्रीडिताकिञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥ तथैवसात्य किः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः । निषसादासनेऽन्येचपूजिताः पर्युपासताः ॥६॥ पृथांसमागत्यकृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरम्भितः । आपृष्टवांस्तांकुश लंसहस्नुषांपितृष्वसारंपरिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥ तमाहप्रेमवैकल्यरुद्धकण्ठाश्रुलो चना । स्मरन्तीतान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥ तदैवकुशलंनोऽभू त्सनाथास्तेकृतावयम् । ज्ञातीन्नः स्मरताकृष्णभ्राताभेप्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ नतेऽ स्तिस्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्यसुहृदात्मनः । तथापिस्मरतांशश्वत्क्लेशान्हंसिहृदिस्थि तः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किंनआचरितंश्रेयोनवेदाहमधीश्वर योगेश्वराणां दुर्दर्शोयन्नोदृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इतिवैवार्षिकान्मासान्राज्ञासोऽभ्यर्थितः सु खम् । जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसांविभुः ॥ १२ ॥ एकदारथमारुह्यविजयोवा नरध्वजम् । गाण्डीवंधनुरादायतूणौचाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकंकृष्णेनसंनद्धो विहर्तुंगहनंवनम् । बहुव्यालमृगाकीर्णंप्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरै र्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् । शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किङ्करााज्ञेमेध्यान्पर्वण्युपागते । तृट्परीतः परिश्रान्तोबीभत्सुर्यमुनामगा त् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्यविशदं पीत्वावारिमहारथौ । कृष्णौददृशतुःकन्यां चरन्ती

चरणों को वन्दना और अर्जुन से आलिंगनकिया तथा नकुल सहदेव ने आकर उनकी पूजाकी॥ ४ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजी के परम आसन पर बैठनेपर अनिन्दिता,नई ब्याहीहुई द्रौपदी ने सलज्ज भावसे धीरे २ वहांपर आय उनको अभिवादन किया ॥ ५ ॥ सात्यकिभी पार्थ आदि से उसी प्रकार पूजित और वंदितहो आसन पर बैठे और दूसरे मनुष्य भी भलीप्रकार से पूजितहो यथा योग्य आसनों पर विराजे ॥ ६ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजी ने कुन्ती के निकट जाकर उनकोप्रणाम किया स्नेह से कुन्ती के नेत्रों में आंसूभरआये । उस ने इसी अवस्था में श्रीकृष्णजीका आलिंगन किया और उनसे अपने बांधवोंकी कुशलप्रश्नपूछी भगवान ने भी उस अपनी फुफी—और उनकी बहुओंकी कुशल पूछी ॥ ७ ॥ उन्होंने भक्तोंके क्लेश दूर करन के निमित्तही अवतार लियाहै । कुन्तीका प्रेमसे विह्वल होनेके कारण कण्ठ रुकगया और नेत्रों में आंसू भरआये वह अपने पूर्व क्लेशोंका स्मरणकर श्रीकृष्णजीसे कहनेलगी कि— ॥ ८ ॥ हेकृष्ण ! तुमने जब अपनी जाति-वाले हमारा स्मरणकर हमारे भाई अक्रूर को भेजाथा हम तभी सनाथ होचुके, ॥ ९ ॥ तुम जगतके बन्धु और आत्माहो अतएव अपने और पराये का आपमें कुछ विचार नहीं है तौभी जो निरन्तर तुम्हारा स्मरण करताहै तुम उसके मानसिक क्लेशोंको नष्ट करते रहतेहो ॥ १० ॥ युधिष्ठिरने कहा कि—हेअधीश्वर ! नहीं जानते कि—हमने क्या ऐसा पुण्य कियाथा कि जो अपने योगियों को भी दुर्लभहो विषयासक्त चित्तवाले हमें दर्शनदिया ॥ ११ ॥ भगवान इसप्रकार राजा युधिष्ठिरसे सन्मानितहो बर्षामें कई महीने वहां निवासकर वहांके निवासियोंका नेत्रोंका आनंद देतेहुए सुखसे रहे ॥ १२ ॥ इतनेमें एकसमय बीर अर्जुनने कपिध्वज रथपर बैठ दो अक्षय तूण और गांडीव धनुर्दल कवच धारणकर सखा श्रीकृष्णजी के संग बिहार करनेकी इच्छासे बहुतसे हिंसक प्राणियोंके सुन्दर बनमें प्रबेशकिया ॥ १३—१४ ॥ वहां बाणोंसे ब्याघ्र शूकर भैंसा रुरु शरभ, गवय (रोज) गैंडे, हरिण, और स्याही आदिको मारनलगे ॥ १५ ॥ सेवक यज्ञीय पशुओं को राजाके समीप लानेलगे । इधर श्रीकृष्णजी और अर्जुन श्रमित और प्याससेही यमुना के तटपर आए ॥१६॥ उस स्थानमें महाबीर कृष्ण और अर्जुनने हाथ पांव धोय निर्मल जलकापान

चारुदर्शनाम् ॥ २७ ॥ तामासाद्यवरारोहां सुद्विजांरुचिराननाम् । पप्रच्छप्रेषितः सख्या फाल्गुनःप्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ कात्वंकस्यासिसुश्रोणि कुतोऽसि किंचिकीर्षसि । मन्येत्वांपतिमिच्छन्तीं सर्वंकथयशोभने ॥ १९ ॥ कालिन्द्युवाच । अहंदेवस्यसवितुर्दुहिता पतिमिच्छती । विष्णुंवरेण्यं वरदंतपःपरममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यंपतिंवृणवीर तमृतेश्रीनिकेतनम् । तुष्यतांमेसभगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः २१॥ कालिन्दीतिसमाख्याता वसामियमुनाजले । निर्मितेभवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥२२॥ तथाऽवदद्गुडाकेशो.वासुदेवाय सोऽपिताम् । रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैवकृष्ण संदिष्टः पार्थानांपरमाद्भुतम् । कारयामासनगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया । अग्नयेखाण्डवंदातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्श्वेतान्रथंनृप । अर्जुनायाक्षयौतूणौ वर्मचाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्चमोचितोवह्नेः सभांसख्यउपाहरत् । यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ सतेनसमनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः । आययौद्वारकांभूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ ॥ २८ ॥ अथापयेमकालिन्दींसुपुण्यर्त्वृक्षऊर्जिते । वितन्वन्परमानन्दंस्वानांपरममङ्गलम् ॥ २९ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौदुर्योधनवशानुगौ । स्वयंवरेस्वभगिनींकृष्णेसक्तांन्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयांमित्रविन्दांपितृष्वसुः । प्रसह्यहृतवान्कृष्णोराजन्राज्ञांप्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नामकौसल्यआसीद्राजातिधा

कर वहां एक सुन्दर स्त्री का भ्रमण करतेदेखा ॥ १७ ॥ अर्जुनने श्रीकृष्णजी के कहनेके अनुसारउस रूपवती सुन्दर दांतोंवाली सुमुखीसे पूछा कि ॥ १८ ॥ हेसुश्रोणि ! तुम कौनहो किसकी स्त्रीहो किसकामना से यहां भ्रमण करतीहो, ? हेसुन्दरि ! जान पड़ता है कि-—तुम अभी क्वांरीहो और तुम्हें पतिकी इच्छाहै ॥ १९ ॥ कालिंदी ने कहा कि—मैं भगवान सूर्यकी कन्याहूं सबको वरदेनेवालों में सर्वोत्तम विष्णु मेरेपति होवें इसकारण यहां कठोर तपस्या करती हूं॥२०॥ हे वीर ! मैं श्रीपति के अतिरिक्त और किसीको अपना स्वामी नहीं बनाना चाहती ; अनाथों के नाथ भगवान मेरेऊपर प्रसन्नहोवें ॥ २१ ॥ मैं कालिंदी के नामसे विख्यात हूं , मेरे पिताने यमुना जलके बीचमें एकघर बनवादिया है जबतक कि भगवानके दर्शन न होंगे मैं इसही घरमें रहूंगी॥ ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी तो प्रथमहीसे इसवृत्तान्तको जानते थे इससमय अर्जुन से समस्त वृत्तांतको जान सखासमेत उसकन्याको रथपर बिठाय युधिष्ठिरके निकटआये ॥२३॥ महाराज ! इसके अनन्तर अर्जुनके कहने से श्रीकृष्णजी ने विश्वकर्मा द्वारा एक विचित्रनगर बनवाया ॥ २४ ॥ उस नगर में बन्धुओं के प्रसन्न रखने की इच्छासे भगवान वहांपर रहे और अग्निको खांडववन जलाने के निमित अर्जुनके सारथी हुए ॥२५॥ अग्निने संतुष्टहोकर धनुष, श्वेत घोडे दो अक्षयतूण, और अभेद्य कवच अर्जुनको दिया ॥ २६ ॥ वहां अग्नि से अर्जुन ने मयदानवको बचाया, मयदानवने अग्निसे बचकर सखाको एक अपूर्व सभा बनादी कि उस सभाको देखकर दुर्योधनको जलमें थलका और थलमें जलका भ्रमहुआथा ॥ २७ ॥ अनन्तर वर्षा के बीतजानेपर श्रीकृष्णजी पाण्डवोंसे आज्ञाले व बंधुओंकी सम्मतिसे सात्यकि आदि यादवोंके साथद्वारकाआये २८॥ वहां बन्धुओं को आनन्दित करतेहुए पुण्यऋतु और पुण्य नक्षत्रयुक्त लग्न में कालिंदी से विवाह किया ॥ २९ ॥ हेराजन् ! विंद और अनुविंद नामक दो अवंती के राजा दुर्योधन के वशवर्त्ती थे । उनकी बहिन मित्रविंदा ने स्वयंवर में श्रीकृष्णजी को बरमाला देनाचाहतीथी किंतु उस के भाइयों ने उसको निवारण किया ॥ ३० ॥ इस से श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं के सामने फूफी राजाधि देवी की पुत्री मित्रविंदाका बलपूर्वक हरणकिया ॥ ३१ ॥ हेराजन् ! कौशलदेश में एक

र्मिकः । तस्यसत्याऽभवत्कन्यादेवीनाग्नजितीनृप ॥ ३२ ॥ नतांशेकुर्नृपा वोढुम जित्वासप्तगोवृषान् । तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीरगन्धासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तांश्रुत्वावृषजिल्लभ्यांभगवान्सात्वतांपतिः । जगामकौसल्यपुरंसैन्येनमहतावृतः॥३४॥ सकोसलपतिःप्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः । अर्हणनापिगुरुणाऽपूजयन्प्रतिनन्दित ॥ ३५॥ वरंविलोक्याभिमतंसमागतंनरेन्द्रकन्याचकमेरमापतिम् । भूयादयंमेपतिराशिषोऽमलाः करोतुसत्यायदिमेधृतोव्रतैः ॥ ३६ ॥ यत्पादपङ्कजरजः शिरसाबिभर्तिश्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः । लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः कालेदधत्सभगवान्ममकेनतुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितंपुनरित्याहनारायणजगत्पते । आत्मानन्देनपूर्णस्यकरवाणिकिमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाहभगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः । मेघगम्भीरयावाचासस्मितंकुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेन्द्रयाच्ञाकविभिर्विगर्हितारराजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः । तथापियाचेतवसौहृदेच्छयाकन्यांत्वदीयांनहिशुल्कदावयम् ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिकोनाथकन्यावरइहेप्सितः ।गुणैकधाम्नोयस्याङ्गेश्रीर्वसत्यनपायिनी॥४१॥ किंत्वस्माभिः कृतः पूर्वंसमयः सात्वतर्षभ । पुंसांवीर्यपरीक्षार्थंकन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥ सप्तैतेगोवृषावीरदुर्दान्तादुरवग्रहाः । एतैर्भग्नाः सुबहवोभिन्नगात्रानृपात्मजाः ॥ ४३ ॥ यदिमेनिगृहीताः स्युस्त्वयैवयदुनन्दन । वरोभवानभिमतोदुहितु

नग्नजित नामक धार्मिक राजाथा; उसके सत्यानामक एक रूपवती पुत्रीथी । पिता के नाम के अनुसार उसका दूसरानाम नग्नजितीथा ॥ ३२॥ राजा ने प्रण कियाथा कि जो कोई तीक्ष्णसींग वाले, अतिदुर्धर्ष, वीरों की गन्ध का सहन न करनेवाले और दुष्ट सातसाँडों को जीते वही मेरी पुत्री से व्याह करसकेगा बहुत से राजा इस प्रण को सुनकर वहां आये परन्तु हारर कर लौट गये ॥ ३३ ॥ इस समाचार को सुनकर श्रीकृष्णजी भी बहुतसी सेना के साथ कौशलदेशमें आये ॥ ३४ ॥ कौशलपति स्नेहपूर्वक उठकर आसनदे श्रेष्ठ अर्घ्यद्वारा उनकी पूजाकर परम आनन्दित हुआ ॥ ३५ ॥ राजा की कन्या सत्या ने अपने इच्छितबर को आया देख उन्हीं रमापतिसे अपने व्याह होने की इच्छाकर कहनेलगी कि–"यदि मैंने व्रतधारण किया है तो हे अग्नि देव ! मुझे यह आशीर्वाददो कि-यही मेरे पतिहोवें ॥ ३६ ॥ नारायण की पूजाकरके राजा उनसे कहनेलगा कि—हेनारायण ! हे जगत्पते ! आप आत्मानन्दसे पूर्णहो, मैं क्षुद्र आपका कौन कार्य करसकता हूं ? लक्ष्मी, ब्रह्मा, महादेव और लोकपालगण जिनके चरणकमलकी रजको अपने शिरमें धारण करते हैं जो अपनी बनाईहुई मर्यादा के पालने के निमित्त समय समय पर लीला देह धारणकरते हैं वह आप मुझपर किसप्रकार से सन्तुष्टहोंगे ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे कुरुनन्दन ! भगवान कृष्णजी आसन पर बैठकर मेघ की समान गम्भीरवाणी से कौशलराज से कहने लगे कि—॥ ३९ ॥ हे राजन् ! पण्डितजन कहते हैं स्वधर्मवर्त्ती क्षत्रियों को याचना करना बहुतही बुरा है, परन्तु तौभी आप के साथ सम्बन्ध करने की इच्छासे आपकी पुत्री को मांगताहूं परन्तु मैं शुल्क न दूंगा ॥ ४० ॥ राजा ने कहा कि–हे नाथ ! आप गुणों के एकमात्र आधारहो, आप के अंग में लक्ष्मी सदैव निवास करती है; अतएव हे प्रभो ! आप से अधिक उत्तम और कौन कन्या का बर होसकता है ? ॥ ४१ ॥ किंतु हेयदुश्रेष्ठ ! कन्या के योग्यवरपाने के निमित्त राजाओं की परीक्षा के कारण मैंने प्रथमही एक प्रतिज्ञाकी है ॥ ४२ ॥ हेवीर ! जो इन अशिक्षित और दूसरे के पकड़ने में न आवें ऐसे सातसांड़ों को जीते वही कन्या को वर सकता है यह बातसुन बहुत से राजकुमार क्षत्रिय यहांपर आये और अपने अंग तुड़ाकर चले गये ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन ! हे श्रीपते ! यदि आपसेही यह पराजित होवें तो आपही मेरी पुत्री

मेश्रियः पते ॥ ४४ ॥ एवंसमयमाकर्ण्यबद्ध्वापरिकरंप्रभुः । आत्मानंसप्तधाकृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैवतान् ॥४५॥ बद्ध्वातान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान्हतौजसः । व्यकर्ष लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततःप्रीतःसुतांराजा ददौकृष्णायविस्मितः । तांप्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशींप्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णंलब्ध्वाप्रियंपतिम् । लेभिरेपरमानन्दं जातश्चपरमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शंखभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः । नरानार्यःप्रमुदिताः सुवाससःस्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः । युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् । ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणिनागाच्छतगुणान्रथान् । रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥५१॥ दम्पतीरथमारोप्य महत्यासेनयावृतौ । स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामासकोसलः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तंपथिकन्यकाम् । भग्नवीर्याःसुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैःपुरा ॥ ५३ ॥ तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः । गाण्डीवी कालयामास सिंहःक्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया । रेमेयदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेःसुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः । कैकेयींभ्रातृभिर्दत्तां कृष्णःसंतर्दनादिभिः ॥५६॥ सुतांच मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् । स्वयंवरेजहारैकःस सुपर्णःसुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधाभार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः । भौमंहत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

इयि श्रीमद्भा० महा० द० उ० नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

के योग्य वर होसकते हैं ॥ ४४ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी ने इसबात को सुनकर कवचधारणकिया और अपने शरीर के सातस्वरूप धारणकर सहजही में उनको पराजित करदिया ॥ ४५ ॥बालक जैसे खेलत २ काठके बैलों को बांधकर खींचते हैं भगवान तैसेही उनको सहजही में रस्सी से बांधकर तेजरहित और अभिमान रहित करके खींचनेलगे ॥ ४६॥यह देख कौशलपति ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी को अपनी कन्यादी ।अपनी योग्य उस कन्या से श्रीकृष्णजी ने विधिवतपाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजरानियें कन्या के प्रियपति श्रीकृष्णजी को पाय आनन्द से प्रफुल्लितहुई, राजभवन में उत्सव की सीमा न रही ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी और नगाड़े बजने लगे, वस्त्र और माला आदि से अलंकृत स्त्री पुरुष गान और आशीर्वाद करनेलगे ॥ ४९ ॥ राजा–सुन्दर वेश वाली आभूषणों से विभूषित तीन सहस्र दासियें, दशसहस्रगौएं, नवसहस्रहाथी, नवलाख रथ,नव कोटि अश्व और नवअर्ब्ब दान दहेज में देकर परमआनन्दितहुआ ॥ ५० । ५१ ॥ बहुत सेना से घिरेहुए वर कन्या को रथपर बिठाय कौशलपति ने स्नेह से आर्द्र हृदयहो बिदाकिया ॥५२॥यादव और सांड़ों से जिन राजाओं का पराक्रम भंग होगयाथा वे इससब वृत्तांत को सुनकर अत्यन्त क्रोधितहो मार्ग में आय श्रीकृष्णजी को रोकलिया ॥ ५३ ॥ वह सब बाणों का प्रहार करनेलगे तब शुभ चाहनेवाले अर्जुन ने सिंह जैसे छोटे पशुओं को मारता है वैसेही उनसबको मारडाला ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णजी सब बिवाह की सामग्रीले सत्या के साथ द्वारका में आय बिहार करनेलगे ॥ ५५ ॥ इसके उपरांत भगवान ने अपनी फुफी श्रुतकीर्त्तिकी पुत्री सन्तर्दन आदि भाइयोंके देने पर केकय देशमें उत्पन्नहुई भद्राका पाणिग्रहण किया ॥ ५६ ॥ और गरुड़ ने जैसे अकेलेहीअमृत का हरण कियाथा वैसेही सुलक्षणा मद्रराज की पुत्री लक्ष्मणाका हरण स्वयंवरमें उपस्थितहोकर किया ॥५७॥ हेराजन् ! ऐसेही श्रीकृष्णजी के और भी सहस्रों स्त्रियांथीं। वह भूमिपुत्र नरककोमार उसके अन्तःपुर से सुन्दरमुखवाली स्त्रियों को लेआयेथे ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांअष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

राजोवाच । यथाहतोभगवताभौमो येनचताःस्त्रियः । निरुद्धाएतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥ श्रीशुकउवाच । इन्द्रेणहृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना । हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितोभौमचेष्टितम् ॥ २ ॥ सभार्योगरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ । गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् । मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैःसर्वतआवृतम् ॥ ३ ॥ गदयानिर्बिभेदाद्रीञ्छस्त्रदुर्गाणि सायकैः । चक्रेणाग्निंजलंवायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शंखनादेनयन्त्राणि हृदयानिमनस्विनाम् । प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥५॥ पांचजन्यध्वनिंश्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् । मुरः शयानउत्तस्थौ दैत्यःपंचशिराजलात् ॥ ६ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः । ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पंचभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः । ॥ ७ ॥ आविध्यशूलंतरसागरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्सपंचभिः । सरोदसीसर्वदिशोम्बरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥ तदापतद्वैत्रिशिखंगरुत्मतेहरिःशराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषुतंचापिशरैरताडयत्तस्मै गदांसोपिरुषाव्यमुंचत ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं गदयागदांमृधे गदाग्रजोनिर्बिभिदे सहस्रधा । उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितःशिरांसि चक्रेणजहारलीलया॥ १० ॥ व्यसुःपपाताम्भसिकृत्तशीर्षो निकृत्तशृंगोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।।तस्यात्मजाःसप्त पितुर्वधातुराःप्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोऽन्तरिक्षःश्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुण-

राजा परीक्षित ने कहा कि—हेब्रह्मन् ! भौम ने स्त्रियों को क्यों बन्दकररक्खाथा ? वह भौम किसकारण भगवान के हाथ से मारागया ? आप श्रीकृष्णजी के इसपराक्रम का वर्णन करो ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भौम ने इंद्र की माता अदिति के दोनों कुण्डल और इंद्रकाछत्र छीनकर उनको इन्द्रपुरी से भगादिया तब इंद्र ने आकर उसके अत्याचार का भलीप्रकारसेवर्णन किया । श्रीकृष्णजी इस वृत्तांतको सुन सत्यभामा को साथले प्राग्ज्योतिष नगर को आये ॥ २ ॥ वह नगर गिरिदुर्ग और शस्त्रदुर्ग से अत्यन्त दृढ़था और वह चारोंओर जल, बायु और अग्निके होने से अत्यन्त दुर्गमथा । वह मुरदैत्य के दशसहस्र अतिप्रचण्ड पाशों से सबओर से घिरकर रक्षितहोरहाथा । भगवान श्रीकृष्णजीने गदाके प्रहार से गिरिदुर्ग, बाणद्वारा शस्त्रदुर्ग, चक्रद्वारा अग्नि, जल और बायुदुर्ग, खड्गद्वारा मुरदैत्य के सम्पूर्ण पाशोंको, शंखनादद्वारा से शूरवीरों के हृदयको और भारी गदाके प्रहार से गढ़को तोड़डाला ॥ ३ ।.५ ॥ जलकी शय्या में सोता हुआ पांचशिरवाला मुरदैत्य प्रलयकाल के बज्रकी समान पांचजन्यशंख का शब्द सुनकर जलसे उठखड़ा हुआ ॥ ६ ॥ वह प्रलय कालके सूर्य और अग्निकी समान उग्रमूर्त्ति धारण कर, त्रिशूलको उठाय सर्प जैसे गरुड़के सन्मुख दौड़ताहै वैसेही पांचो मुखोंको फैलाय मानो त्रिलोकीको निगलजायगा ऐसे श्रीकृष्णजी के सामने दौड़ा और शूलको उठाय अतिवेग से गरुड़पर प्रहारकर पांचो मुखों से घोरशब्द करने लगा । वह शब्द आकाश मंडल, स्वर्ग और दिशाओं में परिपूर्णहो ब्रह्मांडको पार करगया ॥७–८॥ उसके फेंकेहुए शूलको गरुड़पर आता देख श्रीकृष्णजी ने अपनी निपुणता से उस शूलके तीन टुकड़े करडाले और उस दैत्यका मुखबाणों से भरादिया । फिरउस दैत्य नेभी श्रीकृष्णजी पर गदाका प्रहार किया ॥ ९ ॥ उस गदाको आतादेख भगवान् ने युद्ध स्थलमें अपनी गदाके प्रहार से उसके सहस्र खंडकरडाले । तदुपरांत दैत्य भुजा उठाय श्रीकृष्णजी पर दौड़ा । तब अजित श्रीकृष्णजी नेसहज सेही चक्र द्वारा लीलासेही उसके शिरकाट गिराये ॥ १० ॥ मुर शिरकटने से प्राणरहितहो, इन्द्रके बज्रसे टूटीहुई शिखाओं के पर्वतकी समान जल में गिरपड़ा । तब उसके सातपुत्र ताम्र, अन्तरीक्ष, श्रवण, विभावसु, बसु, नभस्वान और अरुण

श्रुत्तमः । पीठंपुरस्कृत्यचमूपतिंमृधे भौमप्रयुक्तानिरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुञ्जतासाद्यशरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः । तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्तह ॥१३॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः । स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥ १४ ॥ निरीक्ष्यदुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् । दृष्ट्वा सभार्यंगरुडोपरिस्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनंयथा । कृष्णंसतस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्चसर्वे युगपत्स्मविव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यंभगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैःशिलीमुखैः । निकृत्तबाहूरुशिरोंघ्रिविग्रहं चकार तर्ह्येवहताश्वकुंजरम् ॥ १६ ॥ यानियोधैःप्रयुक्तानिशस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह । हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैःशरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानःसुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नतागजान् । गरुत्मताहन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्ता नरकोयुध्ययुध्यत । दृष्ट्वा विद्रावितंसैन्यं गरुडेनार्दितंस्वकम् ॥ १९ ॥ तंभौमःप्राहरच्छक्त्या वज्रःप्रतिहतोयतः । नाकम्पततयाविद्धो मालाहतइवद्विपः ॥ २० ॥ शूलंभौमोऽच्युतंहन्तुमाददे वितथोद्यमः । तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्यशिरोहरिः । अपाहरद्गजस्थस्यचक्रेणक्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुण्डलंचारुकिरीटभूषणं बभौपृथिव्यां पतितंसमुज्ज्वलत् । हा

भौमकी आज्ञानुसार अस्त्र धारणकर अपने पिताके मारने वालेको मारने के निमित्त उत्साहितहो उठे और पीठनामक एक असुरको सेनापति बना रणभूमि में आ ॥ ११–१२ ॥ ये बड़े भयानक दैत्य श्रीकृष्णजी पर एक साथही बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और शूलकी वर्षा करने लगे। अमोघ पराक्रम वाले भगवान ने उन अस्त्रोंको अपने बाणों द्वारा तिल तिल करडाला ॥ १३ ॥ और मुरके पुत्रोंके शिर, भुजा, कंधे, चरण और कवच काट २ उनके सेनापति पीठ समेत उन्हें यमालय में भेजदिया । पृथ्वीसुत नरक भगवान के चक्र और बाणों द्वारा अपने सेनापतिको इस प्रकार से मरता देख अत्यंत क्रोधित हुआ और समुद्र से उत्पन्न हुए मदस्रावी हाथीपर चढ श्री कृष्णजीपर उसने आक्रमण किया अनंतर नरकने सूर्यके ऊपरी भागमें बिजली समेत मेघकी समान सत्यभामा के साथ गरुड़पर बैठेहुए श्रीकृष्णजीको देखकर उनपर शतघ्नीका प्रहार किया ॥१४–१५ ॥ फिरसब योद्धाभी एकही समय नाना अस्त्रोंका प्रहार करने लगे । भगवान श्रीकृष्णजी ने तत्कालही विचित्र पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंद्वारा भौमकी सेनाके घोडे और हाथियोंको मार किसी के भुज, किसी के साथल, किसी के मस्तक, किसी के कंधे और किसी के शरीरको काटडाला ॥१६॥ हे कुरु धुरन्धर ! योद्धाओं ने जिनबाणों का प्रहार किया था उन सब शरोंके आनेके पहिलेही भगवान ने उस सब सेनाका नाशकर तीन २ तीक्ष्ण शरों से एक २ करके उन सब अस्त्रों शस्त्रों को काटडाला ॥ १७ ॥ गरुड़पर श्रीकृष्णजी बैठेहुए थे; वह भी दोनो पंखों से हाथियोंका नाश करने लगा । जब गरुड़ ने चोंच, पंख और नखों से वध करनेका आरंभ किया तब हाथी कातर होकर नगर में भागगये ॥ १८ ॥ नरक युद्धस्थलमें अकेलाही युद्ध करने लगा । उसने गरुड़ से अपनी सेनाको नाश होता देख गरुडपर शक्तिका प्रहार किया । किंतु जिस के अंगसे लगकर बज्र भी कुंठित हुआथा वही गरुड उस शक्ति से आहतहो फूलसे मारे हुए हाथी की समान अटल खडा रहा ॥ १९–२० ॥ तब भौमासुर ने श्रीकृष्णजी को मारने के अभिप्राय से शूल ग्रहणकिया, किंतु सफल न हुआ क्योंकि शूल के प्रहार करनेके पूर्वही भगवान ने छुरेकी धार की समानवाले चक्र से हाथी पर बैठेहुए नरक का शिर काटडाला ॥ २१ ॥ कुण्डलयुक्त मनोहरमस्तक पृथ्वी पर गिरकर शोभा पानेलगा । ऋषिगण और देवता

इतिसाध्वित्यृषयःसुरेश्वराः माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्तईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्चभूःकृष्ण मुपेत्यकुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे। सवैजयन्त्या वनमालयाऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथोमहामणिम् ॥२३॥ अस्तौषीदथविश्वेशं देवीदेववरार्चितम्। प्रांजलिः प्रणताराजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच। नमस्तेदेवदेवेश शंखचक्र गदाधर। भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तुते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवतेतुभ्यंवासुदेवायविष्णवे। पुरुषायादिबीजायपूर्णबोधायतेनमः ॥ २७ ॥ अजायजनयित्रेऽस्यब्रह्मणेऽनन्तशक्तये। परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तुते ॥ ॥२८॥त्वंवैसिसृक्षूरजउत्कटंप्रभोतमोनिरोधायविभर्ष्यसंवृतः। स्थानायसत्त्वंजगतो जगत्पतेकालः प्रधानंपुरुषोभवान्परः ॥ २९ ॥ अहंपयोज्योतिरथानिलोनभोमात्राणिदेवामनइन्द्रिय णि। कर्तामहानित्यखिलंचराचरंत्वय्यद्वितीयेभगवन्नयंभ्रमः ॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयंतवपादपंकजंभीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः। तत्पालयैनं कुरुहस्तपंकजंशिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिभूम्याऽर्थितोवाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया। दत्वाऽभयंभौमगृहंप्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्रराजन्यकन्यानांषट्सहस्राधिकायुतम्। भौमाहतानांविक्रम्यराजभ्यो ददर्शहरिः ॥ ३३ ॥ तंप्रविष्टंस्त्रियोवीक्ष्यनरवीरंविमोहिताः। मनसावव्रिरेऽभीष्टं पतिंदैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयंमह्यंधातातदनुमोदताम्। इतिसर्वाः पृथ

हाहाकारकर 'साधु साधु' कह भगवान के ऊपर फूल बरसाने और स्तुति करनेलगे ॥ २२ ॥ अनन्तरपृथ्वीने वैजयन्ती वनमाला के साथ श्रीकृष्णजीको तप्तसुवर्णके रत्नजटित उज्वल दोकुण्डल वरुणकाछत्रवमणि और इन्द्रपुरी को समर्पण किया ॥ २३ ॥ फिर हाथजोड़ विनीतभाव से देव देव ब्रह्माकेभी पूजनीय भगवानकी स्तुति करनेलगी ॥ २४ ॥ पृथ्वी ने कहा कि—हे देवदेवईश्वर हे शंख चक्र गदाधर ! हे भक्तोंकी इच्छानुसाररूप धारणकरनेवाले ! हे अन्तर्यामिन ! आप को नमस्कार करतीहूं ॥ २५ ॥ हे कमलनाभ ! कमल लोचन ! कमल मालिन् ! कमल से चरणवाले आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हेभगवन् ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे पुरुष ! हे आदिबीज ! हे पूर्णबोध ! आप को नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप बृहत्हो, आपकी शक्ति अनन्त है अतएव आप जन्मरहित और सबके नियंताहो आप उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) अपकृष्ट (नीच) सबही के आत्माहो; आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! आप निर्लिप्तहोकरभी विश्व रचने की इच्छासे उत्कट रजोगुण, जगतके पालने की इच्छा से सत्वगुण और जगतके नाशकरने की इच्छा से तमोगुण धारणकरतेहो ॥ २९ ॥ हे जगत्पते ! आप से काल प्रकृति और पुरुष ये जुदेनहीं हैं। हेभगवन् आप अद्वितीयहो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इंद्रिय,और इंद्रियों के अधिष्ठातृदेवताओं द्वारा यह चराचर जगत् उत्पन्न होकर आप के अद्वितीय स्वरूप में भ्रमरूप से भासता है ॥ ३० ॥ हे शरणागतों के दुःखनाशक ! यह भौमकापुत्र भगदत्त भयभीतहोकर आपके चरणों की शरण में आया है; इसका पालन करिये, आप अपने कलिपाप नाशक हाथको इसके मस्तक पर धरो ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! भगवान इस प्रकार से नम्रहुई भूमिके वाक्यों द्वारा पूजितहो उसे अभयदान दे समस्त समृद्धियों युक्त भौमके घरमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! भौम राजाओं से अपने पराक्रम पूर्वक सोलह सहस्र कन्यायें छीन लायाथा, भगवान ने उन सबको अंतःपुरमें देखा ॥ ३३ ॥ वेसब कन्यायें उन्हें देखतेही 'मोहित होगई' और मनही मनमें दैव प्रेरित उन प्यारे पतिको वरणकर भगवान से प्रार्थना करने लगींकि ॥ ३४ ॥ हे विधाता !

कृ कृष्णेभावेनहृदयंदधुः ॥ ३५॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतींसुमृष्टविरजोऽम्बराः । नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणंमहत् ॥ ३६ ॥ ऐरावतकुलेभांश्चचतुर्दन्तांस्तरस्विनः । पाण्डुरांश्चचतुःषष्टिंप्रेषयामासकेशवः ॥ ३७॥ गत्वासुरेन्द्रभवनंदत्त्वाऽदित्यैचकुण्डले । पूजितस्त्रिदशेन्द्रेणसहेन्द्राण्याचसप्रियः॥३८॥चोदितोभार्ययोत्पाट्यपारिजातंगरुत्मति । आरोप्यसेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितःसत्यभामायागृहोद्यानोपशोभनः । अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥४०॥ ययाचआनम्यकिरीटकोटिभिः । पादौस्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् । सिद्धार्थएतेनविगृह्यतेमहानहोसुराणांचतमोधिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथोमुहूर्तएकस्मिन्नानागारेषुताःस्त्रियः । यथोपयेमेभगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषुतासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः । रेमेरमाभिर्निजकामसंप्लुतोयथेतरोगार्हकमेधिकांश्चरन् ॥४३॥ इत्थंरमापतिमवाप्यपतिंस्त्रियस्ताब्रह्मादयोऽपिनविदुः पदवींयदीयाम् । भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः॥४४॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशताअपिविभोर्विदधुः स्मदास्यम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धेउत्तरार्धे नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

आप स्वीकार करोकि यह श्रीकृष्णजीही महारे स्वामी होवें । भगवान से इस प्रकार की प्रार्थना कर सबने पृथक् २ प्रीति सहित श्रीकृष्णजी को हृदय में धारण किया ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी ने पालकी में उन सब स्त्रियोंको बिठाय द्वारका पुरीको भेजदिया; और बहुतसा द्रव्य, रथ, घोड़े, अतुल ऐश्वर्य, और शीघ्रगामी ऐरावत के कुलसे उत्पन्न हुए चार दांतवाले श्वेतरंग के हाथी भी भेजे और चौंसठ हाथी पाण्डवों के निकट भी भेजदिये ॥ ३६–३७ ॥ अनंतर प्यारा के संग इन्द्र भवनमें जाय अदितिको कुंडलदे इन्द्र और इन्द्राणी से पूजितहो सत्य भामाके कहने से कल्पवृक्ष को उखाड़ और गरुड़को पीठपर रख इन्द्रादि देवताओंको युद्धमें जीत अपनी राजधानी में आय ॥ ३८–३९॥ फिर सत्यभामा के बगीचे में शोभाहोने के निमित्त उस कल्पवृक्षको स्थापित किया। उसकी सुगंध के मदके लोभी भौंरे स्वर्ग से पीछे २ चलेआये ॥ ४० ॥ तदुपरान्त इन्द्र ने प्रथम अपने मुकुट के अग्रभाग से भगवान् के चरणोंका स्पर्शकर प्रणाम किया और अपनी कार्य्य सिद्धिके निमित्त भगवान से प्रार्थना की तथा कार्य्य सिद्धहोने पर भगवान से विरोध किया। अहो ! देवताओं बडा क्रोध आता है ॥ ४१ ॥ अनंतर भगवान ने जितनी स्त्रियें थीं उतनेही रूप धारणकर एकही समय में सबके घरोंमें प्रवेशकर उन सब स्त्रियों से बिवाह किया ॥ ४२ ॥ उनके घरमें उनकी अपेक्षा अधिक व समान कोई भी घर न था। अचिन्त्य कर्मोंके करने वाले अपने आनंद से परिपूर्ण श्रीकृष्णजी उन सब घरोंमें निरंतर बासकर गृहस्था बलंबी मनुष्यों की सामन काममें मग्नहो उन सब स्त्रियों के साथ रमण करनेलगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मादिक भी जिनकी गतिको नहीं जान सकते, सबस्त्रियें उन्हीं भगवानको पतिपाय प्रसन्न चित्तसे प्रेमसहित हास्य बिलास व अवलोकन तथा आनंद पूर्वक नवीन संगम, भाषण और लज्जा समेत भगवान का भजन करनेलगीं ॥४४॥ हे राजन्! उन प्रत्येक स्त्रियों के पास यद्यपि सैकडों दासियें थीं तौभी श्रीकृष्णजी के सामने जाना, आसनदेना, पूजनकरना, पांवधोना, चंदन फूल अर्पण करना, केश सुलझाना, निहलाना और भेंट आदिसे उनकी सेवा करती थीं ॥ ४५ ॥

इतिश्री मद्भा० महापुराणेदशमस्कंधेउ० सरलाभाषाटीकायांएकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिंचित्सुखमासीनंस्वतल्पस्थंजगद्गुरुम् । पतिंपर्यचरद्भैष्मीव्यजनेनसखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलयाविश्वंसृजत्यत्त्यवतीश्वरः । सहिजातस्वसेतूनांगोपीथाययदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नन्तर्गृहेभ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना । विराजितेवितानेनदीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते । जालरन्ध्रप्रविष्टैश्चगोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना । धूपैरगुरुजैराजञ्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभेशुभ्रेपर्यङ्केकशिपूत्तमे । उपतस्थेसुखासीनंजगतामीश्वरंपतिम् ॥ ६ ॥ वालव्यजनमादायरत्नदण्डंसखीकरात् । तेनवीजयतीदेवीउपासाञ्चक्रईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतंक्वणयतीमणिनूपुराभ्यांरेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता । वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोणहारभासानितम्बधृतयाचपरार्ध्यकाञ्च्या ॥ ८ ॥ तांरूपिणींश्रियमनन्यगतिंनिरीक्ष्ययालीलयाधृततनोरनुरूपरूपा । प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधांहरिराबभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिताभूपैर्लोकपालविभूतिभिः । महानुभावैः श्रीमद्भीरूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनोहित्वाचैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् । दत्ताभ्रात्रास्वपित्राचकस्मान्नोववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥ राजभ्योबिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रंशरणंगतान् । बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनांपुंसामलोकपथमीयुषाम् । आस्थिताः पदवींसुभ्रूः प्रा

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! एक समय श्रीकृष्णजी रुक्मिणी की शय्या में सुख से बैठेथे वह सखियों समेत पंखेसे जगद्गुरू भगवान् की सेवाकर रहीथी ॥ १ ॥ जोईश्वर सहजसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं वह जन्म रहित होकर भी अपनी मर्यादाकी रक्षा करने के निमित्त यदुकुल में उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ हे राजन् ! रुक्मिणी का अत्यंत सुंदरघर अनेकों मोतियों की मालासे शोभायमान व शोभित छत्त तथा मणिमय दीपकोंसे जगमगा रहाथा ॥ ३ ॥ मधु मल्लिका के फूलोंकी मालाओं पर भौंरोंका समूह गूंजरहा था, जालियों में होकर चन्द्रमाकी सुंदर किरणें प्रकाशित होरही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्ष के बनकी सुगंधिसे सुगंधित वायुआ रहाथा झरोखों में से अगर की धूपका धूम्र निकल रहाथा ॥ ५ ॥ सुंदर पलंगपर दूधके फेनकी सदृश श्वेत व कोमल बिछौना बिछाथा उस पर बैठेहुए श्रीकृष्णजी की रुक्मिणी सेवा कररहीथीं ॥ ६ ॥ रत्नोंकी डंडीवाली पंखी को सखी के हाथसे ले रुक्मिणी स्वयं श्रीकृष्णजी पर पवनकर रहीथी ॥ ७ ॥ रुक्मिणी जड़ाऊ नूपुरों के झनकार का शब्द करतीहुई शोभा देरहीथी वह अंगुरियों में मुंदरी पहुँचे में चूरी व कंकण धारण किये हाथ में पंखा लिये साड़ी से ढकेहुए स्तनों की केसर से रंगाहुआ हार पहिने कमरमें कटिमेंखला धारण कियेथीं ॥ ८ ॥ उनका रूप माया से देह धारणकरनेवाले श्रीकृष्णजीही के योग्यथा । अलकों, कुण्डलों औरचन्द्रहार से शोभितकंठ व शोभितमुख प्रसन्नित होरहाथा । श्रीकृष्णजी के अतिरिक्त जिसकी और कोई गति नहीं है भगवान उसी मूर्तिवान लक्ष्मी पर दृष्टिडाल कुछ एक हँसकर कहने लगे कि—॥ ९ ॥ हेराजपुत्रि! लोकपालों की समान बिभूतिशाली, महानुभाव, धनवान श्रीमान् और रूप, उदारता और बलयुक्त राजाओं ने तुम्हारी प्रार्थनाकीथी ॥ १० ॥ कामदेव से उन्मत्तहुआ शिशुपाल तुम्हारे पानेकीइच्छा से आयाथा; तुम्हारे भाई और पिताने भी तुम्हें उसको देदियाथा; तौभी तुम उन सबको छोड़ कर हमको कि जो तुम्हारे योग्य नहीं हैं क्यों बरलिया? ॥ ११ ॥ हे सुन्दर भौंहवाली ! हमने राजाओं से भयभीत होकर समुद्र की शरणली है;बलवानोंसे हमारीशत्रुता होहीरही है इसहीकारण हमने राज्यासन छोड़ दिया है ॥ १२ ॥ जिन मनुष्यों का आचार नहीं जानाजाता और जो स्त्रियों

यः सीदन्तियोषितः ॥ १३ ॥ निष्किञ्चनावयंशश्वान्निष्किञ्चनजनप्रियाः । तस्मात्प्रायेणनह्याढ्या मांभजन्तिसुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमंवित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः । तयोर्विवाहोमैत्रीच नोत्तमाधमयोःक्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया । वृतावयंगुणैर्हीना भिक्षुभिःश्लाघितामुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोनुरूपंवै भजस्वक्षत्रियर्षभम् । येनत्वमाशिषःसत्या इहामुत्रचलप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासन्ध दंतवक्त्रादयोनृपाः । ममद्विषन्तिवामोरु रुक्मीचापितवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषांवीर्यमदांधानां दृप्तानांस्मयनुत्तये । आनीतासिमयाभद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीनावयंनूनं नस्त्र्यपत्यार्थकामुकाः । आत्मलब्ध्याऽऽस्महेपूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एतावदुक्त्वाभगवानात्मानंवल्लभामिव । मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्नउपारमत् ॥ २१ ॥ इतिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्यदेव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् । आश्रुत्यभीताहृदिजातवेपथुश्चिन्तांदुरन्तां रुदतीजगामह ॥ २२ ॥ पदासुजातेननखारुणश्रिया भुवंलिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः । आसिञ्चतीकुंकुमरूषितौस्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्यासुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतोव्यजनंपपात । देहश्चविक्लवधियःसहसैवमुह्यन्रम्भेववायुविहताप्रविकीर्यकेशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वाभगवान्कृष्णः प्रियायाःप्रेमबन्धनम् । हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणःसोन्वकम्पत ॥ २५ ॥ पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्यचतुर्भुजः । केशान्समुह्यतद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥

के वश में नहीं होते स्त्रियें उनका अनुसरण करके दुःखही पाती रहती हैं ॥ १३ ॥ हम निष्किंचन हैं और निष्किंचनही मुझे प्यारे हैं । हे सुमध्यमे ! जिनका धन, जन्म, आकृति और ऐश्वर्य समान है उन्हीं का परस्पर विवाह और मित्रता होसकती है ॥ १४ ॥ उत्तम और अधम में कभीमित्रता व सम्बन्ध नहीं होसकता ॥ १५ ॥ हे विदर्भनन्दिनि ! तुम दूरदर्शिनी नहींहो; तुमने मेरा बिचार न करके मुझ गुणहीन को ब्याहलिया । भिक्षुकही मेरी प्रशंसा किया करते हैं ॥ १६ ॥ जिसके साथ रहकर तुम इसलोक और परलोक में सुख पासको अबभी ऐसे किसी श्रेष्ठक्षत्री का भजन करो ॥ १७ ॥ हे वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध और दन्तवक्त्रादि सबराजा और तुम्हारा भाई रुक्मी भी हम से शत्रुता किये रहता है ॥ १८ ॥ हे भद्रे ! जो मैं तुझे हरलायाहूं वह केवल अभिमानी राजाओं के गर्व दूर करने के निमित्तही हरलाया हूं ॥ १९ ॥ मैं देह और घर से उदासीनहूं, स्त्री पुत्र वा धन की कामना नहीं करता मैं तो आत्मलाभसेही परिपूर्ण और दीपादि ज्योति की समान क्रियारहितहूं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हेराजन् ! रुक्मिणी को श्रीकृष्ण जी के साथ से कभी भी बियोग न हुआथा इसकारण वह जानतीथीं कि श्रीकृष्णजी केवल मुझेही प्यार करते हैं । भगवान उसका अहंकार दूर करने के निमित्त उस से ऐसी बातें, कर चुपहोरहे ॥ २१ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी से ऐसे पहिले न सुनेहुए बचनों को सुनकर रुक्मिणीजी भय से भीतहो कांपने लगीं । वह अत्यन्त चिन्तितहो रोनेलगीं और नखकी अरुणकांति से शोभितचरणों से पृथ्वीको खोदने व काजल के संयोग से काले आंसुवोंद्वारा दोनों स्तनों को भिगोय नीचे को मुखकर खड़ी होगईं ॥ २२ । २३ ॥ दारुण व्यथाके कारण उसके मुखसे बचन न निकला और अत्यन्त दुःख, भय व शोकके कारण बुद्धि नाशहोगई; हाथ का कंकण ढीलापड़गया और पंखा गिरगया । परवशबुद्धिवाली रुक्मिणी का शरीर भी ज्ञानरहितहो बायु से गिरेहुए केले की समान गिरगया, सब केश बिखरगये ॥ २४ ॥ रुक्मिणी उपहास की गम्भीरता न जानसकीं; श्रीकृष्णजी प्यारी के उस प्रेमबन्धन को देख दयालुता के कारण दयासे द्रवीभूत होगये ॥ २५ ॥ आप ने तत्कालही पलँग पर से उतर चतुर्भुज रूप धारणकर रुक्मिणी को उठालिया और केशों को बांध

प्रमृज्याश्रुकलेनेत्रे स्तनौचोपहतौशुचा । आश्लिष्यबाहुनाराजन् ननन्यविषयांसती म् ॥ २७ ॥ सान्त्वयामाससान्त्वज्ञः कृपयाकृपणांप्रभुः । हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्ता मत दर्हांसतांगतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मामावैदर्भ्यसूयेथा जानेत्वांमत्पराय- णाम् । त्वद्वचःश्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमंगने ॥ २९ ॥ मुखंचप्रेमसंरम्भस्फुरिता धरमीक्षितुम् । कटाक्षपारुणापांगं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयंहिपरमोलाभो गृ हेषुगृहमेधिनाम् । यन्नर्मैर्नीयतेयामः प्रिययाभीरुभामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुकउवाच । सैवंभगवताराजन्वैदर्भी परिसान्त्विता । ज्ञात्वातत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयंजहौ ॥ ३२ ॥ बभाषऋषभंपुंसां वीक्षन्तीभगवन्मुखम् । सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच । नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाऽह यद्वैभवान्भग वतोऽसदृशीविभूम्नः । क्वस्वेमहिम्न्यभिरतोभगवांस्त्र्यधीशः क्वाहंगुणप्रकृ तिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यंभयादिवगुणेभ्यउरुक्रमान्तः शेतेसमुद्र उ- पलम्भनमात्रआत्मा । नित्यंकदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषांमुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशु भिर्ननु दुर्विभाव्यम् । यस्मा दलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनुयेभवन्तम् ॥ ३६ ॥ निष्किचनो ननु भवान्न यतोस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपिहरन्त्यजाद्याः । नत्वाविदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः प्रेष्ठोभ

उसके मुख को कमलहस्त से पोछनेलगे ॥ २६ ॥ हेराजन् ! सांत्वना करने में चतुर, साधुओं की गति भगवान देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी ने कृपापूर्वक रुक्मिणी के आंसुओं से व्याकुलहुएदोनों नेत्र और शोकसे मुरझायेहुए दोनों स्तनों को पोंछ अनन्य परायणा सतीका बाहुद्वारा आलिंगनकर उसकी सांत्वनाकी वह ऐसे गूढ़ परिहासके योग्य नथी अतएव इन श्रीकृष्णजी के वाक्योंसे उस की बुद्धि भ्रमित होगईथी ॥ २७ । २८ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हे विदर्भतनये ! मेरे ऊपर क्रोध न करना; मैं जानता हूं कि तुममेरे अतिरिक्त और किसी को नहीं जानतीं । हे सुंदरि ! तु- म्हारी बातों के सुनने की इच्छा से मैंने यह हंसी की थी ॥ २९ ॥ प्रेमके कोपसे फड़कता हुआ अधर, कटाक्ष युक्त रक्तवर्ण के नेत्र और चलती हुई भौंहों वाले मुखके देखने के निमित्तही मैंने इस प्रकार से कहाथा ॥ ३० ॥ हे भीरू ! हे भामिनि ! जोगृहस्थ गृहस्था श्रममें प्यारी के साथ हास्य परिहास से समय बिताता है वही धन्य है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! वि- दर्भ नंदिनी भगवान से इस प्रकार की सांत्वना पाय और यह जानकर कि यह सब परिहास से कहाहै संतुष्ट हुई और 'प्रियमुझे छोड देवेंगे' इस प्रकारका जोभय हुआथा वह त्यागदिया॥३२॥ हे भारत ! रुक्मिणी सलज्ज हास्ययुक्त सुंदर स्निग्ध कटाक्ष द्वारा भगवानका मुख देखकर कहने लगी कि ॥ ३३ ॥ हे कमल लोचन ! आपने जोकहा कि 'मैं तेरे समान नहीं हूं' यह सत्यही है क्योंकि कहांतो आपने स्वरूपानंदमें मग्न रहने वाले तथा ब्रह्मादि के स्वामी आप और कहां त्रिगुण स्वभाव वाली व मूढोंकी पूजनिया मैं ॥ ३४ ॥ हे विशाल विक्रम ! आप निरवच्छिन्न, ज्ञान घन आत्माहो, राजाओं के भयसे जोसमुद्र के भीतर बास करतेहो यहभी सत्य है, क्योंकि जो अजि- तेन्द्रिय हैं आप नित्यही उनसे विद्वेष करतेहो । राजपद घोर अज्ञान है, जब आपके सेवकही उस पदको त्यागते हैं तब आपकी तो बातही क्याकहें ॥ ३५ ॥ आपके चरण कमल के मकरंद सेवी मुनियों केही आचरण जानने में नहीं आते, फिर पशुकी समान् मनुष्य आपको कैसे जानसकते हैं । जोमनुष्य आपका अनुसरण करते हैं जब इन्हीं के चरित्र अलौकिक हैं तब हे भूमन् ! आपके चरित्र अलौकिक होने में क्या संदेह है ॥ ३६ ॥ जोब्रह्मादि दूसरों से पूजापाते रहते हैं वह भी

वान्बलिभुजामपितेऽपितुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वंवै समस्तपुरुषार्थमयःफलात्मा यद्वा-ञ्छयासुमतयोविसृजन्तिकृत्स्नम् । तेषांविभोसमुचितोभवतःसमाजः पुंसःस्त्रियाश्चरतयोःसुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥ त्वंन्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्चजगतामितिमेवृतोऽसि । हित्वाभवद्भ्रुवउदीरितकालवेग ध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यंवचस्तवगदाग्रजयस्तुभूपा न्विद्राव्यशार्ङ्गनिनदेनजहर्थमांत्वम् । सिंहोयथास्वबलिमीशपशून्स्वभागं तेभ्योभयाद्यदुदधिंशरणंप्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वाञ्छयानृपशिखामणयोऽङ्गवैन्य जायन्तनाहुषगयादयएेकपत्यम् । राज्यंविसृज्यविविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्तितेऽनुपदवींतइहास्थिताःकिम् ४१ काऽन्यंश्रयेततवपादसरोजगन्ध माघ्रायसन्मुखरितंजनताऽपवर्गम् । लक्ष्म्यालयंत्वविगणय्यगुणालयस्यमर्त्यासदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तंत्वानुरूपमभजंजगतामधीशमात्मानमत्रचपरत्रचकामपूरम् । स्यान्मेतवांघ्रिशरणंसृतिभिर्भ्रमन्त्यायोवैभजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३॥ तस्याः स्युरच्युतनृपाभवतोपदिष्टाः स्त्रीणांगृहेषुखरगोश्वबिडालभृत्याः । यत्कर्णमूलमरिकर्षणनोपयायाद्युष्मत्कथामृडविरिञ्चसभासुगीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमि

आपको पूजादेते हैं तब आप निष्किंचन नहींहो परन्तु एक प्रकार से होसकता है कि आपसे भिन्न दूसरा कुछ नहीं है इससे निष्किंचनहो । धनके मदसे अंध हुए मनुष्य आपको काल कहकर नहीं जानसकते क्योंकि वह इन्द्रियों कोही तृप्तकरते हैं परन्तु आपको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ बुद्धिमान मनुष्य जिनकी इच्छा करके सब छोडदेते हैं आप वही समस्त पुरुषार्थ और परमात्मा स्वरूपहो । हे विभो ! पूर्वोक्त ब्रह्मादि के साथही आपका संबंध होना योग्य है स्त्री पुरुषका हमारा संबंध आप के योग्य नहीं है कारण कि हमतो सख दुःख से व्याकुल हैं ॥ ३८ ॥ दंडके त्यागने वाले मुनि-गणही आपके अनुभावको जानते हैं, 'आप जगतके आत्मा और आत्म प्रदहो' यह जानकर ब्रह्मादि कोभी छोडकर मैंन आपसे विवाह किया है । आपकी दोनों भौंहोंके बीचसे जिसकाल की उत्पत्ति हुई है, उसी से उन ब्रह्मादि के कल्याण का नाशहोता है अतएव दूसरे की और क्या वातकहूं ॥ ३९ ॥ हेगदाग्रज ! सिंह जैसे गर्जन शब्द से पशुपालको भगाय अपने आहारको ग्रहण करता है आपने वैसेही धनुषकी टङ्कारसे राजाओंको भगाय अपने अंशका अर्थात् मेराहरण किया था, उन्हीं आपने राजाओंके भयसे समुद्रकी शरणली है यह आपका कहना कैसे संभव होसकता है ॥४०॥ हे पद्मनेत्र ! अंग, पृथु, भरत, ययाति और गयआदि श्रेष्ठराजाओं ने भजन करनेकी इच्छासे अपने चक्रवर्ती राज्यको छोड़ आपकी पदवी का आश्रय करने के निमित्त वनमें प्रवेशकर कितना कष्ट पायाथा ? आप गुणोंके आश्रयरूपहो आपके चरणकमलकी गन्ध लक्ष्मीकी सेव्य, साधुओं से वर्णित, और भक्तों के मोक्षदायक है उस गन्धको सूंघकर, जो अपने प्रयोजन को जानती है ऐसी कौनसी स्त्री मरणशील निरन्तर अधिकभयसे भीत दूसरेका आश्रय ग्रहणकरेगी ? ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ आप जगतके अधीश्वर और आत्मा व इसलोक और परलोककी इच्छाको पूर्ण करने वाले हो; मैंने एसा बिचारकरही आपको बरण कियाथा । मैं प्रार्थना करती हूं कि—मे देव पशु आदि चाहें जिस योनि में भ्रमणकियाकरूं परन्तु आपके चरण कमलकी शरणागतरहूं । जो आप की सेवा करते हैं आप उसको अपना करलेते हैं और आपसेही उसके संसारका अंत होता है ॥ ॥ ४३ ॥हेअच्युत ! हेशत्रुनाशन ! आपके चरित्रजो ब्रह्मा, महादेवकी सभा में भलीभांति से गाये जाते हैं वह चरित्र जिस मन्द भागिनी के कर्ण छिद्रों में नहीं गये,—स्त्रियोंके घरमें गधा, गौ, कुत्ता, बिडाल और सेवककी समान आचरणवाले नीच राजाही उसके पति होवें ॥ ४४ ॥ आप के चरणारविंद के मकरन्दको जिस मूर्खा स्त्री ने नहीं सूंघा वही " यह मेरा पति है " ऐसा त्रि-

विट्कफपित्तवातम् । जीवच्छवंभजतिकान्तमतिर्विमूढायातेपदाब्जमकरन्दमजिघ्रतीस्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वम्बुजाक्षममतेचरणानुरागआत्मन्रतस्यमयिचानतिरिक्तदृष्टेः । यर्ह्यस्यवृद्धयउपात्तरजोऽतिमात्रोमामीक्षसेतदुहनः परमाऽनुकम्पा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहंमन्येवचस्तेमधुसूदन । अम्बाया इवहिप्रायः कन्यायाः स्याद्रतिःक्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापिपुंश्चल्यामनोऽभ्येतिनवंनवम् । बुधोऽसतींनबिभृयात्तांबिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वंराजपुत्रिप्रलम्भिता । मयोदितंयदन्वात्थसर्वंतत्सत्यमेवहि ॥ ४९ ॥ यान्यान्कामयसेकामान्मय्यकामायभामिनि । सन्तिह्येकान्तभक्तायास्तवकल्याणिनित्यदा ॥ ५० ॥ उपलब्धंपतिप्रेमपातिव्रत्यंचतेऽनघे । यद्वाक्यैश्चाल्यमानायानधीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ येमांभजन्तिदाम्पत्येतपसाव्रतचर्यया । कामात्मानोऽपवर्गेशंमोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मांप्राप्यमानिन्यपवर्गसंपदंवाञ्छन्तियेसंपदएवतत्पतिम् । तेमन्दभाग्यानिरयेपियेनृणांमात्रात्मकत्वान्निरयःसुसंगमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्यागृहेश्वर्यसकृन्मयित्वयाकृतानुवृत्तिर्भवमोचनीखलैः । सुदुष्कराऽसौसुतरांदुराशिषोह्यसुम्भरायानिकृतिंजुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ नत्वादृशींप्रणयिनींगृहिणींगृहेषुपश्यामिमानिनिययास्वविवाहकाले

चारकर ऊपर से चमड़ा, डाढ़ी, मूंछ, रोम, नख और केशों से घिरेहुए और भीतर से मांस, अस्थि, रक्त, कृमि, विष्ठा, कफ, पित्त और बात से परिपूर्ण जीवित शवकी सेवाकरती है ॥ ४५ ॥ यद्यपि आपको किसीकी अपेक्षा नहींहै और मुझपरभी आपकी अधिक दृष्टि नहीं है तौभी हे कमलनयन ! आपकेही चरणकमलों में मेरा प्रेम होवे । आपजो इस जगत की वृद्धिके निमित्त श्रेष्ठरजोगुण धारणकर मुझपर कटाक्ष करतेहो मैं उसकोही बड़ाभारी अनुग्रह मानतीहूं ॥ ४३ ॥ हेमधुसूदन ! आपने जो कहा कि—' किसी दूसरे श्रेष्ठ क्षत्री का बरणकरले 'सो यह भी असत्यनहीं है क्योंकि जगत् में कोई २ स्त्री कुमारपनमेंही दूसरे पुरुषपर आसक्त होजाती हैं;—देखिये,—काशिराज की पुत्री अम्बा शाल्वराजापर आसक्त होगईथी ॥४७॥ व्याह होजाने परभी व्यभिचारिणी का मन नवीन २ मनुष्योंपर आसक्त होतारहता है । जो पण्डित हैं वह कभीभी खोटी से बिवाह नहीं करते और यदि करते हैं तो इसलोक और परलोक से पतित होते हैं ॥ ४८ ॥ भगवान ने कहा कि—हेसाध्वि ! हेराजपुत्रि ! यहसब सुननेके निमित्तही मैंने तुम्हारा उपहास कियाथा तुमने मेरे ऊपर जो कहा वह यथार्थ मेंही सत्य है ॥ ४९ ॥ हे कामिनि ! तेरी मुझ में एकांत भक्ति है मुक्ति और निर्वाण साधनके निमित्त जिस२बर को चाहती है वहसब तुझको सदैवही प्राप्तहोते रहेंगे ॥ ५० ॥ हे निष्पापे ! तू पति प्रेम और पातिव्रत्य धर्म को प्राप्तहुई है क्योंकि मैंने बातें कह२ कर तुझे क्रोध उत्पन्नकराया तौभी मुझसे तेरामन दूर न हुआ ॥ ५१ ॥ मैं मोक्षका अधीश्वरहूं, जो बिषयी मनुष्य तप और ब्रतधारणकरके दंपतिसम्बन्धी सुखभोग के निमित्त मेरा भजन करते हैं उन्हें मेरी मायासे मोहितहुआ जानना चाहिए ॥ ५२ ॥ हे मानिनि ! मुक्ति और सम्पत्ति मुझ में अवस्थित हैं,—मैं समस्त सम्पत्ति का अधीश्वरहूं;जो मुझको पाकरके मुझसे सम्पत्तिकी प्रार्थना करता है वह मन्दभाग्य है; सम्पत्ति तो नीचयोनि में भी प्राप्त होसकती है; बरन बिषयसुख में चित्त रहने से नरकही प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ हे गृहेश्वरि!तूने जो बारम्बार मेरी निष्काम सेवा की है यह अत्यन्तही मंगल का बिषय है । दूसरा मनुष्य इसप्रकारकी सेवा कभी नहीं करसकता विशेषकर जो दुष्टबुद्धि हैं वेतो केवल प्राणों के पोषणकरनेपरही तत्पर रहते हैं, तेरीसी सेवाकरना ठगोरी स्त्रियों के पक्षमें अत्यन्तही दुष्कर है ॥ ५४ ॥ हे मानिनि ! मैंने गृहस्थाश्रम में तेरीसमान

वाहकाले । प्रासान्नृपानवगणय्यरहोहरोमेप्रस्थापितोद्विजउपश्रुतसत्कथस्य ।५५। भ्रातुर्विरूपकरणंयुधिनिर्जितस्यप्रोद्वाहपर्वणिचतद्वधमक्षगोष्ठ्याम् । दुःखसमुत्थम सहोऽस्मदयोगभीत्यानैवाब्रवीः किमपितेनवयंजितास्ते ॥ ५६ ॥ दूतस्त्वयाऽऽत्म लभनेसुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितोमयिचिरायतिशून्यमेतत् । मत्वाजिहासइदमङ्ग मनन्ययोग्यंतिष्ठतत्त्वयिवयंप्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंसौरत संलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः । स्वरतोरमयारेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥ तथा न्यासामपि विभुर्गृहेषुगृहवानिव । आस्थितो गृहमेधीयान्धर्माल्लोकगुरुर्हरिः ॥५९॥
इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

श्रीशुकउवाच । एकैकशस्ताःकृष्णस्य पुत्रान्दशदशाबलाः ॥ अजीजनन्ननव मानंपितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगंवीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् । प्रेष्ठं न्यमंसतस्वंस्वंन तत्तत्त्वविदःस्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेम हासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः । संमोहिताभगवतोनमनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशक न्वनिताविभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतम न्त्रशौण्डैः । पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुंकरणैर्नशेकुः ॥४॥ इत्थंरमापतिमवाप्य पतिंस्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपिनविदुःपदवींयदीयाम् । भेजुर्मुदा ऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासन

प्रेमवाली और किसी स्त्रीको नहीं देखा तूने केवल मेरी प्रशंसाको सुनकर विवाहकाल में आयेहुए राजाओं को तुच्छमानकर ब्राह्मण को समाचार देकर गुप्तरीति से मेरे निकट भेजाथा ॥ ५५ ॥ युद्धमें पराजितहुए भाई के विरूपहोने और विवाहकाल में द्यूतसभामें उसके बधका स्मरणकर बारम्बार मन में कष्टपाकरभी, मेरे साथसे अलगहोजाने के भय से तू उसका सहनकरके कुछभी न बोली इसी से तूने मुझको अपने बशीभूत करलिया है ॥ ५६ ॥ तूने मुझे पानेके निमित्तअपना दृढ़ निश्चयकर दूतको भेजाथा और मेरे आने म विलम्ब जानकर इस जगत्को शून्य देख दूसरे के अयोग्य इसअपने शरीर को छोड़देने की इच्छाकीथी अतएव मैं तेरे इस ऋणसे उद्धारनहींहोसक्ता मैंतो केवल तुझे सन्तुष्ट करनेकाही यत्नकरताहूं ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेराजन् ! भगवान् देवकीनन्दन आत्माराम होकरभी मनुष्यों का अनुकरण करतेहुए हास्य विलास से लक्ष्मी के अवतार रुक्मिणी के संग बिहार करनेलगे ॥ ५८ ॥वह लोकगुरुहोकरभी गृहस्थियों की समान गार्हस्थ्यधर्म का आचरणकर औरभी दूसरी स्त्रियों के साथ विहार करनेलगे ॥ ५९ ॥
इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०सरलाभाषाटीकायांषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णजी नें एक २ स्त्री में दश २ पुत्र उत्पन्न किये वे सब पुत्र सब प्रकार से अपने पिताही की समान थे ॥ १ ॥ स्त्रियां श्रीकृष्णजी के आत्मारामपन को नहीं जानती थीं इसही कारण श्रीकृष्णजी को अपने २ घर में सदैव रहते हुए देख सब मनमें यही बिचार करतीं कि श्रीकृष्णजी हमेंही अधिक प्यार करते हैं ॥ २ ॥ वह परिपूर्ण भगवान के सुंदर पद्मकोषकी समान मुख, दीर्घ भुजा और विस्तीर्ण नेत्र व प्रेमयुक्त हास्य रस पर्वक दृष्टिऔर मनोहर भाषण से मोहित हो अपनें २ हास्यविलास से उनके मनको बशीभूत नकरसकीं ॥ ३ ॥ स्त्रियोंकी संख्या सोलह सहस्र थी तौभी गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्ष द्वारा सूचित किये अभिप्रायसेमन हरनेवाले भ्रकुटिमंडल से प्रेरित जो सुरत संबंधी विचार होते हैं उनमें कामदेव के बाण और का मशास्त्र के प्रसिद्ध उपायोंसेभी वह भगवान के मनको बश में नकरसकीं ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिभी जि-नकी पदवी को नहीं जानते ऐसे रमापति को पतिपाय ये स्त्रियां निरंतर बढ़े हुए आनंद के साथ अनुराग पूर्वक हास्य, अवलोकन और नव संगम से उत्सुकता इत्यादि विविध विलासोंसे संभोग

वराईणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपिविभोर्विदधुःस्मदास्यम् ॥ ६ ॥ तासांयादशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणांपुरोदिता । अष्टौमहिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामिते ॥ ७ ॥ सुदेष्णश्चारुदेष्णश्च चारुदेहश्चवीर्यवान् । सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥८॥ चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्चदशमोहरेः । प्रद्युम्नप्रमुखाजाता रुक्मिण्यांनावमाःपितुः ॥ ९ ॥ भानुःसुभानुःस्वर्भानुःप्रभानुर्भानुमांस्तथा । चन्द्रभानुर्बृहद्भानूरतिभानुस्तथाष्टमः ॥ १० ॥ श्रीभानुःप्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजादश । साम्बःसुमित्रःपुरुजिच्छतजिच्चसहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडःक्रतुः । जाम्बवत्याःसुताह्येतेसाम्बाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चन्द्रोश्वसेनश्चचित्रगुर्वेगवान्वृषः । आमःशंकुर्वसुःश्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेःसुताः ॥ १३ ॥ श्रुतःकविर्वृषोवीरः सुबाहुर्भद्रएकलः । शान्तिर्दर्शः पूर्णमासःकालिन्द्याःसोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिंहोबलःप्रबलऊर्ध्वगः । माद्र्याःपुत्रामहाशक्तिःसहओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृकोहर्षोऽनिलोगृध्रोवर्धनोऽन्नादएवच । महाशःपावनोवह्निर्मित्रविन्दात्मजाक्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद्बृहत्सेनःशूरःप्रहरणोऽरिजित् । जयःसुभद्रोभद्रायावामआयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्यारोहिण्यास्तनयाहरेः । प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यांमहाबलः । पुत्र्यांतुरुक्मिणोराजन्नाम्नाभोजकटेपुरे ॥ १८ ॥ एतेषांपुत्रपौत्राश्चबभूवुःकोटिशोनृप । मातरःकृष्णजातानांसहस्राणिचषोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथंरुक्म्यरिपुत्रायप्रादाद्दुहितरं युधि । कृष्णेनपरि-

---

प्रत्येक स्त्री सौ दासियों की स्वामिनी थी, तौभी सन्मुख जाना, आसन देना, पूजन करना, पांव धोना, पान देना, पंखा करना, चंदन लगाना, पांव दाबना, फूलोंकी माला पहिराना, बाल सुलझाना, सुलाना, निहलाना और भोजन कराना आदि कर्मों से भगवान की सेवा करती थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भगवान श्रीकृष्णजी की स्त्रियों से जो दश २ पुत्रहुए उनमें से पहिले जो आठ स्त्रियें कही हैं उनके पुत्र प्रद्युम्न आदिका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यशालीचारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु यह दश पुत्र रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए यह कोई भी पिता से न्यून नथे ॥ ८ । ९ ॥ भानु, सुभानु, स्वर्भानु प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, आविभानु, विभानु और प्रतिभानु यह दश पुत्र सत्यभामा के हुए ॥ १० ॥ साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, द्रविण, वसुमान् और क्रतु यह दश पुत्र जाम्बवती के हुए यहभी पिताही की समान थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीमान् वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान, वृष, आम, शंकु, वसु और कुंतियह नाग्नजिती के पुत्रहुए ॥१३॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शांति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक यह कालिन्दी के पुत्रहुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, भुज, और अपराजित यह माद्री के पुत्रहुए ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महांश, पवन, वह्नि और क्षुधि यह मित्रविंदाके पुत्रथे ॥ १६ ॥ संग्रामजित् , बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, राम, आयु और सत्य यह दशपुत्र भद्राके थे ॥ १७ ॥ रोहिणी के गर्भसे भगवान के दीप्तिशाली, ताम्रतप्त आदिपुत्र उत्पन्न हुए । हे राजन् ! भोजकट नगर के रुक्मीकी पुत्री रुक्मवती के गर्भसे प्रद्युम्नके वीर्यसे अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हेमहाराज ! इन सब श्रीकृष्णजी के पुत्रों से और भी करोड़ों पुत्र पौत्रादि उत्पन्न हुए । श्रीकृष्णजी की संतानों के सोलह सहस्र माताएं थीं ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित ने पूँछाकि—हे ब्रह्मन् ! युद्धमें पराजितहो रुक्मी

भूतस्तंहन्तुं रन्ध्रंप्रतीक्षते ॥ २० ॥ एतदाख्याहिमेविद्वन्द्विषोर्वैवाहिकंमिथः । अनागतमतीतंच वर्तमानमतीन्द्रियम् । विप्रकृष्टं व्यवहितंसम्यक्पश्यन्तियोगिनः ॥ ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतःस्वयंवरेसाक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया । राज्ञःसमेतान्निर्जित्यजहारैकरथोयुधि ॥ २२ ॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरंरुक्मीकृष्णावमानितः । व्यतरद्भागिनेयायसुतांकुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥२३॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतोबली । उपयेमे विशालाक्षींकन्यांचारुमतींकिल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धायपौत्रींरुक्म्यददाद्धरेः । रोचनांबद्धवैरोऽपिस्वसुःप्रियाचिकीर्षया । जानन्नधर्मंतद्यौनंस्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदयेराजान्रुक्मिणीरामकेशवौ । पुरंभोजकटं जग्मुःसाम्बप्रद्युम्नकादयः ॥२६ ॥ तस्मिन्निवृत्तउद्वाहेकालिङ्गप्रमुखान्नृपाः । दृप्तास्तेरुक्मिणंप्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञोह्ययंराजन्नपि तद्व्यसनंमहत् । इत्युक्तोबलमाहूय तेनाक्षैरुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतंसहस्रमयुतं रामस्तत्राददेपणम् । तंतुरुक्म्यजयत्तत्र कालिंगःप्राहसद्बलम् । दन्तान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥२९॥ ततोलक्षंरुक्म्यगृह्णाद् ग्लहंतत्राजयद्बलः । जितवानहमित्याह रुक्मीकैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युनाक्षुभितःश्रीमान्समुद्रइवपर्वणि जात्यारुणाक्षोऽतिरुषान्यर्बुदंग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तंचापिजितवान्रामो धर्मेणच्छलमाश्रितः रुक्मीजितंमयाऽत्रेमे वदन्तुप्राश्निकाइति॥३२॥तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव

श्रीकृष्णजी के मारने के निमित्त छिद्रढूंढा करता था, उसने क्यों शत्रुके पुत्रको कन्यादी ? शत्रुशत्रुमें परस्पर बैवाहिक सम्बंध क्योंकर हुआ इसका विशेष वृत्तांत मुझसे कहिये ॥ २० ॥ योगीजन, भूत, भविष्यत, बर्तमान, इन्द्रियों के अगम्य, दूरस्थ और छिपेहुए बिषयोंको भलीभांति से देखते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—उसने साक्षात् मूर्तिमान कामदेव प्रद्युम्नको स्वयंवर में वरलिया, तब वह एकही रथसे युद्धस्थलमें एकत्रित हुए सब राजाओंको जीत, हरलाये ॥ २२॥ हे राजन् ! यद्यपि श्रीकृष्णजी से अपमानित होकर रुक्मी मनमें सर्वदा श्रीकृष्णजी से शत्रुता ही करता रहा परन्तु तौभी बहिन के प्रियकरने के निमित्त भांजेको अपनी उसने पुत्रीदी ॥ २३ ॥ हे राजन् ! कृतवर्मा के बलबान पुत्रने रुक्मिणी की विशाल लोचना चारुमती नामक पुत्रीसे विवाह किया ॥ २४ ॥ भगवान और रुक्मि से शत्रुता थी कि ऐसा विवाह धर्म संगत नहीं है, तौभी स्नेह पाशसे बंधकर बहिन के प्रियकरने के निमित्त दौहित्र अनिरुद्धको रोचना नामक अपनी पुत्री दी ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उस उत्सव के देखनेको रुक्मिणी, राम, कृष्ण और प्रद्युम्न आदि सब यादव भोजकट नगर में गये ॥ २६ ॥ वहां विवाहका कार्य समाप्त होनेपर कालिंग आदि अभिमानी राजाओं ने रुक्मी से कहाकि द्यूत (जुआ) से बलरामको जीतलो ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वह द्यूतक्रीड़ा नहींजानतेथे परन्तु द्युतका व्यसनभी उनको बड़ाभारीथा रुक्मी इसबातका सुन बलदेवजीको बुलाय जुआ खेलनेको बैठा॥२८॥बलरामजीने उसमें सौ,सहस्र और दशसहस्र स्वर्णमुद्रा दांवमें रक्खे परन्तु रुक्मी ने उन सबको जीतलिया । तब कालिंग देशके राजाने दांत दिखाय बलदेवजी का उपहास किया बलदेवजी उसका सहन न करसके अनन्तर रुक्मीने लाख सुवर्णकी मुद्रा दांवमें रक्खीं बलरामजी ने उनको जीतलिया परंतु रुक्मीने छल करके कहा कि " मैं जीताहूं ॥ ३० ॥ श्रीमान् रामने पूर्णिमा के दिन के समुद्रकी समान क्षुभितहो दशकोटि मुद्रा दांव में रक्खे क्रोध से उनके नेत्र लालरंग के होगये ॥ ३१ ॥ रामने धर्मपूर्वक उन दशकोटि मुद्राओं को भी जीतलिया परन्तु रुक्मीने छल करके कहा कि—अब भी मैं ही जीताहूं इसके विषय में सभासद कहें ॥ ३२ ॥ उसीसमय में आकाशबाणी हुई कि—धर्मा-

जितोग्लहः । धर्मतोवचनंनैव रुक्मीवदतिवैमृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्यवैदर्भोदुष्टराजन्यचोदितः । संकर्षणंपरिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपालावनगोचराः । अक्षैर्दीव्यन्तिराजानो बाणैश्चनभवादृशाः ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः । क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्नेतंनृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कालिङ्गराजंतरसा गृहीत्वादशमेपदे । दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ३७ अन्येनिर्भिन्नबाहूरु शिरसोरुधिरोक्षिताः । राजानोदुद्रुवुर्भीता बलेनपरिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहितेरुक्मिणिश्याले नाब्रवीत्साध्वसाधुवा । रुक्मिणीबलयोराजन्स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धंसहसूर्ययावरंरथंसमारोप्ययषुः कुशस्थलीम् । रामादयोभोजकटाद्दशार्हाः सिद्धखिलार्थामधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा० दशम० उ० एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

राजोवाच ॥ बाणस्यतनयामूषा मुपयेमेयदूत्तमः । तत्रयुद्धमभूद्धोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥ एतत्सर्वंमहायोगिन् समाख्यातुंत्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ बाणःपुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः । येनवामनरूपाय हरयेऽदायिमेदिनी ॥ २ ॥ तस्यौरसःसुतोबाणः शिवभक्तिरतःसदा । मान्यावदान्योधीमांश्च सत्यसन्धोदृढव्रतः ॥ ३ ॥ शोणिताख्येपुरेरम्ये सराज्यमकरोत्पुरा । तस्यशम्भोःप्रसादेन किंकराइवतेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्योभक्तवत्सलः । वरेणच्छन्दयामास सतंवव्रेपुराधिपम् ॥ ५ ॥ सएक

नुसार बलदेवजीही यह दांव जीतेहैं रुक्मी मिथ्या कहताहै ॥ ३३ ॥ रुक्मीने कालसे प्रेरित होकर इस देववाणी को भी न माना और सब सभासदों की सम्मति से बलदेवजी का उपहास करके कहने लगा कि— ॥ ३४ ॥ तुम गो पालनेवाले बनके निवासीहो यूत क्रीड़ाको क्या जानो राजाही यूत और बाणोंसे क्रीड़ा करतेहैं तुम्हारी समान मनुष्य मनुष्योंमें नहींहै ॥ ३५ ॥ रुक्मीसे इस प्रकार तिरस्कृत और राजाओंसे उपहासितहो बलदेवजी क्रोधित हुए, और परिघको उठाय उस सभामेंही रुक्मी को मारडाला, ॥ ३६ ॥ जो कालिंग राज दांत फैलायकर हसाथा बलरामजी ने दशवें पगमें उसको पकड़ क्रोधसे उसके दांत तोड़डाले ॥ ३७ ॥ और दूसरे राजा भी बलरामजी की परिघसे पीड़ित और छिन्नबाहु छिन्नउरु छिन्नशिरा और रुधिरसे भीगकर भयभीतहो वहां से भागगए ॥ ३८ ॥ हेराजन् ! साले रुक्मी के मारेजाने पर स्नेह टूटनेके डरसे भगवान ने रुक्मिणी वा बलदेवजी से भला बुरा कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ अनन्तर रामा श्रीकृष्णादि के आश्रित यदुवंशी अपना कार्य पूराकर दूलहा अनिरुद्धको दूलहन समेत रथपर बिठाय भोजकटसे द्वारकापुरी को आये ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधसरलाभाषाटीकायांएकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

राजा परीक्षित ने कहा कि—बाणासुरकी कन्या ऊषासे अनिरुद्धनें विवाहकिया श्रीकृष्णजीमें और महादेवजी में घोरयुद्ध हुआ सो हेमहायोगिन् ! यह सब आप मुझसे कहिये ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! राजा बलिके सौपुत्रथे, उनमें बाणासुर सबसे बड़ाथा, जिस बलिने बामनरूप भगवानको पृथ्वीदीथी ॥ २ ॥ यह बलिका औरस पुत्र बाणासुर शंकरका परम भक्त, मान्य, बुद्धिमान,उदार, सत्यप्रतिज्ञ और दृढ़ नियमवालाथा ॥ ३ ॥ सोपहिले सुंदर शोणितपुरमें राज करताथा महादेवजी के अनुग्रह से उसके समीप देवता सेवक की भांति रहतेथे उसके सहस्र भुजाएंथीं । एकसमय महादेवजी नाचरहेथे तब उसने बाजा बजाकर उनको संतुष्ट किया, ॥ ४ ॥ जब भक्तवत्सल शरण देनेवाले सब प्राणियोंके ईश्वर शिवजीने उससे बर मांगने

दाह गिरिशं पार्श्वस्थंवीर्यदुर्मदः । किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥६॥ नमस्येत्वांमहादेव लोकानांगुरुमीश्वरम् । पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामरांघ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोःसहस्रंत्वयादत्तं परंभारायमेऽभवत् । त्रिलोक्यांप्रतियोद्धारं नलभेत्व दृतेसमम् ॥ ८ ॥ कण्डूत्यानिर्भृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् । आद्याऽयांचूर्णयन्न द्रीन् भीतास्तेऽपिप्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्क्रुद्धः केतुस्तेभज्यतेयदा । त्व द्दर्पघ्नंभवेन्मूढ संयुगंमत्समेनते ॥ १० ॥ इत्युक्तःकुमतिर्हृष्टःस्वगृहंप्राविशन्नृप । प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनंकुधीः ॥ ११ ॥ तस्योषानामदुहिता स्वप्नेप्राद्युं म्निनारतिम् । कन्याऽलभतकान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेनसा ॥ १२ ॥ सातत्रतमपश्यन्ती क्वासिकान्तेतिवादिनी । सखीनांमध्यउत्तस्थौ विह्वलाव्रीडिताभृशम् ॥ १३ ॥ बा णस्यमन्त्रीकुम्भाण्डश्चित्रलेखाचतत्सुता । सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसम न्विता ॥ १४ ॥ कंत्वंमृगयसेसुभ्रुः कीदृशस्तेमनोरथः । हस्तग्राहंनतेऽद्यापि राज पुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टःकश्चिन्नरःस्वप्ने श्यामःकमललोचनः । पी तवासाबृहद्बाहुर्योषितांहृदयंगमः ॥ १६ ॥ तमहंमृगयेकान्तं पाययित्वाऽधरंमधु क्वापियातःस्पृहयतीं क्षिप्त्वामांवृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं ते ऽपिकर्षामि त्रिलोक्यांयदिभाव्यते । तमानेष्येनरंयस्ते मनोहर्तातमादिश ॥ १८॥ इत्युक्त्वादेवगन्धर्व सिद्धचारणपन्नगान् । दैत्यविद्याधरान्यक्षान् मनुजांश्चयथाऽ

को कहा तब इसने कहा कि—आप मेरे पुरके रक्षक होओ ॥ ५ ॥ यह बाणासुर पराक्रमके गर्व से अत्यंत गर्वितहो एकदिन सूर्यके समान प्रकाशित किरीटसे भगवान् महादेवजी के चरणकमल का स्पर्श करके कहने लगा कि— ॥ ६ ॥ हेमहादेव ! आप अपूर्ण काम मनुष्यों के काम पूरे करनेवाले व कल्पवृक्षहो हेलोकगुरो ! आप को नमस्कार करताहूं ॥ ७ ॥ आपने मुझको सहस्र भुजाएंदीहैं वह सब मेरे अत्यंत बोझका कारण हुईहैं मैं आपके अतिरिक्त त्रिलोकी में अपनेसमान और कोई योद्धा नहीं देखता ॥ ८ ॥ बोझरूपी भुजाओंकी खुजली दूर करनेके निमित्त पर्वतोंको चूर्ण करताहुआ युद्ध करनेके निमित्त दिशाओं के हाथियोंके निकटगया किंतु वेभी भयभीत होकर भागगए ॥ ९ ॥ यह बात सुनकर महादेवजीने क्रोधित होकर कहा कि—रेमूढ़ ! जिसदिन मेरी समान मनुष्यके साथ तेरा अभिमान नाशक युद्धहोगा उसहीदिन तेरी ध्वजा टूटजायगी ॥ १० ॥ हेराजन् ! इसबातको सुनकर दुर्बुद्धि बाणासुर प्रसन्नहो अपने घरआया और अपने पराक्रमनाशक शिवजीकी आज्ञाके सफलहोनेकी राह देखनेलगा॥११॥ इस बाणासुरके उषानामक एककन्याथी सुंदर मुखवाली ऊषाने प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्धको न तो कभी देखाथा औरन कभी सुनाही था। एक दिन उसी अनिरुद्ध के साथ स्वप्नमें उसको विहार सुख प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ फिरवहां उसने उसको न देखपाया तब हे सखे ! कहांहो यह कहकर सखियों के बीचमें से नींद से उठ, खड़ी हो अत्यंत लज्जित हुई ॥ १३ ॥ हेराजन् ! कुंभांडक नामक बाणासुरका एकमंत्री था एक उसके चित्रलेखानाम पुत्रीथी उसने कौतुकके साथ अपनी सखी ऊषासे पूछाकि॥१४॥ हे सुंदर भौंहवाली ! तू किसकी खोजकरती है ? तेरी क्या इच्छा है ? हे राजपुत्रि ! अबतकतो तेरा पाणिग्रहण भी नहीं हुआ है ॥ १५ ॥ ऊषाने कहाकि—हे सखि ! मैंने स्वप्नमें एक श्यामवर्ण के पुरुषको देखा है। उसके दोनों नेत्र कमल के समान हैं उसकी लंबी भुजाएं हैं वह स्त्रियों के मनको मोहने वाला पीताम्बर धारण किये हुएहै मैं उसकीही खोज करती हूं ॥ १६ ॥ वह मुझको अधरामृतका पान कराय मुझ इच्छावतीको दुःख सागर में डालकर कहीं चलागया ॥ १७ ॥ चित्रलेखाने कहाकि— तुम्हारा दुःखदूर करूंगी । जिस पुरुष ने तुम्हारे मनको हरणकिया है यह यदि त्रिलोकी में कहीं भी रहताहोगा तो मैं उसको लादूंगी,—तुम मुझको आज्ञादो ॥ १८ यह कहकर चित्रलेखाने देव,

लिखत् ॥ १९ ॥ मनुजेषुचसावृष्णीञ्छूरमानकदुन्दुभिम्। व्यलिखद्रामकृष्णौच प्रद्युम्नंवीक्ष्यलज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखीह्रिया। सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखातमाज्ञाय पौत्रंकृष्ण स्ययोगिनी। ययौविहायसाराजन् द्वारकांकृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्रसुप्तंसुपर्यं के प्राद्युम्निंयोगमास्थिता। गृहीत्वाशोणितपुरं सख्यैप्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ सा चतंसुन्दरवरं विलोक्यमुदिताननाः। दुष्प्रेक्ष्येस्वगृहेपुम्भी रेमेप्राद्युम्निनासमम् २४॥ परार्ध्यवासःस्रग्गन्धधूप दीपासनादिभिः। पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैःशुश्रूषया र्चितः ॥ २५ ॥ गूढःकन्यापुरेशश्वत् प्रवृद्धस्नेहयातया। नाहर्गणान्सबुबुधे ऊष- याऽपहृतेन्द्रियः ॥ २६ ॥ तांतथायदुवीरेण भुज्यमानांहतव्रताम्। हेतुभिर्लक्षयां चक्रुराप्रीतांदुरवच्छदैः ॥ २७ ॥ भटाआवेदयांचक्रू राजंस्तेदुहितुर्वयम्। विचे- ष्टितंलक्षयामः कन्यायाःकुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्चगृहे प्रभो। कन्यायादूषणंपुम्भिर्दुष्प्रेक्ष्यायानविद्महे ॥२९॥ ततःप्रव्यथितोबाणो दुहितुः श्रुतदूषणः। त्वरितःकन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३०॥ कामात्मजंतं भुव नैकसुन्दरं श्यामंपिशंगाम्बरमम्बुजेक्षणम्। बृहद्भुजंकुण्डलकुन्तलत्विषा स्मिताव लोकनचमण्डिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यन्तमक्षैःप्रिययाऽभिनृम्णया तदङ्गसंगस्तन कुंकुमस्रजम्। बाह्वोर्दधानंमधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्रआसीनमवेक्ष्यविस्मितः ॥

गंधर्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों के अविकल चित्र लिखकर दिखाये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें से वृष्णिवंश, बलवान अनाक दुंदुभि, राम, कृष्ण और प्रद्युम्न के चित्रलिखे। राजपुत्री प्रद्युम्नको देखकर लज्जित होगई ॥ २० ॥ तदुपरांत चित्त चुराने वाले अनिरुद्धको देख वह राजपुत्री लज्जासे नीचा मुखकर कुछेक हंसकर कहने लगी कि—"वह यही हैं" ॥ २१ ॥ हे राजन्! योगिनी चित्रलेखा उसको श्रीकृष्णजीका पौत्र जानकर आकाश मार्गसे श्रीकृष्ण पालित द्वारका पुरीमें आई ॥ २२ ॥ वहां प्रद्युम्नका पुत्र सुंदर सेजपर सोरहाथा। चित्रलेखा ने उसे शो- णितपुर लेजायकर सखीको दिखाया ॥ २३ ॥ उस सुंदर अनिरुद्धको देख ऊषाका मुख प्रफुल्लित होउठा। वह पुरुषों की जिसपर दृष्टि न पड़े ऐसे अपने घरमें अनिरुद्ध के साथ बिहार करनेलगी ॥ २४ ॥ अनिरुद्ध भी सन्मान सहित महामूल्य के वस्त्र, फूल, चंदन, धूप, दीप और आसनादि तथा पान भोजन और नाना वाक्यों से पूजित हो अंतःपुर में गूढ भाव से वास करनेलगा॥२५॥ ऊषाका स्नेह दिन प्रतिदिन बढताही रहा ऊषा से इन्द्रियों के मोहित होजानेपर अनिरुद्धनें यहभी नजाना कि कितनें दिन बीतगए ॥ २६ ॥ अनिरुद्धनें जो ऊषा के साथ संभोग किया इससे राज कुमारी के अंग अत्यंत प्रकाशित हो उठे ॥ २७ ॥ उन सब गुप्त जिन्हों को देख रक्षकोंको संदे- ह उत्पन्न होगया उन्हों नें राजभवन मेजाकर निवेदन किया कि हे राजन्! हम आपकी क्वांरीक न्या के कुलदूषण आचरणों का अनुमान करें हैं ॥ २८ ॥ हे प्रभो! हम सदैव वहां उपस्थित रहकर सावधानी से उस घरकी रक्षा करते हैं, कोई पुरुष भी नहीं देखपड़ता तौभी नजानें किस प्रकार से उसने बुरे आचरण किये ॥२९॥ कन्या को दूषित हुआ सुनकर बाणासुर अत्यंत व्य- थित हुआ और शीघ्रता से कन्या के घरमें आयकर उसने अनिरुद्ध को देखा ॥ ३० ॥ वह ज- गत को मोहनें वाला श्यामवर्ण, कमल नयन, पीताम्बर पहिनें, लम्बी भुजा धारण किये कुण्डल और केशों की कांति से जिसका मुख शोभायमान होरहा है ॥ ३१ ॥ सर्व कल्याण रूप प्यारी के संग पांसों से खेलता, बसंत ऋतु संबंधी फूलों की माला कि जिस में प्यारीके स्तनों की केसर अंग संगके कारण लगगई है बक्षःस्थल में धारण किये कामदेव के पुत्र अनिरुद्ध को अपनीपुत्री

॥ ३२ ॥ सतंप्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्यमाधवः । उद्यम्यमौर्वंपरिघं व्यवस्थितोयथाऽन्तको दण्डधरोजिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षयातान्परितःप्रसर्पतः शुनोयथाशूकरयूथपोऽहनत् । तेहन्यमानाभवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाःप्र दुद्रुवुः ॥ ३४ ॥ तंनागपाशैर्बलिनन्दनोबली घ्नन्तंस्वसैन्यं कुपितोबबन्धह ॥ ऊषा भृशंशोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

श्रीशुकउवाच । अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनांचभारत चत्वारोवार्षिकामासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तांबद्धस्यकर्मच । प्रययुःशोणि तपुरं वृष्णयःकृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नोयुयुधानश्च गदःसाम्बोऽथसारणः । नन्दो पनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताःसर्वतो दिशम् । रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्ट लगोपुरम् । प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥५॥ बाणार्थेभगवान्रुद्रः ससुतैःप्रमथैर्वृतः । आरुह्यनन्दिवृषभं युयुधेरामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं यु द्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुम्भाण्डकूप- कर्णाभ्यां बलेनसहसंयुगः । साम्बस्यबाणपुत्रेण बाणेनसहसात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मा दयःसुराधीशा मुनयःसिद्धचारणाः । गन्धर्वाप्सरसोयक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥९॥

के सन्मुख बैठा देख बाणासुर आश्चर्य करने लगा ॥ ३२ ॥ शस्त्रधारी अनेक योद्धाओं समेत उस बाणासुर को घर में आया देख अनिरुद्ध उसके संहार करने की इच्छा से दंड धर यमराज की स मान लोहे का परिघ लेकर उठ खड़ा हुआ ॥ ३३ ॥ पकड़ लेने की इच्छा से चारों ओर से आते हुए इन योद्धाओं को अनिरुद्ध ऐसे ऐसे मारने लगा कि जैसे बड़ा शूकर कुत्ते को मारे वह मारखा तेहुए योधा भग्नशिर, भग्न बाहु और भग्नपांव हो २ कर घर से बाहर भगगए ॥ ३४ ॥ तब ब लवान बाणासुर ने कुपित होकर अपनी सेनाके मारनेवाले अनिरुद्ध को नागपाश से बांधलिया अ निरुद्ध को बंधा हुआ सुनकर ऊषा अत्यंत शोक और विषाद से विह्वल होगई और आंसू बहा२ कर ऊंचे स्वर से रोने लगी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महा० द० उ० सरला भाषाटीकायां द्विषष्टिमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेभरतनन्दन ! अनिरुद्ध के बन्धु बांधवोंने उसको न देखपाय शोक से चारवर्ष व्यतीत किये ॥ १ ॥अनन्तर नारदजी के मुख से उसकाबंधन और बाणकेसाथ युद्ध होनेके वृत्तांतको सुनकर कृष्णजी ने यादवों को साथले शोणितपुर चढ़ाईकी ॥ २ ॥ राम कृष्ण के पीछे २ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्रादि श्रेष्ठ यादवों ने १२ अक्षौहिणी सेना लेकर चारोंओर से बांणासुर के नगर को घेरलिया ॥ ३ । ४ ॥ तथा नगर के बाग, महल, छत और दरवाजों को तोड़ना आरम्भकिया यह देखकर बांणासुरको- धितहो समान सेनाले युद्ध करने के निमित्त नगर से बाहर निकला ॥ ५ ॥ बांणासुर के निमित्त भगवान् महादेवजी नन्दी वृषपर चढ़ पुत्र और भूतों को संगले राम कृष्णके साथ युद्ध करने में आये ॥ ६ ॥ हेराजन् ! श्रीकृष्णजी व महादेवजी और प्रद्युम्न व कार्त्तिकेय से जो घोरयुद्धहुआ उसके सुननेसे रोमांच होता है ॥ ७ ॥ कुम्भांड और कूपकर्ण के साथ बलरामका बांणासुर के पुत्र के साथ सांबका और बांणके साथ सात्यकीका युद्ध आरम्भहुआ ॥ ८ ॥ उस समय ब्रह्मादि सुरेश्वर, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरायें और यक्ष विमानों पर बैठ२युद्ध देखने के निमित्त

शङ्करानुचराञ्छौरिर्भूतप्रथमगुह्यकान्। डाकिनीर्यातुधनांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान्। द्रावयामासतीक्ष्णाग्रैः शरैःशार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानिप्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणिशार्ङ्गिणे। प्रत्यस्त्रैःशमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्यचब्रह्मास्त्रं वायव्यस्यच पार्वतम्। आग्नेयस्यचपार्जन्यं नैजंपाशुपतस्यच ॥ १३ ॥ मोहयित्वातुगिरिशं जृम्भणास्त्रेणजृम्भितम्। बाणस्यपृतनांशौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥ स्कन्दःप्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानःसमन्ततः। असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यःशिखिनाऽपाक्रमद्रणात् १५ कुम्भाण्डःकूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ। दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानिसर्वतः ॥ ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणंस्वबलं दृष्ट्वाबाणोऽत्यमर्षणः। कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैवसात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्ययुगपद्बाणः पंचशतानिवै। एकैकस्मिञ्छरौद्वौद्वौ सन्दधेरणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानिचिच्छेदभगवान् धनूंषियुगपद्धरिः। सारथिंरथमश्वांश्च हत्वाशंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माताकोटरानाम नग्नामुक्तशिरोरुहा। पुरोऽवतस्थेकृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥ ततस्तिर्यङ्मुखोनग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः। बाणश्चतावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तुत्रिशिराखिपात्। अभ्यधावतदाशार्हं दहन्निवादिशोदश ॥ २२ ॥ अथनारायणोदेवस्तंदृष्ट्वाव्यसृजज्ज्वरम्। माहेश्वरोवैष्णवश्च युयुधातेज्वरावुभौ ॥ २३ ॥ माहेश्वरःसमाक्रन्दन् वैष्णवेनबलार्दितः। अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो

रणभूमि में आनेलगे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णजी शार्ङ्ग धनुष से छूटेहुए पैनी अनीवाले बाणों से महादेवजी के अनुचर प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, राक्षस, बैताल, बिनायक, भूत, मातृगण, पिशाच, कूष्मांड और ब्रह्मराक्षसों को ताड़ित करनेलगे ॥ १० । ११ ॥ महादेवजी ने पृथक् २ करके श्रीकृष्णजी पर दिव्य अस्त्रों का प्रहार किया परन्तु श्रीकृष्णजी ने विस्मित न होकर अपने अस्त्रों से उनसब को काटडाला ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रपर ब्रह्मास्त्र, बायव्यपर पर्वतास्त्र, आग्नेयास्त्रपर पर्जन्यास्त्र, और पाशुपतास्त्रपर नारायणास्त्र का प्रहार किया ॥ १३ ॥ अनन्तर सम्मोहनास्त्रद्वारा जंभाई लेतेहुए महादेवजी को मोहितकर श्रीकृष्णजी खड्ग, गदा और बाणों से बाणासुर की सेना का नाशकरने लगे ॥ १४ ॥ स्वामिकार्त्तिक चारोंओर से प्रद्युम्न के बाण लगने से व्यथित होगये; उनकी सब देह से रुधिर बहनेलगा; तब वह मयूर पर बैठकर भागगये ॥ १५ ॥ कुंभांड और कूर्पकर्ण मूसल के प्रहारसे पीड़ितहो रणभूमि में गिरगये। उनकी सेना सेनापतियों के मरजाने से चारोंओरको भागने लगी ॥ १६ ॥ अपनी सेना को चारोंओर को भागताहुआ देख बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हुआ और युद्ध में सात्यकि को छोड़कर रथमें बैठ श्रीकृष्णजी पर दौड़ा ॥ १७ ॥ रणमत्तबाणासुर नें पांचसौ धनुष एक बारही खींचकर प्रत्येक धनुष में दो २ शर चढ़ाये ॥ १८ ॥ भगवान हरिने उन सब धनुष और बाणोंको एक समय मेंही काटडाला और सारथी, रथ तथा घोडोंको नष्टकर शंख बजाने लगे ॥ १९ ॥ कोटरा नामक बाणासुर की माता नंगीहो तथा बालोंको खोल पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके कारण श्रीकृष्णजी के आगे आकर खड़ी होगई ॥२०॥ श्रीकृष्णजीने उसनग्नाको सन्मुख खड़ादेख कुछ न कह मुख फेरलिया, इधर बाणासुरने धनुष कट जाने व रथहीन होजाने पर नगर में प्रवेश किया ॥ २१ ॥ भूतोंके भाग जानेपर तीनशिर और तीन पैरोंवाला ज्वर युद्ध करने के निमित्त दौड़ता हुआ श्रीकृष्णपर आया ॥ २२ ॥ नारायण ने भी उसको देखकर शीत ज्वरको उससे युद्ध करनेको भेजा। तब माहेश्वर और बैष्णव दोनोज्वर परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ माहेश्वर ज्वर युद्ध करते २ वैष्णव ज्वर के बलसे पीडित होगया

माहेश्वरोज्वरः ॥ शरणार्थीहृषीकेशं तुष्टावप्रयतांजलिः ॥ २४ ॥ ज्वरउवाच ॥ नमामित्वाऽनन्तशक्तिंपरेशं सर्वात्मानंकेवलंज्ञप्तिमात्रम्। विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्मब्रह्मलिंगंप्रशान्तम् ॥ २५ ॥ कालोदैवंकर्मजीवःस्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राणआत्माविकारः। तत्संघातोबीजरोह प्रवाहस्त्वन्मायैषातन्निषेधंप्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतूंन्बिभर्षि । हंस्युन्मार्गांन्हिंसयावर्त्तमानांजन्मैतत्तेभारहारायभूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहंतेतेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेनज्वरेण। तावत्तापोदेहिनांतेऽङ्घ्रिमूलं नोसेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्तेप्रसन्नोऽस्मि व्येतुतेमज्ज्वराद्भयम्। योनौस्मरतिसंवादं तस्यत्वन्नभवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतोमाहेश्वरोज्वरः बाणस्तुरथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततोबाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः। मुमोचपरमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधेनृप ॥ ३१ ॥ तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्य सकृच्चक्रेणक्षुरनेमिना। चिच्छेदभगवान्बाहूञ्छाखाइववनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषुच्छिद्यमानेषु बाणस्यभगवान्भवः। भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्रउवाच ॥ त्वंहिब्रह्मपरंज्योतिर्गूढंब्रह्मणिवाङ्मये। यंपश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिवकेवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोग्निर्मुखमम्बुरेतो द्यौःशीर्षमाशाःश्रुतिरंघ्रिरुर्वी। चन्द्रोमनोयस्यदृगर्कआत्मा अहंसमुद्रोजठरंभुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणियस्यौषधयोम्बुवाहा केशाविरंचोधिषणाविसर्गः। प्रजापतिर्हृदयंयस्यधर्मः सवैभ

और दूसरेका आश्रय न पाय हाथजोड़ भगवान की स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ ज्वरने कहा कि–आप अनंत शक्ति परमेश्वरहो आपको नमस्कार है। आप सर्वात्मा, निरवच्छिन्न केवल विज्ञान और ब्रह्मादि के ईश्वरहो। आपही जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारणहो। आपकर्म रहितहो अतएव जोवेद से अगम्य ब्रह्म है वह भी आपहीहो;–आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्म, भूतगण, प्राण, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियें, पंचमहाभूत, देह और देहका प्रवाह यह सब आपकी माया है, किंतु आपसे इनका सद्भाव नहीं है, मैं आपकी शरणागत हुआ हूं ॥ २६ ॥ आप लीलावश सेही मत्स्य कूर्मादि नाना अवतार धारणकर देवगण, साधुगण और लोककी मर्यादा का पालन और हिंसामें प्रवृत्त हुए उत्पथगामी दैत्योंका संहार करते हैं; आपका यह जन्म पृथ्वीका भार हरने के निमित्त है ॥ २७ ॥ आपसे उत्पन्न हुए दुःसह तेजसे तप्त होरहा हूं प्राणी जबतक आशा में बंधारहकर आपके चरणों की सेवा नहीं करता तबही तक वह संतप्त रहता है ॥ २८ ॥ भगवान ने कहाकि–हे त्रिशिरा ज्वर! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ, मेरे ज्वरसे जो तुझेभय हुआ है उसे छोड़दे। आजसे जोमनुष्य मेरे इस संवादका स्मरण करेगा तुझसे उसको भय नहीं उत्पन्न होगा ॥ २९ ॥ माहेश्वर ज्वर इस बातको सुन भगवानको प्रणाम करके चला गया हे राजन्! इधर बाणासुर भगवान के संगयुद्ध करने के निमित्त रथपर चढ़कर फिरआया ॥३०॥ वह सहस्र भुजाओं में नाना अस्त्र शस्त्रोंको धारणकर परम क्रोधितहो श्रीकृष्णजी के ऊपर प्रहार करने लगा ॥ ३१ ॥ दैत्य पतिके बारंबार बाणवृष्टि करने पर भगवान ने छुरेकी धारवाले चक्रसे बड़े वृक्षकी शाखाओं के समान उसकी सब भुजाएं काटडालीं ॥ ३२ ॥ जब बाणासुर की भुजाएं कटनेलगीं तब भगवान महादेवजी भक्तपर दया प्रकाश करते हुए श्रीकृष्णजी के निकट आयकर कहने लगेकि ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्! तुम वेदसे गूढ परम ज्योतिरूप परब्रह्महो, निर्मलात्मा साधुगण केवल आकाश की समानही आपका दर्शन करते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि, अग्नि आपका मुख, जलवीर्य, स्वर्ग मस्तक दिशाएं कर्ण, पृथिवी पद, चन्द्रमा मन, सूर्यनेत्र, अहंकार आत्मा, समुद्र उदर, इन्द्र आपकी भुजाएं, औषधियें आपके रोम, मेघ आपके केश, ब्रह्मा

वान्पुरुषोलोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्धर्मस्यगुप्त्यैजगतोभवाय। वयंचसर्वेभवतानुभाविता विभावयामोभुवनानिसप्त ॥ ३७ ॥ त्वमेकआद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्धेतुरहेतुरीशः। प्रतीयसेऽथापियथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै॥३८॥ यथैवसूर्यःपिहितःछायायास्वयाछायांचरूपाणिचसंचकास्ति। एवंगुणेनापिहितोगुणांस्त्वमात्मप्रदीपोगुणिनश्चभूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु। उन्मज्जन्तिनिमज्जन्ति प्रसक्तावृजिनार्णवे ॥ ४० ॥ देवदत्तमिमंलब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः। योनाद्रियेतत्वत्पादौ सशोच्योह्यात्मवंचकः ॥४१॥ यस्त्वांविसृजतेमर्त्यआत्मानंप्रियमीश्वरम्। विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतंत्यजन् ॥ ४२ ॥ अहंब्रह्माऽथविबुधा मुनयश्चामलाशयाः। सर्वात्मनाप्रपन्नास्त्वा मात्मानंप्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तंत्वाजगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समंप्रशान्तंसुहृदात्मदैवम्। अनन्यमेकंजगदात्मकेतं भवापवर्गायभजामदेवम् ॥ ४४ ॥ अयंममेष्टोदयितोऽनुवर्ती मयाऽभयंदत्तममुष्यदेव। सम्पाद्यतांतद्भवतःप्रसादो यथाहिते दैत्यपतौप्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थभगवंस्त्वन्नः करवामप्रियंतव। भवतायद्व्यवसितं तन्मेसाध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयंममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः। प्रह्लादायवरोदत्तो नवध्योमेतवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायाऽस्यप्रवृक्णाबाहवोमया। सूदितंचबलंभूरि यच्चभारायितंभुवः ॥४८॥ चत्वारोऽस्य

बुद्धि, प्रजापति शिश्न और धर्म आपका हृदय है,-आपलोक कल्पित विराट पुरुषहो ॥३५-३६॥ हे अखण्ड स्वरूप! धर्म के पालन और संसार के कल्याण के निमित्तही आप अवतार ग्रहण करते हो हमसब आपसेही पालितहोकर सातों भुवनों का पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप स्वयं प्रकाशमान, शुद्ध, आदि पुरुष और एकही आप कारण और कारण से रहित अद्वितीय ईश्वरहो; तौभी सब विषयों के प्रकाश करने के निमित्त आप मायायोग से प्रत्येक शरीरोंमें भिन्न भिन्न रूप से प्रतीत होतेहो ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य अपनी छायासे आच्छादित होकरभी छाया और रूप का प्रकाश करता है हे भूमन्! तैसेही आत्मस्वप्रकाश आप गुणों से आच्छादित होकरभी गुण और गुणियों (जीव) का प्रकाश करतेहो ॥ ३९ ॥ हे भगवन्! तुम्हारी माया से मोहित हुआ प्राणी पुत्र, स्त्री और घर आदि में आसक्त होकर दुःखसागर में डूबता उछलता है ॥४०॥ इस आपके दियेहुए मनुष्य देह को पाकर जो अजितेन्द्रिय मनुष्य आपके चरणकमलका आदर नहीं करता उस आत्मवंचककी अवस्था अत्यन्तही शोचनीय है ॥ ४१ ॥ जोमनुष्य जड़,अप्रिय और अनीश्वर पुत्रादिकों के निमित्त चैतन्य, प्रिय और ईश्वररूप आपको त्याग देते हैं वे अमृत को छोड़ विषका भक्षण करते हैं ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्मा और निर्मल चित्तवाले मुनिलोग मन, वचन और कर्म से प्रियतम आत्मा आपकाही भजन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे देव! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, सम, शांत, मित्र, आत्मरूप, इष्टदेव, सजातीय विजातीय भेदरहित विश्व और प्राणियों के अधिष्ठानरूप आपका हम संसार से पार होने के निमित्त भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ यह बाणासुर मेरा भक्त और प्रिय सेवक है हे देव! मैंने इसको अभयदान दियाहै; दैत्यराज बलिपर जैसे आपने अनुग्रह कियाथा वैसेही इसपरभी कीजिये ॥ ४५ ॥ भगवानने कहा कि-हेभगवन्! तुमने जो मुझ से कहा मैं वही तुम्हारा प्रियसाधन करूंगा। तुमने जो कुछ कहा है वह सबही उत्तम है; उस में मेरीभी सम्मति है ॥ ४६ ॥ यह बलिका पुत्र मेरे मारने योग्य नहीं है क्योंकि मैंने प्रह्लाद को प्रथमही बर देदिया है कि मैं तुम्हारेवंशवालों को न मारूंगा ॥४७॥ मैंने इसका अहंकार दूर करने के निमित्तही इसकी सबभुजायें काटडाली हैं और इसका जो बल पृथ्वी के अतिभारके निमित्त हुआथा उसको भी नाशकरदिया ॥ ४८ ॥ इसकी केवलचारभुजाएं

भुजाःशिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः। पार्षदमुख्यो भवतो नकुतश्चिद्भयोऽसुरः॥४९॥ इतिलब्ध्वाभयंकृष्णं प्रणम्यशिरसाऽसुरः। प्राद्युम्निंरथमारोप्य सवध्वासमुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्यापरिवृतं सुवासःसमलंकृतम्। सपत्नीकंपुरस्कृत्ययय़ौरुद्रानुमोदितः॥ ५१ ॥ स्वराजधानींसमलंकृतांध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम्। विवेशशंखानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः॥ ५२ ॥ यएवंकृष्णविजयं शंकरेणचसंयुगम्। संस्मरेत्प्रातरुत्थाय नतस्यस्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः। विहर्तुंसाम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः॥ १ ॥ क्रीडित्वासुचिरंतत्रविचिन्वन्तः पिपासिताः। जलंनिरुदकेकूपेददृशुःसत्त्वमद्भुतम्॥ २ ॥ कृकलासंगिरिनिभंवीक्ष्यविस्मितमानसाः। तस्यचोद्धरणेयत्नं चक्रुस्तेकृपयान्विताः॥ ३॥ चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वापतितमर्भकाः। नाशक्नुवन्समुद्धर्तुंकृष्णायाचख्युरुत्सुकाः॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविन्दाक्षोभगवान्विश्वभावनः। वीक्ष्योज्जहारवामेनतंकरेणसलीलया ॥ ५॥ सउत्तमश्लोककराभिमृष्टोविहायसद्यःकृकलासरूपम्। संतप्तचामीकरचारुवर्णःस्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्रक्॥ ६ ॥ पप्रच्छविद्वानपितन्निदानंजनेषुविख्यापयितुंमुकुन्दः। कस्त्वंमहाभागवरेण्यरूपोदेवोत्तमंत्वांगणयामिनूनम्॥ ७॥ दशामिमांवाकतमेनक-

---

शेष रही हैं यह अजर और अमर दैत्य आपका प्रधान पार्षद होगा इसे किसी का भी भय न होगा ॥ ४९ ॥ बाणासुर ने इसबातको सुन नीचामस्तककर श्रीकृष्णजीको नमस्कार किया और अनिरुद्ध को बधू समेत रथपर बिठाय वहां लेआया ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णजी बाणासुर की दीहुई एक अक्षौहिणी सेना लेकर सुन्दर वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित स्त्रीसमेत अनिरुद्ध को आगे कर महादेवजी की संमति से वहां से चलदिये ॥ ५१ ॥ इधर भगवान का आनासुन सुन्दर ध्वजाओं से द्वारका सजाई गई और उसके चौराहे व मार्ग सुशोभित किये गये भगवान ने उस शोभित नगरी में प्रवेश किया। ब्राह्मण, पुरवासी और सब बान्धव शंख, ढक्का और दुन्दुभी आदि बाजे बजातेहुए—आगे जाय उनका सत्कार करके लेआये ॥ ५२ ॥ हेराजन्! जो मनुष्य प्रातःकाल उठतेही श्रीकृष्णजी और शंकर के इस युद्ध और विजय का स्मरण करेगा उसकी कभी पराजय न होगी ॥ ५३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम० उ०सरलाभाषाटीकायांत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! एकदिन सांब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, और गदादि, यदुकुमार गण क्रीड़ा करनेके निमित्त उपवनमेंगये ॥ १ ॥ वहां बड़ी देरतक खेलते रहनेके कारण उन सबको प्यास लगी तब जलको ढूंढते २ एक कुएके समीप पहुँचे उन्होंने उस कुएमें एक अद्भुत जीव देखा ॥ २ ॥ वे पर्वतकी समान उसमें गिरगिट को पड़ादेख अत्यन्त विस्मितहुए फिर उन्होंने सदय होकर उसके निकालने का यत्नकिया ॥ ३ ॥ उन बालकोंने चमड़े और रस्सी के पाशोंसे उस जीवको बांधकर उसके निकालनेके बहुतसे यत्नकिये परन्तु उसे न निकालसके तब उत्सुक चित्तसे श्रीकृष्णजीके समीप जाय उस सब वृत्तांत को कहा ॥ ४ ॥ कमललोचन भगवान् ने वहां आय उसको देख सहजसेही बांए हाथसे उसको उठालिया ॥ ५ ॥ भगवान् के हाथका स्पर्श होतेही वह गिरगिट अपने रूपको छोड़ सुन्दरवर्ण का अत्यंत अलंकारों से अलंकृत तप्त सुवर्णकी समान देवमूर्त्ति होगया ॥ ६ ॥ भगवान ने इसकारण को जानकरभी जगतमें प्रचार होने के निमित्त उससे पूँछा कि—हेमहाभाग! सुन्दर रूपधारी आपकौनहो? आप तो कोई श्रेष्ठ दे-

र्मणासम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र । आत्मानमाख्याहिविवित्सतांनोयन्मन्यसेनः क्षममत्रवक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इतिस्मराजासंपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना । माधवंप्रणिपत्याहकिरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगोनामनरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो । दानिष्वाख्यायमानेषुयदिते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किंनुतेविदितंनाथसर्वभूतात्मसाक्षिणः । कालेनाव्याहतदृशोवक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥ यावन्त्यः सिकताभूमेर्यावन्त्योदिवितारकाः । यावन्त्योवर्षधाराश्चतावतीरददंस्मगाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिलाहेमशृङ्गीः । न्यायार्जितारूप्यखुराः सवत्सादुकूलमालाभरणाददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्योगुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्यऋतव्रतेभ्यः । तपः श्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादांयुवभ्योद्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः । वासांसिरत्नानिपरिच्छदान्रथानिष्टंचयज्ञैश्चरितंचपूर्तम् ॥ १५ ॥ कस्यचिद्द्विजमुख्यस्यभ्रष्टागौर्ममगोधने । संपृक्ताऽविदुषासाच मयादत्ताद्विजातये ॥ १६ ॥ तांनीयमानांतत्स्वामीदृष्ट्वोवाचममेतितम् । ममेतिप्रतिग्राह्याहनृगोमे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौविवदमानौमामूचतुः स्वार्थसाधकौ । भवान्दाताऽपहर्तेतितच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौधर्मकृच्छ्रगतेनवै । गवांलक्षंप्रकृष्टानांदास्याम्येषाप्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवन्तावनुगृह्णीतांकिङ्करस्याविजानतः समुद्धरतमांकृच्छ्रात्पतन्तंनिरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहंप्रतीच्छेवैराजन्नित्युक्त्वास्वाम्यपाक्रमत् । नान्यद्

वता जान पड़तेहो ॥ ७ ॥ हेसुभद्र ! तुम किस कर्मके करनेसे इस दशाको प्राप्त हुयेथे आप तो इस योग्य न थे । यदि तुम इस वृत्तांतको कहसकतेहो तो कहो मुझे इसके सुननेकी बड़ी इच्छाहै ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! जब श्रीकृष्णजीने उससे इसप्रकार पूँछा तबवह सूर्य के समान प्रकाशित किरीटसे प्रणामकर उनसे कहने लगा कि— ॥ ९ ॥ हेप्रभो ! मैं नृग नामक इक्ष्वाकु बंशीय राजाहूं दानी पुरुषोंका नाम सुनने के समय निश्चयही आपने मेरे नामको भी सुना होगा ॥ १० ॥ हेनाथ ! आप सब प्राणियोंकी बुद्धि के साक्षीहो आपका ज्ञान कालसेभी नष्टनहीं होता क्या आप इससे अज्ञातहैं? परन्तु तौ भी आपकी आज्ञानुसार कहताहूं ॥ ११ ॥ पृथ्वीमें जितने रजकण, आकाशमें जितने नक्षत्र और वर्षाकी जितनी धारा हैं उतनीही दुग्धवती, तरुणी, शीलवान, रूपवान, गुणवान कपिला सुवर्णसे मढ़ेहुए सींगोंवाली न्यायपूर्वक पाईहुई चांदीसे मढ़हुए खुरोंवालीं, बछड़े युक्त बस्त्रादिसे अलंकृत गाएं—गुण शीलयुक्त बहुत कुटुम्बी सदाचारी तपस्वी शुभकर्म करनेवाले बेदपाठी उदार और युवा ब्राह्मणों को दानदीथीं १२—१४ ॥ गौ पृथ्वी सुवर्ण, घर, घोड़ा, हाथी, दासी समेत कन्या, तिल, चांदी शय्या, बस्त्र रत्न और सबप्रकार की सामग्री व रथ दान करता यज्ञ करता और बावड़ी कुआ बनवाता हुआ समय बिताताथा ॥ १५ ॥ एकसमय किसी एक ब्राह्मणकी गाय मेरे गोधनमें मिलगई मैंने बिनाजाने एक दूसरे ब्राह्मण को वह गाय दान करदी ॥ १६ ॥ वह ब्राह्मण उसको लियेजाताथा कि—उसीसमय उस गाय के प्रथम स्वामीने उसको देख उस ब्राह्मणसे कहा कि—यह गाय मेरीहै दूसरेने भी कहा कि यह मेरीहै, राजा नृगने मुझे दान दीहै ॥ १७ ॥ इसप्रकार से विवाद करते २ वह दोनो ब्राह्मण अपना २ कार्य पूरं होनेके कारण मुझसे आकर कहनेलगे कि आपही देनेवाले और आपही छीननेवालेहो, यह सुनकर मैं व्याकुल होगया ॥ १८ ॥ धर्मसंकट उपस्थित होजानेसे मैंने दोनों ब्राह्मणों से प्रार्थना करके कहा कि—उत्तम २ एकलक्ष गौएं दान करता हूं आप इसको देदो, ॥ १९ ॥ मैं आपका दास हूं बिना जाने मैंने अपराध किया है आप मेरे ऊपर अनुग्रह करो मैं अपवित्र नरक में पड़ता हूं आप इस कष्टसे मुझे बचाइये ॥ २० ॥

गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपराययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेयाम्यैर्दूतैर्नीतोयमक्षयम् । यमेनपृष्टस्तत्राहंदेवदेवजगत्पते ॥ २२ ॥ पूर्वंत्वमशुभंभुंक्षेउताहोनृपतेशुभम् । नान्तंदानस्यधर्मस्यपश्येलोकस्यभास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वंदेवाशुभंभुञ्जइतिप्राहपतेतिसः । तावदद्राक्षमात्मानंकृकलासंपतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्यवदान्यस्यतवदासस्यकेशव । स्मृतिर्नाद्यापिविध्वस्तामवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५॥ सत्वंकथंममविभोऽक्षिपथःपरात्मायोगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः । साक्षादधोक्षजउरुव्यसनान्धबुद्धेःस्यान्मेऽनुदृश्यइहयस्यभवापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेवजगन्नाथगोविन्दपुरुषोत्तम । नारायणहृषीकेशपुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७॥ अनुजानीहिमांकृष्णयान्तंदेवगतिंप्रभो । यत्रक्वापिसतश्चेतोभूयान्मेत्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्तेसर्वभावायब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । कृष्णायवासुदेवाय योगानांपतयेनमः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वातंपरिक्रम्यपादौस्पृष्ट्वास्वमौलिना । अनुज्ञातोविमानाग्र्यमारुहत्पश्यतांनृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णःपरिजनंप्राहभगवान्देवकीसुतः । ब्रह्मण्यदेवोधर्मात्माराजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥ दुर्जरंबतब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि । तेजीयसोऽपिकिमुतराज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहंहालाहलंमन्येविषंयस्यप्रतिक्रिया । ब्रह्मस्वंहिविषंप्रोक्तंनास्यप्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्तिविषमत्तारं वह्निरद्भिःप्रशाम्यति । कुलं

मेरी बातें सुनकर 'मैं राजाका दान नहीं लेता' ऐसे कहकर गौका त्यागी चलागया; 'मैंदशलक्ष गौओं का भी इच्छा नहीं करता' यह कहकर दूसरा ब्राह्मणभी चलागया ॥ २१ ॥ इसीअवसर में यमदूत आकर मुझको यमपुरी में लेगये । हे देव देव जगन्नाथ ! वहां यमने मुझ से पूँछाकि- ॥ २२ ॥हेराजन् ! आप प्रथम धर्म का भोग करोगे? या पापका ? धर्मानुष्ठान और दान से जो सुन्दर लोक प्राप्त होगा उसका तो मैं अन्तभी नहीं देखता ॥ २३ ॥ मैंने कहा कि हे देव ! मैं प्रथम पापकाही भोग करूंगा । तब उन्होंने कहा कि—तो नीचयोनि में पड़ । हे प्रभो!उसकालही मैंने देखा कि गिरगिट होकर पतितहुआहूं ॥ २४ ॥ हे केशव ! मैं ब्राह्मणों का हितकारी, दाता और आपका दासहूं मेरी स्मृति शक्ति अबतक नष्ट नहीं हुई । आप के दर्शन करने की मरेमनमें इच्छाथी किंतु मैं विस्मितहोरहाहूं कि आप किसप्रकार से मेरे दृष्टिगोचरहुए ॥ २५ ॥ इंद्रियों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह आप के निकट उपस्थित नहीं होसकता, अतएव योगेश्वरभी उपनिषद्रूप नेत्रोंद्वारा निर्मल हृदयमें आपका ध्यानकरसकते हैं, आप परमात्माहो । जिसकासंसारनष्ट होता है उसी को आपका दर्शन होता मैं सांसारिक दुःखों से अन्धा होरहाहूं सो मुझे आपका दर्शनहुआ ॥ २६ ॥ हे देव देव ! हेजगन्नाथ ! हेगोविंद ! हेपुरुषोत्तम ! हेनारायण ! हे हृषीकेश! हेपुण्यश्लोक ! हेअच्युत ! हेअव्यय ॥ २७ ॥ हेकृष्ण ! आप आज्ञा दीजिये मैं देवलोककोजाऊं हे विभो ! जिस किसीस्थान में रहूं मेरा चित्त आपही के चरण कमलों में लगारहे ॥ २८॥ आप से समस्त पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है परन्तु आप विकार रहितहो क्योंकि माया आपकी शक्ति है—। आप सब प्राणियों के आश्रय, आनन्दस्वरूप कर्मों के फल देनेवालेहो आप को नमस्कार है ॥ २९ ॥ राजानृग यह कहकर अपने मुकुटाग्रद्वारा श्रीकृष्णजी के दोनों चरणों का स्पर्श व उनकी परिक्रमाकर व उनसे आज्ञाले सबके सन्मुखही विमानपर बैठकर चलागया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणों के भक्त धर्मात्मा श्रीकृष्णजी क्षत्रियों को शिक्षा देतेहुए अपने कुटुम्बियों से कहने लगे कि ॥ ३१ ॥ अहो ! ब्राह्मणोंका थोड़ासाभी भक्षण किया हुआ धनअग्नि की समान तेजस्वि मनुष्यों कोभी पचना कठिन होजाता है फिर मिथ्या अहङ्कार रखनेवाले राजाओंको कैसे पचे ॥३२॥ मैं हलाहलको विष नहीं जानता क्योंकि उसकातो उपाय है । ब्राह्मण के धनकोही यथार्थ विषकहा जासकता है क्योंकि पृथ्वीपर इसका यत्न नहीं है ॥ ३३ ॥ विषतो खानेवाले कोही नाश करता है

समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् । प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥३५॥ राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते । निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥ गृह्णन्ति यावतः पांसून्क्रन्दतामश्रुबिन्दवः । विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः । कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृद्ध्वाऽल्पायुषो नराः । पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः । घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥ यथाऽहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः । तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः । अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः । पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच । बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च । रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः । इत्यारो

और अग्नि जलसे शांत होजाता है परन्तु ब्रह्म द्रव्यरूप काठसे जोअग्नि उत्पन्न होता है वह वंश के मूलतकको जलाडालता है ॥ ३४ ॥ यदि विनासंमति लिये ब्राह्मण के धनका भोग किया जावे तो तीन पीढियोंका नाश होता है हठात् बल पूर्वक छीनलेने से पहिली और पिछली दश पीढियों का नाशहोता है ॥३५॥ जोब्राह्मण के धनकी इच्छा करते हैं वे नरकके अभिलाषी होते हैं अतएव ब्राह्मण के धनकी इच्छा वाले मूर्ख राजा राज्यलक्ष्मी समेत पतित होते हैं वे अपनी हानिको नहीं देखते ॥३६॥ दान,शील,कुटुंबी ब्राह्मण की वृत्ति हरण करने पर वह जब रोना आरम्भ करताहै तब उसके आंसुओं से जितने रजकण भीगते हैं, निरंकुश ब्रह्मधन हारी राजा और राज परिवार उतनेही वर्षतक कुम्भीपाक नरक में पकाये जाते हैं ॥ ३७–३८ ॥ जोअपना दिया अथवा दूसरे का दिया हुआ ब्राह्मणका धनहरता है वह साठ सहस्र वर्षतक विष्टाका कीड़ा होकर रहता है॥३९॥ मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवे कि जिस धनसे राजा अल्पायु, पराजित, राजच्युत, और अत्यंत दुःखित होते हैं ॥ ४० ॥ हे बंधुबांधवो! ब्राह्मण यदि अपराध भी करे तोभी उसका अनिष्ट नहीं करनाचाहिये। वह यदि वध वा शाप देनेपरभी प्रवृत्तहो तोभी उनको नित्य नमस्कार करना चाहिये ॥ ४१ ॥ मैं जैसे सावधान चित्तसे प्रत्येक समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूं वैसेही तुमको भी करना चाहिये । जो इसके अन्यथा करेंगे मैं उनको दंडदूंगा ॥ ४२ ॥ न जानकरभी जो ब्राह्मण का धनहरते हैं वे नरकमें गिरते हैं। इसही कारण राजानृग गिरगिट होकर पतित हुआथा॥४३॥ हे राजन् ! सर्वलोक के पवित्र करनेवाले भगवान् कृष्णजी द्वारका की प्रजाको सदुपदेश दे अपने घरको गये ॥ ४४ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांएकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हेकुरुश्रेष्ठ ! भगवान बलभद्रजी बंधुओं के दर्शन करने के निमित्त उत्कंठितहो रथपर बैठ नंदके गोकुल में आये ॥ १ ॥ वहां आकर उत्कंठित हुए गोप गोपियों से मिल पितामाताको बंदनाकी । उन्हों ने आशीर्वाद देकर उनका सम्मान करके कहाकि ॥ २ ॥

ष्यांकमालिङ्ग्य नेत्रैःसिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः यथावयोयथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥ समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः । विश्रान्तंसुखमासीनं पप्रच्छुःपर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयंस्वेषु प्रेमगद्गदयागिरा । कृष्णेकमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नोबान्धवाराम सर्वेकुशलमासते । काच्चित्स्मरथनोराम यूयंदारसुतान्विताः ॥ ७ ॥ दिष्ट्याकंसोहतःपापो दिष्ट्यामुक्ताःसुहृज्जनाः । निहत्यनिर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्योहसन्त्यःपप्रच्छु रामसंदर्शनादृताः । कच्चिदास्तेसुखंकृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरतिवा बन्धून्पितरंमातरंचसः । अप्यसौमातरंद्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति । अपिवास्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरंपितरं भ्रातृन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि । यदर्थेजहिमदाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥ तानःसद्यःपरित्यज्य गतःसंछिन्नसौहृदः । कथंनुतादृशंस्त्रीभिर्न श्रद्धीयेतभाषितम् ॥ १२ ॥ कथंनुगृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचःकृतघ्नस्यबुधाःपुरस्त्रियः। गृह्णन्तिवैचित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥ किंनस्तत्कथयागोप्यः कथाःकथयतापराः । यात्यस्माभिर्विनाकालो यदितस्यतथैवनः ।१४। इतिप्रहसितंशौरेर्जल्पितं चारुवीक्षितम् ॥ गतिंप्रेमपरिष्वंगं स्मरन्त्योरुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताःकृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः ॥ सान्त्वयामास भगवान्नानाऽनु-

हे दाशार्ह ! तुम जगदीश्वर छोटेभाई समेत हमारा निरंतर पालन करो । यह कहकर गोद में ले नेत्रों के जलसे बलदेवजी को भिगोने लगे ॥ ३ ॥ हलधर गोपोंको वन्दनाकर छोटी अवस्थावाले गोपों से पूजित हुए ॥ ४ ॥ समान वयवाले गोपों के सम्बंध और बंधुता के अनुसार हास्य और हस्त ग्रहणादि द्वारा मिल सम्भाषण कर सुखपूर्वक वहां बैठ और कुशल पूछा, ॥ ५ ॥ उसकाल सब गोप कि—जिन्हेंने श्रीकृष्ण जीके निमित्त समस्त विषयों को छोड़ दियाथा उनके निकट आय चारोंओर बैठगये और बलरामजी से पूछनेलगे कि—६ ॥ हेराम ! हमारे सब बन्धु बांधव कुशल से तो हैं ? तुम दोनोंजन स्त्री पुत्रोंको पाकर क्या कभी हमारा भी स्मरण करतेहो ? ॥७॥ अच्छा हुआ कि—कंस मारागया और सब बांधव दुःखसे छूटे। अच्छाहुआ कि—तुमने शत्रुओं को हराय उनका नाशकर गड़का आश्रय लिया ॥ ८ ॥ गोपियें रामको देख आनन्दितहो हंसते२ कहने लगीं कि—नगरकी स्त्रियों के प्यारे श्रीकृष्णजी तो सुखसे हैं ॥ ९ ॥ वह क्या कभी पिता माता और बन्धुओं का स्मरण करतेहैं ? वह महाभुज क्या कभी हमारी सेवा का भी स्मरण करतेहैं ॥ १० ॥ हेयदुनन्दन ! हेप्रभो ! हमने उनके निमित्त दुस्त्यज माता, पिता, भाई, पति, और बहिन को त्यागदिया ॥ ११ ॥ तौ भी वह एकसाथ मित्रताको छोड़ हमें त्यागकर चलेगये वह जौतिसमय जो कहगयेथे उन मनोहर बाक्योंपर कौन स्त्री विश्वास न करै ॥ १२ ॥ दूसरी एक गोपीने कहा कि नगरकी स्त्रियें चतुर होतीहैं वह कृतघ्न और अस्थिर चित्तवाले श्रीकृष्णके बचनों पर कैसे विश्वास करता होगी ? अथवा श्रीकृष्णकी बातें अति मनोहरहैं वहभी उनके सुन्दरहास्य युक्त कटाक्ष विक्षेप द्वारा कामदेवसे पीड़ित और चंचलहो उनकी बातोंपर विश्वास करलेतीहों । ॥ १३ ॥ दूसरी गोपीने कहा कि—हेगोपीगण ! उनकी बातोंसे हमारा क्या प्रयोजन है दूसरी बात कहो यदि हमारे बिना उनका समय व्यतीत होताहै तो हमारा भी उनके बिना समय व्यतीत होताहै ॥ १४ ॥ऐसी बातें कह वह सब स्त्रियां श्रीकृष्णजीके हास्य बिलास बातें करना सुंदरदृष्टि गति और प्रेमसे मिलने का स्मरणकर रोनेलगीं ॥ १५ ॥ नाना प्रकार के विषयोंको जानने वाले

नयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौमासौतत्रचावात्सीन्मधुं माधवमेवच । रामःक्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना । यमुनोपवनेरेमे सेवितेस्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषितादेवी वारुणीवृक्षकोटरात् । पतन्तीतद्वनंसर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥ तंगन्धंमधुधाराया वायुनोपहृतंबलः । आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिःसमंपपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः । वनेषुव्यचरत्क्षीवो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुण्डलो मत्तोवैजयन्त्याचमालया । बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ सआजुहावयमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः । निजंवाक्यमनादृत्य मत्तइत्यापगांबलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितोविचकर्षह ॥ २३ ॥ पापेत्वंमामवज्ञाय यन्नायासिमयाऽऽहुता ॥ नेष्येत्वांलांगलाग्रेण शतधाकामचारिणीम् ॥ २४॥ एवंनिर्भर्त्सिताभीता यमुनायदुनन्दनम् । उवाचचकितावाचं पतितापादयोर्नृप ॥ २५ ॥ रामराममहाबाहो नजाने तवविक्रमम् । यस्यैकांशेन विधृता जगतीजगतःपते ॥ २६ ॥ परंभावंभगवतो भगवन्मामजानतीम् । मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततोव्यमुंचद्यमुनां याचितोभगवान्बलः । विजगाहजलंस्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामंविहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे । भूषणानिमहार्हाणि ददौकान्तिःशुभांस्रजम् ॥ २९॥ वसित्वावाससीनीले मालामामुच्यकांचनीम् । रेजेस्वलंकृतोलिप्तो

महापण्डित रामने श्रीकृष्णजी के मनोहर सम्वादों द्वारा उनको सान्त्वना की ॥ १६ ॥ बलदेवजी रात्रि कालमें गोपियोंको रमण कराते हुए चैत्र वैशाख दोमहीने वहां रहे ॥ १७ ॥ और स्त्रियों से घिरकर पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से उज्ज्वल और कमलों की गंधसे सुगंधित हुए वायुसे सेवित यमुना के उपवन में विहार किया ॥ १८ ॥ वारुणी देवी वरुणकी आज्ञासे वृक्षोंकी खोहसे पृथ्वी पर पड़ने लगी उसकी सुगंध से समस्त वन सुगंधित होगया ॥ १९ ॥ बलदेवजी ने उस मधुकी धाराकी सुगंधको चलती हुई वायुसे सूंघ वहांजाय स्त्रियों समेत उसका पानकिया ॥ २० ॥ बलदेवजी के नेत्र मदसे विह्वल होगये और उन्मत्तहो वनमें भ्रमण करनेलगे। सबस्त्रियें उनके चरित्रों को गानेलगीं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! बलदेवजी के गलेमें वैजयन्ती माला और कानमें एक कुंडल शोभित होरहा है । हास्य युक्त मुख कमल पसीने के बिंदुरूप हिमकरण से भीगा हुआ है ॥२२॥ उन्होंने मदोन्मत्तहो जलक्रीड़ा करने के निमित्त यमुना को बुलाया परन्तु यमुना न आई । इससे उन्होंने विचारा कि मैं मत्तहूं इस कारण यमुना ने मेरे वचनों का तिरस्कार किया है । बलदेवजी यह विचारकर कुपितहो हलके अग्र से यमुना को खींचकर कहनेलगे ॥ २३ ॥ अरेदुष्टा ! मैंने तुझे बुलाया परन्तु तू मेरा तिरस्कारकरके न आई, तू अपनी इच्छानुसार कार्य करती है; अतएव हलके अग्रभागसे तेरी सौ धाराएं किये देताहूं ॥ २४ ॥ हेराजन् ! इसप्रकार से तिरस्कार करने पर भयभीत यमुना चकितहोकर कांपतीहुई बलदेवजी के चरणों पर गिरकर कहने लगी कि—हेराम ! हेमहाबाहो ! मुझे आपका पराक्रम नहीं ज्ञातथा—हेजगत्पते ! आपके एक अंश से पृथ्वी धारण कीजाती है ॥ २६ ॥ हेभगवन् ! मैं आपकी अपारमहिमा को नहीं जानती। हेविश्वात्मन् ! हेभक्तवत्सल ! मुझ शरण में आई हुईको आप छोड़दो ॥ २७॥ यमुना के इसप्रकारकहने पर बलदेवजी ने उसको छोड़ दिया और हाथिनियों समेत हाथी की समान स्त्रियों समेत जल में उतरे ॥ २८ ॥ वह इच्छानुसार जल में विहार करके बाहर निकले, लक्ष्मीजी ने उनको नीलवस्त्र और आभूषण और कल्याणकारी मालादी ॥ २९ ॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र व आभूषण और

माहेन्द्र इववारणः ॥ ३० ॥ अद्यापिदृश्यते राजन्यमुना कृष्टवर्त्मना । बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यंसूचयतीवहि ॥ ३१ ॥ एवंसर्वानिशायाता एकेवरमतोव्रजे । रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे दश० उ० पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ नन्दव्रजंगतेरामे करूषाधिपतिर्नृप । वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतंकृष्णायप्राहिणोत् ॥ १ ॥ त्वंवासुदेवोभगवानवतीर्णो जगत्पतिः । इतिप्रस्तोभितोबालैर्मेनआत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥ दूतंचप्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने । द्वारकायांयथाबालोनृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तुद्वारकामेत्यसभायामास्थितंप्रभुम् । कृष्णंकमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोहमेकएवनचापरः । भूतानामनुकम्पार्थंत्वंतुमिथ्याऽभिधांत्यज ॥५॥ यानित्वमस्मच्चिह्नानिमौढ्याद्बिभर्षिसात्वत त्यक्त्वैहिमांत्वंशरणंनोचेद्देहिममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कत्थनंतदुपाकर्ण्यपौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्याउच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाचदूतंभगवान्परिहासकथामनु । उत्स्रक्ष्येमूढचिह्नानियैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखंतदापिधायाज्ञकङ्कगृध्रवटैर्वृतः । शयिष्यसेहतस्तत्रभविताशरणंशुनाम् ॥ ९ ॥ इतिदूतस्तदाक्षेपंस्वामिनेसर्वमाहरत् । कृष्णोऽपिरथमास्थायकाशीमुपजगामह ॥ १० ॥ पौण्ड्रकोपितदुद्योगमुपलभ्यमहारथः । अक्षौ

सुवर्ण की मालाधारणकर भली भांति से अलंकृत और चन्दनसे लिप्तहो इंद्र के हाथीकी समान शोभा पानेलगे ॥ ३० ॥ हेमहाराज ! बलदेवजी ने जो यमुनाजी को खींचा इससे उस स्थानपर यमुनाजी टेढ़ी होकर अबतक उनके पराक्रम को प्रगटकरती हैं ॥३१ ॥ इसप्रकार से व्रजनारियों के मधुर बिलासद्वारा उन्मत्त चित्तहो बलदेवजी ने उनके साथ रमण किया वह सब रात्रियें एक रात्रि के समान बीत गईं ॥ ३२ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधउ०सरलाभाषाटीकायांपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हेराजन् ! बलराम जी के नंद व्रजमें चले जानेके कुछ दिनोंके उपरांत करूष देशके राजा अज्ञानान्ध पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूं" ऐसा कह श्रीकृष्णजी के निकट दूतभेजा ॥ १ ॥ मूर्ख मनुष्यों के "आप भगवान जगत्पति वासुदेवहो पृथ्वीपर आप अवतीर्ण हुएहो" यह कहने पर वह बहक कर अपनेको बासुदेवही समझने लगा ॥ २ ॥ और खेलके समय बालकों से बनाये हुए कल्पित बालक राजाकी समान उस मूर्ख मंद बुद्धिने द्वारका में भगवान के निकट दूतभी भेजदिया ॥ ३ ॥ दूत द्वारकामें आय सभामें उपस्थित हुआ और वहां बैठेहुए कमल नेत्र श्रीकृष्णजी से अपने राजाका संदेशा कहने लगा ॥४॥ मैंही एक बासुदेवजी हूं दूसरा कोई नहीं है; प्राणियों पर दया प्रकाश करने के निमित्तहीं मैंने अवतार लिया है मिथ्या 'बासुदेव' इस नामको छोड़ ॥ ५ ॥ हे यादव ! तूने मूर्खता बश मेरे जिन चिन्हौंको धारण किया है उन सबको छोड़ मेरे निकट आयमेरी शरणले; नहीं तो मेरेसाथ युद्धकर।॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले किहेराजन् ! उग्रसेनादि सभासद उस अल्पबुद्धि पौंड्रककी ऐसी बातोंको सुनकर उच्चस्वर से हँस उठे ॥ ७ ॥ भगवान ने हंसकर उस दूतसे कहा—रेमूढ़ ! जिनकी सहायता से तू ऐसी बड़ाई करता है मैं उन सब सुदर्शनादि चिह्नों को छुड़ायदूंगा ॥ ८ ॥ तू जिसमुखसे बकता है उस मुख को ढककर समर में सोवेगा, कंक, गीध और बट पक्षी तुझको घेरेंगे उस स्थान में तू कुत्तों का आश्रयहोगा ॥ ९ ॥ उस दूत ने इनसब बाक्यों को स्वामी से जाकरकहा । श्रीकृष्णजी भी रथपर बैठकर काशी को चले ॥ १० ॥ महारथ पौंड्रकभी श्रीकृष्णजी के इस उद्योग को देख दो अक्षौहिणी

हिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप । अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः ॥ १२ ॥ शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् । बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् । अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः । असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णास्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् । गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं यथा युगान्ते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥ १७॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणाऽवखण्डितैः । बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् । ॥ १८ ॥ अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भोः पौण्ड्रकयद्भवान् । दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मेयत्त्वयाज्ञ मृषाधृतम् । व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥२०॥ इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् । शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्त्रिभिः। न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोषमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः । द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः । बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्ड-

सेनाले शीघ्र नगर से बाहरहुआ ॥ ११ ॥ हेराजन् ! उसका मित्र काशिराजभी तीन अक्षौहिणी सेनाले उसकी सहायता के निमित्त वहां आया हरिने देखा कि— ॥ १२ ॥ पौंड्रक शंख, श्रेष्ठ खड्ग, गदा, धनुष और श्रीवत्स चिह्नोंसे चिह्नित कौस्तुभ व बनमालाको धारण कियेहुए है ॥ १३ ॥ पीताम्बर व उत्तरीय वस्त्रों और सुन्दर आभूषणों से अलंकृत है । उसके कानों में मकराकृत कुण्डल शोभायमान हैं ॥ १४ ॥ रेशमी वस्त्र धारण कियेहुए वह कृत्रिम गरुड़ की पीठपर बैठा है । रंगभूमि के नटकीसमानकृत्रिम वेशधारी उस पौंड्रक को अपनावेश बनाएहुए देख भगवान् बहुत हँसे ॥ १५ ॥ शत्रु, शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश और बाणों से भगवान पर प्रहार करने लगे ॥ १६ ॥ प्रलयकाल की अग्नि जैसे सबप्रजा का संहार करती है, वैसही श्रीकृष्णजी गदा, खड्ग, चक्र, और बाणों द्वारा पौंड्रक और काशिराजकीचतुरङ्गिणी सेना का नाश करने लगे ॥ १७ ॥ रणभूमि चक्र से टुकड़े २ हुए रथ, अश्व, हाथीऔर पैदलों से व्याप्तहोगई वीर पुरुषों की बीरताको बढ़ानेवाली वह रणभूमि प्रलयकालके रुद्रकेरणस्थल की समान शोभा पाने लगी ॥ १८ ॥ अनन्तर भगवान ने पौंड्रक से कहा अरे पौंड्रक ! दूतके मुख से जो तूने मुझे कहला भेजाथा वे शस्त्र अब तुझपरही छोड़ताहूं ॥ १९ ॥ रेमूर्ख ! जो तूने मेरा झूठानाम धर लिया है वह अभी छुड़ादूंगा यदि मैं युद्ध न चाहता होऊं तौ तेरी शरण आऊं ॥ २० ॥ यह कहकर इंद्र जैसे बज्रद्वारा पर्वत को काटते हैं तैसेही कृष्णजी ने बाणों से पौंड्रक को रथहीन कर उसका शिर काटडाला ॥ २१ ॥ और इसी प्रकार बाणोंद्वारा काशिराज कीभी देह से मस्तक को काट, बायु से चलायमान कमलपत्र की समान काशीपुरी में फेंकदिया ॥२२॥ श्रीहरि इसप्रकार से गर्वित पौंड्रक को उस के मित्रसमेत मार आप द्वारका में आये । सिद्धगण उनकी अमृत कथाका गानकरने लगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! पौंड्रक विद्वेष के कारण सर्वदाही भगवान का ध्यानकरता रहताथा अतएव उसके सब बन्धन कटगये ॥ २४ ॥ इधर काशीपुरीके राज

लम् । किमिदंकस्यवावक्त्रमितिसंशयिरेजनाः ॥ २५ ॥ राज्ञःकाशिपतेर्ज्ञात्वाम-हिष्यःपुत्रबान्धवाः । पौराश्चहाहताराजन्नाथनाथेतिप्रारुदन् ॥ २६ ॥ सुदक्षिणस्तस्यसुतःकृत्वासंस्थाविधिंपितुः । निहत्यपितृहंतारंयास्याम्यपचितिंपितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनाऽभिसंधायसोपाध्यायोमहेश्वरम् । सुदक्षिणोऽर्चयामासपरमेणसमाधिना ॥ २८ ॥ प्रीतोविमुक्तोभगवांस्तस्मैवरमदाद्भवः । पितृहन्तृवधोपायंसववेवरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निंपरिचरब्राह्मणैःसममृत्विजम् । अभिचारविधानेनसचाग्निःप्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यतिसङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः । इत्यादिष्टस्तथाचक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥ ततोऽग्निरुत्थितःकुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया । आलिहन्सृक्किणीनग्नोविधुन्वंस्त्रिशिखंज्वलत् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यांतालप्रमाणाभ्यांकम्पयन्नवनीतलम् । सोऽभ्यधावद्वृतोभूतैर्द्वारकांप्रदहन्दिशः ॥ ॥३४॥तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः। विलोक्यतत्रसुःसर्वेवनदाहेमृगायथा ॥३५॥अक्षैःसभायांक्रीडन्तंभगवंतं भयातुराः । त्राहित्राहित्रिलोकेशवह्नेःप्रदहतःपुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वातज्जनवैक्लव्यंदृष्ट्वास्वानांचसाध्वसम् । शरण्यःसंप्रहस्याहमाभैष्टेत्यविताऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यान्तर्बहिःसाक्षीकृत्यांमाहेश्वरींविभुः । विज्ञायतद्विघातार्थं पार्श्वस्थंचक्रमादिशत् ॥३८॥ तत्सूर्यकोटिप्रतिमंसुदर्शनं जाज्व

भवन के द्वारमें गिरेहुए कुण्डलों समेत शिरको देखकर मनुष्य " यह क्या ! किसका शिर है? " इसका बिचार करने लगे ॥ २५ ॥ परन्तु फिर काशीपति का शिर जानकर राजरानियें,पुत्र,बांधव, गण और सबप्रजा " हा ! मरगये, हाराजन् ! हानाथ ! हानाथ ! ऐसे कहकर ऊंचे स्वरसे रोने लगे ॥ २६ ॥ अनन्तर राजा के पुत्र सुदक्षिण ने पिता की मृतक क्रिया करके प्रण किया कि- पिता के मारनेवाले को मारकर पिताके ऋण से मुक्तहूंगा । यह निश्चयकर वह उपाध्यायों समेत परम समाधि योगसे महादेवजी की पूजाकरने लगा ॥ २७ । २८ ॥ भगवान महादेवजी प्रसन्न हो उससे कहने लगे कि " बरमांग " । उसने पिता के मारनेवाले के बधका उपायरूप बरमांगा ॥ २९ ॥ महादेवजी ने कहा कि-ब्राह्मणों के साथ अभिचार के विधानानुसार ऋत्विक् के समान दक्षिणाग्नि की उपासना करो । ऐसा होनेसे वह अग्नि हिंसाकार्यमें नियुक्तहो-प्रमथ गणोंसे घिर कर तुम्हारा कार्य पूरा करेगा । सुदक्षिण ने यह आज्ञा पाय नियम धारणकर श्रीकृष्णजी पर अभिचार करने को वैसेही किया ॥ ३० । ३१ ॥ अनन्तर अति भयानक अग्नि मूर्त्तिमानहो कुंड से बाहरनिकला । उसकी शिखा और दाढ़ी मूँछ तपेहुए तांबे की समानथे और दोनों नेत्रों से अङ्गार निकलतेथे ॥ ३२ ॥ डाढें और प्रचण्ड भौंहों द्वारा मुख अत्यन्त भयानक होरहाथा । यह अग्नि अपनी जिह्वा से दोनों गलफड़ों को चाटता, तालकी समान दीर्घ दोनों पैरों से पृथिवीको कंपाता, दिशाओं को जलाता, प्रमथगण के साथ नग्नवेश से प्रकाशमान होताहुआ द्वारका के सन्मुख दौड़ा- ॥ ३३ । ३४ ॥ अभिचार कार्य से उत्पन्न हुई इस भयानक अग्निको आतादेख बन जलने के समय पशुओं की समान द्वारकावासी व्याकुल होगए ॥ ३५ ॥ भगवान उस समय में चौपड़खेलरहेथे । सबप्रजा उनकी शरण में हो, भयभीतहो कातरस्वर से भगवान से कहने लगी–हे त्रिलोकनाथ ! नगर अग्नि से दग्ध होता है; रक्षाकरो ॥ ३६॥ श्रीकृष्णजी प्रजाकी उस व्याकुलता को सुन और सुहृदों को भयभीत देख हँसकर कहनेलगे " भय न करो मैं तुम्हारी रक्षाकरताहूं ॥ ३७ ॥सबके अन्तर और बाहरके साक्षी भगवान ने उस अग्निको माहेश्वरीअग्नि जान उसके नाश करने के निमित्त निकट में रहेहुएचक्र को आज्ञाकी ॥३८॥ श्रीकृष्णजी के उस

ह्यमानं प्रलयानलप्रभम्। स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांगपाणेरस्त्रौजसा सनृप भग्नमुखो निवृत्तः। वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥ चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम्। सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्। भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम्। समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

राजोवाच। भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः। अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच। नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः। सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम्। पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत्। आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥ क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम्। देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूले न्यमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन्। अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥ पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः। निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥७॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः। श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमा

कोटिसूर्य की समान प्रकाशित सुदर्शनचक्र ने प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलितहो अपने तेज से आकाश, दिशा और अन्तरिक्षको प्रकाशितकर उस अग्निको बहुत पीड़ित किया ॥३९॥ हेराजन् ! उस कृत्याग्नि ने भगवान के अस्त्र के तेज से दुःखितहो वहां से लौटकर काशी में आय सुदक्षिण को ऋत्विक् और सभासदों समेत जलाडाला ॥ ४० ॥ विष्णुजी का चक्र भी अग्नि के पीछे २ आय अटारी, सभामंडप, महलों, छज्जों और कोठों से व्याप्त कोषशाला, हाथीशाला, अश्वशाला और अन्नशाला से शोभायमान बाराणसी में प्रवेश कर समस्त काशीकोजलाय फिर श्रीकृष्णजी के समीप आय उपस्थितहुआ ॥ ४१ । ४२ ॥ हेराजन् ! जोमनुष्य सावधानहो श्रीकृष्णजी के इस पराक्रम को सुनै वा सुनावेगा वह सबपापों से छूटजावेगा ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम० उ० सरलाभाषाटीकायांषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

राजानेकहाकि–हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मा, अनंत, अप्रमेय बलरामजी ने और भी जो २ कर्म कियेथे, मैं उन सब पराक्रमोंको सुनने की इच्छा करताहूं ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! सुग्रीवका मंत्री और मैंदका भाई पराक्रमी द्विविद नामक एक बानर भौमासुरका सखाथा ॥२॥ वह बानर मित्रका बदला लेनेके निमित्त उत्पात करनेकी इच्छासे अग्नि लगाय २ गौशाला, नगर, गांव और घोषोंको जलाने लगा ॥ ३ ॥ दशसहस्र हाथियों की सामन बलबाला वह बानर पहाड़ों के शिखरोंको उखाड़कर प्रदेशोंको विशेषकर भगवान के निवास स्थानोंको चूर्ण करनेलगा ॥४॥ कभी समुद्रमें बैठ दोनों हाथोंसे जलको उछाल २ किनारे के देशोंको डुबोता था। दुष्ट द्विविद श्रेष्ठ ऋषियों के आश्रमों के वृक्षोंको उखाड़ २ विष्ठा, और मूत्र कर २ के उनकी पूजाकी सामग्रीको दूषित करने लगा ॥ ५—६ ॥ भौंरा जैसे दूसरे कीड़ोंको पकड़ अपने घरमें बंदकर रखता है वैसेही वह अभिमानी बानर भी स्त्री पुरुषोंको पर्वतकी गुफामें डाल पत्थर से उनको बंदकर देता था ॥ ७ ॥ इसप्रकार से सब देशोंमें उत्पात करता, कुलस्त्रियोंको दूषित करता २ वह बंदर एक समय सुंदर गीतसुन रैवतक पर्वत पर जहां बलदेवजी थे वहां आया ॥ ८ ॥ उसने वहां आकर

लिनम् । सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायन्तंवारुणींपीत्वा मद-
विह्वललोचनम् । विभ्राजमानंवपुषा प्रभिन्नमिववारणम् ॥१०॥ दुष्टः शाखामृगः
शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् । चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥
तस्यधार्ष्ट्यंकपेर्वीक्ष्य तरुण्योजातिचापलाः।हास्यप्रियाविजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः
॥ १२ ॥ ताहेलयामासकपिर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः । दर्शयन्स्वगुदंतासां रामस्य
चनिरीक्षतः ॥ १३ ॥ तंग्राव्णाप्राहरत्क्रुद्धो बलःप्रहरतांवरः । सवंचयित्वाग्रावाणं
मदिराकलशंकपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वाहेलयामास धूर्तस्तंकोपयन्हसन् । निर्भिद्यक
लशंदुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ १५ ॥ कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्ध
तः । तंतस्याविनयंदृष्ट्वा देशांश्चतदुपद्रुतान् । क्रुद्धोमसलमादत्त हलंचारिजिघां
सया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना । अभ्येत्यतरसातेन बलं
मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तंतुसंकर्षणोमूर्ध्नि पतन्तमचलोयथा । प्रतिजग्राह बलवा-
न्सुनन्देनाहनच्चतम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजेरक्तधारया ॥ गिरिर्यथा
गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यंसमुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥
तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलःशतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येनरुषाजघ्ने तंचापिश
तधाऽच्छिनत् । एवंयुध्यन्भगवता भग्नेभग्नेपुनःपुनः ॥ २१ ॥ आकृष्यसर्वतो वृ
क्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् । ततोऽमुंचच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः । तत्सर्वंचूर्णया-
मास लीलयामुसलायुधः ॥ २२ ॥ सबाहूतालसंकाशौ मुष्टीकृत्यकपीश्वरः । आ-
साद्यरोहिणीपुत्रं ताभ्यांवक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥ यादवेन्द्रोऽपितंदोर्भ्यां त्यक्त्वामु-

देखाकि बलदेवजी के गलेमें बनमाला पड़ीहुई है उनके सब अंग देखने में अति सुंदर हैं । वह
स्त्रियों के बीचमें बैठ ॥ ९ ॥ वारुणी को पी मदसे विह्वल नेत्रहो गानकर रहेहैं । शरीर के देखने
से जानपड़ता है कि यह एक मत्तहाथी हैं ॥ १० ॥ वह दुष्ट बन्दर डालियोंपर बैठ वृक्षोंको हिला २
कर किलकिला शब्द करने लगा ॥ ११ ॥ चंचल स्वभाव वाली, हास्यही जिनको प्रिय है ऐसी
बलदेवजी की स्त्रियें उस कपिकी ढिठाईको देख हंसने लगीं ॥ १२ ॥ वह कपि बलरामजी के सामने
ही; अपनी गुदाको दिखाय, भौंहेचलाय, मुख टेढाकर उन स्त्रियोंका बारंबार अनादर करने लगा
॥ १३ ॥ वीरश्रेष्ठ रामने क्रोधित होकर उसपर पत्थरका टुकडाफेंका वह दुष्ट बानर पत्थर के टु-
कडेको बचाय मदिरा का कलश ले दूरजाय हास्यादि से बलदेवजी को क्रोध उत्पन्न कराय हंसने
लगा । उस दुष्टने इस परभी शांत न हो मदिराका कलस फोड़डाला वह स्त्रियों के वस्त्र खींचकर
फाड़ने लगा तथा नाना कुकर्म कर २ के उसने बलदेवजी के साथ बैरबांधा ॥ १४-१५-१६ ॥
बलदेवजी उस बानर की दुष्टताको देखकर क्रोधित होगये और शत्रुके मारने के निमित्त उन्हों
ने हल मूसलको उठाया ॥ १७ ॥ महा पराक्रमी द्विविदने हाथों से शाल वृक्षको उखाड़ निकट
आय बलपूर्वक बलदेवजी के शिरपर उसका प्रहार किया ॥ १८ ॥ बलरामजी पहाड की समान
अचल खडेरहे और मस्तक पर गिरते समय उस वृक्षको पकड मूसल से उस बानर पर प्रहार
किया ॥ १९ ॥ वह बानर मूसल के प्रहारको कुछ न गिन, गेरूकी धारा से शोभायमान पहाड़
की समान रुधिरकी धारासे शोभापाने लगा ॥ २० ॥ उस बानरने फिर दूसरी बारभी अत्यंत
क्रोधितहो बलपूर्वक वृक्षको उखाड़ और उसके पत्तेनोच उसका बलदेवजी पर प्रहार किया । ब-
लरामजी ने उस वृक्षके सौटुकडे करडाले॥२१॥बानरने और भी एक वृक्षका प्रहारकिया, हलधर
ने उसके भी सौटुकडे करडाले । बानर ने इस प्रकार से युद्ध कर२ वृक्षों के टूटने से बनमें से वृक्ष
लाय २ उस बनको निर्वृक्ष करदिया ॥ २२ ॥ अंतमें क्रोधितहो वह बलदेवजी के ऊपर पत्थर बर-
साने लगा । रामने सहज सेही उन सबका चूर्णकरदिया ॥ २३ ॥ कपिराजने तालकी समान दोनों

सललांगले । जत्रावभर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकम्पेतेन पतता सटंकःसवनस्पतिः । पर्वतःकुरुशार्दूलवायुना नौरिवाम्भसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुसाध्विवतिचाम्बरे । सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ।२६। एवंनिहत्यद्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् । संस्तूयमानो भगवांजनैःस्वपुरमाविशत् इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतांराजँल्लक्ष्मणांसमितिञ्जयः । स्वयंवरस्थाम हरत्साम्बोजाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिताऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः । कद र्थीकृत्यनः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥ बध्नीतेमंदुर्विनीतंकिंकरिष्यन्तिवृष्णयः येऽस्मत्प्रसादोपचितांदत्तांनोभुञ्जतेमहीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतंसुतंश्रुत्वायद्येष्यन्तीह वृष्णयः । भग्नदर्पाः शमंयान्तिप्राणाइवसुसंयताः ॥ ४ ॥ इतिकर्णः शलोभूरिर्यज्ञ केतुः सुयोधनः । साम्बमारेभिरेबद्धुंकुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाऽनुधावतः साम्बोधार्तराष्ट्रान्महारथः । प्रगृह्यरुचिरंचापंतस्थौसिंहइवैकलः ॥ ६ ॥ तंतेजिघृ क्षवः क्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिभाषिणः । आसाद्यधन्विनोबाणैः कर्णाग्रण्यःसमाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठकुरुभिर्यदुनन्दनः । नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भःसिंहःक्षुद्र मृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्यरुचिरंचापंसर्वान्विव्याधसायकैः । कर्णादीन्षड्रथान्वीर स्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहानेकैकेनचसारथीन् । रथिनश्चमहे

भुजाओं की मुट्ठीबांध बलरामजी के निकट आय उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ २४ ॥ भगवान बलरामजी ने क्रोधितहो हल मूसलका छोड उसकी दोनों हंसलियों पर दोनों मुठियोंका प्रहारकिया वहरक्त उगलता हुआ पृथ्वीपर गिरगया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उसके गिरने से समुद्र में वायुसे कांपते हुए जहाज की समान उस पर्वतके वृक्ष और बनस्पतियें कांपउठीं ॥ २६ ॥ आकाश से देवतागण फूल बरसानेलगे तथा सिद्ध और मुनि "जय जय" कर "साधु साधु" कहनेलगे ॥२७॥ हे राजन् ! भगवान बलभद्रजी संसार में उत्पात करने वाले द्विविदको इस प्रकार से मार अपने नगर में आये, देवता उनकी स्तुति करनेलगे ॥ २८ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! इन सब घटनाओंके उपरांत दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणाका स्वयम्बर हुआ जाम्बवती के पुत्र युद्ध विजयी सांबने स्वयम्बरमेंसे उसका हरण किया, ॥ १ ॥ तब कौरवों ने कुपित होकर कहा, कि—इस दुष्ट बालकने हमारी कन्या की इच्छा न रहतेहुए भी उसका बलपूर्वक हरण कियाहै ॥ इस दुष्टको मारडालो यदुवंशी क्या करेंगे वे हमारे दियेहुए राज्य का भोग करतेहैं वे स्वयं राजा नहीं हैं हमारीही कृपा से उस राज्यका ऐश्वर्य बढ़गयाहै ॥ ३ ॥ पुत्रको माराहुआ सुनकर यदि वृष्णिगण आवेंगे तो प्राणायामादिसे दमन की हुई इन्द्रियों की समान वह भी अहंकार रहित होकर बालककीसी दशाको प्राप्तहोंगे ॥ ४ ॥ कुरु वृद्ध भीष्मने भी इसको स्वीकार किया । अनन्तर कर्ण, शल्य, भूरि यज्ञकेतु और दुर्योधन भीष्म के संगहो साम्बको बांधने के निमित्त उसके पीछे २ दौड़े ॥५॥ धृतराष्ट्र के पुत्रोंको दौड़ताहुआ आता देख महाबली सांब सुन्दर धनुषको ग्रहणकर सिंहकी समान अकेलाही खड़ा होगया ॥६॥ कुरुनन्दन उसके पकड़नेकी इच्छाकर सावधानहो खड़ारह २ कह उसके निकट आए और धनुष ले बाणोंसे उसपर प्रहार किया । कर्ण उनका सेनापति हुआ, ॥ ७ ॥ हेकुरुश्रेष्ठ ! उन अचिन्त्य पुरुष भगवान का बालक साम्ब अत्यन्त क्रोधितहो उनका सहन ऐसे न करसका कि—जैसे सिंह तुच्छ मृगोंके प्रहार का सहन न करसके ॥ ८ ॥ उस बीरने सुन्दर धनुष चढ़ाय कर्णादि छै रथियों को पृथक् २ छै बाणोंसे वेधा ॥ ९ ॥ तथा ... सब रथियोंका भी उसने इसीप्र-

स्वासांस्तस्यतत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तंतुतेविरथंचक्रुश्चत्वारश्चतुरोहयान् । एक स्तुसारथिंजघ्नेचिच्छेदान्यःशरासनम् ॥ ११ ॥ तंबध्वाविरथीकृत्यकृच्छ्रेणकुरवो युधि । कुमारस्वस्यकन्यांचस्वपुरंजयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वानारदोक्तेनरा जन्संजातमन्यवः । कुरून्प्रत्युद्यमंचक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः॥१३॥सान्त्वयित्वातुतान्रा मः सन्नद्धान्वृष्णिपुङ्गवान् । नैच्छत्कुरूणांवृष्णीनांकलिंकलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगामहास्तिनपुरंरथेनादित्यवर्चसा । ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्चवृतश्चन्द्रइवग्रहैः ॥१५॥ गत्वागजाह्वयंरामोबाह्योपवनमास्थितः । उद्धवंप्रेषयामासधृतराष्ट्रंबुभुत्सया ॥१६॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रंभीष्मंद्रोणंचबाह्लिकम् । दुर्योधनंचविधिवद्राममागतम ब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्यप्राप्तंरामंसुहृत्तमम् । तमर्चयित्वाभिययुः स र्वेमङ्गलपाणयः ॥ १८ ॥ तंसंगम्ययथान्यायंगामर्घ्यंचन्यवेदयन् । तेषांयेतत्प्रभाव ज्ञाः प्रणेमुः शिरसाबलम् ॥ १९ ॥ बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वापृष्ट्वाशिवमनामयम् । प रस्परमथोरामोबभाषेऽविक्लवंवचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशोयद्वआज्ञापयत्प्रभुः । तदव्यग्रधियः श्रुत्वाकुरुध्वंमाविलम्बितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयंबहवस्त्वेकंजित्वाऽधर्मे णधार्मिकम् । अबध्नीताथतन्मृष्येबन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्ध मात्मशक्तिसमंवचः । कुरवोबलदेवस्यनिशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहोमह च्चित्रमिदंकालगत्यादुरत्यया । आरुरुक्षत्युपानद्वैशिरोमुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ ए तेयौनेनसंबद्धाः सहशय्यासनाशनाः । वृष्णयस्तुल्यतांनीताअस्मद्दत्तनृपासनाः ॥

कार से सन्मान किया ॥ १० ॥ हेमहाराज ! कौरवों नें भी साम्बको विरथ करदिया चार जनों ने चारों घोड़ों और एक जनने सारथीको मारा और एक जनने धनुषको काटदिया ॥ ११ ॥ कौरवोंने युद्ध भूमिमें अति कष्टसे सांबको विरथ करके बांधा वह सब उस कुमार और अपनी कन्याको ले विजयी हो अपने नगरको लौटआये ॥ १२ ॥ हेराजन् ! नारदजी से इससब समाचार को सुन वृष्णि बीरगण क्रोधित होउठे और उग्रसेनकी आज्ञा पाय कौरवोंसे युद्ध करनेपर उद्यत हुए ॥ १३ ॥ राम की यह इच्छा नहींथी कि कौरवों और यदुवंशियों से बिवाद होवे । अतएव उन्होंने युद्धकी इच्छावाले उन यदुवंशियों को शांतकिया और स्वयं ताराओंसे घिरेहुए चन्द्रमाकी समान कुलवृद्ध ब्राह्मणोंसे घिर सूर्यकीसमान प्रकाशित रथपर बैठ हस्तिनापुरमें आए १४—१५। रामने हस्तिनापुरमें पहुंच नगर के बाहर उपवन में ठहर धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानने के निमित्त उद्धव को भेजा ॥१६॥ उद्धवने भी यथायोग्य धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, बाह्लीक और दुर्योधन को वन्दना करके कहा कि—राम आयेहैं ॥ १७ ॥ उन्होंने भी श्रेष्ठ बन्धु रामका आना सुनकर उद्धवकी पूजाकी अनन्तर वह मांगलिक द्रव्यले बलदेवजी के निकट आए, ॥१८॥ और उनसे यथायोग्य मिल गौ अर्पणकर अर्घदे उनके प्रभावको जाननेवालों ने उनका शिरसे प्रणाम किया ॥ १९ ॥ अनन्तर परस्पर कुशल पूँछी बंधुओं की कुशलता पूँछकर अंतमें रामने धीरभाव से कहा॥२०॥हेराजाधिराज! महाराज उग्रसेनने जो तुमको आज्ञाकीहै उसको सावधान चित्तहो सुनो और वैसाही करो ॥२१॥ उन्होंने कहाहै कि—तुम सबने जो अधर्मसे जीतकर एक धार्मिक जनको बांधाहै बंधुता की रक्षाके कारण हमने उसका सहन करलिया अतएव तत्कालही उस पुत्रको लाकर हमकोदो ॥ २२ ॥ प्रभाव, उत्साह और धैर्ययुक्त तथा अपनी शक्तिके अनुसार बलरामजी का बचन सुनकर गर्वित कौरव क्रोधित होकर बोले कि —२३ ॥ अहो ! बड़ा आश्चर्य है काल की गति बड़ीही टेढ़ीहै कि जूता मुकुटसे सेवित शिरपर चढ़नेकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥ केवल कुंती के संग ब्याह का सम्बंध होनेसे इनको हमने राज्यासन इनके संग सोना बैठना और भोजन

॥ २५ ॥ चामरव्यजनेशंखमातपत्रंचपाण्डुरम् । किरीटमासनंशय्यांभुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥ अलंयदूनांनरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् । येस्मत्प्रसादोपचिताहियादवाआज्ञापयन्त्यद्यगतत्रपाबत ॥ २७ ॥ कथमिन्द्रोऽपिकुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः । अदत्तमवरुन्धीतसिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्तेभरतर्षभ । आश्राव्यरामंदुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाकुरूणांदौःशील्यंश्रुत्वाऽवाच्यानिचाच्युतः । अवोचत्कोपसंरब्धोदुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥ नूनंनानामदोन्नद्धाः शान्तिंनेच्छन्त्यसाधवः । तेषांहिप्रशमोदण्डः पशूनांलगुडोयथा ॥ ३१ ॥ अहोयदून्सुसंरब्धान्कृष्णंचकुपितंशनैः । सान्त्वयित्वाऽहमेतेषांशममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ तइमेमन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः । तंमामवज्ञायमुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किलविभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । शक्रादयोलोकपालायस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माऽऽक्रम्यतेयेनपारिजातोऽमराङ्घ्रिपः । आनीयभुज्यतेसोऽसौनकिलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्यपादयुगंसाक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी । सनार्हतिकिलश्रीशोनरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् । ब्रह्माभवोऽहमपियस्यकलाः कलायाःश्रीश्चोद्वहेमचिरमस्यनृपासनंक्व ॥ ३७ ॥ भुञ्जतेकुरुभिर्दत्तंभूखण्डंवृष्णयः किल । उपानहःकिलवयंस्वयंतुकुरवःशिरः ॥ ३८ ॥ अहोऐश्वर्यमत्तानांमत्तानामिवमानिनाम् । असंबद्धा

करके इनको अपने समान बनाया ॥ २५ ॥ किंतु बड़ाही आश्चर्य है कि यह मूढ हमारेही दिये हुए राज्या सनको पाय हमारीही समानता करते हैं इस समय यह हमारीही उपेक्षाकर चामर, व्यंजन, शंख, श्वेत,छत्र,आसन और शय्याको भोग करतेहैं,॥ २६ ॥ अहो ! यदुवंशी हमारीही अनुग्रहसे बढकर अब हमींपर आज्ञा करतेहैं सांपको दूध पिलाने की समान इन यादवों को राजचिह्न देनेसे अपनाही अनभल होताहै अतएव इन राजचिह्नों को छीन लेना चाहिये २७॥ भीष्म द्रोणादि कौरवोंके दान न करनेपर इंद्रभी क्या किसीवस्तुको ग्रहण करसकतेहैं भेंड़ क्या सिंहके द्रव्य को ग्रहण करसकताहै ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! जन्म बंधु और लक्ष्मीसे जिनका गर्व बढगयाहै वे सब असभ्य कौरव बलराम जीको ऐसे कुवाक्य सुनातेहुए फिर नगरमें आए॥ २९ ॥ भगवान कौरवोंके दुष्टाचार को देख और उनकी बातोंको सुन कुपितहुए वह क्रोधसे बारम्बार हंसकर कहने लगे कि—३० ॥ यह सत्यहै कि नानागर्वोंसे गर्वित असाधु मनुष्य शांतिकी इच्छा नहीं रखते पशुओंपर डण्डा मारने की समान वह भी डण्डेही से शांत होते हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! क्रोधित यदुवंशियों और श्रीकृष्णको मैं धीरे२ शांतकर शांतिकी इच्छा से इस स्थान में आयाथा ॥ ३२ ॥ परंतु इन दुष्ट मंदबुद्धियोंको युद्धही प्याराहै क्योंकि यह बहुतगर्वित होरहे हैं, इन्हीं ने मेरा तिरस्कार कर मुझेही बहुतसे कुवाक्य कहे ॥३३॥ इन्द्रादि लोकपालगण जिसकी आज्ञाका पालन करते हैं वृष्णि और अंधकगणों के स्वामी वह उग्रसेन राजा नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन्हों ने सुधर्माको छीन, पारिजातको लाय अपने उपवनमें स्थापित किया वह श्रीकृष्णजी आसनके योग्य नहीं हैं ॥ ३५ ॥ सबकी स्वामिनी साक्षात् लक्ष्मी जिनके दोनों चरणों की सेवा करती हैंवह लक्ष्मी पति राजचिह्नों के योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ लोकपालगण, योगीजन जिनके चरण रजको शिरमें धारण करते हैं और जिनके अंशोंके अंश ब्रह्मा,महादेव, लक्ष्मी, और मैभी जिनके चरणों की उपासना करता हूं उनको राज्यासन कहां ॥ ३७ ॥ निश्चयही यदुवंशी कौरवों के दियेहुए राज्यका भोगकरते हैं हमतो जूताहैं, कौरवतो अपने शिर हैं ॥ ३८ ॥ अहो!

गिरोरूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्यनिष्कौरवींपृथ्वींकरिष्यामीत्यमर्षितः गृहीत्वाहलमुत्तस्थौ दहन्निवजगत्त्रयम् ॥ ४० ॥ लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम्। विचकर्षसगङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायांनगरंपतत्। आकृष्यमाणमालोक्य कौरवाजातसंभ्रमाः ॥४३॥ तमेवशरणंजग्मुः सकुटुम्बाजिजीविषवः। सलक्ष्मणंपुरस्कृत्य साम्बंप्राञ्जलयःप्रभुम् ॥४२॥ राम रामाखिलाधार प्रभावंनविदामते। मूढानांनःकुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ४४॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेकोहेतुर्निराश्रयः। लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्तेवदन्तिहि ॥ ४५ ॥ त्वमेवमूर्ध्नीदमनन्तलीलया भूमण्डलं बिभर्षिसहस्रमूर्द्धन्। अन्तेच यःस्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयःपरिशिष्यमाणः ॥४६॥ कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं नद्वेषान्नचमत्सरात्। बिभ्रतोभगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय। विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वांवयंशरणंगताः ॥४८॥ श्रीशुकउवाच। एवंप्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः। प्रसादितःसुप्रसन्नोमाभैष्टेत्यभयंददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनःपारिबर्हं कुंजरान्षष्टिहायनान्। ददौचद्वादश शतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानांषट्सहस्राणि रौक्माणांसूर्यवर्चसाम्। दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रंदुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्यतुतत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः। ससुतःसस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥ ततःप्रविष्टःस्वपुरंहला

मत्त मनुष्यों की समान ऐश्वर्य से मतवाले हुए अभिमानियों के वाक्य असंबंध और रूखेहोते हैं, स्वयं दंड देनेवाला होकर कौन मनुष्य उसका सहन करसकता है ॥ ३९ ॥ आजमैं पृथिवी को कौरव रहित करदूंगा यह विचारकर बलदेवजी ने दारुण क्रोधसे मानो जगतका नाश करदेंगे ऐसे हलको ग्रहण किया ॥ ४० ॥ और हलके अग्रभाग से हस्तिना पुरको उखाड़कर गंगामें फेंकदेने के निमित्त खींचने लगे ॥ ४१ ॥ खिंचते हुए नगरको गंगामें गिरता और नावकी समान घूमता हुआ देख कौरव भयसे व्याकुल होगये ॥ ४२ ॥ और प्राण बचानेकी इच्छासे कुटुंबियों के साथ लक्ष्मण समेत साम्बको ले बलरामजी की शरण में आय हाथ जोडकर कहने लगे ॥ ४३ ॥ हे राम ! हे अखिलाधार! हम तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते थे हम मूर्ख और कुबुद्धि हैं; हे अधीश्वर! हमारे ऊपर आपको क्षमाकरनी उचित है ॥ ४४ ॥ आप सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण हैं, आप आश्रय रहित हैं। तुम्हारे क्रीडा करने में प्रवृत्त होनेपर यह लोक तुम्हारी क्रीडाकी सामग्री रूपसे उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥ हे सहस्र शिरवाले! आप अनंतहो, लीला सेही अपने मस्तकपर भूमंडलको धारण करतेहो। प्रलय कालमें अपने स्वरूप में जगतका लय करके, अद्वितीय और शेषरहने वाले आपही शेषनाग पर शयन करतेहो ॥ ४६ ॥ आपही स्थिति और पालन में तत्पर हो आपही सत्त्वगुणका अवलंबन करतेहो। आपका यह कोप शिक्षादेने के निमित्तही हुआ है कुछ द्वेषवा मत्सरता से नहीं ॥४७॥ हे सर्व भूतात्मन् ! हे सर्वशक्तिधर ! हे अव्यय! हे विश्वकर्मन्! आपको नमस्कार है। हमने आपके चरणों की शरणली है ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि राजन्! फिर जिनका नगर कम्पित हुआ था उन दुःखित और भयभीत कौरवों से बलदेवजी ने पूजितहो उनको अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ अनंतर पुत्रीपर प्रेमरखने वाले दुर्योधन ने साठ २ वर्षके बारह सौ हाथी, दश सहस्र घोडे, सुवर्ण के बनेहुए सूर्यकी किरण के समान प्रकाशित छः सहस्र रथ, और अलंकार युक्त सहस्र दासियें दहेज में दीं ॥ ५०-५१ ॥ भगवान बलदेवजी उन सबको ले पुत्रवधू के साथ बंधुओं से सन्मानितहो वहां से चले ॥ ५२ ॥ तदनंतर अपनी पुरीमें आय बल-

युधः समेत्यबन्धूननुरक्तचेतसः। शशंससर्वंयदुपुंगवानां मध्येसभायांकुरुषुस्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापिचपुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम्। समुन्नतंदक्षिणतो गंगायामनुदृश्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ नरकंनिहतंश्रुत्वातथोद्वाहंचयोषिताम्। कृष्णेनैकेनबह्वीनांतद्दिदृक्षुः स्मनारदः ॥ १ ॥ चित्रंबतैतदेकेनवपुषायुगपत्पृथक्। गृहेषुद्व्यष्टसाहस्रंस्त्रियएकउदावहत् ॥२॥ इत्युत्सुकोद्वारवतींदेवर्षिर्द्रष्टुमागमत्। पुष्पितोपवनाराम द्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः। छुरितेषुसरस्सूच्चैः कूजितांहंससारसैः ॥ ४ ॥ प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टांस्फाटिकराजतैः। महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभीरुचिरांसुरालयैः। संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलींपतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥६॥ तस्यामन्तः पुरंश्रीमदर्चितंसर्वधिष्ण्यपैः। हरेः स्वकौशलंयत्रत्वष्ट्राकात्स्न्र्येनदर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्रषोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम्। विवेशैकतमंशौरेः पत्नीनांभवनंमहत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धंविद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः। इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्याचाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रामुक्तादामविलम्बिभिः। दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककण्ठीभिःसुवासोभिरलंकृतम्। पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युति

देवजीने अपने अनुरक्त चित्त बंधुओंसे मिल कौरवोंकी समस्त बातोंको यदुवंशियोंकी सभामें कहा ॥ ५३ ॥ हे राजन्! वह नगर दक्षिण भागमें गंगाकी ओर ऊंचाहो अबतक बलरामजी के पराक्रमको प्रकाश करता है ॥ ५४ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! नरकासुरको मारकर श्रीकृष्णजीने बहुतसी स्त्रियोंसे बिवाह कियाहै, यह सुनकर उनके देखने के निमित्त नारदजीकी इच्छाहुई ॥ १ ॥ अहो! यह अत्यन्तही आश्चर्यका विषयहै कि अकेले श्रीकृष्णजीने एक शरीरसे पृथक् २ घरमें एकही समयमें सोलहसहस्र स्त्रियोंसे बिवाह कियाहै ॥ २ ॥ यह विचारकर नारदजी देखने के निमित्त उत्सुक चित्तसे द्वारकामें आये। द्वारकाके फूलेहुए उपवन और बागोंमें भौंरे और पक्षी शब्द कररहे थे॥३॥ और समस्त तालाब फूलेहुए इंदीवर, कमल, कल्हार, बघौले और उत्पल से व्याप्त होरहेथे। हंस और सारस उन सबसरोवरों में ऊंचे शब्दसे बोलरहे थे ॥ ४ ॥ वह पुरी स्फटिक और चांदीके बनेहुए लाखों महलोंकी मरकतमणिसे प्रकाश पारही थी और रत्नोंकी सामग्रियोंसे अपूर्व शोभाको बढ़ारही थी ॥ ५ ॥ परस्पर बँटेहुए राजमार्ग, गलियें, चौराहे, दुकानें, शाला और देवमंदिरोंकी उस नगरीमें शोभा होरहीथी। उसके मार्ग, गलियें और देहली सब छिडके हुएथे; और फहरातेहुए ध्वजा पताका वहांकी धूपको निवारण करतेथे ॥ ६ ॥ उस नगरीमें जो भगवानकेमहल थे वह सब लक्ष्मीयुक्त और लोकपालोंसे पूजितथे। विश्वकर्माकी उसमें भलीप्रकारसे कारीगरी दीखतीथी ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णजीके वहां सोलहसहस्र महलबनेहुए थे। नारदजीने उन महलोंमेंसे एक प्रधान महलमें प्रवेश किया ॥८॥ वह घर बिद्रुममणिके खम्भोंसे व्याप्त, वैदूर्यमणिके उत्तम पट्ट, इन्द्र नीलमणिकी दीवारें व इन्द्र नीलमयी पृथ्वीसे शोभायमानथा ॥ ९ ॥ वह मोतियोंकी झालरयुक्त विश्वकर्मा के बनाये चँदोवे, उत्तम मणियोंसे खचित आसन व पलंग ॥ १० ॥ गले में चन्द्रहार पहिरे सुन्दर वस्त्र धारण किये दासियें, और जामा, पगडी, सुन्दर वस्त्र व मणियों के

र्भिर्निरस्तध्वान्तंविचित्रवलभीषुशिखण्डिनोऽङ्ग । नृत्यन्तियत्रविहितागुरुधूपमक्षै र्निर्यान्तमीक्ष्यघनबुद्धयउन्नदन्तः ॥ १२ ॥ तस्मिन्समानगुणरूपवयः सुवेषदासी सहस्रयुतयाऽनुसवंगृहिण्या । विप्रोददर्शचमरव्यजनेनरुक्मदण्डेनसात्वतपतिंप रिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥ तंसंनिरीक्ष्यभगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यङ्कतः सकलधर्म भृतांवरिष्ठः । आनम्यपादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेनसांजलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्यचरणौ तदपःस्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतांपतिर्हि । ब्र- ह्मण्यदेवइतियद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥ संपूज्यदे- वऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणोनरसखो विधिनोदितेन । वाण्याभिभाष्य मितया ऽमृतमिष्टयातंप्राह प्रभोभगवतेकरवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच । नैवाद्भुतंत्व यि विभोऽखिललोकनाथे मैत्री जनेषुसकलेषुदमःखलानाम् ॥ निःश्रेयसायहिजग- त्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदामसुष्ठु ॥ १७ ॥ दृष्टंतवांघ्रियुगुलं जन ताऽपवर्गंब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथास्मृतिःस्यात् ॥ १८ ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः सनारदः । योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रिययाचोद्धवेनच । पूजितःपरयाभक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चा-

कुण्डल धारण किये पुरुषों से शोभायमानथा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वहांका अंधकार रत्नों के दीप- कोंसे दूर होताथा, जालियोंमेंसे निकलतेहुए अगरके धुँएको देख उसे मेघजान ऊंचे स्वरसे शब्द कर करके मोर छज्जोंपर नाचकर रहेथे ॥ १२ ॥ वहां प्रत्येक समयमें अपनी समान गुण, रूप, वय तथा सुंदर वेषवाली सहस्रों दासियों के संग रुक्मिणी सुवर्णकी डंडीवाला पंखा हाथ में लिये श्रीकृष्णजीपर पवन करती थीं । नारदजीने वहां जाकर इसप्रकारसे श्रीकृष्णजीको देखा ॥ १३ ॥ सबधार्मिकोंमें श्रेष्ठ भगवान श्रीकृष्णजी नारदजीको आतादेख रुक्मिणीकी सेजस सहसा उठ खडे हुए और हाथजोड़ किरीट धरेहुए मस्तक से उनके दोनों चरणों को प्रणामकिया, और अपने आसनपर बिठाया ॥ १४ ॥ जिनके चरणों का धोयाहुआ जल (गंगा) सबकातीर्थ है अतएव वह जगतके सर्वश्रेष्ठगुरु हैं तौभी उन्होंने नारदजी के चरणों को धुलाय उस जलको अपनेमस्तक पर चढ़ाया । वह यथार्थही में साधुओं के स्वामी हैं गुणों के कारण जो उनका नाम 'ब्रह्मण्यदेव' है उसके योग्यही उन्होंने यहकाम किया ॥ १५ ॥ परमपुरुष, नरके सखा नारायण ने शास्त्रयुक्त विधिवत् नारदजीका पूजनकर अमृतकी समान मीठे वचनों से उनसे बातें करके कहा कि हेप्रभो ! आप का क्या कार्य करनाहोगा, आज्ञा करिये ॥ १६ ॥ नारदजी ने कहा कि-हेविभो !हेअखिल लोकेश्वर ! आप सबसज्जनोंपर स्नेह रखतेहो और दुष्टोंको दण्ड देतेहो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । हे विशालकीर्ते ! मैं भलीप्रकार से जानताहूं कि जगत के धारण, पालन और कल्याण के निमित्तही यह आपका इच्छानुसार अवतार हुआ है ॥ १७॥ आप के चरणभक्तों के मोक्षदेने वाले हैं; अगाधज्ञानवाले केवल ब्रह्मादि देवतागणही उनका हृदयमें ध्यानकरसकते हैं। वह संसार कूपमें गिरेहुए मनुष्यों के उठने के निमित्त प्रधानअवलम्बनस्वरूप हैं । आज मैंने उन्हीं चरणों का दर्शन किया । तौभी जिससे उनकास्मरणरहे, आप कृपाकरके वही करो । इसहीकारणउनका ध्यान करताहुआ भ्रमणकररहाहूं ॥ १८ ॥ हेराजन् ! तदुपरांत उन नारदजी ने भगवानश्रीकृष्ण जी की योगमाया जानने के निमित्त उनकी एक स्त्रीके घरमें फिर प्रवेश करके देखा ॥ १९ ॥ कि उसस्थानमेंभी श्रीकृष्णजी प्रिया और उद्धव के संग चौसर खेलरहे हैं । भगवान लक्ष्मीपति ने मानों नहींजानते इसप्रकार से उठ आसनआदि दे विधिवत् परम भक्तिसे नारदजी की पूजाकी

विदुषेवाखौ कदाऽऽयातोभवानिति। क्रियते किंनु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥२१॥ अथापिब्रूहिनो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनंकुरु। सतुविस्मितउत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥२२॥ तत्राप्याचष्टगोविन्दं लालयन्तंसुताञ्छिशून्। ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वंतंच वितानाग्नीन्यजन्तं पंचभिर्मखैः। भोजयन्तं द्विजान्क्वापि भुंजानमवशेषितम् ॥ २४ ॥ क्वापिसन्ध्यामुपासीनं जपन्तंब्रह्मवाग्यतम्। एकत्रचासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजैरथैःक्वापि विचरन्तंगदाग्रजम्। क्वचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानंच बन्दिभिः। मन्त्रयन्तचकपर्यङ्के स्तूयमानंच बन्दिभिः ॥ २६ ॥ मन्त्रयन्तंच कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः। जलक्रीडारतंक्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥२७॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतंगाःस्वलंकृताः। इतिहासपुराणानि शृण्वन्तंमंगलानिच ॥ २८ ॥ हसन्तंहास्यकथया कदाचित्प्रियया गृहे। क्वापिधर्मं सेवमानमर्थकामौच कुत्रचित् ॥२९॥ ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषंप्रकृतेःपरम्। शुश्रूषन्तंगुरून्क्वापि कामैर्भोगैःसपर्यया। ॥ ३० ॥ कुर्वन्तंविग्रहंकैश्चित्सन्धिं चान्यत्रकेशवम्। कुत्रापिसहरामेण चिन्तयंतं सतां शिवम् ॥३१॥ पुत्राणांदुहितृणांच काले विध्युपयापनम्। दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तंविभूतिभिः ॥ ३२ ॥ प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानांमहोत्सवान्। वीक्ष्य योगेश्वरेशस्ययेषांलोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजन्तंसकलांदेवान्क्वापिक्रतुभिरूर्जितैः। पूर्तयन्तंक्वचिद्धर्मंकूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरन्तंमृगयांक्वापिहयमारुह्यसैन्धवम्। घ्नन्तंततःपशून्मेध्यान्परीतंयदुपुङ्गवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगंप्रकृ-

॥ २० ॥ और उनसे पूछा कि-आप कबआये ? आप पूर्णहो; मेरी समान अपूर्ण मनुष्य आपका क्याकार्य पूराकरसकते हैं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! तौभी आप मुझे आज्ञाकरो; मेरा जन्म सार्थक होवे। नारदजी विस्मितहो कुछनकह उठकर दूसरे घरमें गये ॥ २२ ॥ उस स्थानमें भी देखाकि-श्रीकृष्णजी पुत्रोंको खिलारहे हैं तदनंतर दूसरे घरमें देखाकि वहां वे नहाने की इच्छा कररहे हैं ॥ २३ ॥ इसप्रकार से कहीं पर अग्निहोत्र का होम, पंच महायज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन कराते और शेषरहे भोजनको आप भोजन करते दीखपड़े ॥ २४ ॥ कहीं सन्ध्यामें बैठेहुए एकाग्रचित्तसे गायत्रीका जपकर रहे हैं; एक स्थान में ढाल तलवार लिये पटा खेलते दीखपड़े ॥ २५॥ कहीं हाथी, घोड़ा, रथपर बैठे फिरते हुए देखनेमें आये कहीं आप पलंगपर शयन कररहे हैं और बंदीजन स्तुतिकर रहे हैं ॥ २६ ॥ कहीं उद्धवादि मंत्रियों के संग परामर्श कर रहे हैं कहीं वेश्या-आदि स्त्रियोंसे घिर जलक्रीड़ा कररहे हैं ॥ २७ ॥ कहीं सुन्दर गौओं को ब्राह्मणों को दान देते हैं। किसी घर में इतिहास, पुराण और मंगल की कथा सुनते हैं ॥ २८ ॥ कहीं परिहासकर २ प्यारीसे हँसी कररहे हैं। कहीं धर्म कहीं अर्थ, काम का सेवन करते हैं ॥ २९ ॥ कहीं एकांतमें बैठकर प्रकृति से पर आत्माका ध्यान कररहे हैं किसीस्थान में इच्छितपदार्थों के भोगोंद्वारागुरुओं की सेवा में तत्पर हैं ॥ ३० ॥ कहीं किसी के साथ संधि और किसी के संग विग्रह कररहे हैं। किसी स्थान में बलरामजी के साथ बैठेहुए साधुओं के कल्याण के विचार में लगे हैं ॥ ३१ ॥ कहींपर बड़ी धूमधाम के साथ पुत्रों का योग्य स्त्रियों के संग और कन्याओं का योग्य बरों के संग समयानुसार यथाविधि से बिवाह कररहे हैं ॥३२॥ कहींपर कन्या और जामाताओंको बुलाते और भेजते और कहीं महोत्सवोंको कररहे हैं श्रीकृष्णजी के पुत्र पौत्रादिकों के उस महोत्सवको देख सब विस्मित होरहे हैं ॥ ३३ ॥ कहीं बड़े २ यज्ञकर अपने अंशभूत देवताओंका यजनकरते हैं, कहींपर कुआ, बावड़ी, देवमंदिरआदि बनवाते हैं ॥ ३४ ॥ कहींपर श्रेष्ठ यादवों-से वेष्टितहो सिंधु देश के घोड़े पर बैठ आखेट करतेहुए यज्ञीय पशुओं को माररहे हैं ॥ ३५ ॥ भगवानकहीं

तिष्वन्तःपुरगृहादिषु । क्वचिच्चरंतंयोगेशंतत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशंनारदःप्रहसन्निव । योगमायोदयंवीक्ष्यमानुषीमीयुषोगतिम् ॥ ३७ ॥ विदामयोगमायास्तेदुर्दर्शाअपिमायिनाम् । योगेश्वरात्मन्निर्भाताभवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥ अनुजानीहिमांदेवलोकांस्तेयशसाप्लुतान् । पर्यटामितवोद्गायँल्लीलांभुवनपावनीम् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्यवक्ताऽहंकर्तातदनुमोदिता । तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितःपुत्रमाखिदः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरन्तं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् । तमेवसर्वगेहेषुसन्तमेकंददर्शह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानन्तवीर्यस्ययोगमायामहोदयम् । मुहुर्दृष्ट्वाऋषिरभूद्विस्मितोजातकौतुकः ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषुकृष्णेनश्रद्धितात्मना । सम्यक्सभाजितःप्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवंमनुष्यपदवीमनुवर्तमानोनारायणोऽखिलभवायगृहीतशक्तिः । रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानांसव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीहविश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुःकर्माण्यनन्यविषयाणिहरिश्चकार । यस्त्वङ्गगायतिशृणोत्यनुमोदतेवाभक्तिर्भवेद्भगवतिह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् । गृहीतकण्ठ्यःपतिभिर्माधव्योविरहातुराः ॥ १ ॥ वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयन्तीवबन्दिनः । गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥२॥ मुहूर्तंतंतुवैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ।

कहीं नगर और अन्तःपुर के अभिप्रायको जानने के निमित्त वेष बदल२ कर भ्रमण कररहे हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार से नारदजी ने मनुष्यावतार भगवान के योगमाया को देख कुछेक हँसकर उनसे कहा कि-॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! मायावी पुरुषों केभी न जानने योग्य आपकी योगमायाको हमकेवल आप के चरणों की सेवाही से जानते हैं परन्तु आपके परमार्थ स्वरूप को नहींजानते ॥ ३८ ॥ हेदेव ! आप आज्ञा करें कि-त्रिलोकी को पवित्र करनेवाले आपके चरित्रों का गानकरताहुआ आपके यशसे व्याप्त लोकों में भ्रमणकरूं ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! मैं धर्मकावक्ता कर्त्ता और अनुमोदन करनेवालाहूं , मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देताहुआ इसप्रकार से स्थिति करताहूं अतएव तुम मोहमें मतपड़ो ॥ ४० ॥ शुकदेवजी बोले कि-हेराजन् ! नारदजी ने सबघरों में इसप्रकार से अकेले भगवानको गृहस्थियों के उत्तमधर्म का आचरणकरते देखा ॥४१॥ अनंत पराक्रमवाले श्रीकृष्णजी की योगमाया का बारम्बार उदयदेख नारदजी को अत्यन्त कौतुक उत्पन्नहुआ और अत्यन्त विस्मितहुए ॥ ४२ ॥ अर्थ, काम, धर्म में इसप्रकार श्रद्धायुक्त श्रीकृष्णजीने भलीप्रकार से उनका सन्मान किया, तब नारदजी प्रसन्नहो उनका ध्यानकरते २ वहां से चलेगए ॥ ४३ ॥ हेराजन् ! सर्व मङ्गलों के निमित्त अवतार धारणकरनेवाले वह भगवान मनुष्य पदवी का अनुकरणकर सोलहसहस्र श्रेष्ठस्त्रियों के घरमें हास्य बिलास, कटाक्ष और संभोगआदि से इसप्रकार बिहार करतेथे ॥ ४४ ॥ विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारणहरिनेपृथिवी पर जो असाधारण कर्म कियेथे, जो उनसबकर्मों को गावे, सुने वा अनुमोदनकरे उसकी मुक्ति के द्वार भगवान में भक्तिउत्पन्नहोवे ॥ ४५ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांएकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! एकदिन प्रातःकाल में मुर्गे शब्दकर रहेथे, पति के गलेमें भुजा डालेहुए आलिंगन की हुई श्रीकृष्णजी की स्त्रियां उनके बिरहके भयसे मुर्गोंको शाप देनेलगीं ॥ १ ॥ भौंरे कमलोंसे सुगन्धित हुई बायुके संगही संगगान करनेलगे, और सब पक्षी निद्रासे उठ बन्दीजनों की समान श्रीकृष्णजी को जगातेहुये ऊँचेस्वरसे शब्द करनेलगे, ॥ २ ॥

। परिरम्भणविश्लेषात्प्रियबाह्वन्तरं गता ॥३॥ ब्राह्मेमुहूर्तउत्थायवार्युपस्पृश्यमाधवः दध्योप्रसन्नकरण आत्मानंतमसःपरम् ॥ ४ ॥ एकस्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थयानित्यानिरस्तकल्मषम् । ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमलेयथाविधि क्रियाकलापंपरिधायवाससी। चकारसंध्योपगमादिसत्तमो हुतानलोब्रह्मजजापवाग्यतः ॥६॥ उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनःकलाः। देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्यचात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृङ्गीणांसाध्वीनांमौक्तिकस्रजाम्। पयस्विनीनांगृष्टीनां सवत्सानांसुवाससाम् ८॥ददौरूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैःसह अलंकृतेभ्योविप्रेभ्यो बद्वंबद्वंदिनेदिने ९॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानिसर्वशः। नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानिसमस्पृशत्॥१०॥ आत्मानंभूषयामास नरलोकविभूषणम्। वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः॥११॥अवेक्ष्याज्यंतथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः। कामांश्चसर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम्।प्रदाप्यप्रकृतिःकामैः प्रतोष्यप्रत्यनन्दत ॥१२॥ संविभज्याग्रतो विप्रान्स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः। सुहृदःप्रकृतीर्दारानुपायुतङ्क्ततःस्वयम्॥१३॥तावत्सूत उपानीय स्यन्दनंपरमाद्भुतम्। सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वापाणिनापाणी सारथेस्तमथारुहत्। सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिवभास्करः ॥ १५ ॥ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः। कृच्छ्राद्विसृष्टोगिरगाज्जहासोहरन्मनः ॥१६॥ सुधर्माख्यांसभां सर्वैर्वृष्णिभिःपरिवारितः। प्राविशद्यन्नि-

वह शब्द यद्यपि अत्यन्त सुंदरथा तौ भी प्रियके आलिंगनसे बिछुड़ जानेके भयसे रुक्मिणी आदि स्त्रियें उस शब्दको क्षणभर भी नहीं सहसकतीथीं ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी ब्राह्म मुहूर्त में उठ जलसे आचमन कर प्रसन्न चित्तहो प्रकृतिसे पर आत्मा का ध्यान करने लगे, ॥ ४ ॥ वह उपाधि रहित' आत्मस्थित, अव्यय, अखण्ड, अज्ञान रहित, ज्योतिःस्वरूप और इस जगतकी उत्पत्ति व नाशके कारण भूत, अपना शक्तियोंसेही जिनकी सत्ता दिखाई देती है ब्रह्मनामक सदानन्द मय अपनेही स्वरूपका ध्यान करनेलगे ॥ ५ ॥ साधु श्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी ने निर्मल जलसे स्नानकर वस्त्र धारण किये तथा विधिवत् सन्ध्योपासनादि कर्म व अग्निहोत्रकर संयम चित्तसे गायत्री का जप करने लगे ॥ ६ ॥ अनन्तर सूर्यनारायण को उदय हुआ देख उठकर उनको नमस्कार किया। उन्होंने अपने अंशभून देवता, ऋषि पितर वृद्ध और ब्राह्मणों की पूजाकी तदुपरांत ब्राह्मणों को रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिल समेत तेरहसहस्र चौरासी गौयें कि जिनके सींग स्वर्णसे मढ़ेहुए थे जो मोतियों की माला पहिन सुंदर स्वभाव वाली प्रथमबारकी ब्याईहुई बहुत दुग्धवती बछड़े युक्त सुन्दर बस्त्र पहिनाई हुई चांदीसे मढेहुए खुरोंवालीथीं दानकीं, ॥ ७—९ ॥ श्रीकृष्णजी ने अपनी विभूति गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और समस्त प्राणियोंको नमस्कारकर कपिला गौ, आदि मांगलिक पदार्थों का स्पर्श किया ॥ १० ॥ सृष्टि के भूषण स्वरूप अपनेको वस्त्र, आभूषण, दिव्यमाला और चन्दनसे भूषित किया॥११॥और घृत,दर्पण,गौ,ब्राह्मण और देवताओं, का दर्शन कर सबनगर निवासी वर्णों और अन्तःपुरचारियोंको इच्छित दानदिया फिरइच्छित सामग्री दे प्रजाको संतुष्टकर स्वयं आनन्दितहुए ॥१२॥ अनंतर प्रथम ब्राह्मणोंको चन्दन और पानआदि देकर फिर स्वयं मित्र सुहृद और स्त्रियोंसे मिले ॥ १३ ॥ उसही समय सारथी सुग्रीवादि घोड़ोंकी जोत परम अद्भुत रथलाय प्रणामकर सन्मुख खड़ाहोगया ॥ १४ ॥ सूर्य जैसे उदयाचलमें चढ़तेहैं भगवान वैसेही अपने हाथसे सारथी का हाथ पकड़ सात्यकि और उद्धव समेत रथपर चढ़े ॥ १५ ॥ अन्तःपुरकी नारियें प्रेम और लज्जायुक्त दृष्टिसे उनकी ओर देखनेलगीं भगवान उनके निमित्त थोड़ी देरतक खड़े रहकर हास्य द्वारा उनके मनका हरणकर वहांसेचले ॥ १६ ॥ हेराजन्! इसप्रकार

विष्टानांनसन्त्यङ्गषडूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टःपरमासनेविभुर्बभौस्वभासाककुभोऽवभासयन् । वृतोनृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमोयथोडुराजोदिवितारकागणैः ॥ १८ ॥ तत्रोपमन्त्रिणोराजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् । उपतस्थुर्नटाचार्यानर्तक्यस्ताण्डवैःपृथक् ॥ १९ ॥ मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः । ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्चसूतमागधवन्दिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाःकेचिदासीनाब्रह्मवादिनः । पूर्वेषांपुण्ययशसांराज्ञांचाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकःपुरुषोराजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः । विज्ञापितोभगवतेप्रतीहारैःप्रवेशितः ॥ २२ ॥ सनमस्कृत्यकृष्णायपरेशायकृताञ्जलिः।राज्ञामादेवयद्दुःखंजरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ येचादिग्विजयेतस्यसंनतिंनययुर्नृपाः प्रसह्यरुद्धास्तेनासन्नयुतेद्वेगिरिव्रजे ॥२४॥ कृष्णकृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभंजन । वयंत्वांशरणंयामोभवभीताःपृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोकोविकर्मनिरतःकुशलेप्रमत्तःकर्मण्ययंत्वदुदितेभवदर्चनेस्वे । यस्तावदस्यबलवानिहजीविताशांसद्यश्छिनत्त्यनिमिषायनमोऽस्तुतस्मै ॥ २६ ॥ लोकेभवाञ्जगदिनःकलयावतीर्णःसद्रक्षणायखलनिग्रहणायचान्यः । कश्चित्त्वदीयमतियातिनिदेशमीशकिंवाजनःस्वकृतमृच्छतितन्नविद्मः ॥ २७ ॥ स्वप्नायितंनृपसुखंपरतन्त्रमीशशश्वद्भयेनमृतकेनधुरंवहामः । हित्वातदात्मनिसुखंत्वदनीहलभ्यंक्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तवमाययेह ॥ २८ ॥ तन्नोभवान्प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मोबद्धान्वियुङ्क्ष्वमगधाह्वयकर्मपाशात् ।

सब घरोंसे पृथक् २ निकल एकहो सब वृष्णि बंशियोंके साथ उन्होंने सुधर्मा नामक सभामें प्रवेश किया । हेराजन् ! उस सभामें बैठेहुये मनुष्यों को भूख प्यास आदि छै शत्रु बाधा नहीं देसकते ॥ १७ ॥ विभु कृष्णजी उस सभामें प्रवेशकर यदुओंसे घिर तारागणों से घिरेहुये चंद्रमा की समान प्रकाश पानेलगे ॥ १८ ॥ महाराज ! वहां परिहासक (भांड़) नाना हास्य रससे नट और नाचनेवाले अपने २ नृत्य आदिसे उनकी उपासना करनेलगे, ॥ १९ ॥ सूत मागध और बन्दी मृदंग, बीणा, पखावज, बेणु, करताल और शंखके शब्दके साथ नृत्य और गान कर२ के उनको संतुष्ट करनेलगे ॥ २० ॥ वहांपर बैठेहुये कुछेक वाक्य निपुण ब्राह्मण वेदमन्त्रोंसे व्याख्या करने और प्राचीन राजाओंके पवित्र यशको भी कहने लगे ॥ २१ ॥ हेराजन् उसहीसमय उस स्थानमें एक अनदेखाहुआ ब्राह्मण आया भगवान से इस वृत्तांत को जनाय द्वारपाल उसको लेकर उनके निकट गया ॥ २२ ॥ उस ब्राह्मणने हाथ जोड़ भगवानको नमस्कार कर जरासन्धसे बंधेहुए राजाओं के दुःख को कहा, ॥ २३ ॥ जरासन्ध के दिग्विजय में जो राजा उसके बश न हुएथे उन सबको उस दुष्टने गिरिब्रज नामक दुर्गमें बलपूर्वक बन्द कररक्खा है उन राजाओं की संख्या बीस सहस्रहै । राजाओंने कहा है कि—हेकृष्ण ! हेकृष्ण ! हेभक्तभयनाशन ! हम भेद बुद्धिवाले संसार से भीत होकर आपकी शरणागत हुएहैं ॥ २४—२५ ॥ मनुष्योंके सकाम और अधम कर्मोंमें अत्यन्त रत होनेसे आपके कहेहुये पूजा रूप अपने मंगल कर्ममें रत होनेसे जो बलवान पुरुष आकर तत्कालही उस जीवित मायाको काटडालताहै उन कालस्वरूप आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ आप जगत के ईश्वरहो साधुओं की रक्षा और दुष्टोंके दमन करनेके निमित्तही आपने पृथ्वी पर अवतार लियाहै, । हेईश्वर ! दूसरा कोई आपकी आज्ञा को भंग करता अथवा मनुष्य (हम लोग) अपने २ कर्मोंका भोग करतेहैं यह हम नहीं जानसकते, ॥ २७ ॥ राज्य सम्बन्धी सुख बिषय साध्यहैं इसकारण पराधीन होनेसे वह स्वप्न सुखकी समानहैं और यह देहभी निरन्तर भयसे भराहुआ रहताहै तो भी इससे केवल स्त्री पुत्रादिक कीही चिन्ता करते रहते हैं ॥ निष्काम मनुष्य आपसे जो स्वतःसिद्ध सुखको पाते हैं आपकी मायासे बंधकर उस सुखको छोड़कर हम अत्यन्त कष्ट पारहे हैं ॥ २८ ॥ आपके दोनों चरण भक्तजनों के शोकको दूर करते हैं ।

योभूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेकोबिभ्रद्रुरोधभवनेमृगराडिवावीः ॥ २९ ॥ योवैत्वयाद्विनवकृत्वउदात्तचक्रभग्नोमृधेखलुभवन्तमनन्तवीर्यम् जित्वानृलोकनिरतंसकृदूढदर्पोयुष्मत्प्रजारुजतिनोऽजिततद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इतिमागधसंरुद्धाभवद्दर्शनकाङ्क्षिणः । प्रपन्नाःपादमूलंतेदीनानांशंविधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजदूतेब्रुवत्येवंदेवर्षिःपरमद्युतिः । बिभ्रत्पिङ्गजटाभारंप्रादुरासीद्यथारविः ॥ ३२ ॥ तंदृष्ट्वाभगवान्कृष्णःसर्वलोकेश्वरेश्वरः।ववन्दउत्थितःशीर्ष्णासमसभ्यःसानुगोमुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वाविधिवत्कृतासनपरिग्रहम् । बभाषेसूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धयातर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्यलोकानां त्रयाणामकुतोभयम् । ननुभूयान्भगवतां लोकान्पर्यटतोगुणः ॥ ३५ ॥ नहितेऽविदितंकिंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु । अथपृच्छामहेयुष्मान् पाण्डवानांचिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ॥ दृष्टामयातेबहुशोदुरत्यया मायाविभोविश्वसृजश्चमायिनः । भूतेषुभूमंश्चरतःस्वशक्तिभिर्वह्नेरिवच्छन्नरुचोनमेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितंकोऽर्हतिसाधुवेदितुं स्वमाययेदंसृजतोनियच्छतः । यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्तेस्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्ययःसंसरतोविमोक्षणं नजानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः । लीलावतारैःस्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वांतमहंप्रपद्ये ॥ ३९ ॥ अथाप्याश्रावयेब्रह्मान्नरलोकविडम्बनम् । राज्ञःपैतृष्वस्रेयस्य भक्तस्यचचिकीर्षितम् ॥४०॥

इस दशसहस्र हाथियोंके बलवाले निष्ठुर सिंहकी समान जरासन्ध ने अकेलेही हम भेड़ोंकी समान राजाओंको अपने घरमें बंदकर रक्खा है। आप इस मगध राजरूपी कर्मके बंधनोसे हमें छुड़ाओ ॥ २९ ॥ हे सुदर्शन चक्रधारी ! जरासंध आपसे अठारह वेर संग्राम करके सत्रह वेरहारा था और केवल एकवार मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले आपको जीतकर वह अत्यंत अभिमानीहो आपके भक्तोंको दुःख देरहा है। हे अजित ! इस विषयमें जो उचितहो करियेगा ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! इस प्रकार मगध राजसे बंधेहुए राजाओंने आपके दर्शनों की इच्छाकर आपके चरणों की शरण ली है आप उन दीनोंका कल्याण करो ॥ ३१ ॥ राजदूत इसप्रकार से कह रहाथा कि उसी समय परम कांतिवान, पीतवर्णकी जटा धारण किये देवर्षि नारदजी सूर्यकी समान वहां आ उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ सर्व लोकेश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्णजी ने उनको देख सभासद और अनुचरों समेत उठ आनंद पूर्वक उनकी बंदनाकी और विधिवत् उनका पूजनकर आसन पर बैठाय श्रद्धासे सन्तुष्टकर मीठे बचनों से कहाकि ॥ ३३-३४ ॥ इस समय त्रिलोकी में तो किसी प्रकार का भय नहीं है ? इतनाही हमको परम लाभ है कि आप त्रिलोकी में भ्रमण करते रहतेहो, ईश्वर के रचेहुए इस लोक में आपसे अप्रगट कुछभी नहीं है अतएव आपसे पूँछताहूं कि पाण्डव क्या करते हैं ? ॥ ३५ । ३६ ॥ नारदजीने कहा कि हे विभो ! हे भूमन् ! आप ब्रह्म मोहके उत्पन्न करनेवाले और ढकी हुई अग्नि के समान अपनी शक्तियोंद्वारा अन्तर्यामीरूपसे सबप्राणियोंमें वर्तमानहो । मैंने आपकी माया को अनेकों बार देखा है अतएव आप के इसप्रकार से पूछने पर कुछआश्चर्य नहीं है ॥ ३७ ॥ यह जो जगत वास्तव में अविद्यमान है वह आपकी माया से बंधकर विद्यमान सा प्रतीत होता है, आप अपनीही माया से इसकी उत्पत्ति और नाश करते हैं अतएव आपकी इच्छा को क्या कोई जानसकता है ।आप का स्वरूप अचिन्त्य है इसकारण आपको केवलप्रणाम करताहूं ॥३८॥ अनर्थदायी शरीरके बन्धन से संसार में प्रवृत्तहुए मनुष्योंको मुक्ति देनेके निमित्त आप अपने लीलावतारों से ज्ञानके उत्पन्न करनेवाले अपने यशको प्रकाशित करतेहो,मैं आपकी शरणहूं ॥ ३९ ॥ हेभगवन् ! आप ब्रह्महो परन्तु मनुष्यों का अनुकरण करतेहो; अतएव अपनी

यक्ष्यतित्वांमखेन्द्रेण राजसूयेनपाण्डवः । पारमेष्ठ्यकामोनृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देवक्रतुवरे भवन्तंवैसुरादयः । दिदृक्षवःसमेष्यन्ति राजानश्चयशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात् पूयन्तेऽन्तेऽवसायिनः । तवब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥ यस्यामलंदिवियशःप्रथितंरसायां भूमौचतेभुवनमंगलदिग्वितानम् । मन्दाकिनीतिदिविभोगवतीतिचाधो गंगेतिचेहचरणाम्बुपुनातिविश्वम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्रतेष्वात्मपक्षेष्व गृह्णत्सुविजिगीषया । वाचःपेशैःस्मयन्भृत्यमुद्धवंप्राहकेशवः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वंहिनःपरमंचक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्ववित् । तथाऽत्रब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मःकरवामतत् ४६ इत्युपामन्त्रितोभर्त्रा सर्वज्ञेनापिमुग्धवत् । निदेशंशिरसाऽऽधाय उद्धवःप्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

श्रीशुक उवाच॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यदेवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् । सभ्यानांमतमाज्ञाय कृष्णस्यचमहामतिम् ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदुक्तमृषिणादेवसाचिव्यंयक्ष्यतस्त्वया । कार्यंपैतृष्वसेयस्यरक्षाचशरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यंराजसूयेनदिक्चक्रजयिनाविभो । अतोजरासुतजयउभयार्थोमतोमम ॥३॥ अस्माकंचमहानर्थोह्येतेनैवभविष्यति । यशश्चतवगोविन्दराज्ञोबद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥ सवैदुर्विषहोराजा

फूफी के बेटों व भक्तों के राजकार्य को सुनो ॥ ४० ॥ राजा युधिष्ठिर आप के संतुष्ट करने की इच्छा से श्रेष्ठराजसूय यज्ञद्वारा आपकी आराधना करना चाहते हैं, आप उसकी सम्मतिदो ॥४१॥ उस श्रेनयज्ञ में देवादि और यशस्वी राजा भी आपके देखने को आवेंगे । जब चाण्डाल भी आप परब्रह्म के नाम और कर्मों को सुनकर व गायकर पवित्र होता है तबजो आप के दर्शन और स्पर्शन करेंगे उनकी बातको क्या कहूं ॥ ४२ । ४३ ॥ हे भुवनमंगल ! आपका यश,दिशा,स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में दिशाओं के अलंकाररूप से व्याप्त होरहा है आप के चरणोंका जल मंदाकिनी, गंगा और भोगवती के नाम से स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को पवित्र करता है ॥ ४४ ॥ शुकदेवजी ने कहा—हेराजन् ! जब नारदजी ने इसभांतिकहा तब यादवों ने जरासंध के बिजयकी इच्छा से युधिष्ठिर के यज्ञमें जानेकी सम्मति नदी—तब भगवान ने हँसकर, मीठे बचनोंसे अपने सेवक उद्धवजी से कहा ॥ ४५ ॥ हेउद्धव ! तुमहमारे परमबन्धु, मंत्रज्ञ और बात के तत्व को जाननेवालेहो इसकारण तुमहमारे परमनेत्र स्वरूपहो; मैं तुम्हारे बचनों को मानताहूं अतएव इस बिषयमें जो उचितहो सोकहो मैं वही करूं ॥ ४६ ॥ स्वामी के सर्वज्ञ होने परभी इसप्रकार अज्ञान की समान परामर्श करने पर उद्धव ने उनकी आज्ञाको मस्तक पर धारणकरकेकहा॥४७॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०उ०सरलाभाषाटीकायांसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हेराजन् ! उद्धवजी इस बातको सुन और देवर्षि, सभासद व श्रीकृष्णजी के अभिप्रायको जानकर कहनेलगे ॥ १ ॥ हे देव ! आपकी फूफी के बेटे जब राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं तब आपको उनकी सहायता करनी चाहिये, यह बात जो देवर्षि ने कही वह आपको करना उचित है और संदेशा भेजने वाले राजाओं की रक्षाभी अवश्यही करना चाहिये ॥ २ ॥ हे विभो ! युधिष्ठिर दिग्विजय करकेही राजसूय यज्ञ करेंगे अतएव मेरामत है कि दिग्विजय करनेपरही जरासंधको जीतना चाहिये; इससे दोकार्य सिद्ध होवेंगे प्रथम तो राजसूय यज्ञहोगा दूसरे शरणागतों की रक्षाहोगी ॥३॥ हे गोविंद ! ऐसा करने सेही हमारा अभिप्राय पूराहोगा । राजाओं को बंधन से छुटानेपर आपकी भी कीर्त्ति बढ़ेगी ॥४॥ वह जरासंध दशसहस्र हाथियों की समान

नागायुतसमोबले। बलिनामपिचान्येषांभीमंसमबलंविना ॥ ५ ॥ द्वैरथेसतुजेतव्योमाशताक्षौहिणीयुतः। ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितोविप्रैर्नप्रत्याख्यातिकर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरोगत्वातंभिक्षेतवृकोदरः। हनिष्यतिनसन्देहोद्वैरथेतवसन्निधौ ॥७॥ निमित्तंपरमीशस्यविश्वसर्गनिरोधयोः। हिरण्यगर्भः शर्वश्चकालस्यारूपिणस्तव ॥८॥ गायन्तितेविशदकर्मगृहेषुदेव्योराज्ञांस्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणंच। गोप्यश्चकुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्चलब्धशरणामुनयोवयंच ॥ ९ ॥ जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते। प्रायः पाकविपाकेनतवचाभिमतःक्रतुः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच इत्युद्धववचोराजन्सर्वतोभद्रमच्युतम्। देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्चप्रत्यपूजयन् ॥ ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणायभगवान्देवकीसुतः। भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान्। संकर्षणमनुज्ञाप्ययदुराजं च शत्रुहन्। सूतोपनीतंस्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततोरथद्विपभटसादिनायकैःकरालयापरिवृतआत्मसेनया। मृदङ्गभेर्यानकशंखगोमुखैःप्रघोषघोषितककुभोनिराक्रमत् ॥१४॥ नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतंसहात्मजाः पतिमनुसुव्रताययुः। वराम्बराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृतानृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवारयोषितः। स्वलंकृताःकटकुटिकम्बलाम्बराद्युपस्कराययुरधियुज्यसर्वतः ॥ १६ ॥ बलंबृहद्ध्वजपट-

बलवान है, समबल वाले भीमसेन विना वह और किसी बली से जीताभी नहीं जासकता ॥ ५ ॥ उसको द्वैरथ (दो मनुष्यों) युद्ध सेही जीतना आवश्यक है नहीं तो सौ अक्षौहिणी सेभी वह न जीता जासकेगा। ब्राह्मण के याचना करनेपर वह उससे कभी भी विमुख नहीं होगा। भीमसेन को ब्राह्मण वेशधारण कर वहांजाय उससे युद्धकी प्रार्थना करनी चाहिये वह आपके सामने द्वन्द्व युद्धमें उसको मारेंगे इसमें संदेह नहीं है।६-७॥निराकार कालरूप भगवान आपही विश्वकी उत्पत्ति और संहार करतेहो ब्रह्मा और रुद्रतो केवल निमित्तमात्र हैं ऐसेही आप जरासंधको मारोगे भीमसेनतो केवल निमित्त मात्रहोंगे ॥ ८ ॥ जैसे गोपियें शंखचूड़ के मारने से अपने छुड़ाने रूप आपके पवित्र यशको गाती हैं, शरणागत लोग ग्राहके मारने और गजके छुडाने रूप व जैसे मुनिलोग रावणके मारने व जानकी के छुडाने रूपव जैसे हम कंसके मारने और उससे माता पिताके छुड़ाने रूप आपकी पुण्य कीर्तिको गाते हैं वैसेही उन सबबंदी राजाओंके छूटजानेसे उनकी स्त्रियें अपने २ पतिके छूटने रूप आपके यशको गावेंगी ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! जरासंध के मरने से बहुत कार्य सिद्धहोंगे। राजाओं के पुण्य विपाक के कारणही उस यज्ञमें जानेकी आपकी इच्छा हुई है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन् ! देवर्षि नारद, श्रीकृष्णजी और सब यदुवंशियों ने उद्धवजी के वचनोंको स्वीकार किया ॥ ११ ॥ अनंतर प्रभावशाली भगवान श्रीकृष्णजी ने यात्रा करने के निमित्त गुरुजनों की आज्ञाले दारुक, जैत्रआदि सेवकोंको आज्ञाकी ॥ १२ ॥ उन्हों ने बलदेवजी की आज्ञाले अपनी स्त्रियों, पुत्रों समेत सब सामग्रीको आगेकर आप सारथी के लायेहुए गरुडध्वज रथपर बैठे ॥ १३ ॥ फिररथ, हाथी, पैदल और घोड़ोंकी भयानक सेना उनके साथ २ चली। मृदङ्ग, भेरीढका,शंख और गोमुखों के प्रचंड शब्दों से दिशाएं शब्दायमान होनेलगीं॥१४॥ श्रीकृष्णजी पुरीसे बाहर हुए। पतिव्रता स्त्रियें उत्तम २ वस्त्र आभूषण पहिन, चन्दन और माला धारणकर ढाल तलवार लियेहुए मनुष्यों से भलीप्रकार रक्षितहो पुत्रोंसमेत रथ, बग्घी और सुवर्ण की सामग्री वाली पालकियोंपर बैठ पति श्रीकृष्णजी के पीछे २ चलनेलगीं ॥ १५ ॥ परिजनकी स्त्रियां और वेश्याएं भलीप्रकार से अलंकृतहो चटाइयों के डेरे व कंबल वस्त्रआदि सब सामग्री मनुष्य ऊंट, बैल, भैंसे, गधे, खच्चर, गाड़े और हथिनियोंपर लाद २ चारों ओरसे चले ॥१६॥

छत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः । दिवांशुभिस्तुमुलरवंबभौरवेर्यथार्णवःक्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथोमुनिर्यदुपतिनासभाजितःप्रणम्यतंहृदिविदधद्विहायसा । निशम्यतद्व्यवसितमाहृतार्हणोमुकुन्दसन्दर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥१८॥ राजदूतमुवाचेदंभगवान्प्रीणयन्गिरा । माभैष्टदूतभद्रंवोघातयिष्यामिमागधम् १९ इत्युक्तःप्रस्थितोदूतोयथावदवदन्नृपान् । तेऽपिसंदर्शनं शौरेःप्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥२०॥आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वाविनशनंहरिः । गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततोदृषद्वतींतीर्त्वामुकुन्दोऽथसरस्वतीम् । पञ्चालानथमत्स्यांश्चशक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्यप्रीतोदुर्दर्शनंनृणाम् । अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायःसुहृद्वृतः ॥ २३ ॥ गीतवादित्रघोषेणब्रह्मघोषेणभूयसा । अभ्ययात्सहृषीकेशंप्राणाःप्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाविक्लिन्नहृदयकृष्णंस्नेहेनपाण्डवः । चिराद्दृष्टंप्रियतमंसस्वजेऽथपुनःपुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यांपरिष्वज्यरमाऽमलालयंमुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः । लेभेपरांनिर्वृतिमश्रुलोचनोहृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥ तंमातुलेयंपरिरभ्यनिर्वृतोभीमःस्मयन्प्रेमजवाकुलेन्द्रियः । यमौकिरीटीचसुहृत्तमंमुदाप्रवृद्धबाष्पाःपरिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेनपरिष्वक्तोयमाभ्यामभिवादितः । ब्राह्मणेभ्योनमस्कृत्यवृद्धेभ्यश्चयथाऽर्हतः ॥ २८ ॥ मानितोमानयामासकुरुसृञ्जयकेकयान् । सूतमागधगन्धर्वान्वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥ २९ ॥

तुमुल शब्द युक्त वह भयानक सेना ध्वजा, चमर, छत्र, पट, श्रेष्ठअस्त्र, आभूषण, किरीट, कवच व सूर्यकी किरणों से शोभायमानहो तिमिंगल और तरङ्गों से क्षुभितहुए सागर की समान शोभा पानेलगी ॥ १७ ॥ अनंतर देवर्षि नारद श्रीकृष्णजी से पूजित और उनके दर्शनों से परम आनंदितहो, उनके उद्योमको विचार प्रणाम किया और हृदयमें उनका विचार करते २ आकाश मार्गसे चलेगये ॥ १८ ॥ भगवान ने सुंदर बचनों से उस राजदूतको सन्तुष्ट करके कहा कि हे दूत ! राजाओं से कहना कि तुमभय मतकरो मैं निश्चयही शीघ्रही जरासंधको मार तुम्हारा कल्याण करूंगा ॥ १९ ॥ यह सुनकर दूतने जाय राजाओं से उस सब वृत्तांतको कह सुनाया, वे भी अपने छूटनेकी इच्छा से भगवान के दर्शनों की राह देखनेलगे ॥ २० ॥ इधर हरि आनर्त्त, सौवीर, मरुदेश और कुरुक्षेत्रको लांघकर पर्वत, नगर, गांव, ब्रज और खानों को मंझाते हुए दृषद्वती और सरस्वती के पारहो पांचाल और मत्स्यदेश को लांघकर इंद्रप्रस्थ में आये ॥ २१ । २२ ॥ जिनके दर्शन मनुष्यों को बड़े दुर्लभ हैं उन श्रीकृष्णजी को आयाहुआ सुनकर युधिष्ठिर आनन्दितहो ब्राह्मणों और बन्धुओं समेत पुरी से बाहरहुए ॥ २३ ॥ जैसे इंद्रियें प्राणसेमिलें वैसेही वह युधिष्ठिर बाजे गाजेसे और बेदध्वनि करतेहुए आदर समेत श्रीकृष्णजी से मिले ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी को देखतेही पाण्डवों का हृदय स्नेह से द्रवीभूत होगया । वह बहुत काल के उपरांत प्यारे को देख बारम्बार उनसे मिलने लगे ॥ २५ ॥ लक्ष्मी के निर्दोष आश्रय भूत लक्ष्मीपति के शरीर से आलिंगनकरने पर राजा के सब अमंगल नष्टहोगये उनके दोनों नेत्रों से आनन्दाश्रु बहनेलगे, शरीर पुलकित होगया । उनको सब लौकिक व्यवहार भूलगया ॥ २६ ॥ भीम अपने उन मामा के पुत्रसे हँसकर मिले वहभी प्रेमाश्रु की धारासे व्याकुल होगये । नकुल सहदेव और अर्जुनभी आनन्द से प्यारे सुहृदका आलिंगनकर प्रेमाश्रुसे उनको सींचने लगे॥२७॥ अर्जुन श्रीकृष्णजी से मिले और नकुल व सहदेव ने मिलने के अनन्तर उनको प्रणामभी किया उस समय श्रीहरि ने ब्राह्मण और वृद्धपुरुषों को यथायोग्य प्रणामकर उनसे सन्मानितहो कुरु, सृंजय और केकय बंशियों का तथा सूत, मागध, बन्दी व सेवकों का सत्कार किया ॥२८।२९॥

मृदङ्गशंखपटहवीणापणवगोमुखैः । ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षंतुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ३० ॥ एवंसुहृद्भिःपर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः । संस्तूयमानोभगवान्विवेशाऽलंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्मकरिणांमदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैःकनकतोरणपूर्णकुम्भैः । मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्चविराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपवलिभिःप्रतिसद्मजालनिर्यातधूपरुचिरंविलसत्पताकम् । मूर्धन्यहेमकलशैररजतोरुशृङ्गैर्जुष्टंददर्शभवनैःकुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तंनिशम्यनरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः । सद्योविसृज्यगृहकर्मपतींश्चतल्पेद्रष्टुंययुर्युवतयःस्मनरेन्द्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुलइभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णंसभार्यमुपलभ्यगृहाधिरूढाः । नार्योविकीर्यकुसुमैर्मनसोपगुह्यसुस्वागतंविदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥ ऊचुःस्त्रियःपथिनिरीक्ष्यमुकुन्दपत्नीस्तारायथोडुपसहाःकिमकारिमूभिः । यच्चक्षुषांपुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥३६॥ तत्रतत्रोपसंगम्यपौरामङ्गलपाणयः । चक्रुःसपर्यांकृष्णायश्रेणीमुख्याहतैनसः ॥३७॥ अन्तःपुरजनैःप्रीत्या मुकुन्दःफुल्ललोचनैः । ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ पृथाविलोक्यभ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् । प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविन्दंगृहमानीय देवदेवेशमादृतः । पूजायांनाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतोनृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् । स्वयं

ये लोग मृदङ्ग, शंख, पटह, बीणा, पणव और वेणुके साथ नृत्य व गान कर २ हरि को प्रसन्न करने लगे ॥ ३० ॥जिनके नाम और गुणों के कहने से पवित्रता उत्पन्न होती है उनके शिरोमणि भगवान सुहृदों के साथ सुन्दरपुरी में आये,उस समय सबमनुष्य उनकी स्तुति करतेथे ॥३१॥ मदमत्त हाथियों के झरतेहुए मदसे नगर के मार्ग सिंचगएथे; विचित्रध्वजा, सुवर्ण के तोरण,और भरेहुए कलशों से नगर शोभायमान होरहाथा। शुद्ध चित्त स्त्री पुरुष नवीन रेशमी वस्त्र पहिने नाना प्रकार के अलंकार, माला चन्दनादि धारण किये सब स्थानों में बिराजमानथे ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी ने कुरुराजका निवासस्थान देखा कि घर२में दीपक और पुष्प आदि शोभायमान होरहे हैं।घरों की जालियों से धुआं निकलरहा है और उस से पताकाएं शोभायमान होरही हैं उन में सुवर्णके कलश औरकलशों के नीचे चांदी के शिखर शोभायमानहोरहे हैं ॥३३॥ स्त्रियोंके नेत्रों को आनन्द देनेवाले श्रीकृष्णजीके अतिसुन्दर केश और वस्त्रों के बन्धनढीले होगए,वह तत्कालहीघरका सबकाम और शय्या में स्वामियों को छोड़ राजमार्ग में उनके देखने के निमित्त आनेलगीं॥३४॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से व्याप्त उस राजमार्ग में स्त्रियों समेत श्रीकृष्णजी को देख घरों के ऊपर बैठीहुई स्त्रियें उनके ऊपर फूल बरसाय २ मन २ में उनका आलिंगन कर विस्मययुक्त दृष्टि से उनका आदर करनेलगीं ॥३५॥ चन्द्रमाके साथ नक्षत्रों की समान मार्ग में श्रीकृष्णजीके साथ स्त्रियोंको देख नगरकी स्त्रियें कहने लगीं कि–इन्होंने ऐसा क्या पुण्यकियाथा कि जिससे श्रीकृष्णजी उदारहास्य विलास और लीला से इनको आनन्द उत्पन्न कराते हैं ॥ ३६ ॥ अनन्तर पुरवासी और कारीगरलोग विशेष २ स्थानों में मांगलिक द्रव्यों से श्रीकृष्णजी की पूजाकरनेलगे ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णजी ने प्रीतिसे प्रफुल्लित नेत्रहो अंतःपुरके निवासियों से घिरकर राजमंदिर में प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ कुंतीभाई के पुत्र त्रिभुवनेश्वर श्रीकृष्णजीको देखकर अत्यंत आनंदित हुई और पुत्रकी बहुओं समेत पलंगपर से उठ उनका आलिंगन किया ॥ ३९ ॥ राजा युधिष्ठिर आदर पूर्वक उनदेव देवेश कृष्णजीको लेआये वह उस समय प्रेमसे ऐसा व्याकुल होगये किपूजा करने की विधिभी भूलगये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी ने फूफी और गुरु स्त्रियोंको प्रणाम किया

चकृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वासंचोदिताकृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः । आनर्चरुक्मिणींसत्यां भद्रांजाम्बवतीं तथा ॥ ४२ ॥ कालिन्दींमित्रविंदांच शैब्यांनाग्नजितींसतीम् । अन्याश्चाभ्यागतायास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखंनिवासयामास धर्मराजोजनार्दनम् । ससैन्यंसानुगामात्यं सभार्यंचनवंनवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वाखाण्डवेन वह्निंफाल्गुनसंयुतः । मोचयित्वामयंयेन राज्ञेदिव्यासभाकृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया । विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेनभटैर्वृतः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदातुसभामध्यआस्थितोमुनिभिर्वृतः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्चयुधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्चज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः । शृण्वतामेवचैतेषामाभाष्येदमुवाचह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेनगोविन्द राजसूयेनपावनीः । यक्ष्येविभूतीर्भवतस्तत्सम्पादयनः प्रभो ॥ ३ ॥ त्वत्पादुकेअविरतंपरियेचरन्तिध्यायन्त्यभद्रनशनेशुचयोगृणन्ति । विन्दन्तितेकमलनाभभवापवर्गमाशासतेयदितआशिषईशनान्ये ॥ ४ ॥ तद्देवदेवभवतश्चरणारविन्दसेवाऽनुभावमिहपश्यतुलोकएषः । येत्वांभजन्तिनभजन्त्युतवोभयेषांनिष्ठांप्रदर्शयविभोकुरुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥ नब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तवस्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसु

और द्रौपदी व बहिन सुभद्राने भी आकर उनको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ द्रौपदी ने सासकी आज्ञानुसार रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिंदी, मित्रविंदा, शैब्या, नाग्नजिती और समस्त आईहुई श्रीकृष्णजी की स्त्रियों की पूजाकी । और दूसरी भी जोस्त्रियें आई थीं वस्त्र, माला और आभूषणादि देकर उनकी अर्चना की ॥ ४२-४३ ॥ युधिष्ठिर कृष्णजीको व उनकी सेना, मंत्री और स्त्रियोंको नित्य नवीन २ सुख देकर प्रसन्नित करनेलगे ॥ ४४ ॥ श्रीकृष्णजी राजाको प्रियकरने के निमित्त सेना समेत अर्जुन सहित रथपर बैठ बिहार करते हुए कई महीने हस्तिनापुरमें रहे और अर्जुन के संगहो खाण्डव बनसे अग्निको संतुष्ट कराय मयको छुड़ाय उससे युधिष्ठिरकी अद्भुतसभा बनवाई ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णजी अर्जुनको साथले, रथमें बैठ, योधालोगों के संग राजाको प्रसन्न रखने के लिये कितने एक दिन इन्द्र प्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ० सरलाभाषाटीकायांएकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! एकदिन युधिष्ठिरने मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भ्राता, आचार्य, कुलवृद्ध, सम्बन्धी और बांधवों से घिरकर सभामें बैठेहुये उन सबके सुनते श्रीकृष्णजीसे सम्बोधन करके कहा कि— ॥ १—२ ॥ हेगोविन्द ! मैं यज्ञश्रेष्ठ राजसूय यज्ञद्वारा आपके अंशरूप देवताओं का पूजन करना चाहताहूं, हेप्रभो ! तुम उसको पूर्णकरो, ॥ ३ ॥ हेकमलनाभ! हेईश्वर ! जो पवित्र मनुष्य निरन्तर आपकी पादुकाओं का सेवन व ध्यान करते हैं अथवा अमंगल नाशके निमित्त पवित्र होकर नामका उच्चारण करतेहैं वेही संसारसे मुक्ति पातेहैं । और यदि वे कल्याण की इच्छा करते हैं तो उनको वही प्राप्तहोताहै कि—जिसको चक्रवर्ती भी नहीं पासकते ॥ ४ ॥ अतएव हेदेव ! इन सब मनुष्यों को आपके चरणों की सेवा का प्रभाव अवश्य ही दिखाना चाहिये । हेविभो ! कुरु और संजय बंशियों मेंसे जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंको ही अपनी मर्यादा दिखाओ, ॥ ५ ॥ आप निरुपाधि सबके आत्मा, समदर्शी और आत्मा रामहो अतएव आपको अपने और परायेका भेद नहीं है तोभी जो आप की

स्वानुभूतेः । संसेवतांसुरतरोरिवतेप्रसादः सेवानुरूपमुदयोनविपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितंराजन्भवताशत्रुकर्शिना । कल्याणीयेनतेकीर्तिर्लोकाननुभविष्यति॥७॥ऋषीणांपितृदेवानांसुहृदामपिनःप्रभो। सर्वेषामपिभूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्यनृपतीन्सर्वान्कृत्वाचजगतींवशे । संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्वमहाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एतेतेभ्रातरोराजँल्लोकपालांशसंभवाः । जितोऽस्म्यात्मवतातेऽहंदुर्जयोयोऽकृतात्मभिः ॥१०॥ नकश्चिन्मत्परंलोकेतेजसायशसाश्रिया । विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपिकिमुपार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्यभगवद्गीतंप्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः।भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुङ्क्तविष्णुतेजोपबृंहितान् ॥१२ ॥ सहदेवंदक्षिणस्यामादिशत्सहसृञ्जयैः । दिशिप्रतीच्यांनकुलमुदीच्यांसव्यसाचिनम् । प्राच्यांवृकोदरंमत्स्यैः केकयैः सहमद्रकैः ॥ १३ ॥ तेविजित्यनृपान्वीराआजह्रुर्दिग्भ्यओजसा । अजातशत्रवेभूरिद्रविणंनृपयक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितंजरासन्धंनृपतेर्ध्यायतोहरिः। आहोपायंतमेवाद्यउद्धवोयमुवाचह ।१५। भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णोब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः । जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥ तेगत्वातिथ्यवेलायांगृहेषुगृहमेधिनम् । ब्रह्मण्यंसमयाचेरन्राजन्याब्रह्मलिङ्गिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनोदूरमागतान् । तन्नःप्रयच्छभद्रंतेयद्वयंकामयामहे ॥ १८ ॥ किंदुर्मर्षंतितिक्षूणांकिमकार्यमसाधुभिः । किंनदेयंवदान्या

सेवा करतेहैं कल्पवृक्ष की समान आप उनहीं पर प्रसन्न होतेहो । जो मनुष्य आपकी जैसी सेवा करताहै आप उसको वैसाही फल देतेहो कभी उसके विपरीत नहीं होता ॥ ६ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हेराजन् ! हेशत्रुकर्षण !,आप जो संकल्प करतेहो वह अत्यन्तही श्रेष्ठहै. आपकी यह मंगलदायी कीर्त्ति सर्वलोकमें व्याप्त होगी ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! यह महायज्ञ ऋषियोंको, पितरोंको, देवताओंको, बन्धुओं को, समस्त प्राणियों की ओर मुझको भी अतिप्रिय है, ॥८॥ तुम समस्त राजाओं को जीत और पृथिवीको बशीभूत कर सब सामग्रीका प्रस्तुतकर श्रेष्ठ यज्ञको अनुष्ठान करो ॥ ९ ॥ हेराजन् ! आपके यह सब भाई लोकपालों से उत्पन्न हुएहैं इनकेही द्वारा सब राजा परास्त होंगे । मैं भी अजितेंद्रिय मनुष्यों का अजेय आपकी जितेंद्रियता से आपके वशीभूत हुआहूं ॥ १० ॥ राजाओंकी बातें तो दूररहीं देवता भी मेरे भक्तों का तेज, कीर्त्ति लक्ष्मी और सेनापति आदि से पराजय नहीं करसकते ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! भगवान की बातोंको सुन स्नेहसे राजाका कमलमुख प्रफुल्लितहो उठा उन्हों ने बिष्णु के तेज से बढ़ेहुये भाइयोंको दिग्विजयके निमित्त नियुक्त किया ॥ १२ ॥ संजयगणके साथ सहदेवको दक्षिण और मत्स्यगण के साथ नकुल को पश्चिमऔर केकय गण के साथ अर्जुन को उत्तर की ओर मद्रदेश के क्षत्रियों के साथ भीमको पूर्वकी ओर भेजा ॥ १३ ॥ हेराजन् ! वे सब बीर चारोंओरसे बलपूर्वक राजाओं को जीत २ बहुतसा धन ला २ राजा युधिष्ठिरको देनेलगे ॥ १४ ॥ केवल जरासंध के अतिरिक्त और सब राजा परास्त हुए, यह सुन राजाके चिंतित होनेपर भगवान हरिने उद्धव के कहेहुए उपाय को कहा ॥ १५ ॥ हेराजन् ! अनन्तर भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णजी तीनों जन ब्राह्मण का वेश धारणकर जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज में आए ॥ १६ ॥ ब्राह्मण बेश धारण कियेहुए इन क्षत्रियों ने जरासन्ध के घर अतिथि के पूजन समयमें पहुंच ब्राह्मण सेवा के निमित्त उससे याचना करके कहा कि— ॥ १७ ॥ हेराजन् ! हम बहुत दूरसे आयेहुए अतिथि हैं अतएव हमारी इच्छाको आप पूरी करो आपका कल्याण होवे ॥ १८ ॥ क्षमाशील मनुष्योंको कुछ दुःसह नहींहै असज्जनों को कोई भी कुकार्य नहींहै दान शील मनुष्योंको कुछ भी अदेयनहीं

नांकः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येनशरीरेणसतांगेयंयशोध्रुवम् । नाऽऽचिनोतिस्वयंकल्पः स वाच्यःशोच्यएवसः ॥ २०॥ हरिश्चन्द्रोरन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः । व्याधःकपोतोबहवो ह्यध्रुवेणध्रुवंगताः ॥ २१ ॥ श्रीशुकउवाच । स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि । राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥ ॥ २२ ॥ राजन्यबन्धवोह्येते ब्रह्मलिंगानिबिभ्रति । ददामिभिक्षितंतेभ्य आत्मानमपिदुस्त्यजम् ॥ २३ ॥ बलेर्नुश्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा। ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियंजिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवेद्विजरूपिणे । जानन्नपिमहीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपिदैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवताब्राह्मणार्थाय कोन्वर्थःक्षत्रबन्धुना । देहेनपतमानेन नेहताविपुलंयशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिःप्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् । हेविप्रा व्रियतांकामो ददाम्यात्मशिरोपिवः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच युद्धंनोदेहिराजेन्द्र द्वन्द्वशोयदिमन्यसे ॥ युद्धार्थिनोवयंप्राप्ता राजन्यानान्नकाङ्क्षिणः ॥ २८ ॥ असौवृकोदरःपार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनोह्ययम् । अनयोर्मातुलेयंमां कृष्णं जानीहितं रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितोराजा जहासोच्चैःस्ममागधः । आहचामर्षितोमन्दा युद्धंतर्हिददामिवः ॥ ३० ॥ नत्वयाभीरुणायोत्स्ये युधिविक्लवचेतसा ॥ मथुरांस्वपुरींत्यक्त्वा समुद्रंशरणंगतः ॥ ३१ ॥ अयंतुवयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मेसमः । अर्जुनोनभवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलोमम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाभीमसेनाय प्रा

है और समदर्शियों को कोई भी दूसरा नहीं है ॥१९॥ जो पुरुष स्वयं समर्थ होकर इस अनित्य देहसे साधुओं के गानेयोग्य निर्मल यशको नहीं प्राप्त करता वह पुरुष निंदनीय और शोकित होताहै ॥ २० ॥ देखो ! हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल,शिबि, व्याध, कपोत और भी दूसरे बहुतोंने इस अनित्य शरीरसे नित्यलोकको प्राप्त कियाहै, ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! बातचीत आकृति और धनुषकी प्रत्यंचा के घातके चिह्नोंवाले भुजाओंसे उनको क्षत्रिय और पहिले भी कभी देखाहुआ जान जरासन्ध विचार करनेलगा, कि— ॥ २२ ॥ यह क्षत्रीहैं, परन्तु ब्राह्मण का चिह्न धारण कियेहुए हैं मैं इनको नहीं त्यागने योग्य आत्मा को भी इनके मांगने पर आज देदूंगा ॥ २३ ॥ श्रीविष्णु ने इन्द्रका ऐश्वर्य रखने के निमित्त ब्राह्मण वेश धारणकर बलिका ऐश्वर्य छीनाथा तौ भी क्या बलिका निर्मल यश चारोंओर नहीं व्याप्त हुआ ॥ २४ ॥ दैत्यराजने जानकर और शुक्राचार्य के निवारण करनेपर भी ब्राह्मणरूपी भगवान को पृथिवी देदीथी, २५ ॥ यह देह अनित्यहै क्षत्रियों की देह यदि ब्राह्मणों का कार्यकर विपुल यशके प्राप्त करनेका यत्न न करे तो उसके जीवित न रहनेसेही क्या फलहै ॥ २६ ॥ उदार बुद्धि जरासन्धने इसप्रकारसे निश्चय कर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन से कहा, हेविप्रो ! आप इच्छित वरको मांगो, यदि आप मेरे मस्तक को भी मांगोगे तो वह भी मैं आपको देदूंगा ॥ २७ ॥ श्रीभगवानने कहा कि-हेराजेन्द्र ! हम क्षत्रीहैं युद्धकी इच्छासे यहां आयेहैं, और हमारी कुछ इच्छा नहींहै यदि इच्छाहो तो हमारे साथ द्वन्द्वयुद्ध का आरम्भ करो ॥ २८ ॥ यह कुन्ती के पुत्र भीमसेन हैं यह उनके भाई अर्जुनहैं मैं इन दोनोंके मामाका पुत्र और आपका शत्रु कृष्णहूं, ॥ २९ ॥ राजा जरासन्ध यह सुनकर उच्चस्वरसे हंसने और क्रोधित होकर कहनेलगा कि—रेमूर्खो ! तब तो मैं तुम्हें युद्ध दूंगा, ॥ ३० ॥ कृष्ण ! तू डरपोक है तू युद्धभूमि से भागगयाथा तूने अपनी पुरी मथुरा को छोड़कर समुद्रकी शरण ली है मैं तेरे संग युद्ध न करूंगा ॥ ३१ ॥ यह अर्जुन भी वय में छोटा और निर्बल है तथा देह मेंभी मेरी समान नहीं है । अतएव यह योद्धा नहीं होसकता । भीमसेन मेरी ही समान बलवान है, इससे ही संग युद्ध करूंगा ॥ ३२ ॥ राजा जरासंध ने यह

दायमहतींगदाम् । द्वितीयांस्वमादाय निर्जग्मपुराद्बहिः॥३३॥ ततःसमेखलेवीरौ संयुक्तावितरेतरौ । जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यांरणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मण्डलानि विचित्राणि सव्यंदक्षिणमेवच । चरतोःशुशुभेयुद्धं नटयोरिवरंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः । गदयोःक्षिप्तयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः । ॥ ३६ ॥ तेवैगदेभुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् । चूर्णीबभूवतुरुपेत्ययथाऽर्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिवदीप्तमन्य्वोः ॥ ३७ ॥ इत्थंतयोःप्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौकुद्धौस्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् । शब्दस्तयोःप्रहरतोरिभयोरिवाभीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः॥३८॥ तयोरेवंप्रहरतोःसमशिक्षाबलौजसोः । निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवंतयोर्महाराज युध्यतोःसप्तविंशतिः । दिनानिनिरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदामातुलेयंवै प्राहराजन्वृकोदरः । नशक्तोऽहंजरासन्धं निर्जेतुंयुधिमाधव ॥४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितंच जराकृतम् । पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिन्तयद्धरिः ॥ ४२ ॥ संचिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः । दर्शयामासविटपं पाटयन्निवसंज्ञया । ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञायमहासत्त्वो भीमःप्रहरतांवरः । गृहीत्वापादयोःशत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकंपादंपदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यंप्रगृह्यसः । गुदतः पाटयामास शाखामिवमहागजः ॥ ४५ ॥ एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके । एकबाह्वक्षिभ्रूक-

कहकर भीमसेन को एक बड़ी भारी गदादी और स्वयं एक दूसरी गदा ले घरसे बाहर निकला ॥ ३३ ॥ अनंतर वह दोनों रणमें मदोन्मत्त वीर बज्रकी समान गदाओं से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ दाहिनी और बांई ओर भ्रमण करते हुए उन दोनों वीरों का युद्ध रंग भूमि में प्रवेश किये हुए दो नटों के युद्ध की समान शोभा देने लगा ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! दो हाथियों के लड़ने में उनके दांतों के होतेहुए शब्दकी समान उन दोनों गदाओंका वज्रपात की सदृश चट चट शब्द होता था ॥ ३६ ॥ प्रचण्ड क्रोध वाले दो हाथियों के युद्धमें प्रवृत होने पर जिस प्रकार उनके अंग से लगकर आककी शाखाएं टूट जाती हैं उसी प्रकार हाथों के वेगसे चलाईजातीहुई गदाएं परस्पर में कन्धा, कमर, हाथ, साथल और हसियों में लगकर चूर्णहोगईं ॥ ३७ ॥ उन दोनों गदाओं के इसप्रकार से टूटजाने पर वह दोनों क्रोधित बीर अपनी २ लोहे की समान मुक्कियों से परस्पर लड़ने लगे वह दोनों मुक्कियों से एक दूसरे के शरीर को चूर्णकरने लगे । मत्तहाथी की सदृश प्रहार करतेहुए इनबीरों की मुक्कियों का प्रहार बज्र के शब्दकीसमान कठोर होताथा ॥ ३८ ॥ हेराजन् ! वह दोनोंजन शिक्षा, बल और प्रभाव में समानहीथे अतएव किसी का भी वेग क्षीणनहुआ । उन दोनों का एकसायुद्ध होनेलगा ॥ ३९ ॥ इसप्रकार से युद्ध करते २ सत्ताईस दिन बीतगए, वह दिन में तो युद्ध करते परन्तु रात्रि में मित्र की समान रहते थे ॥ ४० ॥ एक दिन भीमसेन ने कृष्णजी से कहा कि–महाराज ! मैंतो युद्ध में जरासंध को नहीं जीतसकता ॥ ४१ ॥ हरि को शत्रुकाजन्म, मृत्यु और जीवन ज्ञातथा वह अपने तेजसे भीमसेन को बढ़ाय जरा राक्षसीके कार्य का बिचार करने लगे ॥ ४२ ॥ अमोघ दर्शन श्रीकृष्ण जीने एक वृक्षकी टहनी ले उसको चीर सैन से भीमको शत्रु के मारने का यत्न बतलादिया ॥ ४३ ॥ प्रहारकरनेवालों में श्रेष्ठ महाबलवान भीमने उसको जान दोनों पैर पकड़ शत्रुको पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ४४ ॥ अनन्तर अपने पैर से उसके एक पैर को दाब दोनों हाथों से उसके दूसरे पैर को पकड़ मत्तहाथी से चीरीहुई शाखा के समान गुदासे उसको चीरडाला ॥ ४५ ॥ इस से दोनों ओर को दोखण्ड गिरपड़े । उसकी कमर से एक २ ओर एक २ पैर, वृषण, कटि, स्तन,

र्णं शाकलेदधुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे । पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७ ॥ सहदेवंतत्तनयं भगवान्भूतभावनः । अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानांपतिंप्रभुः । मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेनये ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीशुकउवाच । अयुतेद्वेशतान्यष्टौ लीलयायुधि निर्जिताः । ते निर्गतागिरिद्रोण्यां मलिनामलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाःशुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः । ददृशुस्तेघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकंचतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् । चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम् । किरीटहारकटककटिसूत्रांगदाचितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया । पिबन्तइवचक्षुर्भ्यांलिहन्तइवजिह्वया ॥ ५ ॥ जिघ्रन्तइवनासाभ्यांरम्भन्तइवबाहुभिः । प्रणेमुर्हतपाप्मानोमूर्धभिःपादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः । प्रशशंसुर्हृषीकेशंगीर्भिःप्राञ्जलयोनृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेशप्रपन्नार्तिहराव्ययः । प्रपन्नान्पाहिनःकृष्णनिर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनंनाथान्वसूयामोमागधंमधुसूदन । अनुग्रहोयद्भवतोराज्ञांराज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो नश्रेयोविन्दतेनृपः । त्वन्मायामोहितोऽनित्यामन्यतेसम्पदोऽचला ॥ १० ॥ मृगतृष्णांयथाबालामन्यन्तउदकाशय

कन्धा, भुजा, नेत्र, भौंह और कानरहगये। मनुष्य उसको देखकर बड़ेही अचम्भितहुए ॥ ४६ ॥ मगधराज के मरने से बड़ाही हाहाकारहुआ। अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने भीम से मिलकर उनकी पूजाकी ॥ ४७ ॥ भूतभावन, अगोघात्मा भगवान ने उस जरासंध के पुत्र सहदेवको मगधदेशकी राजगद्दी पर बिठायसबचन्दीराजाओंको बन्दीगृहसे छुड़ाया ॥ ४८ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन्! बीस सहस्र आठसौ राजा युद्धमें हारकर जरासंध से पर्वत की गुफामें बंदीहुए थे। बहुत दिनतक गुफामें बंदरहने से वह अत्यंत मलीन, कृश और भूख से पीड़ित होगये थे। क्षीण शरीरयुक्त कारागार से निकल उन्होंने श्रीकृष्णजीका दर्शन किया ॥ १–२ ॥ वे भगवान पीताम्बर धारण कियेहुए थे, वक्षःस्थल में श्रीवत्सका चिह्न व चारभुजा धारण किये, उनके दोनों नेत्र कमल के भीतरी भागके समान लालवर्ण के हैं उनका मुख सुंदर व प्रसन्न है वह कानों में प्रकाशित मकराकृत कुंडल धारण किये व हाथमें कमल लिये हैं। वह गदा, शंख, और चक्रके चिह्नोंसे चिह्नित और किरीट, हार, कड़े, कटिमेखला और भुजबंद से भूषित होरहे हैं। उनके कंठमें कौस्तुभमणि प्रकाशित होरही है वह बनमाला धारण कियेहुए हैं। श्रीकृष्णजी के दर्शनों से जोआनंद प्राप्तहुआ सब राजा उससे कारागारके दुःखको भूलगये, उनके सब पापभी नष्टहोगये। वह दोनों नेत्रोंसे मानों पीतेहोवें, जिह्वासे मानों चाटते, नासिका से मानों सूंघते और दोनों भुजाओं से मानों आलिङ्गन करतेहों इसप्रकारसे वे सबराजा मस्तक से हरिके दोनों चरणों को प्रणामकर हाथजोड़ उनकी स्तुति करनेलगे ॥ ७ ॥ राजाओं ने कहाकि—हे देव देवेश! हे अव्यय आपको नमस्कार है। हे कृष्ण! हम आपकी शरण में आये हैं इस दुःखदायी घोरसंसार से हमारा उद्धारकरो ॥ ८ ॥ हे नाथ! हे मधुसूदन! हम इस मगधराजको कुछभी दोष नहीं देते। हे विभो! हमलोग जो राजच्युत हुए वह आपका अनुग्रह है। राजा, राज्य और ऐश्वर्य के मदसे मत्तहोकर कल्याण नहीं प्राप्त करसकते; आपकी मायासे मोहितहो अनित्य सम्पत्तिको नित्यजान गर्वित होजाते हैं ॥ ९–१० ॥ जैसे बालक मृगतृष्णाको जलाशय जानते हैं तैसेही अ-

म् । एवंवैकारिकींमायामयुक्तावस्तुचक्षते ॥ ११ ॥ वयंपुराश्रीमदनष्टदृष्टयोजिगीषयाऽस्याइतरेतरस्पृधः । घ्नन्तःप्रजाःस्वाअतिनिर्घृणाःप्रभोमृत्युंपुरस्त्वाऽविगणय्यदुर्मदाः ॥ १२ ॥ तएवकृष्णाद्यगभीररंहसादुरन्तवीर्येणविचालिताःश्रियः । कालेनतन्वाभवतोऽनुकम्पयाविनष्टदर्पाश्चरणौस्मरामते ॥ १३ ॥ अथोनराज्यंमृगतृष्णिरूपितंदेहेनशश्वत्पततारुजांभुवा । उपासितव्यंस्पृहयामहेविभोक्रियाफलंप्रेत्यचकर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तंनःसमादिशोपायंयेनतेचरणाब्जयोः । स्मृतिर्यथानविरमेदपिसंसरतामिह ॥ १५ ॥ कृष्णायवासुदेवायहरयेपरमात्मने । प्रणतक्लेशनाशायगोविन्दायनमोनमः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानोभगवान्राजभिर्मुक्तबन्धनैः । तानाहकरुणस्तातशरण्यःश्लक्ष्णयागिरा ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिवोभूपामय्यात्मन्यखिलेश्वरे । सुदृढाजायतेभक्तिर्बाढमाशंसितंतथा ॥ १८ दिष्ट्याव्यवसितंभूपाभवन्तऋतभाषिणः । श्रियैश्वर्यमदोन्नाहंपश्यउन्मादकंनृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयोनहुषोवेनोरावणोनरकोऽपरे। श्रीमदाद्भ्रंशिताःस्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवन्तएतद्विज्ञायदेहाद्युत्पाद्यमन्तवत् । मांयजन्तोऽध्वरैर्युक्ताःप्रजाधर्मेणरक्षथ ॥ २१ ॥ संतन्वन्तःप्रजातन्तून्सुखंदुःखंभवाभवौ । प्राप्तंप्राप्तंचसेवन्तोमच्चित्ताविचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्चदेहादावात्मरामाधृतव्रताः । मय्यावेश्यमनःसम्यङ्मामन्तेब्रह्मयास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यनृपान्कृष्णोभगवान्भुवनेश्वरः। तेषांन्ययुङ्क्तपुरुषान्स्त्रियोमज्जनकर्मणि॥२४॥

विचारी मनुष्य विकारवान मायाको सत्य मानते हैं ॥११॥ पहिले ऐश्वर्य्य के गर्वसे हमलोगों की भी बुद्धि भ्रमित होगई थी, इस पृथ्वी के जीतलेने की कामना से हम परस्पर शत्रुता रखते, और अपने शिरपर रहेमृत्यु रूप आपको न गिनकर मतवालेहो अत्यंत निठुरता से मनुष्योंको मारते थे ॥ १२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हम सम्पत्ति के गम्भीर पराक्रम से गर्वितहोरहे थे, आज आपकी कुछेक अनुग्रह से अभिमान रहितहो आपके दोनों चरण कमलों का स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ अबहमें राज्यकी कामना नहीं है । राज्य मृगतृष्णा की समान है, सबरोगों की जन्मभूमि इस क्षणभंगुर देहसे उसकी नित्य उपासना करनी पड़ती है । हम परलोक मेंभी कर्म फलसे स्वर्गादि की भी कामना नहीं करते क्योंकि वहतो केवल कानोंहीको प्रिय है ॥ १४ ॥ अतएव आप ऐसा उपाय बतलाओ कि जिससे हम संसारमें भ्रमण करते हुएभी आपके चरण कमलोंको न भूलसकें ॥१५॥ हे श्रीकृष्ण!वासुदेव, हरि,परमात्मा, भक्तोंके क्लेशनाशक गोविंद आपको बारंबार हमारा नमस्कार है ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे वत्स ! शरणागत वत्सल दयालु भगवान की जब छूटेहुए राजाओं ने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान ने मनोहर वाक्यों से उनसे कहाकि—॥ १७ ॥ हे राजाओं ! तुमलोग जोइच्छा करतेहो वह निश्चयही आजसे मुझ अखिलेश्वर आत्मा में तुम्हारी दृढभक्ति होवेगी ॥ १८ ॥ हे राजालोग ! तुम्हारा संकल्प बहुतही श्रेष्ठ है, तुमलोग जोकहतेहो वह सब सत्य हैं । मै देखता हूं कि लक्ष्मी और ऐश्वर्यका मदलोगोंको उन्मत्त करदेता है ॥१९॥ कार्त्तवीर्य, नहुष, वेण, रावण, बकासुर और दूसरे भी देव, दैत्य और राजा ऐश्वर्य के गर्वसे अंधे हो२ अपने स्थानों से पतित हुए हैं ॥ २० ॥ तुम इस देहसे उत्पन्नहुई वस्तुओं का अन्त है, यह जान मेरी आराधना कर सावधानहो धर्मानुसार प्रजाका पालन करो ॥ २१ ॥ पुत्र पौत्रों का होना, सुख दुःख, मंगल अमंगल जो होवे उसीसे सन्तुष्टहो मुझमें चित्तलगाय भ्रमणकरो ॥२२॥ जो तुम देहादि से उदासीन व आत्माराम होकर नियमपूर्वक रहोगे तो अन्तमें परब्रह्म स्वरूप मुझको प्राप्त होओगे ॥ २३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भुवनेश्वर भगवान श्रीकृष्णजी राजाओंको इसप्रकारसे आज्ञादे उनके उबटन और स्नानादि करानेके निमित्त कितनेही दास दासी

सपर्यांकारयामासुसहदेवेनभारत । नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥ भोजयित्वावरान्नेनसुस्नातान्समलंकृतान् । भोगैश्चविविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ तेपूजितामुकुन्देनराजानोमृष्टकुण्डलाः । विरेजुर्मोचिताःक्लेशाप्रावृडन्तेयथाग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्यमणिकाञ्चनभूषितान् । प्रीणय्यसूनृतैर्वाक्यैःस्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥ तएवंमोचिताःकृच्छ्रात्कृष्णेनसुमहात्मना । ययुस्तमेवध्यायन्तःकृतानिचजगत्पतेः ॥२९॥ जगदुःप्रकृतिभ्यस्तमहापुरुषचेष्टितम् । यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथाचक्रुरतन्द्रिताः ॥ ३० ॥ जरासन्धंघातयित्वाभीमसेनेनकेशवः । पार्थाभ्यांसंयतःप्रायात्सहदेवेनपूजितः ॥ ३१ ॥ गत्वातेखाण्डवप्रस्थंशंखान्दध्मुर्जितारयः हर्षयन्तःस्वसुहृदोदुर्हृदांचासुखावहाः ॥३२॥ तच्छ्रुत्वाप्रीतमनसइन्द्रप्रस्थनिवासिनः । मेनिरेमागधंशान्तंराजाचाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवन्द्याथराजानंभीमार्जुनजनार्दनाः । सर्वमाश्रावयाञ्चक्रुरात्मनायदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्यधर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् । आनन्दाश्रुकलांमुञ्चन्प्रेम्णानोवाचकिञ्चन ॥ ३५ ॥

इतिश्री म०महा०द०उ० कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एवंयुधिष्ठिरोराजाजरासन्धवधंविभोः । कृष्णस्यचानुभावंतंश्रुत्वाप्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ येस्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वेलोकमहेश्वराः । वहन्तिदुर्लभंलब्ध्वाशिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ सभवानरविन्दाक्षो

नियुक्त करदिये ॥२४॥ हे भारत! सहदेवसे राजाओं के योग्य वस्त्र,आभूषण,माला और चन्दन आदिसे उनका सन्मान करवाया ॥ २५ ॥ उन्हें श्रेष्ठ अन्नका भोजन करवाय, न्हिलाय, धुलाय, नाना प्रकार के भोग अर्पणकर, पानआदि पदार्थ दे ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णजी ने उन राजाओं का सन्मान किया, तबवे सुंदर कुंडल धारणकर क्लेशरहितहो; वर्षाऋतु के अंतके ग्रहोंकी समान, शोभादेने लगे ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजी ने नाना मधुर बचनों से उन्हें सन्तुष्टकर रत्न और सुवर्ण की सामग्री वाले रथोंपर कि जिनमें श्रेष्ठ घोड़ेजुते थे बिठाय उनको अपने २ देशोंमें भेजदिया॥२८॥ वे महात्मा श्रीकृष्णजी के इसप्रकार बंदीग्रह से छुटाने और उनके कार्योंका ध्यान करते २ अपने २ देशकोगये ॥ २९ ॥ उन्हों ने अपने २ राज्यमें पंहुच भगवानका सब चरित्र कहा और भगवान ने जिसप्रकार से आज्ञाकी थी उसी प्रकारसे दुष्टोंको दंडदेते हुए राज्य कार्यमें प्रवृत्त हुए॥३०॥ हे महाराज ! श्रीकृष्णजी इस प्रकार से भीमसेन द्वारा जरासंधको मरवाय, सहदेवकी पूजाको ग्रहणकर अर्जुन और भीमसेन के साथ इन्द्र प्रस्थको चले ॥ ३१ ॥ शत्रुविजयी उनतीनों वीरोंने इन्द्र प्रस्थमें पंहुच अपने बंधुओंको आनंदित और शत्रुओंको दुःखितकर शंख बजाया ॥ ३२ ॥ इन्द्र प्रस्थवासी उस शंख नादको सुनकर जानगये कि जरासंध मारागया और राजा युधिष्ठिर के भी मनोरथपूर्ण हुए ॥ ३३ ॥ अनंतर भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने राजाको बंदनाकी और श्रीकृष्णजी ने जोकुछ वहां किया था वह सब कह सुनाया ॥ ३४ ॥ धर्मराज श्रीकृष्णजी की उस अनुकम्पा का वृत्तान्तसुन आनंदाश्रु गिराते हुए प्रेमसे गद्गद होगये। और प्रेमके मारे उनके मुख से बोल न निकला ॥ ३५ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजायुधिष्ठिर इसप्रकारसे जरासंधके वध और श्रीकृष्णजी के उस प्रभावको सुन प्रफुल्लितहो थोड़ी देरके उपरान्त श्रीकृष्णजीसे कहा ॥ १ ॥ कि हेप्रभो! त्रिलोकी के गुरु सनकादि ऋषि और समस्त लोक व लोकपालगण भी आपकी दुर्लभ आज्ञाको पाय उस

दनिानामभिमानिनाम् । धत्तेऽनुशासनंभूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥ नह्येकस्या द्वितीयस्यब्रह्मणः परमात्मनः । कर्मभिर्वर्धतेतेजोह्रसतेचयथारवेः ॥ ४ ॥ नवैतेऽजितभक्तानांममाहमितिमाधव । त्वंतवेतिचनानाधीः पशूनामिववैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वायज्ञियेकालेवव्रेयुक्तान्सऋत्विजः । कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनोभरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः । वसिष्ठश्च्यवनः कण्वोमैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रोवामदेवः सुमतिर्जैमिनिःक्रतुः । पैलः पराशरोगर्गोवैशम्पायनएवच ॥ ८ ॥ अथर्वाकश्यपोधौम्योरामोभार्गवआसुरिः । वीतिहोत्रोमधुच्छन्दावीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथाचान्येद्रोणभीष्मकृपादयः । धृतराष्ट्रः सहसुतोविदुरश्चमहामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्रायज्ञदिदृक्षवः । तत्रेयुः सर्वराजानोराज्ञांप्रकृतयोनृप ॥ ११ ॥ ततस्तेदेवयजनंब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः । कृष्ट्वातत्रयथाम्नायंदीक्षयाञ्चक्रिरेनृपम् ॥ १२ ॥ हैमाः किलोपकरणावरुणस्ययथापुरा । इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चभवसंयुता ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगन्धर्वाविद्याधरमहोरगाः । मुनयोयक्षरक्षांसिखगकिन्नरचारणाः ॥ १४ ॥ राजानश्चसमाहूताराजपत्न्यश्चसर्वशः । राजसूयंसमीयुः स्मराज्ञः पाण्डुसुतस्यवै ॥ १५ ॥ मेनिरेकृष्णभक्तस्यसूपपन्नमविस्मिताः । अयाजयन्महाराजंयाजकादेववर्चसः ॥ १६ ॥ राजसूयेनविधिवत्प्राचेतसमिवामराः । सौत्येऽहन्यवनीपालोयाजकान्सदसस्पतीन् । अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हंवैविमृशन्तःसभासदः । नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

को शिरपर धारण करते हैं । हे कमललोचन ! हे ईश्वर ! हे भूमन् ! वही भगवान आप दीन और अभिमानी मेरी आज्ञा का पालन करतेहो यह अत्यंही बिडम्बना है ॥ २—३ ॥ आप एक, अद्वितीय, ब्रह्म और परमात्माहो; सूर्य के तेज की समान आपकी महिमा किसी कर्म से भी नहीं घटबढ़सकती ॥ ४ ॥ हेमाधव ! हे अजित ! अज्ञान पशुओं की समान आप के भक्तों की शरीरादि बिषय में 'मेरा' और 'मैं' व 'तू' और 'तेरा' ऐसी भेद बुद्धि नहीं होती तब आपकी क्या बात कहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—युधिष्ठिर ने इसप्रकार से कह भगवान से सम्मतिले यज्ञके योग्य समय मे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण और पुरोहितों का वरण किया ६ ॥ हेराजन् ! ब्यासजी, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रय, कवष, त्रित, ॥ ७ ॥ बिश्वामित्र, वामदेव, जैमिनि, सुमति, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, बैशम्पायन, ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, बीरसेन, अकृतब्रण ॥ ९ ॥ औरभी दूसरे ऋषि और द्रोण, भीष्म, कृपादि, पुत्रों समेत धृतराष्ट्र, महामति विदुर ॥ १० ॥ ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, समस्त राजा और राजाओं की प्रजा ये सब यज्ञ देखने की इच्छा से वहां आये ॥ ११ ॥ अनन्तर उनसब ब्राह्मणों ने सुवर्ण के हलसे यज्ञभूमि प्रस्तुतकर वेदानुसार राजा को दीक्षित किया ॥ १२ ॥ पूर्वकाल में जैसे बरुण के यज्ञमें सबसामग्री सुवर्ण कीथी वैसेही राजा युधिष्ठिर के भी यज्ञमें सबसामग्री सुवर्ण की हुई इंद्रादि लोकपाल, गणोंसमेत शंकर, ब्रह्मा, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, उरग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण और सर्वत्र से सबराजा और राजरानियें निमंत्रित होकर वहां आईं ॥ १३-१४—१५ ॥ उन सबने विस्मितनहो श्रीकृष्णजी के भक्त राजा युधिष्ठिर के यज्ञको भलीप्रकार पूर्णकराया । देवताओं की समान तेजस्वीऋत्विज ने देवताओं ने जैसे वरुणको यज्ञकरायाथा वैसेही महाराज युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करवाया ॥ १६ ॥ राजा युधिष्ठिर ने सावधानहो सोमाभिषव के दिन ऋत्विज और सभासदों का यथाविधिसे पूजन किया ॥ १७ ॥ हेराजन् ! वहांपर प्रथमपूजा पानेके योग्य बहुत से मनुष्य बैठेथे, अतएव

अर्हतिह्यच्युतः श्रैष्ठ्यंभगवान्सात्वतांपतिः । एषवैदेवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदंविश्वंक्रतवश्चयदात्मकाः । अग्निराहुतयोमन्त्राः साङ्ख्यं योगश्चयत्परः ॥ २० ॥ एकएवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदंजगत् । आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवतिहन्त्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीहकर्माणिजनयन्यदवेक्षया । ईहतेयदयंसर्वः श्रेयोधर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णायमहतेदीयतांपरमार्हणम् । एवंचेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणंभवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूतायकृष्णायानन्यदर्शिने। देयंशान्तायपूर्णायदत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वासहदेवोऽभूत्तूष्णींकृष्णानुभाववित् । तच्छ्रुत्वातुष्टुवुः सर्वेसाधुसाध्वितिसत्तमाः ॥ २५ ॥ श्रुत्वाद्विजेरितंराजाज्ञात्वाहार्दंसभासदाम् । समर्हयद्धृषीकेशंप्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसालोकपावनीः । सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्चमहाधनैः । अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षोनाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थंसभाजितंवीक्ष्यसर्वेप्राञ्जलयोजनाः । नमोजयेतिनेमुस्तंनिपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थंनिशम्यदमघोषसुतः स्वपीठादुत्थायकृष्णगुणवर्णनजातमन्युः । उत्क्षिप्यबाहुमिदमाहसदस्यमर्षीसंश्रावयन्भगवतेपरुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशोदुरत्ययः कालइतिसत्यवतीश्रुतिः । वृद्धानामपियद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयंपात्रविदांश्रेष्ठामामन्ध्वंबालभाषितम् । सदस

प्रथम किसको अर्घ्य देनाचाहिए सभासद इसका विचार करनेलगे । तब सहदेव ने कहा ॥१८॥ यदुवंशियों के अधिपति भगवान श्रीकृष्णजी प्रथम पूजापाने के योग्य हैं, देश, काल और पात्र के विचारसे इनकी पूजा करनेपरही सब देवताओं की पूजाहोजायगी ॥ १९ ॥ यही विश्वके और सबयज्ञों के आत्माहैं । यही अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान और यही योगकी अंतिम सीमा हैं॥२०॥ यही एक, अद्वितीय और यही जगत् के आत्माभी हैं । हेसभासदो ! यही स्वाश्रय भगवानही आप जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ इसकारण यह समस्त लोक इनके ही अनुग्रह से नानाकर्मों का अनुष्ठानकर धर्मादि रूप मङ्गलका साधन करसकते हैं ॥ २२ ॥ अतएव श्रीकृष्णजीकोही पहिले पूजा देनीचाहिए ऐसा करने से सबप्राणियों के आत्मा की पूजा होजावेगी ॥ २३ ॥ जो दानके अनन्तफलकी इच्छा करें उनको उचित है कि वह सर्व प्राणियों के आत्मभूत भेदज्ञानरहित शांत और पूर्ण श्रीकृष्णजीकोही दानकरें ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी के प्रभाव को जाननेवाले सहदेव यह कहकर चुप होगये । यहसुनकर सब श्रेष्ठसाधू ' साधु साधु ' कहनेलगे ॥ २५ ॥ राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणों का साधुवादसुन और सभासदों का मतजान प्रेम से विह्वल होगये और उन्होंने श्रीकृष्णजी की पूजाकी, ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णजी के दोनों पावों को धोय उस लोकपावन जलको स्त्री, भाई, मन्त्री और कुटुम्बियों समेत शिरपर धारणकिया ॥२७॥ रेशमी पीताम्बर और अमूल्य आभूषणों से पूजा करते २ राजा के दोनों नेत्रोंसे आंसू गिरनेलगे इससे वह भगवान को भलीप्रकार से न देखसके ॥ २८ ॥ सब मनुष्य श्रीकृष्णजी को इसप्रकार से पूजित होता देख हाथ जोड ' जय, ' नमः, यह कहकर उनको नमस्कार करने लगे और फूलों की वर्षा होनेलगी, ॥ २९ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के गुणोंकी वर्णना होनेके कारण दमघोष के पुत्र शिशुपाल को क्रोध उत्पन्न हुआ श्री हरिके इसप्रकार के सन्मान को वह न सहसका । वह अपने आसन से उठ दोनों भुजाओं को उठाय क्रोध सहित निर्भय चित्तहो सबको सुनाता हुआ कटु वाक्योंसे भगवानकी निंदा करनेलगा ॥ ३० ॥ शिशुपाल बोला कि कैसा अलंघ्य और समर्थ काल आ उपस्थित हुआ कि—जिस से इससमय बालक के वाक्यों से वृद्धों की भी बुद्धि विचलित होगई ॥३१॥ हेसभासदो ! आप पात्र जाननेवालों में श्रेष्ठहो इस बालकके

स्पतयः सर्वैकृष्णोयत्संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधराञ्ज्ञानविध्वस्तकल्मषा न् । परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्चपूजितान् ॥ ३३ ॥ सदस्सस्पतीनतिक्रम्यगोपा लः कुलपांसनः । यथाकाकः पुरोडाशंसपर्यांकथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापे तः सर्वधर्मबहिष्कृतः । स्वैरवर्तीगुणैर्हीनः सपर्यांकथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हिकुलंशप्तंसद्भिर्बहिष्कृतम् । वृथापानरतंशश्वत्सपर्यांकथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षि सेवितान्देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् । समुद्रंदुर्गमाश्रित्यबाधन्तेदस्यवः प्रजाः ॥३७॥ एवमादीन्यभद्राणिबभाषनष्टमङ्गलः । नोवाचकिञ्चिद्भगवान्यथासिंहः शिवारुत म् ॥ ३८ ॥ भगवन्निन्दनश्रुत्वादुःसहंतत्सभासदः । कर्णौपिधायनिर्जग्मुः शपन्तश्चे दिपंरुषा ॥ ३९ ॥ निन्दांभगवतः शृण्वंस्तत्परस्यजनस्यवा । ततोनापैतियः सोऽ पियात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥ ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धामत्स्यकैकयसृञ्जयाः । उ दायुधाःसमुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥४१॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रान्तो जगृहेखड्ग चर्मणी । भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसिभारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवा-न्स्वान्निवार्यस्वयंरुषा । शिरःक्षुरान्तचक्रेण जहारापततोरिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दःको लाहलोऽप्यासीच्छिशुपालेहतेमहान् ॥ तस्यानुयायिनोभूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ॥ ४४ ॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् । पश्यतांसर्वभूतानामुल्केव भु विखाच्च्युता ॥४५॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया । ध्यायंस्तन्मयतांयातो

कहनेपर ध्यान न दो क्या श्रीकृष्ण पूजाके योग्य है, ॥ ३२ ॥ तपस्या, विद्या, व्रत, और ज्ञान से जिनके पाप नष्ट औरअज्ञान दूरहोगयाहै, जोब्रह्मनिष्ठ हैं लोकपाल भी जिनकी पूजा करते हैं उन सर्व श्रेष्ठ ऋषि सभासदों को छोड़कर कुलनाशक अहीर किसप्रकार से पूजा के योग्य होसकता है ? भला काक क्या पुरोडाश को लेसकता है ॥ ३३—३४ ॥ यह कृष्ण—वर्ण, आश्रम और कुलसे भ्रष्टहै यह सब धर्मोंसे बाहरहै इसमें और कोई गुण नहीं है. यह केवल स्वेच्छाचारी है, यह किसप्रकार पूजाको प्राप्त होसकताहै ॥ ३५ ॥ ययातिने इसके कुलको शापदिया साधुओं ने इस को छोड़दिया और निरन्तरही वृथा मदपान में रहता है इसका कुल किसप्रकार से पूजाके योग्य होसकताहै ॥ ३६ ॥ यह ब्रह्मर्षियों से सेवित देशको समुद्रकी शरणले डांकुओं की समान प्रजा को दुःख देता रहताहै ॥ ३७ ॥ जिसके मंगल नष्ट होगयेहैं ऐसे शिशुपालने इसप्रकारके अनेकों कटुवाक्य कहे किन्तु सिंह जैसे सियार के शब्द को नहीं सुनता भगवान ने वैसेही उन सबको सुनकर कुछ न कहा ॥ ३८ ॥ सभासद इस असह्य भगवन्निन्दा को सुन दोनों कानोंको बन्दकर क्रोधसे शिशुपाल को गाली देते २ बाहर होनेलगे ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य भगवान व भगवद्भक्तकी निन्दा सुनकर उस स्थान से चले नहींजाते वह पुण्य रहितहो नरकमें गिरतेहैं ॥ ४० ॥ अनन्तर पांडुपुत्र, मत्स्य, सृंजय और केकयगण क्रोधितहो अपने अस्त्र शस्त्र उठाय शिशुपालके मारने के निमित्त उठे ॥ ४१ ॥ हेभारत ! परन्तु शिशुपाल उससे कुछभी विचलित न हुआ । उसने श्री-कृष्ण जीके पक्षवाले राजाओं का तिरस्कारकर ढाल तलवार हाथमेंली ॥ ४२ ॥ उसीसमय भग-वान् ने उठकर अपने पक्षवालों को निवारण किया और शिशुपाल जैसेही आगे बढ़ा वैसेही छुरेकी धारवाले चक्रसे उसका शिर काटडाला, ॥ ४३ ॥ शिशुपाल के मरतेही बड़ा घोर शब्द हुआ, । उसके वशवर्त्ती राजा प्राण रक्षाकी इच्छासे भागनेलगे ॥ ४४ ॥ जैसे आकश से छूटकर उल्का पृथिवीपर गिरतीहै वैसेही शिशुपाल की देहसे ज्योति निकलकर सब मनुष्यों के सामनेही भग-वानकी देहमें प्रवेश करगई ॥ ४५ ॥ तीन जन्मसे जो उसने बैरकी चिन्ता की थी, इसकारण

भावोहिभवकारणम् ॥ ४६ ॥ ऋत्विग्भ्यःससदस्येभ्यो दक्षिणांविपुलामदात् । स र्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥ साधयित्वाक्रतुं राज्ञः कृष्णोयोगेश्वरेश्वरः । उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥४८॥ ततोऽनुज्ञाप्यराजानमनिच्छन्तमपीश्वरः । ययौसभार्यःसामात्यः स्वपुरंदेवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यान मयातेबहुविस्तरम् । वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनःपुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातोराजायुधिष्ठिरः । ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभेसुरराडिव ॥ ॥ ५१ ॥ राज्ञासभाजिताःसर्वे सुरमानवखेचराः । कृष्णंक्रतुंचशंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृतेपापं कलिंकुरुकुलामयम् । योनसेहे श्रियंस्फीतां दृष्ट्वापाण्डुसुतस्यताम् ॥ ५३ ॥ यइदंकीर्तयेद्विष्णोः कर्मचैद्यवधादिकम् । राजमोक्षवितानंच सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

राजोवाच । अजातशत्रोस्तंदृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् । सर्वेमुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवायेसमागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनंवर्जयित्वा राजानःसर्षयःसुराः । इतिश्रुतंनोभगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पितामहस्यतेयज्ञे राजसूयेमहात्मनः बान्धवाःपरिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥भीमोमहानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः । सहदेवस्तुपूजायां नकुलोद्रव्यसाधने ॥४॥ गुरुशुश्रूषणेजिष्णुः कृष्णः पादावनेजने । परिवेषणेद्रुपदजा कर्णोदानेमहामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानोविकर्णश्रहा

क्रोधसे चिन्ता करता हुआ शिशुपाल श्रीहरि की स्वरूपता को प्राप्त हुआ, हेराजन् ! ध्यानही ध्येय वस्तु की स्वरूपता का कारण है ॥ ४६ ॥ राजा युधिष्ठिरने सभासद और ऋत्विजों को इच्छित दक्षिणादी और यथाविधिसे सबकी पूजाकर अवभृत स्नान किया, ॥ ४७ ॥ योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी राजा का यज्ञ समाप्त कराय बन्धुओं की प्रार्थनानुसार कुछेकदिन वहींपररहे ॥ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर राजा की इच्छा न होतेहुए, भी उनको जनाय मन्त्री और स्त्रियों समेत अपनी नगरीमें आए ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणों के शाप से जय बिजय बैकुण्ठ बासियों का बारम्बार जन्म हुआथ इस बहुत बिस्तारवाले उपाख्यान को मैं तुमसे कहचुकाहूं , ॥ ५० ॥ राजसूय यज्ञ के अन्तमें स्नानकर राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण, क्षत्रिय और बैश्यों के बीच इन्द्रकी समान शोभा पानेलगे ॥ ५१ ॥ कुरु कुल के रोग कलिरूपी पापी दुर्योधन के बिना देवता मनुष्य और प्रथमगण सबही राजा से पूजितहो यज्ञ और श्रीकृष्णजी की प्रशंसा करते २ आनन्द से अपने २ स्थान में आए ॥ ५२ ॥ पांडुपुत्रों की उस बढ़ीहुई लक्ष्मी का दुर्योधन सहन न करसका ॥५३॥ जो भगवानके शिशुपाल बध आदि कार्य और राजाओं के बन्दीगृहसे छूटने का चरित्र जो गावेगा अथवा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञके बिषय को बिचारेगा वह समस्त पापोंसे छूट जावेगा ॥ ५४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दशम०उ०सरलाभाषाटीकायांचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

राजा परीक्षित् ने कहा कि—हेब्रह्मन् ! अजात शत्रु राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ को देखने के निमित्त जो देवता, ऋषि, और राजा आएथे वह सबही आनन्दित हुये, ॥ १ ॥ हेभगवन् ! परन्तु केवल राजा दुर्योधनही को क्या आनन्द न हुआ, इसका क्या कारणथा सो आप कहिये ॥ १—२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! तुम्हारे उस महात्मा पितामहके यज्ञ में बांधव गण प्रेम से बद्धहो यज्ञ कार्य में नियुक्त हुए थे ॥ ३ ॥ भीम रसोई के अध्यक्ष और दुर्योधन धन के अध्यक्ष (भंडारी) हुए थे । सहदेव सत्कार कार्य में, नकुल सामग्री के प्रस्तुत करने में ॥ ४ ॥ अर्जुन साधुओं की सेवा में, श्रीकृष्णजी साधुओं के पैर धोने में, द्रौपदी भोजन परोसनेमें और उदार चित्त बालकर्ण दान देनेमें तत्पर हुआ ॥ ५ ॥ हेराजन् ! युयुधान, विकर्ण

र्दिक्यो विदुरादयः। वाह्लीकपुत्राभूर्याद्य येच संतर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपितामहायज्ञे नानाकर्मसुतेतदा। प्रवर्तन्तेस्मराजेन्द्र राज्ञःप्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥ ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सुसुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः। चैद्येचसात्वतपतेश्चरणंप्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदंगशंखपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः। वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्योननृतुर्हृष्टा गायकायूथशोजगुः। वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां सदिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः। स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययूरुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृंजयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः। कम्पयन्तोभुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥१२॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेणभूयसा। देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥ स्वलंकृतानरानार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः। विलिम्पन्त्योऽभिषिंचन्त्यो विजह्रुर्विविधैरसैः ॥ १४ ॥ तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुंकुमैः। पुम्भिर्लिप्ताःप्रलिंपन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥ गुप्तानृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथादिविविमानवरैर्नृदेव्यः। तामातुलेयसखिभिःपरिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदनाविरेजुः ॥ १६ ॥ तादेवरानुतसखीन्सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः। औत्सुक्यमुक्तकवराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभंदधुर्मलधियांरुचिरैर्विहारैः। ॥१७॥ ससम्राड्रथमारूढः सदश्वंरुक्ममालिनम्। व्यरोचतस्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥ १८ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वाते तमृत्विजः। आचान्तंस्नापया

हार्दिक्य, विदुरआदि, भूर्यादि, वाल्हीक के पुत्रादि और सन्तर्दन आदि जोथे वे सब महायज्ञ में नियुक्त हो राजा के प्रिय करने की इच्छा से नाना कार्यों में प्रवृत्त हुए थे ॥ ६ । ७ ॥ ऋत्विक् सभासद–और बहुवेत्ता तथा श्रेष्ठ बंधुगण, मधुर वचन, अलङ्कारादि और दक्षिणा द्वारा भलीप्रकार से पूजित हुए। तदनंतर भगवान के चरणोंमें शिशुपाल के प्रवेश करने पर राजा अवभृथस्नानके निमित्त गंगाजी पर आये ॥ ८ ॥ स्नान के उत्सव में मृदङ्ग, शंख, पणव, दुंदुभी, ढक्का और गोमुख आदि नाना प्रकार के बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ नाचने वाले आनंद से नाचने और गाने वाले गाने में प्रवृत्त हुए उनके उस वेणु,वीणा और करताल से उठे हुए शब्द ने आकाशमार्ग को स्पर्श किया ॥ १० ॥ यदु, सृंजय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोशल वंशीय राजागण सुवर्णकी माला धारण कर यजमान युधिष्ठिर को आगे ले नाना प्रकार की ध्वजा पताकाओं युक्त गजेन्द्र, रथ, घोडे और भलीप्रकारसे सुसज्जित सेनाकेसाथ पृथ्वीको कंपाते२बाहर हुए ॥ ११ ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज और भी दूसरे श्रेष्ठ २ ब्राह्मण वेदध्वनि करते हुए बाहर निकले। देवर्षि पितर और गन्धर्व फूल बरसाय२ स्तुति करनेलगे ॥ १३ ॥ स्त्री पुरुष गंध, माला और श्रेष्ठ आभूषणों से भूषितहो नानाप्रकारके रसोंसे सेचन और लेपनकर परस्पर क्रीड़ा करनेलगे ॥ १४॥ वेश्याएं तैल,गोरस,सुगंधितजल, हल्दी और केसरद्वारा मनुष्योंसे लिप्तहो और उनको लिप्तकर क्रीड़ा करने लगीं ॥ १५ ॥ यह सब देखने के निमित्त जैसे देवांगनाएं श्रेष्ठ विमानोंपर बैठकर आईं वैसेही राजरानियें भी पहरेवालों से रक्षितहो रथोंपर बैठ २ कर बाहर होनेलगीं। वेरानियें गंगामें अपनी सखिओं से और मामा के पुत्रोंसे भिगोई जानेलगीं, लज्जायुक्त हास्य से उनका कमल मुख प्रफुल्लित होउठा ॥ १६ ॥ वेभी चमड़े की डोलचियों से सखिओं और देवरोंको भिगोने लगीं। उनके वस्त्र भीगगये, शरीर, कुच, साथल और कमर स्पष्ट दीखने लगी, उत्सुकता के कारण जूड़ा (चोटीका बंधन) ढीला पड़गया और फूल बिखरगये । इस प्रकार नाना मनोहर विहारों से वे कामियों के चित्तमें चंचलता उत्पन्न कराने लगीं ॥ १७ ॥ राजा युधिष्ठिर स्त्रियों समेत रुक्ममाली रथपर बैठकर क्रियाओं के साथ साक्षात् यज्ञश्रेष्ठ राजसूयकी समान शोभापाने लगे ॥१८॥

त्वक्रुर्गंगायां सहकृष्णया ॥१९॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिःसमम् । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्रततःसर्वे वर्णाश्रमयुतानराः । महापातक्यपियतः सद्योमुच्येतकिल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथराजाऽहतेक्षौमे परिधाय स्वलंकृतः । ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥ २२ ॥ बन्धुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्चसर्वशः । अभीक्ष्णंपूजयामास नारायणपरोनृपः ॥ २३ ॥ सर्वेज नाःसुररुचो मणिकुण्डलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः।नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजोमहाशीलाःसदस्याब्रह्मवादिनः । ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राराजानोयेसमागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानिलोकापालाःसहानुगाः । पूजितास्तमनुज्ञाप्यस्वधामानिययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्यराजर्षेराजसूयमहोदयम् । नैवातृप्यन्प्रशंसन्तःपिबन्मर्त्योऽमृतंयथा । ॥ २७ ॥ ततोयुधिष्ठिरोराजासुहृत्संबन्धिबान्धवान् । प्रेम्णानिवारयामासकृष्णंचत्यागकातरः ॥२८॥ भगवानपितत्राङ्गन्यवात्सीत्तत्प्रियङ्करः । प्रस्थाप्ययदुवीरांश्चसाम्बादींश्चकुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थंराजाधर्मसुतोमनोरथमहार्णवम् । सुदुस्तरंसमुत्तीर्यकृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥ एकदान्तःपुरेतस्यवीक्ष्यदुर्योधनःश्रियम् । अतप्यद्राजसूयस्यमहित्वंचाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीर्नानाविभान्तिकिलविश्वसृजोपक्लृप्ताः । ताभिःपतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थेयस्यांविषक्तहृदयःकुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदामधुपतेर्महिषीसहस्र-

उन ऋत्विजों ने पत्नी संयाज और अवभृथ सम्बन्धी कर्म करा॑ने के पश्चात् आचमन करवाय राजा को द्रौपदी समेत गंगामें स्नान करवाया ॥ १९ ॥ उस समय देव दुंदुभि और नर दुंदुभि बजने लगीं तथा देवता, ऋषि, पितर, और मनुष्य फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २० ॥ फिर उस स्थानमें समस्तवर्ण और आश्रम के मनुष्यों ने स्नानकिया । हे राजन् ! उस स्थान पर स्नान करने से महापापी भी तत्कालही पापसे छूटजाता है ॥ २१ ॥ अनन्तर राजाने नवीन रेशमी वस्त्र पहिन भलीप्रकार से अलंकृतहो वस्त्र और आभूषणों द्वाराऋत्विज और सभासदों की पूजाकी ॥ २२ ॥ भगवद्भक्त राजाने अपनेबंधु,जातिवाले, राजा, मित्र, सुहृद और भी दूसरों की भलीप्रकारसे पूजाकी ॥२३॥ सब मनुष्य देवताओं की समान कांतिवानहो और मणि,कुंडल,माला,पगड़ी, दुपट्टा, रेशमी वस्त्र और बड़े मूल्यवाले हार पहिरकर परम शोभाको प्राप्तहुए । स्त्रियोंका मुख कमल भी कुंडलों से शोभित हुआ । वह सोनेकी मेखला धारणकर और भी शोभाको पानेलगीं ॥ २४ ॥ अनंतर महाशील ऋत्विज, ब्रह्मवेत्ता सभासद और ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र, राजगण, देवर्षि, पितर, भूत, अनुचरों समेत सब लोकपाल और दूसरे भी जोवहां उपस्थित थे वे सबही पूजितहो राजा युधिष्ठिर की आज्ञासे प्रसन्न होर कर अपने २ घरको गये ॥ २५—२६ ॥ जैसे मनुष्य अमृत पीकर तृप्त नहीं होता तैसेही वेभी हरिभक्त राजर्षि युधिष्ठिरके राजसूयकी प्रशंसा करके तृप्तनहीं होतेथे ॥२७॥ अनंतर राजा युधिष्ठिर ने सुहृद, सम्बंधी, बांधव और श्रीकृष्णजी कोभी कातर भावसे प्रेम समेत विदाकिया ॥ २८ ॥ हे राजन् ! भगवान श्रीकृष्णजी ने राजाके कातर बचनों से दयार्द्रहो अपने यदुवीर साम्ब आदिको द्वारका भेजा और आप वहींपर निवास करनेलगे ॥२९॥ हे राजन् ! राजा युधिष्टिर श्रीकृष्णजी की सहायता से इस प्रकार दुस्तर मनोरथ रूप महासागर के पारहो निश्चित हुए ॥ ३० ॥ महाराज ! एक समय दुर्योधन उन हरिभक्त राजा युधिष्ठिर की लक्ष्मी और राजसूय की प्रशंसा सुनकर अत्यंत संतप्त हुआ॥३१॥ जिस अन्तःपुरमें नरेन्द्र, दैत्येन्द्र, और सुरेन्द्र आदि व नाना प्रकार की विभूतियें मयसे विरचित होकर शोभा पारही थीं, जहां उन विभूतियों समेत द्रौपदी अपने पतियों की सेवाकरती थी, राजा दुर्योधन उनको देखकर अत्यंत संतापको

श्रोणीभरेणशनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् । मध्येसुचारुकुचकुंकुमशोणहारंश्रीमन्मुखंप्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायांमयक्लृप्तायांक्वापिधर्मसुतोऽधिराट् । वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्चकृष्णेनापिस्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः काञ्चनेसाक्षादासने मघवानिव । पारमेष्ठ्यश्रियाजुष्टः स्तूयमानश्चबन्दिभिः ॥ ३५ ॥ तत्रदुर्योधनोमानीपरीतो भ्रातृभिर्नृप । किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन्रुषा ॥ ३६ ॥ स्थलेऽभ्यगृह्णद्वस्त्रान्तंजलंमत्वास्थलेऽपतत् । जलेचस्थलवद्भ्रान्त्यामयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥ जहासभीमस्तंदृष्ट्वास्त्रियोनृपतयोऽपरे । निवार्यमाणा अप्यङ्गराज्ञाकृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ सव्रीडितोऽवाग्वदनोरुषाज्वलन्निष्क्रम्यतूष्णींप्रययौगजाह्वयम् । हाहेतिशब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमनइवाभवत् । बभूवतूष्णींभगवान्भुवोभरंसमुज्जिहीर्षुर्भ्रमतिस्मयद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितंराजन्यत्पृष्टोऽहमिहत्वया । सुयोधनस्यदौरात्म्यंराजसूयेमहाक्रतौ ॥ ४० ॥

इतिश्रीम० म० द० उ० पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपिकृष्णस्यशृणुकर्माद्भुतंनृप । क्रीडानरशरीरस्य यथासौभपतिर्हतः ॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वोरुक्मिण्युद्वाहआगतः । यदुभिर्निर्जितः संख्येजरासन्धादयस्तथा ॥ २ ॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतांसर्वभूभुजाम् । अयादवांक्ष्मांकरिष्येपौरुषंममपश्यत ॥ ३ ॥ इतिमूढः प्रतिज्ञायदेवंपशुपतिंप्रभुम् । आराधयामासनृपपांसुमुष्टिसकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरान्तेभगवानाशु

प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ उस अन्तःपुरमें श्रीकृष्णजी की स्त्रियें शोभा पारही थीं, वे नितम्बों के भार से धीरे २ चलती हुई, चरणों के शब्दायमान आभूषण धारण किये, स्तनोंकी केसर से रक्तवर्ण के हार पहिरें, चलायमान कुंडल व केश पाशयुक्त सुंदर मुख व सुंदर कटिवाली स्त्रियें वहां अत्यंत शोभाको बढ़ारही थीं ॥ ३३ ॥ एक समय धर्मराज युधिष्ठिर भाइयों, बंधुओं और अपने नेत्रस्वरूप श्रीकृष्णजी सहित लक्ष्मी वाली मयकी रचीहुई सभामें इन्द्रकी समान सुवर्णमय सिंहासनपर बैठे थे, वहां बंदीजन उनकी स्तुतिकर रहेथे । कि उसी समय अभिमानी राजा दुर्योधन भाइयों सहित क्रोधसे युधिष्ठिर का तिरस्कार करते २ हाथोंमें खड्ग लियेहुए वहांपर आया ॥ ३४—३६ ॥ वह वहां मयकी मायासे मोहितहो जल जान स्थलमें वस्त्रोंको ऊंचा उठानेलगा और स्थल के भ्रमसे जलमें गिरपड़ा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! उसको देखकर, युधिष्ठिर के निवारण करने परभी श्रीकृष्णजी की संमति से भीम, व सब स्त्रियें और दूसरे राजा भी हंसने लगे ॥ ३८ ॥ दुर्योधन लज्जितहो क्रोध से जलते २ नीचेको मुखकिये चुपचाप हस्तिनापुर चलागया । उस समय साधुओं में बड़ा-भारी हाहाकार हुआ । इससे युधिष्ठिर कुछएक उदास होगये किन्तु भगवान चुपहोगये । पृथ्वीका भारदूर करने की ही उनकी इच्छा थी, केवल उनकी ही दृष्टिसे दुर्योधन भ्रम में पतित हुआ था ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! तुमने जो राजसूय यज्ञ में दुर्योधन के दुरात्मता की बात पूछी थी वह मैंने तुम से कही ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! जिसप्रकार सौभपति शाल्व मारागयाथा, क्रीड़ाकेनिमित्त मनुष्यरूपधारी श्रीकृष्णजी का एक और भी अद्भुतकर्म सुनो ॥ १ ॥ रुक्मिणी के विवाह में शिशुपाल का मित्र शाल्व आयेहुए यादवों से जरासंध की समान युद्ध में पराजित हुआथा ॥ २ ॥ उस समय शाल्व ने सबराजाओं के सामनेही प्रतिज्ञा कीथी कि—"पृथ्वी को यादवरहित करदूंगा मेरा पराक्रम देखना" ॥ ३ ॥ यह मूर्ख राजा इसप्रकार की प्रतिज्ञाकर प्रतिदिनएक मुट्ठी धूल को फांक महादेवजीकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ एक वर्ष के अन्तमें भगवान महादेवजी ने

तोषउमापतिः। वरेणच्छन्दयामासशाल्वंशरणमागतम् ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। अभेद्यंकामगंवव्रेसयानंवृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥ तथेतिगिरिशादिष्टोमयः परपुरञ्जयः। पुरंनिर्माय शाल्वायप्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ सलब्ध्वाकामगंयानंतमोधामदुरासदम्। ययौ द्वारवतींशाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥ निरुध्यसेनयाशाल्वोमहत्याभरतर्षभ। पुरींबभञ्जोपवनान्युद्यानानिचसर्वशः॥९॥सगोपुराणिद्वाराणिप्रासादाट्टालतोलिकाः। विहारान्सविमानाग्र्यान्निपेतुःशस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिलाद्रुमाश्चाशनयः सर्पाआसारशर्कराः। प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद्रजसाऽऽच्छादितादिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमानासौभेनकृष्णस्यनगरीभृशम्। नाभ्यपद्यतशंराजंस्त्रिपुरेणयथामही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नोभगवान्वीक्ष्यबाध्यमानानिजाप्रजाः। माभैष्टेत्यभ्यधाद्वीरोरथारूढोमहायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्चसाम्बोऽक्रूरःसहानुजः।हार्दिक्योभानुविन्दश्चगदश्चशुकसारणौ॥१४॥अपरेचमहेष्वासारथयूथपयूथपाः। निर्ययुर्दंशितागुप्तारथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ततः प्रववृतेयुद्धंशाल्वानांयदुभिः सह। यथाऽसुराणांविबुधैस्तुमुलंलोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ताश्चसौभपतेर्मायादिव्यास्त्रैरुक्मिणीसुतः। क्षणेननाशयामासनैशंतमइवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याधपञ्चविंशत्यास्वर्णपुंखैरयोमुखैः। शाल्वस्यध्वजिनीपालंशरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्यसैनिकान्। दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानित्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतंमहत्कर्मप्रद्युम्नस्यमहात्मनः। दृष्ट्वातंपूजयामासुः सर्वेस्वपरसैनिकाः॥२०॥बहुरूपैकरूपंतद्दृश्यतेनचदृश्यते। मायामयंमयकृतं

शरणागत शाल्व से कहा कि–' बरमांग ' ॥५॥ तब शाल्व ने महादेवजी से देवताओं के अभेद्य और यदुवंशियों को भय उपजानेवाला विमानमांगा ॥ ६ ॥ महादेवजी ने ' तथास्तु ' कहकर शत्रुपुरको जीतनेवाले मयको आज्ञादी उसने लोहे का सौभनामक विमानबनाकर शाल्वको दिया ॥७ ॥ शाल्व उस तमोमय दुष्प्राप्य, इच्छाचारी विमान को पाय यदुवंशियोंके बैर को स्मरणकर द्वारका में आया ॥८ ॥ और अपनी बड़ी सेना से नगरी को घेर वहां के बाग और फुलवाड़ियों को तोड़नेलगा ॥ ९ ॥ उस से द्वार, महल, छत, छज्जे, और खेलने के स्थान टूटने और विमान से अस्त्र, पत्थर, वृक्ष, वज्र, सर्प और ओलेपड़नेलगे। प्रचण्ड वायु चलने लगी और धूलसे सब दिशाएं ढकगई ॥ १० । ११ ॥ महाराज ! पृथिवीजैसे त्रिपुरसे पीड़ित हुईथी वैसेही श्रीकृष्णजी का नगर शाल्व से पीड़ितहो सुख से न रहसका ॥ १२ ॥ अपनी सबप्रजाको पीड़ित होता देख ' भय न करो ' ऐसा कह महारथीवीर भगवान प्रद्युम्न रथपरचढ़ दौड़े ॥ १३ ॥ सात्यकि,चारुदेष्ण, साम्ब, अक्रूर, भाइयों समेत हार्दिक्य, भानुविंद, गद, शुक और सारण ॥ १४ ॥ तथा औरभी महाधनुर्द्धर सेनापतियों के सेनापति कवच पहिर रथ,हाथी, घोड़े और पैदलों से रक्षितहो युद्ध के निमित्त नगर से बाहरहुए ॥ १५ ॥ अनन्तर देवताओं के साथ जैसे असुरों का संग्राम हुआथा वैसेही यदुवंशियों के साथ शाल्व के पक्षवालों से घोरसंग्राम होने लगा ॥१६॥ हेराजन्! उस भयानक युद्ध का वृतांतसुनकर रोमांचहोता है । सूर्य जैसे रात्रिके अन्धकार को दूरकरते हैं वैसेही प्रद्युम्न ने सौभपति के विख्यात मायाजाल को अपने दिव्य अस्त्रों से क्षणभर में छिन्नभिन्न करडाला ॥ १७ ॥ उन्होंने लोहे के फलवाले, सुवर्ण के पंखवाले और छोटी २ सन्धिवाले पच्चीस बाणों से शाल्व के सेनापति को मारा, सौ बाणों से शाल्वपर, एक २ बाण से उसकी सेनापर दश २ बाणों से सेनापतियों पर और तीन २ बाणों से सबबाहनों पर प्रहार किया१८॥ ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्न के इस बड़े अद्भुतकार्य को देखकर शत्रु और मित्र सबकी सेना के मनुष्य उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २० ॥ मय का बनायाहुआ वह मायामय विमान कभी बहुत

दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥२१॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित्। अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥२२॥ यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः। शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चञ्छरान्सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः। पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः। न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः। आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम्। अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत्। अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः। विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ। युद्धात्सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः। क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो। सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात्। उपसृष्टः परेणेति मूर्छितो गदयाहतः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

रूप से कभी एक रूप से दिखाई देताथा, कभी दीखपड़ता कभी अदृश्य होजाताथा, इसकारण यादवगण उसको न जानसके ॥ २१ ॥ शाल्व का विमान कभी पृथ्वी पर, कभी आकाशपर, कभी जल में, कभी पहाड़की चोटी में अलात चक्र के समान भ्रमण करनेलगा ॥ २२ ॥ शाल्व सौभ विमानमें बैठाहुआ सैनिकों समेत जिधरही दीखताथा यदुसेनापति उधरही को बाण छोड़ते थे ॥ २३ ॥ अग्नि और सूर्य की समान स्पर्शवाले सर्पकी समान दुःसह, शत्रुओं के फेंकेहुए बाणों से शाल्व की सेना नाशहोनेलगी; तब शाल्व कोभी मोह प्राप्तहुआ ॥ २४ ॥ दोनों लोकों के जीतने की इच्छावाले यदुबंशियों ने शाल्व के सेनापतियों से पीड़ित होकरभी रणभूमि न छोड़ी ॥ २५॥ द्युमान् नाम शाल्व का एक मंत्री प्रथम प्रद्युम्न से पीड़ितहुआथा। इस समय उस बलीने निकट जाय कृष्णलोह की बनीहुई गदासे प्रद्युम्न पर प्रहारकर बड़ा घोर शब्द किया ॥ २६ ॥ द्युमान् की गदासे वक्षःस्थल के जर्जर होजाने पर धर्मवेत्ता सारथि दारुकनन्दन शत्रुनाशक प्रद्युम्न को युद्धभूमि से दूसरे स्थान पर लेगया ॥ २७ ॥ प्रद्युम्नने थोड़ी देरमें सचेतहो सारथी से कहा अहो सूत ! तुमने मुझे रणभूमि से लाकर बुरा किया ॥ २८ ॥ हाय ! मुझ व्याकुल चित्तको सारथी ने रणसे बाहरलाकर दोषी किया। मेरे अतिरिक्त यदुबंशियों में कोई भी युद्ध से भागा नहीं सुना गया ॥ २९ ॥ मैं धर्मयुद्ध से भागाहुआ पिता राम—कृष्ण के निकट पहुंच उनसे अपने इस अयोग्य कार्य को किसप्रकारकहूंगा ॥ ३० ॥ यह निश्चयही जानाजाता है कि मेरे भाइयोंकी स्त्रियें यह कहकर कि 'हेवीर ! युद्ध में शत्रु ने तुम्हारा पराक्रम कैसे नाशकरदियाथा, इसप्रकार उपहास कर मुझे नपुंसक बनावेंगी ॥ ३१ ॥ सारथी ने कहा कि—हेआयुष्मन् ! हे विभो ! सारथी को आपत्ति में फँसेहुए रथीकी और रथीको आपत्ति में फँसेहुए सारथी की रक्षाकरनी चाहिए। इसही धर्म के अनुसार मैंने यह कार्य किया है ॥ ३२ ॥ आप शत्रु की गदाके प्रहार से आहतहो पीड़ित और मूर्छितहोगये, इसही कारण मैं आपको युद्धभूमि से लेआयाथा ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०दश०उ०सरलाभाषाटीकायांषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ सउपस्पृश्यसलिलंदंशितोधृतकार्मुकः । नयमांद्युमतःपार्श्वंवीरस्यत्याहसारथिम् ॥ १ ॥ विधमन्तंस्वसैन्यानिद्युमन्तंरुक्मिणीसुतः । प्रतिहत्यप्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिःस्मयन् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहान्सूतमेकेनचाहनत् द्वाभ्यांधनुश्चकेतुंचशरेणान्येनवैशिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसाम्बाद्याजघ्नुःसौभपतेर्बलम् । पेतुःसमुद्रेसौभेयाःसर्वेसंछिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥ एवंयदूनांशाल्वानांनिघ्नतामितरेतरम् । युद्धंत्रिणवरात्रंतदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इन्द्रप्रस्थंगतःकृष्णआहूतोधर्मसूनुना । राजसूयेऽथनिर्वृत्तेशिशुपालेचसंस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्यमुनींश्चससुतांपृथाम् । निमित्तान्यतिघोराणिपश्यन्द्वारवतींययौ ॥ ७ ॥ आहचाहमिहायातआर्यमिश्राभिसङ्गतः । राजन्याश्चैद्यपक्षीयानूनंहन्युःपुरींमम ॥ ८ ॥ वीक्ष्यतत्कदनंस्वानांनिरूप्यपुररक्षणम् । सौभंचशाल्वराजंचदारुकंप्राहकेशवः ॥ ९ ॥ रथंप्रापयमेसूतशाल्वस्यान्तिकमाशुवै । संभ्रमस्तेनकर्तव्योमायावीसौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामासरथमास्थायदारुकः । विशन्तंददृशुःसर्वेस्वेपरेचारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्चकृष्णमालोक्यहतप्रायबलेश्वरः प्राहरत्कृष्णसूतायशक्तिंभीमरवांमृधे ॥ १२ ॥ तामापतन्तींनभसिमहोल्कामिवरंहसा । भासयन्तींदिशःशौरिःसायकैःशतधाऽच्छिनत् ॥ १३ ॥ तंचषोडशभिर्विद्ध्वाबाणैःसौभंचखेभ्रमत् । अविध्यच्छरसन्दोहैःखंसूर्यइवरश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वःशौरेस्तुदोःसव्यं

श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! फिर प्रद्युम्नने जलसे आचमनकर कवच पहिन धनुष ले सारथी से कहा कि—'मुझको वीर द्युमान के निकट लेचल ॥ १ ॥ द्युमान प्रद्युम्नकी सेनाका नाश कररहाथा, रुक्मिणी नन्दन ने उसको रोक हँसकर आठबाण उसके मारे ॥ २ ॥ चारबाण घोड़ोंके और एकबाण सारथीके मारा । तदनन्तर उसने दोबाणों से उसके धनुष और केतुको और एकबाणसे द्युमानका शिर काटडाला ॥ ३ ॥ इधर गद, सात्यकि और साम्ब आदि वीर सौभपति की सेनाका नाश कररहेथे । सौभकी सेना शिर रहितहोकर समुद्रमें गिरने लगी ॥४॥ हे राजन् ! इसप्रकारसे एक दूसरेको नाश करनेवाला घोरयुद्ध यदुवंशियोंसे और शाल्वसे सत्ताईस दिनतक हुआ ॥५॥ युधिष्ठिरसे निमन्त्रितहोकर श्रीकृष्णजी इन्द्रप्रस्थ गयेथे । राजसूयसमाप्त होने और शिशुपालके मरनेपर श्रीकृष्णजी भयानक उत्पात देखनेलगे । इससे वृद्ध कौरव, मुनियों कुंती और युधिष्ठिरादि से आज्ञा ले वह द्वारकाको चले ॥ ६ । ७ ॥ मार्ग में मन २ में विचारने लगे कि—मैं बलदेवजीके संग इन्द्रप्रस्थमें निवासकरताथा, निश्चयही शिशुपालके पक्षवाले राजाओंने मेरीनगरीमें उत्पात आरम्भ कियाहै॥८॥अनन्तर उन्होने द्वारकामेंआय अपने मनुष्योंसे सब वृत्तान्त सुन और देख रामको नगरकी रक्षा में नियुक्त किया और सौभ व शाल्व राजाको देख दारुक से कहा कि ॥ ९ ॥ हे सारथि ! शीघ्रही शाल्वके निकट मेरेरथको लेचल, यह बड़ाही मायावी है इससे तू कुछभी मत घबडाना ॥ १० ॥ दारुक ने यहसुन भलीप्रकार से रथपर बैठ रथको चलाया । अपने और शत्रुके पक्षवाले सबोंहीने श्रीकृष्णजीको देखा ॥११॥ शाल्वने अपनी बहुतसी सेनाको मरादेख श्रीकृष्णजी के सारथीपर भयंकर वेगवाली शक्तिका प्रहार किया १२ ॥ वह प्रचण्ड शक्ति बड़ी उल्काके समान दिशाओं को प्रकाशित करतीहुई आकाश मार्गसे शीघ्रता पूर्वक आनेलगी श्रीकृष्णजीने बाणोंसे उसके सौटुकड़े करडाले, ॥ १३ ॥ उन्होंने शाल्वको भी सोलहबाणोंसे वेध सूर्य जैसे किरणोंसे आकाश को भेदताहै वैसेही बाणोंसे उन्होंने आकाश में भ्रमण करनेवाले सौभको भेदडाला ॥ १४ ॥ परन्तु शाल्वने धनुषधारी श्रीकृष्णजी की धनुष स-

सशार्ङ्गंशार्ङ्गधन्वनः । बिभेदन्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥ हाहाकारोमहानासीद्भूतानांतत्रपश्यताम् । निनद्यसौभराडुच्चैरिदमाहजनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत्त्वयामूढनः सख्युर्भ्रातुर्भार्याहृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तःससभामध्येत्वयाव्यापादितःसखा ॥ १७ ॥ तंत्वाद्यनिशितैर्बाणैरपराजितमानिनम्नयाम्यपुनरावृत्तिं यदितिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच । वृथात्वंकत्थसेमन्दन पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् । पौरुषंदर्शयन्ति स्मशूरानबहुभाषिणः ॥ ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छाल्वं गदयाभीमवेगया । तताडजत्रौसंरब्धः सचकम्पेवमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायांसन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत । ततोमुहूर्तआगत्य पुरुषःशिरसाऽच्युतम् । देवक्याप्रहितोऽस्मीति नत्वाप्राहवचोरुदन् ॥२१॥ कृष्ण कृष्णमहाबाहो पितातेपितृवत्सल । बद्ध्वाऽपनीतःशाल्वेन सौनिकेनयथापशुः ॥ ॥ २२ ॥ निशम्यविप्रियंकृष्णो मानुषींप्रकृतिंगतः । विमनस्कोघृणी स्नेहाद्बभाषेप्राकृतोयथा ॥ २३ ॥ कथंराममसंभ्रान्तं जित्वाऽजेयंसुरासुरैः । शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पितामेबलवान्विधिः ॥ २४ ॥ इतिब्रुवाणेगोविन्दे सौभराट्प्रत्युपस्थितः । वसुदेवमिवानीय कृष्णंचेदमुवाचसः ॥ २५ ॥ एषतेजनितातातो यदर्थमिहजीवसि । वधिष्येवीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवंनिर्भर्त्स्यमायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः । उत्कृत्यशिरआदाय खस्थंसौभंसमाविशत् ॥ २७ ॥ ततोमुहूर्तंप्रकृतावुपप्लुतः स्वबोधआस्ते स्वजनानुषंगतः । महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायांसशाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥ नतत्रदूतंनपितुःकलेबरं प्रबुद्धआजौ समपश्यद-

मेत बाई भुजापर प्रहार किया तब उनके हाथसे धनुष छूटगया, ॥ १५ ॥ जो प्राणी उस घोर संग्रामको देख रहेथे वे महा हाहाकार करउठे सौभराजने उच्चस्वरसे श्रीकृष्णजीसे कहा, ॥१६॥ रेमूढ ! मेरे सामनेही तूने मेरे मित्र और भाई की स्त्री का हरण कियाथा, और मेरे मित्र की असावधानी पर तूने उसे सभामें मारडाला ॥१७॥ यदि तू आज मेरे सन्मुख स्थितरहा तो तीक्ष्ण शरसे तुझे यमपुरी भेजूंगा। तेरे मनमें इसबात का बड़ाही अहंकारहै कि—मुझको कोई परास्त ही नहीं करसकता ॥ १८ ॥ भगवानने कहा कि—रेमूर्ख ! तू वृथा बकबाद करताहै, तेरे सन्मुख जो काल खडाहै उसको नहीं देखता। बीर पुरुष बीरताही दिखातेहैं वृथा बकबक नहीं करते ॥ ॥ १९ ॥ भगवान ने यह कह क्रोधितहो बड़ी भयानक बेगशाली गदासे शाल्वपर प्रहार किया, इससे वह रुधिर उगिलताहुआ कांपनेलग ॥ २० ॥ गदाकी पीड़ा कुछेक दूर होनेपर शाल्व सचेतहो अन्तर्ध्यान होगया। अनन्तर एक क्षणमात्रमें एक पुरुषनेआय भगवानको प्रणामकर रोतेर कहाकि हेमहाराज! देवी देवकीने मुझकोभेजाहै और कहाहै कि॥२१॥हेकृष्ण! हेकृष्ण! हेमहाबाहो! हे पितृवत्सल ! कसाई जैसे पशुको लेजाय वैसेही शाल्व तुम्हारे पिताको बांधकर लेगयाहै॥२२॥ मनुष्य प्रकृतिको प्राप्तहुये दयावान श्रीकृष्णजी इस अशुभ समाचार को सुनकर स्नेह से बिवश होगए और सामान्य मनुष्यों की भांति कहनेलगे, कि— ॥ २३ ॥ सुर और असुरों के जीतने योग्य भ्रमरहित रामको जीतकर क्षुद्र शाल्व मेरे पिताको किसप्रकार लेगया, ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी इसप्रकार कहरहेथे कि–उसीसमय शाल्वने वहांपर आय बसुदेवकी समान एकमनुष्यको वहां लाय श्रीकृष्णजी से कहा कि—यह तेरा जन्मदाता पिताहै जिसके निमित्त तू जीताहै मैं तेरे सन्मुखही इसको मारे डालताहूं रेमूर्ख ! यदि तुझ में शक्तिहै तो इसको बचा ॥ २५—२६ ॥ यह कहकर मायावी शाल्व खड्ग से बसुदेव का शिर काट उसेले आकाश चारी सौभमें चलागया। ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णजी स्वयंही ज्ञानवानहैं तो भी पिताके स्नेहके कारण क्षणभर मनुष्य स्वभाव से चुपचाप खडेरहे फिर बिचारा कि—यह शाल्वकी मायारचित आसुरी मायाहै, ॥ २८ ॥ थोडीही

च्युतः । स्वाप्नंयथाचाम्बरचारिणंरिपुं सौभस्थमालोक्यनिहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ ए वंवदन्तिराजर्षे ऋषयःकेचनान्विताः । यत्स्ववाचोविरुध्येतनूनं तेनस्मरन्त्युत ३०॥ क्वशोकमोहौस्नेहो वा भयंवायेऽज्ञसम्भवाः । क्वचाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् लभन्तआत्मीयमनन्तमैश्वरं कुतोनुमोहःपरमस्यसद्गतेः ॥ ३२ ॥ तंशस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वंशरैः शौरिरमोघविक्रमः । विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्मधनुःशिरोमणिं सौभंचशत्रोर्गदयारुरोजह ॥ ३३ ॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितंपपाततोयेगदयासहस्रधा । विसृज्यतद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद्द्रुतम् ॥ ३४॥ आधावतःसगदंतस्यबाहुं भल्लेनछित्त्वाऽथरथांगमद्भुतम् । वधायशाल्वस्यलयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौसार्कइवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहारतेनैवशिरःसकुण्डलं किरीटयुक्तंपुरुमायिनोहरिः । वज्रेणवृत्रस्ययथापुरन्दरो बभूवहाहेतिवचस्तदानृणाम् ॥ ॥ ३६ ॥ तस्मिन्निपतितेपापे सौभेचगदयाहते । नेदुर्दुन्दुभयोराजन्दिवि देवगणेरिताः । सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्त्रोरुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्यशाल्वस्यपौण्ड्रकस्यापिदुर्मतिः । परलोकगतानांचकुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥१॥ एकः पदातिः संक्रुद्धोगदापाणिः प्रकम्पयन् । प

देर के उपरांत भगवानने स्वप्नके प्रपंचकी समान वहां दूत व पिता के शरीर को न देख पाया और वह शत्रु को सौभके ऊपर बैठाहुआ आकाशमें विचरता देख उसके मारनेपर उद्यतहुये॥२९॥ हेराजर्षे ! खोजनकरके कुछेक पूर्व ऋषि इसीप्रकार कहते हैं परन्तु इसस उनके बचनोंमें विरुद्धता पड़ताहै यह वह नहीं बिचारते कि—कहां तो मूर्ख मनुष्योंके उत्पन्न होनेवाला शोक, मोह, स्नेह, और भय और कहां विज्ञान और ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीकृष्णजी ॥ ३०—३१ ॥ और भी साधूगण जिनके चरणोंकी सेवासे बढ़ीहुई आत्मविद्या द्वारा अनादि कालकी देहात्म बुद्धिको त्याग अनन्त ईश्वरपदको प्राप्त होतेहैं उन साधुओं की गति परमेश्वरको मोह कहांसे होसक्ताहै ॥ ३२ ॥ अतएव ऊपर मुनियों के कहेहुये बचन अत्यन्तही तुच्छहैं । शाल्व बलपूर्बक शस्त्रोंसे प्रहार कररहाथा अमोघ पराक्रमवाले श्रीकृष्णजीने बाणोंसे उसको छेदकर कवच, धनुष व मस्तककी मणि को काट उसके सौभ बिमानको गदासे तोड़डाला ॥ ३३ ॥ वह बिमान श्रीकृष्णजी के हाथ से छूटीहुई गदाके प्रहारसे चूर्णहो जलमें गिरपड़ा । शाल्व उसको छोड पृथिवीपर खड़ा होगया और गदाको उठाय बड़ी बेगसे श्रीकृष्णजी परदौड़ा, ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी ने सामने दौडे आतेहुए, शाल्वकी भुजाको गदा समेत भालेसे काटडाला उसके मारने के निमित्त प्रलयकालके सूर्यकी समान सुदर्शनचक्रको धारणकर वे सूर्य समेत उदयाचल की समान शोभा पानेलगे ॥ ३५ ॥ जैसे इन्द्र ने बज्र से वृत्रासुरके मस्तक को काटाथा वैसेही हरिने चक्र से मायावी शाल्व के कुण्डल व किरीट युक्त मस्तकको काटडाला उससमय मनुष्य हाहाकार करनेलगे, ॥ ३६ ॥ हेराजन् ! उस पापी के नाश होने और सौभ के गदा से टूटनेपर देवता स्वर्ग से दुन्दुभी बजाय २ फूल बरसाने लगे, उसीसमय दन्तवक्त्र, मित्रों का बदला लेने को क्रोधितहो श्रीकृष्ण जी के सन्मुख आया, ॥ ३७ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ० सरलाभाषाटीकायांसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! महाबल दुष्ट दंतवक्त्र, मरे हुए शिशुपाल, शाल्व, और पौंड्रक की मित्रता प्रकाश करने को अकलाही पृथ्वी को कंपाता हुआ क्रोधित हो श्रीकृष्णजीकी

द्धयामिहांमहाराजमहासत्त्वोव्यदृश्यत ॥ २ ॥ तंतथाऽऽयान्तमालोक्यगदामादाय
सत्वरः । अवप्लुत्यरथात्कृष्णः सिन्धुंवेलेवप्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्यकारूषोमु
कुन्दंप्राहदुर्मदः । दिष्ट्यादिष्ट्याभवानद्यममदृष्टिपथंगतः ॥ ४ ॥ त्वंमातुलेयोनः कृ
ष्णमित्रध्रुङ्मांजिघांससि । अतस्त्वांगदयामन्दहनिष्येवज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृ
ण्यमुपैम्यज्ञमित्राणांमित्रवत्सलः । बन्धुरूपमरिंहत्वाव्याधिंदेहचरंयथा ॥ ६ ॥ एवं
रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णंतोत्रैरिवद्विपम् । गदया ताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्चसः
॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौनचचालयदूद्वहः । कृष्णोऽपितमहन्गुर्व्याकौमोद
क्यास्तनान्तरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् । प्रसार्यकेशबाह्वङ्घ्री-
न्धरण्यांन्यपतद्व्यसुः ॥ ९ ॥ ततःसूक्ष्मतरंज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥ पश्यतां
सर्वभूतानां यथाचैद्यवधेनृप ॥ १० ॥ विदूरथस्तुतद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥
आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्यचापततःकृष्णश्चक्रेण-
क्षुरनेमिना । शिरोजहारराजेन्द्र सकिरीटंसकुण्डलम् ॥ १२ ॥ एवंसौभंचशाल्वं
चदन्तवक्त्रं सहानुजम् । हत्वादुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः
सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः । अप्सरोभिःपितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥
उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः । वृतश्चवृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतांपुरीम् ।१५
एवंयोगेश्वरःकृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः । ईयतेपशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीतिसः ॥१६॥
श्रुत्वायुद्धोद्यमंरामः कुरूणांसहपाण्डवैः । तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थःप्रययौकि-

ओर दौड़ा ॥ १ ॥ २ ॥ उसको इस प्रकार से गदा हाथमें लिये हुए आता देख श्रीकृष्णजी ने शीघ्रही रथसे कूद पृथिवी पर आय जैसे वेला समुद्रको रोकती है वैसेही उसको रोकलिया ॥ ३ ॥ दुष्ट दंतवक्त्रने गदा उठाय श्रीकृष्णजी से कहा कि–अच्छा ! अच्छा ! आज तू मेरे दृष्टि गोचर हुआ है ॥ ४ ॥ कृष्ण ! तू मेरे मामा का पुत्र और मित्रघाती है; तुझे मेरेभी मारनेकी इच्छा है अतएव रे मंद ! आज तुझे वज्रकी समान गदा से मारूंगा ॥ ५ ॥ हे मूर्ख ! मैं मित्रोंका चाहने वाला तुझ बंधुरूप शत्रु को मार कर मित्रों के ऋण से उऋण हूंगा । जैसे अंकुशसे हाथी पीडित होता है दंतवक्त्र वैसेही कटु वचनों से श्रीकृष्णजीको पीडित कर गदासे उनके मस्तक पर प्रहार कर सिंह की समान गर्जने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदुश्रेष्ठ रण भूमि में गदासे आहत होकरभी क्षण भर को चलाय मान न हुए; उन्होंने भी अपनी कौमोद की गदा उसकी छातीमें मारी ॥ ८ ॥ उस प्रचण्ड गदाके प्रहार से दंतवक्त्र का हृदय चूर२ होगया; वह रुधिर उगिलता हुआ केशोंको बिखराय व हाथों पावों को फैलाय प्राण रहित हो गिर पड़ा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! जैसे शिशुपाल के शरीर की ज्योति ने श्रीकृष्णजी के चरण कमलों में प्रवेश किया था, वैसेही दंतवक्त्रकी देहसे भी सूक्ष्म ज्योति निकल सब प्राणियों के सामनेही श्रीकृष्णजी में प्रवेश कर गई ॥ १० ॥ उसका भाई विदूरथ भाई के शोक से व्याकुल हो श्रीकृष्णजी के मरने के निमित्त ढाल तलवार ले दीर्घ श्वास छोड़ता हुआ दौड़ा आया ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्णजीने छुरेकी धार वाले चक्रसे उस आते हुए विदूरथके कुंडल किरीट से शोभित मस्तक को काट डाला ॥ १२ ॥ इसप्रकार से श्रीकृष्णजी सौभविमान, शाल्व, और भाइयों समेत दंतवक्त्र आदि दुःसह वीरों को मार श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे घिर अपनी सुंदर नगरी में आये । देवता और मनुष्य उनकी स्तुति और मुनि, सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर, नाग, अप्सरा, पितर, यक्ष, किन्नर और चारण गण उनके चरित्रों का गान करने लगे ॥ १३—१५ ॥ योगेश्वर भगवान इसप्रकार लीला से सदैवही जय पाते हैं परंतु कोई २ पशु बुद्धि मनुष्य कहते हैं कि वे जरासंधसे हार गये थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! एकदिन बलदेव जी ने सुना कि कौरव और पाण्डवों के संग युद्ध का उद्यम होरहा है बलदेवजी किसी की ओर

ल ॥ १७ ॥ स्नात्वाप्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् । सरस्वतींप्रतिस्रोतंययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥ पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् । विशालंब्रह्मतीर्थंच चक्रंप्राचींसरस्वतीम् ॥ १९ ॥ यमुनामनुयान्येव गंगामनुचभारत । जगामनैमिषंयत्र ऋषयःसत्रमासते ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयोदीर्घसत्रिणः । अभिनन्द्ययथान्यायं प्रणम्योत्थायचाऽऽर्चयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितःसपरीवारः कृतासनपरिग्रहः । रोमहर्षणमासीनं महर्षेःशिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् । अध्यासीनंच तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥ कस्मादसाविमान्विप्रानध्याऽऽस्ते प्रतिलोमजः धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥ ऋषेर्भगवतोभूत्वा शिष्योऽधीत्यबहूनिच । सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणिसर्वशः ॥ २५ ॥ अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः । नगुणायभवन्तिस्म नटस्येवाऽजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थोंहि लोकेऽस्मिन्नवतारोमयाकृतः । वध्यामेधर्मध्वजिनस्तेहि पातकिनोऽधिकाः ॥२७॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि । भावित्वात्तंकुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेतिवादिनःसर्वे मुनयःखिद्यमानसाः ऊचुःसंकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतःप्रभो ॥ २९ ॥ अस्यब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन । आयुश्चात्माऽक्लमं तावद्यावत्सत्रंसमाप्यते ॥ ३० ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधोयथा । योगेश्वरस्यभवतो नाम्नायोऽपिनियामकः ॥३१॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनंलोकपावन । चरिष्यतिभवाँल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः

न होने की इच्छासे तीर्थ स्नान के मिष से द्वारका से प्रभास तीर्थ को चले गये ॥ १७ ॥ अनंतर वहां पर स्नान कर देव, ऋषि, पितर और मनुष्यों को तृप्तकर ब्राह्मणों समेत सरस्वती पर आये ॥ १८ ॥ क्रमसे वह पृथूदक, बिंदुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाला, ब्रह्मतीर्थ, चक्र और पश्चिम वाहिनी सरस्वतीमें गये और गंगा व यमुनाके पार वाले सब तीर्थोंमें होते हुए नैमिषारण्य में पहुंचे ऋषिगण वहां बारह बरसवाले यज्ञके अनुष्ठान में प्रवृत्तथे ॥ १९-२० ॥ बलरामजीको आयादेख दीर्घ यज्ञवाले उन मुनियों ने उठकर उनको प्रणाम व बंदना की ॥ २१ ॥ रामने मुनियों से पूजितहो आसनपर बैठकर देखाकि महर्षि व्यासके शिष्य रोमहर्षण बैठेहुए हैं ॥ २२ ॥ वह जाति का सूत होकर न उठान प्रणाम व दंडवत की और ब्राह्मणों की अपेक्षा ऊंचे आसनपर बैठाहुआ है यह देखकर बलदेवजी क्रोधित हुए ॥ २३ ॥ और 'यहदुष्ट प्रतिलोम जातिका सब धर्मपाल ब्राह्मणों और मेरी अपेक्षा भी ऊंचे आसनपर क्यों बैठारहा ? यह दुष्ट मारने योग्य है ॥ २४ ॥ भगवान वेद व्यासका शिष्यहो अनेक इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंको पढ़कर भी यहज्ञानी और विनीत नहीं हुआ ॥ २५ ॥ व्यर्थही अपनेको पंडित जानता है'। आत्माको तो जीतही न सका अतएव नटकी समान इसके सबगुण नाममात्रको हैं॥ २६ ॥ जोधर्मका चिह्न धारण करता है वह अधिक पातकी है इस प्रकार के धर्म नाशक मनुष्यों के मारने के निमित्तही मैंने अवतार लिया है॥२७॥ भगवान संकर्षण ने दुष्टोंको भी मारना छोड़दिया था तौभी भावीवस इतना कहकर हाथमें लिये हुए कुशके अग्रसे सूतको मारडाला ॥ २८ ॥ तबसब मुनिलोग हाहाकार करनेलगे और अत्यंत बिमनहो बलदेवजी से कहनेलगे कि-प्रभो! आपनें अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे यदुनंदन ! जबतक यज्ञ समाप्त न होवे तबतक के निमित्त हमने इसको ब्रह्म आसन और शारीरिक क्लेशरहित आयु दीथी । आपने न जानकर ब्रह्म बधकी समान इसका संहार किया ॥ ३० ॥ आप योगेश्वरहो, वेद भी आपका नियामक नहीं है तौभी हे लोकपावन् ! यदि आपही इस ब्रह्महत्या के समान पापका प्रायश्चित्त करोगे तभी सृष्टिकी मर्यादा रहेगी ॥३१॥ भगवान ने कहाकि-मैं सृष्टिपर अनुग्रह करने

॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच । करिष्येवधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया । नियमःप्रथमे कल्पे यावान्सतुविधीयताम् ॥३३॥ दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेवच । आशासितंयत्तद्ब्रूत साधयेयोगमायया ॥३४॥ ऋषयऊचुः॥ अस्त्रस्यतव वीर्यस्य मृत्यो रस्माकमेवच । यथाभवेद्वचः सत्यंतथारामविधीयताम् ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मावैपुत्रउत्पन्नइतिवेदानुशासनम् । तस्मादस्यभवेद्वक्ताआयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ किंवः कामोमुनिश्रेष्ठाब्रूताहंकरवाण्यथ । अजानतस्त्वपचितिंयथामेचिन्त्यतांबुधाः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्यसुतोघोरोबल्वलोनामदानवः । स दूषयतिनः सत्रमेत्यपर्वणिपर्वणि ॥ ३८ ॥ तंपापंजहिदाशार्हतन्नः शुश्रूषणंपरम् । पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥ ततश्चभारतंवर्षंपरीत्यसुसमाहितः । चरित्वाद्वादशान्मासांस्तीर्थस्नायीविशुध्यसे ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्तेप्रचण्डः पांसुवर्षणः भीमोवायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तुसर्वशः ॥ १ ततोऽमेध्यमयंवर्षंबल्वलेनविनिर्मितम् । अभवद्यज्ञशालायांसोऽन्वदृश्यतशूलधृक् ॥ २ ॥तंविलोक्यबृहत्कायंभिन्नाञ्जनचयोपमम् । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुंदंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ सस्मारमुसलंरामः परसैन्यविदारणम । हलंचदैत्यदमनंतेतूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्यहलाग्रेणबल्वलंगगनेचरम् । मुसलेनाहनत्क्रुद्धोमूर्ध्निब्रह्मद्रुहंबलः ॥ ५ ॥ सोपतद्भुविनिर्भिन्नललाटोऽसृक्समुत्सृज

की इच्छासे इस हत्याका प्रायाश्चित करूंगा; मुख्य पक्षमें जोनियमहों आप उसका वर्णनकरो ॥३२॥ हे मुनियों ! इस सूतकी दीर्घ आयु, बल, इन्द्रिय सामर्थ और दूसरे भी जोचाहतेहो कहो । मैं योगमाया से उसके अनुसार वही करूंगा ॥ ३३ ॥ ऋषियों ने कहाकि–हे राम ! जिस प्रकार से आपका अस्त्र और पराक्रम, इसकी मृत्यु और हमारे वाक्य सत्यहोवें आप वहीकरो आपसे और अधिक क्याकहें ॥ ३४ ॥ भगवान ने कहाकि—वेदमें यह उपदेश है कि आत्मा पुत्ररूप से उत्पन्न होता है। अतएव इसका पुत्र उग्रश्रवा आपलोगोंका वक्ता होवेगा इसकोही आयु, इन्द्रियों की सामर्थ्य और वलप्राप्त होवेगा ॥ ३५ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियों ! इसके उपरांत मैं आपका कौनसा कार्यकरूं कहिये । और मेरेअज्ञानसे कियेहुए ब्रह्मवधका प्रायश्चितक्या है उसकाभी आप विचार करिये ॥ ३६ ॥ ऋषियों ने कहाकि–हे देव ! इल्वलका पुत्र बल्वक नामका एक घोरदैत्य पर्व २ में आकर हमारे यज्ञको दूषित करता है ॥ ३७ ॥ हे यादव ! उस दुष्टको मारो उसके मरने सेही हमारा उपकार होगा । वह दानव पूय, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, सुरा और मांसकी बर्षा करकर यज्ञका विघ्नकरता है ॥ ३८ ॥ उसको मार करके आप काम क्रोधादि रहितहो भारत बर्षमें भ्रमण करो और बारह महीने कष्टको सह तीर्थोंका स्नानकरो तब शुद्धहोगे ॥ ३९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ०सरलाभाषाटीकायांअष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अनन्तर पर्व आनेपर प्रचण्ड भयानक बायु चलने लगी, और सब ओरसे पूयकी गन्ध फैलगई ॥ १ ॥ इसके उपरांत यज्ञशालामें बल्वल अपवित्र पदार्थों को बरसाने लगा और हठात् शूल धारणकर सबके सामने वह प्रगट हुआ ॥२॥ वह काजल के ढेरकी समान अति श्यामवर्ण उसकी चोटी और दाढ़ी मूछ तपेहुए तांबेकी समान, बड़ी भौंहोंयुक्तमुख डाढ़ों समेत देखने में अत्यन्त भयानक, और शरीर अत्यन्त दीर्घथा । उसको देख बलरामजी ने शत्रु सैन्यनाशक मूषल और दैत्य दमन हलको स्मरण किया । तत्कालही वह आ उपस्थितहुये ॥ ३ । ४ ॥ बलदेवजी ने क्रोधितहो उस ब्रह्मद्रोही आकाशचारी बल्वल को हलसे खींच मूषल से उस पर प्रहार किया ॥ ५ ॥ जिस से उसका मस्तक चूर्णहोगया । वह

न । मुञ्चन्नार्तस्वरंशैलोयथावज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥ संस्तुत्यमुनयोरामंप्रयुज्यावितथाशिषः । अभ्यषिञ्चन्महाभागावृत्रघ्नंविबुधायथा ॥ ७ ॥ वैजयन्तींददुर्मालां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् । रामायवाससीदिव्येदिव्यान्याभरणानिच ॥ ८ ॥ अथतैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्यब्राह्मणैः । स्नात्वासरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥ अनुस्रोतेनसरयूंप्रयागमुपगम्यसः । स्नात्वासंतर्प्यदेवादीञ्जगामपुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतींगण्डकींस्नात्वाविपाशांशोणआप्लुतः । गयांगत्वापितॄनिष्ट्वागङ्गासागरसंगमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्यमहेन्द्राद्रौरामंदृष्ट्वाऽभिवाद्यच । सप्तगोदावरींवेणांपम्पांभीमरथींततः ॥ १२ ॥ स्कन्दंदृष्ट्वाययौरामः श्रीशैलंगिरिशालयम् । द्रविडेषुमहापुण्यंदृष्ट्वाद्रिंवेङ्कटंप्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णींपुरींकाञ्चींकावेरींचसरिद्वराम् । श्रीरङ्गाख्यंमहापुण्यंयत्रसन्निहितोहरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिंहरेः क्षेत्रंदक्षिणांमथुरांतथा । सामुद्रंसेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्योहलायुधः । कृतमालांताम्रपर्णीमलयंचकुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यंसमासीनंनमस्कृत्याभिवाद्यच । योजितस्तेनचाशीर्भिरनुज्ञातोगतोर्णवम् । दक्षिणंतत्रकन्याख्यांदुर्गांददर्शसः ॥ १७ ॥ ततः फाल्गुनमासाद्यपञ्चाप्सरसमुत्तमम् । विष्णुःसन्निहितोयत्रस्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्यभगवान्केरलांस्तुत्रिगर्तकान् । गोकर्णाख्यंशिवक्षेत्रंसान्निध्यंयत्रधूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यांद्वैपायनींदृष्ट्वाशूर्पारकमगाद्बलः । तापींपयोष्णींनिर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथदण्डकम् ॥ २० ॥ प्रविश्यरेवा

रक्त उगलताहुआ आर्त्तनादकरता २ बज्र से टूटेहुए अरुणवर्ण के पर्वत की समान भूमि में गिर पड़ा ॥ ६ ॥ यह देखकर वेसव ऋषि रामकी स्तुति करने और अमोघ आशीर्वाद देनेलगे,देवताओं ने जैसे वृत्रासुर के मारनेवाले इन्द्र का अभिषेक कियाथा, वैसेही उन्होंने उनका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ अनन्तर उन्होंने रामको न कुम्हलानेवाले कमलों की लक्ष्मी की निवासभूत वैजयन्तीमाला, दिव्यवस्त्र व दिव्यआभूषण दिये ॥ ८ ॥ अनन्तर राम ने उनकी आज्ञासे ब्राह्मणों समेत कौशिकी में आय स्नानकिया; फिर जिससे सरयूनदी निकली है उस सरोवर पर आये ८॥ फिर वह सरयू में होतेहुए प्रयाग में आये और वहां स्नान व देवताओं का तर्पणकर पुलहाश्रम में आये ॥ १० ॥ फिर वहां से गोमती, गण्डकी, विपाशा और शोण में स्नानकर गया में पहुँच पित्रों की पूजाकी वहां गंगासागर के संगम में स्नानकर महेन्द्र पर्वत पर पहुंचे।वहां पर परशुराम को देख प्रणामकर वहां से सप्तगोदावरी, वेणु, पंपा और भीमरथी में हो स्वामिकार्तिक के दर्शन कर महादेवजी के श्रीशैल पर्वत पर आये। फिर बलरामजी ने द्रविड़ देश में पहुंच महापुण्य वेंकट पर्वत के दर्शन किये ॥ ११—१३ ॥ यह कामकोष्ठी, कांचीपुरी, सरिद्वरा, कावेरी, जहां हरि विराजमान रहते हैं उस महापुण्य श्रीरंग, हरिक्षेत्र, ऋषभपर्वत और दक्षिणमथुराको देख महापाप नाशक सेतुबन्धमें पहुंचे ॥ १४ । १५ ॥ बलरामजी वहां ब्राह्मणों को दशसहस्र गौएं दानकर कृतमाला और ताम्रपर्णी कुलाच में हो मलयाचल में गये। वहां बैठेहुए अगस्त्य मुनि को नमस्कार और प्रणामकर उनका आशीर्वाद और आज्ञा पाय दक्षिण समुद्रको गये ॥ १६ । १७ ॥ उन्होंने वहां कन्यानाम्नी दुर्गा देवी का दर्शन किया, फिर फाल्गुनतीर्थ पर आय उत्तम पंचाप्सर सरोवर में स्नानकर दशसहस्र गौएं दानकीं; उस स्थान में विष्णुजी सदैव विराजमान रहते हैं ॥ १८ ॥ अनन्तर केरल और त्रिगर्त देश में होतेहुए गोकर्ण क्षेत्रमें कि जहां शिवजीसदैव विराजमान रहते हैं पहुंचे ॥ १९ ॥ बलदेवजी वहां आर्या द्वैपायनी का दर्शनकर शूर्पारक में गये । अनन्तर तापी पयोष्णी और निर्विंध्या में स्नानकर दण्डकारण्य में आय माहिष्मती पुरी के निकट नर्मदा में

मगमच्चत्रमाहिष्मतींपुरी । मनुतीर्थमुपस्पृश्यप्रभासंपुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वाद्विजैः कथ्यमानंकुरुपाण्डवसंयुगे । सर्वराजन्यनिधनंभारंमेनेहृतंभुवः ॥ २२ ॥ सभीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यांयुध्यतोर्मृधे । वारयिष्यन्विनशनंजगामयदुनन्दनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तुतंदृष्ट्वायमौकृष्णार्जुनावपि । अभिवाद्याभवंस्तूष्णींकिंविवक्षुरिहागतः ॥२४॥ गदापाणीउभौदृष्ट्वासंरब्धौविजयैषिणौ । मण्डलानिविचित्राणिचरन्ताविदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ युवांतुल्यबलौवीरौहेराजन्हेवृकोदर । एकंप्राणाधिकंमन्येउतैकंशिक्षयाधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येहयुवयोः समवीर्ययोः । नलक्ष्यतेजयोऽन्योवाविरमत्वफलोरणः ॥ २७ ॥ नतद्वाक्यंजगृहतुर्बद्धवैरौनृपार्थवत् । अनुस्मरन्तावन्योन्यंदुरुक्तंदुष्कृतानिच ॥ २८ ॥ दिष्टंतदनुमन्वानोरामोद्वारवतींययौ । उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तंपुनर्नैमिषंप्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा । क्रत्वङ्गंक्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्योविशुद्धविज्ञानंभगवान्व्यतरद्विभुः । येनैवात्मन्यदोविश्वमात्मानंविश्वगंविदुः ॥ ३१ ॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातोज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः रेजेस्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानिबलस्यबलशालिनः । अनन्तस्याप्रमेयस्यमायामर्त्यस्य सन्तिह ॥३३॥ योऽनुस्मरेतरामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः । सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः सदयितो भवेत् ॥३४॥ इति श्रीमद्भा०महा०दशमस्कन्धेउ०एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

स्नान किया । अन्त को मनुतीर्थ में स्नानकर फिर प्रभास में आये ॥ २० । २१ ॥ वहां ब्राह्मण कौरव पाण्डवों का युद्ध और क्षत्रियों के मारेजाने की बातें कहरहेथे, बलदेवजी ने उसको सुनकर जानलिया कि पृथ्वी का भार दूरहोगया ॥ २२॥ उस समय भीम और दुर्योधन युद्धभूमि में गदा युद्ध कररहेथे; बलदेवजी उन्हें मनाकरने को कुरुक्षेत्र में गये ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव अर्जुन और श्रीकृष्णजीने उनको देखकर प्रणाम किया और यह क्या कहने के निमित्त इसस्थान में आये हैं, यह विचारतेहुए चुप खड़ेरहगए ॥ २४ ॥ इधर भीमसेन और दुर्योधन दोनों अपने अपने हाथों में गदा लिये क्रोधित होतेहुए विजयकी इच्छा से नाना मण्डलों में (चक्करकाटतेहुए) भ्रमण कररहेथे, राम ने उनको देखा और देखकरकहा ॥ २५ ॥ हेराजन्! हेवृकोदर ! तुमदोनों जन बलमें समानहो; दोनों जनही समान वीरहो; मैं एक जनको बलमें और दूसरेको शिक्षा में अधिक जानताहूं ॥ २६ ॥ अतएव इसयुद्ध में तुमदोनोंजनों के समान पराक्रमी होने से एककीजीत वा हारहोतीहुई नहीं दिखाई देती; अतएव निष्फलयुद्धकरने से निवृत्तहोओ ॥ २७ ॥ हेराजन् ! दोनों जनों में बहुत शत्रुता बंधीथी एक ने दूसरे के कटुवाक्य और अपकार का स्मरणकर बल० देवजी के इन अर्थवाले बचनों पर ध्यान न दिया ॥ २८ ॥ इससे बलरामजी, भावीही बलवान है ऐसा कह द्वारका में आये उन्होंने वहां जातिवालों और उग्रसेनादिसे मिलकर उनको प्रसन्न किया ॥ २९ ॥ महाराज ! बलदेवजी फिर नैमिषारण्य में आये । यज्ञमूर्ति, भेदज्ञानरहित बलदेवजीको ब्राह्मणों ने आनन्दपूर्वक यज्ञकराया ॥ ३० ॥ भगवान बलरामजी ने उन को जो शुद्धज्ञान दिया उससे उन मुनियों ने विश्व को आत्मा में और आत्मा को सर्वत्र स्थित देखा ॥ ३१ ॥ बलराम जी जातिवाले, बन्धुओं और सुहृदों से वेष्टितहो अपनी स्त्री समेत अवभृथ स्नानकर सुन्दरवस्त्र धारणकर माला को पहिर ताराओं समेत चन्द्रमा की समान प्रकाश पानेलगे ॥ ३२ ॥ हेराजन् ! माया मनुष्य, बलशील, अप्रमेय, अनन्त बलदेवजी के इसप्रकार से अनेक कर्म हैं ॥ ३३ ॥ जो सन्ध्या और प्रातःकाल में अद्भुत कर्मवाले अनन्त बलरामजी के कर्मों का स्मरण करे वह विष्णुभक्त होजावे ॥ ३४ ॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांएकोनशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

राजोवाच ॥ भगवन्यानिचान्यानिमुकुन्दस्यमहात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहेप्रभो ॥ १ ॥ कोनुश्रुत्वासकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः । विरमेतविशेषज्ञा विषण्णःकाममार्गणैः ॥ २ ॥ सावाग्ययातस्यगुणान्गृणीतेकरौचतत्कर्मकरौमनश्च । स्मरेद्वसन्तंस्थिरजङ्गमेषुशृणोतितत्पुण्यकथाःसकर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तुतस्योभयलिङ्गमानमेत्तदेवयत्पश्यतितद्धिचक्षुः । अङ्गानिविष्णोरथतज्जनानां पादोदकंयानिभजन्तिनित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेनसंपृष्टोभगवान्बादरायणिः । वासुदेवेभगवतिनिमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखाकश्चिद्ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः । विरक्तइन्द्रियार्थेषुप्रशान्तात्माजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयापपन्नेनवर्तमानोगृहाश्रमी । तस्यभार्याकुचैलस्यक्षुत्क्षामाच तथाविधा ॥ ७ ॥ पतिव्रतापतिंप्राहम्लायताबदनेनसा । दरिद्रासीदमानासावेपमानाभिगम्यच ॥८॥ ननुब्रह्मन्भगवतःसखासाक्षाच्छ्रियःपतिः । ब्रह्मण्यश्चशरण्यश्चभगवान्सात्वतर्षभः॥९॥तमुपैहिमहाभागसाधूनांचपरायणम् । दास्यतिद्रविणं भूरिसीदतेतेकुटुम्बिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुनाद्वारवत्यांभोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । स्मरतःपादकमलमात्मानमपियच्छति ॥ ११ ॥ किन्वर्थकामान्भजतोनात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः । सएवंभार्ययाविप्रोबहुशःप्रार्थितोमृदु ॥ अयंहिपरमोलाभउत्तमश्लो

राजा परीक्षितने कहा कि हे भगवन् ! हे प्रभु ! महात्मा अनन्त पराक्रमवाले श्रीकृष्णजी के जो पराक्रम हैं, म उनके सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! भगवानकी सुन्दर कथाओं को एकबारभी सुनकर कौन तत्वज्ञ मनुष्य कि जो कामके बाणोंसे खेदितहै ; उनसे विरह होसकताहै ॥ २ ॥ जिस बाणीसे भगवानके गुणगाएजावें वही बाणी है ; जिन हाथोंसे भगवानकी सेवा की जावे वेही हाथ हैं, जो मन स्थावर जंगम में रहेहुए भगवानका स्मरणकरे वही मन है, जो कान उनकी पवित्र कथाको सुनें वही कानहैं ॥ ३ ॥ जो मस्तक उनके स्थावर जंगमरूपको प्रणामकरे वही मस्तकहै, जो नेत्र भगवानका दर्शन करें वेही नेत्र सफल हैं और जो अंग उन बिष्णुजी व उनके भक्तों के चरणोदकका सेवनकरें वेही अंग सफल हैं ॥ ४ ॥ सूतजीने कहाकि जब राजा परीक्षितने वेदव्यासतनय शुकदेवजीसे इसप्रकार पूँछा तब शुकदेवजी बासुदेवमें चित्त को लगाय उनके गुणोंका कहनेलगे ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कोई एक वेदवेत्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीकृष्णजीका सखाथा वह इन्द्रियों के सेवनकरने योग्य सब विषयोंसे विरक्त होकर शान्तात्मा और जितेन्द्रिय होगयाथा वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण भगवदिच्छासे जो प्राप्त होता उसी द्रव्य से जीवन धारणकर एक मलीनवस्त्र पहिन गृहस्थाश्रममें बास करता । उसकी स्त्री भी वैसेही वस्त्र पहिन सदैव भूँख से कातर रहती । स्वामी भोगों को प्राप्त न करसकताथा इस कारण वह पतिव्रता सदैवही दुःखसे समय बिताती । एकदिन उसने कांपते २ मलीन मुखहो स्वामी से कहा कि ॥ ६—८ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने सुनाहै कि लक्ष्मीपति ब्राह्मणों के हितकारी, शरणागतवत्सल यादव श्रेष्ठ भगवान तो आपके सखा हैं ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! व साधुओं के परमस्थान हैं आप उनके निकट जाओ । आप कुटुम्बी कष्ट पारहेहो यह देखकर वे आपको आपकी इच्छानुसार धन देवेंगे ॥ १० ॥ वे इस समय भोज, वृष्णि और अन्धकों के राजाहो द्वारका में बास करते हैं । जो उनके चरण कमलों का ध्यान करते हैं वे जगद्गुरु उसको आत्मातक देदेते हैं । उनका भजन करने से वे जो इच्छित बरदेवैं उसमें सन्देहही क्याहै उस दरिद्र ब्राह्मण से जब उसकी स्त्री ने इसप्रकार बारम्बार कहा तब उसने बिचारा कि और चाहे कुछहो चाहे न हो बड़ाभारी लाभ यही होगा कि—श्रीकृष्णजी के दर्शन होंगे ॥ ११ ॥

कद्दर्शनम् ।१२। इतिसंचिन्त्यमनसागमनायमतिंदधे । अप्यस्त्युपायनंकिंचिद्गृहे कल्याणिदीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वाचतुरोमुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान् । चैलखण्डेनतान्बद्ध्वाभर्त्रेप्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ सतानादायविप्राग्र्यःप्रययौद्वारकांकिल । कृष्णसंदर्शनंमह्यंकथंस्यादितिचिन्तयन् ॥ १५ ॥ त्रीणिगुल्मान्यतीयायतिस्रःकक्षाश्चसद्विजः । विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनांगृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहंद्व्यष्टसहस्राणांमहिषीणांहरेर्द्विजः । विवेशैकतमंश्रीमद्ब्रह्मानन्दंगतोयथा ॥ १७॥ तंबिलोक्याच्युतोदूरात्प्रियापर्यङ्कमास्थितः । सहसोत्थायचाभ्येत्यदोर्भ्यांपर्यगृह्णान्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युःप्रियस्यविप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः । प्रीतोव्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यांपुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥ अथोपवेश्यपर्यङ्केस्वयंसख्युः समर्हणम् । उपहृत्यावनिज्यास्यपादौपादावनेजनी ॥२०॥ अग्रहीच्छिरसाराजन्भगवाँल्लोकपावनः । व्यलिम्पद्दिव्यगन्धेनचन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥२१॥ धूपैःसुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा । अर्चित्वाऽऽवेद्यताम्बूलंगांचस्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलंमलिनंक्षामंद्विजंधमनिसंततम् । देवीपर्यचरच्छैव्याचामरव्यजनेनवै ॥ २३ ॥ अन्तःपुरजनोदृष्ट्वाकृष्णेनामलकीर्तिना । विस्मितोऽभूदतिप्रीत्याअवधूतंसभाजितम् ॥ २४ ॥ किमनेनकृतंपुण्यमवधूतेनभिक्षुणा । श्रियाहीनेनलोकेऽस्मिन्गर्हितेनाधमेनच ॥ २५ ॥ योऽसौत्रिलोकगुरुणाश्रीनिवासेनसंभृतः । पर्यङ्कस्थांश्रियंहित्वापरिष्वक्तोऽग्रजायथा ॥ २६ ॥ कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वागुरुकुलेसतोः । आत्मनोर्ललिताराजन्करौगृह्यपरस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपिब्रह्मन्गुरुकुलाद्भवतालब्धदक्षि

॥ १२ ॥ यह मन २ में विचार उसने जानेका निश्चय कर अपनी स्त्रीसे कहा कि हे कल्याणि ! घरमें जो कुछ भेट देनेकी सामग्रीहो वह दे तो मैं लेजाऊँ, ॥ १३ ॥ ब्राह्मणी यह सुन चारमुट्ठी चावलों को मांगकर लाई और एक चीथडे में बांधकर स्वामीको दिये, ॥ १४ ॥ वह द्विजश्रेष्ठ उन चारमुट्ठी चावलों कोले किसप्रकार मुझे महाराज श्रीकृष्ण जी का दर्शन होगा यह विचारते विचारते द्वारकामें पहुंचा ॥ १५ ॥ वह ब्राह्मण तीन चौकी और तीन डयोढियोंका उल्लंघ कर धर्मधारी व अगम्य वृष्णि और अंधकगणों के घरों के बीच में होताहुआ श्रीकृष्णजी की सोलह सहस्र स्त्रियों मेंसे एक स्त्री के सुन्दर घर में गया उससमय उसको जानपड़ा कि मानों मैं ब्रह्मानन्दको प्राप्तहुआहूं ॥ १६–१७ ॥ श्रीकृष्ण जी प्यारी के साथ सेजपर लेटेहुयेथे दूरसेही ब्राह्मण को आतादेख सहसा उठकर निकट आय आनन्दपूर्वक उससे दोनों भुजा पसारकर मिले॥१८॥ अपने प्रियमित्र ब्राह्मणके अंगस्पर्श से श्रीकृष्ण जी को आनन्द उत्पन्न हुआ उनके दोनों नेत्रोंसे आनंदाश्रु बहनेलगे ॥ १९ ॥ हेराजन् ! अनन्तर भगवान मित्र को सेजपर बिठाय स्वयं पूजाकी सामग्री लाये और उसके दोनों चरणोंको धोय लोकपावन भगवानने उस चरणोदकको मस्तक पर चढ़ाया । फिर सुन्दर सुगन्ध युक्तचन्दन अगर और कुंकुमसे प्यारेको लिप्तकिया॥२०–२१॥ और सुगन्धित धूप दीपसे पूजाकर पान और गौदे मित्रकी कुशलपूछी ॥ २२ ॥ ब्राह्मण मलीन और दुर्बल व चिथड़े पहिरे हुएथा उसके समस्त शरीरसें नसें दीखरहीथी । साक्षात् देवी सखियों समेत पंखेसे उसकी पवन करनेलगी ॥ २३ ॥ पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णजी को उस अवधूत की पूजा करतेदेख सब अन्तःपुरवासी विस्मित होगये और बिचारनेलगे, कि ॥२४॥ इस अवधूत भिखारी, निर्धन, लोकनिन्दित मनुष्य का कैसा पुण्यहै कि जो लोकगुरु श्रीकृष्णजी ने इसका सन्मानकिया और पलँगपर बैठहुए अपनी प्यारीको छोड़ वह बडेभाई की समान इससे मिले, ॥ २५—२६ ॥ हेराजन् ! अनन्तर श्रीकृष्णजी और वह ब्राह्मण परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़ आप पहिले जब गुरुकुलमेंथे उससमयकी सुन्दर बातें कहनेलगे ॥ २७ ॥ भगवानने कहा कि—हेब्रह्मन् । हे

णात्। समावृत्तेनधर्मज्ञभार्योढासदृशीनवा ॥ २८ ॥ प्रायोगृहेषुतेचित्तमकामवि-
हितंतथा। नैवातिप्रीयसेविद्वन्धनेषुविदितंहिमे ॥ २९ ॥ केचित्कुर्वन्तिकर्माणिका
मैरहतचेतसः। त्यजन्तःप्रकृतीर्दैवीर्यथाऽहंलोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले
वासंब्रह्मन्स्मरसिनौयतः। द्विजोविज्ञायविज्ञेयंतमसःपारमश्नुते ॥ ३१ ॥ सवैस-
त्कर्मणांसाक्षाद्द्विजातेरिहसंभवः। अद्योऽङ्गयत्राश्रमिणांयथाऽहंज्ञानदोगुरुः ॥३२॥
नन्वर्थकोविदाब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह। येमयागुरुणावाचातरन्त्यञ्जोभवार्णवम् ॥
॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यांतपसोपशमेनवा। तुष्येयंसर्वभूतात्मागुरुशुश्रूषया
यथा ॥ ३४ ॥ अपिनःस्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तंनिवसतांगुरौ। गुरुदारैश्चोदितानामिन्ध-
नानयने क्वचित् ॥३५॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद्द्विज। वातवर्षमभूत्तीव्रं
निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तंगतस्तावत्तमसा चावृतादिशः ॥ निम्नं
कूलंजलमयन प्राज्ञायतकिंचन ॥ ३७ ॥ वयंभृशंतत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना
मुहुरम्बुसंप्लवे। दिशोऽविदन्तोऽथपरस्परं वनंगृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ।३८।
एतद्विदित्वाउदितेरवौ सान्दीपनिर्गुरुः। अन्वेषमाणोनः शिष्यानाचार्योऽपश्यदा-
तुरान् ॥ ३९ ॥ अहोहेपुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः। आत्मावैप्राणिनां प्रेष्ठस्त
मनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेवहिसच्छिष्यैः कर्तव्यंगुरुनिष्कृतम्। यद्वैविशुद्ध-
भावेन सर्वार्थात्मार्पणंगुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहंभोद्विजश्रेष्ठाः सत्याःसन्तुमनोरथाः ॥

धर्मज्ञ! दक्षिगादे गुरुकुलसे लौट तुमने अपनेसमान स्त्रीसे विवाह किया या नहीं॥२८॥ मैं जानता
हूं कि—प्रायः तुम्हारा मन घरके कामोंमें आसक्त न होता होगा हे विद्वन् इसीसे धनमें तुम्हारी
प्रीति नहींहै ॥ २९ ॥ कुछ एक मनुष्य काम आदिसे हतचेतन न हो ईश्वरकी रचीहुई मायाकी
वासनाको छोड़ देते हैं और वे मेरीही समान लोककी मर्यादाके निमित्त कर्म करते रहते हैं,॥३०॥
हेब्रह्मन्! जहां रहकर द्विजलोग आत्मतत्व को जान संसारसे पार होजाते हैं उस श्रेष्ठ गुरुकुल में
हमने तुमने निवास कियाथा वह तुमको स्मरणहै ॥ ३१ ॥ हेसखे! इस संसार में जिससे जन्म
होताहै वह प्रथमगुरु जिससे ब्राह्मणोंके सत्कर्मकी उत्पत्ति होतीहै वह दूसरा गुरु और आश्रमबा-
सियोंको ब्रह्मविद्या देनेवाला तीसरा गुरुहै जो साक्षात् मेरी समानहै ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन्! इस म-
नुष्य जन्ममें जो गुरुरूपी मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रसे पार होजातेहैं वह निश्चयही अपने अ-
भिप्राय साधनमें पण्डितहैं ॥ ३३ ॥ मैं गुरुकी सेवासे जितना संतुष्ट होताहूं गृहस्थ,ब्रह्मचर्य, वान
प्रस्थ और सन्यासी धर्मसेभी उतना संतुष्ट नहीं होता ॥ ३४ ॥ हेब्रह्मन्! जब हम गुरुकुल में
रहतेथे तब जो एक घटनाहुईथी उसका तो तुम्हें स्मरण होहीगा ॥३५॥ हेद्विज! गुरुपत्नीकी बन से
लकडी लानेकी आज्ञापाय जब महाबन में प्रवेश किया, तब बिना समयही प्रचण्ड बायु चलने
और घनघोर मेघ गर्जनेलगे ॥ ३६ ॥ सूर्यनारायण अस्त होनेकोथे, कि—उसीसमय दशों दि-
शाएं अन्धकारसे छागई सब पृथ्वी जलमय होगई इससे कुछ ऊंचा नीचा नही जानपड़ताथा, ॥
३७ ॥ जलसे भरेहुए उस बनमें हम महाबाहु और जलसे बारम्बार पीड़ित होनेलगे और दिशा
ओं का विचार न कर हम तुम एक दूसरे का परस्पर हाथ पकड़ कातरहो बोझा लेकर च-
लने लगे, ॥ ३८ ॥ आचार्य गुरु सांदीपन सूर्योदय होते न होते हमारे खोजनेको बाहर निकले
और बनमें हमको कातर देखकर कहनेलगे कि—, ॥ ३९ ॥ अहो हेपुत्रों! आत्माही प्राणियों
में श्रेष्ठहै तुम उसी आत्माका तिरस्कारकर मुझको श्रेष्ठ मान औरमेरे निमित्त दुःख भोगतेहो ॥
॥४०॥ यह देह कि जिससे सब पुरुषार्थ प्राप्त होतेहैं उसदेहको शुद्ध भावसे गुरुके समर्पण करना
यही उत्तम शिष्योंके लिये गुरुका प्रत्युपकार है, ॥ ४१ हेद्विजश्रेष्ठ मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट हुआ

छन्दांस्ययातयामानि भवन्तिहपरत्रच ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतांगुरुवे श्मसु । गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णःप्रशान्तये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणउवाच । किमस्माभि रनिर्वृत्तं देवदेवजगद्गुरो । भवतासत्यकामेन येषांवासोगुरावभूत् ॥ ४४ ॥ यस्य च्छन्दोमयंब्रह्म देहआवपनंविभो । श्रेयसांतस्यगुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥४५॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

श्रीशुकउवाच । सइत्थंद्विजमुख्येनसह संकथयन्हरिः । सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमानउवाचतम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्योब्राह्मणंकृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् । प्रेम्णानि रीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्र ह्मन्मे भवता गृहात् । अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णाभूर्यैव मेभवेत् । भूर्यप्यभक्तोपहृ तंन मेतोषायकल्पते ॥३॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयं योमेभक्त्याप्रयच्छति । तदहंभक्त्युपहृ तमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपिद्विजस्तस्मै व्रीडितःपतयेश्रियः । पृथुकप्र सृतिंराजन्न प्रायच्छदवांमुखः ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक् साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामोमाऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याःपतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया । प्राप्तोमामस्यदास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थंविचि- न्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः । स्वयंजहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥८॥ नन्वेतदुपनीतंमे परमप्रीणनंसखे । तर्पयन्त्यंगमां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥ इतिमुष्टिंसकृज्जग्ध्वा द्वितीयांजग्धुमाददे । तावच्छ्रीर्जगृहेहस्तं तत्परापरमेष्ठिनः ।

तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होवें; मेरे निकट जो वेद पढे हैं उनका सार इसलोक और परलोक मेंभी दूर न होवे ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मन् ! गुरुकुलमें बास करनेके समय इसप्रकार की जो हमारे पक्षमें घटनाएं हुईथीं उनका क्या तुम्हें स्मरण है ? गुरुकीही कृपासे मनुष्य शांति को प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण ने कहा—हे देव देव ! हे जगद्गुरो ! आप सत्यकाम हो; हम और आप जब साथही गुरु कुल में बास करते थे तब मुझे किसी बातकी पूर्णता न हुई ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! जिसकी देह वेद मय ब्रह्म और मंगलोंकी उत्पत्तिस्थान है उसका गुरुकुल में बास करना केवल विडंवना की बात है ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उ० सरलाभाषाटीकायां अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

श्रीशुकदेवजी वोलेकि—हे राजन् ! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके साथ इस प्रकारसे बातें करते २ सब प्राणियों केमनके अभिप्रायको जानने वाले भगवानने हंसते २ कहा ॥ १ ॥ ब्राह्मणों के हितकारी साधुओं के गति भगवान् श्रीकृष्णजी प्यारेको प्रेमदृष्टि से देख हंसकर बोले। हे ब्रह्मन् ! तुमघर से मेरे निकट क्या भेंटलाएहो ? भक्तोंके लायेहुए अणुमात्र द्रव्यकोभी मैं बहुत मानता हूं ! अभक्तों के लायेहुए बहुत द्रव्य से भी मुझे संतोष नहीं होता ॥ २–३ ॥ पत्ते, फूल, और जलभक्ति पूर्वक जोकुछ मुझको दान कियाजाता है मैं उसीको ही ग्रहण करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह ब्राह्मण इस प्रकार कहेजाने परभी लज्जाके कारण चावल आदि भगवानको न देसका, केवल नीचेको मुख करके रहगया ॥ ५ ॥ साक्षात् सब प्राणियों के अन्तःकरण के साक्षी श्रीकृष्णजी उस ब्राह्मण का आना जानकर चिंताकरने लगेकि इसने लक्ष्मी की कामना करके पहिले मेरी उपासना नहीं की । किंतु अपनी पतिव्रता स्त्री के प्रिय करने के निमित्त मेरे निकट आया है, अतएव इसको देवताओं की समान दुर्लभ सम्पत्तिदूंगा ॥ ६—७ ॥ श्रीकृष्णजी ने इसप्रकारसे विचारकर "यह क्या है" कहकर उस ब्राह्मण के वस्त्र से चीथड़ेमें बँधेहुए चावल छीनलिये और कहा कि ॥८॥ हे सखे ! यह भेंटतो मुझको अत्यंतही प्यारी है । हे सखे ! इन चावलों से मैं जगदात्मा संतुष्ट होजाऊंगा ॥ ९ ॥ यह कहकर भगवान एक मुट्ठी चावलतो उसमें से खागये और दूसरी मुट्ठी

॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे । भुक्त्वापीत्वा सुखेनेन आत्मानंस्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः । जगामस्वालयंतात पथ्यनुव्रज्यनन्दितः ॥ १३ ॥ सचालब्ध्वाधनंकृष्णान्नतु याचितवान्स्वयम् । स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहोब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टाब्रह्मण्यतामया । यद्दरिद्रतमोलक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ क्वाहं दरिद्रःपापीयान्क्व कृष्णःश्रीनिकेतनः । ब्रह्मबन्धुरितिस्माहं बाहुभ्यांपरिरम्भितः । ॥ १६ ॥ निवासितःप्रियाजुष्टे पर्यंकेभ्रातरोयथा । महिष्यावीजितःश्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषयापरमया पादसंवाहनादिभिः । पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसांरसायांभुविसंपदाम् । सर्वासामपिसिद्धीनां मूलंतच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥ अधनोऽयंधनंप्राप्य माद्यन्नुच्चैर्नमांस्मरेत् । इतिकारुणिकोनूनं धनंमेभूरिनाददात् ॥ २० ॥ इतितच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् । सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतोवृतम् ॥ २१ ॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः । प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २१ ॥ जुष्टंस्वलंकृतैःपुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः । किमिदं कस्यवास्थानं कथंतदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवंमीमांसमानंतं नरानार्योऽमरप्रभाः । प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्य

लनेको हाथ पसारा कि इतनेही में लक्ष्मीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहाकि ॥ १० ॥ हे विश्वात्मन् ! इसलोक और परलोक में भक्तकी जिस संपत्तिको देखकर आप प्रसन्न होतेहो उस समृद्धिके निमित्ततो इतनाही बहुतहै दूसरी मुट्ठी खाकर क्यामुझे इसके आधीनकरोगे ॥ ११ ॥ हेवत्स! ब्राह्मणने भगवानके मंदिरमें उसरात्रिको निवासकिया,सुखसे भोजनतथा पानकर आपको वह स्वर्गमें गयाहुआ बिचारने लगा ॥ १२ ॥ दूसरेदिन प्रातःकाल अपने घरकी ओर चला और विश्वके उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्णजी ने साथ साथमें कुछदूर जाय प्रणाम और विनयकी बातोंसे उसको संतुष्टकिया ॥१३॥ न तो भगवानने उसे धनदिया और न उसने लाजके मारेमांगा, भगवान के दर्शन से आनंद युक्तहो वह अपने घरकोचला ॥ १४ ॥ जातेसमय मनमें बिचारने लगाकि– अहो ! मैंने ब्राह्मणों के भक्त भगवान के दर्शन किये, वे बक्षःस्थलमें लक्ष्मीजीको धारण करते हैं तौभी उन्हों ने मुझ दरिद्रीको आलिंगन किया ॥ १५ ॥ कहांतो मैं दरिद्री और नीच ? और कहां लक्ष्मी के निवास भूमि श्रीकृष्णजी ? मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं इसही कारणवे दोनों भुजाओं से मुझ से मिले ॥ १६ ॥ भाइयों की समान लक्ष्मी के सेवन योग्य पलंग पर बिठाया और चामर हाथमें ले लक्ष्मी ने भी मुझपर पवनकी ॥ १७ ॥ जैसे ब्राह्मण देवताओं की पूजाकरते हैं, भगवान ने वैसेही परम सेवा और पांव आदि चांपकर मेरी पूजाकी ॥ १८ ॥ उनके चरणों की सेवा मनुष्योंको स्वर्ग, मुक्ति, पृथ्वीपर बहुतसी संपत्ति, और समस्त सिद्धियों की जड़ है, तौभी ॥ १९ ॥ यह निर्धन धनपाय अत्यंत मतवालाहो मेरास्मरण न करेगा, निश्चयही यह बिचारकर परम दयालु भगवानने मुझको धन न दिया ॥ २० ॥ ब्राह्मण इस प्रकार से बिचार करते २ अपने घरके निकट आया तोवहां देखाकि घरके चारों ओर सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा की समान प्रकाशित बिमान व्याप्तहो रहे हैं ॥ २१ ॥ वह विचित्र वाग और फुलवाड़ियों से परिपूर्ण है; उन वागोंके वृक्षोंकी शाखाओं में नाना प्रकार के पक्षी सुखसे गानकररहे हैं सरोवरों में बघौला, कल्हार, उत्पल, कमल आदि नाना प्रकार के फूलशोभा पारहे हैं ॥ २२ ॥ और भली प्रकारसे सजेहुए स्त्री पुरुष वहां शोभित होरहे हैं यह देखकर वह ब्राह्मण "यह क्या ? यह स्थान किसका है ? किस प्रकार यह स्थान ऐसा होगया ?" मन २ में इस प्रकार का विचार करनेलगा ॥ २३ ॥ उसही समय देवताओं क

नभूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा । निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रतापतिंदृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाऽश्रुलोचना । मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसापरिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नींवीक्ष्यविस्फुरन्तीं देवींवैमानिकीमिव । दासीनां निष्ककण्ठीनांमध्येभान्तींसविस्मितः॥२७॥प्रीतःस्वयंतयायुक्तः प्रविष्टोनिजमन्दिरम् । मणिस्तम्भशतोपेतंमहेन्द्रभवनंयथा ॥ २८ ॥ पयःफेननिभाः शय्यादान्तारुक्मपरिच्छदाः । पर्यङ्काहेमदण्डानिचामरव्यजनानिच ॥ २९ ॥ आसनानिचहैमानिमृदूपस्तरणानिच । मुक्तादामविलम्बीनिवितानानिद्युमन्तिच ।३० स्वच्छस्फटिककुड्येषुमहामारकतेषुच । रत्नदीपान्भ्राजमानाँल्ललनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्यब्राह्मणस्तत्रसमृद्धिंसर्वसंपदाम् । तर्कयामासनिर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनंबतैतन्ममदुर्भगस्यशश्वद्दरिद्रस्यसमृद्धिहेतुः । महाविभूतेरवलोकतोऽन्योनैवोपपद्येतयदूत्तमस्य ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणोदिशतेऽसमक्षंयाचिष्णवेभूर्यपिभूरिभोजः । पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणोदाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥ किञ्चित्करोत्युर्वपियत्स्वदत्तंसुहृत्कृतंफल्ग्वपिभूरिकारी । मयोपनीतं पृथुकैकमुष्टिंप्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतोमहात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैवमेसौहृदसख्यमैत्रीदास्यं पुनर्जन्मनिजन्मनिस्यात् । महानुभावेनगुणालयेनविषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥३६। भक्तायचित्राभगवान्हिसंपदोराज्यंविभूतीर्नसमर्थयत्यजः । अदीर्घबोधायविचक्ष

प्रभाकी समान स्त्री पुरुषों ने बाजेगाजे से आनंद पूर्वक भेटआदिदे उसका आदर किया ॥२४॥ स्वामीका आनासुन उस ब्राह्मण की स्त्रीको अत्यंत आनंद हुआ । वह अत्यंत आदर से मूर्त्तिमान लक्ष्मी की समान शीघ्रही घरसे बाहर निकली ॥ २५ ॥ पतिको देखतेही प्रेमसे उत्कंठितहो पतिव्रता के नेत्रोंमें आनंदाश्रु भरआये । उसने आंखोंको बंदकर बुद्धिसे उसको प्रणाम और मनसे आलिंगन किया ॥ २६ ॥ स्त्रीको विमान में बैठीहुई देवीकी समान प्रकाशित और आभूषणों से सजीहुई दासियों के बीचमें विराजमान देखकर वह ब्राह्मण अत्यंत विस्मित हुआ ॥ २७ ॥ फिर आनंदितहो उसके साथ स्वयं इन्द्र भवनकी समान सौ खंभोंवाले अपने घरमेंगया ॥ २८ ॥ वहां दुग्धके फेनकी समान शय्या, सुवर्णकी सामग्री युक्त हाथीदांत के पलंग, सुवर्णकी डंडीवाले चामर और व्यजन ॥ २९ ॥ कोमल बिछौने बिछेहुए आसन, सुंदर मोतियों की झालरोंयुक्त कांतिशाली विमान और स्त्री रत्नोसमेत स्फटिक मणियों की भीतों और मरकत मणियों के स्थलों में रत्नों के दीपक शोभायमान होरहेथे ॥ ३०–३१ ॥ अपने घरमें इस प्रकार की सम्पत्तिको देखकर ब्राह्मण चुपचापहो स्थिर चितसे विचार करनेलगा, कि—॥ ३२॥ मैं अत्यंतही अभागा और दरिद्री हूं, मेरी सम्पत्तिका कारण महा विभूतिशाली भगवान के दर्शनविना और कुछ नहीं होसकता ॥३३॥ जैसे समुद्रको पूर्ण करने वाला महा उदार मेघ किसी समय अधिकतर वृष्टिकोभी अल्प जानकर मानो सरमाता है । ऐसे समय में बरसता हुआ रात्रीमें मनुष्यों के सोजानेपर उनके खेतोंको जल से पूर्ण करदेता है । वैसेही मेरे मित्रश्रेष्ठ यादव श्रीकृष्णजी बहुतसा दान करके भी स्वयं उसको थोड़ा जानकर दर्शन करते हुए याचक के सामने न कहकर बहुत कुछदेते हैं ॥ ३४ ॥ वह अपने दियेहुए अधिक दानको भी तुच्छ और और भक्तके दानको तुच्छ होतेहुए भी बहुत कुछ मानतेहैं इसही कारण मैं जोथोडे से चावल लेगयाथा, महात्मा ने प्रीतिवशहो उन्हींको ग्रहण किया ॥३५॥ मेरी उनसे यही पार्थना है किमुझे जन्म २ में उन्हीं में प्रेम, सुहृदता, मित्रता व दासभाव प्राप्त होवे और उन्हीं महानुभाव भगवान में प्रीतिहो उनके भक्तों से सत्संग हुआकरे ॥ ३६ ॥ स्वयं

णः स्वयंपद्यन्निपातंधनिनांमदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थंव्यवसितोबुद्ध्याभक्तोऽतीव जनार्दने । विषयाञ्जाययात्यक्ष्यन्बुभुजेनातिलम्पटः ॥ ३८ ॥ तस्यवैदेवदेवस्य हरेयज्ञपतेः प्रभोः । ब्राह्मणाः प्रभवोदैवंनतेभ्योविद्यतेपरम् ॥ ३९ ॥ एवंसविप्रोभगवत्सुहृत्तदादृष्ट्वास्वभृत्यैरजितंपराजितम् । तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धामलेभेऽचिरतः सतांगतिम् ॥४०॥ एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वाब्रह्मण्यतांनरः । लब्धभावोभगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धोत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदाद्वारवत्यांवसतोरामकृष्णयोः । सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षयेयथा ॥ १ ॥ तंज्ञात्वामनुजाराजन्पुरस्तादेवसर्वतः । स्यमन्तपञ्चकंक्षेत्रंययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियांमहींकुर्वन्रामः शस्त्रभृतांवरः । नृपाणांरुधिरौघेणयत्रचक्रेमहाहृदान् ॥ ३ ॥ ईजेचभगवान्रामोयत्रास्पृष्टोऽपिकर्मणा । लोकंसंग्राहयन्नीशोयथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥४ ॥ महत्यांतीर्थयात्रायांतत्राऽऽगन्भारतीः प्रजाः । वृष्णयश्चतथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारततत्क्षेत्रं स्वमघंक्षपयिष्णवः । गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥ आस्तेऽनिरुद्धोरक्षायांकृतवर्माचयूथपः । तेरथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्चतरलप्लवैः ॥ ७ ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः । व्यरोचन्तमहातेजाः पथिकाञ्चनमालिनः ॥ ८ ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचराइव । तत्रस्नात्वामहाभागाउपोष्यसुसमाहिता ॥ ९ ॥ ब्राह्मणेभ्योददुर्धेनूर्वासः स्रग्रुक्ममालिनीः । रामहृदेषुविधिवत्पुनराप्लुत्यवृ

विवेकी भगवान धनी पुरुषोंको धनके मदसे गिरता देख अविचारी भक्तको नाना संपत्ति, राज्य और ऐश्वर्य नहीं देते ॥ ३७ ॥ श्रीदाम बुद्धिसे इसप्रकार निश्चयकर भगवान में अत्यंत भक्तिमान हुआ और विषयोंको धीरेधीरे त्याग अति आसक्त नहो स्त्रीके साथ विषयभोग करनेलगा ॥ ३८ ॥ देवदेव यज्ञपति भगवान के ब्राह्मणही प्रभु और इष्टदेव हैं इनसे बढकर और कोईश्रेष्ठ नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भगवानका मित्र वह ब्राह्मण श्रीकृष्णजी को अजित और भक्तों से पराजित होतादेख उनका ध्यान करता हुआ अहंकार रहित होगया और थोड़ेही दिनों के उपरांत ब्रह्मवेत्ताओं के गति उस शुद्ध धामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जोमनुष्य ब्रह्मण्य देव भगवान की इस ब्रह्मण्यताको सुनेगा वह भगवद्भक्ति प्राप्तकर कर्मके बंधनों से छूटजावेगा ॥ ४१ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! राम कृष्णके द्वारकामें निवासकरतेहुए एकसमय प्रलय कालकी समान बड़ाभारी सूर्य ग्रहण पडा ॥ १ ॥ हे राजन् । सबओरके मनुष्य प्रथमसेही इसको जानकर अपने कल्याणकी इच्छासे कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजी ने पृथिवीको क्षत्रीरहित कर राजाओंके रुधिरसे वहां बड़ेर हृद बनायेथे ॥ ३ ॥ वहांपर भगवान परशुरामजीने पापका स्पर्श न होनेपरभी साधारण मनुष्योंकी समान पाप निवृत्तिके निमित्त लोक की मर्यादाके कारण यज्ञकिये थे ॥ ४ ॥ इस बड़े पर्वमें भारतवर्षकी समस्तप्रजा वहां आई । हे भारत ! अक्रूर, वसुदेव, और आहुकादि वृष्णिगणभी अपने पाप दूरकरनेकी इच्छासे उस क्षेत्रमें आये ॥ ५ ॥ गद, प्रद्युम्न, साम्ब, सुचन्द्र, शुक और सारण के साथ ॥ ६ ॥ अनिरुद्ध और सेनापति कृतवर्मा द्वारकामें रक्षाके निमित्तरहे ; विमानों की समान रथ, तरङ्गों की समान चंचल घोड़े, बादल की सदृश गरजतेहुए हाथी, व विद्याधरोंकी समान देदीप्यमान यादव सुवर्ण की माला धारण किये ॥ ७—८ ॥ और दिव्यवस्त्र व कवच पहिरे स्त्रियोंके संग जातेहुए देवताओंकी समान शोभा देरहे थे उससमय महाभाग वृष्णियोंने वहां स्नानकर एकाग्र चित्तसे व्रत धारण किया ॥ ९ ॥ और ब्राह्मणोंको उन्होंने वस्त्र, माला, और कंचनके मालावाली गौयें दानदीं उन्हों

ष्णयः ॥ १० ॥ ददुः स्वन्नंद्विजाग्र्येभ्यः कृष्णेनोभक्तिरस्त्विति । स्वयंचतदनुज्ञाताव्रृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ ११ ॥ भुक्त्वोपाविविशुः कामंस्निग्धछायांघ्रिपांघ्रिषु । तत्रागतांस्तेददृशुःसुहृत्संबधिनोनृपान् ॥ १२ ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् । काम्बोजकेकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥ १३ ॥ अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान्परांश्चशतशोनृप । नन्दादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् ॥ १४ ॥ अन्योऽन्यसंदर्शनहर्षरंहसाप्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः । आश्लिष्यगाढंनयनैःस्रवज्जलाहृष्यत्त्वचोरुद्धगिरोययुर्मुदम् ॥ १५ ॥ स्त्रियश्चसंवीक्ष्यमिथोऽतिसौहृद-स्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे । स्तनैःस्तनान्कुङ्कुमपङ्करूषिताभिहत्यदोर्भिःप्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १६ ॥ ततोऽभिवाद्यतेवृद्धान्यविष्ठैरभिवादिताः । स्वागतंकुशलंपृष्ट्वाचक्रुःकृष्णकथामिथः ॥ १७ ॥ पृथाभ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्यतत्पुत्रान्पितरावपि। भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दंचजहौसंकथयाशुचः ॥ १८ ॥ कुन्त्युवाच । आर्यभ्रातरहंमन्येआत्मानमकृताशिषम् । यद्वाआपत्सुमद्वार्तांनानुस्मरथसत्तमाः ॥ १९ ॥ सुहृदोज्ञातयःपुत्राभ्रातरःपितरावपि । नानुस्मरन्तिस्वजनंयस्यदैवमदक्षिणम् ॥ २० ॥ वसुदेव उवाच ॥ अम्बमास्मानसूयेथादैवक्रीडनकान्नरान् । ईशस्यहिवशेलोकःकुरुतेकार्यतेऽथवा ॥ २१ ॥ कंसप्रतापिताःसर्वेवयंयातादिशोदश । एतर्ह्येवपुनःस्थानंदैवेनासादिताःस्वसः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चितानृपाः । आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥ २३ ॥ भीष्मोद्रोणोऽम्बिकापु

ने फिर दूसरीबार रामकुण्ड में विधिवत स्नानकर ॥ १० ॥ 'श्रीकृष्णजीमें हमारी भक्तिहोवे, इसका मना से ब्राह्मणों को सुस्वादु भोजनदिया श्रीकृष्णजीही जिनके देवता हैं ऐसे वृष्णिवंशी उनकी आज्ञापाय ॥ ११ ॥ आपभी भोजनकर शीतल छायावाले वृक्षोंके नीचे सुखसे बैठे हे राजन् ! वहां उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृंजय, काम्बोज, केकय, मद्र, कुंति, आनर्त्त, केरल ॥१२–१३॥ आदि श्रीकृष्णजीके सुहृद और सम्बन्धी राजा व सैकडों दूसरे अपने पक्षवाले राजा व सुहृद नन्दादि गोप और उत्कंठित गोपियें भी आईं॥१४॥ परस्परके दर्शनों से जो हर्ष उत्पन्नहुआ उसके मारे उनका सुन्दर कमलमुख भलीभांति प्रफुल्लितहोगया, प्रेमसे गाढ़ आलिंगनकर उनके नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी अत्यानन्द का अनुभव करनेलगे ॥१५॥ परस्पर मिल सुहृदता के कारण स्त्रियों की कटाक्ष दृष्टि निर्मल हुई वे केसर लगेहुए स्तनों को मल २ भुजाओंसे परस्पर आलिंगनकरने लगीं नेत्रों से उनके प्रेमाश्रू बहनेलगे ॥ १६ ॥ अनंतर वे वृद्धों को प्रणामकर और छोटों से पूजित हो परस्पर की कुशल पूछ श्रीकृष्णजी की बातें करने लगे ॥१७॥ कुंती भाइयोंसहित बहिनों और उनके पुत्रों को पिता माता, भाइयोंकी स्त्रियों को और श्रीकृष्णजी को देख प्रेम कि बातों से शोक रहित हुई ॥ १८ ॥ कुंतिने वसुदेव से कहाकि—हे आर्य्य भ्राता ! मैं अपनेको अकृतार्थ जानतीहूं क्योंकि अति सामर्थ्य वान तुम विपत् कालमें भी मेरीसुध नहीं लेते ॥ १९ ॥ जिससे दैव विमुख होता है उसका स्मरण, सुहृद, जातिवाले, पुत्र, भ्राता, पिता और माता भी नहीं करते ॥ २० ॥ वसुदेवजी ने कहा कि–हे अम्ब ! हमें दोषन दो; हम मनुष्य दैव के खिलौने हैं; लोक भगवान केही बशमें हो कार्य करते हैं ॥ २१ ॥ हम लोग कंससे अत्यंत दुःखित हो दशों दिशाओं को भाग निकले थे । हे भगिनि ! दैवेच्छासे अभी अपने स्थान पर आये हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! पूर्वोक्त सब राजा वसुदेव और उग्रसेनादि यदु बंशियों से पूजित हो श्रीकृष्णजी का दर्शन कर अत्यंत आनंद को प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र ! भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, पुत्रों समेत गांधारी, स्त्रियों समेत पाण्डव, कुंती, संजय, विदुर, कृप, कुंतिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु,

गान्धारीससुतानथा । सदाराःपाण्डवाःकुन्तीसञ्जयोविदुरःकृपः ॥ २४ ॥ कुन्तिभोजोविराटश्चभीष्मकोनग्नजिन्महान् । पुरुजिद्द्रुपदःशल्योधृष्टकेतुःसकाशिराट् ॥ ॥ २५ ॥ दमघोषोविशालाक्षोमैथिलोमद्रकेकयौ । युधामन्युःसुशर्माचससुतावाह्लिकादयः ॥ २६ ॥ राजानोयेचराजेन्द्रयुधिष्ठिरमनुव्रताः । श्रीनिकेतंवपुःशौरेःसस्त्रीकंवीक्ष्यविस्मिताः ॥ २७ ॥ अथतेरामकृष्णाभ्यांसम्यक्प्राप्तसमर्हणाः । प्रशशंसुर्मुदायुक्तावृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥ २८ ॥ अहोभोजपतेयूयंजन्मभाजोनृणामिह । यत्पश्यथासकृत्कृष्णंदुर्दर्शमपियोगिनाम् ॥ २९ ॥ यद्विश्रुतिःश्रुतिनुतंदमलंपुनाति पादावनेजनपयश्चवचश्चशास्त्रम् । भूःकालभर्जितभगापियदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षतिनोऽखिलार्थान् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः । येषांगृहेनिरयवर्त्मनिवर्ततांवःस्वर्गापवर्गविरमःस्वयमास्वविष्णुः ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्तत्रयदून्प्राप्ताञ्ज्ञात्वाकृष्णपुरोगमान् । तत्रागमद्वृतोगोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३२ ॥ तंदृष्ट्वावृष्णयोहृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः । परिषस्वजिरेगाढंचिरदर्शनकातराः ॥ ३३ ॥ वसुदेवःपरिष्वज्यसंप्रीतःप्रेमविह्वलः । स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासंचगोकुले ॥ ३४ ॥ कृष्णरामौपरिष्वज्यपितराचभिवाद्यच । नकिंचनोचतुःप्रेम्णासाश्रुकण्ठौकुरूद्वहः ॥ ३५ ॥ तावात्मासनमारोप्यबाहुभ्यांपरिरभ्यच । यशोदाचमहाभागासुतौविजहतुः शुचः ॥ ३६ ॥ रोहिणीदेवकीचाथपरिष्वज्यव्रजेश्वरीम् । स्मरन्त्यौतत्कृतांमैत्रींबाष्पकण्ठ्यौसमू-

काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मैथिल, मद्र, केकय, युधामन्यु, सुशर्मा, पुत्रोंसमेत वाह्लीक, और युधिष्ठिर के वशवर्ती दूसरे राजा श्रीकृष्णजी को उनकी स्त्रियों समेत देखकर विस्मितहुए २४॥ ॥ २७ ॥ अतएव बलदेवजी व श्रीकृष्णजी ने उनका भलीभांति सत्कार किया वे सब राजालोग उनसे सन्मानितहो सब यादवों की प्रशंसा करने लगे ॥ २८ ॥ अहो ! भोजपते ! इसलोक में मनुष्यों में आपही का जन्म सार्थक है; कारण कि आप श्रीकृष्णजी के दर्शन कि जिनके दर्शन योगियों को भी दुर्लभ हैं निरन्तर किया करतेहो ॥ २९ ॥ श्रुति में गाई हुई जिनकी कीर्ति, व जिनके चरणों का जल और वाक्यरूप शास्त्र इस विश्व को पवित्र करते हैं और यह पृथिवी काल की गति से शक्तिहीन होनेपरभी जिनके चरणों के स्पर्श से शक्तिपाकर हमको सबपदार्थ देती है ॥ ३० ॥ आप संसार के कारणरूप घर में बसकर भी उन्हीं श्रीविष्णुजी के साथ दर्शन, स्पर्शन गमन, वार्तालाप, शयन, भोजन, बिवाह, और दैहिक सम्बन्ध से सम्बन्धितहो स्वर्ग और मोक्ष की तृष्णा से निवृत्त होगयेहो अतएव तुम्हारा जन्म सफल हुआ ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि हेराजन् ! श्रीकृष्णआदि यदुवंशियों को वहां आयाहुआ जान श्रीनन्दजी दर्शन करने की इच्छा से गोपों समेत शकटों में सामग्री आदि भरकर वहां आये ॥ ३२ ॥ उनको वहां आया देख, बहुत दिनों के उपरांत दर्शन होने के कारण, यदुगण आनन्दितहो प्राण के आनेसे देह के उठने की समान उठकर भलीप्रकार उनसे मिले ॥ ३३ ॥ कंसके दियेहुए क्लेशों और गोकुल में पुत्रों के छोड़ने का स्मरणकर बसुदेवजी उनसे मिलकर अत्यन्त आनन्दित और प्रेमसे विह्वल होगए ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! पिता माता से मिल और उनको प्रणामकर श्रीकृष्णजी और बलरामजी का कण्ठ प्रेमाश्रु से रुकगया और वे कुछ न कहसके ॥ ३५ ॥ महाभागा यशोदाने उन दोनों पुत्रों को अपने आसनपर बिठाय दोनों बाहों से उनसे मिल अपने सबशोक को दूर किया ॥ ३६ ॥ अनंतर रोहिणी और देवकी ने यशोदाजी से मिल उनकी मित्रता का स्मरणकर आंसू भरकर उनसे एकसंगही कहा कि—॥ ३७ ॥ हे व्रजेश्वरि ! कौन स्त्री तुम दोनों जनों की मित्रता को भूलसकती है ? इंद्र की समान ऐश्वर्य पाने पर भी उसका बदला नहीं दियाजासकता ॥ ३८ ॥

चतुः ॥ ३७ ॥ कच्चित्स्मरत वा मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि । अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३८ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि । प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्रच भयौ न सतां परः स्वः ॥ ॥३९॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति । दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ४० ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः । आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया । गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४२ ॥ अप्यवध्यायथाऽस्मान्स्विदकृतज्ञाविशङ्कया । नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४३ ॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च । संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४४ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते । दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४५ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः । भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४५ ॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः । उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः । तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४८ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः । संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

जिन हमारे दोनों बालकों ने पिता माता को भी न देखा; पलकें जैसे आंखों की रक्षा करती हैं उसी प्रकार वे, माता पिता रूप आप से भलीप्रकार भोजन, पोषण, पालनादि पाकर रक्षित हुए कहींभी इनको भय नहींहुआ सत्य है सत्पुरुषों में भेदबुद्धि नहीं होती ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! जिनके दर्शन में पलकों की ओट होनेसे पलक बनानेवाले ब्रह्मा को गोपियें गाली देती हैं उन प्यारे श्रीकृष्णको उन्होंने बहुत दिनों में देखा, अतएव वे नेत्रोंद्वारा उन्हें हृदय में स्थापितकर–गोपियों को भी दुर्लभ तद्रूपभाव को प्राप्तहो गद्गद होगईं ॥ ४० ॥ जो गोपियां भगवान से एकांत में मिलीं भगवान ने उनसे आलिंगनकर आरोग्य पूंछ हंसकर कहा कि– ॥ ४१ हे सखियों ! क्यातुम हमारा कभी स्मरण करतीहो ? मैं अपने बंधु बांधवों के अभिप्राय पूर्ण करने के निमित्त चलाआयाथा ॥ ४२ ॥ मैं अकृतज्ञहूं–तुमक्या इसप्रकार की कुछ शंका करतीहो ? क्या इसही कारण मुझ से कोपित रहतीहो ? निश्चय भगवानही प्राणियों को मिलाते और बिछुड़ाते हैं ॥४३ ॥ जैसे पवन बादलों को और तृण, धूल रुई को मिलाता औरबिछुड़ाता है वैसेही दैवभी प्राणियों को मिलाकर बिछुड़ा देता है ॥ ४४॥ मुझ में भक्ति करके प्राणी मोक्ष पासकते हैं । भाग्यवश मुझ में तुम्हारा स्नेह हुआ है कि जिससे मेरी प्राप्ति होसकती है ॥ ४५॥ हे अंगनाओ ! जैसे आकाश, जल, पृथिवी, वायु, और तेज ये पांच महाभूतही घटादिक पदार्थों के आदि अंत, बाहिरी भीतरी रूप हैं वैसेही मैंभी सब प्राणियों का आदि अंत बाहिरी, भीतरी रूपहूं ॥ ४६ ॥ इसी प्रकारजरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज ये चारप्रकारके जीव अपनेकारण रूप पंचमहाभूतों में रहते हैं आत्माही से भूत सबस्थानों में विस्तृत रहते हैं; परंतु यह दोनों परमपुरुष मुझ में प्रकाशमान हैं॥४७॥श्रीशुकदेवजी बोलेकि–श्रीकृष्णजीने इसप्रकार उन्हें स्वरूप उपदेश से शिक्षित किया,उसके स्मरण से उनका लिंगदेह छूटगया और उन्हीं को प्राप्तहुईं और इसप्रकार से कहने लगीं॥४८॥कि–हेपद्मनाभ ! हमारी प्रार्थनाहै कि चाहे हमघरका सेवन भलेही करें परंतु तौभी अगाध बोध योगी जिसका हृदय में ध्यान करते हैं और जो संसार कूपमें गिरे हुए मनुष्यों के लिये अवलम्बनरूप हैं उन आप के चरणों में सदैव हमारामन लगारहे ॥ ४९ ॥ इतिश्री मद्भागवतमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांद्व्याशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

श्रीशुकउवाच । तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां सगुरुर्गतिः । युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥ तदेवंलोकनाथेन परिपृष्टाःसुसत्कृताः प्रत्युचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥ कुतोऽशिवं त्वच्चरणांबुजासवं महन्मनस्तोमुखनिःसृतंक्वचित् । पिबन्तियेकर्णपुटैरलंप्रभो देहंभृतांदेहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥ हित्वाऽऽत्मधाम विधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् । कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिंनताःस्मः ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच । इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः । समेत्यगोविन्दकथामिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणुवर्णयामिते ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच । हेवैदर्भ्युच्यतां भद्रे हेजाम्बवतिकौसले । हेसत्यभामे कालिन्दि शैव्ये रोहिणिलक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हेकृष्णपत्न्यएतन्नोब्रूत वोभगवान्स्वयम् । उपयेमेयथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच । चैद्यायमाऽर्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितांघ्रिरेणुः । निन्येमृगेन्द्रइव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥ सत्यभामोवाच ॥ योमेसनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथरत्नमदात्सतेन भीतः पिताऽदिशतमां प्रभवेऽपिदत्ताम् ॥ ९ ॥ जाम्बवत्युवाच । प्राज्ञायदेहकृदमुंनिजनाथदैवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत् ज्ञात्वापरीक्षितउपाहरदर्हणं मांपादौ प्रगृह्यमणिनाऽहममुष्यदासी ॥१०॥ कालिन्द्यु-

शुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! सबके गुरु और गति भगवान श्रीकृष्णजीने गोपियोंपर अनुग्रह कर युधिष्ठिर और समस्त बंधुओं की कुशल पूछी ,॥ १ ॥ भगवान के इसप्रकार अति आदर से प्रश्न करनेपर वे निष्पापहो प्रसन्न मनसे कहनेलगे कि—॥२॥ हेप्रभो ! आपका चरणोदक रूप आसव प्राणियों के देह जनित अविद्या का नाश करताहै वह महात्माओं के मन से मुखद्वारा प्रगट होता रहताहै । जो कानोंरूप अंजुली से उसको पीतेहैं उनको अमंगल कहांसे होसक्ता है, ॥ ३ ॥ हम आपको प्रणाम करतेहैं, अपने तेजसेही अपने आपही तीनों अवस्थाएं दूर होतीहैं, अतएव आप सर्वानंद कदम्ब स्वरूपहो । आप अखण्ड अकुंठित शक्तिवालेहो काल वशसे लुप्तहुए वेदों की रक्षाके निमित्त आप योगमाया के योग से नानाप्रकार की मूर्त्ति धारण करते रहतेहो आप परमहंसों की गतिहो ॥ ४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि—हेराजन् ! मनुष्य इसप्रकार से पवित्र यशवाले भगवानकी स्तुति करनेलगे, अंधकों और कौरवोंकी स्त्रियें मिलकर परस्पर के नानागीतों से भगवान मुकुन्द के चरित्र गानेलगीं इससमय उनका बर्णन करताहूंसुनो ॥ ५ ॥ प्रथम द्रौपदीने कहाकि—हे विदर्भनन्दिनि ! हेभद्रे ! हे जांबवति ! हेसत्यभामे ! हेकालिन्दि ! हेमित्रविंदे ! हेरोहिणि ! हेलक्ष्मणे ! हेदूसरी श्रीकृष्णजीकी स्त्रियों ! स्वयं भगवानने अपनी मायाके योगसे मनुष्यों का अनुकरण कर जिसप्रकार अपने विवाह कियेथ उन सबका बर्णन करो ॥ ६—७ ॥ रुक्मिणी ने कहा कि—जरासन्ध आदि राजा मुझे शिशुपालके देनेके निमित्त धनुष लेकर उद्यत हुएथे परन्तु श्रीकृष्णजीने अपना चरण उन अजय योद्धाओंके मस्तक पर रख सियारों के बीचमेंसे अपने भागहारी सिंहकी समान मेरा हरण कियाथा वे भगवान मेरे पूजनीयहैं ॥ ८ ॥ सत्यभामा ने कहा कि—भाई प्रसेन के मारे जानेसे मेरा पिता अत्यन्त संतप्त हुआथा । श्रीकृष्णजी ने अपना अपयश दूर करनेके निमित्त जांबवत को परास्तकर मणिलाए । इससे मेरे पिताने उस अपने कियेहुये अपराध से भयभीतहो यद्यपि मेरी मँगनी होगईथी तो भी इन्हीं प्रभुके हाथमें मुझे अर्पण किया ॥ ९ ॥ जांबवतीने कहा कि-पिता जांबवानने इनको अपना ईश्वर सीतापति न जान इनसे सत्ताईस दिन युद्धकिया। अन्त में निश्चय होनेपर मेरे पिता ने इनके चरणोंमें गिर भेंटकी भांति मणिके साथ मुझेभी अर्पण किया ऐसे मैं इनकी दासीहूं १०॥

वाच । तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाऽऽशया । सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ भद्रोवाच ॥ योमांस्वयंवर उपेत्य विजित्यभूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिंद्विपारिः । भ्रातॄंश्चमेऽपकुरुतःस्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तुमेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच । सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय । तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्धह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ यइत्थंवीर्यशुल्कांमां दासीभिश्चतुरंगिणीम् । पथिनिर्जित्यराजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तुमे ॥१४॥ मित्रविन्दोवाच ॥ पितामेमातुलेयांयस्वयमाहूयदत्तवान् । कृष्णेकृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्यासखीजनैः॥१५॥अस्य मेपादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनिजन्मनि । कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येनतच्छ्रेयआत्मनः ॥ ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापिराज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वामुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तंमुकुन्देकिलपद्महस्तया वृतःसुसंमृश्यविहायलोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वाममतंसाध्वि पितादुहितृवत्सलः । बृहत्सेनइति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥ यथास्वयंवरेराज्ञि मत्स्यःपार्थेप्सयाकृतः । अयंतुबहिराच्छन्नो दृश्यतेसजलेपरम् । ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतोभूपा आययुर्मत्पितुःपुरम् । सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाःसहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रासंपूजिताःसर्वे यथावीर्ययथावयः । आददुःसशरंचा-

कालिंदी ने कहा कि मैं श्रीकृष्णजी के चरणस्पर्श की कामनासे तपस्या करतीथी, श्रीकृष्णजी ने मुझे तपस्या करते जान अपने मित्र अर्जुन के संगजाय मेरा पाणिग्रहण कियाथा उससमयसे मैं उनके घरमें बुहारी देनेवाली दासीहुई, ॥ ११ ॥ भद्राने कहा कि—श्रीनिवास स्वयं स्वयम्बर स्थलमें जाय राजाओं को और अपकार करनेमें प्रवृत्त मेरे भाइयों को जीत कुत्तोंके बीचसे अपने बलिको लेनेवाले सिंहकी समान मुझे अपने नगरमें लेगयेथे । मैं प्रार्थना करतीहूं कि जन्म जन्ममें उन्हीं के चरणोंकी सेवामें प्रवृत्तरहूं ॥१२॥ सत्याने कहा कि मेरे पिताने राजाओं के बल की परीक्षा करनेके निमित्त तीक्ष्ण सींगोंवाले अति पराक्रमी सातसांड पालेथे जैसे बालक बकरी के बच्चोंको बांधलेवें श्रीकृष्णजी ने वैसेही बीरों के मदनाशक उन सातों सांडों को सहजही से बलपूर्वक बांधलियाथा ॥१३॥ जिन्होंने इसप्रकार पराक्रमरूप शुल्कदे मार्गमें राजाओं को जीत चतुरंगिणी सेना और दासियों समेत मुझको लाए मैं निरन्तर उनकीही दासी होऊं, ॥ १४ ॥ मित्र विंदाने कहा कि–हे कृष्ण ! पिताने मेरा चित्त श्रीकृष्ण जी में लगा देख स्वयंही सखियों और एक अक्षौहणी सेना समेत मुझे मामाके पुत्र श्रीकृष्णजी को देदिया ॥ १५ ॥चाहे मैं नानाकर्मोंके बशहो संसारमें भ्रमण करतीरहूं परन्तु जन्म२ में श्रीकृष्णजीकेही चरणोंकी दासी होऊं उसीमें मेरा कल्याणहै ॥ १६ ॥ लक्ष्मणाने कहा कि—हेराज्ञि ! नारद के मुख से बारम्बार भगवान के जन्म और कर्मों का वृत्तान्त सुनकर मेराभी चित्त लोकपालों को छोड़कर श्रीकृष्णजी में आसक्त हुआ, ॥ १७ ॥ हे साध्वि ! लक्ष्मीजी ने भी जिनका बरण किया उनकी दासी होनेकोमैं अत्यन्त उत्सुक हुई । पुत्रीप्रिय पिता बृहत्सेन ने मेरी कामना जानकर उसका उपाय किया, ॥ १८ ॥ हेराज्ञि जैसे आपके स्वयम्बरमें अर्जुन के पानेकी इच्छा से मत्स्य निर्वाण कियागयाथा मेरे स्वयम्बर में भी ठीक वैसेही हुआ । तुम्हारेसे इसमें यह विशेषताथी कि यह मत्स्य खंभेकी जड़में रखेहुए कलशेके जलमेंही देखाजाताथा अतएव नीचेको दृष्टिकर ऊपरके निशानेको भेदनाथा । इसका होना श्रीकृष्णजी के बिना और किसी से सम्भव न था ॥ १९ ॥ मेरे इस स्वयंवर के वृत्तांतको सुनकर सब स्थानों से शस्त्र के तत्वको जानने बाले सहस्रों राजा उपाध्यायों समेत दिशा बिदिशासे मेरे पिताके नगरमें आनेलगे ॥ २० ॥ बेसब पराक्रम और अवस्था

पं वेद्धुंपर्षदिमाद्धियः ॥ २१ ॥ आदायव्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः । आको-ष्ठंज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुनाहताः ॥ २२॥ सज्यंकृत्वाऽपरेवीरा मागधाम्बष्ठचेदि पाः । भीमोदुर्योधनःकर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासंजलेवीक्ष्य ज्ञात्वाचतदवस्थितिम् । पार्थोयत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशेपरम् ॥ २४ ॥ राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषुमानिषु । भगवान्धनुरादाय सज्यंकृत्वाऽथ लीलया ।२५ तस्मिन्संधायविशिखं मत्स्यं वीक्ष्यसकृज्जले । छित्त्वेषुणाऽपातयत्तं सूर्ये चाभिजि तिस्थिते ॥ २६ ॥ दिविदुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुताभुवि । देवाश्च कुसुमासारा-न्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रङ्गमाविशमहंकलनूपुराभ्यांपद्भ्यांप्रगृह्यकनको-ज्ज्वलरत्नमालाम् । नूत्नेनिवीयपरिधायचकौशिकाग्र्येसव्रीडहासवदनाकबरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीयवक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलंशिशिरहासकटाक्ष-मोक्षैः । राज्ञोनिरीक्ष्यपरितःशनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदयानिदधेस्वमालाम् ॥ २९॥ तावन्मृदङ्गपटहाःशंखभेर्यानकादयः । निनेदुर्नटनर्तक्योननृतुर्गायकाजगुः ॥३०॥ एवंवृतेभगवतिमयेशेनृपयूथपाः । नसेहिरेयाज्ञसेनिस्पर्धन्तोहृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥ मांतावद्रथमारोप्यहयरत्नचतुष्टयम् । शार्ङ्गमुद्यम्यसन्नद्धस्तस्थावाजौचतुर्भुजः ॥ ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामासकाञ्चनोपस्करंरथम् । मिषतांभूभुजांराज्ञिमृगाणामृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेऽन्वसज्जन्तराजन्यानिषेद्धुंपथिकेचन । संयत्ताउद्धृतेष्वा

के अनुसार मेरे पितासे भली प्रकार पूजितहो सबने मुझमें चित्तलगाय लक्ष्य वेधने के निमित्त सभामें धनुषबाण ग्रहणकिया ॥२१॥किसी२ ने धनुषके धनुषकी प्रत्यंचा न चढ़ा सकने के कारण उसको छोड़दिया; कोई कोई उसे अपनी कमरतक खींच उस धनुषके झटके सेही गिरपड़े ॥२२॥ इसी प्रकार जरासंध, अंबष्ठ और शिशुपाल आदि दूसरेवीर और भीम, दुर्योधन व कर्णआदि ने धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर भी उस मत्स्यकी स्थितिन जानी ॥ २३ ॥ फिरअर्जुन ने जलमें मत्स्य की छायादेख और मत्स्यकी स्थिति भी जान सावधान होकर बाणचलाया; किंतु उसका छेदन न करसके; केवल स्पर्शही किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार समस्त क्षत्रियों के निवृत्त और अभिमानियों के मानभंग होनेपर भगवान ने धनुष ग्रहणकर सहज सेही प्रत्यंचाको चढ़ालिया और उसमें बाण कोरख जलमें केवल एकवार मत्स्यको देख अभिजित मुहूर्त्त में उसको बाणसे बेधकर गिरादिया ॥ २५–२६ ॥ स्वर्गमें दुंदुभी बजनेलगीं । पृथिवी परभी जय शब्दहो ने और दुंदुभी बजनेलगीं। देवता हर्षसे विह्वलहो फूल बरसा ने लगे ॥ २७ ॥ उस समय मैंने नवीन रेशमी वस्त्रोंको पहिर, स्वर्णसे उज्ज्वल रत्नोंकी माला धारणकर मधुर नूपुरकी ध्वनि करते २ सभामें प्रवेश किया । मेरे जूड़ामें फूल और मुख में लज्जायुक्त हास्य शोभा पारहाथा, कपोल कुंडलों की कांति से अलंकृत होरहे थे। मैंने मुखको उठाय, स्निग्ध हास्ययुक्त कटाक्ष विक्षेपसे चारों ओर के राजाओंको धीरे २ देखते २ श्रीकृष्णजी के गलेमें बरमाला डाली । मेराचित्त उन्हीं में लगा हुआ था ॥ २८–२९ ॥ उससमय मृदङ्ग, पटह शंख, भेरी और ढक्काआदि बाजे बजनेलगे, नचैये और गवैये नाचने गाने लगे ॥ ३० ॥ हे याज्ञसेनि ! मैंने इस प्रकार भगवान का बरणाकिया, सब राजा कामसे कातरहो डाहसे इसका सहन न करसके ॥ ३१ ॥ चतुर्भुज भगवान उसी समय रत्नरूप चार घोड़ोंवाले रथमें मुझे बैठाय कवच धारणकर धनुष हाथमें ले युद्धको तइयार हुए ॥ ३२ ॥ हे राज्ञि ! दारुक सुवर्ण की सामग्री वाले रथको चलाता था । मृगोंके बीचमेंसे हो सिंहकी समान हरिने देखनेवाले राजाओं के बीचमें होकर गमन किया ॥ ३३ ॥ उन सब राजाओं ने उनका पीछा किया । जैसे

साग्रामसिंहायथाहरिम् ॥३४॥ तेशार्ङ्गच्युतबाणौघैःकृत्तबाह्वंघ्रिकन्धराः । निपेतुःप्रधनेकेचिदेकेसंत्यज्ययदुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततःपुरींयदुपतिरत्यलंकृतांरविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् । कुशस्थलींदिविभुविचापि संस्तुतांसमाविशत्तरणिरिवस्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पितामेपूजयामाससुहृत्संबन्धिबान्धवान् । महार्हवासोलङ्कारैःशय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥ दासीभिःसर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः । आयुधानिमहार्हाणिददौपूर्णस्यभक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्यतस्येमावयंवैगृहदासिकाः । सर्वसङ्गनिवृत्त्याऽद्धातपसाचबभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्यऊचुः । भौमंनिहत्यसगणंयुधितेनरुद्धाज्ञात्वाऽथनःक्षितिजयेजितराजकन्याः । निर्मुच्यसंसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीःपादाम्बुजंपरिणिनाययआप्तकामः ॥४०॥ नवयंसाध्विसाम्राज्यं स्वाराज्यंभौज्यमप्युत । वैराज्यंपारमेष्ठ्यंचआनन्त्यंवाहरेःपदम् ॥ ४१ ॥ कामयामहएतस्यश्रीमत्पादरजःश्रियः । कुचकुङ्कुम गन्धाढ्यंमूर्ध्नावोढुंगदाभृतः ॥४२॥ व्रजस्त्रियोयद्वाञ्छन्तिपुलिन्द्यस्तृणवीरुधः । गावश्चारयतोगोपाःपादस्पर्शंमहात्मनः ॥ ४३ ॥

इतिश्रीम० म० द० उ० त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वापृथासुबलपुत्र्यथयाज्ञसेनीमाधव्यथक्षितिपपत्न्यउतस्वगोप्यः । कृष्णेऽखिलात्मनिहरौप्रणयानुबन्धंसर्वाविसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥१॥ इतिसंभाष्यमाणासुस्त्रीभिः स्त्रीषुनृभिर्नृषु । आययुमुनयस्तत्रकृष्णरामादि

कुत्ते सिंहके रोकने की चेष्टाकरते हं उसी प्रकार कोई २ किसी के आगेहो श्रीकृष्णजीको मार्गमें रोकने के निमित्त धनुष ले युद्धके निमित्त खड़े होगये ॥ ३४ ॥ वे भगवान के धनुष से छूटेहुए बाणों से छिन्नभुज, छिन्नपांव और छिन्न शरीरहो युद्धमेंगिरे और कुछेकतो युद्ध छोड़कर भगगये ॥ ३५ ॥ अनंतर भगवान ने स्वर्ग और मर्त्यलोक में प्रशंसा योग्य सुंदर सजीहुई अपनी नगरी द्वारकामें सूर्यके अस्ताचलमें प्रवेश करनेकी समान प्रवेश किया; वह ध्वजा, पताका और तोरणों से अत्यंत सजीहुई थी ॥ ३६ ॥ मेरे पिताने महामूल्य के वस्त्र, अलंकार, शय्या, आसन और पूजाकी सामाग्रियों से सुहृद, सम्बंधी और बांधवोंकी पूजाकी ॥ ३७ ॥ यद्यपि भगवान सर्वविषयों से परिपूर्ण हैं तौभी पिताने उनको भक्ति पूर्वक दास दासी, सम्पत्ति, सेना, हाथी और घोड़ो समेत महामूल्य के अस्त्र और शस्त्र आदि दियेथे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार से मैं सबसंगों से रहितहो स्वधर्म प्रतिपालन द्वारा उन आत्मा रामकी साक्षात घरकी दासीहुई हूं ॥ ३९ ॥ स्त्रियों ने कहाकि दलबल समेत भौमको युद्धमें मार; उसके दिग्विजयमें जोराजा पराजित हुएथे उनकी कन्याओं को उसने रोकरक्खा है यह जान भगवानने उनका उद्धार किया और स्वयंपूर्ण काम होकर भी संसार नाशक चरण कमलोंकी अभिलाषिनी उन कन्याओं से विवाह किया ॥ ४० ॥ हे राज्ञि ! हम राज्य, इन्द्रत्व, अणिमादिक सिद्धियां, ब्रह्मपद, मोक्ष व हरिके पदकी भी प्रार्थना नहीं करतीं ॥ ४१ ॥ उन गदाधारी के लक्ष्मी के स्तनों की केसर से गंधयुक्त चरण रजको सर्वदा मस्तकमें धारण करने की इच्छा करती हैं ॥ ४२ ॥ वेजब नदीके तटपर गौओंको चराते तब ब्रज नारियें और गोप जिनकी इच्छा करते थे भगवान के उन्हीं चरणों के स्पर्शको हम चाहती हैं ॥ ४३ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ०सरलाभाषाटीकायांत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! कुंती, गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा—व राजाओं की स्त्रियें और श्रीकृष्णजी की भक्त गोपियें श्रीकृष्णजी की उन स्त्रियों के प्रेम की कथा सुन आंखों में आंसूभर अत्यंत बिस्मय करने लगीं ॥ १ ॥ हेराजन् ! स्त्रियें स्त्रियों से और राजा राजाओं से इसप्रकार कहतेथे कि उसी समय राम कृष्ण के दर्शन करने की इच्छा से महर्षि व्यास, नारद,

हक्षया ॥२॥ द्वैपायनोनारदश्चच्यवनोदेवलोऽसितः। विश्वामित्रःशतानन्दोभरद्वाजोऽथगौतमः ॥३॥ रामः सशिष्योभगवान्वसिष्ठोगालवोभृगुः। पुलस्त्यःकश्यपोऽत्रिश्चमार्कण्डेयोबृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्चब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः। अगस्त्योयाज्ञवल्क्यश्चवामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वासहसोत्थायप्रागासीनानृपादयः। पाण्डवाः कृष्णरामौचप्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥ तानानर्चुर्यथासर्वेसहरामोऽच्युतोऽर्चयत्। स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥ उवाचसुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः। सदसस्तस्यमहतोयतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहोवयंजन्मभृतोलब्धंकात्स्न्येनतत्फलम्। देवानामपिदुष्प्रापंयद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किंस्वल्पतपसांनृणामर्चायांदेवचक्षुषाम्। दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥ नह्यम्मयानितीर्थानिनदेवामृच्छिलामयाः। तेपुनन्त्युरुकालेनदर्शनादेवसाधवः ॥ ११ ॥ नाग्निर्नसूर्योनचचन्द्रतारकानभूर्जलंखंश्वसनोऽथवाङ्मनः। उपासिताभेदकृतोहरन्त्यघंविपश्चितोघ्नन्तिमुहूर्तसेवया। १२। यस्यात्मबुद्धिः कुणपेत्रिधातुकेस्वधीः कलत्रादिषुभौमइज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेनकर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः॥१३॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थंभगवतःकृष्णस्याकुण्ठमेधसः। वचोदुरन्वयंविप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः॥१४॥चिरंविमृश्यमुनयईश्वरस्येशितव्यताम्। जनसंग्रहइत्यूचुःस्मयन्तस्तंजगद्गुरुम्॥१५॥मुनयऊचुः॥यन्माययातत्त्वविदुत्तमावयंविमोहिताविश्वसृजामधीश्वराःयदीशितव्या

च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, राम, शिष्यों समेत भगवान् वशिष्ठ गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्माजी के पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव आदि ऋषि वहां पर आये ॥ २—५॥ पहिले से बैठे हुए राजा, पाण्डव व श्रीकृष्ण और राम ने उन समस्त विश्व के बन्दनीय ऋषियों को देख सहसा उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ सब विधिवत उनकी पूजा करने लगे। राम और कृष्णजी ने उन सबकी कुशल पूछ अर्घ्य, माला, धूप और चन्दन से उनकी पूजाकी ॥ ७ ॥ अनन्तर उन सब के सुख से बैठने पर धर्म की रक्षाके निमित्त देह धारण करनेवाले भगवान उनसे कहने और सब सभासद चुपचापहो सुनने लगे ॥ ८ ॥ भगवान ने कहा कि—अहो! आज हमाराजन्म सफल हुआ—आज हमने देवताओं के भी न मिलने योग्य योगेश्वरोंके दर्शनकर जीवन का फल पाया ॥ ९॥ अल्प तपस्यावाले मनुष्य प्रतिमा कोही देवता स्वरूप से देखते हैं योगेश्वरों के दर्शन, स्पर्शन उनसे बार्तालाप, प्रणाम और उनके चरणों की पूजाकरना क्या उन मनुष्यों को प्राप्त होसकता है ॥ १० ॥ जलमय स्थान होनेसेही तीर्थ नहीं होता, मिट्टी पत्थर के सब पदार्थही देवता नहीं होते; होने परभी वह मनुष्य को बहुत काल में पवित्र करते हैं; परंतु साधुओं के दर्शन करने से ही पवित्रता प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, पृथिवी, जल, आकाश, वायु, और बाक्य व मन भेद बुद्धि से उपासित होनेपर अज्ञान को नाश नहीं करसकते; किंतु क्षण मात्र की साधु सेवा से अज्ञान नाशहोजाता है ॥ १२ ॥ जिसकी बात पित्त कफ मय शरीर मेंही आत्मबुद्धि स्त्री आदि में आत्मीय बुद्धि, प्रतिमा आदिको देवता बुद्धि और जल आदिमें तीर्थ बुद्धि है परन्तु तत्ववेत्ता साधुओंको उसप्रकार नहीं जानता वह मनुष्य घास लादनेके गधेकी समान है ॥ १३ ॥ शुकदेवजीने कहा कि हे राजन्! वे ऋषि अकुंठित बुद्धिवाले भगवान श्रीकृष्ण जीकी ऐसीबातोंको सुन भ्रमित बुद्धिहो कुछ देरतक चुपचाप खड़े रहे। उन्होंने ईश्वरकी अनीश्वरता युक्त बातोंको सुन बिचार करके जाना कि लोककी मर्यादाके निमित्त इन्होंने इसप्रकार कहा है ॥ १४ । १५ ॥ तदनन्तर वे हँसकर भगवानसे कहनेलगे कि हम श्रेष्ठ तत्ववेत्ता और लोकपालों

यितगूढईहयाअहोविचित्रंभगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीहएतद्बहुधैकआत्मनासृज
त्यवत्यत्तिनबध्यतेयथा । भौमैर्हिभूमिर्बहुनामरूपिणीअहोविभूम्नश्चरितंविडम्बनम्
॥ १७ ॥ अथापिकालेस्वजनाभिगुप्तयेबिभर्षिसत्वंखलनिग्रहायच । स्वलीलयावे
दपथंसनातनंवर्णाश्रमात्मापुरुषः परोभवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्मतेहृदयंशुक्लंतपः स्वा
ध्यायसंयमैः । यत्रोपलब्धंसद्व्यक्तमव्यक्तंचततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद्ब्रह्मकुलंब्रह्म
ञ्छास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः । सभाजयसिसद्धामतद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य
नोजन्मसाफल्यंविद्यायास्तपसोदृशः । त्वयासंगम्यसद्गत्यायदन्तः श्रेयसांपरः
॥ २१ ॥ नमस्तस्मैभगवतेकृष्णायाकुण्ठमेधसे । स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्नेपरमा
त्मने ॥ २२ ॥ नयंविदन्त्यमीभूपाएकारामाश्चवृष्णयः । मायाजवनिकाच्छन्नमात्मा
नंकालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथाशयानः पुरुषआत्मानंगुणतत्त्वदृक् । नाममात्रेन्द्रिया
भातंनवेदरहितंपरम् ॥ २४ ॥ एवंत्वानाममात्रेषुविषयेष्विन्द्रियेहया । माययाविभ्र
मच्चित्तोनवेदस्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्यतेददृशिमांघ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं
हृदिकृतंसुविपक्वयोगैः । उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशाआपुर्भवद्गतिमथो
ऽनुगृहाणभक्तान् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्यदाशार्हंधृतराष्ट्रंयुधिष्ठिर
म् । राजर्षेस्वाश्रमान्गन्तुंमुनयोदधिरेमनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्यतानुपव्रज्यवसुदेवोम

के अधीश्वर होकरभी जिनकी मायासे मोहितहोरहे हैं वे आप मायाके स्वामी होकरभी मोहित मनुष्योंकी सदृश आचरण करते हैं । अहो ! आपकी लीला बड़ी अचिन्त्य है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार पृथिवी घटादिक पदार्थोंसे अनेक नाम और रूपवाली है उसीप्रकार आप अक्रिय और एक होकरभी इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकरतेहो । आप परिपूर्ण परमेश्वरहो आपका जन्मादि धारण करना केवल विडम्बना मात्रहै, । स्वजनों की रक्षा और दुष्टों के दमन करने के निमित्तही आप समय २ पर शुद्ध सत्वात्मक स्वरूप धारण करतेहो, ॥ १७—१८ ॥ आप वर्णा श्रमात्मा पुरुष भगवान अपने आचारोंसे बेदमार्गकाभी पालन करतेहो, । तपस्या स्वाध्याय और संयम द्वारा जिससे कार्य कारण और उससे परे सन्मात्र ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, ॥ १९ ॥ वही आप बेदमें कहेहुये ब्रह्म और विशुद्ध हृदयहो, । ब्रह्मन् ! इसहीकारण आप शास्त्रयोनि भी हो, । आप के श्रेष्ठ उपलब्धि स्थान ब्राह्मण आपकी पूजा करते रहते हैं अतएव आप ब्राह्मणों में अ-ग्रणी और ब्रह्मण्य देवहो ॥ २० ॥ आप सब मंगलों की खानहो इसहीकारण आज आपसे मि-लकर हमारा जन्म, विद्या, तपस्या और दृष्टि सफलहुई अपनीही योगमाया से जिसकी महिमा ढकीहै जो अकुठित बुद्धिवालेहैं, एकस्थानमें रहतेहुए, सब राजा और यदुवंशी जिनके मायारूप पर्देसे ढककर जिन कालरूपी ईश्वरको नहीं जानते उन परमात्मा भगवान श्रीकृष्णजी आपको नमस्कारहै ॥ २१—२२ ॥ जैसे स्वप्न देखता हुआ मनुष्य स्वप्नके देखेहुए विषयोंको यथार्थरूप से देखताहै और मनसे प्रकाशित नाम आदि रूपको आत्मा करके जानता है उसके अतिरिक्त अपने आदिरूप इत्यादिको नहीं जानता, हेब्रह्मन् ! वैसेही यह सब लोकमाया से भ्रमित चित्तहो स्मृति नाश होनेके कारण इन्द्रिय और मन द्वारा प्रकाश पातेहुए केवल आपके नामकोही जानते हैं किंतु स्वरूपको नहींजानते॥२३।२५॥आज हमने उन्हीं पापनाशक गंगा तीर्थके उत्पन्न करने वाले परिपक्व योगवाले योगियोंके चिंतनीय आपके चरणकमलका दर्शन किया,अतएव हमें भक्त जानकर अनुग्रह करो । बढ़ीहुई भक्तिसे जिनका इच्छारूप लिंग शरीर नाशहोगयाहै वही आपकी गति पाते हैं॥२६॥श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हेराजर्षे ! मुनियोंने इसप्रकार कह श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी आज्ञाले अपने २ आश्रमोंमें जानेकी इच्छाकी ॥ २७ ॥ उनको जानेपर उद्यत

हायशाः । प्रणम्यचोपसंगृह्यबभाषेदंसुयन्त्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमोवः सर्वदेवेभ्यऋषयः श्रोतुमर्हथ । कर्मणाकर्मनिर्हारोयथास्यान्नस्तदुच्यताम् ॥२९॥ नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदंविप्रावसुदेवोबुभुत्सया । कृष्णंमत्वाऽर्भकंयन्नः पृच्छतिश्रेयआत्मनः ॥ ३० ॥ संनिकर्षोऽत्रमर्त्यानामनादरणकारणम् । गाङ्गंहित्वाय थाऽन्याम्भस्तत्रत्योयातिशुद्धये ॥ ३१ ॥ यस्यानुभूतिः कालेनलयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै । स्वतोऽन्यस्माच्चगुणतोनकुतश्चनरिष्यति॥ ३२॥ तंक्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैर व्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् । प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्योमन्येतसूर्यमि वमेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयोराजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् । सर्वेषांशृण्व तां राज्ञांतथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एषसाधुनिरूपितः । यच्छ्रद्धयायजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरंमखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयंवै कविभिः शास्त्रच क्षुषा । दर्शितः सुगमोयोगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयंस्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः । यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येतपूरुषः ॥ ३७ ॥ वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् । आत्मलोकैषणांदेव कालेनविसृजेद्बुधः ॥ ग्रामेत्यक्तै षणाःसर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ३८ ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजोजातो देवर्षिपितृणांप्रभो यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतत् ॥ ३९ ॥ त्वंत्वद्यमुक्तोद्वाभ्यां वै ऋषि पित्रोर्महामते । यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निरृणोऽशरणोभव ॥ ४० ॥ वसुदेवभवान्नूनं

देख महायशस्वी वसुदेवजी उनके निकट जाय चरणों पर गिर विनीत भावसे कहनेलगे, २८ ॥ हेऋषियो ! सब देवताओं के निवासरूप आपको नमस्कारहै हेऋषियो आप सुनो कि जिस कर्मसे मेरे कर्मोका क्षयहोवे वह मुझसे कहिये ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा कि—हेविप्रो ! वसुदेव श्रीकृष्ण जी को पुत्र जान जो अपने कल्याणके निमित्त हमसे पूंछते हैं यह आश्चर्यकी बात नहीं है, ॥ ॥ ३० ॥ निकट रहनाही मनुष्य के निरादर का कारण है गंगाके तटपर रहनेवाले मनुष्य गंगाजल को छोड़कर शुद्धि के निमित्त दूसरे जलका सेवन करते हैं, ॥ ३१ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय द्वारा अथवा काल व स्वतः परतः वा गुणतः किसीप्रकारसे भी श्रीकृष्णजीके ज्ञान का विनाश नहीं है ॥ ३२ ॥ मनुष्य जैसे सूर्यको बादल राहु हिमसे ढकाहुआ जानते हैं उसही प्रकार मनुष्य अखण्ड ज्ञानवाले भगवानको क्लेश, कर्म कर्मों के परिपाक गुण प्रवाह और प्राणादि से ढका जानते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! अनन्तर मुनियों ने सुननेवाले सब राजाओं और रामकृष्ण के सामने वसुदेवजी से सम्बोधन करके कहा ॥ ३४ ॥ हे वसुदेव ! यह साधुओं ने निश्चय किया है कि कर्मोंही से कर्मों का क्षय होता रहता है श्रद्धा पूर्वक यज्ञकर सर्व यज्ञेश्वर भगवान विष्णुजीकी पूजा करनाही कर्म के बन्धनों से छूटनेका उपाय है ॥ ३५ ॥ पण्डित जनोंने शास्त्ररूप दृष्टिसे चित्तोपशम और मोक्षका रस्ता व क्रमशः अंतःकरणको शुद्धकरने वाला सुगम स्वधर्मभी यही दिखाया ॥ ३६ ॥ न्यायसे प्राप्त कियेहुए द्रव्यसे श्रद्धायुक्त भगवान की आराधना करनाही ब्राह्मण गृहस्थियोंको कल्याणदायक है ॥ ३७ ॥ हे वसुदेव ! ज्ञानीमनुष्य को यज्ञ और दानसे धनकी इच्छा, गृहादि भोगोंसे स्त्री पुत्रकी इच्छा और कालसे अपने स्वर्गादि लोककी इच्छाको छोड़ना चाहिये ॥ ३८ ॥ समस्त धीर मनुष्योंको वासना रहितहो ग्राम में बास कर फिर तपोवन में जाना चाहिये । द्विज देवऋण ऋषिऋण और पितृऋणसे ऋणीहोकर जन्म ग्रहण करते हैं, किंतु जो यज्ञ, वेदाध्ययन और पुत्रोत्पादनद्वारा उससे उऋण नहीं होते वे पतित होते हैं ॥ ३९ ॥ हे महामते ! आप तो दोऋणों से मुक्त होगयेहो अब यज्ञद्वारा देवऋणसे मुक्त हो गृह त्यागी हो ॥ ४० ॥ हे वसुदेव ! निश्चयही आपने परम शक्तिसे भगवान हरिकी पूजाकी

भक्त्यापरमयाहरिम् । जगतामीश्वरंप्राचः स्वयज्ञांपुत्रतांगतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुकउवाच । इतितद्वचनंश्रुत्वा वसुदेवोमहामनाः । तानृषीनृत्विजोवव्रेमूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ तएनमृषयोराजन्वृता धर्मेणधार्मिकम् । तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायांप्रवृत्तायां वृष्णयःपुष्करस्रजः । स्नाताःसुवाससोराजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्चमुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः । दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकादयः । ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः । जगुःसुकण्ठ्योगन्धर्व्यः संगीतंसहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः । पत्नीभिरष्टादशभिःसोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः । स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥ तस्यर्त्विजोमहाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्याविरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदारामश्चकृष्णश्च स्वैःस्वैर्बन्धुभिरन्वितौ । रेजतुःस्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञंविधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः । प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातंसदक्षिणाः । स्वलंकृतेभ्योविप्रेभ्यो गोभूकन्यामहाधनाः ॥ ॥५२॥पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वातेमहर्षयः । सस्नूरामह्रदे विप्रा यजमानपुरस्सराः ॥ ५३ ॥ स्नातोऽलंकारवासांसि बन्दिभ्योऽदात्तथास्त्रियः । ततःस्वलंकृतो वर्णान् श्वभ्योऽन्नेनपूजयत् ॥ ५४ ॥ बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा । विदर्भ

है; नहींतो यह दोनों जन किस प्रकार आपके यहां पुत्र रूपसे उत्पन्न होते ॥ ४१ ॥ शुकदेवजी ने कहा कि–मुनियों की इस बातको सुनकर उदार मनवाले बसुदेवजी ने उनको मस्तकसेप्रणाम कर उन्हें प्रसन्नकर ऋत्विज का काम करने को उनका बरण किया ॥ ४२ ॥ हेराजन् ! वेसब ऋषि धर्मानुसार बरेजाकर कुरुक्षेत्र में धर्मात्मा बसुदेवजी को उत्तम कल्पयुक्त यज्ञोंसे यजनकराने लगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! बसुदेवजी के यज्ञमें दीक्षित होनेपर यदुवंशी और राजा लोग स्नानकर कमलों की माला व सुंदर बस्त्रों को पहिर वहां आनेलगे ॥ ४४ ॥ उनकी स्त्रियेंभी कण्ठ में आभूषण धारणकर सुंदर बस्त्रों को पहिर हाथ में पूजाकी सामग्रीले आनंदपूर्वक यज्ञशाला में आईं । ॥४५॥ मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी, ढक्का और दुंदुभी आदि बाजे बजनेलगे; नट और नचैये नाचने, सूत मागध स्तुति करने और सुंदर कण्ठवाली गंधर्वियें स्वामियों समेत गाने में प्रवृत्त हुईं ॥ ४६ ॥ अनंतर ऋत्विजों ने अठारह स्त्रियों समेत वसुदेव का अंजन और उबटनआदि से ताराओं समेत चंद्रमाकी समान अभिषेक किया ॥ ४७ ॥ वह रेशमीवस्त्र, कंकण, हार, कुण्डल, नूपुर आदि अलंकारों से भलीप्रकार अलंकृत उनसब स्त्रियों समेत दीक्षित और सभासदों से घिर शोभा पानेलगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! उसयज्ञ में सभासदों समेत उनके ऋत्विक् पीत रेशमीवस्त्र धारणकर इंद्र के यज्ञके ऋत्विकों की समान शोभायमानहुए ॥ ४९ ॥ उसही समय प्राणियोंके ईश्वर राम और कृष्ण बंधुओं समेत संयुक्तहो अपनी स्त्री, पुत्र और विभूतियों के साथ शोभा देनेलगे ॥ ५० ॥ प्रत्येक यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादिक प्रकृति और विकृति रूप यज्ञों से द्रव्य, मंत्र और कर्मों से भगवान का यजनहोनेलगा ॥ ५१ ॥ अनंतर बसुदेव ने समय पर बेदानुसार भलीप्रकार से अलंकृत ब्राह्मणों की पूजाकर गो, भूमि, कन्या और बहुतसी द्रव्य दक्षिणा के साथ दान कीं ॥ ५२ ॥ उन महर्षियों ने पत्नीसमाज और अवभृथ कर्मों आदि को समाप्तकर मान समेत रामकुण्ड में स्नानकिया ॥ ५३ ॥ बसुदेव ने बंदियों को नाना अलंकार, बस्त्र और स्त्रियों ने दानकर अन्नद्वारा कुत्ते आदि सब जीवों को संतुष्ट किया ॥ ५४ ॥

कोसलकुरुन्काशिकेकयसृंजयान् ॥ ५५॥ सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् । श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तःप्रययुःक्रतुम् ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्रोऽनुजःपार्था भीष्मो द्रोणःपृथायमौ । नारदोभगवान्व्यासः सुहृत्संबन्धिबान्धवाः ॥ ५७ ॥ बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाऽऽक्लिन्नचेतसः । ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरेजनाः ॥५८॥ नन्दस्तुसह गोपालैर्बृहत्या पूजयाऽर्चितः । कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतःप्रीतमना नन्दमाहकरेस्पृशन् ॥ ६० ॥ वसुदेवउवाच । भ्रातरीशकृतःपाशो नृणांयः स्नेहसंज्ञितः तंदुस्त्यजमहंमन्ये शूराणामपियोगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः । मैत्र्यर्पिताऽफलावापि न निवर्तेतकर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्रागकल्पाच्चकुशलं भ्रातर्वोनाचरामहि । अधुनाश्रीमदान्धाक्षा नपश्यामःपुरःसतः ॥ ६३ ॥ मारा ज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्यमानद । स्वजनानुतबन्धून्वा नपश्यतिययाऽन्धदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुकउवाच । एवंसौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः॥ रुरोदतत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥ नन्दस्तुसख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ॥ अद्यश्वइति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥ ततःकामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः । परार्घ्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः । दत्तमादायपारिबर्हं यापितोयदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥ नन्दोगोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे । मनःक्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरांययुः ॥ ६९ ॥

फिर हाथी, अश्व, रथ आदि सामग्रियों से स्त्रियों समेत बंधुओं की व विदर्भ, कौशल, कुरुकाशी कैकय और संजय आदि की व सभासद, ऋत्विज, देवता, मनुष्य, भूत, पितृ, और चारणों की पूजाकी । वे श्रीकृष्णजी की आज्ञासे यज्ञकी प्रशंसा करते २ अपने २ घर गये ॥ ५५—५६ ॥ धृतराष्ट्र, विदुर, अर्जुन आदि, भीष्म, द्रोण, कुंती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान व्यास, सुहृद, सम्बंधी और सबबांधव यदुवंशियों से मिल सुहृदता के कारण अत्यंत दुःखितहृदयहो बिरह से कातरहो अपने २ देश को गये और दूसरे जनभी चलेगए ॥ ५७ । ५८ ॥ परंतु बंधुवत्सल श्री नंदजी गोपालों सहित श्रीकृष्ण, राम और उग्रसेन से बड़ी पूजापाय वहां वास करनेलगे ॥५९॥ बसुदेवजी अनायास से मनोरथ रूप महासागर से पारउतर बंधुओं से घिर आनंदित मनहो नंद जी का हाथपकड़कर कहने लगे कि—॥ ६० ॥ हे भ्राता ! ईश्वरका कियाहुआ स्नेह नामकपाश अत्यंतही दुस्त्यज है; वीरों के बल और योगियों के ज्ञानसे भी उसका छेदननहीं होसकता६१॥ तुम साधुओं के हम अकृतज्ञ हैं—आपने जो हमारे साथ इस मित्रता को स्थापित किया है; यह कभी निष्फल न होगी ॥ ६२ ॥ हेभ्राता ! पहिले असमर्थता के कारण हम आपका भला नहीं करसके; इस समयभी सौभाग्यता के मदसे नेत्ररहितहो सन्मुख स्थित आप सरीखे साधुओं को नहीं देखपाते ॥ ६३ ॥ हेमानद ! जिस राजलक्ष्मी से अंधदृष्टि होकर मनुष्य स्वजन और बंधुओं को नहीं देखता, कल्याण की इच्छावाले मनुष्यों को वह राजलक्ष्मी नहीं प्राप्तहोती ॥ ६४ ॥वसुदेव इसप्रकार मित्रताका स्मरणकर आनंद से शिथिल चित्तहो रोनेलगे॥६५॥ नंदजीभी यदुवंशियों से सन्मानितहो अपने मित्र और राम कृष्णकी प्रसन्नता के निमित्त प्रीतिपूर्वक " आजकल " करके तीन महीने वहां रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरांत महामूल्यके आभूषण, रेशमीबस्त्र व अनेक प्रकारकी सामग्रियों व इच्छितकामनाओं से परिपूर्ण नंदरायजी ब्रज व बांधओं को संगले ॥६७॥ बसुदेव, उग्रसेन, श्रीकृष्ण, उद्धव, और बलदेवजी आदिकी दीहुई पहिरावनी को ग्रहणकरयादवों की बड़ी सेना को साथले वहां से चले ॥ ६८ ॥ श्रीनन्द, गोपी और गोपों ने श्रीकृष्णजी के चरणकमलों में मन समर्पण कियाथा,इससमय उन्होंने पुनः [illegible] अतिकष्टसे

बन्धुषुप्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्यप्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतींपुनः ॥ ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् । यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्सन्दर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौप्राप्तौकृतपादाभिवन्दनौ । वसुदेवोऽभिनन्द्याहप्रीत्यासङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥ मुनीनांसवचः श्रुत्वापुत्रयोर्धामसूचकम् । तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्णकृष्णमहायोगिन्सङ्कर्षणसनातन । जानेवामस्ययत्साक्षात्प्रधानपुरुषौपरौ ॥ ३ ॥ यत्रयेनयतोयस्ययस्मैयद्यद्यथायदा । स्यादिदंभगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधंविश्वमात्मसृष्टमधोक्षज । आत्मनाऽनुप्रविश्यात्मन्प्राणोजीवोबिभर्ष्यज: ॥ ५ ॥ प्राणादीनांविश्वसृजांशक्तयोयाःपरस्यताः । पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैवचेष्टताम् ॥ ६ ॥ कान्तिस्तेजः प्रभासत्ताचन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् । यत्स्थैर्यंभूभृतांभूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतोभवान् ॥ ७ ॥ तर्पणंप्राणनमपांदेवत्वंताश्चतद्रसः । ओजः सहोबलंचेष्टागतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥ दिशांत्वमवकाशोऽसिदिशःखंस्फोटआश्रयः । नादोवर्णस्त्वमोङ्कारआकृतीनांपृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इन्द्रियंत्विन्द्रियाणांत्वंदेवाश्चतदनुग्रहः । अवबोधोभवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसिभूतादिरिन्द्रियाणांचतैजसः । वैकारिकोविकल्पानांप्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विहभावेषुतद

मथुराको गमन किया ॥ ६९ ॥ हेराजन् ! बंधुओं के चलेजाने व श्रीकृष्णजी को इष्टदेव मानने वाले यादवों ने बर्षा को निकट आया देख फिर द्वारका को गमन किया ॥ ७० ॥ वहां उन्होंने पहुंचकर मनुष्यों से तीर्थमें सुहृदों के दर्शन आदि और बसुदेव के यज्ञमहोत्सवका वर्णनकिया॥७१॥

इतिश्री मद्भा०महापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेमहाराज ! बसुदेवजी ने मुनियों के मुख से राम कृष्ण के प्रभाव का वृत्तांत सुनकर उन पर विश्वास कियाथा । एक दिन दोनों भाइयों ने उनके निकट आयकर चरणों की बंदनाकी बसुदेवजी ने उनका प्रीतिपूर्वक सत्कार करके कहा ॥ १ । २ ॥हेकृष्ण!हेमहा योगिन्कृष्ण ! हेसनातन सङ्कर्षण ! मैं तुम दोनों जनों को इस बिश्व का साक्षात कारणरूप प्रधान पुरुष और उनका भी ईश्वरमानताहूं॥३॥जिसमें, जिससे, जिसके कारण जिसपर जिसका जिस प्रकार से जो होताहै तुम उन सबके साक्षात् प्रधान पुरुषहो, ॥ ४ ॥ हेभगवान ! हेअधोक्षज ! हे आत्मन् ! आप जन्महीन होकर नानाप्रकारके बिश्वमें आत्माद्वारा प्रवेशकर क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति रूपहो उसका पोषण करतेहो ॥ ५ ॥ क्रियाशक्ति आदि जो शक्तियें बिश्वकी कारणहैं वे सब ऐश्वरिकहैं क्योंकि अन्य पदार्थ परतन्त्र व जड़हैं निश्चयही ईश्वरकी सत्तासे उनका कार्य होता रहता है, ॥ ६ ॥ तुमही चन्द्रमा की कांति अग्निका तेज सूर्यकी ज्योति नक्षत्रोंकी प्रभा, बिजली की चमक,पर्वतों की स्थिरता और पृथ्वी की गन्धहो ॥७॥ तुमही जलकी तृप्ति करनेकी शक्ति जिलानेकी शक्ति तुमही जल और जलके रसहो । हेईश्वर ! तुम बायुके इन्द्रियबल मनोबल और देहबलहो ॥ ८ ॥ तुम सब दिशाओंको अवकाश दिशाएं आकाश और उसके आश्रय शब्द तन्मात्र नारद, ओंकार, वर्ण और जिससे सब पदार्थों का नामकरण होताहै वह भी तुमहीहो । तुमही सब इन्द्रिय देवता और उनकी अनुष्ठान शक्तिहो तुमही बुद्धिकी निश्चयशक्ति और अंतःकरणकी अनुसंधान शक्तिहो ॥ ९--१० ॥ तुमही प्राणियोंके के कारण तामस अहंकार इंद्रियों के कारण राजस अहंकार देवताओंके कारण सात्विक अहंकार और जीवोंके संसारके कारण प्र-

सिद्वमनश्वरम् । यथाद्रव्यविकारेषुद्रव्यमात्रंनिरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वंरजस्तमइतिगुणास्तद्वृत्तयश्चाश्रयाः । त्वय्यद्धाब्रह्मणिपरेकल्पितायोगमायया ॥ १३ ॥ तस्मान्नसन्त्यमीभावायर्हित्वयिविकल्पिताः।त्वंचामीषुविकारेषुह्यन्यदाव्यावहारिकः १४॥ गुणप्रवाहएतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः । गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीहकर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छयानृतांप्राप्यसुकल्पामिहदुर्लभाम् । स्वार्थेप्रमत्तस्यवयोगतंत्वन्माययेश्वर ॥१६॥ असावहंममैवैतेदेहेचास्यान्वयादिषु । स्नेहपाशैर्निबध्नातिभगवान्सर्वमिदंजगत् ॥ १७ ॥युवांनतः सुतौसाक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ । भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौतथात्थह ॥ १८ ॥ तत्तेगतोऽस्म्यरणमद्यपदारविन्दमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो । एतावताऽलमलमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयिपरेयदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहेननुजगादभवानजोनौसंजज्ञइत्यनुयुगंनिजधर्मगुप्त्यै । नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासिकोवेदभूम्नउरुगायविभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच॥ आकर्ण्येत्थंपितुर्वाक्यंभगवान्सात्वतर्षभः । प्रत्याहप्रश्रयाऽऽनम्रः प्रहसञ्श्लक्ष्णयागिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचोवः समवतार्थंतातैतदुपमन्महे । यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्यतत्त्वग्रामउदाहृतः ॥ २२ ॥ अहंयूयमसावार्यइमेचद्वारकौकसः । सर्वेऽप्येवंयदुश्रेष्ठविमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्माह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्योनिर्गुणोगुणैः । आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषुभूतेषुबहुधेयते ॥ २४ ॥ खंवायुर्ज्योतिरापोभूस्त

त्कृतिहा॥ ११॥ जैसे नाशवान घट कुण्डलादि पदार्थोंमें मिट्टी और सुवर्ण आदि पदार्थ अविनाशी हैं इसीप्रकार ऊपर कहे सब पदार्थोंमें तुमही केवल अविनाशी नित्यपदार्थहो ॥ १२ ॥ सत्व, रज और तम और इनकी वृत्तियें अर्थात् महदादि परिणाम यह सब तुमपरब्रह्मकी योगमायासे कल्पित हुई हैं ॥ १३ ॥ अतएव यह सब भावविकार तुममें कुछ नहीं हैं । जब यह सब तुमसे कल्पितहैं तब तुमही इनके अनुगतहो, अन्यसमय में तुम निर्विकल्पहो ॥ १४ ॥ इस गुण प्रवाहसे भगवान प्रपंच हीनकी गति न जानकर देहाभिमान के कारण कियेहुए कर्मोंसे, जीव इससंसार में प्रवृत्त होताहै ॥ १५ ॥ हेईश्वर ! इच्छानुसार दुर्लभमनुष्य जन्म और अतिसुन्दर इन्द्रियों को पाय जो मनुष्य स्वार्थमें प्रमत्त होजाता है तुम्हारी मायासे ढककर उसकी आयु व्यर्थ चली जाती है ॥ १६ ॥ तुम इस समस्त जगतको देहसे अथवा देहके वंशादिसे 'मैं' और 'मेरा' इसप्रकार के स्नेह पाश से बांधते हो ॥ १७ ॥ तुम दोनों जन मेरे पुत्र नहीं हो तुम साक्षात् प्रकृति और पुरुष के ईश्वर हो, तुम पृथ्वी के भाररूप क्षत्रियोंके नाश करने के निमित्त अवतीर्ण हुए हो ॥ १८ ॥ हे आर्त्तबंधो ! शरणागतोंके संसार रूपी भयको दूर करने वाले आपके चरण कमलोंकी शरण आया हूं । इन्द्रियें तृष्णा द्वारा जिस मर्त्य शरीरको आत्मरूप से देखती हैं और आप परमेश्वरोंमें जो पुत्र बुद्धि हुई है इतनीही विषयलालसा बहुत है ॥ १९ ॥ तुम प्रति जन्ममें ही सूतिकागार में मुझे सम्बोधन करके कहते हो कि 'मैं अज' ईश्वर हूं अपने धर्मकी रक्षा करने के निमित्तही जन्मग्रहण किया है । आकाशकी समान तुम नाना शरीर धारण करके त्याग करते हो । हे उरुगाय ! हे सर्वगत ! तुम्हारी विभूति रूपी मायाको कौन जान सकता है ॥ २० ॥ शुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! भगवान ने पिता की इन बातों को सुनकर बिनयसे नम्रहो सुंदर बचनों से कहा ॥ २१ ॥ हेपिता ! हम आपके पुत्र हैं जो आपने हमारे बिषय में तत्वसमूहका निरूपण किया उसको मैं यथार्थ मानकर स्वीकार करताहूं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! आप, आर्य बलदेव, ये द्वारकाबासी और समस्त चराचर जगत को ब्रह्मरूपसेही बिचारना चाहियें । एक, स्वयं प्रकाशमान, नित्य, अनन्य और निर्गुण ब्रह्म आत्मसृष्ट गुणों से प्राणियों में नानाप्रकार से प्रतीत होता है । आकाश, बायु, तेज, जल और पृथिवी उपाधि अनुसार घटादिकपदार्थों में नाना

त्कृतेषुयथाशयम् । आविस्तिरोऽल्पभूयेकोनानात्वंयात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंभगवताराजन्वसुदेवउदाहृतः । श्रुत्वाविनष्टनानाधीस्तूष्णींप्रीतमनाअभूत् ॥ २६ ॥ अथतत्रकुरुश्रेष्ठदेवकीसर्वदेवता । श्रुत्वाऽऽनीतंगुरोः पुत्रमात्मजाभ्यांसुविस्मिता ॥ २७ ॥ कृष्णरामौसमाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् । स्मरन्ती कृपणंप्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच । राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर । वेदाहंवां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् । भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्यमे ॥३०॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवन्तिकिलविश्वात्मंस्तं त्वाऽद्याहं गतिंगता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणाकालचोदितौ । आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथामेकुरुतंकामं युवांयोगेश्वरेश्वरौ । भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥ ३३ ॥ ऋषि रुवाच । एवंसंचोदितोमात्रा रामः कृष्णश्चभारत । सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्विश्वात्मदैवं सुतरांतथात्मनः ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यःसमुत्थायननामसान्वयः ३५॥ तयोःसमानीयवरासनंमुदानिविष्टयोस्तत्रमहात्मनोस्तयोः । दधारपादाववनिज्यतज्जलंसवृन्दआब्रह्मपुनद्यदम्बुह ॥ ३६ ॥ समर्हयामाससतौविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः । ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेनच ॥ ३७ ॥ सइन्द्रसेनोभगवत्पदाम्बुजंबिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नयाधिया । उवाचहाऽऽनन्दजलाकुलेक्षणःप्रहृष्टरोमानृपगद्गदाक्षरम् ३८॥

प्रकार से प्रतीत होते हैं और उसी से आविर्भाव, तिरोभाव, अल्पता, बहुलता और विविधप्रकारता प्रतीत होती है इसीप्रकार आत्माको भी जानो ॥ २३—२५ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा–हेराजन् ! भगवान की ऐसी बातों को सुन वसुदेवजी की भेदबुद्धि नष्टहोगई; वह प्रसन्न चित्तहो चुपहोगए ॥ २६ ॥ हेकुरुश्रेष्ठ ! 'राम कृष्ण मरे गुरुपुत्र को लेआए हैं' इस वृत्तांतकोसुन देवकीको विस्मय हुआथा; ॥ २७ ॥ इस समय उसने कंससे मारेगये पुत्रों का स्मरण कर दुःखित और विकलहो आंसू बहाते २ राम कृष्णसे कहा ॥ २८ ॥ हे अप्रमेयात्मन् राम ! हे योगेश्वरोंकेईश्वर कृष्ण ! मैं जानतीहूं कि तुम दोनों जन लोकपालोंके ईश्वर और आदिपुरुषहो ॥ २९ ॥ हेआद्य ! काल के प्रभावसे सत्वगुण का नाश होनेपर शास्त्र की मर्यादा को उल्लंघनेवाले पृथ्वी के भारभूत राजाओं के मारने के निमित्तही तुम मेरे गर्भ में अवतीर्णहुएहो ॥ ३० ॥ हे विश्वात्मन् ! हेआद्य ! जिस के अंश के अंशरूप माया के गुणों के लेशसे जगतकी उत्पत्ती, स्थिति, संहार होता है उनआपके मैं शरण आईहूं ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वरेश्वर ! चिरकाल से मरेहुए पुत्र को लादेने के लिये गुरूने आज्ञा की तबतुमने पितृस्थान से गुरू को गुरुदक्षिणा लाकरदीथी । उसी प्रकार हमारीभी इच्छा पूर्ण करो ; कंससे मारेहुए पुत्रों को लादो, मैं उनके देखने की इच्छा करतीहूं ॥ ३२—३३ ॥ ऋषि ने कहा कि—हेभारत ! राम कृष्ण ने इसप्रकार माता से आज्ञा पाय योगमाया का अवलम्बनकर सुतल में प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ विश्व के विशेषकर अपने इष्ट देवता उन दोनों जनों को वहां पर आया देख उनके दर्शनों से प्रसन्नचित्तहो दैत्यराजबलिका चित्त अभिषिक्त होगया । उसने तत्कालही वंश समेत उठकर प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और आनन्द से उनको श्रेष्ठआसन लाकरदिया अनंतर वे दोनों महात्मा उसपर बैठे । दैत्यराज ने उनकेदोनों चरणों को धोय उस जलको सपरिवार मस्तकपर धारण किया ॥ ३६ ॥ और महाविभूति, महा मूल्य के वस्त्र और आभूषण, चंदन, माला, धूप, दीप, वित्त और आत्मसमर्पण से उनकीपूजा की ॥ ३७ ॥ हेराजन् ! उस बलि ने प्रेमसे विह्वलचित्तहो भगवान के चरण कमलों को हृदय में

बलिरुवाच ॥ नमोऽनन्तायबृहतेनमःकृष्णायवेधसे । सांख्ययोगवितानायब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनंवांहिभूतानांदुष्प्रापंचाथदुर्लभम् । रजस्तमःस्वभावानांयन्नःप्राप्तैयदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगन्धर्वाःसिद्धविद्याध्रचारणाः । यक्षरक्षःपिशाचाश्चभूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धात्वयिशास्त्रशरीरिणि । नित्यंनिबद्धवैरास्तेवयंचान्येचतादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्धद्धवैरेणभक्त्याकेचनकामतः । नतथासत्त्वसंरब्धाःसन्निकृष्टाःसुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमितिप्रायस्तवयोगेश्वरेश्वर । नविदन्त्यपियोगेशायोगमायांकुतोवयम् ॥ ४४ ॥ तन्नःप्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् । निष्क्रम्यविश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिःशान्तो यथैकउतसर्वसखैश्चरामि ॥ ४५॥ शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरुनः प्रभो । पुपान्यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६॥ श्रीभगवानुवाच । आसन्मरीचेःषट्पुत्रा ऊर्णायांप्रथमेऽन्तरं । देवाःकंजहसुर्वीक्ष्य सुतांयभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा । हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥ देवक्याउदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः सातांशोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥ इतएतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये । ततःशापाद्विनिर्मुक्ता लोकंयास्यन्तिविज्वराः ॥ ५०॥ स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतंगःक्षुद्रभृद्घृणी । षडिमेमत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्तिसद्गतिम् ॥ ५१ ॥

धारण किया । उसका शरीर रोमांचित होगया, और नेत्रों से आनंदाश्रु बहनेलगे ॥ ३८ ॥ उसने गद्गद वाक्यों से कहा कि-हेमहत् अनंत ! विधाताकृष्ण ! सांख्य और योगके विस्तृतकारण परमात्मा आप को नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हेभगवान.! आप दोनों पुरुषों के दर्शन प्राणियों को दुर्लभ और सुलभभीहैं; क्योंकि रज तम प्रकृतिवाले हमको आपके दर्शन यदृच्छा से हुएहैं ॥४०॥ अहो! दैत्य,दानव,गंधर्व,विद्याधर,चारण,यक्ष,राक्षस,पिशाच,भूत,प्रथम,नायक॥४१॥येसब साक्षात विशुद्ध, सत्व के धाम, शास्त्र शरीरी आप से शत्रुता रखते हैं; मैंभी उन्हीं के तुल्यहूं ॥ ४२ ॥ कोई २ दैत्य प्रचण्ड वैरभावसे और गोपियें काम के प्रभाव से जैसे आप को प्राप्त हुई हैं, शुद्ध सत्व देवता भी वैसे आपको नहीं प्राप्त होसकते॥४३॥हे योगेश्वरों के ईश्वर ! योग के जाननेवाले भी जब आपकी योगमाया के प्रभावको भली प्रकार से नहीं जानसकते.तब हम कहांरहे ॥४४॥ अतएव आप हमारे ऊपर प्रसन्नहो।आपके चणारविंद निष्काम मुनियों के परम आश्रय हैं, गृहादि दूसरे पदार्थ सबही अन्धकूप हैं । उस अन्धकूप से निकल, वृक्षके नीचे पड़हुए फलोंको खाय, शांतहो अकेले अथवा सब प्राणियों के मित्रवड़े मनुष्यों के साथ विचरण करूं ॥ ४५ ॥ हे सर्व प्राणियों के ईश्वर ! हमको शिक्षादो; हे प्रभो ! हमें निष्पापकरो; आपकी आज्ञाका आश्रयकर मनुष्य नाना प्रकार के दुःखों से छूटजाता है ॥ ४६ ॥ भगवान ने कहाकि-प्रथम स्वायम्भुव मन्वतरमें ऊर्णाके गर्भसे मरीचिके छहपुत्र उत्पन्न हुएथे। देव सदृश उन ऋषिपुत्रों ने ब्रह्माको अपनी पुत्रीपर मैथुनके निमित्त उद्युक्त हुआ देख उनका उपहास किया ॥४७॥ उसही पाप कर्मके कारण वे तत्कालही आसुरी योनिको प्राप्तहो हिरण्य कशिपु के वीर्य से उत्पन्न हुए । फिरवे योगमायासे देवकी के गर्भसे उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ राजन् ! वेही कंसके हाथसे मारेगये । देवी देवकी उनको अपनापुत्र जानकर शोक करती हैं । इस समय वे तुम्हारे निकट हैं ॥ ४९ ॥ माताके शोक दूर करने के निमित्त इस स्थान से उनको लियेजाता हूं तदनंतर वेशापमुक्त और पाप रहितहो देव लोकको जावेंगे ॥ ५० ॥ फिर स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृद और घृणिये छहों ऋषि-

इत्युक्त्वातान्समादायइन्द्रसेनेन पूजितौ । पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वाबालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी । परिष्वज्यांकमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनंप्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता । मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिःप्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतंपयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ तेनमस्कृत्यगोविन्दं देवकींपितरंबलम् । मिषतांसर्वभूतानां ययुर्धामदिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तंदृष्ट्वादेवकीदेवीमृतागमननिर्गमम् । मेनेसुविस्मिता मायां कृष्णस्यरचितांनृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुताति कृष्णस्य परमात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानिभारत ॥ ५८ ॥ सूतउवाच । यइदमनुशृणोतिश्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवतिकृतचित्तो यातितत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वदितुमिच्छामः स्वसारंरामकृष्णयोः । यथोपयेमेविजयो याममासीत्पितामही ॥ १॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायांपर्यटन्नवनींप्रभुः । गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयींसआत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनायरामस्तांदास्यतीतिनचापरे । तल्लिप्सुः सयतिर्भूत्वात्रिदण्डीद्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्रैववार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः । पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णंरामेणाऽजानताचसः ॥ ४ ॥ एकदागृहमानीयआतिथ्येननिमन्त्र्यतम् । श्रद्धयोपहृतंभैक्ष्यंबलेनबुभुजेकिल ॥ ५ ॥

कुमार मेरीकृपा से मोक्षको पावेंगे ॥ ५१ ॥ यह कह श्रीकृष्णजी उनको ले और बलिसे पूजितहो फिर द्वारका में आये। वहां पुत्रोंको माताके अर्पण किया ॥ ५२ ॥ उन बालकोंको देख पुत्र स्नेह से देवकी के स्तनों से दूध झरनेलगा । वह पुत्रोंसे आलिंगनकर उनको गोदमें ले वारंवार उनका मस्तक सूंघनेलगीं॥५३॥ विश्व की सृष्टिको प्रवृत्त करनेवाली भगवानकी मायासे मोहित पुत्रहो व स्पर्श के आनंद में प्रसन्नहो देवकीने उनको स्तनपान कराया ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णजी के पानकरने से जोशेष रहाथा उसअमृत दुग्धको पीकर और नारायण के अंगस्पर्श से उनको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ वे श्रीकृष्णजी, देवकी, पिता और बलदेवजीको प्रणामकर देखने वालोंके सामने ही आकाश मार्गसे देव लोकको चलेगये ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! मेरे पुत्रोंका आना और जाना देखकर देवकीको अत्यंत आश्चर्य हुआ और जानलिया कि यह सब भगवान की रचीहुई माया है ॥ ५७ ॥ हे भारत ! अनंत पराक्रम वाले श्रीकृष्णजी के ऐसे अनेकों पराक्रम के कार्य हैं ॥५८॥ सूतने कहाकि–पूजनीय व्यासजी के पुत्र से वर्णित जगत के पाप नाशक और भक्तों के कानों के आभूषण रूप अमृत कीर्त्ति श्रीकृष्णजी के इस अद्भुत कार्यको एकाग्र चित्तहो सुने व सुनावे वह भगवान में चित्तलगाय उनके मंगलमय धाम में जासकता है ॥ ५९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांपंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

राजाने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! जो मेरी दादी थी उस रामकृष्णकी बहिन सुभद्रासे जैसे अर्जुनने विवाह किया उसके सुनने की मेरी इच्छा है ॥१॥ शुकदेवजी ने कहा कि–हे राजन् ! अर्जुनने तीर्थ यात्राके समय पृथिवी पर भ्रमण करते २ प्रभास में जाकर सुना कि अपने मामाकी पुत्रीको बलरामजी दुर्योधनको देंगे । अर्जुन उस कन्या के लेने की इच्छा से त्रिदंडी सन्यासीका रूप धर द्वारका में आये ॥ २–३ ॥ पुरबासी और बलदेवजी भी उनकोन पहिचान सके । अर्जुन उनसे पूजित हो कन्या पानेकी इच्छा से बर्षा के चार महीने वहां रहे ॥ ४ ॥ एक दिन बलदेवजी ने उनका निमंत्रण कर घरलाय श्रद्धा पूर्वक उनको भोजन कराया ॥ ५ ॥

सोऽपश्यत्तत्रमहतींकन्यांवीरमनोहराम् । प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यांभावक्षुब्धंमनोदधे ॥ ६ ॥ सापितंचकमेवीक्ष्यनारीणांहृदयङ्गमम् । हसन्तीव्रीडितापाङ्गीतन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तांपरंसमनुध्यायन्नन्तरंप्रेप्सुरर्जुनः । नलेभेशंभ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थांदुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्यचमहारथः ॥ ९ ॥ रथस्थोधनुरादाय शूरांश्चाऽऽरुन्धतोभटान् । विद्राव्य क्रोशतांस्वानां स्वभागंमृगराडिव ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वाक्षुभितोरामः पर्वणीवमहार्णवः । गृहीतपादःकृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदाबलः । महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेवइतिश्रुतः । कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तःकविरलम्पटः ॥१३॥ सउवासविदेहेषु मिथिलायांगृहाश्रमी । अनीहयागताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत । नाधिकंतावतातुष्टः क्रियाश्चक्रेयथोचिताः ॥ १५ ॥ तथातद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्वइतिश्रुतः । मैथिलोनिरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोःप्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतंरथम् । आरुह्यसाकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥१७॥ नारदोवामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः । अहंबृहस्पतिःकण्वो मैत्रेयच्यवनादयः ॥ १८ ॥ तत्रतत्रतमायान्तं पौराजानपदानृप । उपतस्थुःसार्घहस्ता ग्रहैःसूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकु-

उसी समय धीरपुरुषोंके मनके हरने वाली सुंदर मुख वाली सुभद्रा उनकी दृष्टिगोचर हुई उनके नेत्र आनंद से प्रफुल्लित होगये और रतिकी कामनासे क्षुभित हुआ मन उससें लग गया ॥ ६ ॥ वह कन्याकी स्त्रियों के मनको मोहने वाले अर्जुन को चांह मन २ में हंसने और लज्जित भावसे तिरछा निहारनेलगी तथा उन्हींमें मन और हृदयको लगारक्खा ॥७॥ सुभद्राकी रात दिन चिंता कर कामसे अर्जुनका चित्त क्षीणहोनेलगा ; अतएव वह सुखी न रह सुभद्राके हरनेका अवसर ढूंढनलगे ॥ ८ ॥ इतनेमें एकदिन सुभद्रा पिता, माता और श्रीकृष्णजीकी आज्ञापाय देवदर्शनके निमित्त रथपर बैठ दुर्गसे बाहर निकली, अर्जुनने धनुषले रक्षक बीर सैनिकोंका दमनकर शृगालों के बीचसे भागलेनेवाले सिंहकी समान कोलाहल करतेहुए सम्बन्धियोंके बीचमेंसे उसका हरण किया ॥ ९ । १० ॥ राम यह वृत्तान्त सुनकर पूनोंके दिनके महासागरकी समान क्षुभितहुए । परन्तु श्रीकृष्णजी व दूसरे बंधुओंके पैरोंपर पड़नेसे शान्तहोगये ॥ ११ ॥ बलदेवजीने आनन्दित हो दूलह, दुलहनको महामूल्य की सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े और दासदासी दहेजमें भेजे ॥१२॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—महाराज ! श्रुतदेव नामक एक विख्यात श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीकृष्णजी का अनन्य भक्त था । श्रीकृष्ण जी की ऐकांतिकी भक्तिसे उसके सब अभिप्राय पूर्ण होते थे वह शांत, पण्डित और लोभ रहितथा ॥ १३ ॥ वह मिथिला पुरीमें रहता था दैवेच्छा से जोउसको प्राप्तहोता श्रुतदेव उसीसे अपने कार्यका निर्वाह करता ॥ १४ ॥ जिससे उसका कार्य पूराहोजावे उतना उसके निकट उपस्थित होजाता अधिक न प्राप्तहोता परन्तु वह उसीसे संतुष्ट रहकरअपना काम करलेता ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मैथिल वंशमें उत्पन्न हुआ निरहंकारी, बहुलाश्व उस उसय वहांका राजा था । श्रुत देवकी समान वह भी श्रीकृष्णजीका अत्यंत भक्तथा ॥ १६॥ उन दोनों जनोंके ऊपर प्रसन्नहो प्रभुभगवान दारुक के लायेहुए रथपर बैठ मुनियों समेत विदेह देशको चले ॥ १७ ॥ नारद, बामदेव, अत्रि, वेदव्यासजी, परशुरामजी असित, अरुणि, बृहस्पति, कंठ, मैत्रेय और च्यवन आदि मुनि और हम उनके संगथे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णजी जिस २ देशमें जानेलगे उस २ देशके पुरबासी और नगर बासी हाथ में अर्घ्य लेले यहां सगत उदय हुए सूर्य

रुजांगलकङ्कमत्स्यपांचालकुन्तिमधुकेकयकोसलार्णाः। अन्येच तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृपपपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यःस्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशंच यच्छन्। शृण्वन्दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नंगीतंसुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥ तेऽच्युतंप्राप्तमाकर्ण्य पौराजानपदान्नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वातउत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः। कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथामुनीन् ॥ २३ ॥ स्वानुग्रहायसंप्राप्तं मन्वानौतंजगद्गुरुम्। मैथिलःश्रुतदेवश्च पादयोःपेततुःप्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमन्त्रयेतांदाशार्हमातिथ्येन सहद्विजैः। मैथिलःश्रुतदेवश्च युगपत्संहतांजली ॥२५॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोःप्रियचिकीर्षया। उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ ॥ २६ ॥ श्रोतुमप्यसतां दूरांजनकः स्वगृहागतान्। आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः। नत्वातदंघ्रीन्प्रक्षाल्य तदपोलोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुम्बोवहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्रईश्वरान्। गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचामधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच॥ भवान्हिसर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो। अथनस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतांदर्शनंगतः ॥३१॥ स्व

की समान उनके सन्मुख आनेलगे ॥ १९ ॥ हे नरपाल ! आनर्त्त, मरू, कुरु, जाङ्गल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कोशल और अर्णदेशके निवासी और दूसरे भी स्त्री पुरुष उदार हास्य और सुंदर दृष्टिसे भगवान के मुख कमल का नेत्रों से पानकरते थे ॥ २० ॥ इन त्रिलोकी गुरुको देखकर जिनकी अंधदृष्टि नष्टहोगई है उन नरनारियोंको कृष्णजी अभय और तत्वज्ञान देते, देवता और मनुष्योंसे अशुभ नाशक दिशाओंमें व्याप्त अपने यशको सुनते २ विदेह नगरमें पंहुचे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उस समय पुरवासी और ग्रामवासी भगवानका आया सुनकर आनंद से पूजाकी सामग्री हाथ में ले उनकी पूजाकरने के निमित्त आगबढ़े ॥ २२ ॥ उन पवित्र यशवाले भगवान का दर्शन कर उनका मुख और अंतःकरण प्रफुल्लित होउठा, उन्हों ने उनको और पहिले जिनको सुनाथा उन सब ऋषियों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ २३ ॥ अनुग्रह करने के निमित्त जगद्गुरु आये हैं—यहजान मैथिलराज और श्रुतदेव भगवान के चरणों में गिरे ॥ २४ ॥ और एकही साथ हाथ जोड़ अतिथि होने के निमित्त ब्राह्मणों समेत श्रीकृष्ण जी का निमंत्रण किया और बहुलाश्व और श्रुतदेव ने हाथ जोड़ ब्राह्मणों के साथ भगवानका सत्कार किया ॥ २५ ॥ भगवान उसे स्वीकारकर दोनों जनों के प्रिय करने के निमित्त ब्राह्मणों के साथ दोरूप धारणकर दोनों के घर एकही समय में गये यह बात किसी ने नजानी ॥ २६ ॥ अनंतर बहुलाश्व ने श्रमित और दूर से आयेहुए उनसब को श्रेष्ठआसनलाकर दिया ॥२७॥ राजा ने सुखपूर्वक विराजमान उन मुनियों को नमस्कारकर उन के चरण धोये और उस लोकपावन जलको कुटुम्बियों समेत मस्तकपर धारणकर गंध, माल्य, वस्त्र, भूषण, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ और बैल देकर उनकी पूजाकी। बढ़ीहुई भक्तिसे राजा का हृदय आनंदित होगया और आंखों में आंसू भरआये ॥ २८—२९ ॥ अनंतर उनको अन्न, जल और तांबूलादि से तृप्तकर जनकराजने भगवान के दोनों चरणों को छाती में लगाय प्रीति से प्रफुल्लितमनहो मधुर २ वाक्यों से धीरे २ कहा ॥ ३० ॥ हे विभो! स्वयं प्रकाशमान आपही सब प्राणियों को चेतन देनेवाले औरप्रकाशक हो; इसही कारण आपके चरणकमल के स्मरण करनेवाले मुझ को आपने दर्शन दिया ॥ ३१ ॥

वचस्तद्दृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरोभवान् । यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तःश्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥ कोनुत्वच्चरणाम्भोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् । निष्किंचनानांशान्तानां मुनीनांयस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्ययदोर्वंशे नृणांसंसरतामिह । यशोवितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यंभगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ नारायणायऋषये सुशान्तंतपईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान् नोनिवसद्द्विजैः । समेतः पादरजसापुनीहीदंनिमेः कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामन्त्रितोराज्ञा भगवाँल्लोकभावनः । उवासकुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवोऽच्युतंप्राप्तं स्वगृहाञ्जनकोयथा । नत्वामुनीन्सुसंहृष्टोधुन्वन्वासोननर्तह ॥ ३८ ॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्यसः । स्वागतेनाभिनन्द्यांघ्रीन्सभार्योऽवनिजेमुदा ॥ ३९ ॥ तदम्भसामहाभागआत्मानंसगृहान्वयम् । स्नापयाञ्चक्रउद्धर्षोलब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृताम्भसामृदासुरभ्यातुलसीकुशाम्बुजैः । आराधयामास यथोपपन्नयासपर्ययासत्त्वविवर्धनान्धसा ॥४१॥ सतर्कयामासकुतोममान्वभूद्गृहान्धकूपेपतितस्यसङ्गमः । यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णनचास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्यान्छ्रुतदेवउपस्थितः । सभार्यस्वजनापत्यउवाचांघ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्यनोदर्शनंप्राप्तः परंपरमपूरुषः । यर्हीदंशक्तिभिः सृष्ट्वाप्रविष्टोह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथाशयानः पुरुषोमनसैवात्ममयया । सृष्ट्वालोकंपरंस्वाप्न

आपका जोकथन है कि 'एकांत भक्तकी अपेक्षा अनंत, लक्ष्मी और ब्रह्माभी मुझेप्रिय नहीं है' उसही वाक्य के सत्य करने के निमित्त आपमेरे दृष्टिगोचर हुएहो ॥ ३२ ॥ 'आप निष्किंचन शांत और सबके आत्माहो' यह जानकर कौन मनुष्य आपके चरण कमलको छोड़ सकता है ? आप इस पृथ्वी पर संसारी मनुष्यों के बीच यदुवंशियों में अवतीर्णहो संसार की शांतिके निमित्त त्रैलोक्यमें पाप नाशक यशका विस्तार करतेहो ॥ ३३—३४ ॥ आप अकुंठित बुद्धिवाले, शांत, तपस्यावलम्बी, नारायणऋषि भगवान् श्रीकृष्णहो ; आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे भूमन् ! इस समय ब्राह्मणों समेत कुछदिन हमारे घरमें बासकर अपनी चरण रजसे इस निमिवंशको पवित्रकरो ॥ ३६ ॥ लोकभावन भगवान हरि राजासे इस प्रकार प्रार्थितहो मिथिला निवासियोंका कल्याण करते हुए कुछदिन वहींरहे ॥ ३७ ॥ राजन् ! जनककी समानश्रुत देवनेभी अपने घरमें भगवान और मुनियोंको देख उनको प्रणाम किया और आनंदितहो वस्त्रोंको घुमाय २ नाचनेलगा ॥ ३८ ॥ उसने कुशासन, पीढ़े और चटाइयां लाय उनसबको बिठाया और उनकी कुशल पूछ आदर से सत्कारकर स्त्री समेत उनके चरण धोये ॥ ३९ ॥ महाभाग विप्रने सब मनोरथों को प्राप्तहो प्रसन्न चित्त से उस जलद्वारा घर और बंश समेत अपने को स्नानकराया ॥ ४० ॥ फिर फल पूजाके पदार्थ, खशसे सुवासित सुंदर अमृत की समान जल, सुगंधित मिट्टी, तुलशी, कुश, कमल और सत्वगुण के बढ़ानेवाले अन्न आदि बनसकनेवाली पूजासे उनकी पूजाकर ॥ ४१ ॥ बिचारने लगा कि—अहो ! मैं घर रूप अंधेकुए में गिराहुआहूं मुझको इन श्रीकृष्णजी का दर्शन मुनियों समेत कि जिनकी चरणरज सब तीर्थों की आस्पद व जो आत्मा के निवासरूप हैं किस पुण्यसे प्राप्तहुआ ? ॥ ४२ ॥ हेमहाराज ! अनंतर श्रीकृष्णजी के सुखसे बैठनेपर श्रुतदेव स्त्री, स्वजन और पुत्रोंसमेत उनके निकटवर्त्तीहो चरण चापते २ कहने लगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेवने कहा कि—हे परमपुरुष ! आप जोमुझको आजही प्राप्तहुएहो ऐसा नहीं है जब शक्तियों से इस विश्वको उत्पन्नकर ... आत्मसत्तासे इसके भीतर प्रवेश किया तभीसे प्राप्त हुएहो ॥ ४४ ॥

मनुविश्याधभासते ॥ ४५ ॥ शृण्वतांगदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवन्दताम्। नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥ हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम्। आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदांपरात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे । सकारणाकारणलिंगमीयुषे स्वमाययाऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ सत्वंशाधिस्वभृत्यान्नः किं देवकरवामहे। एतदन्तोनृणां क्लेशो यद्भवानक्षगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुकउवाच॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा। गृहीत्वापाणिनापाणिं प्रहसंस्तमुवाचह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच। ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थायसंप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन्। संचरन्तिमयालोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाःक्षेत्राणितीर्थानिदर्शनस्पर्शनार्चनैः। शनैःपुनन्तिकालेनतदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणोजन्मनाश्रेयान्सर्वेषांप्राणिनामिह। तपसाविद्ययातुष्ट्याकिमुमत्कलयायुतः ॥ ५३ ॥ नब्राह्मणान्मेदयितंरूपमेतच्चतुर्भुजम्। सर्ववेदमयोविप्रःसर्वदेवमयोह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञाअविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः। गुरुंमांविप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥ चराचरमिदंविश्वंभावायेचास्यहेतवः। मद्रूपाणीतिचेतस्याधत्तेविप्रोमदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय। एवंचेदर्चितोऽस्म्यद्धानान्यथाभूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सइत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टःसहकृष्णान्द्विजोत्तमान्। आराध्यैकात्मभा-

जैसे सोताहुआ मनुष्य अपनी अविद्यासे स्वप्न में मनहीसे दूसरे देहको रचकर उसमें प्रवेशहो ऐसा जानपड़ताहै वैसेही आपभी इस विश्वको सृजकर मानो उसमें प्रवेश हुएहो ऐसे प्रतीत होतेहो, ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य निरन्तर आपकेही गुण कर्मों को गाता व सुनताहै आपकी अर्चना और पूजा करताहै; आपकीही चरचा करता है आप उसके हृदय के भीतर प्रकाशित होतेरहते हो॥४६॥जिसमनुष्यका चित्त,कर्मसे विक्षिप्तहै आपहृदय में स्थित रहकरभी उससे दूर रहतेहो, और जो निरहंकार मनुष्य श्रवण कीर्तिनादिद्वारा अन्तःकरणकी पवित्रता प्राप्त कराते हैं आप उनके निकट रहतेहो ॥ ४७ ॥ आप अध्यात्म वेत्ताओंके परमात्मा; और आपही अनात्माहो;आपअपनी मायासे दृष्टि को संवरण और आवरण कररखते हैं अतएव सकारण और अकारण उपाधि को प्राप्तहुएहो आपको नमस्कार है ॥४८॥हे देव! मैं आपका दासहूं ; आप आज्ञा करो मैं आपका कौनसा कार्य करूं। जबतक आप दृष्टिगोचर नहीं होते तबतकही मनुष्य को क्लेश रहता है ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन्! भक्तों के दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रुतदेवकी इन बातों को सुनकर उसकाहाथपकड़ हँसकर कहनेलगे कि–॥ ५० ॥ हेब्रह्मन्! यहसब मुनि तुम पर अनुग्रह करने के निमित्त उपस्थित हुएहैं यहसब चरणरजद्वारा लोकों को पवित्र करतेहुए मेरे साथ भ्रमण कररहे हैं ॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र, तीर्थ, येसब दर्शन, स्पर्शन और पूजनसे बहुत दिनों में पवित्र करते हैं, किंतु ब्राह्मण के चरण स्पर्श से बहुतही शीघ्र पवित्रता होती है ॥५२॥ ब्राह्मण इसलोक में जन्मद्वाराही सबप्राणियों में श्रेष्ठ हैं; उनमें से जो ब्राह्मण तपस्या, विद्या, तुष्टि और उपासनावाले हैं उनकी और क्याबातकहूं ? ॥ ५३ ॥ इस चतुर्भुज रूपकी अपेक्षा ब्राह्मणों की आराधना करनाही मुझे अत्यन्त प्रिय है। क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय और मैं सर्वदेवमयहूं ॥ ५४ ॥ अज्ञान मनुष्य इसप्रकार न जानकर गुरु, आत्मा और मुझरूप ब्राह्मण का तिरस्कारकरते हैं पूजाही में पूज्य दृष्टि रखने वाले इस दोष का आरोपण करतेहैं। चराचर जगत् और इसके कारण महदादि भावमें मेरी सर्वत्रही दृष्टि है। इसही कारण ब्राह्मण उनसबको मेरा रूप जान मुझ मनमें धारण करते हैं। अतएव हेब्रह्मन्! इनसब महर्षियों की श्रद्धासहित पूजाकरो । इनकी पूजा करने से साक्षातमैं पूजित होताहूं; और दूसरी प्रकार बहुत सम्पातिसे भी मेरी पूजाकरने

वेनमैथिलश्चापसद्गतिम् ॥ ५८ ॥ एवंस्वभक्तयोराजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् । उषित्वाऽऽदिश्यसन्मार्गंपुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

इतिश्रीभा० म० द० उ० षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

परीक्षिदुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्येनिर्गुणेगुणवृत्तयः । कथंचरन्तिश्रुतयःसाक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बुद्धीन्द्रियमनः प्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः । मात्रार्थंचभवार्थंचआत्मनेऽकल्पनायच ॥२॥ सैषाह्युपनिषद्ब्राह्मीपूर्वेषांपूर्वजैर्धृता । श्रद्धयाधारयेद्यस्तांक्षेमंगच्छेदकिञ्चनः ॥ ३ ॥ अत्रतेवर्णयिष्यामिगाथांनारायणान्विताम् । नारदस्यचसंवादमृषेर्नारायणस्यच ॥४॥ एकदानारदोलोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः । सनातनमृषिंद्रष्टुंययौनारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥ योवैभारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमायस्वस्तयेनृणाम् । धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥ तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः । परीतंप्रणतोऽपृच्छदिदमेवकुरूद्वह ॥ ७ ॥ तस्मैह्यवोचद्भगवानृषीणांशृण्वतामिदम् । योब्रह्मवादःपूर्वेषांजनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायंभुवब्रह्मसत्रंजनलोकेऽभवत्पुरा । तत्रस्थानांमानसानांमुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपंगतवतित्वयिद्रष्टुंतदीश्वरम् । ब्रह्मवादःसुसंवृत्तःश्रुतयोयत्रशेरते । तत्रहाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वंमांयमनुपृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः । अपिचक्रुःप्रवचनमेकंशुश्रूषवोऽपरे ॥

पर में पूजित नहीं होता ॥ ५६—५७ ॥ शुकदेवजी ने कहा कि–वह मैथिलब्राह्मण–भगवान श्री कृष्णजी की इस आज्ञाको पाय उनके साथ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की एकात्मभाव से पूजाकरसद्गति को प्राप्तहुआ ॥ ५८ ॥ हेराजन् ! वह भक्तवत्सल भगवान् दोनों भक्तों को श्रुति समूह के ब्रह्म परत्वरूप मुक्ति मार्ग का उपदेशकर द्वारका में आये ॥ ५९ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ०सरलाभाषाटीकायांषड्शीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

राजा परीक्षितने पूँछा कि–हे ब्रह्मन् ! जिसका भली भांति से निश्चय नहीं किया जासकता, जो निर्गुण और कार्य कारण से परे हैं; सगुण श्रुतिन उन अगुण परब्रह्मका स्वरूप किसप्रकार बर्णन किया है सो हमसे कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! नारायण ने मनुष्यों के अर्थ, धर्म, काम और मुक्ति के निमित्त बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणको रचा है ॥ २ ॥ "परब्रह्मपर" इस उपनिषद के वाक्य को पूर्वजों के पूर्वज आचार्यों ने भी धारण किया था । जो श्रद्धायुक्त इसको धारण करते हैं वे देहादि उपाधि में निवास कर परमानंद को प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३ ॥ इस विषय में तुमसे एक इतिहास का बर्णन करता हूं उस इतिहास को नारायण ने नारदजी से कहा है ॥ ४ ॥ एकसमय भगवत् प्रिय नारदजी सब लोकों में भ्रमण करते२सनातन ऋषि के दर्शन करने के निमित्त नारायणजी के आश्रम में आये ॥ ५ ॥ वे भारतवर्षीय मनुष्यों के कल्याण के निमित्त कल्प के आरंभ से धर्म ज्ञानयुक्त और शमसंयुक्त तपस्या करते हुए उस स्थान में कलाप ग्रामवासी ऋषियों से वेष्ठित हो निवास करते हैं देवर्षि ने उनको नमस्कार कर उनसे यह पूँछा ॥ ६ । ७ ॥ तब भगवान नारायणनेभी सबके सामने नारदजीसे वही ब्रह्मवाद का विषय कहा–कि जो पहिले जन लोकके निवासी सनकादिकोंके बीचमें हुआ था ॥ ८ ॥ भगवान्ने कहा कि–हे स्वयम्भू नंदन ! पहिले जनलोकमें वहांके ऊर्ध्व रेता ऋषियोंने ब्रह्मसत्र नामसे एक यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ उस समय तुम मेरेही विशेष अंश अनिरुद्ध मूर्त्तिके देखने के निमित्त श्वेत द्वीप में गये थे । इस समय तुमने जो मुझ से पूँछा है वहां ऋषियों में भी यही प्रश्न हुआ था ॥ १० ॥ सबही शास्त्र ज्ञान, तपस्या और स्वभावमें समान थे सबही शत्रु मित्रको समान जानते और उदासीन थे; तौभी–कौतुक से एक जनको कहने वाला कर और सब सुनने लगे ॥ ११ ॥

॥ ११ ॥ सनन्दन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीयशयानंसहशक्तिभिः । तदन्तेबोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयःपरम् ॥ १२॥ यथाशयानंसम्राजंबन्दिनस्तत्पराक्रमैः । प्रत्यूषेऽभ्येत्यसुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः ॥ जयजयजह्यजामजितदोषगृभीतगुणांत्वमसियदात्मनासमवरुद्धसमस्तभगः । अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधकतेक्वचिदजयाऽऽत्मनाचचरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥ बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतयायतउदयास्तमयौविकृतेर्मृदिवाऽविकृतात् । अत ऋषयोदधुस्त्वयिमनोवचनाचरितंकथमयथाभवन्तिभुविदत्तपदानिनृणाम् ॥१५॥ इतितवसूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्यतपांसिजहुः। किमुतपुनःस्वधामविधुताशयकालगुणाःपरमभजन्तियेपदमजस्रसुखानुभवम् ॥ ॥१६॥ दृतयइवश्वसन्त्यसुभृतोयदितेऽनुविधामहदहमादयोऽण्डमसृजन्यदनुग्रह-

उनमें से सनंदन ने कहा कि–अपने रचे हुए इसजगत को अपनी शक्तियोंसे अपने स्वरूपमें लय कर योगोंके कारण मानोनिद्रा लेते हो इसतरह ज्ञात होते सगुण ब्रह्मको सृष्टिके आरम्भमें उनके प्रगम निःस्वास से प्रकट हुई श्रुतियां उनके प्रतिपादक वाक्यों से जगाने लगीं ॥ १२ ॥ जैसे अनुजीवी बंदीजन प्रातःकालहीमें आयकर सोते हुए चक्रवर्त्ती राजाको सुंदर कीर्ति और पराक्रम का वर्णन करके जगाते हैं उसही प्रकार अपने उत्पन्न किये हुए इस विश्वको संहार कर अपनी शक्तियों समेत योग निद्रा से निद्रित ईश्वरको श्रुतियें प्रलयके अंत में पलयांत प्रतिपादक वाक्यों से इस भांति जगाने लगीं ॥ १३ ॥ श्रुतियोंने कहा कि–हे जय जय अजित अच्युत ! हे प्रभु ! स्थावर जंगमात्मक जीवोंकी अविद्याका नाशकरो क्योंकि उन सबके आपही स्वरूप, सब ऐश्वर्यों के अधिकारी हो और अविद्याभी प्राणियोंके मोह उत्पन्न करनेके निमित्तही गुणोंको ग्रहण करके स्थिति करती है; अतएव इस अज्ञान करनेवाली अविद्या को आपको नाशकरना चाहिए। हे प्रभो ! आप सर्वनियामक, सब प्राणियों की शक्तिके उत्पन्न करनेवालेहो आप के अतिरिक्तऔर कौन अविद्या को नाश करसकता है ? हे ठाकुर ! यहतत्व हमको (श्रुति) ज्ञात है । आपकी माया से मिलेहुए सृष्ट्यादि का लीनस्वरूप और सत्य ज्ञानानंद,अखण्ड, नित्यरूप वेदही प्रतिपादित है ॥ १४ ॥ इंद्र अग्नि प्राधान्य भी वेदसे प्रतिपादितहुए हैं किंतु वे सब वेद मंत्र इंद्रादिको भी आपनास्वरूप विचारते हैं । जैसे घड़े की उत्पत्ति, लयमिट्टीही से होती है और मिट्टीही घट की शेषावस्था है इसकारण घट मिट्टी से अतिरिक्त नहीं जानाजाता । इसही प्रकार अविकारी ब्रह्म से भी अपने सब (इंद्र अग्नि आदिभी) की उत्पत्ति व लय होती है और वही आप सब की शेषावस्था है; अतएव इंद्रादिभी आपसे अतिरिक्त नहीं हैं । इसही कारण वेदमंत्र वा ऋषि गण आपमेंही वा मानसकर्मों को स्थापन करते हैं । फल यहहै कि भूचर प्राणी पत्थर ईंट आदि जहां परही पैर रक्खाजावे वही पृथिवी है, जैसे यह सिद्धांत है; उसी प्रकार जो कोई कुछभी कहे वही आपका प्रतिपादक है ॥ १५ ॥ हे त्रिगुणेश्वर ! आपही परमार्थहो—यह विचारकर पण्डित जन सर्व लोकों के पापनाशक आप के कथामृतसागर में डुबकी मार पाप ताप से जब छूटजाते हैं तब हेपरम ! जो आत्मतत्त्वज्ञान से राग द्वेषादि अंतःकरण के धर्म और बुढ़पा जवानी आदि काल धर्म से छूटकर अखण्डानन्दानुभव स्वरूप आपके स्वरूप का भजन करते हैं उनके जो पाप ताप दूर होजावें उसका क्याकहना है ? ॥ १६ ॥ मनुष्य यदि आपके भक्त होवें तभी उन का जीवन सफल है; नहीं तो वे केवल वृथा श्वास लेतरहते है । क्योंकि महत्तत्त्व और अहङ्कारादि जिनकी अनुग्रह से इसदेह को उत्पन्न करते हैं, जो अन्न मयादि–पंच कोश के साथ मिल कर अन्न मयादि पंचकोशवत् प्रतीयमान होता है, जो अन्नमयादि पंचकोश का मूल है, जो

तः । पुरुषविधोऽन्वयोऽत्रचरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥ उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् । तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः । अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् । इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥ दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः । न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च । न बत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् । स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविष

स्थूल, सूक्ष्म इस पंचकोश से अतिरिक्त और उसके साक्षी स्वरूप हैं, जो इस पंचकोश की अन्तिम सीमा और सत्य है वह आपही हैं अतएव जो देह अन्तःकरणादि में ओत प्रोत भावसे स्थित हैं ऐसे आपका अभक्त होने से वे कामादि तुच्छ फलभी नहीं प्राप्तकरसकते ॥ १७ ॥ ऋषि संप्रदाय मार्ग में शार्करांक्षमण्डली मुनि पूरकस्थ ब्रह्मकी उपासना करते हैं; आरुणिसंप्रदाय बहुनाड़ीयुक्त हृदय में सूक्ष्म परमब्रह्मकी उपासना करते हैं । हेअनन्त ! आपकी प्राप्ति क्षेत्रज्योतिर्मय श्रेष्ठ सुषुम्नानाड़ी हृदयसे मस्तक को उठाती है; उस नाड़ी के ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने पर फिर संसार में नहीं गिरनाहोता ॥ १८ ॥ हेभगवन् ! आप अपने रचेहुए नाना देहादिकों के उपादान कारणहो इसकारण पूर्वसेही उन सबके साथ आपका सम्बन्ध है । अतएव आप के प्राकृत प्रवेश की सम्भावना न होने पर भी प्रविष्टवत् प्रतीयमान होतेहो, अग्निजैसे ईंधन के आकारानुसार विशेष २ रूप से प्रकाशपाता है तैसेही आपभी न्यूनाधिक भावसे प्रकाश पाते रहते हो । निर्मल बुद्धिवाले इस लोक तथा परलोक में कर्म फल रहित मनुष्य मिथ्याभूत इन देहादिकों में आपके स्वरूप को स्थितजान उसे सम, एकरस और सत्य जानते हैं ॥ १९ ॥ अपने कर्मों से पाई हुई वर्त्तमान इस मनुष्य देह में कार्य कारण के आवरण रहित पुरुषको पण्डितगण अखिलशक्तिधारी आपके अंश की समान जानते हैं । पृथिवीपर रहनेवाले पण्डितों को इसप्रकार मनुष्यतत्व को जान और विचारकर विश्वाससहित सब कर्मों के अर्पणस्थान संसार से निवृत्तहो आप के चरणों की सेवा करनी चाहिए ॥ २० ॥ हे ईश्वर ! आप दुर्ज्ञेयहो आत्मतत्व के प्रकाश करने के निमित्तही मनुष्यरूप से अवतार लेतेहो आपके पवित्र चरित्ररूप महामृतसागर में डुबकी मारकर जो श्रमरहितहुए हैं और आप के चरण कमलों के सेवन करनेवाले भक्तों का संग पाय जिनने घर छोड़दिया है वे मनुष्य कभी मुक्तिकीभी इच्छा नहीं करते ॥ २१ ॥ आपकी सेवायोग्य इस शरीर से आत्मा की समान, बंधुकी समान और प्रियजनों की समान आचरण करते हैं । परंतु आप अनुग्राहक, हितकारी, परम प्रिय आत्मा होकरभी देहादि उपासना में प्रमत्त मनुष्य आप के संग प्रीति नहीं करते । हाय हाय ! निंदित प्राणी इस देह से मिथ्या पदार्थों के सेवन में बद्धहोकर भी सदैव संसार चक्र में भ्रमण कियाकरते हैं ॥ २२ ॥ मुनिजन प्राण, मन और इन्द्रिय संयमन से दृढ़योग सहित जिस तत्वका ध्यान करते हैं; आपके स्मरण के प्रभाव से आपके शत्रुभी उसी तत्वको प्राप्तहुए हैं । सर्पराज के भोगकी समान भुजदंडसे काम देव में आसक्त चित्त परिच्छिन्न दृष्टियें और आपके चरण कमल सुधारस की प-

कधियोवयमपितेसमाःसमदृशोऽघ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥ कइहनुवेदबतावरजन्मलयोऽग्रसरंयतउदगादृषिर्यमनुदेवगणाउभये। तर्हिनसन्नचासदुभयंनचकालजवः किमपिनतत्रशास्त्रमवकृष्यशयीतयदा ॥ २४ ॥ जनिमसतःसतोमृतिमुतात्मनिये चभिदांविपणमृतंस्मरन्त्युपदिशन्तितआरुपितैः। त्रिगुणमयःपुमानितिभिदायदबोधकृतात्त्वयि न ततः परत्रसभवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिवमनस्त्रिवृत्त्वयिविभात्यसदामनुजात्सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः । नहिविकृतिंत्यजन्तिकनस्यतदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥ तवपरियेचरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततयातउत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्यशिरोनिर्ऋतेः। परिवयसेपशूनिवगिराविबुधानपितांस्त्वयिकृतसौहृदाः खलुपुनन्तिनयेविमुखाः ॥ २७ ॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तवबलिमुद्वहन्तिसमदन्त्यजयाऽनिमिषाः। वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिवविश्वसृजोविदधतियत्रये.त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥२८॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजोविहरउदीक्षयायदिपरस्यवि

रायण समदर्शी हम–ये दोनों आपके निकट समान हैं ॥ २३ ॥ अहो ! इस विश्वमें जिनके पीछे उत्पत्ति और नाश होता है उनमें से कौन मनुष्य सृष्टिके पूर्ववर्त्ती आपको जानसकताहै ? आदि ऋषि ब्रह्मा आपसे उत्पन्न हुए;आध्यात्मिक आधिदैविक दोनों प्रकार के देवता भी ब्रह्माके उपरांत आपसे उत्पन्न हुए। आप जब प्रलय कालमें त्रिलोकीका नाशकर शयन करतेहो तब स्थूल सूक्ष्म नहीं रहता, उस समय स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीर, काल कृत बिषमता, इन्द्रियादि और शास्त्र भी नहीं रहता ॥ २४ ॥ जोअसत पदार्थ कोही जगत् की उत्पत्ति कहते हैं, जोब्रह्मत्व की उत्पत्ति का कीर्त्तन करते हैं जोशरीर में विद्यमान २१ प्रकार के दुःख नाशकोही मुक्ति कहते हैं, जोआत्मको.जगत से व परस्पर से भिन्नकरते हैं और जोकर्म फलकोही सत्य कहते हैं, उन वैशेषिक पातञ्जल,सांख्य,न्याय और मीमांसा के उपदेशकोंकोभी भ्रमहोरहा है। परमेश्वर की त्रिगुण मायाके भेदसे अपने स्वरूप के ज्ञानके अभाव से मनुष्य बंधारहता है, किंतु परमेश्वरतो स्वयंज्ञान घन और असंग हैं उनमें तो ज्ञानका अभाव नहीं है ॥ २५ ॥ मन मात्रसे प्रतीत होता यह त्रिगुणात्मक जड़जीव प्रपंच यथार्थ में असत्य होनेपरभी आपके अधिष्ठित होनेपर सत्यप्रतीत होता है। आत्म तत्त्ववेत्तागण प्रपंच और आत्माको भिन्न नहीं जानतेआत्मस्वरूप सेही इसको सत्य जानते हैं,आत्मा जब अपने रचेहुए इस जगतमें कारण रूपसे प्रविष्टहै तब यहतो आत्म स्वरूप से अवधारित होसकता है, विचारोकि—सुवर्णका चाहने वाला मनुष्य सुवर्ण विकार कुंडलादिको प्राप्त होकर सुवर्ण कहकर उसको त्याग नहीं करता ॥ २६ ॥ आप सब प्राणियों के निवास स्थानहो, यह विचारकर जोआपकी अर्चना करते हैं हे ईश्वर ! वे समय पाकर मृत्यु के भी मस्तक पर पदाघात करते हैं। और जोआपके अभक्त हैं पण्डित होकर भी उनको आपवाक प्रपंच से पशुकी समान बांधतेहो, क्योंकि जोआप से प्रेमकरते हैं, वेही आपको और दूसरेको पवित्र करते हैं,—दूसरा ऐसा नहीं करसकता॥ २७॥ आपके इन्द्रिय नहीं हैं परन्तु आपसब इन्द्रियशक्ति के प्रवर्त्तक हो, क्योंकि दूसरे की अपेक्षा के अतिरिक्त आपही प्रकाश पातेरहतेहो। जैसे खंडपति राजालोग अपनी प्रजाके दियेहुए करको ले चक्रवर्त्ती राजाको करदेते हैं, जोमनुष्यों के दियेहुए हव्यकव्यका भोजन करते हैं, वेही अविद्याके संगवाले इन्द्रादि देवतागण और ब्रह्मादि प्रजापति गणभी उसही प्रकार आपको भेटेंदेते रहते हैं और आपके भयसेही अपने २ कार्योंपर नियुक्तहो उनको पूराकरते हैं ॥ २८ ॥ हे नित्ययुक्त ! आप मायासे दूर वर्तमानहो किन्तु जब आप उस मायाके साथ किंचित दर्शन रूप से क्रीड़ा करतेहो तब स्थावर जंगमात्मक समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, आप-

मुक्ततः । नहिपरमस्यकश्चिदपरोनपरश्च भवेद्वियतइवाऽपदस्यतवशून्यतुलांदधतः ॥ २९ ॥ अपरिमिताध्रुवास्तनुभृतोयदिसर्वगतास्तर्हिनशास्यतेतिनियमोध्रुवनेतरथा । अजनिचयन्मयंतदविमुच्यनियन्तृभवेत्सममनुजानतांयदमतंमतदुष्टतया ॥ ३० नघटतउद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजाभवन्त्यसुभृतोजलबुद्बुदवत् । त्वयितइम ततोविविधनामगुणैः परमेसरितइवार्णवेमधुनिलिल्युरशेषरसाः॥३१॥ नृषुतवमाययाभ्रमममीष्ववगत्यभृशंत्वयिसुधियोऽभवेदधतिभावमनुप्रभवम् । कथमनुवर्ततांभवभयंतवयद्भ्रुकुटिः सृजतिमुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषुभयम् ॥३२॥ विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं यइहयतन्तियंतु मतिलोलमुपायखिदः । व्यसनशतान्विताः समवहायगुरोश्चरणं वणिजइवाज सन्त्यकृतकर्णधराजलधौ ॥३३॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधराऽसुरथैस्त्वयि सतिकिंनृणां श्रयतआत्मनिसर्वरसे ।

इसी प्रकार माया दर्शन से उत्पन्न कर्म अथवा लिंग शरीर से उन जीवोंयुक्त होतेहो । कर्म वा लिंग शरीरका आविर्भाव न होनेपर जीवसृष्टि से इस प्रकार की विषमता नहीं होती, क्योंकि आप परम दयालुहो, आकाश की नाईं सब के पक्षमें समान, निर्लेप, और वाक्य व मनसे अगोचरहो आप किसी के आत्मीय व अनात्मीय नहीं हो ॥ २९ ॥ हे नित्य ! यदि जीवात्मागण वास्तवही में अनन्त और वह जीव स्वरूपही नित्य है तो ऐसा होने से सबही उनके समान हैं ; अतएव शास्य शासक भाव नहीं रह सकता इसकारण आपभी उनके नियन्ता नहीं होसकते । परंतु ऐसा न होनेसे आप नियंता होसकते हो । क्यों कि जिससे जीवका जन्म है वही जीवके अपरित्याज्य कारण और वही जीवके नियता हैं । ऐसा जो कहते हैं वह ठीक नहीं होसकता केवल इतना कहा जासकता है कि वह सर्वत्र विद्यमान हैं वह ज्ञानाभिमानी मनुष्यों से अज्ञात हैं । वह अज्ञात हैं इस विषय में कारणान्तर से ज्ञात वस्तु में कुछन कुछ दोष रहता है; किंतु वह निर्दोष हैं ॥ ३० ॥ वास्तवमें प्रकृति वा पुरुषकी अथवा दोनोंकी जीवरूप से उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि श्रुति में प्रकृति और पुरुष अज (जन्म रहित) कहे गये हैं और दूसरे युक्ति भी है । तब फिर प्रकृति पुरुष के विशेष सम्बंधसेही प्राणादि जीवोंकी—उत्पत्ति होती है । इस विषयमें यह दृष्टांत है कि जैसे जल बुदबुद; अर्थात् जैसे केवल जलसेही बुदबुद की उत्पत्ति नहीं होती, या केवल वायुसेही नहीं होती; किंतु दोनों के योगसेही बुदबुद् की उत्पत्ति होती है । जीव का वास्तविक जन्म न होकर नाना प्रकार के नाम और गुणों समेत आपमें जीवका लय होता है । हे परम ! फूलके रस चूसने वाली मधु माक्षिका के संचित किये हुए मधुमें कुसुम रसकी जैसे विशेष प्राप्ति नहीं होती, वैसेही सुषुप्ति और प्रलय काल में तत्वज्ञान होने से आपमें जोजीवका लयहोता है वह समुद्रमें नदी के मिलने की समान है ॥ ३१ ॥ आपकी माया से भ्रमित संसार चक्र में यह समस्त जीव भ्रमण करते हैं—यह देखकर विवेकीजन संसार से निवृत्त करने वाले आपकीही अत्यंत सेवाकरते हैं । आपका भजन करने से फिरसंसार का भय नहीं रहता । क्योंकि आपकी संवत्सरात्मक भौंह आपके अभक्तों को निरंतर भयभीत किया करती है ॥ ३२ ॥ जिनका अतिचंचल चित्त तुरंग—बहिरिंद्रिय और प्राणजय से भी वशीभूत नहीं हुआ उस जोपुरुष गुरूचरणों के आश्रय बिना वशमें करना चाहते है वे अनेक विघ्नोंसे दुःखितहो; उपायों में खेदित होतेहुए, बीच समुद्र में मल्लाह बिना जहाज पर बैठेहुए बनियों की समान बहुत विघ्नवाले संसार समुद्र में पड़ेरहते है ॥ ३३ ॥ आपके भक्तको सर्वानंदमय परमात्मा आपके होते हुए स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, घर, पृथिवी, प्राण और सवारी आदि तुच्छ पदार्थों

इतिसदजानतां मिथुनतो रतयेचरतां सुखयतिको न्विह स्वविहवे स्वनिरस्तभगे ॥ ॥ ३४ ॥ भुविपुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्तउत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदंघ्रिजलाः । दधतिसकृन्मनस्त्वयियआत्मनि नित्यसुखेनपुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥ सतइदमुत्थितं सदितिचेन्ननुतर्कहतं व्यभिचरतिक्वच क्वच मृषानतथोभययुक् । व्यवहृतये विकल्पइषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयतिभारतीत उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥ नयदिदमग्रआसनभविष्यदतो निधनादनुमितमन्तरात्वयि विभाति मृषैकरसे । अतउपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥ ३७ ॥ सयदजयात्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतांतदनु मृत्युमपेतभगः । त्वमुतजहासितामहिरिव त्वचमात्तभगोमह-

से क्या प्रयोजन ? इस सत्य तत्वको न जानखी संगसुखमें प्रवृत्त मनुष्योंको स्वभाव सेही नाशवान तत्वरहित इस संसार में कोईभी सुखी नहीं करसकता ॥ ३४ ॥ जिनके हृदय में आपके चरण कमल सदा वर्तमान रहते हैं, जिनके चरणोंका जल पापोंका नाश करने वाला है वे निरहंकार ऋषिगण भी भगवद्भक्तों में अग्रगीय गुरूओं के आश्रम में सदैव उपस्थित रहते हैं, किन्तु पुरुषके विवेकादि नाश करनेवाले घरोंका सेवन नहीं करते । अधिक क्या नित्यानंदमय परमात्मरूपी आप में जिन्हों ने एक बारभी चित्त अर्पण किया है वेभी उन पाप गृहों में आसक्त नहीं होते ॥ ३५॥ "यह जगत 'सत्' (ब्रह्म) से उत्पन्नहै अतएव यह भी 'सत्' है" ऐसा कहना तर्क विरुद्ध है, क्योंकि इससे ब्रह्म और जगतके कार्य कारण भाव प्रसंग में परस्पर भेद सिद्धिहो उठती है । यदि कोई कहेकि-इस अवस्थान (व्याप्ति) से अभेद सिद्धिका हमारा उद्देश्य नहीं है किन्तु कार्य और कारण में जो भेद नहीं रहता, यही दिखाना चाहते हैं ऐसा होने परभी कहा जासकताहै कि— इस स्थल में व्यभिचार है—अतएव व्याप्ति रह नहीं सकती । पुत्र पिता से उत्पन्न होने परभी पितासे भिन्न है; इस स्थान में भी व्यभिचार होता है । यदि कोई कहे कि " उत्पन्न "शब्दसे यही उपादान कारण प्रसूत है अर्थात् उपादान कारण सेही कार्य को भिन्न नहीं कहाजासकता, तौभी हमकहसकती हैं कि इस स्थल में भी बोध है । विचारकरो कि रज्जू (रस्सी) से सर्पका भ्रमहोता है; अतएव सर्प का उपादान, सत्, रज्जू है तो फिर क्या सर्प में भी सत्यत्त्व है?ऐसा तो नहीं है । यदि कोई कहे कि—उस स्थान में सर्प का उपादान केवल रज्जू नहीं है किंतु अविद्यायुक्त रज्जू है, अतएव सत्यत्त्व क्योंकर होसकता है ? इसपर हम कहते हैं कि-विश्व का उपादान भी अविद्यायुक्त है; अतएव भ्रम सर्प की समान इस विश्व में भी मिथ्यत्व सिद्धहोता है तब अन्ध परम्परा के अनुसार प्रचलित व्यवहार निर्वाहक भ्रम जगत सम्बन्ध में मानना पड़ता है हेभगवन् ! आप वेदरूप वाक्यहो-शक्ति, लक्षणा आदि से कर्म मार्ग में आसक्त मूर्खों को मोह उत्पन्न करातेहो । अर्थात् कर्म फल भी नित्य नहीं है, जब वेद से कर्म फल नित्यकहा जासकता है तब वहां लक्षणा स्वीकार कर उस श्रेष्ठ फलको इसीप्रकार समझा जाता है, कर्म फल में आसक्तहुए मनुष्य मोह से ऐसा नहीं समझते ॥३६॥ यह विश्व (द्वैत) सृष्टि के पहिले न था प्रलय काल के अनंतर भी न रहेगा इसकारण स्थिर कियाजासकता है कि बीचसमयमें अद्वितीय आप से यह विश्व प्रकाशित हुआ इसका स्वरूप मिथ्याही है । इसही कारण मिट्टी स्वर्णादि के विकार घट कुण्डलादि के साथ इसकी उपमा श्रुति में दीहै अर्थात् केवल नामकीही घट कुण्डलादि की सत्ता है, ऐसही केवल नामकी जगतकी भी सत्ता है। व्यर्थ और मनोमात्र बिलसित इस असत्य विश्व को जो सत्य कहते हैं वे मूढ़ हैं ॥३७॥ जीव माया के प्रभावसे अविद्याका आलिंगनकर देह इंद्रियादिक में आत्म स्वरूपज्ञान देहेंद्रियों की सारूप्यता को भजन करते हैं इससही वे स्वा-

स्तिमहीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥ यदिनसमुद्धरन्तियतयो हृदिकामज टादुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः । असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमीनवेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतांच गिरः । अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरम्परया श्रवणभृतोयतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥ द्युपतयएवतेन ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराऽण्डनिचया ननुसावरणाः । खइवरजांसिवान्तिवयसा सहयच्छ्रुतयस्त्वयिहि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येतद्ब्रह्मणःपुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् । सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनोगतिम् ॥ ४२ ॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः । समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ४३॥ त्वंचैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥ धारयंश्चर गांकामं कामानांभर्जनंनृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुकउवाच । एवंसऋषिणादिष्टंगृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् । पूर्णःश्रुतधरोराजन्नाह वीरव्रतोमुनिः ॥ ४५ ॥ नारदउवाच । नमस्तस्मैभगवते कृष्णायाऽमलकीर्तये । योधत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ॥ ४६ ॥ इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः । ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितु-

भाविक आनंद रूपता में घिरकर संसार में भ्रमित रहते हैं। हे नित्यप्राप्त सर्वैश्वर्य ! सर्प जैसे अपनी देह में लगीहुई केंचुली को भी अपना उपयोगी नहीं जानता वैसेही आपभी आत्मस्थित माया को भी आत्मगुण कहकर उसकी अपेक्षा नहीं करते। क्योंकि हे अपरिमितैश्वर्य ! अणिमादि अष्ट विभूतिमय ऐश्वर्यों के निकटभी आप पूजितहो ॥ ३८ ॥ हेभगवान् ! संयमी मनुष्य भी यदि हृदय स्थित बासना को दूर न करें तो मणि कण्ठ में रहतेहुए भी बिस्मृत होजाने से जैसे अप्राप्तवत् होजाती है वैसेही आप हृदय में बर्तमान रहतेहुए भी उन कुयोगियों को दुर्लभ होजातेहो। उन इंद्रियपरायण और योगाभ्यासी दोनों कोही दुःख प्राप्त होता है; धन उत्पन्न करने का क्लेश और भोग वैभवके प्रकाश की आशंका से इस लोक में दुःख और आपके स्वरूपकी प्राप्ति न होने से स्वधर्म त्यागके कारण आप के दण्डानुसार परलोक में नरक भोगना पड़ता है ॥ ३९ ॥ हेषडैश्वर्य गुण सम्पन्न ! जो आपको जानते हैं वे आपके उत्पन्न कियेहुए शुभाशुभ कर्मों के फल सुख दुःख के सम्बन्ध को नहीं जानते; देहाभिमानी मनुष्योंके विधि निषेधवाक्यों का भी अनुवर्तन नहीं करते क्योंकि सत् सम्प्रदाय के अनुसार आप मनुष्यों को जो आपकी कीर्तिको सुनते हैं उनको मोक्षदेतेहो। अतएव उनको भी विधि निषेधकी बाधा नहीं रहती॥४०॥ आप अनंतहो; ब्रह्मादि लोकपालभी आपके अंतको नहीं पासके, यहांतक कि आपभी अपने अंतको नहीं पासके। हृदेव ! सात आवरण युक्त ब्रह्माण्ड समूह भी आकाशमें रज कणकी समान आपमें युगपत् (एकसाथ) भ्रमण करते हैं आपमेंही समाप्त श्रुतियें यह नहीं यह नहीं कर २ तात्पर्य के अनुसार आपकाही प्रतिपादन करती हैं ॥४१॥ भगवानने कहा कि इसप्रकारसे ब्रह्मपुत्रोंने ब्रह्मनिरूपण सुन आत्माकी गतिसे अवगतहो सनन्दनकी पूजाकी ॥ ४२ ॥ आकाशचारी पूर्व ऋषियोंनभी इसीप्रकार अशेष श्रुति पुराणोंके रहस्यका अभिप्राय कहा है ॥४३॥ हेनारद ! तुम श्रद्धा युक्त यादवों के सर्व कामों के देनेवाले इस आत्मानुशासनको हृदय में धारण करके पृथिवीपर बिचरण करो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! वह नैष्ठिक ब्रतचारी देवर्षि नारद गुरुकी इस आज्ञाको पाय श्रद्धायुक्त श्रुतिके अर्थोंको हृदयमें धारणकर कृतार्थभावसे कहने लगे, ॥४५॥ जो सब प्राणियोंको संसार पाशसे छुड़ानेके निमित्त अंश धारण करते हैं उननिर्मल यश वाले भगवान श्रीकृष्णजी को नमस्कार करता हूं ॥ ४६ ॥ देवर्षि आद्यऋषि नारद श्रीकृष्णजी

द्वैपायनस्यगे ॥ ४७ ॥ सभाजितोभगवता कृतासनपरिग्रहः। तस्मैतद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितंराजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया। यथाब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपिमनश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरोयः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्यऋषिणा चक्रेपुरः शास्तिताः। यंसंपद्यजहात्यजामनुशयीसुप्तःकुलायंयथातं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रंहरिम्॥५०॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

राजोवाच। देवासुरमनुष्येषु येभजन्त्यशिवंशिवम्। प्रायस्तेधनिनोभोजा न तुलक्ष्म्याःपतिंहरिम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्रमहान्हिनः। विरुद्धशीलयो प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतांगतिः ॥ २ ॥ श्रीशुकउवाच। शिवःशक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगोगुणसंवृतः। वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहंत्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकाराअभवन्षोडशामीषु कंचन। उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणःसाक्षात्पुरुषः प्रकृतेःपरः। सससर्वदृगुपद्रष्टा तंभजन्निर्गुणोभवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः। शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम्। ॥ ६ ॥ सआहभगवांस्तस्मै प्रीतःशुश्रूषवेप्रभुः। नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोःकुले: ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच। यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्येतद्धनंशनैः। त-

और उनके महात्मा शिष्यों को प्रणाम कर मेरे पिता व्यासजी के आश्रममें गए ॥ ४७ ॥ अनंतर पिता से सन्मानितहो योग्य आसनपर बैठ समस्त कृष्ण चरित्र का वर्णन किया अनिर्देश्य निर्गुण परब्रह्म में मनको किस प्रकार लगाना चाहिये॥ ४८ ॥ आपनें जो यह प्रश्न कियाथा उसका मैंने यथार्थ वर्णन किया जिस प्रकार अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियों की प्रवृत्ति होती है॥४९॥ जो विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और संहार के करनेवाले हैं जो इसको रचकर जीवरूपसे उसमें प्रवेश करते हैं जो प्रकृति व पुरुष के कारण हैं जो भोगाय तन (भोगनें योग्य) निर्माण करके शासन करते है प्राणी जिनके चरणकमल को प्राप्तहो माया को परित्याग करदेते हैं सोताहुआ मनुष्य जैसे दूसरेसे देखाहुआ जाकर अपनें को नहीं देखपाता उसही प्रकार जो सबही को देखते है उन कैवल्य योनि अभय बर के देने वाले भगवान का निरंतर ध्यान करता हूं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० द० उ० सरला भाषाटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

राजा ने कहाकि-हे ब्रह्मन्! देवता, असुर और मनुष्यों में से जोभोगाभिलाष से वर्जित शिव की उपासना करते हैं प्रायः वेही धनी और भोगी होते हैं किन्तु जोसर्व भोगों की खान लक्ष्मी पतिकी उपासना करते हैं, वे इस प्रकार से नहीं होते ॥ १ ॥ इसका क्या कारण है? इस विषय में मेरे मनमें संदेह उत्पन्न होता है। विरुद्ध चरित्रवाले दोनों प्रभुओं के भजन करने वालोंमें यह विरुद्धगति क्यों होती है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे राजन्! शिवानिरंतर शक्ति युक्त गुण संवृत और त्रिलिंग हैं। अहंकार तीनप्रकार काहै वैकारिक, तैजस और तामस,इसही कारण महादेवको त्रिलिंग कहाजाता है ॥ ३ ॥ उसही से दशइन्द्रिय, पंचभूत और मन यह सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं। उन सबमें से किंचित् विकारोपाधि का भजन करने सेही उपाधियों के अनुरूप विभूतियों का स्वरूप प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ हरिसाक्षात् निर्गुण, सबके साक्षी परम पुरुष सर्वदर्शी हैं उनका भजन करने से निर्गुणत्व प्राप्तहोता है ॥५॥ अश्वमेध शेष होनेपर तुम्हारे पितामह राजा युधिष्ठिर ने भगवद्धर्म संबंधी इसी विषयको भगवान से पूछाथा ॥६॥ जोमनुष्योंकी मुक्तिके निमित्त यदुकुल में अवतीर्ण हुए थे उन प्रभुभगवान ने प्रसन्न होकर राजा से कहाथा ॥ ७ ॥ श्रीभगवन

तोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजनाः दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥ सयदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया । मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् । अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥ १० ॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः । मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरन्त्यवजानते ॥ ११ ॥ श्री शुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युत ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप सङ्कटम् ॥ १३ ॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् । दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥ स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्ध्यसि । योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव । ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः । केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि । शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् । निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् । प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥ २० ॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् । यस्य यस्य करं शी

बोलेकि-मैं जिसपर अनुग्रह करता हूं धीरे २ उसका धन हरलेता हूं दुःख के ऊपर दुःखित देखकर उसके स्वजन आपही आप उसको छोड़देते हैं ॥ ८ ॥ इसके उपरांत वह जब धनकी चेष्टा से विफलोद्यमहो साधुओं के साथ मित्रता करता है, तबही मैं उसके ऊपर अपना विशेष अनुग्रह प्रकाशकरता हूं ॥ ९ ॥ धीर मनुष्य उन परम सूक्ष्म, ज्ञानमात्र, सत्, अमृत ब्रह्मके आत्म स्वरूप को जानकर संसारसे छूटजाते हैं । जोमनुष्य अत्यंत दुराराध्यमुझको छोड़कर दूसरे वरदेने वाले देवताओं की उपासना करते हैं वे वरदेनेवालों से राज्य श्री को प्राप्तहो मतवाले और प्रमत्त होजाते हैं और अंतमें उन्हीं देवताओंको भूलकर उन्हींका तिरस्कार करते हैं ॥ १०–११ ॥ श्री शुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश सबही शाप और वरके अधीश्वर हैं उनमें ब्रह्मा और महादेवजी सदैवही शाप और वरदिया करते हैं, किंतु विष्णुजी उस प्रकार से नहीं हैं ॥ १२ ॥ प्राचीन पुरुष इस विषय में एक इतिहास कहते हैं,–कि महादेवजी वृकासुरको वरदेकर जैसे दुःखमें गिरेथे उसको सुनो ॥ १३ ॥ शकुनि के पुत्रदुष्ट असुर वृकने मार्गमें नारद जीको देखकर पूछाकि ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें से कौन देवता शीघ्र प्रसन्न होता है ॥ १४ ॥ नारदजी ने कहाकि–महादेवजी की आराधनाकरो, शीघ्र सिद्ध होवोगे वह थोडेही गुण व दोषसे शीघ्र संतुष्ट व कुपित होजाते हैं ॥ १५ ॥ महादेवजी रावण और वाणासुर पर संतुष्टहो उनको अतुल ऐश्वर्य देकर घोर सङ्कट में गिरेथे ॥ १६ ॥ देवर्षि नारद से इस प्रकार आज्ञापाय वृकासुर केदार तीर्थ में गया और अग्नि में अपने शरीर के मांस की आहुति दे देकर महादेवजी की आराधना करने लगा ॥ १७ ॥ सातदिन इसप्रकारसे आराधना करने परभी जब दैत्य को शंकर के दर्शन नहुए तब वह खिन्न चित्तहो उस केदारतीर्थ के जल में भीगेहुए केशोंवाले अपने मस्तक को काटने पर उद्यतहुआ ॥ १८ ॥ तैसेही परम दयालु महादेव जीने अग्नि से अग्निकी समान उठ दोनों बाहों से दैत्य की दोनों बाहें पकड़कर उसको निवारण किया ॥ १९ ॥ उनके स्पर्श से वृकासुर आनंद हो खिलगया । हेराजन् ! शिवजी ने उससे कहा कि—निवृत्तहो निवृत्तहो तेरी जो अभिलाषा है मैं वह वर तुझको दूंगा, मैं शरणागत मनुष्यों पर थोडेही से संतुष्ट होता हूं । अहो ! तू व्यर्थही आत्मा को क्लेश देनेपर उद्यत होता है ॥ २० ॥ यह सुनकर उस पापी असुर ने महादेव

र्षिणधास्येसम्रियतामिति ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्रुद्रोदुर्मनाइवभारत। ओमिति प्रहसंस्तस्मैददेऽहेरमृतंयथा ॥ २२ ॥ इत्युक्तःसोऽसुरोनूनंगौरीहरणलालसः। स तद्वरपरीक्षार्थंशम्भोर्मूर्ध्निकिलासुरः स्वहस्तंधातुमारेभेसोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥२३॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत्सवेपथुः। यावदन्तंदिवोभूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानन्तः प्रतिविधिंतूष्णीमासन्सुरेश्वराः। ततो वैकुण्ठमगमद्भास्वरंतमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्रनारायणः साक्षान्न्यासिनांपरमागतिः। शान्तानांन्यस्तदण्डानांयतोनावर्ततेगतः ॥ २६ ॥ तंतथाव्यसनंदृष्ट्वाभगवान्वृजिनार्दनः दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुकोयोगमायया ॥२७॥ मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिवज्वलन्। अभिवादयामासचतं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच शाकुनेयभवान्व्यक्तं श्रान्तःकिंदूरमागतः। क्षणंविश्रम्यतांपुंस आत्माऽयंसर्वकामधुक् ॥२९॥ यदिनः श्रवणायालंयुष्मद्व्यवसितंविभो। भण्यतांप्रायशःपुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंभगवतापृष्टोवचसाऽमृतवर्षिणा। गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मैयथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवंचेत्तर्हितद्वाक्यंनवयंश्रद्दधीमहि। योदक्षशापात्पैशाच्यंप्राप्तःप्रेतपिशाचराट् ॥३२॥ यदिवस्तत्रविश्रम्भोदानवेन्द्रजगद्गुरौ। तर्ह्यङ्गाशुस्वशिरसिहस्तंन्यस्यप्रतीयताम् ॥३३॥ यद्यसत्यंवचः शम्भोः कथञ्चिद्दानवर्षभ।तदैनंजह्यसद्वाचंमयद्वक्ताऽनृतंपुनः ३४॥

जीसे सबप्राणियों के भय देनेवाले इस बरको मांगा कि 'मैं जिसके मस्तकपर हाथ रक्खूं वही मरजावे ॥२१॥ हेभारत ! भगवान रुद्र यह सुनकर कुछएक विमनहुए, फिर सर्प को अमृत देने की समान उस से 'तथास्तु' कहकर वही वर दिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार वह असुर पार्वतीजी के लेने की इच्छा से उस बरकी परीक्षा करने के निमित्त शम्भु के मस्तकपर अपना हाथ धरने को उद्यत हुआ; तब शंकर अपने कियेकार्य से भयभीतहुए॥२३॥ और भयसे त्रसितहो कांपते कांपते उत्तरदिशाकी ओरहो स्वर्ग और भूमिकी अंतिम सीमातक शीघ्रतापूर्वक दौड़े और असुर ने उनका पीछा किया ॥ २४॥ इधर देवतागणभी उसका कुछ यत्न न देख चुपहोरहे फिर जहां शांतरूप सबको अभय देनेवाले, सन्यासियों के परमगति साक्षात् नारायण बिराजते हैं, जहां से जीव जाकर फिर नहींलौटता भगवान महादेवजी उसी वैकुण्ठधाम में गये ॥ २५। २६ ॥दुःखहारी भगवान हरिने महादेवजीको ऐसा बिपद्ग्रस्त देख योगमायाके योग से बटुक (ब्राह्मण)का वेश धारणाकिया॥२७॥वेमेखला,मृगचर्म,दण्ड व माला धारणकिये कुश लिये तेजसे मानों जाज्वल्यमान दानवके सन्मुख आये। दानवने अत्यन्त विनीत.भावसे उनको प्रणाम किया ॥२८॥ भगवानने कहा कि हे शकुनितनय! प्रगट देखाजाताहैकि आप दूसरे मार्ग से चलकर आरहेहो;आप श्रमितहोरहेहो। यहांपर कुछेकदेर विश्रामकरो, मनुष्य आत्मासेही सब इच्छाओंको पूर्ण करता है अतएव तुम उसको कष्ट न दो ॥ २९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! यदि तुम्हारा काम मेरे सुनने योग्यहो, तो कहो मैं उसको पूर्ण करूंगा क्योंकि दूसरेकी सहायता लेकर मनुष्य अपना कार्य सिद्ध कर सकता है ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भगवानकी अमृतवर्षिणी बातोंसे उसअसुर का श्रम दूरहोगया और पहिले जो कियाथा उस सबका उसने वर्णन उनसे किया ॥ ३१ ॥ भगवानने कहा कि-यदि ऐसाही है तो मैं तो उस भूतनाथ की बातोंका विश्वास नहीं करता,क्यों कि दक्षके शापसे पिशाच वृत्तिको प्राप्तहो शंकर पिशाचोंका राजाहुआ है ॥ ३२ ॥ हे दानवेन्द्र! उसको जगद्गुरु कहकर यदि उसकी बातोंपर तुम्हारा विश्वास है तो अपनेही मस्तक में अपना हाथ रखकर परीक्षा क्यों नहीं करलेते ॥ ३३ ॥ यदि महादेवकी बात मिथ्याहोवे तो परीक्षा के उपरांत उस मिथ्याबादी को परास्त करना, कि जिससे वह फिर ऐसी मिथ्याबातें न कहे ॥३४॥

इत्थंभगवतश्चित्रैर्वचोभिः ससुपेशलैः । भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तंकुमतिर्व्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिराबज्राहतइवक्षणात् । जयशब्दोनमः शब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणिहतेपापेवृकासुरे । देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तंगिरिशमभ्याहभगवान्पुरुषोत्तमः । अहोदेव महादेवपापोऽयंस्वेनपाप्मना ॥ ३८ ॥ हतःकोनुमहत्स्वीशजन्तुर्वैकृतकिल्बिषः क्षेमीस्यात्किमुविश्वेशेकृतागस्कोजगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ यएवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्यसाक्षात्परमात्मनो हरेः । गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोतिवाविमुच्यतेसंसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० दशमस्कन्धे उ० अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

श्रीशुकउवाच । सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत । वितर्कःसमभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु कोमहान् ॥ १ ॥ तस्य जिज्ञासयातेवै भृगुंब्रह्मसुतंनृप ॥ तज्ज्ञप्त्यैप्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणःसभाम् ॥ २ ॥ नतस्मैप्रहणंस्तोत्रं चक्रेसत्वपरीक्षया । तस्मैचुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ सआत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मनाप्रभुः । अशीशमद्यथावन्हि स्वयोन्यावारिणात्मभूः ॥ ४ ॥ ततः कैलासमगमत्सतं देवोमहेश्वरः । परिरब्धुंसमारेभे उत्थायभ्रातरंमुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इतिदेवश्चुकोपह । शूलमुद्यम्यतं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वापादयोर्देवी सान्त्वयामास तंगिरा । अथोजगाम वैकुण्ठं यत्रदेवोजनार्द्दनः ॥ ७ ॥ श

भगवानकी ऐसी कोमलबातोंसे हतबुद्धि और विस्मितहो उस दुर्बुद्धि असुरने अपने मस्तकपरहाथ रक्खा ॥ ३५ ॥ हाथ रखतेही वह छिन्न शिरहो बज्रसे आहत होनेकी समान तत्कालही गिरगया। स्वर्ग में जयशब्द, साधु और नमः शब्द होनेलगा ॥ ३६ ॥ पापी वृकासुरके मारेजानेपर देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व फूल बरसानेलगे, महादेवजी भी दुःखसे छूटगये ॥ ३७ ॥ भगवान ने महादेवजीके निकट आयकरकहा कि—अहो! यह पापी वृकासुर अपनेही पापोंसे नष्टहुआ, हेईश्वर! बड़े मनुष्योंका अपराधकरके कौन मनुष्य कल्याण पासकताहै ! आप जगद्गुरुहो जो दुष्ट आपका अपराधी होवै उसकी क्या बात कहीजावे ॥ ३८ । ३९ ॥ हे राजन् । जो बाक् मनसे अगोचर शक्तिके समुद्रस्वरूप साक्षात् परमात्मा परमेश्वर हरिके इसप्रकार की शिवमोचन कथाको कहे वासुने वह संसारके पाश और शत्रुके हाथसे छूटकर हरिको प्राप्तहोवे ॥ ४० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधेउ०सरलाभाषाटीकायांअष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! सरस्वती के तीर में यज्ञ करते २ ऋषियों के मनमें यह तर्क उपस्थितहुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इनतीन देवताओंमेंसे कौन देवता बड़ाहै?॥१॥ हे नृप ! यह जानने की इच्छा से उन्होंने ब्रह्माके पुत्र भृगुको इसकी परीक्षाकरनेके अर्थ भेजा । महात्मा भृगु उनके कहनेके अनुसार ब्रह्माकी सभामेंगए॥२॥और उनके सत्वकी परीक्षाके निमित्त उनको प्रणाम व स्तुति आदि कुछनकी; इससे भगवान कमलयोनि अपने तेज से अत्यंत प्रज्वलितहो उनपर क्रोधितहुए ॥३॥ फिर उन्होंने पुत्रपर उठेहुए अपने क्रोधको जलसे अग्निबुझानेके समान अपनेही द्वारा शांतकिया ॥४॥ अनंतर भृगु वहां से कैलासको गये । महादेवजी आनन्द से उठ भाईसे मिलनेको उद्यतहुए।किंतु भृगुने उनको उन्मार्गगामी कहकर तिरस्कार किया; इससे रुद्र अत्यन्तही कुपितहुए और लालनेत्रकर शूल उठाय उनको मारने पर उद्यतहुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ पार्वतीजीने पतिके दोनो चरणोंमें गिरकरमधुर वाक्यों से उनको शांतकिया फिर भृगुजी जहां भ-

यान्तं श्रियउत्संगे पदावक्षस्यताडयत् । ततउत्थायभगवान्सह लक्ष्म्यासतांगतिः ॥ ॥ ८ ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननामशिरसामुनिम् आहतेस्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रास-नेक्षणम् । अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथनःप्रभो ॥९॥ अतीवकोमलौतात चरणौ तेमहामुने । इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहिसहलोकंमां लोकपालांश्चमद्गतान् । पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥ अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् । वत्स्यत्युरसिमे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ।१२। श्रीशुक उवाच । एवंब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा । निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्चसत्रमाव्रज्य मुनीनांब्रह्मवादिनाम् । स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥ तन्निशम्याथमुनयो विस्मितामुक्तसंशयाः । भूयांसंश्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १५॥ धर्मःसाक्षाद्यतोज्ञानं वैराग्यंचतदान्वितम् । ऐश्वर्यंचाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनांन्यस्तदण्डानां शान्तानांसमचेतसाम् । अकिञ्चनानांसाधूनां यमाहुःपरमांगतिम् ।१७। सत्त्वंयस्यप्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः । भजन्त्यनाशिषः शान्तायंवा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसाअसुराःसुराः । गुणिन्यामाययासृष्टाः सत्त्वंतत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥ श्रीशुकउवाच । एवंसारस्वताविप्रा नृणांसंशयनुत्तये । पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिंगताः ॥ २० ॥ सूतउवाच । इत्येतन्मुनितनया

गवान विराजे हैं ऐसे वैकुंठ में गए ॥ ७ ॥ वहां भगवान लक्ष्मीजी की गोदमें सोरहे थे । भृगुजी ने उनके निकट पंहुच उनके वक्षःस्थल में लातमारी । अनंतर साधुओं की गति भगवान हरिने लक्ष्मीजी के साथ अपनी शय्या से शीघ्रउठ मस्तक द्वारा मुनिको नमस्कार किया और मधुर बचनों से कहने लगे । हे ब्रह्मन् ! आप सुख से तो आयेहो ? कुछदेर इस आसनपर बैठो। आप का आना मैंने न जाना, हेप्रभो ! मुझे क्षमा करनी चाहिये ॥८–९॥ हे तात ! हे महामुनि ! आप के चरणतो अतीव कोमल हैं, सो आपके चरणों में चोटलगी होगी ऐसा कहकर आप अपने हाथ से भृगुजी के पांव दाबनेलगे और बोलेकि ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सब तीर्थों के पवित्र करके चरणोदक द्वारा सब लोको समेत मुझको और मेरे अनुयानी लोकपालोंको पवित्रकरो ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आजमें शोभाका एक मात्र पात्रहुआ, आपके पाद प्राहर का चिह्नमेरे वक्षःस्थल में विभूति रूपसे अवस्थिति करेगा ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! विष्णुजी के इस प्रकार कहनेपर भृगुजी उनकी गम्भीर बातों से तृप्त हो चुपचाप खड़े रहगये और भक्तिके कारण उनका चित्त चंचल होउठा दोनों नेत्रों से आनंदाश्रु बहनेलगे ॥ १३ ॥ हे राजन् उन्होंने अपने यज्ञस्थल में आय ब्रह्मवेत्ता ऋषियों से अपनी परीक्षा के फलका बर्णन किया ॥ १४ ॥ तब सब मुनि उसको सुनकर विस्मय को त्याग संदेह रहित होगये। जिससे शांति और अभय प्रवर्तित होताहै उन्होंने उन्हीं विष्णुजी को सबसे बड़ा निश्चय करके कहाकि–जोसाक्षात धर्म स्वरूप हैं, जिनसे ज्ञान, चार प्रकार का वैराग्य, आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माका मल नाशक यश प्राप्त किया जासकता है । जोशांत, समदर्शी, अकिंचन, मुनियोंके परमगति हैं, सत्व जिनकी प्यारी मूर्त्ति है और ब्राह्मण जिनके इष्ट देवता है; निष्काम, शांत, निपुण बुद्धि महात्मा जिनका भजन करते हैं ॥ १५–१८ ॥ गुणमय मायासे रचेहुए राक्षस असुर और देवता ये तीनोंतीन प्रकार के उन्हीं भगवान के स्वरूप हैं वे पुरुषार्थ के हेतु हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! सरस्वती तीरबासी मुनि मनुष्योंके संसार हरने के निमित्त इस प्रकारका निश्चयकर भगवान के चरण कमल की सेवाद्वारा उनकी गतिको प्राप्तहुए ॥ २० ॥ सूतजी ने कहाकि–श्रीशुकदेवजी के मुखकमल

स्यपद्मगन्धपीयूषं भवभयभित्परस्यपुंसः ॥ सुश्लोकंश्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुकउवाच । एकदाद्वारवत्यांतु विप्रपत्न्याःकुमारकः । जातमात्रोभुवंस्पृष्ट्वा ममारकिलभारत ॥ २२ ॥ विप्रोगृहीत्वामृतकं राजद्वार्युपधायसः । इदंप्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः । क्षत्रबन्धोःकर्मदोषात्पंचत्वंमे गतोऽर्भकः ॥२४॥ हिंसाविहारंनृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् । प्रजाभजन्त्यःसीदन्ति दरिद्रानित्यदुःखिताः ॥ २५ ॥ एवंद्वितीयंविप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेवच । विसृज्यसनृपद्वारितां गाथांसमगायत ॥ २६ ॥ तामर्जुनउपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके ॥ परेतेनवमेबाले ब्राह्मणंसमभाषत ॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इहनास्तिधनुर्धरः । राजन्यबन्धुरेतेवै ब्राह्मणाःसत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजापृक्ता यत्रशोचन्तिब्राह्मणाः तेवैराजन्यवेषेण नटाजीवन्त्यसुंभराः ॥ २९ ॥ अहंप्रजांवांभगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह । अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्येहतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मणउवाच । संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोधन्विनांवरः । अनिरुद्धोऽप्रतिरथोन त्रातुंशक्नुवन्तियत् ॥ ३१ ॥ तत्कथंनुभवान्कर्म दुष्करंजगदीश्वरैः । चिकीर्षसित्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महेवयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच । नाहंसङ्कर्षणोब्रह्मन्न कृष्णःकार्ष्णिरेवच । अहंवाअर्जुनोनाम गाण्डीवंयस्यवैधनुः ॥ ३३ ॥ माऽवमंस्थामम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ।

से प्रगट हुए, सुगंधित अमृतकी समान, संसार के भयको मिटानेवालेव कहने योग्य इस भगवत् यशको संसार चक्रमें भ्रमता हुआ जोमनुष्य कानों के छिद्रद्वारा बारंवार पानकरे उसको संसार मार्गमें भ्रमण करनेको परिश्रम नहीं करना पड़ता ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि-हे भारत कुलमणि ! द्वारका में एक ब्राह्मण की स्त्रीका पुत्र उत्पन्न होतेही मरगया ॥ २२ ॥ वह ब्राह्मण उस मृतपुत्रको ले राजद्वार में रखकरकातर और दुःखित मनसे विलाप करतेर कहने लगा कि ॥२३॥ ब्रह्मद्वेषी, शठबुद्धि, लोभी, विषयासक्त, अधम क्षत्रियों के कर्मोंके दोषसे मेरापुत्र मरगया है ॥२४॥ हिंसा जिसका विहार, जिसका चरित्र दुष्ट और जिसकी इन्द्रिय अजित हैं प्रजा उस राजाकी सेवाकर दरिद्री और दुःखितहो दारुण कष्ट भोगती है ॥ २५ ॥ ब्राह्मण का दूसरा और तीसरा पुत्र भी इसी प्रकार मरगया उसने उनको भीराजद्वार में रख वही बातें कहीं ॥ २६ ॥ इस प्रकार नौ पुत्रों तक मरनेपर अर्जुन नें श्रीकृष्णजी के निकट बैठेहुए इन बाक्योंको सुनकर कहा कि ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! वृथा क्यों रोतेहो आपके बासस्थान में क्या कोई धनुषधारी नहीं है जो रक्षा करसके यह यह यादव तो यज्ञों में भोजनको इकट्ठे हुए ब्राह्मणसे मालूम होते हो ॥ २८ ॥ इसबार जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा वह जिससे ब्राह्मण हो यज्ञ संपादन करे मैं वही करूंगा । जिसराजाके जीवित रहते हुए ब्राह्मण धन स्त्री और पुत्र रहित हो शोक करते हैं वह प्राण पोषक नटकी समान क्षत्रिय वेश से जीवित रहता है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! मैं आप दोनों दुःखित स्त्री पुरुषों के संतान की रक्षा करूंगा यदि मैं इस प्रतिज्ञा को पूरा न करसकूं तो प्रायश्चित के निमित्त अग्नि में प्रवेश करूंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मणने कहा कि-धनुर्द्धारियों में श्रेष्ठ बलराम, वासुदेव, प्रद्युम्न और अप्रतिरथ अनिरुद्ध इनके बीचमें तुम क्या हो ? यह जिसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते तो तुम मूर्खता बश क्योंकर उसकी-रक्षाकर सकते हो मैं इस बातका विश्वास नहीं करता ॥ ३१ । ३२ ॥ अर्जुनने कहा कि-हेब्रह्मन् ! मैं बलदेव, कृष्ण या प्रद्युम्ननहीं हूं मैं गाण्डीव धनुषवाला अर्जुनहूं ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! मेरेपराक्रम का तिरस्कार नकर, मैंने महादेवजीकोभी तृप्त कियाहै । हे प्रभो ! मैं युद्धमें मृत्युकोभी जीतकर आपकापुत्र लाकर दूंगा॥३४॥

मृत्युंविजित्यप्रधने आनेष्येतेप्रजांप्रभो । ॥ ३४ ॥ एवंविश्रम्भितोविप्रः फाल्गुनेनप रन्तप । जगामस्वगृहंप्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकालआसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः । पाहि पाहिप्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥३६॥ सउपस्पृश्य शुच्यम्भोनमस्कृत्य महेश्वरम् । दिव्यान्यस्त्राणिसंस्मृत्य सज्यंगाण्डीवमाददे ।३७। न्यरुणत्सूतिकागारंशरैर्नानास्त्रयोजितैः । तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्चरम् ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः संजातोविप्रपत्न्यारुदन्मुः । सद्योऽदर्शनमापेदेसशरीरोविहायसा ॥ ३९ ॥ तदाहविप्रोविजयंविनिन्दन्कृष्णसंनिधौ । मौढ्यंपश्यतमेयोऽहं श्रद्धेक्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ नप्रद्युम्नोनानिरुद्धोनरामोनचकेशवः । यस्यशेकुः परित्रातुंकोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनंमृषावादंधिगात्मश्लाघिनोधनुः । दैवोपसृष्टंयोमौढ्यादानिनीषतिदुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवंशपतिविप्रर्षौविद्यामास्थायफाल्गुनः । ययौसंयमिनीमाशुयात्रास्तेभगवान्यमः ॥ ४३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्ततऐन्द्रीमगात्पुरीम् । आग्नेयींनैर्ऋतींसौम्यांवायव्यांवारुणीमथ । रसातलंनाकपृष्ठंधिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्धद्विजसुतोह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः । अग्निं विविक्षुः कृष्णेनप्रत्युक्तःप्रतिषेधितः ॥ ४५ ॥ दर्शयेद्विजसूनूंस्तेमावज्ञात्मानमात्मना । येतेनःकीर्तिंविमलांमनुष्याः स्थापयन्तिनः ॥ ४६ ॥ इतिसंभाष्यभगवानर्जुनेनसहेश्वरः । दिव्यंस्वरथमास्थायप्रतीचींदिशमाविशत् ॥४७॥ सप्तद्वीपान्ससप्ताब्धीन्सप्तसप्तगिरीनथ । लोकालोकंतथाऽतीत्यविवशसुमहत्तमः ॥४८॥ तत्राश्वाःशैब्यसु

हे शत्रुतापन ! ब्राह्मण अर्जुन की बातों का बिश्वासकर उनके पराक्रम का स्मरणकरते करते प्रसन्न चित्त से अपने घरको गया ॥ ३५ ॥ कुछ काल के उपरांत ब्राह्मणकी स्त्रीका फिर प्रसवकाल उपस्थित हुआ तब उस द्विजने कातरहो अर्जुनसे जाकरकहा कि—हेअर्जुन ! अबमृत्यु से पुत्रकी रक्षाकरो, रक्षाकरो ॥ ३६ ॥ तब उन अर्जुनने पवित्र जल से आचमनकर महादेवजी को नमस्कारकिया और दिव्य अस्त्रोंका स्मरणकर प्रत्यंचा समेत गाण्डीव को ग्रहणकिया ३७॥ अर्जुनने नाना अस्त्रों के संयोग-से बाणोंद्वारा प्रसूतिका घरका ऊंचे, नीचे और तिरछे बेधकर बाणों का पिंजर करदिया ॥ ३८ ॥ अनन्तर ब्राह्मणकी स्त्री का पुत्र उत्पन्न होकर बारम्बार रोनेलगा और तत्कालही शरीर समेत आकाशमार्गहो अलोप होगया ॥ ३९ ॥ तब ब्राह्मण श्रीकृष्णजी के समीपजाय अर्जुन की निंदाकर कहनेलगा कि—मेरी मूढ़ता तो देखो; मैंने जो बड़ाई मारनेवाले नपुंसककी बात पर बिश्वास कियाथा उसका यह फल पाया ॥ ४० ॥प्रद्युम्न अनिरुद्ध राम और श्रीकृष्ण जिसकीरक्षा नहीं करसके; और दूसरा मनुष्य उसकी रक्षा कैसे करसके ? ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुन को धिक्कार है जो दुष्ट मूर्खताबश दैव के नाशकियेहुए पुत्रके लाने की इच्छा करताहै और उसके धनुषकोभी धिक्कारहै॥४२॥ब्राह्मणके इसप्रकारसे तिरस्कारकरनेपरअर्जुन विद्याके प्रभावसे संयमनी पुरी में यमके निकट गये ॥ ४३ ॥ वहां ब्राह्मण के पुत्रको न देख इंद्र पुरी में गये । तद्पश्चात् उन्होंने अग्नि, निर्ऋति, चन्द्र, बायु और बरुणकी पुरी में और रसातल स्वर्ग और दूसरे स्थानों में भी अस्त्र उठाकर खोज किया; परन्तु कहींपरभी ब्राह्मण के पुत्रको न देखा । अनन्तर प्रतिज्ञा को पूराहुआ न देख वह अग्नि में प्रवेश करने को उद्यतहुए । श्रीकृष्ण जीने उनको निवारण करके कहा कि—॥ ४४ । ४५ ॥ तुमको ब्राह्मण पुत्र दिखादूंगा, आप अपने का तिरस्कार मत करो; तुम्हारा निर्मल यश मनुष्यलोक में बिख्यात होगा ॥ ४६ ॥ भगवान श्रीकृष्णजी इस प्रकार कह अर्जुन के संग दिव्य घोड़ोंवाले रथ पर बैठ—पश्चिम दिशा को गये॥ ४७॥ अनन्तर समुद्र सहित सातद्वीप,सात पर्वत और लोकालोक को लांघकर अतिघने अंधकार

ग्रीवमेघपुष्पबलाहकः। तमसिभ्रष्टगतयोबभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान्दृष्ट्वाभगवान्कृष्णोमहायोगेश्वरेश्वरः। सहस्रादित्यसंकाशंस्वचक्रंप्राहिणोत्पुरः॥ ५० ॥ तमःसुघोरंगहनंकृतंमहद्विदारयद्भूरितरेणरोचिषा । मनोजवंनिर्विविशेसुदर्शनंगुणच्युतोरामशरोयथाचमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेणचक्रानुपथेनतत्तमःपरंपरंज्योतिरनन्तपारम्। समश्नुवानंप्रसमीक्ष्यफाल्गुनःप्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणीउभे ॥ ५२ ॥ ततःप्रविष्टःसलिलंनभस्वताबलीयसैजदबृहदूर्मिभूषणम् । तत्राद्भुतंवैभवनंद्युमत्तमंभ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनन्तमद्भुतंसहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः। विभ्राजमानंद्विगुणोल्बणेक्षणंसिताचलाभंशितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्शतद्भोगसुखासनंविभुंमहानुभावंपुरुषोत्तमोत्तमम् । सान्द्राम्बुदाभंसुपिशङ्गवाससंप्रसन्नवक्त्रंरुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥ महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् । प्रलम्बचार्वष्टभुजंसकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्यं वनमालयावृतम् ॥ ५६ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैःस्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः। पुष्ट्याश्रियाकीर्त्यजयाऽखिलर्धिभिर्निषेव्यमाणंपरमेष्ठिनांपतिम् ॥ ५७ ॥ ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतोजिष्णुश्चतद्दर्शनजातसाध्वसः। तावाहभूमापरमेष्ठिनांप्रभुर्बद्धाञ्जलीसस्मितमूर्जयागिरा ॥५८॥ द्विजात्मजामेयुवयोर्दिदृक्षुणामयोपनीताभुविधर्मगुप्तये। कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेहभूयस्त्वरयेतमन्तिमे॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपियुवांनरनारायणावृषी । धर्ममाचरतांस्थित्यैऋषभौलोकसंग्रहम् ॥

में प्रवेशकिया ॥ ४८ ॥ हेभरत श्रेष्ठ! वहांशैव्य, सुग्रीव मेघ पुष्प और बलाहक ये चलने के समर्थ न हुए ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्णजी ने उनकी यह अवस्था देख सहस्र सूर्य की समान प्रभावशाली अपने चक्रका घोर अन्धकार में प्रयोगकिया ॥ ५० ॥ जैसे प्रत्यंचा से छूटाहुआ श्रीरामचन्द्रजीका बाणसेनाको विदारण करताहुआ प्रवेश करे वैसेही मनकी समान वेग शाली सुदर्शनचक्रने अपने तेजसे प्रकृति के परिणामस्वरूप निविड़ अति भयानक घोर अंधकार का नाशकर उसके मध्यमें प्रवेशकिया ॥ ५१ ॥ चक्रके कियेहुए मार्ग से जाते २ उस अन्धकार केपरश्रेष्ठ, अनंत, अपार ज्योति को फैला हुआ देखकर अर्जुनके नेत्र चौंधियागये और उन्होंने उनको बंद करलिया॥५२॥अनंतर उन्होंने आकाश मार्ग से उतर बड़ी२ तरंगो वाले जलमें अति वेगसे प्रवेश किया वहां देदीप्यमान सहस्र मणिमय स्तम्भोंसे शोभित एक भवन देखा ॥ ५३ ॥ उस भवनमें सहस्र मस्तकों के फणाओं में मणियों के प्रकाशसे प्रकाशित भयंकर दो सहस्र नेत्र वाले नीलकंठ नीलजिह्व बड़े शरीर वाले अद्भुत अनंतजीको देखा ॥ ५४ ॥ उन अनंतके देहरूप आसन में महानुभव, विभु, परमेष्ठिपति पुरुषोत्तम भगवान को विराजमान देखा। इन भगवान की कांति निविड़ घनकी समान है, सुंदर पीताम्बर धारण किये हैं; आखें दीर्घ व मनोहर हैं ॥ ५५ ॥ सहस्र २ कुण्डल महा मणिकरखचित किरीट और कुण्डल के प्रकाश से सब दिशाएं प्रकाशित होरही हैं आठों भुजाएं दीर्घ और सुंदर हैं गले में कौस्तुभमणि समेत बनमाला और वक्षमें श्रीवत्स का चिह्न शोभायमान है ॥ ५६ ॥ सुनंद नंदआदि पार्षद मूर्तिमान चक्रआदि अस्त्र शस्त्र और पुष्टि, कीर्त्ति, अजाअखिल, समृद्धि और श्रीभी उन भूमा भगवानकी सेवामें तत्पर हैं। उन को देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने संभ्रम समेत प्रणाम किया। परमेष्ठियों के पति भूमा भगवानने हाथ जोड़े खड़े हुए उन दोनों जनों को देख हंसकर कहा कि—॥ ५७ । ५८ ॥ हे नारायण! मैंने तुम दोनों जनोंके देखनेकी इच्छा सेही ब्राह्मणके पुत्रोंका हरण किया है। धर्मरक्षाके निमित्त भूमंडलमें तुम मेरे अंशसे अवतीर्ण हुए हो; पृथ्वीके भारभूत असुरों को मारकर फिर इस स्थान में मेरे निकट शीघ्र आओ ॥ ५९ ॥ हे नर नारायण! तुम पूर्ण काम होकरभी मर्यादा की रक्षा

॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौभगवतातौकृष्णौपरमेष्ठिना । ओमित्यानम्यभूमानमादायद्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततांस्वकंधामसंप्रहृष्टौयथागतम् । विप्रायददतुःपुत्रान्यथारूपंयथावयः ॥ ६२ निशाम्यवैष्णवंधामपार्थःपरमविस्मितः । यत्किंचित्पौरुषंपुंसां मेनेकृष्णानुकम्पितम् ॥ ६३ ॥ इतीदृशान्यनेकानिवीर्याणीहप्रदर्शयन् । बुभुजेविषयान्ग्राम्यानीजेचात्यूर्जितैर्मखैः ॥ ६४ ॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासुब्राह्मणादिषु । यथाकालंयथैवेन्द्रोभगवाञ्छ्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वानृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वाऽर्जुनादिभिः । अञ्जसावर्तयामासधर्मंधर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥

इतिश्रीम० म० द० उ० एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ सुखंस्वपुर्यांनिवसन्द्वारकायां श्रियःपतिः । सर्वसंपत्समृद्धायांजुष्टायांवृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः । कन्दुकादिभिर्हर्म्येषुक्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यंसंकुलमार्गायांमदच्युद्भिर्मतङ्गजैः । स्वलंकृतैर्भटैरश्वैरथैश्चकनकोज्ज्वलैः ॥३॥ उद्यानोपवनाढ्यायांपुष्पितद्रुमराजिषु । निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायांसमन्ततः ॥ ४ ॥ रेमेषोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः । तावद्विचित्ररूपोऽसौतद्गृहेषुमहर्द्धिषु ॥५॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः । वासितामलतोयेषुकूजद्द्विजकुलेषुच ॥६॥ विजहारविगाह्याम्भोहृदिनीषुमहोदयः । कुचकुंकुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्चयोषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानोगन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् । वादयद्भिर्मुदावीणांसूतमागधबन्दिभिः ॥ ८ ॥ सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिःस्मरेचकैः । प्रतिसिञ्चन्विचिक्रीडेयक्षीभिर्य-

और लोककी शिक्षाके निमित्त ऐसे धर्मका आचरण करते हो ॥ ६० ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन भूमा भगवान से इसप्रकारकी आज्ञापाय 'जोआज्ञा' कह उनको नमस्कार किया और ब्राह्मण के पुत्रों कोले अति आनन्दितहो अपने घरको लौटआये । वहां आयकर उस ब्राह्मणको सब पुत्र दिये ॥ ६१—६२ ॥ अर्जुन ने विष्णुजी का स्थानदेख अत्यन्त विस्मित होकर कहाकि मनुष्यमें जो कुछ पुरुषार्थ है वह सब श्रीकृष्णजीकेही अनुग्रह से है ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णजीने इसप्रकारके अनेक पराक्रमों को दिखाय सब ग्राम्य विषयों का भोगकिया और बड़े २ यज्ञों को भी किया ॥ ॥ ६४ ॥ भगवान ने श्रेष्ठताका अवलंबनकर इन्द्रकी समान ब्राह्मणादि प्रजाओं की समय २ पर इच्छाएं पूर्णकीं ॥ ६५॥ अधर्मी राजाओंको मार और अर्जुनादिसे मरवाय युधिष्ठिरादि द्वारा धर्म मार्गको प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे उ०सरलाभाषाटीकायांएकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे राजन् ! द्वारका सम्पत्ति से भरीहुई थी । वृष्णि और यादव उस सुंदर पुरीमें सुखसे बास करते थे ॥ १ ॥ बिजली की समान प्रभावाली , नवीन यौवन से कांतिशालिनी, सुंदर वेशवाली स्त्रियें सुंदर मार्गमें आनंद से गेंद उछाल २ कर क्रीड़ा करतीं, मद झरते हुए हाथी, भलीप्रकार से अलंकृत योद्धा, रथ और घोड़े उस मार्गमें निरंतर फिरा करते । वहां उपवन और उद्यान शोभायमान थे; चारों ओर फूलेहुए वृक्षोंमें बैठेहुए पक्षी और भौंरे शब्द कररहे थे । श्रीपति श्रीकृष्णजी उस पुरीमें सुखसे बास करतेहुए सोलह सहस्र स्त्रियों के प्यारेहो सोलह सहस्र मूर्त्ति धारण कर उनके घरमें बिहार करते ॥ २—५ ॥ कभी वह फूलेहुए कमल, कल्हार, बघौला, और पद्मकी केसर सुंगंधित सरोबरों के स्वच्छ जलमें पैठकर भौंरों की गुंजार सुनते २ उन सब स्त्रियों के साथ बिहार करते थे ॥ ६—७ ॥ किनारे के पेड़ों की डालियोंपर पक्षीगान करते । गंधर्व, मृदंग, पणब और ढक्काको बजाते और सूत, मागध तथा बंदीजन उनके गुणोंका गान करते थे ॥ ८ ॥ वे सब स्त्रियें हंसते २ पिचकारियों से श्रीकृष्णजीको भिगोतीं, वह

क्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्यउद्धृतबृहत्कवरप्रसूनाः । कान्तंस्मरेचकजिहीरषयोपगुह्यजातस्मरोत्सवलसद्वदनाविरेजुः ॥१० ॥ कृष्णस्तुतत्स्तनविषञ्जितकुङ्कुमस्रक्क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलबृन्दबन्धः।सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिसिच्यमानोरेमेकरेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥ नटानांनर्तकानांचगीतवाद्योपजीविनाम् । क्रीडालंकारवासांसिकृष्णोऽदात्तस्यचस्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवंविहरतोगत्यालापेक्षितस्मितैः । नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणांकिलहृताधियः ॥ १३ ॥ ऊचुर्मुकुन्दैकधियोगिरउन्मत्तवज्जडम् । चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षंतानिमेगदतः शृणु॥१४॥ महिष्यऊचुः॥कुररिविलपसित्वंवीतनिद्रानशेषेस्वपितिजगतिरात्र्यामीश्वरोगुप्तबोधः । वयमिवसखिकच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेतानलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥ नेत्रेनिमीलयसिनक्तमदृष्टबन्धुस्त्वंरोरवीषिकरुणंबतचक्रवाकि । दास्यंगताबयमिवाच्युतपादजुष्टांकिंवास्रजंस्पृहयसेकबरेणवोढुम् ॥ १६ ॥ भोभोः सदानिष्टनसेउदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः । किंवामुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तांदशांत्वंचगतोदुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वंयक्ष्मणाबलवताऽसिगृहीतइन्दोक्षीणस्तमोननिजदीधितिभिः क्षिणोषि । कच्चिन्मुकुन्दगदितानियथावयंत्वविस्मृत्यभोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसेनः। १८ ॥ किंत्वाचरितस्माभिर्मलयानिलतेऽप्रियम् । गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्नेहृदीरयसिनः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघश्रीमंस्त्वमसिदयितो

भी उन सबको भिगोकर यक्षिणियों समेत कुबेर की समान क्रीड़ा करते रहते ॥ ९ ॥ भीगते २ जब उनके बस्त्र भीगजाते तब उनके कुच प्रदेश प्रकाशित होजाते और उनके जूड़ों से फूल गिरने लगते, अपनी २ पिचकारी छीनने के निमित्त वे पतिसे लिपटजातीं, इससे काम उद्दीप्त होकर लज्जाके कारण उनका मुख प्रफुल्लित होजाता, इससे उनकी शोभा सौगुणी बढ़जाती ॥१०॥ श्रीकृष्णजी भी भिगोते २ स्वयं स्त्रियों से भीगकर हथिनियों से घिरेहुए हाथियों की समान क्रीड़ा करते रहते । उन सब स्त्रियों के स्तन मलने से उनकी फूलोंकी माला टूटजाती और क्रीड़ा के अभिनिवेश से उनके कुंडलों के बन्धन ढीले होकर कांपने लगते ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी और उनकी स्त्रियें नचैये और गवैयोंको क्रीड़ा के समय उचित अलंकार और बस्त्रदेते । श्रीकृष्णजी ने गति, आलाप, हास्य, परिहास, दृष्टि, क्रीड़ा और आलिंगन से इसप्रकार बिहारकर उन स्त्रियोंका चित्त हरण कियाथा ॥ १२—१३ ॥ जिन्होंने केवल श्रीकृष्णजीही में चित्त लगालियाथा, वे सब स्त्रियें भगवान का ध्यान करतीं हुई उन्मत्त की समान बाक्योंको कहतीं, मैं उन सब बाक्योंको कहता हूं सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें कहतीं कि-हे सखि टिटिहरी ! इस समय रात्रिमें श्रीकृष्णजी गाढीनिद्रा में सोरहे हैं मैं उनकी निद्रा भंगकरती हूं यह बिचारकर तू बिलाप करती है ? तुझेनिद्रा नहीं है शयन क्यों नहीं करती ? हे सखि ! कमल लोचन के हास्ययुक्त उदार कटाक्ष विक्षेप द्वाराक्या तेराभी चित्तभली प्रकार से विद्ध होगया है ॥ १५ ॥ हे चकवि ! तू अपने स्वामी के दर्शन न पाय रात्रिमें दोनों नेत्रोंको नहीं मूंदती; करुणा कर २ के रोदन करती है ? अथवा तू क्यादासी भावको प्राप्त हमारी समान श्रीकृष्णजी की चरण सेवित मालाको जूड़ेमें धारण करने के निमित्त रोदन करती है ॥१६॥ अरेजलनिधे ! तू सर्वदाही शब्द करता है तुझको निद्रा नहीं आती, इसही कारण जागता रहता है ; अथवा भगवान के रत्न हरण करने से हमारी समान तूभी दुस्त्यज दशाको प्राप्त होरहा है ॥ १७ ॥ हे चन्द्र ! तुमकिस बलवान रोगसे आक्रांत होकरक्षीण होरहेहो किजो अपनी किरणों से अंधकारको नाश नहीं करसकते ? हे शशधर ! श्रीकृष्णजी की बातोंको भूलकर तुम कैसेचुप होरहेहो ? हमतो तुमको इसी प्रकार देखतीं हैं ॥ १८ ॥ हे मलयानिल ! हमने तेराक्या अप्रिय कियाथा कि तू श्रीकृष्णजी के कटाक्षों से मग्नहुए हमारे हृदय में काम देवको

यादवेन्द्रस्यनूनंश्रीवत्साङ्कंवयमिवभवान्ध्यायतिप्रेमबद्धः । अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधोबाष्पधाराः स्मृत्वास्मृत्वाविसृजसिमुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः॥२०॥प्रियरावपदानिभाषसे मृतसञ्जीविकयाऽनयागिरा।करवाणिकिमद्यते प्रियं वदमेवल्गितकण्ठकोकिल ॥२१॥ नचलसिनवदस्युदारबुद्धे क्षितिधरचिन्तयसेमहान्तमर्थम् अपिबतवसुदेवनन्दनांघ्रिं वयमिव कामयसेस्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ध्रदाःकरशितावतसिन्धुपत्न्याः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः । यद्वद्वयंयदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाःपुरुकर्शिताःस्म ॥२३॥ हंसस्वागतमास्यतां पिबपयोब्रूह्यङ्गशौरेःकथांदूतं त्वांनुविदामकच्चिदजितः स्वस्त्यास्तउक्तंपुरा। किंवानश्चलसौहृदःस्मरतितं कस्माद्भजामोवयं क्षौद्रालापयकामदं श्रियमृतेसैवैकनिष्ठास्त्रियाम् ॥ ॥ २४ ॥ इतीदृशेनभावेन कृष्णेयोगेश्वरेश्वरे । क्रियमाणेनमाधव्यो लेभिरेपरमांगतिम् ॥ २५ ॥ श्रुतमात्रोऽपियःस्त्रीणां प्रसह्याकर्षतेमनः । उरुगायोरुगीतोवा पश्यन्तीनांकुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः संपर्यचरन्प्रेम्णापादसंवाहनादिभिः । जगद्गुरुंभर्तृबुद्ध्यातासांकिंवर्ण्यतेतपः ॥ २७ ॥ एवंवेदोदितंधर्ममनुतिष्ठन्सतांगतिः । गृहंधर्मार्थकामानांमुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्यपरंधर्मंकृष्णस्यगृहमेधिना

प्रेरित करता है ॥ १९ ॥ हे मेघ ! निश्चयही तुम यादवेन्द्र के प्रियहो, इसही कारण प्रेमसे बद्धहो हमारी समान श्रीवत्स चिह्नधारी की चिंताकरते हो और हमारी समान सरल हृदय से तुमभी उनके प्रसंग का स्मरण कर अत्यंत उत्कंठितहो अश्रुधारा बहातेहो ॥ २० ॥ हे कोकिल ! तू मृतक को भी जीवित करनेवाली इस मधुर वाणी से प्यारे श्रीकृष्णजी के वचनों की समान शब्द करती है । हे रमणीयकण्ठ ! मुझ से कह कि-हम तेरा क्या प्रियकार्य करें ? ॥ २१ ॥ हे भूधर ! तुम्हारी बुद्धि अत्यंत बड़ी है, इसही कारण तुम किसी भारी विषयकी चिंता करते हो; न तो तुम कुछ हिलत चलतेहो और न मुख से बोलतेहो । अथवा तुम क्या हमारी समान श्रीकृष्णजी के चरण कमलों को हृदयमें धारण करने की इच्छा करतेहो ? ॥ २२ ॥ हे समुद्र की स्त्रियों नदियों ! तुम्हारे सब गम्भीर प्रदेश सूखगए हैं इसकारणतुम अति दुर्बल और कमल की शोभा से रहित होगईहो । इस दारुण गरमी से प्रिय समुद्र तुम्हारे आनन्द को नहीं बढ़ाता । अहो ! हम जैसे स्वामी श्रीकृष्णजी की कृपा दृष्टि न पाकर शुष्क हृदय और अत्यन्त कृशहो रही हैं तैसही इस समय तुमभी कृश होरहीहो ॥ २३ ॥ हे हंस ! तुम सुखसे तो आयेहो ! बैठो दूध पियो, अहो! श्रीकृष्णजी का समाचार कहो ! जान पड़ता है कितुम दूतहो; श्रीकृष्णजी तो सुख से हैं । हमसे पहिले जो बातें कहीथीं क्षणिक स्नेह रखनेवाले भगवान क्या उस का कभी एक बारभी स्मरण करते हैं ? हम उनका किस प्रकार भजन करें । हे क्षुद्रके दूत ! अकेले लक्ष्मीजी ही क्या उनका भजन करती हैं ? उन काम सुखार्थी भगवान को यहीं बुलाओ, हम सबों में से क्या लक्ष्मीही एक निष्ठावाली हैं ? ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! योगेश्वर श्रीकृष्णजी की ऐसी आसक्तिद्वारा उन स्त्रियों ने वैष्णवी गति प्राप्त कीथी ॥ २५ ॥ गाने व सुनने सेही जो भगवान स्त्रियों के मनका हरण करलेते हैं उन भगवान के साक्षात् दर्शन से जो स्त्रियों का मन हराजावे उसमें संदेहही क्या है ? ॥ २६ ॥ जिन्होंने स्वामि बुद्धिसे चरण सेवादिद्वारा प्रेमयुक्त भगवान की पूजाकीथी उनकी तपस्या का और क्या वर्णन करूं ? ॥ २७ ॥ साधुओं का गति श्रीकृष्णजी ने वेदोक्त धर्मका इसप्रकार से अनुष्ठान कर धर्म, अर्थ और काम के मार्ग को बारम्बार दिखायाथा ॥ २८ ॥ भगवान गृहस्थाश्रम के धर्म का भली भांति से पालन करतेथे

म् । आसन्सषोडशसाहस्रं महिष्योष्टशताधिकम् ॥ २९ ॥ तासांस्त्रीरत्नभूतानाम-ष्टौयाः प्रागुदाहृताः । रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥ एकैकस्यां दशदश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् । यावंत्यआत्मनोभार्या अमोघगतिरीश्वरः ३१॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः । आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानिमेशृणु ॥ ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेवच । साम्बोमधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृ-कोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करोवेदबाहुश्च श्रुतदेवःसुनन्दनः । चित्रबाहुर्विरूपश्च कवि-र्न्यग्रोधएवच ॥३४॥ एतेषामपिराजेन्द्र तनुजानांमधुद्विषः । प्रद्युम्नआसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ सरुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः । तस्मात्सुतोऽ-निरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ सचापिरुक्मिणःपौत्रीं दौहित्रोजगृहेततः वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः॥३७॥प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चा त्मजः । सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ नह्येतस्मिन्कुलेजा-ता अधनाअबहुप्रजाः । अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ य-दुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।संख्यानशक्यते कर्तुमपिवर्षायुतैर्नृप॥४०॥ तिस्रः कोट्यःसहस्राणामष्टाशीतिशतानिच । आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामि-तिश्रुतम् ॥४१॥ संख्यानंयादवानांकः करिष्यतिमहात्मनाम् । यत्रायुतानामयुतल-क्षेणास्तेसआहुकः ॥ ४२ ॥ देवासुराहवहता दैतेयायेसुदारुणाः । तेचोत्पन्नामनु-ष्येषु प्रजादृप्ताबबाधिरे ॥ ४३ ॥ तन्निग्रहायहरिणा प्रोक्तादेवायदोःकुले । अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकंनृप ॥ ४४ ॥ तेषांप्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥

श्रीकृष्णजी के सोलहसहस्र एकसौ आठ स्त्रियेंथीं ॥ २९ ॥ उन सब स्त्रियों में से रुक्मिणी आदि आठजन कि जिनका बर्णन प्रथमकियागया है प्रधानथीं । हेराजन् ! प्रथम उनका और उनके पुत्रों का भी बर्णन कियागया है ॥ ३० ॥ अमोघगति ईश्वर श्रीकृष्णजी के जितनी स्त्रियांथीं उनसब में उन्होंने प्रत्येक के दश २ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३१ ॥ बड़े पराक्रमवाले उन सब पुत्रों में से अठारह जन उदार यशवाले और महारथीथे मुझ से उनसबके नामसुनो;— ॥३२॥ प्रद्युम्न अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, भानुवृन्द, वृक, अरुण, ॥ ३३ ॥ पुष्कर, वेद बाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥ ३४ ॥ हे राजेंद्र इन सब पुत्रोंसे श्रेष्ठ रुक्मिणीनंदन प्रद्युम्न पिता की समान थे ॥ ३५ ॥उस महारथी ने रुक्मी की पुत्रीसे बिवाह कियाथा उस स्त्री के गर्भ से उनके दशसहस्र हाथियों के बलवाले अनिरुद्धने जन्म ग्रहण कियाथा ॥ ३६ ॥ अनिरुद्ध ने रुक्मी के दौहित्र होकर भी उसकी पौत्री से विवाह किया । उससे वज्र उत्पन्नहुआ–, मौसलयुद्ध के उपरांत केवल बज्रही शेषरहाथा ॥ ३७ ॥ उस के प्रतिबाहु और प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ । सुबाहु से शांतसेन और शांतसेनसे शतभद्रसेन उत्पन्नहुआ ॥ ३८ ॥ इस कुलमें जिन्होंने जन्मग्रहण कियाथा वे धनहीन, सन्तानहीन, अल्पायु, अल्पपराक्रमी, व ब्राह्मणों के अहितकारी नहींहुए॥३९॥यदुवंशमें उत्पन्नहुए विख्यात यशवाले मनुष्योंकी संख्या सौवर्षतक नहीं गिनी जासकती॥ ४०॥ सुनाहै कि उन असंख्य अपरिमित कुमारोंके पढ़ानेके निमित्त तीनकरोड़ आठहजार आठसौजन आचार्य नियतथे॥४१॥ महात्मायादवोंकी संख्या कौन करसकता है, जिस कुलमें कईलाख यादवोंके संग उग्रसेनजी विराजमानथे॥४२॥जिन दुष्ट दैत्योंने देवासुरके संग्राममें प्राणत्याग कियेथे उन्होंने मनुष्योंमें जन्मले मदके गर्व से गर्वितहो प्रजाको पीड़ित किया ॥४३॥ उनके नाशकरनेके निमित्त भगवानकी आज्ञापाय देवता यदुकुलमें उत्पन्न हुए थे । हे राजन् ! उनके एकसौ एक कुलथे ॥४४॥ये यादव श्रीकृष्णजीको अपना प्रभु जानते और उन्हींको प्रमाण

येचानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नाना-दिकर्मसु । नविदुःसन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थंचक्रेनृपोनंयद्-जनियदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाःस्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्य-यत्नः । यन्नामाऽमंगलघ्नंश्रुतमथ गदितंयत्कृतो गोत्रधर्मःकृष्णस्यैतन्नचित्रंक्षितिभ रहरणं कालचक्रायुधस्य ॥४७॥ जयतिजननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरि षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् । स्थिरचरवृजिनघ्नःसुस्मितःश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानांव-र्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥ इत्थंपरस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपवि डम्बनानि । कर्माणिकर्मकषणानि यदूत्तमस्यश्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् । ॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयानुसवमेधितयामुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति । तद्धा म दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशम-स्कन्धोत्तरार्द्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनंनाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥
समाप्तोऽयं दशमस्कंधः ॥ १० ॥

मानते । सब यादवों ने श्रीकृष्णजीके अनुवर्त्तीही वृद्धि पाई थी ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णजीमें निरंतर चित्तलगाने वाले यादव सोना, बैठना, भ्रमणकरना, आलाप, क्रीड़ा, स्नान और भोजनादि विषय में अपने आपेकोही भूलजाते ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! श्रीकृष्णजीका जो कीर्त्तिरूप तीर्थ यदुकुल में उत्पन्नहुआ उसने उनके (भगवान) चरणोंके धोयेहुए जलरूप गंगातीर्थको न्यूनकर दिया यह विचित्र नहीं है । श्रीकृष्णजी के शत्रु और मित्र सब जब उनकी स्वरूपताको प्राप्त होते हैं तब इसमें आश्चर्यही क्या है ! जो आजतक किसीको न प्राप्तहुई, जिसके निमित्त दूसरेप्रयत्नकरते हैं वह पूर्ण लक्ष्मी श्रीकृष्णजीकीही होगईथी यहभी विचित्र नहीं है; क्योंकि उनका नाम सुनने और उच्चारण करने सेही अमंगलों का नाशकरता है । उन्होंने समस्त ऋषि कुलमें गोत्रधर्म प्रव र्तित किया । उन श्रीकृष्णजी के भूभार हरणकरनेके कर्मोंमें कुछ आश्चर्य नहीं है; कालचक्र उन का अस्त्र है ॥ ४७ ॥ जो जीवोंके आश्रय, देवकी के गर्भ में जन्म ग्रहण कियाथा, यही केवल जिनका अपवाद है, श्रेष्ठ यादव जिनके सेवक हैं, जिन्होंने अपनी भुजाओंसे अधर्मका नाश किया जो स्थावर जंगम के संसाररूप दुःखको हरते हैं और जिन्होंने सुन्दर हास्यसे शोभित श्रीमुख द्वारा व्रजनारियों के कामको बढ़ायाथा,—उनकी जयहोवे ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य भगवत् चरणों के सेवाकी इच्छा रखता है उसको धर्म रक्षाके निमित्त देहधारी यदुत्तम श्रीकृष्णजी के कर्म नाशक चरित्रोंको सुनना चाहियें ॥ ४९ ॥ राजा भी जिनके निमित्त ग्रामको छोड़कर वनमें गयेथे उन श्रीकृष्णजी की सुंदर कथाका श्रवण व कीर्तन स्मरण ध्यानकरने से बढ़ीहुई भक्तिद्वारा मनुष्य दुरंत कालको भी जीत उनके लोकको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेदशमस्कंधे श्रीमदनवद्यविद्वद्वरसारस्वतकुलोद्भव पण्डितजगन्नाथतनूज पं० कन्हैयालालशर्मानिर्मितायांसरलाभाषाटीकायांनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥
दशमस्कन्ध समाप्तः ॥ १० ॥









श्रीमद्भागवत भाषाटीका सहित.

एकादश स्कन्ध.

अथैकादशस्कन्धप्रारम्भः॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वादैत्यवधंकृष्णः सरामोयदुभिर्वृतः । भुवोऽवतारयद्भारंजविष्ठंजनयन्कलिम् ॥ १ ॥ येकोपिताः सुबहुपाण्डुसुताःसपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् । कृत्वानिमित्तमितरेतरतःसमेतान्हत्वानृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतनायदुभिर्निरस्यगुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः मन्येऽवनेर्ननुगतोऽप्यगतंहिभारंयद्यादवंकुलमहोह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्यभवेत्कथञ्चिन्मत्संश्रयस्यविभवोन्नहनस्यनित्यम् । अन्तः कलिंयदुकुलस्यविधायवेणुस्तम्बस्यवह्निमिवशान्तिमुपैमिधाम ॥ ४ ॥ एवंव्यवसितोराजन्सत्यसङ्कल्पईश्वरः । शापव्याजेनविप्राणांसंजह्रेस्वकुलंविभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्यालोकलावण्यनिर्मुक्त्यालोचनंनृणाम् । गीर्भिस्ताः स्मरतांचित्तंपदैस्तानीक्षतांक्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्यकीर्तिंसुश्लोकांवितत्यह्यञ्जसानुकौ । तमोऽनयातरिष्यन्तीत्यगात्स्वंपदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानांवदान्यानांनित्यंवृद्धोपसेविनाम् । विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनांकृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—श्रीकृष्णजी ने राम और यदुवंशियों से घिरकर स्वयं दैत्यों को मार व कलह उत्पन्नकराय दैत्यों को मरवाय पृथ्वी का भार दूर किया ॥ १ ॥ वैरियों ने कपट द्यूत, तिरस्कार और द्रौपदी के केश आदि पकड़कर अनेकबार जो पाण्डुपुत्रों को कुपित कियाथा भगवान ने उनके पक्ष में होकर युद्ध में इकट्ठेहुए दोनों पक्ष के राजाओं का नाशकरके पृथ्वी का भार दूर किया ॥ २ ॥ इसप्रकार से पाण्डव और यादवोंद्वारा पृथ्वीके भारस्वरूपराजाओं का और उनकी सेना का नाशकर अप्रमेय भगवान ने बिचारा कि—मैं देखताहूं पृथ्वी का भार दूरहोकरभी दूर नहीं हुआ क्योंकि असहनीय यादवकुल तो अबतक वर्तमान है ॥ ३ ॥ यह कुल मेरे आश्रय से रहता है और हाथी घोड़े आदि वैभवों से बढ़उठा है;अतएव दूसरा औरकोई किसी प्रकार से भी इसका पराभव नहीं करसकता। बांस की रगड़ से जैसे अग्नि उत्पन्न होकर उसको समूल नाश करती है मैं भी उसी प्रकार यदुवंशियों में कलह उत्पन्न कराय इनका नाश कर शांति को प्राप्तहो वैकुण्ठ को जाऊं । हेराजन् ! सत्य संकल्प श्रीकृष्णजी ने इसप्रकार दृढ़ निश्चयकर ब्राह्मणों के शापक मिष से अपने वंश का नाश किया ॥ ४—५ ॥ जिसने लोकोंको लावण्यहीन किया, उसी अपनी मूर्त्ति से मनुष्यों के नेत्रों को और वाक्यद्वारा उन समस्त वाक्य स्मरण कारियों के हृदय खिंचकर और नाना स्थानों में अंकित पद चिह्नों से उन समस्तपद चिह्नों के देखनेवाले मनुष्य दूसरे स्थान में जाने आदि शरीर की चेष्टाओं को रोककर इसकेद्वारा निश्चयही क्लेशरहितहो अज्ञान से छूटसकें, इसही अभिप्रायसे पृथ्वी पर कवियों के भलीप्रकार से वर्णनीय कीर्त्ति का विस्तार कर भगवान अपने धाम को गये ॥ ७ ॥ राजा ने कहा कि-हेब्रह्मन्! ब्राह्मणों के हितकारी, दानी, वृद्धों के नित्य सेवक, श्रीकृष्णजी के भक्त यादवों पर ब्रह्मशाप क्यों

यन्निमित्तः सवैशापोयादशोद्विजसत्तम । कथमेकात्मनांभेदएतत्सर्वंवदस्वमे॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशंकर्माऽऽचरन्भुविसुमङ्गलमाप्त कामः । आस्थायधामरममाणउदारकीर्तिःसंहर्तुमैच्छतकुलंस्थितकृत्यशेषः ॥१०॥ कर्माणिपुण्यनिवहानिसुमङ्गलानिगायज्जगत्कलिमलापहराणिकृत्वा । कालात्मना निवसतायदुदेवगेहेपिण्डारकंसमगमन्मुनयोविसृष्टाः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रोऽसितः-कण्वोदुर्वासाभृगुरङ्गिराः । कश्यपोवामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठोनारदादयः ॥ १२ ॥ क्री डन्तस्तानुपव्रज्यकुमारायदुनन्दनाः । उपसंगृह्यपप्रच्छुरविनीताविनीतवत् ॥१३॥ तेवेषयित्वास्त्रीवेषैः साम्बंजाम्बवतीसुतम् । एषापृच्छतिवोविप्राअन्तर्वत्न्यसितेक्ष णा ॥ १४ ॥ प्रष्टुंविलज्जतीसाक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः । प्रसोष्यन्तीपुत्रकामाकिंस्वि त्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥ एवंप्रलब्धामुनयस्तानूचुः कुपितान्नृप । जनयिष्यतिवोम न्दामुसलंकुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वातेऽतिसन्त्रस्ताविमुच्यसहसोदरम् । सा म्बस्यददृशुस्तस्मिन्मुसलंखल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥ किंकृतंमन्दभाग्यैर्नःकिंवदिष्य न्तिनोजनाः । इतिविह्वलितागेहानादायमुसलंययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीयसदसिप रिम्लानमुखश्रियः । राज्ञआवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापंदृष्ट्वाचमुसलंनृप । विस्मिताभयसंत्रस्ताबभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ त च्चूर्णयित्वामुसलंयदुराजःसआहुकः । समुद्रसलिलेप्रास्यल्लोहंचास्यावशेषि तम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहंचूर्णानितरलैस्ततः । उह्यमानानिवेलायांल

कर हुआथा ॥ ८ ॥ हे द्विजवर ! वह शाप कैसा और क्योंकर दियागया ? एकात्मा यादवों में कलह किसप्रकार हुआ ? इस समस्त वृत्तांत को मुझ से कहो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-पूर्णकाम, उदारकीर्ति, श्रीकृष्णजी ने समस्त पदार्थों के आधार स्वरूप, भुवन मोहन रूप धारण करके पृथ्वी पर मङ्गलमय कर्मोंका आचरण कियाथा; किंतु तौभी उनका कर्तव्य शेष रहगयाथा इसही कारण हरि ने घर का आश्रयकर क्रीडा करतेहुए कुल के नाश करने की इच्छा की ॥ १० ॥ उनके समस्तकर्म पुण्यदायी, अति सुख कर और कलि के पापनाशक हैं । बसुदेवके घर में अवतीर्ण होकर भगवान ने उन सब कार्यों को कियाथा ॥ ११ ॥ हेराजन् ! उस समय वि-श्वामित्र,असित,कण्व,दुर्वासा,भृगु,अंगिरा,कश्यप,वामदेव,अत्रि,वशिष्ठ और नारदादिमुनिश्रीकृष्णजी से बिदाले उनकी आज्ञानुसार द्वारकाके निकट पिण्डारक नामक तीर्थ में वास करतेथे ॥१२॥एक समय वहां यदुबंशियों के पुत्र खेलतेरजाम्बवती केपुत्र साम्बको स्त्री वेश से सजाय उनके निकट पहुंचे और उनके चरणपकड़ बिनीत की समान पूँछने लगे कि–हेअमोघ दर्शन विप्रों ! यहकृष्ण लोचना गर्भवती पुत्रकी कामना करती है; इसका प्रसवकाल निकटही है; मुख खोलकर आप से पूँछने में यह लज्जा करती है; इसही कारण हमसे यह आप से पुछवाती है आप कहो कि इसके पुत्र या कन्या क्या होगा ? ॥ १३—१५ ॥ हे नरपते ! मुनिगण इसप्रकार से ठगेजाने पर अ-त्यन्त कुपितहो उनसे कहने लगे कि–रेमंदो ! यह स्त्री तुमसबका कुलनाशक मूषल प्रसव करेगी ॥ १६ ॥ वे यह सुनकर अत्यंत भयभीतहुए और सहसा उसके कृत्रिम उदर को खोला तो उसमें सत्यही लोहमय मूषल देखा ॥ १७ ॥ तबसब " मंद भाग्यता से हमने क्याकिया मनुष्य हमें क्या कहेंगे ? " इस प्रकारकी चिंता से विह्वलहो मूषल को लेकर अपने घर में आये॥१८॥ और मलीन मुखहो उन कुमारोंने यादवों के समीप उस मूषल को रख राजा से उस सबवृत्तांत को कहा ॥ १९ ॥ हेराजन् ! अमोघ ब्रह्मशाप को सुनकर और मूषल को देखकर द्वारकाबासी अत्यंत विस्मित और भय से व्याकुलहोगये ॥ २० ॥ यदुराज उग्रसेन ने उस मूषलका चूर्णकराय समुद्र में फिंकवा दिया और इसकी बचीहुई छोटी कील को भी फिंकवादिया ॥ २१ ॥ कोईमत्स्य

ग्नान्यासन्किलैरकाः ॥ २२ ॥ मत्स्योगृहीतोमत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैःसहार्णवे। तस्यो दरगतंलोहंसशल्येलुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थईश्वरोऽपितदन्यथा। कर्तुंनैच्छद्विप्रशापंकालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकादशस्कन्धे विप्रशापो नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गोविन्दभुजगुप्तायांद्वारवत्यांकुरूद्वह। अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णंकृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ कोनुराजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणाम्बुजम्। न भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदातुदेवर्षिंवसुदेवोगृहागतम्। अर्चितंसुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतोयात्रा स्वस्तयेसर्वदेहिनाम्। कृपणानांयथापित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानांदेवचरितंदुःखायचसुखायच। सुखायैवहिसाधूनांत्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥ भजन्तियेयथादेवान्देवाअपितथैवतान्। छायेवकर्मसचिवाः साधवोदीनवत्सलाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव। याञ्छ्रुत्वाश्रद्धयामर्त्यो मुच्यते विश्वतोभयात् ॥ ७ ॥ अहंकिलपुराऽनन्तं प्रजार्थोभुविमुक्तिदम्। अपूजयंनमोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात्। मुच्यमह्यञ्जसैवाद्धा तथानःशाधिसुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुकउवाच। राजन्नेवंकृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता। प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितोगुणैः ॥ १० ॥ नारदउवाच ॥

उस शेषरही लोहे की कील को निगलगया इधरवह चूर्ण समुद्र की लहरों से खिंचता २ तटपर आलगा ॥ २२ ॥ तदुपरांत एक धीमर ने समुद्र में जाल को डाला तो मत्स्यों समेत वहमत्स्य भी उस जाल में आगया अनंतर एक व्याधे ने उस मत्स्य के पेट से निकलेहुए लोहखण्ड से अपने तीर की अनी बनाई ॥ २३ ॥ सर्व विषयों के जाननेवाले भगवान श्रीकृष्णजी ने समर्थ होकरभी उस ब्रह्मशाप से अन्यथा करने की इच्छा नकी किंतु कालरूपी होकर वैसाही उसका अनुमोदन किया ॥ २४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि–हे कुरूकुल तिलक ! देवर्षि नारदजी श्रीकृष्णजी के दर्शनोंकी इच्छा से गोविंद की भुजाओं से रक्षित द्वारका में सदैवही निवास करते थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इन्द्रिय युक्त कौन मरने वाला मनुष्य देवताओं के भी सेवित श्रीकृष्णजी के चरण कमलको न भजेगा ॥ २ ॥ एक समय देवर्षि नारद द्वारका पुरीमें पूजितहो सुखसे बैठेथे कि वसुदेवजी ने उनसे प्रणाम करके कहाकि–॥ ३ ॥ हे भगवन् ! पुत्रोंके पक्षमें पिता माता के आनेकी समान क्षुद्र मनुष्यों के निकट साधुओं के आनेकी समान भगवत्स्वरूप आपका आना सब प्राणियों के कल्याण के निमित्त है ॥ ४ ॥ देवताओं का चरित्र प्राणियों के पक्षमें दुःख और सुखके निमित्त होता है किन्तु आपकी समान अच्युतात्मा साधुओं के चरित्र केवल सुखकेही निमित्त होते हैं ॥ ५ ॥ जोजिस प्रकार से देवताओं की उपासना करते हैं भजन के अनुसार देवता छायाकी समान उनको उसी प्रकारका फलदेते हैं। किन्तु दीन वत्सल साधू सेवा बिनाही मनुष्यों के कल्याणका यत्न करते हैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके आनेसेही हम कृतार्थ हुए तौभी आप भगवद्धर्मको कि जिसके श्रद्धायुक्त सुनने सेही मनुष्य सबभयों से छूटजाता है वर्णनकरें ॥ ७ ॥ मैंने निश्चयही देव माया से मोहितहो पृथिवीपर मुक्ति देनेवाले उन पुराण पुरुष की पुत्रप्राप्ति के निमित्त पूजाकी है मोक्षपाने के अभिप्राय से नहीं की ॥८॥ हे सुव्रत ! आपकी कृपासे मैं जिससे नाना व्यसनस्थान, भयसे भरेहुए संसार से अनायास मुक्ति पाजाऊं; वह शिक्षा आपदेवें ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि- हे राजन् ! बुद्धिमान वसुदेवजी के इस प्रकार पूछनेपर देवर्षि आनंदित हुए और हरिके गुणोंसे हरिकी स्मृतपाय

सम्यगेतद्व्यवसितं भवताभरतर्षभ । यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावना-न् ॥ ११ ॥ श्रुतोऽनुपठितोध्यात आदृतोवाऽनुमोदितः । सद्यःपुनातिसद्धर्मो देव-विश्वद्रुहोऽपिहि । ॥ १२ ॥ त्वयापरमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः । स्मारितोभग-वानद्य देवोनारायणोमम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । आर्ष-भाणांचसंवादं विदेहस्यमहात्मनः ॥ १४ ॥ प्रियव्रतोनामसुतो मनोःस्वायम्भुवस्य यः । तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मो क्षधर्मविवक्षया । अवतीर्णंसुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वैभरतोज्ये-ष्ठो नारायणपरायणः । विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ सभुक्तभो गांत्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसाहरिम् । उपासीनस्तत्पदवीं लेभेवैजन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नवनवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः । कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशी तिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयोह्यर्थशंसिनः । श्रमणावातर-शना आत्मविद्याविशारदा ॥ २० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धःपिप्पलायनः । आविर्होत्रोऽथद्रुमिलश्चमसःकरभाजनः ॥ २१ ॥ एतेवैभगवद्रूपंविश्वंसदसदा त्मकम् । आत्मनोऽव्यतिरेकेणपश्यन्तोव्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टग-तयःसुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षसुरकिन्नरनागलोकान् । मुक्ताश्चरन्तिमुनिचारणभू तनाथविद्याधरद्विजगवांभुवनानिकामम् ॥ २३ ॥ तएकदानिमेःसत्रमुपजग्मुर्यद-च्छया । वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वासूर्यसंकाशान्म-हाभागवतान्नृप । यजमानोऽग्नयोविप्राःसर्वएवोपतस्थिरे ॥ २५ विदेहस्तानभि-

---

उनसे कहने लगेकि—॥ १० ॥ हे यादव श्रेष्ठ ! तुमने जोसर्व शोधक भागवत धर्मको पूँछा यह तुम्हारा उद्योग है ॥ ११ ॥ हे वसुदेव ! भागवत धर्मके सुनने, पढ़ने, ध्यान धरने, आदर करने और अनुमोदन करने से विश्वद्रोही भी तत्काल पवित्र होसकता है ॥ १२ ॥ तुमने आज मुझको परम कल्याणमय, पुण्यश्रवण, पुण्यकीर्तन, भगवानका स्मरण दिलाया । इस विषयमें ऋषभ देव के पुत्रोंके और विदेह राजके एक प्राचीन इतिहासको कहता हूं सोसुनो ॥१३—१४॥ स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नामक पुत्रके आग्नीध्रपुत्र हुआ आग्नीध्र के नाभि और नाभिके ऋषभ देवहुए ॥ १५ ॥ मनुष्य कहते हैं किवे मोक्षधर्मका उपदेश देनेके निमित्त भगवान के अंशसे अवतीर्ण हुएथे । उनके एकसौ ब्रह्म विद्याके पारगामी पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ नारायण परायण भरत उन सबमें जेठे थे; जिनके नामसे यह अद्भुतवर्ष 'भारत' के नामसे विख्यात हुआ है ॥१७॥ वह भोगोंको भोग इस पृथ्वीको छोड़तीन जन्म तपस्या द्वारा हरिकी पूजाकर उनकी पदवीको प्राप्त हुएथे ॥ १८ ॥ ऋषभ देवके पहिले पुत्रोंमें से नवजन भारत वर्षके अन्तर्गत ब्रह्मावर्त्त आदि नव स्थानों के राजा और इक्यासी जन कर्म मार्गको प्रवृत्त करने वाले ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ कवि, हवि, अंतरीक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविहोत्रि, द्रुमिल, चमस और करभाजन ये नवजन परमार्थ निरूपक, आत्माभ्यास में परिश्रमी, दिगंबर और ब्रह्मविद्यामें निपुण महाभाग मुनिहुए थे ॥२०—२१॥ वेमुनि आत्म निर्विशेष से सदसत् स्वरूप विश्वको भगवत्स्वरूप देख पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ २२ ॥ उनकी इच्छितगति कहीं भी नहीं रुकसकती, ये मुक्तलोग देव, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और नागलोक में तथा मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज, और गौओंके भुवन में इच्छानुसार भ्रमण करते हैं ॥ २३ ॥ एक समय भारत वर्षमें ऋषिगण महात्मा निमिका यज्ञ करते थे; वहांपर वेमुनि इच्छानुसार आये ॥२४॥ हे राजन् ! उन सूर्यकी समान प्रकाशित महा भागवत मुनियोंको देखकर यजमान, अग्नि और ब्राह्मण सबही उठखड़े हुए ॥ २५ ॥ विदेह उन

प्रेत्यनारायणपरायणान् । प्रीतःसंपूजयांचक्रआसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचाब्रह्मपुत्रोपमान्नव । पप्रच्छपरमप्रीतःप्रश्रयावनतोनृपः ॥ २७ ॥ विदेहउवाच ॥ मन्येभगवतःसाक्षात्पार्षदान्वोमधुद्विषः । विष्णोर्भूतानिलोकानांपावनायचरन्तिहि ॥ २८ ॥ दुर्लभोमानुषोदेहोदेहिनांक्षणभङ्गुरः । तत्रापिदुर्लभंमन्येवैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ अतआत्यन्तिकंक्षेमंपृच्छामोभवतोऽनघाः । संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपिसत्सङ्गःशेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूतयदिनःश्रुतयेक्षमम् । यैःप्रसन्नःप्रपन्नायदास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥ नारदउवाच ॥ एवंतेनिमिनापृष्टावसुदेवमहत्तमाः प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्यासमसदस्यर्त्विजंनृपम् ॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्यपादाम्बुजोपासनमत्रनित्यम् । उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मनायत्रनिवर्ततेभीः ॥ ३३ ॥ येवैभगवताप्रोक्ताउपायाह्यात्मलब्धये । अञ्जः पुंसामविदुषांविद्धिभागवतान्हितान् ॥३४॥ यानास्थायनरोराजन्नप्रमाद्येतकर्हिचित् । धावन्निमील्यवानेत्रेनस्खलेन्नपतेदिह ॥ ३५॥ कायेनवाचामनसेन्द्रियैर्वाबुद्ध्यात्मनावानुसृतस्वभावात् । करोतियद्यत्सकलंपरस्मैनारायणायेतिसमर्पयेत्तत् ॥ ३६॥ भयंद्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्यविपर्ययोऽस्मृतिः । तन्माययाऽतोबुधआभजेत्तंभक्त्यैकयेशंगुरुदेवतात्मा ॥३७॥ अविद्यमानोऽप्यवभातिहिद्वयोध्यातुर्धियास्वप्नमनोरथौयथा।तत्कर्मसंकल्पविकल्पकंमनोबुधो

को नारायण परायण जान अत्यंत आनंदित हुए और उनके आसनपर बैठने पर उनकी राजाने यथोचित पूजाकी ॥२६॥ फिर राजाने अपनी २ प्रभासे प्रकाशित ब्रह्मपुत्रकी समान उन नवजन मुनियोंसे विनीत होकरपूछा ॥२७॥ जानपड़ताहै कि आप साक्षात भगवान मधुसूदन के पार्षदहो बिष्णुभक्त प्राणियोंको पवित्र करतेहुए तुम सर्वत्र विचरा करते हैं ॥ २८ ॥ यह मनुष्य देह क्षण भंगुर होने परभी प्राणियोंको दुर्लभ है; जानताहूं कि उस देहसे भी भगवत् प्रिय मनुष्योंके दर्शन पाना कठिनहै॥२९॥ अतएव हे निष्पाप महात्माओं ! आपकी आत्यंतिक कुशलको पूंछता हूं; इस संसार में आधेक्षणका साधुसंगभी मनुष्योंको निधिस्वरूपहै ॥३०॥ हरि जिस धर्मसे प्रसन्न होकर शरणागत मनुष्यको आत्म समर्पण करते हैं वही भागवत् धर्म यदि मेरे सुनने योग्य होतो आप मुझसे कहो ॥ ३१ ॥ नारदजी ने कहा कि–हे बसुदेव ! राजा निमि के इसप्रकार पूछने पर वे महात्मा योगेश्वर प्रीति से सभासद; ऋत्विक् और राजा से कहनेलगे ॥ ३२ ॥ कवि ने कहा कि विचारताहूं कि इससंसारमें भगवान के चरणकमल का सेवनही सबप्रकारके भयों को दूर करने वाला है; मिथ्या देहादि से आत्म बुद्धि के बशहो निरंतर व्याकुल चित्त मनुष्यों के सबप्रकार के भय उससे निवृत्तहोजाते हैं ॥ ३३ ॥ भगवान ने मूर्खों को भी आत्मज्ञान पाने के निमित्त अति सहज जो समस्त उपाय अपने मुख से वर्णन किये हैं उन्हीं सबको भागवत धर्म जानो ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! इनसब का अवलम्बन करने से मनुष्य विघ्नों से दुःखित नहीं होना और इनसबधर्मों से आंखमूंदकर दौड़ने परभी स्खलित वा पतित नहीं होना ॥ ३५ ॥ शरीर, वाक्य, मन, इंद्रिय बुद्धि और अहंकार के अनुगामी स्वभाववाला प्राणी जो कर्म करे उन सबकोही परमेश्वरमें अर्पण करना चाहिए ॥ ३६ ॥ परमेश्वर की माया सेही भय उत्पन्न होता है; ईश्वर से विमुख मनुष्यों के हृदय में उनकी माया के बलसेही स्वरूप का प्रकाश नहीं होसकता; उससेही 'यहही आत्मा है ? इसप्रकार की बुद्धि हुआकरती है । अतएव पण्डितको उचित है कि गुरुकोही ईश्वर और आत्मस्वरूपसे देखऐकांतिकभक्तियुक्त उनभगवानकी भलीप्रकारसे पूजाकरे॥३७॥द्वैत प्रपंच वास्तव में असत् होनेपर भी ध्यानकरनेवाले के मनसेही स्वप्न और मनोरथ की समान प्रकाशित होता है

निरुन्ध्यादभयंततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्सुभद्राणिरथाङ्गपाणेर्जन्मानिकर्माणिचयानिलोके। गीतानिनामानितदर्थकानिगायन्विलज्जोविचरेदसङ्गः ॥ ३९ ॥ एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्याजातानुरागोद्रुतचित्तउच्चैः। हसत्यथोरोदितिरौतिगायत्युन्मादवन्नृत्यतिलोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खंवायुमग्निंसलिलंमहींचज्योतींषिसत्त्वानिदिशोद्रुमादीन्। सरित्समुद्रांश्चहरेः शरीरंयत्किंचभूतंप्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवोविरक्तिरन्यत्रचैषत्रिकएककालः। प्रपद्यमानस्ययथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिंभजतोऽनुवृत्त्याभक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः। भवन्तिवैभागवतस्यराजंस्ततः परांशान्तिमुपैतिसाक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथभागवतंब्रूतयद्धर्मोयादृशोनृणाम्। यथाऽऽचरतियद्ब्रूतेयैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषुयः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः। भूतानिभगवत्यात्मन्येषभागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरेतदधीनेषुबालिशेषुद्विषत्सुच। प्रेममैत्रीकृपोपेक्षायःकरोतिसमध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेवहरयेपूजांयः श्रद्धयेहते। नतद्भक्तेषुचान्येषुसभक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्योनद्वेष्टिनहृष्यति। विष्णोर्मायामिदं पश्यन्सवैभागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियांयोजन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः। संसारधर्मैरविमुह्यमानःस्मृत्याहरेर्भागवतप्रधानः ॥ ॥ ४९ ॥ नकामकर्मबीजानांयस्यचेतसिसम्भवः। वासुदेवैकनिलयःसवैभागव-

अतएव कर्मों के संकल्प विकल्प करनेवाले मनकोही दमन करना चाहिए; इसके उपरांत फिर भय नहीं रहता ॥ ३८ ॥ भगवान के सुंदर जन्म और कर्मोंका वृत्तांत मनुष्यों में गायाजाता है उन सब जन्म और कर्मोंके चरित्रोंको सुन उनका निर्लज्ज भावसे गानकर निष्काम हृदय से बिचरण करना चाहिये॥३९॥इस प्रकारसे करनेपर वह मनुष्य प्रियहरिके नामों से प्रेमी और श्लथ हृदय (द्रवीभूत) हो बेवश उन्मत्त की समान उच्चहास्य करता है कभी रोदन, चीत्कार, गानकरता है और कभी नृत्य करता रहता है ॥ ४० ॥ वह आकाश, जल, अग्नि, वायु, पृथिवी, ज्योतिश्चक्र, प्राणिगण, दिशाएं, वृक्षादि, नदी और समुद्र यहांतक कि समस्त प्राणियों कोही भगवत्स्वरूप जानकर प्रणाम करता है ॥ ४१ ॥ जैसे भोजन करनेवाले मनुष्यको प्रतिग्रास मेंहीसुखउदरपोषण और क्षुधा की निवृत्ति होती है तैसेही भगवद्भक्त के भक्ति, प्रेम के आश्रयरूप भगवानके स्वरूप की स्फूर्ति और विराग ये तीनों एक कालही में उत्पन्नहोते हैं ॥ ४२॥हेराजन्!जोभगवद्भक्त अविच्छिन्नतासे भगवान के चरणों की सेवा करते हैं उन के इसी प्रकार की भक्ति, बिरक्ति और भगवत् स्वरूपकी स्फूर्ति होती है; तदनन्तर वे परमशांति को प्राप्त करते हैं ॥ ४३॥ राजानिमि ने कहा कि—इस समय मनुष्यों में से किस को भागवत कहाजासकता है ? उनका धर्म,स्वभाव आचरण, उक्ति और जिन चिह्नों से भगवान का प्रिय होवे उन सब का बर्णन करिये ॥ ४४ ॥ हरि योगेश्वर ने कहा कि—जो स्वयं प्राणियों को भगवद्भाव से और भगवदात्मा में सब प्राणियों को देखता है वही उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ जो ईश्वर से प्रेम, उस के भक्तों से मित्रता,मूर्खों पर कृपा, बैरियों पर उपेक्षा करता है भेददर्शनवाला वह बैष्णव मध्यम है ॥ ४६ ॥ जो श्रद्धायुक्त प्रतिमा में हरि की पूजाकरता है और भक्त वा दूसरे किसी पदार्थकी पूजा नहीं करता वह प्राकृत बैष्णव है ॥ ४७ ॥ भगवान में मन लगाकर, जो इंद्रियोंद्वारा विषय भोगकर इस विश्व को बिष्णुकीही मायाजान किसी से द्वेष नहीं करता और न आनन्दितही होता है वही उत्तम बैष्णव है ॥ ४८ ॥ भगवान का स्मरणरहने से जो शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और इंद्रियों के यथा क्रम से सांसारिक धर्म, जन्म, मृत्यु, क्षुधा, भय, तृष्णा और श्रम से मोहित नहीं होता वहीश्रेष्ठ भागवत है ॥ ४९ ॥ जिसके चित्त में बासना नहीं है और भगवानही जिनका एक अवलम्बनहै

तोत्तमः ॥ ५० ॥ नयस्यजन्मकर्मभ्यांनवर्णाश्रमजातिभिः। सज्जतेऽस्मिन्नहंभा वोदेहेवैसहरेःप्रियः ॥ ५१ ॥ नयस्यस्वःपरइतिवित्तेष्वात्मनिवाभिदा। सर्वभूत समःशान्तःसवैभागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिर- जितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्। नचलतिभगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपियः सवैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवतउरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकयानिरस्त तापे। हृदिकथमुपसीदतांपुनःसप्रभवतिचन्द्रइवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥ विसृजति हृदयंनयस्यसाक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः। प्रणयरशनयाधृतांघ्रिपद्मः सभवतिभागवतप्रधानउक्तः ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा० म० ए० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

राजोवाच ॥ परस्यविष्णोरीशस्य मायिनामपिमोहिनीम्। मायांवेदितुमि च्छामोभगवन्तोब्रुवन्तुनः ॥ १ ॥ नानुतृप्येजुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम्। संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूता निभूतात्मा महाभूतैर्महाभुज। ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥३॥ एवंसृष्टानिभूतानि प्रविष्टः पंचधातुभिः। एकधादशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥४॥ गुणैर्गुणान्सभुञ्जान आत्मप्रद्योतितैःप्रभुः। मन्यमानइदं सृष्टमात्मान मिहसज्जते॥ ५ ॥ कर्माणिकर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत्। तत्तत्कर्मफलं

वही परम भागवत हैं ॥ ५० ॥ जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति की उत्तमता से जिसके इस देह में अहंता नहीं उत्पन्न होती वही भगवत् प्रिय है ॥ ५१ ॥ धन और देह विषय में जिन को अपने और पराए का भेद ज्ञान नहीं है; और जो शांत व सब प्राणियों को समान देखते हैं वेही वैष्णवों में उत्तम हैं। ५२ ॥ ब्रह्मादि देवतागण जिन भगवच्चरणों को रातदिन, ध्यान व खोजने परभी नहीं पाते, उन्हीं हरि चरणों को सबतत्त्वों का तत्त्वज्ञान.चक्रवर्त्ती राज्य पाने के निमित्त भी आधा लव व आधा निमेष भी उससे चलायमान नहीं होते वेही श्रेष्ठ वैष्णव हैं ५३॥ जैसे चन्द्रमा के उदयहोने से तपन अपने प्रभावताप का विस्तार नहीं करसकती,वैसेही भगवान के परमपराक्रमी दोनों चरणों की उंगलियों के नखमणिकी स्निग्धकांति से भक्तों के हृदयका ताप नाश होने पर फिर वह ताप अपनी सामर्थ्य का प्रकाश नहीं करसकता ॥५४॥ विवश होकरभी जिसका नाम लेने से पाप दूरहोजाते हैं वेही हरि प्रेम पाशसे बंधकर जिसके हृदयमेंनिरंतर विरा- जमान रहते हैं वेही श्रेष्ठ वैष्णव हैं ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

राजा निमिने कहा कि–परमपुरुष परमेश्वर विष्णुकी माया मायावियोंकोभी मोह उत्पन्नकराती है। उस मायाके विषयमें जानने की इच्छा करता हूं। हे भगवत् मुझसे कहो ॥ १ ॥ हम मर्त्य संसारी तापोंसे अत्यंत संतप्त होरहे हैं; उस तापकी औषधि अमृतमय हरिचरित्र आपके वाक्यों का सेवन करके भी तृप्त नहीं होते ॥ २ ॥ अंतरीक्षने कहा कि–हे महाबाहो ! भूतात्मा आदि पुरुष हैं, अपने अंश प्राणियों के विषय भोग और मुक्ति के निमित्त भगवानने इन सब महाभूतों से ऊंच नीच प्राणियों की उत्पत्ति की है ॥ ३ ॥ इसही कारण पंचमहाभूतों से रचे हुए प्राणियों के मध्य में अंतर्यामी रूपसे प्रवेश कर मनद्वारा एक और इन्द्रियों द्वारा दश प्रकार से विषयोंके विभाग कर जीवोंको वे विषय भोग भुगवाते हैं ॥ ४ ॥ उन्ही प्रभु के आत्म परिचालित गुणों से विषयों का भोग करता हुआ प्राणी इस रचेहुए शरीरको आत्माजान उसमें आसक्त होजाता है ॥ ५ ॥ प्राणी इन्द्रियोंद्वारा विषय वासनाओंके कर्म करता हुआ दुःख मय कर्म फलके इस सं-

गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥६॥ इत्थंकर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाःपुमान्। आभूतसम्प्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लवआसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् । अनादिनिधनःकालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षाह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणाभुवि । तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः । दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ ॥ १० ॥ सांवर्तकोमेघगणो वर्षतिस्मशतंसमाः । धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयतेसलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततोविराजमुत्सृज्य वैराजःपुरुषोनृप । अव्यक्तं विशतेसूक्ष्मं निरिन्धनइवानलः ॥ १२ ॥ वायुनाहृतगन्धाभूःसलिलत्वायकल्पते । सलिलंतद्धृतरसंज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपंतुतमसा वायौज्योतिःप्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसिलीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभआत्मनिलीयते । इन्द्रियाणिमनोबुद्धिः सहवैकारिकैर्नृप । प्रविशन्तिह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ ॥ १५ ॥ एषामायाभगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी । त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिर्भूयः किंश्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच । यथैतामैश्वरींमायां दुस्तरामकृतात्मभिः । तरन्त्यंजःस्थूलधियो महर्षइदमुच्यताम् ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्माण्यारभमाणानांदुःखहत्यैसुखायच । पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणांनृणाम्॥१८॥ नित्यार्तिदेनवित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना। गृहापत्याप्तपशुभिः काप्रीतिःसाधितैश्चलैः॥१९॥

सार मे विचरण करता है ॥६॥ यह पर तंत्रजीव इसप्रकार से अनेक दुःखदायी कर्मोंकी गतियों को पाताहुआ प्रलय काल तक जन्म मरण का भोग करता रहता है ॥ ७ ॥ महाभूतोंका नाश निकट वर्ती होनेपर अनादि अनंत काल इस स्थूलसूक्ष्मात्मक जगत को ईश्वर की ओर खींचता है ॥ ८ ॥ जब प्रलय होगा तब पृथिवी पर सौवर्ष तक अत्यन्त भयानक अनावृष्टि होगी उस समय प्रचंड सूर्य अत्यन्त प्रखर किरणोंसे तीनोंलोकको अत्यन्त संतप्त करेगा ॥ ९ ॥ अनंतर शेषनागके मुखसे उत्पन्नहुआ अग्नि ऊंची शिखाका होउठेगा और वायुसे चालित हो दग्ध करता २ पातालही से सब दिशाओं में फैल जावेगा ॥ १० ॥ सांवर्तक नामक मेघगण हाथी के शुंडकी समान धाराओं से सौवर्ष तक बरसेगें; ब्रह्माड जल में लीन होजायगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस के उपरांत वैराज पुरुष (विराट् पुरुष) ब्रह्माण्डको छोड़कर काष्ठ रहित अग्निके समान सूक्ष्म कारण (परमेश्वर) में प्रवेश करेगा ॥ १२ ॥ पृथिवी वायुसेहरी जाकर जलरूप होजावेगी और जलभी वायुसे हराजाकर ज्योतिरूप धारण करेगा ॥ १३ ॥ ज्योति अंधकारके प्रभाव से हृतरूप होकर वायुमें, वायु अपने कारणीभूत आकाश से स्पर्शगुण वर्जितहो आकाश में । और आकाश काल रूपी ईश्वर से हृतगुणहो तामस अहंकार में लीन होजावेगा। हे नरनाथ ! इन्द्रिय और बुद्धि राजसिक अहंकार में; वैकारिक देवताओं समेत मन सात्विक अहंकार में और अहंकार अपने गुणों समेत महत्तत्व में प्रविष्ट होगा ॥ १४–१५ ॥ महत्तत्व भी प्रकृति में लीन होजावेगा। मैंने इस समय भगवान की इस सृष्टि स्थिति संहार करने वाली त्रिगुण मायाका वर्णन किया, अब क्या सुनने की अभिलाषा करतेहो ॥ १६ ॥ राजा निमिने कहाकि–हे महर्षे ! जोअंतःकरण के बशकरने में समर्थ नहीं होते, वे स्थूल बुद्धि मनुष्य जिसप्रकार इस ईश्वरी मायासे अनायास पार होसकें कृपा करके उसका वर्णन करिये ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध ने कहाकि–मनुष्य स्त्री पुरुष के सम्बंध से बद्ध होकर दुःख नाश और सुख के निमित्त कर्म करते रहते हैं, किंतु उससे बिपरीत फल देखाजाता है ॥ १८ ॥ देखो, निरंतर पीड़ा देनेवाले दुर्लभ तथा मृत्युरूप धन, घर, पुत्र, बंधु और पशुआदि सबही चंचल हैं, अतएव अनर्थकर अर्थादि प्राप्त करके भी क्या प्रीति होती है

एवंलोकंपरंविद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम्। सतुल्यातिशयध्वंसं यथामण्डलवर्तिनाम्॥ २० ॥ तस्माद्गुरुंप्रपद्येत जिज्ञासुःश्रेयउत्तमम्॥ शाब्देपरेचनिष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥ २१ ॥ तत्र भागवतान्धर्मान्शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः। अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदोहरिः॥ २२ ॥ सर्वतोमनसोऽसंगमादौ संगंचसाधुषु। दयांमैत्रींप्रश्रयंच भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥ २३ ॥ शौचंतपस्तितिक्षांच मौनं स्वाध्यायमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसांच समत्वंद्वन्द्वसंज्ञयोः॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्। विविक्तचीरवसनं सन्तोषंयेनकेनचित्॥ २५ ॥ श्रद्धांभागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापिहि। मनोवाक्कर्मदण्डंच सत्यंशमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणंकीर्त्तनंध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः। जन्मकर्मगुणानांच तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥२७॥ इष्टंदत्तंतपोजप्तं वृत्तंयच्चात्मनः प्रियम्। दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम्॥ २८ ॥ एवंकृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषुचसौहृदम्। परिचर्यांचोभयत्र महत्सुनृषु साधुषु॥ २९ ॥ परस्परानुकथनं पावनंभगवद्यशः। मिथोरतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥ ३० ॥ स्मरन्तःस्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्। भक्त्यासंजातयाभक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकांतनुम्॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्तिनन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः। गायन्तिनृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्तितूष्णीं परेत्य निर्वृताः॥ ३२ ॥ इतिभागवतान्धर्मान्शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया॥ नारायणपरो

॥ १९ ॥ लोक इसी प्रकार से कर्म निर्मित्त और अत्यंत नश्वर हैं यह जानना और यह भी जानना कि—मंडलाधिपति राजाओंको जैसे समानको समानसे डाह, प्रधानसे ईर्षा और नाशकी शंकासे भयहोता है उसी प्रकार समस्त लोकोंमेंभी समानको समान से डाह, श्रेष्ठ से ईर्षा और नाशकी शंका का भय वर्तमान है ॥ २० ॥ अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको शब्द ब्रह्मका पारगामी और परब्रह्म में निमग्न उपशमावलम्बी गुरूकी शरणलेना आवश्यक है ॥ २१ ॥ आत्मप्रद हरि जिनधर्मों से संतुष्ट होते हैं, गुरूकोही आत्मा और देवता जानकर निष्कपटहो उसकी सेवाकर वहां उनही धर्मको सीखें ॥ २२ ॥ पहिलेतो सब विषयों से मनकी निःसंगता, साधुओं के साथ संग, यथोचित रूपसे सब प्राणियों पर दया, मित्रता और बिनय ॥ २३ ॥ शौच, स्वधर्माचरण, क्षमा, वृथा बकबाद न करना, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख दुःखादि द्वन्द्वोंमें समता॥२४॥सर्वत्र आत्मदृष्टि,ईश्वरमेंदृष्टि एकांत बास,शीलता,गृहादिपर अभिमान शूरता, पवित्र वस्त्र पहिनना, सर्व बिषयों में संतोष ॥ २५ ॥ भगवत् शास्त्रमें श्रद्धा, अन्य शास्त्रों की अनिंदा, मन वाक्य और कर्मका संयम, सत्य, शम और दम ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म्मा हरिके जन्म कर्म और गुणोंका कीर्तन, श्रवण और ध्यान, उनके उद्देश से समस्त कर्मोंका अनुष्ठान ॥२७॥ और यजन, दान, तपस्या, जप, आत्मप्रिय,सदाचार, और स्त्री, घर, पुत्र व प्राणये सब सेवकता से ईश्वर के अर्पण करने ॥ २८ ॥ इस रीतिसे श्रीकृष्णजी जिनके आत्मा और नाथ हैं उन सब के साथ मित्रता, स्थावर जंगम दोनों की और मनुष्यों की विशेषकर साधुओं की उनमें से भगवद्भक्तों की पूजा ॥ २९ ॥ परस्पर में भगवान के यशका गाना, परस्पर मे प्रीति, परस्पर में संतुष्टता और जिससे आत्माका दुःखदूरहोवे इनसब धर्मोंको गुरूके यहां सीखे ॥ ३० ॥ इसप्रकार पापों के नाश करने वाले हरिका परस्पर स्मरण करते और स्मरण कराते साधन भक्तिसे उत्पन्न हुई प्रेमभक्ति द्वारा भक्तोंका शरीर रोमांचित होजाता है ॥३१॥ ऐसे हरिके प्यारे भक्त कभीरोते कभीहंसते, कभीनाचते, कभीगाते, कभीआनंद प्रकाश करते, कभी अलौकिक बातें कहते, कभी भगवान की लीलाका अनुकरण करते हैं इस प्रकार से वे भगवानको प्राप्त होनेसे सुखीहो मौन भाव धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे वे भागवत धर्मोंकी शिक्षा करते हुए उससे उत्पन्न

मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । निष्ठामर्हथनोवक्तुं यूयंहिब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥ पिप्पलायनउवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च । देहेन्द्रियासुहृदयानिचरन्तियेन संजीवितानितदवेहिपरं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनोविशतिवागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणिच यथाऽनलमर्चिषःस्वाः । शब्दोपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृतेननिषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वंरजस्तमइति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमितिप्रवदन्तिजीवम् । ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैवभातिसदसच्चतयोःपरंयत् ॥ ३७ ॥ नात्माजजानन मरिष्यति नैधतेऽसौनक्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणांहि । सर्वत्रशश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणोयथेन्द्रियबलेन विकल्पितंसत् ॥ ३८ ॥ अण्डेषुपेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणोहिजीवमुपधावतितत्रतत्र । सन्नेयदिन्द्रियगणेऽहमिव प्रसुप्तेकूटस्थ आशयमृतेतदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥ यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानिविधमेद्गुणकर्मजानि । तस्मिन्विशुद्धउपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच । कर्मयोगंवदतनः पुरुषोयेनसंस्कृतः । विधूयेहाशुकर्माणि नैष्कर्म्यंविन्दतेपरम् ॥ ४१ ॥ एवंप्रश्नमृषीन्पू-

हुई भक्तिसे नारायणमें परायणहो दुस्तर माया से बलपूर्वक पार होजाते हैं ॥ ३३ ॥ राजा निमिने कहाकि–हे ऋषियों ! आप ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठहो अतएव परब्रह्म परमात्मा में जिस प्रकार से निष्ठाहोवे वह मुझसे कहिये ॥ ३४ ॥ पिप्पलायन ने कहा कि–जोइस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण और स्वयं कारण से वर्जित हैं, जोस्वप्न, जागृत और सुषुप्ति दशामें तथा बाहर से समाधि आदिमें सद्रूप से वर्तमान हैं, देह, इन्द्रिय, प्राण और मन जिनके द्वारा चैतन्य हो अपने २ कार्यमें प्रवृत्त होते हैं हे नरनाथ ! उन्हींको परम तत्वजानो ॥ ३५ ॥ जैसे चिनगारियें अग्निको प्रकाशित वा दग्धनहीं करसकतीं, तैसेही मन, वाक्य, नेत्र, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियें इस तत्वको ग्रहण नहीं करसकतीं । जिसकी निषेध के अतिरिक्त समाप्ति नहीं है वेद उसको अर्थोक्ति रूपसे 'यह नहीं वह नहीं' करके निरूपण करता है परन्तु उसका साक्षात् निरूपण नहीं करसकता । कार्य और कारण समस्तही उस ब्रह्मरूपमेंही प्रकाशपाते हैं क्योंकि बिविधशक्तिशालीब्रह्म इनदोनों काही कारण है । सृष्टिके पहिले केवल एक ब्रह्महीं प्रधान रूपसे कथित हुआ ॥३६॥ वही सत्व,रज,तमसे त्रिगुणात्मक,फिरवही क्रियाशक्तिसे सूत्र और ज्ञानशक्तिसे महत्नाम से प्रसिद्धहुआ । उसही को 'मैं' ऐसा जीवोपाधिक अहंकार कहाजाताहै । अंतमें वही देवता,इंद्रिय,बिषय औरसुखादि रूपसे प्रदर्शित हुआ; वही उरुशक्ति ब्रह्महीं कार्य,कारण और कारणके भी कारण हैं ॥३७॥ परमात्माका जन्म, मरण, वृद्धि और क्षय कुछभी नहीं है; क्योंकि वे जन्म बिनाश शाली सब पदार्थों की विशेष २ अवस्थाके साक्षी हैं सर्व देश और सर्व काल में अखण्डरीति से जो ज्ञान चलाआता है आत्मा उसी का आश्रय है । जैसे प्राण इंद्रियबल द्वारा, कल्पित है, तैसेही ब्रह्मज्ञान विधि रूप से कल्पितहुआ है ॥ ३८ ॥ जैसे प्राण विशेष २ रूपसे अण्डज, जरायुज,स्वेदज और उद्भिज सब जीवों का अनुसरण करता है; उसी प्रकार सुषुप्ति दशामें इंद्रियों के और अहंतत्त्व के बिलीन होनेपर बिकारके कारण लिंग शरीर के आश्रयभाव से आत्मा का साक्षात्अनुभव होता है और सुषुप्ति से उठे पीछे अपने को स्मृति होती है ॥ ३९ ॥ तदनन्तर जब भगवान के चरणकमलों की इच्छा से उत्पन्न हुई बड़ी भक्तिद्वारा मनुष्य गुण कर्मों से उत्पन्नहुए चित्त के मलको नाशकरता है तभी वह दृष्टि निर्मल होनेपर सूर्य के प्रकाश की समान चित्त शुद्ध होनेपर साक्षात् आत्मतत्व को प्राप्त करता है ॥ ४० ॥ राजा निमिने कहा कि—जिसकर्म योगसे मनुष्य संस्कृतहो इस लोक में शीघ्रही कर्मों को छोड़कर निवृत्तिसे उत्पन्नहुए परमज्ञान को प्राप्तहोवे

वैमपृच्छंतिपितुरन्तिके। नाब्रुवन्ब्रह्मणःपुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥४२॥ आविर्होत्र उवाच। कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः। वेदस्यचेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्तिसूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादोवेदोऽयं बालानामनुशासनम्। कर्ममोक्षायकर्माणिविधत्तेह्यगदंयथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तुवेदोक्तंस्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः। विकर्मणाह्यधर्मेणमृत्योर्मृत्युमुपैतिसः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेवकुर्वाणोनिःसङ्गोर्पितमीश्वरे। नैष्कर्म्यांलभतेसिद्धिंरोचनार्थाफलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ यआशुहृदयग्रन्थिंनिर्जिहीर्षुःपरात्मनः। विधिनोपचरेद्देवंतन्त्रोक्तेनचकेशवम् ॥ ४७ ॥ लब्ध्वानुग्रहआचार्यात्तेनसंदर्शितागमः। महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥ ४८ ॥ शुचिःसंमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः। पिण्डंविशोध्यसंन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौहृदयेचापियथालब्धोपचारकैः। द्रव्यक्षित्यात्मलिङ्गानिनिष्पाद्यप्रोक्ष्यचासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथसंनिधाप्यसमाहितः। हृदादिभिःकृतन्यासोमूलमन्त्रेणचार्चयेत् ॥ ५१ ॥ साङ्गोपाङ्गांसपार्षदांतांतांमूर्तिंस्वमन्त्रतः। पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैःस्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः। साङ्गंसंपूज्यविधिवत्स्तवैःस्तुत्वानमेद्धरिम् ॥ ॥ ५३ ॥ आत्मानंतन्मयंध्यायन्मूर्तिंसंपूजयेद्धरेः। शेषामाधायशिरसास्वधाम्न्युद्वास्यसत्कृतम् ॥ ५४ ॥ एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौहृदयेचयः। यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यतेहिसः ॥ ५५ ॥ इतिश्रीमद्भागवते म० पु० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वह आप मुझ से कहिए ॥ ४१ ॥ मैंने पहिले पिता इक्ष्वाकु के सामने ब्रह्म सनकादिकों से इसही प्रश्नको पूँछाथा किंतु उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया उसका कारण कहिये ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र ने कहा कि—कर्म, अकर्म और विकर्म येसब वेदवाक्य हैं,पुरुष वाक्य नहीं;वेद भी ईश्वरसेउत्पन्न हुए हैं पण्डितलोग इसही से मोहित होते रहते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे बालकों को नानाप्रकार की प्रवृत्तियें देकर औषधि दीजाती है वैसेही परोक्षवाद यह वेदकर्मसेही मुक्ति के निमित्त कर्मों का उपदेशकरता है ॥ ४४ ॥ किंतु जो अजितेन्द्रिय मूर्ख मनुष्य स्वयं वेदोक्त कार्य नहीं करते वे वेदोक्त कर्म नहीं करने रूप अधर्म से बारम्बार जन्म मरणरूप मृत्युपाशसे बद्ध होतेरहते हैं ॥४५॥ मनुष्य निःसंग होकर ईश्वरमें अर्पण करतेहुए वेदोक्त कार्य करनेसेही ज्ञान सिद्धिको प्राप्त करसकताहै, वेदमें कहेहुए वाक्य "जैसे स्वर्गादिककी कामनाकर कर्म करनेसे स्वर्गादिक मिलताहै" आदि तो केवल प्ररोचनार्थ (रुचिके हेतु) है ॥ ४६ ॥ जिसको जीवात्माके अहंकार बन्धन के काटनेकी इच्छाहोवे उसको वैदिक विधिके साथही तन्त्रोक्त विधिसे श्रीकृष्णजीकी पूजा करनी चाहियें ॥ ४७ ॥ गुरुके अनुग्रह प्राप्तकरके उनकी दिखाईहुई पूजा प्रणालीके अनुसार अपनी इच्छित मूर्त्तिसे महापुरुषकी पूजा करनी चाहियें ॥ ४८ ॥ पवित्रभावसे प्रतिमाके सन्मुख बैठकर प्राणायाम और भूत शुद्धि आदि द्वारा देहको शुद्धकर भगवानकी पूजा करना चाहिये ॥४९॥ प्रतिमादिमें वा हृदय में पहिले पुष्पादि, मिट्टी, आत्मा और प्रतिमाको पूजितकर प्राप्तहुए उपचारों से पूजा करे फिर पाद्यादि पात्र बनाय एकाग्रभाव से हृदय में पूजीहुई मूर्त्तिका ध्यानकरे तदनन्तर हृदयादि न्यासकर मूलमन्त्रसे पूजाकरे ॥ ५० । ५१ ॥ अंग उपांग समेत सपरिवार उस मूर्त्तिकी पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय, गन्ध, चावल, माला, धूप, दीप और नैवेद्य आदि से अपने २ मन्त्रोंसे पूजाकरे। विधिवत् पूजा और स्तुतिकर भगवानको प्रणामकरे ॥ ५२ । ५३ ॥ अपने को तन्मय विचार भगवानकी मूर्त्तिका पूजन करना चाहिये और निर्माल्यको मस्तकपर धारणकर पूजित मूर्त्तिको अपनेस्थानपर रख पूजासमाप्तकरे॥५४॥जो मनुष्य इसप्रकार तांत्रिक कर्म योगके अनुसार अग्नि, सूर्य, जलादि, अतिथि वा अपनेहृदयमें आत्मभावसे ईश्वरकी पूजाकरे वह शीघ्रही मुक्तिकोपावेगा॥५५॥इतिश्रीमद्भा० महापुराणे एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः॥३॥

राजोवाच ॥ यानियानीहकर्माणियैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः । चक्रेकरोतिकर्ता वाहरिस्तानिब्रुवन्तुनः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ योवाअनन्तस्यगुणाननन्तानुक्रमिष्यन्सतुबालबुद्धिः । रजांसिभूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेननैवाखिलशक्तिधाम्नः॥२॥ भूतैर्यदापञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरंविराजंविरचय्यतस्मिन् । स्वांशेनविष्टः पुरुषाभिधानमवापनारायणआदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्कायएषभुवनत्रयसन्निवेशोयस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि । ज्ञानंस्वतः श्वसनतोबलमोजईहासत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भवआदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृतीरजसाऽस्यसर्गेविष्णुःस्थितौक्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः । रुद्रोऽप्ययायतमसापुरुषः सआद्यइत्युद्भवस्थितिलयाः सततंप्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्यदक्षदुहितर्यजनिष्टमूर्त्यांनारायणोनरऋषिप्रवरः प्रशान्तः । नैष्कर्म्यलक्षणमुवाचचचारकर्मयोऽद्यापिचास्तऋषिवर्यनिषेवितांघ्रिः ॥ ६ ॥ इन्द्रोविशंक्यममधामजिघृक्षतीतिकामंन्ययुङ्क्तसगणंसबदर्युपाख्यम् । गत्वाऽप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥७॥ विज्ञायशक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राहप्रहस्यगतविस्मयएजमानान् । माभैर्विभोमदनमारुतदेववध्वोगृह्णीतनोबलिमशून्यमिमंकुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थंब्रुवत्यभयदेनरदेवदेवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणंतमूचुः नैतद्विभोत्वयिपरेऽविकृतेविचित्रंस्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे

राजाने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णजीने स्वाधीन रूपसे अवतार ले जिस २ जन्म में इस लोकमें जोरकर्म कियेथे वा करतेहैं वा करेंगे आप हमसे उन सबको कहिये॥१॥द्रुमिलने कहाकि जो मनुष्य भगवान के अनंत गुणोंके गिननेकी इच्छा करता है वह अत्यन्त अदूरदर्शी है । बहुत समयमें किसी प्रकारसे पृथिवीके रजकण गिने जासकते हैं किंतु अखिल शक्तिके आधार भगवान के गुण कर्मों की गणना नहीं कीजासकती ॥ २ ॥ आत्म सृष्ट पंचभूत द्वारा ब्रह्माण्ड देह निर्माण कर जब अपने अंशसे उसमें प्रवेश हुए तब आदिदेव नारायणने पुरुषसंज्ञाप्राप्त की । यह त्रिभूवन उनका शरीर है ॥ ३ ॥ उनकी इन्द्रियों से प्राणियों के दोनों प्रकारकी इन्द्रियें ; उनके निज-स्वरूप भूत सत्वसे ज्ञान और उनके प्राणसे देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति और क्रिया शक्ति उत्पन्नहुई है । वह सत्वादि द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार कार्यके आदि कर्त्ता हैं ॥ ४ ॥ आदिसे जिसके रजोगुण द्वारा इसजगत के उत्पत्ति कार्यमें ब्रह्मा; सत्वद्वारा—पालन कार्यमें विष्णु और संहार कार्य में रुद्र तत्पर हैं, जिनसे इन प्रजाओं की सर्वदा स्थिति, पालन और संहार होता रहता है वेही आदि पुरुष हैं, ॥ ५ ॥ दक्षकी पुत्री धर्मकी स्त्री मूर्त्ति के गर्भ से शांत ऋषिश्रेष्ठ नर नारायण ने जन्म ग्रहण किया । उन्होंने कर्मत्याग और धर्मका उपदेश किया और वैसाही आचरणभी किया था । अब भी प्रधान ऋषिगण उनके चरणों की सेवा करते हैं ॥ ६ ॥ उनकी उत्कट तपस्यासे शंकित होकर इन्द्रने बिचारा कि इनने तपोबलसे मेरे स्थानके ग्रहण करनेकी इच्छा की है । इस शंकासे उसने सपरिवार कामदेवको उन ऋषिके निकट भेजा । कामदेवने उनके प्रभावको न जान बदरी नामक आश्रम में जाय अप्सरा गण, बसंत, सुंदर वायु और स्त्रियोंके कटाक्ष रूप बाणोंसे उनको विद्ध किया ॥ ७ ॥ गर्वरहित आदि देव इन्द्रके अपराधको जानकरभी, शापके भयसे कंपित शरीर—कामदेव आदि से गर्व शून्यहो हँसकर कहनेलगे कि—हे क्षमताशालीमदन ! हे वायु ! हे देवांगनाओं ! भय न करो; मेरे आतिथ्य सत्कारको ग्रहणकरो , इसआश्रमको शून्यकरके न जाना ॥ ८ ॥ हे राजन् अभय देनेवाले नारायणके इसप्रकारसे कहनेपर देवताओंने लज्जितहो नीचा शिरकर उनदयालु से कहा—हे विभो ! आप मायासे पर निर्विकारहो , आत्माराम सब मनुष्य आपके चरण कमलों को प्रणाम करते हैं; आपमें ऐसी दयालुता और जितेन्द्रियपनता

॥ ९ ॥ त्वांसेवतांसुरकृताबहवोऽन्तरायाः स्वौकोविलंघ्यपरमंव्रजतांपदंते । नान्यस्यबर्हिषिबलीन्ददतः स्वभागान्धत्तेपदंत्वमवितायदिविघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वयशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्यकेचित् । क्रोधस्ययान्तिविफलस्यवशंपदेगोर्मज्जन्तिदुश्चरतपश्चवृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥ इतिप्रगृणतांतेषांस्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः । दर्शयामासशुश्रूषांस्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ तेदेवानुचराद्दृष्ट्वास्त्रियः श्रीरिवरूपिणीः । गन्धेनमुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाहदेवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव । आसामेकतमांवृङ्ध्वंसवर्णांस्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादायनत्वातंसुरबन्दिनः । उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठांपुरस्कृत्यदिवंययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रायानम्यसदसिशृण्वतांत्रिदिवौकसाम् । ऊचुर्नारायणबलंशक्रस्तत्रासविस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवददच्युतआत्मयोगंदत्तःकुमारऋषभोभगवान्पितानः । विष्णुः शिवायजगतांकलयावतीर्णस्तेनाहृतामधुभिदाश्रुतयोहयास्ये ॥ १७ ॥ गुप्तोऽप्ययेमनुरिलौषधयश्चमात्स्येक्रौडेहतोदितिजउद्धरताम्भसः क्ष्माम् । कौर्मेधृतोऽद्रिरमृतोन्मथनेस्वपृष्ठेग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतितान्श्रमणानृषींश्चशक्रंचवृत्रवधतस्तमसिप्रविष्टम् । देवस्त्रियोऽसुरगृहेपिहिताअनाथाजघ्नेऽसुरेन्द्रमभयायसतांनृसिंह ॥ १९ ॥

कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ॥ ९ ॥ जो आपकी सेवा करते हैं उनके पक्ष में देवताओं के किये हुए अनेक विघ्न होते रहते हैं कारण कि वे देवधाम स्वर्गको लांघकर आपके परमधाम को जाते हैं। दूसरे को वे सब विघ्न नहीं होसकते। और जो देवताओं को निज २ भाग देते हैं देवता उनका भी विघ्न नहीं करते। किंतु आप जिसके रक्षक हैं निश्चयही विघ्न उसके मस्तकपर पदाघात करते हैं ॥ १० ॥ कोई २ अपार समुद्र रूप क्षुधा, तृष्णा, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, वायु, रसास्वाद और इंद्रियों के विशेष २ भोग रूप अधीनता से पारहो निष्फल क्रोध के वशवर्त्तीहो गौ के खुरमें डूबजाते हैं और कठिन तपस्याको वृथाही परित्याग करदेते हैं ॥ ११ ॥ उन देवताओं के इस प्रकार से कहने पर विभुनारायण ने उनके अहंकार नाश करने के निमित्त भलीप्रकार से सजी हुई स्वरूपवती स्त्रियों को प्रगट करके दिखाया ॥ १२ ॥ वेसब देवानुचर, मूर्त्तिमती लक्ष्मी की समान स्त्रियों को देख उनके रूप और उदारता से श्रीभ्रष्टहो उनके शरीर की सुगंधिसेही मोहित होगए ॥ १३ ॥ तब देव देवेश्वर उन शरणागत देवताओं से हंसकर कहनेलगे कि इनमें से अपनी स्त्रियों से भी स्वरूपवती एक स्त्री को स्वर्गभूषणरूप से लेलो ॥ १४ ॥ 'जो आज्ञा' कह नारायण की आज्ञाले नमस्कारकर वे देवताओं के बंदीजन अप्सराओं में प्रधान उर्वशी को ले स्वर्ग में गये ॥ १५ ॥ और सभा में बैठेहुए देवताओं को प्रणामकर सबके सामनेही इंद्रसे नारायण के प्रभावका वर्णन किया। इंद्र इनसे औरभी त्रासित हुआ ॥ १६ ॥ हंसस्वरूपी दत्तात्रेय, सनकादिकुमार हमारे पिता भगवान ऋषभदेव इन्होंने जगत्के कल्याणार्थ विष्णुके अंश से अवतारले योग का उपदेश किया मधुरिपु हयग्रीव ने अवतार धारण कर वेद संग्रह किये ॥ १७ ॥ भगवान ने मत्स्यावतार धारणकरके मनु, पृथ्वी और औषधियों की विपदसे रक्षाकीथी; बराह अवतार में जल से पृथ्वी उद्धार करने के समय हिरण्याक्ष को मारा; कूर्मावतार में अमृत मंथन कालमें पीठ में पर्वत धारण किया और ग्राह के मुख से विपद्ग्रस्त कातर गजराज को छुड़ाया ॥ १८ ॥ नृसिंहावतार में गौके खुर में डूबेहुए स्तुतिकारक बालखिल्य ऋषियों की रक्षाकी; वृत्त के मारने के कारण ब्रह्महत्यारूप पातक में डूबेहुए इंद्र का उद्धार किया। असुर के घर में रोकीहुईअनाथ देवांगनाओं को विपद्से छुड़ाया और साधुओं के अभय के कारण असुरपति हिरण्यकशिपु को

देवासुरेयुधिचदैत्यपतीन्सुरार्थेहत्वाऽन्तरेषुभुवनान्यदधात्कलाभिः । भूत्वाऽथ वामनइमामहरद्बलेः क्ष्मांयाच्ञाच्छलेनसमदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृतगांचत्रिः सप्तकृत्वोरामस्तुहैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः । सोऽब्धिंबबन्धदशवक्त्रमहन्सलङ्कंसीतापतिर्जयतिलोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाययदुष्वजन्माजातः करिष्यतिसुरैरपिदुष्कराणि । वादैर्विमोहयतियज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छुद्रान्कलौक्षितिभुजोन्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥ एवंविधानिकर्माणिजन्मानिचजगत्पतेः । भूरीणिभूरियशसो वर्णितानिमहाभुज ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजोवाच । भगवन्तंहरिंप्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमसउवाच । मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह । चत्वारोजज्ञिरेवर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥ यएषांपुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् । नभजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाःपतन्त्यधः ॥ ३ ॥ दूरेहरिकथाः केचिद्दूरेचाच्युतकीर्तनाः । स्त्रियःशूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्याभवादृशाम् ॥ ४॥ विप्रोराजन्यवैश्यौच हरेःप्राप्ताःपदान्तिकम् । श्रौतेनजन्मनाऽथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाःस्तब्धा मूर्खाःपण्डितमानिनः । वदन्तिचाटुकान्मूढा ययामाध्व्यागिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसाघोरसङ्कल्पाः कामुकाअरिमन्यवः । दा

मारा ॥ १९ ॥ सब मन्वन्तरों में देवताओं के उपकारार्थ देवासुर संग्राम में अंशोंद्वारा दैत्यपतियों का नाशकर जगत का पालन किया । वामनहो मांगने के मिष से बलिसे पृथिवी का हरण कर देवताओं कोदी ॥ २० ॥ हैहय बंश के नाश करने को अवतीर्णहुए भार्गवाग्नि परशुरामजी ने इक्कीसबार पृथिवी को निःक्षत्रिया किया । अब रामावतार में समुद्र का पुलबांध लंका में रहेहुए रावण का नाश करेंगे; लोकों के पापों को हरनेवाला कीर्त्तिशाली रामचन्द्रजी का अवतार सर्वश्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ भगवान पृथिवी का भार दूर करने के निमित्त यदुकुल में अवतारले देवताओं केभी न करने योग्य कर्मों को करेंगे; यज्ञमें अनधिकारी यज्ञकरनेवाले दैत्यों को अहिंसावाद से बुद्धावतार धारण करके मोहित करेंगे; अंत में कल्कि अवतार धारणकर कलियुग के शूद्र राजाओं को मारेंगे ॥ २२ ॥ हे महाबाहो ! बड़ी कीर्त्तिवाले नारायण के ऐसे ऐसे अनेकों जन्म और कर्म वर्णित हैं ॥ २३ ॥

इतिश्री मद्भागवतेमहापुराणेएकादशस्कंधे सरलाभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजा निमिने कहाकि–हे आत्मवेत्ता ऋषियो ! प्रायः बहुत से मनुष्य भगवान हरिकी उपासना नहीं करते; वेसब अजितेन्द्रिय हैं अतएव अनिवृत्ति काम मनुष्यों की गति क्या होती है ? ॥ १ ॥ चमस ने कहाकि–गुणद्वारा ब्राह्मणादि चारवर्ण और पृथक् २ आश्रम उन आदि पुरुष के मुख, भुजा, उरु और पैरसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ इनमें से जोसाक्षात् अपने २ उत्पन्न करने वाले ईश्वर की उपासना नहीं करते अथवा तिरस्कार करते हैं वे स्थानाच्च्युतहो नरक में गिरते हैं ॥ ३ ॥ जिनसे हरिकथा का कहना व सुनना दूर है ऐसे कितने एक मनुष्यों और स्त्रियें व शूद्रों पर आप सरीखे मनुष्योंको कृपा करके उनको सुधारना चाहिये ॥ ४ ॥ जन्म, उपनयन और अध्ययनादि द्वारा भगवान के चरणों की निकटता प्राप्त करके भी ब्राह्मण अथवा क्षत्री और वैश्यवेद के अर्थवाद से मोहित होते रहते हैं ॥ ५ ॥ कर्म में अपण्डित, विनीत, मूर्ख, और पण्डिताभिमानी लोगमीठे वाक्यों से मोहित होकर मीठी २ वातें केवल मूर्खता से करते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुण होने से अभिचारादि घोर संकल्प करने वाले, कामी सांपकी समान क्रोधी, पाखण्डी,

ऽभिकामानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदन्तितेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषुमैथुन्यपरेषु चाशिषः । यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यैपरंघ्नन्तिपशून् तद्विदः ॥ ८ ॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्ययात्यागेन रूपेणबलेनकर्मणा ॥ जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषुशश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् । वेदोपगीतंच नशृण्वतेऽबुधा मनोरथानांप्रवदन्तिवार्तया ॥ १० ॥ लोकेव्यवायाऽऽमिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्नहितत्रचोदना । व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनंचधर्मैकफलंयतो वै ज्ञानंसविज्ञानमनुप्रशान्ति । गृहेषुयुंजन्तिकलेवरस्य मृत्युं नपश्यन्तिदुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥ यद्घ्राणभक्षोविहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं नहिंसा । एवंव्यवायःप्रजयानरत्या इदंविशुद्धंनविदुःस्वधर्मम् ॥ १३ ॥ येत्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाःसदभिमानिनः । पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्यखादन्तितेचतान् । ॥ १४ ॥ द्विषन्तःपरकायेषु स्वात्मानंहरिमीश्वरम् । मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ताये चातीताश्चमूढताम् । त्रैवर्गिकाह्यक्षणिका आत्मानंघातयन्तिते ॥१६॥ एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञानेज्ञानमानिनः । सीदन्त्यकृतकृत्यावै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ हित्वाऽत्यायासरचिता गृहापत्य-

अभिमानी पापी मनुष्य हरिभक्त साधुओंका उपहास करते हैं ॥ ७ ॥ स्त्रिय सेवक वे सब मनुष्य मैथुन सुखकोही प्रधानमान घरमें बसकर परस्पर कल्याण की बातें करते रहते हैं । दक्षिणा,अन्न दान वा दक्षिणा का विधान नकरयाग करते हैं और भली प्रकार अवगत न होकर केवल जीविका के निमित्तही पशुओं की हिंसा करते रहते हैं ॥ ८ ॥ दुष्टजन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, उत्तमकुल में जन्म, विद्या, दान, रूप, बल, और कर्मों से उत्पन्न हुए मदसे अंधबुद्धिहो साधुओं और ईश्वर का तिरस्कार करते हैं ॥९ ॥ मूर्ख मनुष्य देहहीमें आकाश की समान निरंतर स्थित अभीष्टदेव वर्णित ईश्वर आत्मा का श्रवण नहीं करते; क्योंकि वे मनोरथरूपी कल्पित विषयोंको ले कथोपकथन करते रहते हैं। जगतमें स्त्रीसंग,मांस भक्षण और सुरापान करना यह सब प्राणियोंके इच्छाधीन है अतएव वेद प्रवृत्ति काही निरूपण करता है ॥ १० ॥ विवाह में स्त्री संसर्ग, यज्ञमें पशुहत्या और सुराग्राह नामक कार्यमें मद्यपान करना, वेदमें यह व्यवस्थादी हुई है, किंतु इन सब कर्मों से निवृत्त होने परही परम मंगल है ॥ ११ ॥ जिस धर्मसे अपरोक्ष ज्ञान तदनंतर निर्वाण रूप परमशांति उत्पन्न होवे वही धर्म धनका एक मात्रफल है मूर्खलोग ऐसे देहादि के कल्याण कारी धनसे धनी होकरभी अपार पराक्रम वाले मृत्युको नहीं देखते ॥ १२ ॥ वेदमें सुराका सूंघना आहार रूपसे कहागया है इसी प्रकार देवताही के निमित्त पशुवधकी भी आज्ञा है इस प्रकारका पशुवध हिंसा नहीं है, अपने मांस भक्षण करने की वेदमें आज्ञा नहीं है । इसी प्रकार संतान के निमित्तही स्त्री संग विहित हुआ है किन्तु रतिके निमित्त नहीं; अतएव मनोरथवादी मनुष्य इस शुद्धधर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥ इस प्रकार के धर्मको न जानने वाले जो मूर्ख, गर्वित, मदाभिमानी असाधु मनुष्य निःशंक भावसे पशुहिंसा करते हैं वेही सबपशु परलोक में उनका भक्षण करते रहते हैं ॥ १४ ॥ जो अभिचारादि से दूसरे के शरीर स्थित आत्मा हरिसे द्वेष करता है वह पुत्रादि समेत इस देहसे स्नेह बद्धहो नरक में गिरता है ॥ १५ ॥ जोअधबीच लटकने वाले (न अज्ञानी न तत्वज्ञानी) धर्म अर्थ, कामकोही प्रधान और देहादिकको नित्य जानते हैं अतएव तत्व ज्ञानको नहीं प्राप्त हुए । वह अपने सत् आत्माको असतही जानते हैं ॥ १६ ॥ ऐसे अशांत, आत्मघाती और अज्ञान कोही ज्ञान जानने वाले मनुष्यों के कालसे मनोरथ निष्फल होजाते हैं तबवे अकृत कार्य होकर दुःखपाते हैं ॥ १७ ॥ भगवान वासुदेव से बहिर्मुख ऐसे मनुष्य

सुहृच्छ्रियः । तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच । कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः ।। नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच । कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः । नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्डकमण्डलू ॥ २१॥ मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः । सुहृदः समाः । यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥२२॥ हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः । ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः । हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् । यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ।२५। विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः । वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः । श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् । यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ।।२८।। नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ।। २९ ।। नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ! विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् । नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१॥ कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् । यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।। ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्था

इच्छा न करनें परभी आत्म मायासे बिरचित घर, पुत्र, सुहृद और लक्ष्मीको त्यागकर नरक में गिरते हैं ॥ १८ ॥ निमिराजाने कहा कि—वह भगवान किस समय में, कैसा आकार धारणकर कैसे बर्णके हो, किस नाम और किस प्रकार से मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं ? आपकृपा करके उनका वर्णन करिये ॥ १९ ॥ करभाजन ने कहा कि—हे राजन् ! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगोंमें भगवान नानावर्ण, नानानाम, नाना प्रकार के आकार धारणकर नाना विधिसे पूजित होते रहते हैं ॥ २० ॥ सत्य युगमें भगवान श्वेतवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी, वल्कल बस्त्र पहिने और कृष्ण मृगचर्म, यज्ञोपवीत, माला, दंड, कमंडल, धारणकिये विराजमान रहते हैं ।। २१ ।। तबशांत, बैर रहित, सुहृद, समदर्शी मनुष्य ध्यान, शम और दमसे उन देवकी पूजा करते हैं ।। २२ ।। इस युगमें भगवान हंस, सुपर्ण, बैकुंठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष अव्यक्त और परमात्मा इनसब नामोंसे गायेजाते हैं ।। २३ ॥ त्रेता युगमें यह रक्तवर्ण, चतुर्भुज, तीन मेखला धारणकिये, पीलेकेश, वेदमय और स्रुक स्रुवादि चिह्नोंसे चिह्नित रहते हैं ॥ २४ ॥ तब धर्मिष्ठ, ब्रह्मवादी मनुष्य सर्व देवमय उनदेव हरिकी वेदत्रयीमें कहेहुए कर्मोंद्वारा पूजाकरते हैं ॥ २५ ॥ इस युगमें भगवान विष्णु यज्ञ, पृश्निपुत्र, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत और उरुगाय इन सब नामोंसे गायेजाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापर में भगवान श्यामवर्ण, पीताम्बर पहिने, अपने अस्त्र शस्त्र शंख चक्रादि धारी और श्रीवत्सादि चिह्नोंसे चिह्नित रहते हैं ॥ २७ ॥ उस समय मनुष्यगण ईश्वर के जानने की अभिलाषाकर महाराज चिह्नसे चिह्नित पुरुष की वेद और तंत्र के अनुसार पूजाकरते हैं ॥ २८ ॥ बासुदेव, संकर्षण, आप भगवान प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ऋषि, पुरुष, महात्मा, बिश्वेश्वर, विश्वरूपी सर्वभूतात्मा आप को नमस्कार है ॥ २९।३० ॥ हे महीपते ! द्वापर में मनुष्य यह कहकर भगवान की पूजा करते हैं । कलिमें भी नाना तंत्रों के अनुसार जिसप्रकार श्रीहरि पूजित होते हैं उसको सुनो ॥ ३१ ॥ उस समय बिवेकीमनुष्य कृष्ण बर्ण, अंगउपांग, अस्त्र और पार्षदों समेत बहुत २ अर्चनाओं से पूजा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे महा

स्पदं शिवविरिञ्चिनुतंशरण्यम् ।भृत्यार्तिहंप्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्देमहापुरुष तेचरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठआर्यवचसायदगादरण्यम्। मायामृगंदयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुषतेचरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥ एवंयुगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः । मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरोहरिः ॥ ३५ ॥ कलिंसभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाःसारभागिनः । यत्रसंकीर्तनेनैव सर्वःस्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ नह्यतःपरमोलाभो देहिनांभ्राम्यतामिह । यतोविन्देतपरमांशांतिं नश्यतिसंसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषुप्रजा राजन्कलाविच्छन्ति संभवम् । कलौखलुभविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषुचभूरिशः । ताम्रपर्णीनदीयत्र कृतमालापयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरीचमहापुण्या प्रतीचीचमहानदी । येपिबन्तिजलंतासां मनुजामनुजेश्वर । प्रायोभक्ताभगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणांन किंकरोनायमृणीचराजन् । सर्वात्मनायःशरणं शरण्यं गतोमुकुन्दंपरिहृत्यकर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलंभजतःप्रियस्य त्यक्तान्यभावस्यहरिः परेशः । विकर्मयच्चोत्पतितंकथंचिद्धुनोति सर्वंहृदिसन्निविष्टः ॥ ४२ ॥ नारदउवाच ॥ धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाऽथ मिथिलेश्वरः जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायोह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्यपश्यतः । राजाधर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमांगतिम् ॥४४॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवतांश्रुतान् । आस्थितःश्रद्धयायुक्तो निःसंगोयास्यसे

पुरुष आप सर्वदा ध्यान करने योग्य, सांसारिक दुःख के नाशक, मनोरथ के पूर्ण करनेवालेतीर्थों के आश्रय रूप ! शिव ब्रह्मासे स्तुति कियेजाते, शरणागत भक्तों के पीड़ानाशक, भक्तोंकेरक्षक भवसागर के नौकाहो आप के चरणों की बंदना करते हैं, ॥ ३३ ॥हे महापुरुष आप अतिधर्मिष्ठ हो;क्योंकि पिता के केवल बचनों कोही मानकर आप दुस्त्यज राज्यलक्ष्मी को छोड़ बनमें गयेथे, वहां प्यारी के इच्छित माया मृग का अनुसरण कियाथा; आप के चरणों को प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! कलियुग में उत्पन्नहुए मनुष्य इसप्रकार से नाम और मूर्त्तिद्वारा सब कल्याणो के ईश्वर मुक्तिदाता हरि की पूजाकरते रहते हैं ॥ ३५ ॥ गुण के जाननेवाले सारभागी श्रेष्ठमनुष्य कलिकाही सब युगों की अपेक्षा आदरकरते हैं, क्योंकि केवल कीर्त्तन द्वाराही इस युग में समस्त पुरुषार्थ प्राप्त होते रहते हैं ॥ ३६ ॥ इस संसारमें भ्रमणशील मनुष्यों को इसकी अपेक्षा परमलाभ और नहीं है । क्योंकि इससेही परमशांति प्राप्त होती है और इससेही संसार का बंधन दूरहोता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! सत्यादियुग के सब मनुष्य कलिमेंही जन्म की इच्छा करते हैं । हे महाराज ! कलि में किसी २ स्थान में मनुष्य भगवद्भक्त होवेंगे; ॥ ३८ ॥ जैसे ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी, महापुण्या, प्रचीती—और महानदी बहती हैं उसी द्रविड़ देश में बहुत से हरिभक्त होवेंगे । हे लोकनाथ ! जो मनुष्य इन नदियों का जल पीते हैं वह प्रायः भगवान बासुदेवपरभक्तियुक्त होते हैं और उनके अंतःकरण शुद्धि प्राप्त करते हैं ॥ ३९—४० ॥ हे राजन् ! जिसने काम छोड़कर काय, मन, बाक्य से शरणागत पालक भगवान के चरणों की शरणली है वह देवता, ऋषि, प्राणी, कुटुम्ब, मनुष्य और पित्रों का किंकर (दास) वा ऋणी नहीं है। भगवत्चरण सेवी प्रियभक्त यदि कभी प्रमादवश निषिद्ध कर्म से पतित होवे तो भगवान हरि उसके हृदय में प्रवेश कर उन समस्त पापों का नाश करते हैं ॥ ४१—४२ ॥ नारदजी ने कहा कि—उस मैथिलराजने इसप्रकार के भागवत् धर्म कोसुन प्रसन्नहो उपाध्यायों समेत उन ऋषियों की पूजाकी ॥ ४३ ॥ अनंतर सबमनुष्योंके सन्मुखही वे सिद्ध अंतर्ध्यान होगये । राजा ने उन सब धर्मों का अनुष्ठान कर परम गति प्राप्तकी ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! आप भी श्रद्धायुक्त और निः

परम् ॥ ४५ ॥ युवयोःखलुदम्पत्योर्यशसा पूरितंजगत् । पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरोहरिः ॥ ४६ ॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मावांपावितः कृष्णे पुत्रस्नेहंप्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेणयंनृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः । ध्यायन्तआकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियांपुनःकिम् ॥ ४८ ॥ माऽपत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णेसर्वात्मनीश्वरे । मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्येपरेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तयेसताम् । अवतीर्णस्य निर्वृत्यैयशोलोकेवितन्यते॥५०॥ श्रीशुकउवाच । एतच्छ्रुत्वामहाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः । देवकीचमहाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमंपुण्यं धारयेद्यःसमाहितः । सविधूयेहशमलं ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् । भवश्चभूतभव्येशो ययौभूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इन्द्रोमरुद्भिर्भगवाना दित्यावसवोऽश्विनौ । ऋभवोऽङ्गिरसोरुद्रा विश्वेसाध्याश्चदेवताः ॥२॥ गन्धर्वाप्सरसोनागाः सिद्धचारणगुह्यकाः । ऋषयःपितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वेकृष्णदिदृक्षवः । वपुषायेनभगवान् नरलोकमनोरमः ॥ यशोवितेनलोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यांविभ्राजमानायां समृद्धायांमहर्द्धिभिः । व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तोयदूत्तमम् ।

संगही इन समस्त शुभभागवत धर्मों का आचरण करो; इसही से परमपद प्राप्त करसकोगे४५॥ आपका यश जगत में परिपूर्ण है क्योंकि भगवान ईश्वर हरि आप के पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णजी पर पुत्रका स्नेह होने से आपका आत्मा उनके दर्शन, आलिंगन, स्पर्शन, शयन, भोजन और संगही बैठने आदि से निर्मल हुआ है ॥ ४७ ॥ जब शिशुपाल, पौण्ड्रकऔर शाल्वादि राजा शयन और भोजन काल में गति, विलास और दृष्टि आदिद्वारा उनकी आकृतिका ध्यानकर उनकी गति को प्राप्तहुएथे; तब जिनकामन सदैवही उनमें लगारहता है उनकी तोबात ही क्या कहूं ॥ ४८ ॥ सर्वात्मा ईश्वर श्रीकृष्णजी को पुत्र न जानो, माया के कारण मनुष्यभाव से उनका ऐश्वर्य गुप्त है; वह अव्यय, पुरुष ॥ ४९ ॥ पृथिवी के भारभूत असुरावतार राजाओं के नाश और साधुओं की रक्षा करने के निमित्त अवतीर्ण हुए हैं । उनका यश मनुष्यों की मुक्ति के निमित्त संसार में विख्यात होरहा है ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—महाभाग बसुदेवजी और महाभागा देवकी ने यहसुन अत्यन्त विस्मितहो आत्मा का मोह दूर किया ॥५१॥ जोमनुष्य एकाग्रचित्तहो इस पवित्र इतिहास को आदरपूर्वक धारण करता है वह सांसारिक मोह से छूटकर मोक्ष को प्राप्तहोता है ॥ ५२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—एक समय ब्रह्माजी अपने पुत्रों, देवताओं और लोकपालों से घिरकर सर्व मंगलमय महादेवजी भूतोंसे वेष्टित हो ॥ १ ॥ मरुद्गणों समेत इन्द्र; बसु, आदित्यगण, अश्विनीकुमार, अंगिरस, रुद्र, विश्वेदेवा ॥२॥ गन्धर्व अप्सराएं नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नरादि सबही श्रीकृष्णजीके दर्शनोंके निमित्त द्वारकामें आये । जिन भगवान श्रीकृष्णजीने देह द्वारा मनुष्योंके मन रमण कराने वाले होकर जगतमें सब मनुष्यों के पाप नाशक यशका बिस्तार किया था ब्रह्मादि को उन्हींके दर्शन की इच्छा थी ॥ ३ । ४ ॥ वे समृद्धि युक्त देदीप्यमान नगरी में विराजमान अद्भुत दर्शन श्रीकृष्णजी को अतृप्त नेत्रोंसे देखने

गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवाऊचुः ॥ नताःस्मतेनाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः । यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदिभावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वंमाययात्रिगुणयात्मनिदुर्विभाव्यं व्यक्तंसृजस्यवसिलुम्पसितद्गुणस्थः । नैतैर्भवानजितकर्मभिरज्यतेवै यत्स्वेसुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥८॥ शुद्धिर्नृणांनतुतथेड्यदुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः । सत्त्वात्मनामृषभतेयशसिप्रवृद्धसच्छ्रद्धयाश्रवणसंभृतयायथास्यात् ॥ ९ ॥ स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाययोमुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः । यःसात्वतैःसमविभूतयआत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितःसवनशःस्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यतेप्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्यानिरुक्तविधिनेशहविर्गृहीत्वा । अध्यात्मयोगउतयोगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिःपरमभागवतैःपरिष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टयातवविभोवनमालयेयं संस्पर्धिनीभगवतीप्रतिपत्निवच्छ्रीः । यःसुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्तेभयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः । स्वर्गायसाधुषुखलेष्वितरायभूमन् पादःपुनातुभगवन्भजतामघंनः ॥ १३ ॥ नस्योतगावइवयस्यवशेभवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतोमिथुरर्द्यमानाः । कालस्यतेप्रकृतिपूरुषयोःपरस्यशंनस्तनोतुचरणःपुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि

और स्वर्गीय फूलोंकी मालासे यदुश्रेष्ठ को आवृत कर मनोहर पद और अर्थयुक्त वाक्योंसे स्तुति करने लगे ॥ ५—६ ॥ देवताओं ने कहाकि—हे नाथ ! कर्ममय दृढ़ पाशसे छूटने की इच्छा कर ऋषिगण हृदय में जिनका ध्यान करते हैं, हम, बुद्धि इन्द्रिय, प्राण, मन, और बचनों द्वारा आपके उन्हीं चरण कमलोंको प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ हे अजित ! आप मायागुण में स्थितिकर त्रिगुण मायासे इस अतर्कनीय विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं; परन्तु उन सब कर्मों में आपलिप्त नहीं होते, क्योंकि आप रागादि दोष रहित, आचरण रहित आत्म सुख निरतहो ॥८॥ हे पूज्य ! हे श्रेष्ठ ! आपके यशके सुनने से पुष्टहुई उत्तमश्रद्धा द्वारा साधुओंको जिस प्रकार की शुद्धिहोती है विद्या, श्रुत, अध्ययन, दान, तपस्या और कर्मों में आसक्त हुए मनुष्य वैसी शुद्धि नहीं प्राप्त करसकते ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! मुनिलोग मुक्तिके निमित्त प्रेमार्द्र हृदय से आपके जिन चरणोंकी उपासना करते हैं; भक्तलोग आपका सा ऐश्वर्य पानेके निमित्त जिनकी वासुदेवादि मूर्त्ति से पूजाकरते हैं और धीर मनुष्य स्वर्गका लोभ छोड़कर बैकुंठ के निमित्त जिनकी त्रिकाल पूजा करते हैं, यज्ञ करने वाले हाथजोड़ हविग्रहण कर वेदोक्त विधिसे जिनका ध्यान करते हैं, आत्म मायाके खोजने वाले योगीजन अध्यात्मयोग से जिनका भजन करते हैं, और परम भागवत जिन की सर्वत्र सर्वतोभाव से आराधना करते हैं वही चरण कमल हमारी विषय वासनाओंको निर्मूल करें ॥ १०—११ ॥ हे विभू ! लक्ष्मीजी सौती की समान इस पर्यूषिता बनमाला के साथ डाह करती रहती हैं तौभी बनमाला भक्तोंकी अर्पण की हुई है ऐसा बिचार आप बनमाला से कीहुई भक्तोंकी पूजाको भलीभांति अंगीकार करतेहो, उन्हीं आपके चरण हमारी बिषय बासनाओं के नाश करने के निमित्त धूमकेतु होवें ॥ १२ ॥ हे भूमन् ! हे भगवन् ! आपका जो चरण कमल बलिराजा के बांधने के समय पराक्रम युक्त ध्वज स्वरूप हुआ था, तीन धारवाली गंगा जिसकी पताका स्वरूप हुई थीं, जोदेवता और असुरों की सेनाओंको अभय और भय देनेवाला है और जो साधुओंको स्वर्ग स्वरूप व असाधुओंको नरक स्वरूप है उसीका हम भजन करते हैं हमको पापों से शुद्धकरिये ॥ १३ ॥ आप प्रकृति पुरुष के पर, काल रूपीहो, परस्पर द्वेषादिक से पीड़ितहुए ब्रह्माआदि सबही प्राणी नाकछिदे रस्सीसे बंधेहुए बैलकी समान आपके वशीभूत हैं, आपके चरण

हेतुरुदयस्थितिसंयमाना मव्यक्तजीवमहतामपिकालमाहुः। सोऽयंत्रिणाभिरखिला पचयेप्रवृत्तः कालोगभीररयउत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तःपुमान्समधिगम्यय यास्यवीर्यं धत्तेमहान्तमिवगर्भममोघवीर्यः । सोऽयंतयाऽनुगतआत्मनआण्डको शं हैमंससर्जबहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थुषश्चजगतश्चभवानधीशो यन्मा ययोत्थगुणविक्रियथोपनीतान् । अर्थाञ्जुषन्नपिहृषीकपतेनलिप्तो येऽन्येस्वतःपरि हृतादपिबिभ्यतिस्म ॥ १७ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि भ्रूमण्डलप्रहित सौरतमन्त्रशौण्डैः । पत्न्यस्तुषोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुंकरणैर्न वि भ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितःशमला निहन्तुम् । आनुश्रवंश्रुतिभिरंघ्रिजमङ्गसंगैस्तीर्थद्वयंशुचिषदस्तउपस्पृशन्ति॥१९॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूयविबुधैः सेशःशतधृतिर्हरिम् । अभ्यभाषतगोवि न्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुराविज्ञापितः प्रभो । त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्चस्थापितःसत्सु स त्यसन्धेषुवैत्वया । कीर्तिश्चदिक्षुविक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२॥ अवतीर्ययदो र्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् । कर्माण्युद्दामवृत्तानि हितायजगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि तेचरितानीश मनुष्याःसाधवःकलौ । शृण्वन्तःकीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यंजसातमः ॥ २४ ॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतःपुरुषोत्तमः । शरच्छतंव्यतीयाय पंचविंशाधि कंप्रभो ॥ २५ ॥ नाधुनातेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् । कुलंचविप्रशापेननष्ट

हमारा मंगलकरें ॥ १४ ॥ आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारणहो, आप प्रकृति, पुरुष और महत्तत्व के नियंताहो । आपही त्रिनाभि (तीनभाग) युक्त, सबके नाशमें प्रवृत्त, गम्भीर वेगशाली कालहो, अतएव आपही उत्तम पुरुषहो ॥ १५ ॥ जिस अमोघ पराक्रम पुरुष ने स्वयंही शक्ति प्राप्तकर, गर्भकी समान, मायाके साथ महत्तत्व धारण किया उसही पुरुष ने उस मायाके अनुसारीहो बाहरी आवरणों समेत हेमअंडकोषरचा है ॥ १६ ॥ हे हृषीकेश ! आप स्थावर जंगमों के अधीश्वरहो क्योंकि मायासे प्रकाशित इन्द्रियों की वृतियों द्वारा प्राप्तहुए सब विषयोंको भोगकर भी आप उनमें लिप्त नहीं होते, किन्तु आपसे भिन्न और सबही स्वयं मिथ्या स्वरूप विषयों से भीतहोते रहते हैं ॥ १७ ॥ सोलह सहस्र स्त्रियें मंदहास्य युक्त कटाक्ष दृष्टिद्वारा सूचित कियेहुए अभिप्राय से मनोहर भौंहों से प्रेरित काम कलादिक साधनों सेभी आपके मनको मोहित न करसकीं ॥ १८ ॥ अतएव आपकी कथा रूप अमृत जल वाहिनी और चरण धोनेके जल रूप नदियां त्रिलोकी का पाप धोनेको समर्थ हैं, स्वस्व आश्रम धर्मावलंबी मनुष्य वेदविहित तीर्थों का श्रवणेन्द्रिय द्वारा और चरणों से उत्पन्न हुए तीर्थों का निःसंग संग द्वारा सेवन किया करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—महादेवजी और ब्रह्माजी ने देवताओं समेत आकाशका आश्रय ले भगवान की इस प्रकार से स्तुति व प्रणामकर कहा ॥ २० ॥ ब्रह्माजी ने कहाकि—हे अशेषात्मन् ! हे प्रभो ! प्रथम हमने पृथिवीका भार हरनेके निमित्त आपको जनायाथा, तब आपने अवतार धारणकर पृथिवीका भारदूर किया ॥ २१ ॥ आपने सत्य प्रतिज्ञ साधुओंका धर्म स्थापन किया है, सब मनुष्यों के पाप हरने वाली कीर्तिका भी सब दिशाओं में विस्तार किया है, सर्वोत्तम रूप धारणकर यदुकुल में अवतीर्णहो जगतके कल्याण के निमित्त बड़े २ पराक्रमके कार्य किये हैं ॥ २२—२३ ॥ हे ईश्वर ! आपके उन सब चरित्रोंको सुनकर व गायकर कलियुग में साधूजन सहसा अज्ञान से पार होवेंगे ॥ २४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! हे विभो ! आपको यदुवंश में अवतार लिये एकसौ पचीस वर्ष बीतगये । हे अखिलाश्रय ! इस समय अब आपका कोई देव कार्य शेष नहीं

प्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततःस्वधामपरमंविशस्वयदिमन्यसे । सलोकाँलोकपालान्नः पाहिवैकुण्ठ किंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थविबुधेश्वर । कृतंवःकार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ तदिदंयादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् । लोकंजिघृक्षद्रुद्धं मेवेलयेवमहार्णवः ॥ २९ ॥ यद्यसंहृत्यदृप्तानां यदूनांविपुलंकुलम् । गन्तास्म्यनेनलोकोऽयमुद्वेलेनाविनंक्ष्यति ॥३०॥ इदानींनाशआरब्धः कुलस्यद्विजशापतः । यास्यामिभवनंब्रह्मन्नेतदन्तेतवानघ३१॥ श्रीशुकउवाच ॥ इत्युक्तोलोकनाथेन स्वयम्भूःप्रणिपत्यतम् । सहदेवगणैर्देवः स्वधामसमपद्यत ॥ ३२ ॥ अथतस्यांमहोत्पातान् द्वारवत्यांसमुत्थितान् । विलोक्यभगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतेवैसुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीहसर्वतः । शापश्चनः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ नवस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः । प्रभासंसुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव माचिरम् ॥ ३५ ॥ यत्रस्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् । विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजेभूयःकलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयंचतस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् । भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवताऽन्धसा ॥ ६७ ॥ तेषुदानानिपात्रेषु श्रद्धयोप्त्वामहान्तिवै । वृजिनानितरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच । एवंभगवताऽऽदिष्टा यादवाःकुलनन्दन । गन्तुंकृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वाभगवतोदितम् । दृष्ट्वाऽरिष्टानिघो-

---

रहा, और आपका वंश भी प्रायः नष्ट हीसा होगया है ॥ २५—२६ ॥ अतएव यदि उचित समझिये तो अपने बैकुंठ धाममें गमनकर बैकुंठके सेवक लोकपालोंकी हमारे समेत रक्षाकरो ॥२७॥ श्रीभगवान ने कहा कि-हे देवेश ! आपने जोकहा वही मैंने भी निश्चय किया है, पृथिवी का भार हरणकर आपके सब कार्य करादिये ॥ २८ ॥ ऐश्वर्य, पराक्रम और श्री से बढ़ा हुआ यादव वंश लोकका नाशकर देनेपर उद्यत है; तट जैसे समुद्रको रोक रखता है मैंनेभी उसीप्रकार इन्हेंरोक रक्खा है ॥ २९ ॥ यदि अभिमानी यादवोंका वंश नाश न किया जावेगा तो यह बहुत बढ़कर लोकका नाश करेंगे॥३०॥इससमय ब्रह्मशाप से वंशनाशका काल उपस्थित है,हे निष्पाप ब्रह्मन् ! इसकार्यके करनेके उपरांत तुम्हारे धाम में आऊंगा ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—ब्रह्माजी श्रीकृष्णजी की इसबातको सुन उनको प्रणामकर देवताओं समेत अपने स्थानको गये॥३२॥अनन्तर उस द्वारकापुरी में बड़े२ उत्पात होनेलगे । उन उत्पातोंको देख भगवानने अपने निकट आये हुए वृद्ध यादवों से कहा कि—॥ ३३ ॥ हे आर्यों ! इस नगरी में सबओरसे बड़े २ उत्पात होरहे हैं ; हमारे वंशके ऊपर ब्राह्मणों का दुरत्यय शापभी हुआ है ॥ ३४ ॥ जीवन की इच्छा करके हमारा इस स्थान में रहना अनुचित है, आजही अविलम्ब से परम पवित्र प्रभासतीर्थ में चलना चाहिए ॥ ३५ ॥ दक्ष के शापसे यक्ष्मा रोग में ग्रस्तहुए चन्द्रमा ने जिसतीर्थ में स्नानकर पाप से छूट फिर कलावृद्धि प्राप्त कीथी, ॥ ३६ ॥ हमभी उसी प्रभास में स्नानकर पितर और देवताओं का तर्पण कर नाना गुणयुक्त अन्नोंसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावें ॥ ३७ ॥ और उन सब ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक दानदे, नावद्वारा जैसे सागर से पारहुआ जाता है वैसेही नाना प्रकार के दानोंद्वारा पापोंसे पार होवें ॥ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हेकुरुनन्दन !इस प्रकार यदुवंशी भगवान की आज्ञा से तीर्थ जाने को उत्सुकहुए और सब सवारियों को जोड़ने लगे ॥ ३९ ॥ हेराजन् यह देख, भगवान की बातों को सुन और भयानक उत्पातों को देख श्री

राणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्तउपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् । प्रणम्य शिरसापादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच । देवदेवेशयोगेश पुण्यश्रवणकीर्तन । संहृत्यैतत्कुलंनूनं लोकंसंत्यक्ष्यतेभवान् । विप्रशापंसमर्थोपि प्रत्यहन्नयदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहंतवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपिकेशव ॥ त्यक्तुंसमुत्सहेनाथ स्वधामनयमामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितंकृष्ण नृणांपरममंगलम् । कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहांजनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथंत्वां प्रियमात्मानं वयंभक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रगन्धवासोलङ्कारचर्चिताः । उच्छिष्टभोजिनो दासास्तवमायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशनायऋषयः श्रमणाऊर्ध्वमन्थिनः । ब्रह्माख्यंधामतेयान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥ वयंत्विह महायोगिन्भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु । त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरंतमः । ॥ ४८ ॥ स्मरन्तःकीर्तयन्तस्ते कृतानिगदितानिच । गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुकउवाच । एवंविज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः । एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थमांमहाभागतच्चिकीर्षितमेवमे । ब्रह्माभवोलोकपालाःस्वर्वासंमेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ मयानिष्पादितंह्यत्रदेवकार्यमशेषतः । यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेनब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥ कुलंवैशापनिर्दग्धंनङ्क्ष्यत्यन्योन्यवि

कृष्णजी के परम प्रियभक्त उद्धवजी एकांत में श्रीकृष्णजी के समीप बैठ उनके दोनों चरणों को मस्तक से प्रणामकर हाथ जोड़ कहने लगे कि—॥ ४०—४१ ॥ हे देव देवेश ! हे योगेश ! हे पुण्यश्रवण ! हेपुण्यकीर्तन ! निश्चयही आप इस बंश का नाशकर लोक को छोड़ोगे; क्योंकिआप ईश्वर समर्थ होकरभी ब्रह्मशाप का खण्डन करोगे ॥ ४२ ॥ हे केशव ! हेनाथ ! मैं आधेक्षण के निमित्त भी आप के चरण कमलों को नहीं त्यागसकता; इसलिये मुझ को भी अपने धामको लिये चलो ॥ ४३ ॥ हेकृष्णजी ! मनुष्यों के परम मंगलस्वरूप कानों से अमृत की समान आप की लीला चरित का स्वादले मनुष्य दूसरी कामनाओं को छोड़ देते हैं ॥ ४४॥ हमने भक्तहोकर शयन, आसन, चलना, खड़ारहना, स्नान, क्रीड़ा और भोजनादि समयों में आपकी सेवा की है ऐसे परम प्रिय आत्मा आपको हम कैसे त्यागसकैं ? ॥ ४५ ॥ आप के भोगेहुए माला, चन्दन, वस्त्र, भूषण से चर्चितहो जूठनखानेवाले दास हमने आपकी माया को जय करलिया है ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् ! वायुका भक्षण कर २ रहनेवाले नग्न, ऊर्द्ध्वरेता, तपके श्रमी, शांत, शुद्धसन्यासी ऋषि बड़ी कठिनतासे आपके ब्रह्मधाम को जाते हैं ॥ ४७ ॥ किंतु हे महायोगिन् ! हमतो संसार में कर्म मार्गों में भ्रमण करतेहुए भी आपके भक्तों के साथ आप के विषय (सम्बन्ध) का कथोप कथन करकेही दुस्तर संसार को तर जायँगे ॥ ४८ ॥ आपकी मनुष्य लीला का अनुकरण गति, हास्य, परिहास, कर्म और बचनों का स्मरण करके और स्मरण कराय के दुस्तर अहंकार से पार होजावेंगे ॥ ४९ ॥ शुकदेवजी बोले कि—हेनरनाथ! जब उद्धवजी ने भगवान देवकीनन्दन से इसप्रकार कहा तब भगवान अपने एकांत भक्त उद्धव से इसप्रकार कहनेलगे ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीभगवान बोले कि—हेमहाभाग ! तुमने जो अनुमान किया है वह सत्य है; मैंने यही करने की इच्छा की है । तथा ब्रह्मा, महादेव और सब लोकपालों ने भी मुझ से बैकुण्ठचलने की प्रार्थना की है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी की प्रार्थना करने से मैं जिसकारण अंश के साथ अवतीर्ण हुआ हूं वे सब देवकार्य मैं भलीप्रकार से पूरे करचुका ॥ २ ॥ यह बंश शापसे दग्धहो परस्पर युद्ध

प्रहात् । समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतांपुरींचप्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ यर्ह्येवार्यमयात्यक्तोलोको ऽयंनष्टमङ्गलः । भविष्यत्यचिरात्साधोकलिनापिनिराकृतः ॥ ४ ॥ नवस्तव्यंत्वयै वेह्त्यात्यक्तेमहीतले । जनोऽधर्मरुचिर्भद्रभविष्यतिकलौयुगे ॥ ५ ॥ त्वंतुसर्वंप रित्यज्यस्नेहं स्वजनबन्धुषु । मय्यावेश्यमनः सम्यक्समदृग्विचरस्वगाम् ॥६॥ यदि दंमनसावाचाचक्षुर्भ्यांश्रवणादिभिः । नश्वरंगृह्यमाणंचविद्धिमायामनोमयम् ॥७॥ पुंसोऽयुक्तस्यनानार्थोभ्रमःसगुणदोषभाक् । कर्माकर्मविकर्मेतिगुणदोषधियोभि- दा ॥ ८ ॥ तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामोयुक्तचित्तइदंजगत् । आत्मनीक्षस्वविततमात्मा- नंमय्यधीश्वरे ॥९॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्तआत्मभूतःशरीरिणाम् । आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतोनिषेधान्ननिवर्तते । गुणबुद्ध्या- चविहितं नकरोतियथाऽर्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्च यः । पश्यन्मदात्मकंविश्वंनविपद्येतवैपुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवतामहाभागवतोनृप । उद्धवः प्रणिपत्याहतत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥ उ- द्धवउवाच ॥ योगेशयोगविन्यासयोगात्मन्योगसम्भवः । निःश्रेयसायमेप्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥ त्यागोऽयंदुष्करोभूमन्कामानांविषयात्मभिः । सुतरांत्व यिसर्वात्मन्नभक्तैरितिमेमतिः ॥ १५ ॥ सोऽहंममाहमितिमूढमतिर्विगाढस्त्वन्मा- ययाविरचितात्मनिसानुबन्धे । तत्त्वञ्जसानिगदितंभवतायथाहंसंसाधयामिभगव

कर नाश होजावेगा आजसे सातवें दिन समुद्र भी इस नगरी को डुबोदेगा ॥ ३ ॥ हेसाधो ! मैं जैसेही इस लोक को छोडूंगा वैसेही इसके सब कल्याण नाशहोजावेंगे, और कलियुग शीघ्रही इस पर आक्रमण करेगा ॥ ४ ॥ मेरे पृथ्वी के परित्याग करने पर तुम इस स्थान में बास न करना हेभद्र ! कलियुग में मनुष्यों के धर्म की प्रवृत्ति नष्ट होजायगी ॥५॥ तुम स्वजन और बन्धुओं का स्नेह आदि सब छोड़कर मुझ में भली प्रकार से मनलगाय समदर्शीहो पृथ्वी पर भ्रमणकरो ॥६॥ जो मन, वाक्य, दोनोंनेत्रों और श्रवणादि द्वारा गृहीत होता है उसही जगतको मनोमय माया- मय और नश्वर जानों ॥ ७ ॥ विक्षिप्त चित्त मनुष्यका, भेदविषयक भ्रमही, गुणदोष का कारण है । गुणदोष बुद्धि वाले मनुष्यो को कर्म, अकर्म और विकर्म यही भ्रम होता है ॥ ८ ॥ अतएव इन्द्रियों को वशकर इस जगतको आत्मा को अधीश्वर में वितत (ब्रह्मरूप से) देखो ॥ ९ ॥ मुझको अधीश्वर, ज्ञान विज्ञानयुक्त, आत्मा के अनुभव से सन्तुष्ट, सब प्राणियों का आत्मस्व- रूपजानने से कोई विघ्नभी उपद्रव नहीं करसकता ॥ १० ॥ गुणदोष के विचार से रहितहुआ ज्ञानी भी बालक की समान ' दोष ' यह विचारकरभी निषेध से निवृत्त नहीं होता ' गुण ' यह बिचारकर भी वेदोक्त कार्य में आसक्त नहीं होता ॥ ११ ॥ इसप्रकार के मनुष्य सब प्राणियों के सुहृद, शांत और ज्ञान विज्ञान युक्तहो विश्वको मेरेरूपसे देखते हैं; ऐसे मनुष्य आपत्ति में नहीं फँसते ॥ १२ श्रीशुकदेवजी बोलेकि—हे राजन् ! महाभागवत उद्धवजीने भगवानकी ऐसी आज्ञाको पाय तत्त्व जाननेकी इच्छासे प्रणामकर भगवान से कहा कि—॥ १३ ॥ हे यज्ञेश्वर ! हे योग जाननेवालों के गुप्त निधिरूप ! हे योगात्मन् ! हे योग के उत्पत्तिस्थान, जो मुझको अपने मोक्षके निमित्त सन्यास रूपकर्म का त्याग उपदेश दिया है ॥ १४ ॥ हे भूमन् ! जिसका मन विषयों में आसक्त है उसको कामनाओं का छोड़ना अत्यन्तही कठिन है । विशेष करके जो मनुष्य आप सर्वात्मा के अभक्त हैं उनको तो और भी कठिन है यही मैं मानताहूं ॥ १५ ॥ मैं मूर्खबुद्धि आपकी माया से रचेहुए पुत्रादिकों समेत देह में अहंता ममतासे डूबाहुआहूं अतएव

ञ्जनुसाधिभूत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्यतेस्वदृशआत्मनआत्मनोऽन्यंवक्तारमीशविबु-
धेष्वपिनानुचक्षे । सर्वेविमोहितधियस्तवमाययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतोबहिरर्थभा-
वाः ॥ १७ ॥ तस्माद्भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ।
निर्विण्णधीरहमुहवृजिनाभितप्तो नारायणंनरसखंशरणंप्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानु
वाच । प्रायेणमनुजालोके लोकतत्त्वविचक्षणाः । समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवा-
शुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनोगुरुरात्मैव पुरुषस्यविशेषतः । यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां
श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥ पुरुषत्वेचमांधीराः सांख्ययोगविशारदाः । आविस्त
रांप्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः
बह्व्यःसन्तिपुरः सृष्टास्तासांमेपौरुषीप्रिया ॥ २२ ॥ अत्रमांमार्गयन्त्यद्धा युक्ताहे-
तुभिरीश्वरम् । गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममि
तिहासं पुरातनम् । अवधूतस्यसंवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतंद्विजंकं-
चिच्चरन्तमकुतोभयम् । कविंनिरीक्ष्यतरुणं यदुःपप्रच्छधर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवा
च । कुतोबुद्धिरियंब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा । यामासाद्यभवाँल्लोकं विद्वांश्चरतिबा
लवत् ॥ २६ ॥ प्रायोधर्मार्थकामेषु विवित्सायांच मानवाः । हेतुनैवसमीहन्ते आ-
युषोयशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वंतुकल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः । नकर्ता ने
हसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषुदह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ।

आपके कहेहुए उपदेश का जिससे शीघ्र साधन करसकूं, हे भगवन् ! दासको वैसीही धीरे २ शिक्ष दो ॥ १६ ॥ हे ईश्वर ! आप स्वप्रकाश, सत्य और आत्माहो, देवताओं मेंसे भी किसीको मैं नहीं देखता–कि आपके अतिरिक्त और काई आत्मोपदेश की शिक्षा देसके । ब्रह्मादिक सब प्राणी भी आपकी माया से मोहित होकर बिषयों को आप से भिन्न मानते हैं॥१७॥आपआनंदित अनंतपार, सर्वज्ञ, ईश्वर, अविनाशी बैकुण्ठवासी, मनुष्योंके मित्र नारायणहो अतएव मैं बिषयों से खेदित और संतप्त होकर आपकी शरण में आयाहूं ॥ १८ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—भूमण्डल में लोकतत्व बिचारक मनुष्य प्रायः आत्मा द्वाराही आत्माको बिषय बासनाओं से उद्धार करते रहते हैं । गुरुके उपदेश की कुछभी अपेक्षा नहीं रखते॥१९॥पशुके आत्मा मेंभी आत्माही हित अहित बिचारनेमें गुरुरूप होता है और बिशषकर मनुष्य के शरीर में तो होताही हैक्योंकि यह आत्माही प्रत्यक्ष और अनुभव द्वारा–मुक्तिफल प्राप्त करता है ॥ २० ॥ सांख्ययोग में निपुण पण्डितजन मुझको सर्व शक्ति से बढ़ेहुए पुरुष रूपसेही भिन्न २ प्रकाश से देखते रहते हैं २१॥ एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद, चतुष्पाद, बहुपाद और बिना पैर आदि के रचेहुए बहुत से शरीर हैं परन्तु उनमें से पुरुष शरीरही मुझ को प्रिय है ॥ २२॥ इस मनुष्यशरीर में मैं कि जो बुद्धिआदि दृश्य पदार्थों से भिन्नहूं उसको सावधान पुरुष गुणों और चिह्नों द्वारा भली प्रकार से खोज लेतेहैं ॥ २३॥इस बिषय में पराक्रमी यदु और अवधूत का सम्वाद रूप प्राचीन इतिहास कहाजाताहै॥२४॥ धर्मज्ञ यदु ने निर्भय से भ्रमण करनेवाले किसीएक पण्डित युवाअवधूतको देखकर पूछा कि-२५॥हे ब्रह्मन्!हेअवधूत! जिसकोपायतुम विद्वानहोकरभी अतिबालककी समान संसारमेंभ्रमणकरतेहो, अकर्त्ता आपकी ऐसी निर्मल बुद्धि कहांसे उत्पन्नहुई॥२६॥प्रायः मनुष्य आयु,यश और कल्याणकी कामना के निमित्तही धर्म, अर्थ, काम और आत्माबिचार में चेष्टित रहता है ॥ २७ ॥ किन्तु आप समर्थ पण्डित, निपुण, सौभाग्यशाली और मधुर भाषी होकरभी जड़ उन्मत्त और पिशाच की समान निष्कर्म और निस्पृह (वेचाहना) हो ॥ २८ ॥ समस्त लोक काम, लोभरूप दावानल से दग्ध

नतप्यसेऽग्निनामुक्तो गंगाम्भःस्थइवद्विपः ॥ २९ ॥ त्वंहिनःपृच्छतांब्रह्मन्नात्मन्या नन्दकारणम् । ब्रूहिस्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच यदुनैवंमहाभागो ब्रह्मण्येनसुमेधसा ॥ पृष्टःसभाजितःप्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥ ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच । सन्तिमेगुरवोराजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः । यतोबुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥३२॥ पृथिवीवायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमारविः । कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३॥ मधुहाहरिणोमीनः पिंगलाकुररोऽर्भकः । कुमारीशरकृत्सर्प ऊर्णनाभिःसुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एतेमेगुरवोराजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः । शिक्षावृत्तिभिरेतेषा मन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतोयदनुशिक्षामि यथावानाहुषात्मज । तत्तथापुरुषव्याघ्र निबोधकथयामिते .॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरोदैववशानुगैः । तद्विद्वान्नचलेन्मार्गा दन्वशिक्षंक्षितेर्व्रतम् । ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसम्भवः । साधुःशिक्षेतभूभृत्तो नगशिष्यःपरात्मताम् ॥३८॥ प्राणवृत्त्यैवसंतुष्येन् मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः । ज्ञानंयथाननश्येत नावकीर्येतवाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषुसर्वतः । गुणदोषव्यपेतात्मा नविषज्जेतवायुवत्॥४०॥पार्थिवेष्विहदेहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः। गुणैर्नयुज्यतेयोगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्चस्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेनसमन्वयेन । व्याप्त्याऽव्यवच्छेद मसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वंविततस्य

होते हैं किन्तु आप अग्नियुक्त होकरभी गंगाजलमें खड़े हुए हाथी की समान संतप्त नहीं होते । ऐसा आनंद आपको कहांसे प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप स्त्री पुत्रादिकों से रहित और विषयभोगों से वर्जित हो; आपके आत्मानंद का कारण पूछताहूं , मुझसे कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवानने कहा कि-उस महाभाग ब्राह्मणने, ब्राह्मणों के हितकारी बुद्धिमान यदुसे इसप्रकार पूजितहो उनके पूछने पर विनयवत राजासे कहा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मैंने अपने ही आप बहुत से गुरू किये हैं उन्होंने मुझे उपदेश नहीं किया, उन्हींसे मैं बुद्धि प्राप्त कर मुक्त भावसे विचरण करता हूं ॥ ३२ ॥ उनके नाम सुनो; पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, शहदकी मक्खी, हाथी ॥ ३३ ॥ शहद लेजानेवाला, हरिण, मछली, पिंगला (वेश्या) टिटिहरी, बालक, कुमारी, बाणबनाने वाला, सर्प, मकरी, और भौंरी ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इन्हीं चौबीस गुरुओं का अवलंबन कर इन्हीं के आचरणोंसे मैंने अपने भले बुरे की शिक्षाली है ॥ ३५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! जिससे जिस प्रकार जो शिक्षाली है वह तुमसे कहता हूं सुनो ॥ ३६ ॥ पीड़ा देनेवाले प्राणी दैवके वशवर्त्ती हैं यह जानकर.पण्डित जनोंको अपने नियम से चलायमान न होना चाहिये, पृथ्वी से यही शिक्षाली है ॥ ३७ ॥ साधुओं को पर्वतके निकट से निरंतर परोकार के निमित्त समस्त चेष्टाएं और एकांत उत्पत्ति की शिक्षा गृहण करनी चाहिये, इसही प्रकार वृक्षके निकट आत्माके पराधीनता की शिक्षा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥ मुनियों का ज्ञान नष्ट न होवे इसकारण केवल प्राण वृत्ति के द्वाराही संतुष्ट रहना चाहिये, वाक्य और मन को विक्षिप्त न करना चाहिये । योगी को सर्वत्र नाना धर्म शील विषयों का सेवन करके भी गुण और दोषसे आत्माको पृथक् रख वायुकी समान निर्लिप्त रहना चाहिये । वायु जैसे सुगंधि दुर्गंधि वालीजान पड़ती है परंतु वास्तवमें उसमें सुगंधि दुर्गंधि नहीं होती ऐसेही आत्मा पृथिवी के विकार रूप देहादिक में रहने से जन्म मरणादिक वाला जान पड़ता है परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है ॥ ३९—४१ ॥ जिस प्रकार आकाश सबमें व्याप्त है परंतु वह निःसंग है इसही प्रकार देह के भीतर रहनेपरभी योगीको उचितहै कि ब्रह्म स्वरूपता का बोधकर अपने आत्माको स्थावर जंगम

भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः। नस्पृश्यतेनभस्तद्वत्काल सृष्टैर्गुणैःपुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छःप्रकृतितःस्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम्। मुनिःपुनात्यपांमित्र मीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वीतपसादीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः। सर्वभक्षोऽपियुक्तात्मा नादत्तेमलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नःक्वचित्स्पष्ट उपास्यःश्रेयइच्छताम्। भुंक्तेसर्वत्रदातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥ स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणंविभुः।प्रविष्टईयतेतत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥४७॥ विसर्गाद्याःश्मशानान्ताभावादेहस्यनात्मनः।कलानामिवचन्द्रस्यकालेनाव्यक्तवर्त्मना ४८ कालेनह्योघवेगेन भूतानांप्रभवाप्ययौ। नित्यावपिनदृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालंविमुंचति। नतेषुयुज्यतेयोगी गोभिर्गाइवगोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यतेस्वेनभेदेन व्यक्तिस्थइवतद्गतः। लक्ष्यतेस्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नातिस्नेहःप्रसंगोवा कर्त्तव्यःक्वापिकेनचित्। कुर्वन्विन्देतसंतापं कपोतइवदीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतःकश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ। कपोत्याभार्ययासार्धं मुवासकतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौस्नेहगुणित हृदयौगृहधर्मिणौ। दृष्टिंदृष्ट्यांऽगमंगेन बुद्धिंबुद्ध्याबबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थान वार्ताक्रीडाशनादिकम्। मिथुनीभूयविस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु५५॥

सबमें रहा हुआ जानकर उसको अपरिछिन्न और निःसंग विचारे ॥ ४२ ॥ आकाशको जैसे वायु चालित मेघादि से सम्बंध नहीं होता वैसेही पुरुषका तेज, जल और पृथिवीमय कालसे रचे हुए गुणों से सम्बंध नहीं होता ॥ ४३ ॥ हे राजन्! योगी को चाहिये कि–जलकी समान निर्मल, स्वभाव सेही स्निग्ध, मधुर और तीर्थ भूत हो दर्शन, स्पर्शन और कीर्त्तनद्वारा देखने वालोंको पवित्र करे ॥ ४४ ॥ तेजस्वी दीप्त, दुर्द्धर्ष, परिग्रहरहित, संयतात्मामुनि अग्नि की समान सर्व भोजी होनेपर मल (दोष) नहीं ग्रहण करता ॥ ४५ ॥ अग्निकी समान कभी गुप्त और कभी प्रगट होकर कल्याण चाहनेवालों का उपासितहो, भूत भविष्यत अशुभों का नाशकर दाताओं के निकट से सर्वत्र भोजन करते रहना चाहिये ॥ ४६ ॥ अग्नि जैसे काठ में रहने से उस काठ की समानही लम्बा चौड़ा आदि जानपड़ता है वैसेही माया से रचित इस विश्वमेंभी आत्माप्रवेश कर देहोंके अनुसार उच्च नीच प्रतीत होता है ॥४७॥ जन्म से लेकर श्मशान तक जोअवस्थायें होती हैं वह देह कीही होती हैं आत्मा की नहीं; जैसे अव्यक्त गति काल चन्द्रमाकी कलाओं को बढ़ाता घटाता रहता है, परन्तु उस से कुछ चन्द्रमा की घटती बढती नहीं होती ॥४८॥ जैसे लपटकाही उत्पत्ति और नाशदीखपड़ता है,–अग्नि का नहीं वैसेही जल के बहने की समान वेगशाली काल से प्राणियों का नित्य उत्पन्नहोना और नाश होना देखा जाता है, आत्मा का नहीं॥ ४९ ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणों से जल को खींचकर समयानुसार उसे त्यागता है, वैसेही योगी को इंद्रियों द्वारा सब विषयों को ग्रहणकर समयानुसार मांगनेवालोंको देना चाहिए। परन्तु स्वयं उसके लाभालाभमें आसक्त न होवे ॥ ५०॥ जैसे एक सूर्य जल के पात्ररूप उपाधि भेद से भिन्न भिन्न रूप से प्रतीत होता है उसही प्रकार आत्मा अपने स्वरूप में भिन्न रूप नहीं है परन्तु शरीरादिकों में रहने से स्थूल बुद्धिवालों को ईश्वर होनेपरभी भिन्न २ रूप दीखता है ॥ ५१ ॥ किसीपर अति स्नेह व अत्यासक्ति न करना चाहिए, करने से दीन बुद्धि कपोत की समान दुःख भोगना पड़ता है ॥ ५२ ॥ किसी एक कबूतर ने जंगल में वृक्ष में घोंसलाबनाकर अपनी स्त्री कबूतरी समेत कई बरस निवास किया ॥ ५३ ॥ गृहस्थ कबूतर कबूतरी के स्नेह से बद्धचित्तहो दृष्टि से दृष्टि, अंग से अंग और बुद्धि से बुद्धिबांधी ॥५४॥ ये दोनों उस बन में एकत्रितहोनिःशंकभाव से सोना, बैठना, घूमना, कथोपकथन, क्रीड़ा और भोजनादि करतेथे ॥५५॥ हेराजन्!

यंयंवाञ्छतिसाराजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता । तंतंसमनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ कपोतीप्रथमंगर्भं गृह्णतीकालआगते । अण्डानिसुषुवेनीडे स्वपत्युः सन्निधौसती ॥ ५७ ॥ तेषुकालेव्यजायन्त रचितावयवाहरेः । शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥५८॥ प्रजाःपुपुषतुःप्रीतौ दम्पतीपुत्रवत्सलौ । शृण्वन्तौकूजितंतासां निर्वृतौकलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासांपतत्रैःसुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः । प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौमुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदया वन्योन्यंविष्णुमायया । विमोहितौदीनधियौ शिशून्पुपुषतुःप्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदाजग्मतुस्तासा मन्नार्थंतौकुटुम्बिनौ । परितःकाननेतस्मिन् नर्थिनौचेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वातॉंल्लुब्धकःकश्चिद्यदृच्छातोवनेचरः । जगृहेजालमातत्य चरतःस्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥ कपोतश्चकपोतीच प्रजापोषेसदोत्सुकौ । गतौपोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोतीस्वात्मजान्वीक्ष्य बालकांजालसंवृतान् । तानभ्यधावत्क्रोशन्तीक्रोशतोभृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया । स्वयंचाबध्यतशिचा बद्धान्पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् । भार्यांचात्मसमांदीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहोमेपश्यतापाय मल्पपुण्यस्यदुर्मतेः । अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिकोहतः ॥ ६८ ॥ अनुरूपानुकूलाच यस्यमेपतिदेवता । शून्येगृहेमांसंत्यज्यपुत्रैः स्वर्यातिसाधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहंशून्येगृहेदीनो मृतदारोमृतप्रजः । जिजीविषेकिमर्थंवा विधुरोदुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृतांशिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्ट

तृप्ति देनेवाली, प्रेमकी पात्री वह कबूतरी जिस २ पदार्थकी इच्छा करती, अजितेंद्रिय कपोत कष्ट पाकर भी उन सब पदार्थों को देता ॥ ५६ ॥ समय उपस्थित होनेपर कपोती ने पहिला गर्भ धारणकर अपने स्वामी के सन्मुख घोंसले में कई एक अंडे दिये ॥ ५७ ॥ उस में से नारायण की न जानने योग्य शक्तिसे रचेहुए कोमल अंग व लोमोंयुक्त कई एक पक्षी उत्पन्नहुए ॥ ५८ ॥ संतानों के मधुर शब्दों को सुनकर वे पुत्रवत्सल स्त्री पुरुष उनका पालन करने लगे ॥५९॥ पिता माता अत्यानंदितथे; वे कपोत कपोती अपने २ बच्चों के कोमल २ पंखों को छू और उनकीभोली भोली चेष्टा को देख अत्यन्त प्रसन्न होनेलगे ॥ ६० ॥ वे हरि की माया से परस्पर स्नेहबद्ध हृदय से दीनबुद्धि और मोहितहो संतानों का पालन करने लगे ॥ ६१ ॥ एक समय पिता माता उनके आहार लेनेके निमित्त बाहर जाय आहार को खोजतेहुए बहुत समय तक बनमें घूमे ॥ ६२ ॥ इतने में किसी एक बहेलिये ने यदृच्छासे उस बनमें घूमते २ उन कपोत के बच्चों को उस घोंसले के समीप उड़ता देख जाल फैलाकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ६३ ॥ संतानपालन में उत्सुक कपोत कपोती आहार लेकर अपने घोंसले में आगे ॥ ६४ ॥ कपोती अपने बच्चों को जाल में फँसा देख अत्यन्त दुःखित अंतःकरण से चिल्लाती २ उनके समीप जाने को दौड़ी ॥ ६५ ॥ स्नेह से बंधीहुई वह कातरहृदय कपोती बच्चों को फँसादेख स्मृति भ्रष्ट होने के कारण आपभी उस जाल में जाफँसी ॥ ६६ ॥ अपने प्राणों से भी प्रिय बच्चों को और आत्मसदृशी भार्याको जाल में फँसाहुआ देख कपोत अत्यन्त दुःखितहोकर बिलाप करने लगा ॥ ६७ ॥ अहो ! मैं अत्यन्त अल्प पुण्य और मूर्खहूं, मेरी दुर्गति तो देखो ! गृहस्थाश्रम में तृप्त और कृतार्थ होते न होते मेरा त्रिवर्ग साधन घर नष्टहोगया ॥ ६८ ॥ मेरी प्यारी, मेरे अनुकूल रहनेवाली, पतिव्रतास्त्री जब मुझको सूने घर में छोड़कर पुत्रों समेत स्वर्ग में जाती है ॥ ६९ ॥ तब मैं दीन, स्त्रीरहित, पुत्ररहित, कातर और दुःखजीवी होकर क्योंकर सूने घर में जीवन धारण करूं? ॥ ७० ॥ मूर्ख

तः । स्वयंचकृपणःशिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तंलब्ध्वालुब्धकःक्रूरः कपोतंगृहमेधिनम् । कपोतकान्कपोतींच सिद्धार्थःप्रययौगृहम् ॥ ७२ ॥ एवंकुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामःपतत्रिवत् । पुष्णन्कुटुम्बंकृपणः सानुबन्धोऽवसीदति । ॥ ७३ ॥ यःप्राप्यमानुषंलोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् । गृहेषुखगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैन्द्रियकंराजन्स्वर्गेनरकएवच । देहिनांयद्यथादुःखंतस्मान्नेच्छेत्तद्बुधः ॥ १ ॥ ग्रासंसुमृष्टंविरसं महान्तंस्तोकमेववा । यदृच्छयैवापतितंग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानिभूरीणिनिराहारोऽनुपक्रमः । यदि नोपनमेद्ग्रासोमहाहिरिवदिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजःसहोबलयुतंबिभ्रद्देहमकर्मकम् । शयानोवीतनिद्रश्चनेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिःप्रसन्नगम्भीरोदुर्विगाह्योदुरत्ययः । अनन्तपारोह्यक्षोभ्यः स्तिमितोदइवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामोहीनोवानारायणपरोमुनिः । नोत्सर्पेतनशुष्येतसरिद्भिरिवसागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वास्त्रियंदेवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः । प्रलोभितःपतत्यन्धेतमस्यग्नौपतङ्गवत् ॥ ७ ॥ योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषुमूढः । प्रलोभितात्माह्युपभोगबुद्ध्यापतङ्गवन्नश्यतिनष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकंस्तोकंग्रसेद्ग्रासंदेहोवर्ततयावता । गृहन्नहिं-

और दुःखित कपोत उन स्त्री पुत्रों को जाल में फँसा और मृत्युग्रस्तहो छटपटाते देख आपभी उस जाल में गिरपड़ा ॥ ७१ ॥ वह क्रूर बहेलिया अपना काम होजाने पर उन कपोत, कपोती और बच्चों को ले अपने घर को गया ॥ ७२ ॥ जो अत्यन्त कुटुम्बी मनुष्य अशांत हृदय और गृहसेवीहो अत्यन्त आसक्ति वशकुटुम्ब का पोषण करता है वह इन्हीं कपोत पक्षियों की समान दुःखितहो निरंतर व्याकुल रहता है ॥ ७३॥ मुक्तिके खुलेद्वाररूप मनुष्य जन्म को पाय जोमनुष्य पक्षियों की समान घर में आसक्त होता है शास्त्र में वह मूर्ख 'चढ़कर गिराहुआ' इस प्रकार से कथित होता है ॥ ७४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण ने कहाकि–हे राजन्! स्वर्ग और नरक दोनों स्थानों मेंही प्राणियोंको इन्द्रिय जनित सुख दुःख समान हैं; अतएव पण्डितोंको उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥ खानेका पदार्थ चाहे सुरसहो चाहेविरस, अधिकहो चाहेथोड़ा, यदृच्छा से उपस्थित होनेपर उदासीनहो अजगर की समान उसको ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥ यदि भोजन उपस्थित न होवेतो 'दैवही देनेवाला हैं' इस प्रकार से विचार धैर्य धारणकर अजगर की समान निराहार और निरुद्यमहो बहुत दिनोंतक शयन करते रहना चाहिये ॥ ३ ॥ इन्द्रियबल, मनोबल और देहबलको प्राप्तहो अकर्मकारी शरीर धारणकर निद्रारहितहो स्वार्थमें दृष्टिरख अजगर की समान शयन करते रहना चाहिये; इन्द्रिययुक्त होकर भी कोईचेष्टा न करनी चाहिये ॥ ४ ॥ मुनिको निश्चल समुद्र की समान प्रशांत, गंभीर, अगाध, अलंघनीय, अनंतपार और क्षोभ रहित होना चाहिये ॥५॥ समुद्र जैसे वर्षाऋतु में सब नदियों के जलको प्राप्तहोकर भी अपने तटको नहीं लांघता और ग्रीष्म कालमें सब नदियों के सूखने परभी वहस्वयं नहीं सूखता ऐसेही नारायण परायण योगीको सब कामोंको भलीप्रकार पानेसे वा इन सबके रहित होनेसे आनंद में मत्त व दुःख में मलीन नहीं होनाचाहिये ॥ ६ ॥ अजितेन्द्रिय मनुष्य देवमाया रूपिणी स्त्रीको देखकर उसके भावोंसे लोभितहो, अग्निमें पतंगकी समान अंधनरक में गिरता है ॥ ७ ॥ माया कल्पित स्त्री, सुवर्ण, आभूषण और वस्त्र आदि पदार्थों में उपभोग बुद्धिसे ललचाकर यह मूढ़ मनुष्य अंधाहो पतंग की समान नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥ जितने

स्यात्तिष्ठेद्वृत्तिंमाधुकरींमुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्चमहद्भ्यश्चशास्त्रेभ्यः कुशलोनरः । सर्वतःसारमादद्यात्पुष्पेभ्यइवषट्पदः ॥१०॥ सायन्तनंश्वस्तनंवानसंगृह्णीतभिक्षितम् ।पाणिपात्रोदरामत्रोमक्षिकेवनसंग्रही ॥११॥सायन्तनंश्वस्तनंवानसंगृह्णीतभिक्षुकः । मक्षिकाइवसंगृह्णन्सहतेनविनश्यति ॥ १२ ॥ पदापियुवतींभिक्षुर्नस्पृशेद्दारवीमपि । स्पृशन्करीवबध्येतकरिण्याअङ्गसङ्गतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत्स्त्रियंप्राज्ञःकर्हिचिन्मृत्युमात्मनः । बलाधिकैःसहन्येतगजैरन्यैर्गजोयथा ॥ १४ ॥ नदेयंनोपभोग्यंचलुब्धैर्यद्दुःखसञ्चितम् । भुंक्तेतदपितच्चान्योमधुहेवार्थविन्मधु ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानांगृहाशिषः । मधुहेवाग्रतोभुङ्क्तेयतिर्वैगृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतंनशृणुयाद्यतिर्वनचरःक्वचित् । शिक्षेतहरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानिजुषन्ग्राम्याणियोषिताम् । आसांक्रीडनकोवश्य ऋष्यशृंगोमृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनोरसविमोहितः । मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणिजयन्त्याशु निराहारामनीषिणः । वर्जयित्वातुरसनं तन्निरन्नस्यवर्धते ॥ २० ॥ तावज्जितेन्द्रियोन स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् । नजयेद्रसनं यावज्जितंसर्वंजितेरसे २१॥ पिंगलानाम वेश्याऽऽसीद्विदेहनगरेपुरा । तस्यामेशिक्षितं किंचिन्निबोधनृपनन्द-

में देह रहसके उतना अन्न थोड़ा २ कर कईघरोंसे ले भोजन करना चाहिये, मुनिको इसप्रकार की भ्रमरवृत्तिका अवलंबन कर रहना योग्य है ॥ ९ ॥ भौंरा जैसे सबफूलों से सार ग्रहण करता है वैसेही पण्डित जनको सब शास्त्रों से थोड़ा, बहुत सार ग्रहण करना चाहिये ॥ १० ॥ खानेके द्रव्य सायंकाल व दूसरे दिनके निमित्त इकट्ठे करके नहीं रखने चाहिये केवल हाथ को व पेटको ही पात्र करके रखने चाहिये, मधुमक्षिका की समान संग्रह न करे ॥ ११ ॥ भिक्षुक संध्या व दूसरे दिन के निमित्त संग्रह करने पर मक्षिका की समान उस संग्रह किये हुए द्रव्य समेत नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ योगी को पैरसेभी काठकी स्त्री का स्पर्श न करना चाहिये ; स्पर्श करने से हथिनीके अंग संगके लालचसे हाथी की समान गड़हे में गिरना होता है ॥ १३ ॥ बुद्धिमान मनुष्यको कभी भी अपने मृत्युरूपिणी स्त्रीका ग्रहण न करना चाहिये, करनेसे जैसे दूसरे हाथियों द्वारा और सब हाथी मारेजाते हैं उसीप्रकार उसकोभी बलवानोंसे निहतहोना पड़ता है ॥ १४ ॥ जैसे शहद लेजाने वाला मक्षिका के संचित किये हुए मधुको जानकर उसका हरण करता है, उसही प्रकार दूसरे अर्थ वेत्ताभी, कंजूसों के दुःख से इकट्ठा किये हुए दान भोग वर्जित धनको हरण करते हैं ॥ १५ ॥ शहद लेजाने वाला जैसे संचयकारी मक्षिकाओं से पहिलेही शहद लेजाकर उसको भोगता है वैसेही यती, नितांत दुःखसे उत्पन्न किये हुए धनको घरके कल्याण की इच्छा वाले गृहस्थों के पहिलेही भोगते हैं ॥ १६ ॥ बहेलियाके गीतसे मोहित हो बंधे हुए मृगके निकट से यह शिक्षाली कि—वन में भ्रमण करने वाले यतीको ग्राम्य गीत न सुनने चाहियें ॥१७॥ मृगी का पुत्र ऋष्य श्रृंग स्त्रियोंके ग्राम्य गीत, बाजे और नाचका उपभोगकर उनके बश में हो उनका खिलौना बनगया था ॥ १८ ॥ मूर्ख मनुष्य दुःखदायी जिह्वा द्वारा रसके स्वादसे मोहित हो बंशी द्वारा मछली की समान मृत्यु ग्रस्त होता है ॥ १९ ॥ पण्डित जन जिह्वा के अतिरिक्त और सब इन्द्रियों को शीघ्र जीतसकते हैं क्योंकि निराहार रहनेसे उसका लालच बढ़ताही रहता है ॥ २० ॥ पुरुष दूसरी इन्द्रियों को जीतकरभी जबतक जिह्वा को नहीं जीतसकता तबतक वह जितेन्द्रि नहीं होसकता; जिह्वा के जीतने सेही सब इन्द्रियें जीती जाती हैं ॥ २१ ॥ हे नृपनंदन ! प्राचीनसमयमें मिथिलानगरी में एक पिंगलानामक वेश्या रहती थी । उससे मैंने कुछ शिक्षा प्राप्त

न ॥ २२ ॥ सास्वैरिण्येकदाकान्तं संकेतउपनेष्यती । अभूत्कालेबहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्गआगच्छतोवीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ । तान्छुल्कदान्वित्तवतःकान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ॥ अप्यन्योवित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यतिभूरिदः ॥ २५ ॥ एवंदुराशया ध्वस्तनिद्राद्वार्यवलम्बती । निर्गच्छन्तीप्रविशती निशीथंसमपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः । निर्वेदःपरमोजज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतंशृणुयथामम । निर्वेदआशापाशानांपुरुषस्ययथाह्यसिः२८॥ नह्यंगाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति । यथाविज्ञानरहितो मनुजोममतांनृप २९॥ पिंगलोवाच । अहो मेमोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ याकान्तादसतः कामं कामयेयेन बालिशा ॥ ३० ॥ सन्तंसमीपेरमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमंविहाय । अकामदंदुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छमहंभजेऽज्ञा ॥ ३१ ॥ अहोमयात्मापरितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्याऽतिविगर्ह्यवार्तया । स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तंरतिमात्मनेच्छती॥३२॥यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचारोमनखैःपिनद्धम् । क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैतिकाऽन्या ॥ ३३ ॥ विदेहानांपुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः । याऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ३४ ॥ सुहृत्प्रेष्ठतमोनाथ आत्माचायं शरीरिणाम् । तंविक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेनयथारमा

की है उसको सुनो ॥ २२ ॥ एक दिन यह वेश्या पुरुषको अपने रतिस्थान में लेजाने के निमित्त सोलह शृंगारों से सज्जित हो संध्याकाल के समय घरसे निकल कर बाहर आबैठी ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! वह धनके चाहने वाली मार्ग में पुरुषों को आते देख उन पुरुषोंमें से धनवान अपने को मूल्य देनेवाले नागर (मैथुन चाहने वाला) को विचारने लगी ॥ २४ ॥ किंतु उसके निकट आय फिरचले जानेपर उस संकेतवृत्तिसे जीवका करनेवाली वेश्याने विचाराकि—और कोई दूसरा धनी पुरुष मेरे निकट आय बहुतसाधन देवे ॥ २५ ॥ इसप्रकार की दुराशासे वह निद्रारहित हो उस द्वारपर खड़ीरही; कुछ देरके उपरांत भीतर गई परंतु फिर बाहर निकली;—इसप्रकार करते २ आधीरात आगई ॥ २६ ॥ धनकी आशा से उसका मुख सूख गया और अंतःकरण दुःखित होउठा । उसी अवस्था में धनचिंताके निमित्त परम सुख का देनेवाला निर्वेद उसको उत्पन्नहुआ ॥२७॥ अंतःकरणके खुलनेसे जो२कुछउसने कहा वह सबमैं तुमसे कहताहूं सुनो ॥२८॥ वैराग्यही मनुष्योंकी आशापाशका खङ्ग है, हेराजन् ! जिसको वैराग्यनहीं है उसके देहबंधन छेदनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ २९ ॥ पिंगलाने कहा कि—अहो ! मैं कैसी विचाररहित और अजितचित्ताहूं मेरे मोहको तो देखो ! मैं अत्यन्त मूर्ख हूं ; क्योंकि मैं अति तुच्छकांत के निकट से काम्य पदार्थों की इच्छा करती हूं ॥ ३० ॥ मैं निरन्तर रमनेवाले, आनन्ददायक और धन देनेवाले इस नित्यसत्पदार्थ की उपासना छोड़कर मूर्खकी समान अकामद, दुःखदायी; भयशोक और पीड़ादायक पुरुषों की उपासना करतीहूं ॥ ३१ ॥ सांकेत वृत्ति अति निंदनीया वृत्ति है; अहो! उसकेद्वारा मैंने व्यर्थही अबतक आत्माको सन्तप्त किया ! उसमें लम्पट—अर्थ चाहनेवाले अनुशोचनीय पुरुषोंके निकटसे उनकी मोललीहुई देहसे धन और रतिकी इच्छा करती हूं ॥३२॥ हड्डियोंसे जिसके वंश(अडसल)वंश्य(पीडा) स्थूण (खम्भा) बनेहुवेहैं, जो त्वक्, रोम और नख से घिराहुआ है और जिसमें कीड़े चलते हैं, ऐसे इस विष्ठामूत्र से भरेहुए घरकी मेरे अतिरिक्त और कौन स्त्री सेवाकर सकती है ? ॥ ३३ ॥ इस विदेह नगर में निश्चय अकेली मैंही मूर्ख हूं ; क्योंकि मैं आत्मप्रद भगवानके अतिरिक्त दूसरे से कामकी इच्छा करती हूं ॥ ३४ ॥ भगवान प्राणियों

॥ ३५ ॥ कियत्प्रियंते व्यभजन्कामा येकामदानराः । आद्यन्तवन्तोभार्याया देवावा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥ नूनंमेभगवान्प्रीतो विष्णुः केनापिकर्मणा। निर्वेदोऽयंदुराशाया यन्मेजातःसुखावहः ॥ ३७ ॥ मैवंस्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः । येनानुबन्धंनिर्हृत्य पुरुषःशममृच्छति ॥ ३८ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः त्यक्त्वादुराशाः शरणं व्रजामितमधीश्वरम् ॥३९॥ सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती । विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेनवै ॥ ४० ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् । ग्रस्तंकालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥ आत्मैवह्यात्मनोगोप्ता निर्विद्येतयदाखिलात् । अप्रमत्तइदंपश्येद्ग्रस्तं कालाहिनाजगत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण उवाच । एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् ॥ छित्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेशसा ॥ ४३ ॥ आशाहिपरमंदुःखं नैराश्यंपरमंसुखम् । यथासञ्छिद्यकान्ताशां सुखंसुष्वापपिंगला ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहोहिदुःखाय यद्यत्प्रियतमंनृणाम् । अनन्तंसुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥१॥ सामिषंकुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः । तदामिषंपरित्यज्य ससुखंसमविन्दत ॥ २ ॥ नमेमानावमानौस्तो नचिन्तागेहपुत्रिणाम् । आत्मक्रीडआत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेवचिन्तयामुक्तौ परमानन्दआ-

के सुहृद, प्रियतम, नाथ और आत्मा हैं; मैं स्वयं अपने द्वारा इनको मोल लेकर लक्ष्मीकी समान इनके साथ बिहार करूंगी ॥ ३५ ॥ विषय विषयों के देनेवाले पुरुष और देवताभी कि जो आदि अंतवाले और कालके कवलरूप हैं उन्होंने स्त्रियोंका क्या भलाकिया ? ॥ ३६ ॥ मैं निराश हूं; मुझे जो यह सुखदायी निर्वेद उत्पन्न हुआ, इससे निश्चयही जानाजाता है कि भगवान विष्णु जी मेरे ऊपर संतुष्टहुए हैं ॥ ३७ ॥ मैं यदि मन्दभागहोती तो मुझ वैराग्यका हेतु भूत इतना क्लेश न होता; जिस वैराग्य से गृहादिका बन्धनछोड़ मनुष्य सुखको प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ उनके कियेहुए इस उपकारको मस्तक में ले दुष्ट निराशाओं को छोड़ उन्हीं भगवान की शरण लेती हूं ॥ ३९ ॥ सन्तोषकर श्रद्धापूर्वक जो पाऊंगी उसीसे जीवन धारणकर प्रियआत्माके साथ विहारकरूंगी ॥ ४० ॥ संसाररूप कूपमें पड़ा, बिषयोंसे अंधा, कालसर्पसे ग्रसित इस मेरे जीव का भगवान बिना और कौन उद्धारकर सकता है ? ॥ ४१ ॥ मनुष्य जब कालरूप सर्प से इस जगत को ग्रसित देखता है और उस से सावधान होकर इस लोक और परलोक के भोगों से वैराग्य पाता है तब वह अपने आपही अपनी रक्षा करसकता है ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण ने कहा कि— पिंगला इसप्रकार निश्चयकर पुरुष पाने के निमित्त दुराशा को छोड़ शांति धारणकर अपनीशय्या में जा सोई ॥ ४३ ॥ आशाही परम दुःख और निराशाही परम सुख है क्योंकि कांतकी आशा छोड़कर पिंगला सुख से सोईथी ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांअष्टोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणने कहा कि—मनुष्योंको जो २ बस्तु प्यारी है, उस२बस्तु के साथ आसक्तिही दुःख का कारण है अतएव जो अकिंचन मनुष्य यहजान आसक्ति रहित होते हैं वेही अनन्त सुखको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ मांस लियेहुए कुरर पक्षी को मांस रहित दूसरे कुरर मार डालते हैं। उस मांस के त्याग देने सेही वह सुखी होता है ॥ २ ॥ मुझे मान अपमान नहीं है; पुत्रवान और गृहस्थियोंकी समान कोई चिंता भी नहीं है; मैं अपने आपही क्रीड़ाकर और अपनेमेंही आसक्त हो बालकों की समान इस संसार में भ्रमण करताहूं ॥ ३ ॥ अज्ञानी उद्यम रहित बालक और

प्लुतौ । योविमुग्धोजडोबालो योगुणेभ्यः परंगतः ॥ ४ ॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् । स्वयंतानर्हयामास क्वापियातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यव हारार्थं शालीन्रहसिपार्थिव । अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनंमहत् ॥ ६ ॥ सातज्जुगुप्सितंमत्वा महतीव्रीडिताततः । बभंजैकैकशः शंखान्द्वौ द्वौपाण्योरशेष यत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्मशंखयोः । तत्राप्येकं निरभिदद्देकस्मा न्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमंतस्या उपदेशमरिन्दम । लोकाननुचरन्नेतॉं ल्लोकतत्त्वविविित्सया ॥ ९ ॥ वासेबहूनांकलहो भवेद्वार्ताद्वयोरपि । एकएव चरेत्त स्मात्कुमार्या इवकङ्कणः ॥ १० ॥ मनएकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः । वैरा ग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनोलब्धपदं यदेतच्छनैः श नैर्मुंचतिकर्मरेणून् । सत्त्वेनवृद्धेनरजस्तमश्च विधूयनिर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥ तदेवमात्मन्यवरुद्धचित्तो नवेद किंचिद्बहिरन्तरंवा । यथेषुकारोनृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मानददर्शपार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्य माण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥ गृहारम्भोतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्म नः । सर्पः परकृतं वेश्मप्रविश्यसुखमेधते ॥ १५ ॥ एकोनारायणो देवः पूर्वसृष्टंस्वमाया यया । संहृत्यकालकलया कल्पान्तइदमीश्वरः ॥ १६ ॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदा त्माधारोऽखिलाश्रयः । कालेनात्मानुभावेन साम्यंनीतासुशक्तिषु । सत्त्वादिष्वादि

जो प्रकृति के पर ईश्वर को प्राप्त हुए हैं वह दोनोंही चिंता से मुक्तहो परम आनन्दित रहते हैं ॥ ४ ॥ किसी एक समय में कुछ एक मनुष्य किसी एक कन्या के बरण करने के निमित्त उसके घर में आए; उस समय उस के बन्धुजन किसी स्थान में गयेथे; इसकारण उस कन्या ने स्वयंही उनका सत्कार किया ॥ ५ ॥ हे महीपते ! कुमारी उनके भोजन के निमित्त धान कूटने में प्रवृत्त हुई, उस समय उस कन्या के हाथों की चूड़ियों से अति शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ उसने उनकोलज्जा उत्पन्न करनेवाली जानकर एक २ करके सब चूड़ियों को तोड़डाला, केवल दो २ चूड़ियें एक एक हाथ में रहनेदीं ॥ ७ ॥ तौभी धान कूटने के समय उन दोनों चूड़ियों से शब्द होनेलगा। इससे उसने एक २ और तोड़डाली एक २ शेष रहने से फिर शब्द न हुआ ॥ ८ ॥ हे अरिंदम ! लोकतत्व जानने की इच्छा से इन सबलोकों में भ्रमण करते २ मैंने उस कुमारी से यह उपदेश पाया है कि—॥ ९ ॥ बहुत जनों का एक स्थान पर बास या दोजनोंका एकत्रबासभी कलहका कारण होता है; अतएव कन्या की चूड़ी की समान अकेलेही बासकरना चाहिये ॥ १० ॥ आसन और श्वास को जीत आलस्य छोड़ बैराग्य और अभ्यास योगसे मनको एक बिषयमें संयुक्तकर रखना चाहिए ॥ ११ ॥ यह मन जिससे स्थान प्राप्तकर धीरे२ कर्म बासनाओं को छोड़कर और उपशमात्मक सत्वगुणद्वारा रज,तम नाशकरके गुण और गुणकार्यों से रहित निर्वाण पदको प्राप्त होवे, इसको उसी से संयुक्त करके रखना चाहिए ॥ १२ ॥ जैसे बाण में चित्त लगाएहुए बाण बनानेवाले मनुष्य ने निकट से निकलगयेहुए राजा को नहीं जाना, इसीप्रकार चित्त को रोकने से बाहिरी और भीतरी कुछभी सुख दुःख का ज्ञान नहीं रहता ॥ १३ ॥ सर्प की समान मुनि को अकेला भ्रमण करनेवाला, गृहरहित, सावधान, गुफामें सोनेवाला, आचारों से अलक्ष्य असहाय और कम बोलनेवाला होना चाहिए ॥ १४ ॥ घर का बनानाही इस नाशवान देह के दुःख का कारण है और निःष्फल है;सर्प दूसरेही के बनायेहुए घर में बास करके सुखी होता है ॥ १५ ॥ नारायण देव इस रचेहुए जगत को कल्पांत समय में काल शक्तिद्वारा संहार करके आत्माधार और अखिलाश्रय रूप से एक और अद्वितीय होरहते हैं । आत्मशक्ति, कालप्रभावसे सबशक्तियें और सत्तादि क्रम से अपने २ कारणों में लीन होनेपर आदि पुरुष भगवान ब्रह्मादि और दूसरे

पुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणांपरम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः । केवला-
नुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मि
काम् । संक्षोभयन्सृजत्यादौ तयासूत्रमरिन्दम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृज
न्तीं विश्वतोमुखम् । यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येनसंसरतेपुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभि
र्हृदयादूर्णां संतत्यवक्त्रतः । तयाविहृत्यभूयस्तां ग्रसत्येवंमहेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र
यत्रमनोदेहि धारयेत्सकलंधिया । स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि यातितत्तत्स्वरूपताम् ॥ २२ ॥
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेनप्रवेशितः । यातितत्सात्म्यतां राजन्पूर्वरूपमसंत्य
जन् ॥ २३ ॥ एवंगुरुभ्यएतेभ्य एषामेशिक्षितामतिः । स्वात्मोपशिक्षितांबुद्धिं शृ-
णुमेवदतः प्रभो ॥ २४ ॥ देहोगुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सत-
तात्युदर्कम् । तत्त्वान्यनेनविमृशामि यथातथापिपारक्यमित्यवसितो विचराम्यसं
गः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षयावितन्वन् ।
स्वान्तेसकृच्छ्रमवरुद्धधनः सदेहः सृष्ट्वाऽस्यबीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥ जि
ह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हितर्षाशिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणंकुतश्चित् । घ्राणोऽन्यतश्च
पलदृक् क्वचकर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्यइव गेहपतिंलुनन्ति ॥ २७ ॥ सृष्ट्वापुराणि
विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः
पुरुषंविधाय ब्रह्मावलोकधिषणंमुदमापदेवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वासुदुर्लभमिदं बहुसंभ-

मुक्तजीवों को प्राप्तहो अवस्थिति करते हैं ॥ १६—१७ ॥ क्योंकि वह निरुपाधिक, निर्विषय, स्वप्रकाश और आनन्द संदोह हैं अतएव मोक्षशब्द के प्रतिपाद्य हैं ॥ १८ ॥ हेशत्रुदमन ! निरवच्छिन्न आत्मानुभवरूपभगवान ने काल से तीन गुणवाली अपनी माया को क्षोभित कर उसके द्वारा प्रथम मोहतत्व को उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ अहंकार को विश्व का उत्पन्न करनेवाला कहते हैं अतएव विश्व तो मुख और त्रिगुणात्मकही उस मायाका सूत्रात्मा कहाजाता है ; इससेही यह विश्व ओतप्रोत भावसे गुन्थ रहा है और इससेही पुरुष संसार में प्रवृत्त होते रहते हैं २० ॥ जैसे मकरी मुखद्वारा अपने हृदयसे जाल को फैलायकर फिर उसको लीलजाती है उसहीप्रकार भगवान इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते रहते हैं ॥ २१ ॥ प्राणी; स्नेह द्वेष व भय के कारण जिस जिसमें मनलगाता है, मरणके उपरांत उसही उसकी स्वरूपता को प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ हेराजन् ! कीड़ाभ्रमरी से दीवार में बंद होकर उसका ध्यान करते २ अपने पूर्व रूप को न छोड़कर उसकीही स्वरूपताको प्राप्त होता है, ॥ २३ ॥ इन सब गुरुओं से मैंने यही शिक्षाएं प्राप्त की हैं । हेप्रभो ! अपने शरीर से जो बुद्धि प्राप्तकी है उसको सुनो ॥ २४ ॥ शरीर मेरा गुरु है; क्योंकि मनकी पीड़ा जिसका अंतिम फलहै वही उत्पत्ति बिनाश इसका धर्महै; मैं इसकेद्वारा यथार्थ तत्वका अनुसंधानकरतारहताहूं; अतएव यही मेरेविवेक का कारण है; तौभी इसको दूसरे (काक, कुत्ते) का भक्ष्य स्थिरकर संगहीन होकर बिचरण करता फिरताहूं २५ ॥ मनुष्य जिस देह के हितसाधन करने के निमित्त, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, घर और स्वजनों का बिस्तारकर कष्ट से धन इकट्ठा कर उनका पोषण करता है, वृक्षधर्मी यह देह उसही पुरुष का कर्मरूप देहांतरबीज उत्पन्नकरके नष्टहोता रहता है ॥ २६ ॥ जैसे बहुतसी स्त्रियें घरकेस्वामी को जीर्ण करडालती हैं, उसही प्रकार जिह्वा इसको एक ओर, तृष्णा दूसरी ओर—; शिश्नअन्य ओर; त्वक् , उदर, कर्ण और नाक चपलनेत्र तथा कर्म शक्ति अन्यान्य ओरको खींचतीहैं ॥ २७ ॥ भगवान ने आत्मशक्ति माया से वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी और हिंसक आदि नाना शरीरों को रच उनसे संतुष्टनहो ब्रह्मदर्शनके निमित्त बुद्धियुक्त पुरुष शरीर को रचकर परम संतोष प्राप्त

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः। तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि । विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥ नह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् । ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः । वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ३२ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः । सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ३३॥

इतिश्री मद्भागवते महा० एकादशस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः । वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥१॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् । गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥२॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः । नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥३॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् । जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥४॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् । मदभिज्ञं गुरुं शान्त मुपासीत मदात्मकम् ॥५॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः । असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥६॥ जायापत्यगृहक्षेत्र स्वजन द्रविणादिषु । उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥७॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मा

किया ॥ २८ ॥ इससंसार में बहुत जन्मोंके उपरांत, अनित्य होने पर भी पुरुषार्थ साधनमनुष्य जन्मप्राप्तकर इसके पतित न होत होते धीर मनुष्यको शीघ्रही मुक्तिके निमित्त यत्नकरनाचाहिए विषय भोग सब जन्मों मेंही होते रहते हैं ॥ २९ ॥ मैं इसप्रकार वैराग्ययुक्तहो विज्ञानरूपी दीपक के प्रभाव से अहंकार और संगको छोड़ आत्मनिष्ठहो पृथिवीपर घूमताहूं ॥ ३० ॥ निश्चयही एक गुरु से स्थिर और पुष्टज्ञान उत्पन्न न हुआ । क्योंकि ब्रह्म का निर्णय उसके अद्वितीय होने पर भी भिन्न २ ऋषियों ने भिन्न २ रूप से किया है ॥ ३१ ॥ भगवान ने कहा कि–वह अगाधबुद्धि वाला ब्राह्मण यह कथाकह चुपहोगया और राजा से वंदित व पूजितहो उनकी आज्ञाले जहांसे आयेथे वहां गये ॥ ३२ ॥ हमारे पूर्व पुरुषों के पूर्व उत्पन्नहुए वह यदु अवधूत के वचन सुन निःसंग और समदर्शी होगयेथे ॥ ३३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्क०सरलाभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवान बोले कि–मैंने जो समस्त निज २ धर्म कहे हैं, भगवद्भक्तों को सावधान होकर मनसे वासनाओं को त्याग वर्ण, आश्रम और कुलकी समान आचरण करना चाहिए ॥ १ ॥ विषयासक्त प्राणी सब विषयों को यथार्थ जानकर जो २ कार्य करते हैं उन समस्तसेही विपरीतफल प्राप्त होता है;—शुद्ध चित्तहोकर इसको देखता रहे ॥ २ ॥ सोतेहुए मनुष्य के स्वप्नावस्था में देखेहुए विषय और विचारेहुए मनोरथ जैसे नानाप्रकार के होकरभी अर्थ शून्य रहते हैं ऐसेही इंद्रियों से जानेजातेहुए सब विषयभी अर्थरहित हैं कारण कि वे अनेकप्रकार के होते हैं ॥ ३ ॥ मेरे भक्तको निष्काम होकर नित्य नैमित्तिक कर्मों को करना चाहिए, वह काम्यकर्मों को छोड़ देवे; आत्म विचार में भलीप्रकारसे प्रवृत्तहो निवृत्तिके कर्म विधानमें भी आदरवान न होवे॥४॥ किंतु मत्परायणहो सब संयमों की नित्य सेवाकरे; कभी २ नियमों की भी सेवा करनी चाहिए, और जो मुझको भली प्रकार से जानते हैं मेरे स्वरूप उसही शांतगुरू की आराधना करनी चाहिए५॥ अभिमान, मात्सर्य, आलस्य और ममताको छोडदेवे, गुरुसे भलीप्रकार सुहृदताका बन्धन बांधे; व्यग्र न होवे, तत्व जानेकी इच्छा करे और बडाई मारना व व्यर्थ बकवाद छोड देवे ॥ ६ ॥ अपने अभिप्रायको सर्वत्रही समान देख स्त्री, पुत्र, घर, क्षेत्र, स्वजन और धनादि से उदासीन हो केवल गुरूकीही उपासना करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जैसे दाहक और प्रकाशक अग्निदाह्य और

ह्यादात्मेक्षितास्वदृक् । यथाग्निर्दारुणोदाह्याद्दाहकोऽन्यःप्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरो
धोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वंतत्कृतान्गुणान् । अन्तःप्रविष्टआधत्ते एवंदेहगुणान्परः ॥९॥
योऽसौगुणैर्विरचितो देहोऽयंपुरुषस्यहि । संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसोविद्याच्छि
दात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मान मात्मस्थंकेवलंपरम् । संगम्यनिरसेदेत
द्वस्तुबुद्धिंयथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः । त
त्संधानंप्रवचनं विद्यासन्धिःसुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदीसातिविशुद्धबुद्धिर्धुनो
तिमायांगुणसंप्रसूताम् । गुणांश्चसंदह्ययदात्ममेतत्स्वयंच शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः
॥ १३ ॥ अथैषांकर्मकर्तॄणां भोक्तॄणांसुखदुःखयोः । नानात्वमथनित्यत्वं लोकका
लागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसेसर्वभावानांसंस्थाह्यौत्पत्तिकीयथा । तत्तदाकृति
भेदेन जायतेभिद्यतेचधीः ॥ १५ ॥ एवमप्यङ्गसर्वेषां देहिनांदेहयोगतः । काला
वयवतःसन्ति भावाजन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापिकर्मणांकर्तुर स्वातन्त्र्यंच
लक्ष्यते । भोक्तुश्चदुःखसुखयोः कोन्वर्थोविवशंभजेत् ॥ १७ ॥ न देहिनांसुखंकि
ञ्चिद्विद्यतेविदुषामपि । तथाचदुःखंमूढानां वृथाहंकरणंपरम् ॥ १८ ॥ यदिप्रा
प्तिंविघातंच जानन्तिसुखदुःखयोः । तेऽप्यद्धानविदुर्योगं मृत्युर्नप्रभवेद्यथा ॥१९॥
कोन्वर्थःसुखयत्येनं कामोवामृत्युरन्तिके । आघातंनीयमानस्य वध्यस्येवनतुष्टिदः
॥ २० ॥ श्रुतंचदृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः । बह्वन्तरायकामत्वात् कृषिवच्चा

प्रकाश्य काष्ठसे भिन्न पदार्थ है उसही प्रकार दर्शक और स्वप्रकाश आत्मा स्थूल और सूक्ष्म देह से पृथक् है ॥ ८ ॥ ध्वंस, जन्म, सूक्ष्मत्व और नानात्व अग्निका गुण नहीं है; अग्निका काष्ठ के साथ मिले रहने से वह उसके गुणों का अवलम्बन करती है; इसही प्रकार आत्माभी देहके गुणोंको धारण करता रहता है ॥ ९ ॥ ईश्वरके गुणों द्वारा स्थूल देह रचा हुआ है उसके अध्यास के हेतुही जीवकी उत्पत्ति हुई है, वह आत्मज्ञान द्वाराही संसार से निवृत्त होता है ॥ ॥ १० ॥ अतएव कार्य कारण समूह मे अवस्थित, निष्कल परमात्मा को विचारद्वारा भलीप्रकार से जान धीरे २ इस देहादिक में रहीहुई वस्तु बुद्धि का त्याग करे ॥ ११ ॥ आचार्य नीचे के काठकी समान, शिष्य ऊपर के काठकी समान, उपदेश बीचवाले मंथन काष्ठकी समान, और विद्या उससे उत्पन्न हुई सुखदेनेवाली अग्नि के समान है ॥ १२ ॥ अति निपुण शिष्य से ग्रहण की हुई वह अति विशुद्धा बुद्धि गुणों से उत्पन्नहुई मायाको दूर करदेती है और इन संसारी गुणों को जलाय काष्ठरहित अग्निकी समान फिर स्वयं भी निवृत्त होजाती है ॥ १३ ॥ यदि कर्म कर्ता और सुख दुःख भोगी इन सब जीवात्मा के नानात्वको स्वीकारकरें; यदि स्वर्गादिलोक, काल धर्म बोधकशास्त्र और आत्माकी नित्यताको विचारें ॥ १४ ॥ यदि समस्त भोग्य पदार्थोंकी यथावत् स्थिति को धारणके रूपसे नित्य कहकर स्वीकारकरें और यदि विचारें कि तत्व और आकृति के भेदसे बुद्धि उत्पन्न होती और फिर अनित्य होने के कारण नाशको प्राप्त होती है ॥ ॥ १५ ॥ तो ऐसा होने से देह संयोग और कालके अवयव हेतु समस्त प्राणियों की बारम्बार जन्मादि अवस्था होसकती हैं ॥ १६ ॥ और इस पक्षमें कर्म के करने वालोंकी और सुख दुःख के भोगने वालों की पराधीनता दिखाई देती है ॥ १७ ॥ अस्वाधीन को किस पुरुषार्थ के साधन के उद्देश से उपासना करना चाहिये ? पण्डितजनों कोभी किंचित सुख नहीं है; इसही प्रकार मूर्खों को कभी भी दुःख नहीं है; अतएव अहंकार करना व्यर्थही है ॥ १८ ॥ यदि सुख दुःख की प्राप्ति और नाश जाने तौभी वह मृत्युप्रभावके प्रतिबन्धक योग को नहीं जान सकता ॥ ॥ १९ ॥ जब वध्यस्थान में खड़ेहुए वध्यकी समान अत्यन्तही समीप मृत्यु वास करती है, तब कौन पुरुषार्थ व काम इसको सुखी कर सकता है ? ॥ २० ॥ जिस प्रकार से कि इस

विनिष्फलम् ॥ २१ ॥ अन्तरायैरविहतो यदिधर्मः स्वनुष्ठितः। तेनापिनिर्जितंस्था नं यथागच्छतितच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेहदेवतायज्ञैः स्वर्लोकंयातियाज्ञिकः। भुंजी तदेववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचितेशुभ्रे विमानउपगी यते। गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनांहृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिःकामगयानेन किंकि णीजालमालिना। क्रीडन्नवेदात्मपातं सुराक्रीडेषुनिर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यंसमाप्यते। क्षीणपुण्यःपतत्यर्वा गनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतःसंगा दसतांवाऽजितेन्द्रियः। कामात्माकृपणोलुब्धः स्त्रैणोभूतविहिं सकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनालभ्य प्रेतभूतगणान्यजन्। नरकानवशोजन्तुर्गत्वा यात्युल्बणंतमः ॥ २८ ॥ कर्माणिदुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेनतैःपुनः। देहमाभजते तत्रकिंसुखंमर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानांलोकपालानां मद्भयंकल्पजीविनाम्। ब्र ह्मणोपिभयंमत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥ गुणाःसृजन्तिकर्माणि गुणोऽनुसृजतेगु णान्। जीवस्तुगुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः। नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदैवहि ॥३२॥ यावदस्या ऽस्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतोभयम्। यएतत्समुपासीरंस्ते मुह्यन्तिशुचार्पिताः ॥३३॥ कालआत्मागमोलोकः स्वभावोधर्मएवच। इतिमांबहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति।

लोकमें सुख नहीं है वैसेही परलोक में भी नहीं है क्योंकि वहभी दूसरे के सुखकी असहन शीलता, पराये गुणों में दोष देखना, नाश और क्षय आदि के दोषों से दूषित है और जैसे कृषि के सफल होने में भी अनेकों बाधायें आ पड़ती हैं वैसेही यज्ञादि से प्राप्त होनेवाले स्वर्गा- दिक की प्राप्तिमें भी अनेक विघ्न आजाते हैं ॥ २१ ॥ भली प्रकार से अनुष्ठित धर्म कर्मके विघ्न रहित होने से उसके द्वारा प्राप्तहुआ स्थान जिसप्रकारसे पाया जाता है उसको सुनो ॥ २२ ॥ याज्ञिक इसलोकमें यज्ञादि द्वारा देवताओं का आराधन कर स्वर्ग में जाते हैं; वहां वे देवताओंकी समान स्वयं उपार्जित किये हुए दिव्य भोगोंका भोग करते रहते हैं ॥ २३ ॥ मनोहर वेश धारण कर अपने पुण्यों द्वारा सर्व भोगों युक्त सुंदर विमानोंमें बैठ स्त्रियों के बीचमें बिहार करते २ गन्ध- र्वों से प्रशंसित होते रहते हैं ॥ २४ ॥ देवताओं के क्रीडा स्थानमें घूंघरूओं के समूहसे शोभाय- मान इच्छाचारी विमानोंमें बैठ स्त्रियों समेत क्रीड़ा करते २ सुखि हो अपने अवश्य होनेवालेपतन को नहीं जान सकते ॥ २५ ॥ जबतक पुण्यकी समाप्ति नहीं होती तब तक वह स्वर्ग में आनंद का अनुभव करते रहते हैं; पुण्य के क्षय होतेही–कालसे प्रेरित हो अनिच्छा होते हुए भी अधः पतित होते हैं ॥ २६ ॥ और यदि जीव दुष्टजनों के संग हो अधर्म में तत्पर, अजितेन्द्रिय नीचा शय, लुब्ध, कामी और प्राणियों का हिंसक हो ॥ २७ ॥ अनरीत से पशुबधकर प्रेत और भूतों का याग करता है तो वह अंतमें नरकगामी हो अज्ञान में प्रवेश करता है ॥ २८ ॥ कर्ममें प्रवृत्त पुरुषको सुख नहीं मिलता देह द्वारा उन सब कर्मोंका अनुष्ठानकर उन्हींकेद्वारा फिर शरीर प्राप्त करता है; अतएव मर्त्य लोकमें रहे हुए प्राणियोंको सुख कहां है ॥ २९ ॥ लोक और कल्पजीवी लोकपालोंको मुझसे भय है; द्विपरार्द्ध सम्वत्सरकी जिसकी परमायु है उस ब्रह्माकोभी मुझसे भय है ॥ ३० ॥ गुणों द्वाराही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती रहती है, यह जीव इन्द्रिय संयुक्त होकर सब कर्म फलोंका भोगकरते रहते हैं ॥ ३१ ॥ जब तक गुणोंकी विषमता रहती है तबही तक आत्माका अनेकत्व और तबही तक पराधीनता रहती है ॥ ३२ ॥ जब तक इसकी पराधीनता है तभीतक कालका भय रहता है। जो भोग और कर्मका सेवन करते हैं वे शोकग्रस्त हो मूढ होते रहते हैं ॥ ३३ ॥ मायाका क्षोभ होने से मुझको काल, आत्मा, आगम, लोक, स्वभाव वाधर्म इसप्रकार

॥ ३४ ॥ उद्धव उवाच । गुणेषुवर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः । गुणैर्नबध्यते देही बध्यतेवाकथं विभो ॥३५॥ कथंवर्तेतविहरेत्कैर्वा ज्ञायेतलक्षणैः । किंभुंजीतोतविसृजेच्छयीतासीतयातिवा ॥ ३६ ॥ एतदच्युतमेब्रूहि प्रश्नंप्रश्नविदांवर । नित्यबद्धो नित्यमुक्तएकएवेति मेभ्रमः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच । बद्धोमुक्तइतिव्याख्या गुणतोमेनवस्तुतः । गुणस्यमायामूलत्वान्न मेमोक्षोनबन्धनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौसुखं दुःखं देहापत्तिश्चमायया । स्वप्नोयथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्नतुवास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्येममतनू विद्ध्युद्धवशरीरिणाम् । मोक्षबन्धकरी आद्ये माययामेविनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैवममांशस्य जीवस्यैवमहामते । बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्ययाचतथेतरः ॥ ४ ॥ अथबद्धस्यमुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामिते । विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥ सुपर्णावेतौसदृशौसखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौचवृक्षे । एकस्तयोःखादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपिबलेनभूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यंच सवेदविद्वानपिप्पलादोनतुपिप्पलादः । योऽविद्ययायुक्सतु नित्यबद्धो विद्यामयोयःसतुनित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोपिनदेहस्थो विद्वान्स्वप्नाद्यथोत्थितः । अदेहस्थोपिदेहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपिगुणेषुच ॥ गृह्यमाणेष्वहंकुर्यान्न विद्वान्य-

---

नाना रूपसे वर्णन करते हैं ॥ ३४ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे विभो ! गुणोंके साथ सम्बंध रहते हुए प्राणी देहसे उत्पन्न हुए कर्म और सुखादि में किस प्रकार से नहीं बंधता ॥ ३५ ॥ और सम्बंध न रहते हुए गुणों द्वाराही क्योंकर बद्ध होता है ? बद्ध और मुक्त व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करते हैं, किस प्रकार विहार करते हैं ? किन किन लक्षणों द्वारा दोनों को जाना जासकता है। किस प्रकार से भोजन करते हैं ? कहां शयन करते हैं ? क्या परित्याग करते हैं ? कहां बैठते हैं ? कैसे चलते हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रश्नोतर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! यहमेरा प्रश्न है । तब क्या एक ही आत्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त है ? इस मेरे भ्रमको आप दूरकरो ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे एकादशस्कंधे सरलाभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीभगवान ने कहा कि— मेरे सत्वादि गुण रूप की उपाधिसे आत्मा बद्ध और मुक्त होता रहता है परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है मैं इसही प्रकार का निर्णय करताहूं कि गुणके माया मूलक होने से वास्तविक में बद्ध मोक्ष नहीं है शोक, मोह, सुख, दुःख और देह की उत्पत्ति मायाहीके द्वारा होतीरहती है स्वप्नकी समान संसारभी बुद्धि कार्य और मिथ्याहै॥२॥हे उद्धव निश्चयजानना कि प्राणियों के बद्ध और मोक्ष करनेवाली विद्या और अविद्या दोनों ही मेरी आद्याशक्ति हैं जो मेरी मायाद्वारा बनी हैं ॥ ३ ॥ हेमहामते ! मेरे अंशस्वरूप इस अद्वितीय अनादि जीवका अविद्याद्वारा बन्ध और विद्याद्वारा मोक्ष होतारहता है ॥ ४ ॥ हेतात ! यह दोनों एक आश्रय में स्थित हैं इन विरुद्धधर्मवाले बंध और मुक्ति का लक्षण तुमसे कहताहूं सुनो ॥ ५ ॥ यह दोनोंही सुन्दर पक्ष वाले, समानसखा, इच्छानुसार वृक्षमें घोंसलाबनाकर रहे हैं । इन में से एकतो फलों (कर्मफल) को खाता है और दूसरा निराहार रहकरभी बलमें उससे अधिक है ॥ ६ ॥ जोभक्षण नहींकरता वह विद्वान, आत्माको और आत्माकी भिन्नता को जानता है जो भक्षण करता है वह इस प्रकार का नहीं है जो अविद्याके साथ संयुक्त है वह नित्यबद्ध है और जो विद्यामय है वह नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ स्वप्न से उठेहुए मनुष्य की समान, विद्वान देहस्थ होकरभी देहस्थ नहीं है; मूर्ख मनुष्य स्वप्नदर्शी के समान देहस्थ न होकरभी देहस्थ है ॥ ८ ॥ जो निर्विकार, विद्वान, इंद्रियोंद्वारा विषय

स्त्वविक्रियः ॥ ९॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा । वर्तमानोऽबुधस्त त्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवंविरक्तः शयन आसनाटनमज्जने । दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ नतथाबध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् । प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथाखसवितानिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः । प्रतिबुद्धइव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्यस्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् । वृत्तयः सविनिर्मुक्तो देहस्थोपिहि तद्गुणैः ॥ १४ ॥ यस्यात्माहिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया । अर्च्यतेवाक्वचित्तत्र नव्यतिक्रियतेबुधः ॥ ॥ १५ ॥ नस्तुवीतननिन्देत कुर्वतः साध्वसाधुवा । वदतोगुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥१६॥ नकुर्यान्नवदेत्किञ्चिन्न ध्यायेत्साध्वसाधुवा । आत्मारामोऽनयावृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्मणिनिष्णातो ननिष्णायात्परे यदि । श्रमस्तस्यश्रमफलो ह्यधेनुमिवरक्षतः ॥ १८ ॥ गांदुग्धदोहामसतींच भार्यांदेहं पराधीनमसत्प्रजांच । वित्तंत्वतीर्थीकृतमंगवाचं हीनामयारक्षति दुःखदुःखी ॥१९॥ यस्यांनमेपावनमंगकर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्मवास्याद्वन्ध्यां गिरंतां बिभृयान्नधीरः ॥ २० ॥ एवंजिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि । उपारमेतविरजं मनोमय्यर्प्यसर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशोधारयितुं मनोब्रह्मणिनिश्चलम् । मयिसर्वाणिकर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मेकथाः शृण्वन्सु

और गुणोंद्वारा गुणों को ग्रहण करता है परन्तु वह ऐसा नहीं बिचारता कि 'मैंने ग्रहण किया है ॥ ९ ॥ मूर्ख मनुष्य गुणों से उत्पन्नहुए कर्मों द्वारा इस कर्माधीन शरीर में बासकर 'मैंकर्त्ताहूं' ऐसा बिचार करके उसी में लीन रहता है ॥ १० ॥ बिद्वानमनुष्य इसप्रकार से बिरक्तहो शयन, उपवेशन, पर्यटन, (गमनागमन), मज्जन, दर्शन, स्पर्शन, घ्राण (सूंघना)भोजन औरश्रवणादि बिशेष २ बिषयों में इंद्रियों को भोगकराता है कि उसमें बद्ध नहीं होता; वह प्रकृति में स्थिति करके भी आकाश सूर्य और अग्निकी समान निःसंगहो बैराग्य योग से बढ़ीहुई तीक्ष्ण व निपुण बुद्धि की दृष्टिद्वारा संशयों का नाशकरता है और स्वप्न से जाग्रतहुए मनुष्य की समान देहादि प्रांचों से निवृत्त होतारहता है ॥ ११—१३ ॥ जिनके प्राण, इंद्रिय, मन, और बुद्धिके आचरण सबही संकल्प रहित हैं वह देहस्थ होकरभी गुणों से मुक्त हैं ॥ १४ ॥ जिसकी देह हिंसकों से हिंसित और कहीं पर किसी मनुष्य से इच्छानुसार कुछ पूजितहो और उसको बिकार न होवे वही पण्डित है ॥ १५ ॥ समदर्शी गुणदोष से वर्जित मुनिजन प्रियकारी अथवा अप्रियकारी व प्रियवादी अथवा अप्रियवादी मनुष्यों की स्तुति व निन्दा नहीं करते ॥ १६ ॥ मुनिजन भलाबुरा कुछ नहीं करते, न कुछ कहें न किसी की चिंता करें । आत्मारामहो इसही वृत्ति का अवलम्बन कर जड़की समान बिचरण किया करते हैं ॥ १७ ॥ शब्द ब्रह्म का पारगामी होकरभी यदि परब्रह्म में ध्यानादि योगनकरे तो बिना ब्याई गौ के, गौ पतिपालक की समान परिश्रमही उसका श्रमफल है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जो मनुष्य दुःखों से दुःखी है वही दुग्धदोह गौ को, असती स्त्री को, पराधीन देह, असतपुत्र, पात्रदेन वाले धन और मेरी बर्णन रहित बाणी को रखता है । ॥ १९ ॥ अहो ! जिससे इस बिश्व के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय स्वरूप मेरे पवित्रकर्म और लीलावतारों के इच्छितवर देनेवाले जन्मचरित न हुए वह बाक्य निष्फल है; पण्डित उसको धारण नहीं करते ॥ २० ॥ इसही प्रकार तत्व बिचारद्वारा आत्माके अनेकत्व का भ्रम छोड बिशुद्ध चित्तको मुझसर्वव्यापी में अर्पणकर तृप्तिको प्राप्त होना चाहिये ॥ २१ ॥ यदि ब्रह्म में निश्चल मन लगाने में असमर्थ होवे तो निष्कामहो मुझमेंही समस्तकर्म अर्पणकरे ॥ २२ ॥ हे उद्धव !

श्रद्धालोकपावनीः । गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्मचाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थेधर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः । लभते निश्चलांभक्तिं मय्युद्धवसनातने ॥ २४ ॥ सत्संगलब्धयाभक्त्या मयिमांसमुपासिता । सवैमेदर्शितं सद्भिरंजसा विन्दतेपदम्२५॥ उद्धवउवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोक मतःकीदृग्विधःप्रभो । भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशीसद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मेपुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्षजगत्प्रभो । प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नायचकथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वंब्रह्मपरमंव्योम पुरुषःप्रकृतेःपरः । अवतीर्णोसिभगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुःसर्वदेहिनाम् । सत्यसारोऽनवद्यात्मा समःसर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुःशुचिरकिंचनः । अनीहोमितभुक्शान्तः स्थिरोमच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तोगभीरात्मा धृतिमांजितषड्गुणः । अमानीमानदःकल्पो मैत्रःकारुणिकःकविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवंगुणान्दोषान् मयाऽऽदिष्टानपिस्वकान् । धर्मान्संत्यज्ययःसर्वान् मांभजेतससत्तमः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाथयेवैमां यावान्यश्चास्मियादृशः । भजन्त्यनन्यभावेन तेमेभक्ततमामता. ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजन दर्शनस्पर्शनार्चनम् । परिचर्यास्तुतिःप्रह्व गुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्रवणेश्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव । सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥३५॥ मज्जन्मकर्मकथनं ममपर्वानुमोदनम् । गीतताण्डववादित्र गोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः

पुरुष श्रद्धायुक्तहो मेरी लोकपावनी सुन्दरकथाको सुनना, गाना और स्मरण करना तथा बारम्बार मेरे जन्म और कर्मोंकी लीलाकरके वो मेरे निमित्त सब धर्मार्थ कामों का आचरणकर मेरी निश्चलभक्ति प्राप्तकर सकते हैं ॥ २३—२४ ॥ वह सत्संग बश प्राप्त हुई मेरी भक्तिद्वारा मेराध्यान करके साधुओं के दिखायेहुए मेरे पदके सुखका भोग निश्चयही प्राप्तकरसकते हैं २५॥ उद्धवजीने कहाकि—हे उत्तम श्लोक ! हे प्रभो ! अपनी २ बुद्धि से बनेहुए साधु अनेक हैं, परन्तु आप कैसे लक्षणवालेको साधु मानते हो ? किसप्रकारकी भक्ति आपमें उपयोगी होती है? और सत्पुरुष कैसी भक्ति का आदर करते हैं ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! हेलोकाध्यक्ष ! हेजगत् प्रभो ! मैं आपका भक्त, अनुरक्त और शरणागतहूं आप मुझसे इन बातोंका बर्णन कीजिये२७॥ आप आकाश की समान निःसंग प्रकृति से परें, परमब्रह्महो; हेभगवन् ! इच्छानुसार देहधारण कर आप अवतीर्णहुएहो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान ने कहा—हेउद्धव ! जो सब प्राणियों पर कृपालु अहिंसक और क्षमाशील हैं; सत्यही जिनकाबल है; जो निर्दोष, समदर्शी और सर्वोपकारी हैं; ॥ २९ ॥ जिनका चित्त विषयों से क्षुभित नहीं होता; जो जितेन्द्रिय, कोमल चित्त, सदाचारी, निःसंग, निरीह, मितभोजी, जितचित्त, स्वधर्म में निरत, मेराही भजन करनेवाला और चिन्ताशील है ॥ ३० ॥ जो सावधान, निर्विकार चित्त, धैर्यशाली, षड्गुण विजयी, मान की इच्छा न रखनेवाला दूसरोंका मान देनेवाला, दूसरे को ज्ञान देनेमें चतुर किसीको न ठगनेवाला, कारुणिकऔर भली प्रकार से ज्ञानी हैं; ॥ ३१ ॥ वही श्रेष्ठ साधू हैं । और जो गुण दोषों को जानकर वेदरूप से मेरे बतायेहुए कर्मों को छोड़कर मेरा भजन करता है वह भी श्रेष्ठसाधू है ॥ ३२ ॥ मैं जोहूं जैसाहूं जिसप्रकार काहूं, यह बारम्बार जानकर जो एकांतमन से मेरा भजन करते हैं वही मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं ॥ ३३ ॥ हेउद्धव ! मेरे प्रतिमादि चिह्नों का देखना मेरे भक्तों का दर्शन करना, स्पर्शन, पूजा, परिचर्या, स्तुति और मनोहर गुण कर्मों का कथन, मेरी कथा सुनने में श्रद्धा; मेरा ध्यान; मुझ में समस्त पदार्थों का अर्पण करना; दास्यभावसे आत्म निवेदनकरना; ॥ ३४।३५ ॥ मेरे जन्म कर्मों का कथन मेरे पर्व आदि उत्सवों का अनुमोदनकरना; गाने, बजाने और सम्प्रदा

॥ ३६ ॥ यात्राबलिविधानंच सर्ववार्षिकपर्वसु । वैदिकीतान्त्रिकीदीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापनेश्रद्धा स्वतःसंहत्यचोद्यमः । उद्यानोपवनाक्रीड पुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः । गृहशुश्रूषणंमह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् । अपिदीपावलोकंमे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमंलोके यच्चातिप्रियमात्मनः । तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्यायकल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणोगावो वैष्णवःखंमरुज्जलम् । भूरात्मासर्वभूतानि भद्रपूजापदानिमे ॥४२॥ सूर्येतुविद्यया त्रय्या हविषाग्नौयजेतमाम् । आतिथ्येनतुविप्राग्र्ये गोष्वंगयवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवेबन्धुसत्कृत्या हृदिखेध्याननिष्ठया । वायौमुख्यधियातोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थण्डिलेमन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि । क्षेत्रज्ञंसर्वभूतेषु समत्वेनयजेतमाम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्वितिमद्रूपं शंखचक्रगदाम्बुजैः । युक्तंचतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेनमामेवं योयजेतसमाहितः । लभतेमयिसद्भक्तिं मत्स्मृतिःसाधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेणभक्तियोगेन सत्संगेनविनोद्धव । नोपायोविद्यतेसध्र्यङ् प्रायणंहिसतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमंगुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन । सुगोप्यमपिवक्ष्यामि त्वंमेभृत्यसुहृत्सखा ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० एकाद० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

यों द्वारा घर में उत्सवकरना ॥ ३६ ॥ सब वार्षिक पर्वों में यात्रा और पुष्प आदि देना; वैदिकी और तांत्रिकी दीक्षा; मेरे व्रतों का धारण करना ॥ ३७ ॥ मेरे प्रतिमास्थापन में श्रद्धा; बाग, उपबन, क्रीड़ास्थान, पुर और मन्दिर आदि के बनाने में स्वतः अथवा दूसरों के साथ मिलकर उद्यम करना ॥ ३८ ॥ मेरे घरकी अकपटभाव से सेवा करना, झाड़ना, बुहारना, लीपना, पोतना आदि करना ॥ ३९ ॥ अभिमानत्याग; पाखण्ड को छोड़ना; और आचरित धर्म कर्मोका कहना व करना; यहीसब भक्तिके लक्षण हैं । भक्ति के और भी लक्षण कहताहूं ;—मेरे अर्पण कियेहुए पदार्थ का अपना स्वयं उपभोगनकरना; अन्यपदार्थ तो दूर रहा दीपक का प्रकाशभी काम में न लाना ॥ ४० ॥ मनुष्यों को जो पदार्थ अत्यन्तही इच्छित और अपने को प्रियहो मेरे उद्देश से निवेदित होने पर वह अत्यंतही फल दायी होता है ॥ ४१ ॥ हेभद्र ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, हृदय, वायु, जल पृथिवी, आत्मा और समस्त प्राणी मेरी पूजाके आधार हैं ॥४२॥ अहो ! वेद विद्याद्वारा सूर्य में, घृतद्वारा अग्नि में, आतिथ्यद्वारा ब्राह्मण में, तृणादिद्वारा गौओं में, ॥ ४३ ॥ मित्रों की समान सन्मानद्वारा वैष्णवों में, ध्यानद्वारा हृदयाकाश में, प्राणदृष्टिद्वारा वायु में, जल आदि द्रव्यों द्वारा जल में ॥ ४४ ॥ और गोपनीय मंत्रन्यासद्वारा पृथिवी में मेरी पूजाकरै नाना प्रकार के भोगों द्वारा आत्मा में आत्मरूपी मेरी पूजाकरे, मैं सब प्राणियों में क्षेत्रज्ञरूपहूं, समताद्वारा मेरा यागकरे ॥ ४५ ॥ समाधियोग से मेरे शंख, चक्र, गदा, पद्म युक्त चतुर्भुजशांत रूप का ध्यान करे, इसही प्रकार इन्हीं समस्त आधारों से पूजाकरनी चाहिए ॥४६॥ जो समाधिस्थहो कुवां बावड़ी आदि बनवाय मेरा यागकरेंगे वे मुझ में उत्तम भक्तिमान होंगे । साधुसेवा द्वारा मेरा सम्बन्धी ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ हे उद्धव ! सत्संग से उत्पन्नहुए भक्तियोगके अतिरिक्त संसार से तरने का और कोई उत्तमउपाय नहीं है; क्योंकि मैं साधुओं काही श्रेष्ठ आश्रयहूं ॥ ४८ ॥ हेयदुनन्दन ! तुमने परमगुप्त बार्त्ता को सुना, इसके उपरांत तुमसे औरभी अत्यंत गूढ़ विषय कहताहूं उसको सुनों क्योंकि तुम मेरे सेवक, भक्त और सखाहो ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीभगवानुवाच। नरोधयतिमांयोगो नसांख्यंधर्मएवच। नस्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तंनदक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानियज्ञश्छन्दांसि तीर्थानिनियमायमाः। यथावरुन्धेसत्संगः सर्वसंगापहोहिमाम् ॥ २ ॥ सत्संगेनहिदैतेया यातुधानामृगाःखगाः गन्धर्वाप्सरसोनागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरामनुष्येषु वैश्याःशूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः। रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ बहवोमत्पदंप्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः। वृषपर्वाबलिर्बाणो मयश्चाथविभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजोगृध्रोवणिक्पथः। व्याधःकुब्जाव्रजेगोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ ६ ॥ तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः। अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ॥ ७ ॥ केवलेनहिभावेन गोप्योगावोनगामृगाः। येऽन्येमूढधियोनागाः सिद्धामामीयुरंजसा ॥ ८ ॥ यंनयोगेनसांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायसन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेणसार्धंमथुरां प्रणीते श्वाफल्किनामय्यनुरक्तचित्ताः। विगाढभावेननमे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुःसुखाय ॥ १० ॥ तास्ताःक्षपाःप्रेष्ठतमेननीता मयैववृन्दावनगोचरेण। क्षणार्धवत्ताःपुनरंगतासां हीनामयाकल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ तानाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम्। यथासमाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यःप्रविष्टाइवनामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामार-

---

श्री भगवान ने कहा कि—हे सखे ! सर्वके संगका निवृत करनेवाला साधुसंग मुझको जैसा वशीभूतकरता है, योग, ज्ञान, धर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, दान, कुवा, बावडी आदि का बनाना, दक्षिणा, व्रत, देवार्चना, गोपनीयमन्त्र, तीर्थों में भ्रमणकरना, नियम और यम इनमें से कोई भी मुझको वैसा वशनहीं करसकता ॥ १—२ ॥ हे उद्धव ! दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर,—विशेष २ युगमें मनुष्यों में से रज और तमकी प्रकृति वाले वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज यह भी केवल सत्संग से मुझको प्राप्तहुए हैं ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ वृत्रासुर और प्रह्लादादि तथा वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनूमान, जाम्बवान, गज, जटायूगीध, तुलाधार, वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजगोपियें और यज्ञपत्नी, और भी अनेकों ने सत्संग के कारण मेरे पदको प्राप्तकिया है ॥ ५—६ ॥ इन्होंने श्रुति का पाठ नहीं किया, बडे महात्माओं की उपासना भी नहीं की, व्रताचरण व तपस्याभी नहींकी, केवल साधुसंगरूप मेरेही संग वश मुझको प्राप्तकिया है ॥ ७ ॥ गोपियें, गौएं, यमलार्जुनादि, मृगगण, कालियादि नागगण, और दूसरे भी अनेक मूर्खों ने केवल प्रीति द्वाराही कृतार्थ होकर स्वच्छन्दता से मुझको प्राप्त किया है ॥ ८ ॥ जिस स्वरूपको यत्नवान होनेपरभी योग, ज्ञान, दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, व्याख्या, वेदाध्ययन, और सन्यास द्वारा मनुष्य मुझको नहीं पासकते। उस स्वरूप को सत्संगद्वारा यह पूर्वोक्त प्राणी प्राप्तहुए हैं ॥ ९ ॥ जब अक्रूर राम सहित मुझको मथुरा ले गये तब दृढ प्रेमके वशसे मुझमें अनुरक्त हृदय, मेरे वियोग के दुःखसे अत्यन्त दुःखी गोपियोंको और कुछभी पदार्थ सुखदायी न जानपड़ा ॥ १० ॥ उन्होंने वृन्दावन में गौचरानेवाले मुझ प्यारे के साथ जिन २ रात्रियों को आधे क्षणकी समान बितायाथा; अहो ! मेरे विरह से उनको वही रात्रियें कल्पकी समान होगईं ॥ ११ ॥ जैसे समाधि के समय मुनिजनोंको नाम और रूपका आभास नहीं रहता वैसेही आसक्ति के कारण मुझमें चित्त लगाये हुए उन गोपियों को भी निकटस्थ और दूरस्थ अपने देह का भान न रहा। किंतु जैसे समुद्र में नदियें मिलजाती हैं वैसेही मेरे स्वरूप में लीन होगईं ॥ १२ ॥ इस प्रकार उनकी केवल मुझमें इच्छा

मणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः । ब्रह्ममांपरमंप्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनांप्रतिचोदनाम् । प्रवृत्तंचनिवृत्तंच श्रोतव्यंश्रुतमेवच । ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् । याहिसर्वात्मभावेन मयास्याह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धवउवाच । संशयःशृण्वतोवाचं तवयोगेश्वरेश्वर । ननिवर्त्ततआत्मस्थो येनभ्राम्यतिमेमनः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच । सएषजीवो विवरप्रसूतिः प्राणेनघोषेणगुहांप्रविष्टः । मनोमयंसूक्ष्ममुपेत्यरूपं मात्रास्वरोवर्णइतिस्थविष्ठः ॥ १७ ॥ यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेनदारुण्यधिमथ्यमानः । अणुःप्रजातोहविषासमिध्यते तथैवमेव्यक्तिरियंहिवाणी ॥ १८ ॥ एवंगदिः कर्मगतिर्विसर्गोघ्राणोरसोदृक्स्पर्शःश्रुतिश्च । संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रंरजः सत्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयंहि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एकोवयसासआद्यः । विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेवभाति बीजानियोनिंप्रतिपद्ययद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदंप्रोतमशेषमोतंपटोयथातन्तुवितानसंस्थः । यएषसंसारतरुःपुराणः कर्मात्मकः पुष्पफलेप्रसूते ॥ २१ ॥ द्वेअस्यबीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कन्धः पंचरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलोद्विफलोऽर्कंप्रविष्टः॥२२॥अदन्तिचैकंफलमस्यगृध्राग्रामेचराएकमरण्यवासाः । हंसायएकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद सवेदवेदम् ॥

थी वे स्वरूप को नहीं जानती थीं; तौ भी इस प्रकार सहस्र सहस्र स्त्रियें साधुसंग के कारण, उपपातिकी बुद्धि होने परभी परब्रह्म स्वरूप मुझको प्राप्त हुईथीं ॥ १३ ॥ अतएव हे उद्धव ! श्रुति, स्मृति, निवृत्ति, और श्रोतव्य तथा श्रुत विषयों को छोड सब प्राणियों के आत्मरूप केवल मेरीही एकाग्रभक्ति से शरणले मेरे द्वाराही निडरहो ॥ १४—१५ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे योगेश्वरों के ईश्वर ! जिन सन्देहों द्वारा मन अत्यन्त भ्रमित होरहा है वह मेरा आत्मा में स्थित हुआ सन्देह आपके बचन सुनकर इससमयभी नहीं दूरहुआ ॥ १६ ॥ श्रीभगवानने कहाकि—चक्र समुदाय के मध्यमें जिसका प्रकाश है वेही अपरोक्ष परमेश्वर नाद युक्त प्राणों समेत गुफामें प्रवेशकर सूक्ष्ममनोमय रूप को प्राप्तहो मात्रा, स्वर और बर्ण,—इस रूपसे अत्यन्त स्थूल होते रहते हैं ॥१७॥ जैसे आकाश में स्थित उष्मारूप अग्नि बलपूर्वक काष्ठ में मथन करनेसे पवनकी सहायता से छोटी चिनगारी रूप प्रगट होताहै फिर वही घृतके योग से बढजाताहै, इसहीप्रकार यह वाक्यभी मेरा प्रकाश है॥१८॥इसहीप्रकार बचन, कर्म, गति, बिसर्जन, घ्राण, रसन, दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, संकल्प, विज्ञान, अभिमान, सूत्र और सत्व, रज तथा तमोगुणका विकार मेरा प्रकाश है॥१९॥ यह परमेश्वर आदि में अव्यक्त व एकमात्र थे, बीज जैसे क्षेत्रको पाकर अनेक प्रकारका होजाता है वैसेही वह भी सब शक्तियों से विभक्त हो मानों अनेकों रूपसे प्रतीत होते हैं क्योंकि वह त्रिगुणके आश्रय पद्मयोनि हैं ॥ २० ॥ जैसे वस्त्र तन्तुओं में ओत प्रोतभाव से रहता है, और तन्तुओं से अलग नहीं है, ऐसेही यह जगत ईश्वर में है, ईश्वर से भिन्न नहीं है । यह अनादि प्रवृति स्वभाव वाला संसाररूपी वृक्षभोग और मुक्तिरूपदो फूल और फल उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ पुण्य और पाप इस वृक्षके दो बीज हैं, अपरिमित वासनायें इसकी जड हैं, तीनगुण इसके काण्ड; पंचभूत इसके स्कंध; और शब्द स्पर्शादि इसके पांचरस हैं ग्यारह इन्द्रियें इसकी शाखा, जीवात्मा और परमात्मारूप दो सुन्दर पक्षवाले पक्षी, इसमें घोसला बनाये हुए हैं; वात, पित्त और कफ इसके तीन बल्कल हैं; सुख दुःख दो पकेहुए फल हैं यह वृक्ष सूर्य मण्डलतक फैलाहुआ है ॥ २२ ॥ गृहस्थकाभी इसका दुःखरूपफल और बनबासी योगी सुखरूप फलका भक्षण करते हैं । जो पूज्यगुरुकी सहायता से एकको मायामयहोने के कारण बहुतरूपसे जाने वही

॥ २३ ॥ एवंगुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेणशितेनधीरः । विवृश्च्यजीवाशय मप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच । सत्त्वंरजस्तमइति गुणाबुद्धेर्नचात्मनः । सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वंसत्त्वेनचैवहि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मोभवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः । सात्त्विकोपासयासत्त्वं ततोधर्मःप्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मोरजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः । आशुनश्यतितन्मूलो ह्यधर्मउभयेहते ॥ ३ ॥ आगमोऽपःप्रजादेशः कालःकर्मचजन्मच । ध्यानंमन्त्रोऽथसंस्कारो दशैतेगुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाःप्रचक्षते । निन्दन्तितामसं तत्तद्राजसंतदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येवसेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये । ततोधर्मस्ततोज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजोवन्हिर्दग्ध्वा शाम्यतितद्वनम् । एवंगुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः । ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच । वदन्तिमर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापिभुंजते कृष्ण तत्कथंश्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्ययथाहृदि । उत्सर्पतिरजोघोरं ततोवैकारिकंमनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्यमनसः संकल्पःसविकल्पकः । ततःकामोगुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धिदुर्मतेः ॥ १० ॥ करोतिकामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीःपुनः । अतन्द्रितोमनो युंजन्दो

तत्त्वार्थ का जानने वाला है ॥ २३ ॥ अतएव तुम इस प्रकार एकांत भक्तिसे गुरुकी उपासना से उत्पन्नहुए भक्तियोग द्वारा तीक्ष्णहुए विद्यारूपी कुल्हाडे से सावधानहो जीवोपाधिलिंग शरीर का छेदनकर परमात्मा में लीनहो सब साधनाओं को छोडदो ॥ २४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीभगवान बोले कि–सत्व, रज और तम यह समस्त गुण बुद्धिके हैं;–आत्माके नहीं। सत्व द्वारा अन्य दो गुणोंको और सत्वको सत्व मारना चाहिये ॥ १ ॥ बढ़े हुए सत्वसे मनुष्यको मेरा भक्तिरूप धर्म उत्पन्न होता है; सात्विक पदार्थों के सेवन से सत्वकी वृद्धि होती है; उससे फिर धर्म में प्रवृत्ति होती है ॥ २ ॥ सत्वसे बढ़े हुए सर्वोत्तम धर्म द्वारा रज और तमका नाश होता है उनके नाश होनेही उनकी जड़ अधर्मका शीघ्रही नाश होजाता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, जन, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार ये दशों पदार्थ तीनो गुणोंकी वृद्धिके कारण हैं ॥ ४ ॥ इन पदार्थोंमें से वृद्ध पुरुष जिनकी प्रशंशा करते हैं वही सात्विक हैं जिनकी निंदा करते हैं वह तामस हैं; और जिनकी निंदा व प्रशंसा कुछकी नहीं करते वह राजस हैं ॥ ५ ॥ सत्वके बढ़ाने के निमित्त मनुष्यको सात्विक शास्त्रादिकोंका सेवनकरना चाहिये इससे धर्म होताहै और स्मृति के गुणोंके नाश पर्यंत ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ ६ ॥ बांससे उत्पन्न हुई अग्नि उस बनको नाश करके शान्ति होती है; ऐसेही गुणों से उत्पन्न हुआ देह निज से उत्पन्न हुई विद्या द्वारा गुणों को नाश करके आपभी शांत होजाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी ने कहा कि–हे कृष्ण ! मनुष्य अनेकों विषयों को आपत्ति का स्थान विचारते हैं; तौभी क्यों कुत्ते, गधे और बकरेकी समान उन सब विषयोंका उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥ भगवानने कहा कि–अविवेकी मनुष्यके हृदयमें जो 'मैं' यह मिथ्याज्ञान उत्पन्न होता है उससे सत्व प्रधान मनका दुःखात्मक रजोगुणसे सम्बंध होता है ॥ ९ ॥ रजो युक्त मनसे संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं; इस बिषय चिन्ता से उत्पन्न हुए दुःसह कामकी प्रवृत्ति होती है ॥ १० ॥ रजोगुण से मोहित कामके वशीभूत, अजितेन्द्रिय, दुर्बुद्धि मनुष्यकर्मोंको दुःखदायी समझकरभी उनको करतारहता है ॥ ११ ॥ रजोगुणसे और तमोगुणसे मूढ़

यद्दृष्टिर्नसज्जते॥१२॥अप्रमत्तोऽनुयुंजीतमनोमय्यर्पयञ्छनैः। अनिर्विण्णोयथाकालं
जितश्वासोजितासनः॥१३॥ एतावान्योगआदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः सर्वतो
मनआकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यतेयथा॥१४॥उद्धवउवाच॥ यदात्वंसनकादिभ्यो येन
रूपेणकेशव। योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामिवेदितुम्॥१५॥श्रीभगवानुवाच॥ पुत्रा
हिरण्यगर्भस्य मानसाःसनकादयः। पप्रच्छुःपितरंसूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकींगति
म्॥१६॥ सनकादयऊचुः॥ गुणेष्वाविशतेचेतो गुणाश्चेतसिचप्रभो। कथम
न्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः॥१७॥ श्रीभगवानुवाच॥ एवंपृष्टोमहादे
वः स्वयंभूर्भूतभावनः। ध्यायमानःप्रश्नबीजं नाभ्यपद्यतकर्मधीः॥१८॥ समाम
चिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया। तस्याहंहंसरूपेण सकाशमगमंतदा॥१९॥
दृष्ट्वामांतउपव्रज्य कृत्वापादाभिवन्दनम्। ब्रह्माणमग्रतःकृत्वा पप्रच्छुःकोभवा
निति॥२०॥ इत्यहंमुनिभिःपृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा। यदवोचमहंतेभ्यस्तदु
द्धवनिबोधमे॥२१॥ वस्तुनोयद्यनानात्व आत्मनःप्रश्नईदृशः। कथंघटेतवोविप्रा
वक्तुर्वामेकआश्रयः॥२२॥ पञ्चात्मकेषुभूतेषु समानेषुचवस्तुतः। कोभवानि
तिवःप्रश्नो वाचारम्भोह्यनर्थकः॥२३॥ मनसावचसादृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रि
यैः। अहमेवनमत्तोन्यदितिबुध्यध्वमंजसा॥२४॥ गुणेष्वाविशतेचेतो गुणाश्चे
तसिचप्रजाः। जीवस्यदेहउभयं गुणाश्चेतोमदात्मनः॥२५॥ गुणेषुचाविशच्चि

बुद्धि होकरभी विद्वानमनुष्य उसमेंदोषदेख निरालस्यभावसे चित्तकीवृत्तिकोरोककरउसमें लिप्तनहीं
होता॥१२॥ वह सावधान और आलस्य रहित होकर समयानुसार जितश्वास और जितासन
हो मुझ में चित्तलगाय धीरे २ समाधिस्थ होता है॥१३॥ मनके समस्त विषयों का नाशकर
साक्षात मुझमेंही मनको लगादेवे, इसी मुख्य योग का मैंने अपने शिष्य सनकादिकों को उपदेश
किया है॥१४॥ उद्धव जीने कहा कि—हेकेशव! आपने जिस समय जिसरूप से इस योग
का सनकादिक ऋषियों से उपदेश कियाथा मैं उसी रूप और उसीसमयके जाननेका अभिलाषी
हूं॥१५॥ श्रीभगवान ने कहा कि-ब्रह्माजी के मनसे उत्पन्नहुए सनकादिकऋषियों ने एकसमय
पिता से योगसम्बन्धी दुर्ज्ञेय परमतत्वको पूछा॥१६॥ योगियों ने कहा,-हेप्रभो! चित्त सब
विषयों में और विषय मनमें प्रवेश करते हैं। अब विषयों का त्यागनेवाला मुमुक्षु मनुष्य परस्पर
इन दोनों को किसप्रकार पृथक् करे?॥१७॥ श्रीभगवान ने कहा कि—भूतभावन भगवान
ब्रह्माजी इसप्रकार जिज्ञासितहो विचारने लगे परन्तु उनकी बुद्धि दूसरे कर्मों में लगीथी इससे
विचार करने परभी इस प्रश्न के सार को न समझ सके॥१८॥ उन देव ने प्रश्नसे पार होनेके
अभिलाषीहो मेरा ध्यान किया; मैं उस समय हंस रूप से उनके निकटआया॥१९॥ वेसबमुझ
को देखकर उठ खड़ेहुए और ब्रह्माको आगेकर चरणों की बन्दना करके पूछनेलगे कि आप कौन
हो?॥२०॥ हेउद्धव! जब तत्व जाननेवाले मुनियों ने मुझ से इसप्रकार पूछा तब जोकुछ मैंने
उनसे कहा था वह सुनो॥२१॥ हंसने कहा;-हे विप्रो! तुम्हारा यह प्रश्न यदि आत्मा के
सम्बन्धमें हैं, तो जब परमात्म-स्वरूप सत्पदार्थ का अनेकत्व नहीं है तब इसप्रकार का प्रश्नही
होना असम्भव है। मैं किसका आश्रय करके उत्तरदूं॥२२॥ और जो यदि पंचभूत संबंधी
प्रश्न है तो जब पंचात्मक समस्त भूत वास्तव मेंही अभिन्न हैं, तब 'आप कौनहो,? तुम्हारा यह
प्रश्न सर्वथा निरर्थकहै॥२३॥ मन, वाक्य, दृष्टि और अन्यान्य इन्द्रियों द्वाराभी जो २ संगृहीत
होता है वह सबही मैं हूं, मुझसे अन्य कुछ नहीं है, इसको तुम तत्व विचारसे समझ देखो।
॥२४॥ हे पुत्रो! विषयोंमें प्रवेश करने वाला चित्त और चित्तमें प्रवेश करने वाले विषय यह
दोनोंही मेरे आत्मा जीव की उपाधि हैं॥२५॥ बारम्बार गुणों के सेवन करने से जो चित्त

त्त मभीक्ष्णंगुणसेवया। गुणाश्चचित्तप्रभवा मद्रूपउभयंत्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्व प्न सुषुप्तंच गुणतोबुद्धिवृत्तयः। तासांविलक्षणोजीवः साक्षित्वेनविनिश्चितः२७॥ यर्हिसंसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः। मयितुर्ये स्थितोजह्यात्त्यागस्तद्गुणचेत साम् ॥ २८ ॥ अहंकारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम्। विद्वान्निर्विद्य संसारचि न्तांतुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नानार्थधीः पुंसोननिवर्त्तेतयुक्तिभिः। जाग र्त्यपिस्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणंयथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानांतत्कृ तामिदा। गतयोहेतवश्चास्य मृषास्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ योजागरे बहिरनुक्षण धर्मिणोऽर्थान्भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान्। स्वप्नेसुषुप्तउपसंहरतेसएकःस्मृ त्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवंविमृश्यगुणतोमनसस्त्र्यवस्था म न्मायया मयिकृताइतिनिश्चितार्थाः। संछिद्यहार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्ण ज्ञानासि नाभजतमाऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥ ईक्षेतविभ्रममिदंमनसोविलासं दृष्टंविन ष्टमतिलोलमलातचक्रम्। विज्ञानमेकमुरुधेवविभातिमाया स्वप्नस्त्रिधागुणविसर्ग कृतोविकल्पः३४ दृष्टिंततःप्रतिनिवर्त्यनिवृत्ततृष्णस्तूष्णींभवेन्निजसुखानुभवोनिरी हः। संदृश्यतेक्वचयदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तंभ्रमायनभवेत्स्मृतिरानिपातात् ३५॥ देहंचनश्वरमवस्थितमुत्थितंवा सिद्धोनपश्यतियतोऽध्यगमत्स्वरूपम्। दैवादपे

गुणों में प्रविष्ट होता है; और बासना रूप से चित्त में उत्पन्नहुए गुण इन दोनों को मत्स्वरूप हो त्याग करना चाहिए ॥ २६ ॥ जागरण स्वप्न और सुषुप्ति यह अवस्थायें बुद्धिकी वृत्तियें हैं और जो गुणों से उत्पन्न हुई हैं; जीव तो उन अवस्थाओं का साक्षी है इससे वह अवस्थाओंसे रहित है ऐसा जानना ॥ २७ ॥ बुद्धि का बन्धनही आत्माकी वृत्ति का संक्रामक है; अतएव तुरीय स्वरूप मुझ में अवस्थितहो इस बुद्धिके बंधन का त्याग करना चाहिए ॥ २८ ॥ जबऐसा होता है तभी गुण और चित्त परस्पर पृथक् होजाते हैं। अहंकार से उत्पन्नहुए बंधन को आत्मा के अनर्थ का मूल जान सावधानहो मुझ तुरीय स्वरूपमें अवस्थिति कर अहंज्ञानको त्याग देवे ॥ २९ ॥ जबतक युक्तिद्वारा मनुष्यकी नानात्व बुद्धि दूर न होवे, तबतक स्वप्नमें जागरणकी समान भली प्रकार से दर्शन न होनेपर उस जागनेको भी निद्राही जानो; ॥३०॥ कोई पदार्थ आत्मासे भिन्न नहीं है, देहादि पदार्थ समूह उसके भेद हैं जिसप्रकार स्वप्न सम्बन्धी देहादिकके कियेहुए भेद, फल और कर्म मिथ्याहैं ऐसेही आत्माके जो गुण पूर्व कहेगये हैं वे सबमिथ्याहैं ॥३१॥ जो जागरण कालमें बहिर्भागमें समस्त इंद्रियोंद्वारा क्षणभंगुर बिषयोंका भोगकरताहै जो स्वप्नावस्था में हृदयमें उसके अनुसार सबबिषयोंका भोग करताहै और जो सुषुप्ति समयमें सब विषय भोगों से रहित रहताहै वह एकहै; स्मृतिका सम्बन्ध रहनेसे वह तीनोंअवस्थाओं का द्रष्टाहै ॥ ३२ ॥ मनकी यह तीन अवस्थायें मेरीमायाके गुणोंद्वारा मुझसेही रचीहुई हैं,—इसप्रकारका विचार करते हुए इस आत्मरूप अर्थका निश्चयकर तुम अनुमान और सदुक्तियोगसे तीक्ष्ण ज्ञान खड्ग द्वारा समस्त संशयों के आश्रय अहंकार का नाशकर हृदय में स्थित मेरा भजन करो ॥ ३३ ॥ मनद्वारा प्रकाशित, दृष्ट, नाशवान अलात–चक्र (बनेठी) की समान अत्यन्त चलायमान इस विश्व को बिभ्रम स्वरूप से देखे; एक बिज्ञानही बहुत रूप से प्रकाशित होता है; अतएव गुणों के परिणाम से उत्पन्नहुए तीनों प्रकारका संकल्पही माया मात्र है कि जैसे स्वप्न ॥३४॥ दीखते हुए विश्व से दृष्टि को खींचकर तृष्णा को त्याग चेष्टाको छोड़ अपने सुखानुभव में तत्पर होना चाहिए। यदि आहार आदि आवश्यक कर्मों में द्वैत देखने में आवे तौभी 'यह पदार्थ नहीं है' यह बिचार उसको पहिले सेही त्याग देवे तो भ्रम का कारण नहीं होसकता; शरीर के नाशहोने तक स्मृति रहती है ॥ ३५ ॥ जिसके द्वारा स्वरूप को जानसकते हैं वह नाशवान देह बैठाहो,

तमुतदैववशादुपेतं वासोयथापरिकृतंमदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥ देहोऽपिदैववशगःखलुकर्मयावत् स्वारम्भकंप्रतिसमीक्षतएवसासुः । तंसप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नंपुनर्नभजतेप्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥ मयैतदुक्तंवोविप्रा गुह्यंयत्सांख्ययोगयोः । जानीतमागतंयज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥३८॥ अहंयोगस्यसांख्यस्य सत्यस्यर्तस्यतेजसः । परायणंद्विजश्रेष्ठाः श्रियःकीर्तेर्दमस्यच ॥ ३९ ॥ मांभजन्ति गुणाःसर्वे निर्गुणंनिरपेक्षकम् । सुहृदंप्रियमात्मानं साम्याऽसङ्गादयोगुणाः ॥४०॥ इतिमेछिन्न संदेहा मुनयःसनकादयः । सभाजयित्वापरया भक्त्यागृणतसंस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहंपूजितःसम्यक् संस्तुतःपरमर्षिभिः । प्रत्येयायस्वकंधाम पश्यतःपरमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उद्धवउवाच ॥ वदन्तिकृष्णश्रेयांसि बहूनिब्रह्मवादिनः । तेषांविकल्पप्राधान्यमुताहोएकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतःस्वामिन् भक्तियोगोनपेक्षितः । निरस्यसर्वतःसंगं येनत्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेननष्टाप्रलयेवाणीयं वेदसंज्ञिता । मयादौब्रह्मणेप्रोक्ता धर्मोयस्यांमदात्मकः ॥ ३ ॥ तेनप्रोक्ताचपुत्राय मनवेपूर्वजायसा । ततोभृग्वादयोऽगृह्णन् सप्तब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यःपितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः । मनुष्याःसिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाःकिन्नरानागा रक्षःकिंपुरुषादयः । बह्वयस्तेषांप्रकृतयो रजः

खड़ाहो, दैवाधीन से स्थान भ्रष्टहीहो,तथा स्थान से चाहे निवृत्तहीहो;परन्तु जैसे मदिरा के मदसे अन्धा मनुष्य अपने छूटेहुएवस्त्रों को भी नहीं देखपाता उसी प्रकार सिद्धमनुष्य भी उसको (देह को) नहीं देखते ॥ ३६ ॥ शरीरभी दैव के वशवर्त्तीहो अपने प्रारब्ध कर्म के हेतु चलताहुआ प्राण इंद्रिययुक्तहो जीवित रहता है । जो समाधि योग को प्राप्त हुए हैं अतएव परमार्थ वस्तु को जानसकते हैं वह स्वप्न की समान प्रपंचवाली इस देह में आसक्त नहीं होते ॥ ३७॥हेविप्रो! सांख्ययोग का रहस्य विषय यही है, मैंने तुमसे कहा;मुझको विष्णुजानो तुमसे धर्म कहनेकोही मैं आयाहूं ॥ ३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! मैं योग, ज्ञान, धर्मप्रमाण, धर्मानुष्ठान, तेज, श्री, कीर्त्ति और दमकी परम गतिहूं ॥ ३९ ॥ मैं निर्गुण, अपेक्षा रहित, सबकाबन्धु, प्रिय और आत्मारूपईश्वर हूं मुझमें समता और असंगादि नित्यगुण हैं इससे मेरे बचनों में दृढ़ विश्वासरक्खो ॥ ४० ॥ मेरे द्वारा इसप्रकार से संदेह रहितहो सनकादि मुनियों ने परम भक्तिसे पूजाकर मेरी नानाप्रकारकी स्तुति कीथी ॥ ४१ ॥ मैं इन सब परम ऋषियों से भली प्रकार पूजित और सन्मानितहो ब्रह्माके देखते २ अपने धामको लौटगयाथा ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उद्धवजी ने कहा—हे कृष्ण ! ब्रह्मवादीलोग मुक्ति के साधन का निर्देश किया करते हैं उन में से क्या एकही साधन प्रधान है ? ॥ १ ॥ हे स्वामिन् ! आपने निष्काम भक्तियोग कहा है; इसही के द्वारा मन निःसंगहो आपमें प्रविष्ट होता है ॥ २ ॥ श्रीभगवान ने कहा—प्रलयकाल में नष्ट होने वाली मेरी वाणी कि जो वेद में पाई जाती है उसको मैंने पहिले ब्रह्माजी से कहाथा; जिसके द्वारामुझमें चित्तलगै वही धर्म इन सब में प्रधान है । वही धर्म ब्रह्माजीने अपने जेठे पुत्र मनुसे कहाथा; उनसे भृगुआदि सप्त ब्रह्मर्षियों ने ग्रहणकिया ॥ ३—४ ॥ उन सब प्रजापतियों के निकटसे उनके पुत्र देव, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किंदेव, किन्नर, नाग, राक्षस और किम्पुरुषादिकों को वह प्राप्त हुआ । रज, सत्व और तमोगुण से उत्पन्न

सत्वतमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानांमतयस्तथा । यथाप्रकृतिसर्वेषां चित्रावाचःस्रवन्तिहि ॥ ७ ॥ एवंप्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्तेमतयोनृणाम् । पारम्पर्येणकेषांचित् पाखण्डमतयोपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाःपुरुषर्षभ । श्रेयोवदन्त्यनेकान्तं यथाकर्मयथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेकेयशश्चान्ये कामंसत्यंदमंशमम् । अन्येवदन्तिस्वार्थंवा ऐश्वर्यंत्यागभोजनम् ॥१०॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानिनियमान्यमान् । आद्यन्तवन्तएवैषां लोकाःकर्मविनिर्मिताः । दुःखोदर्कातमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाःशुचार्पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनःसभ्य निरपेक्षस्यसर्वतः । मयात्मनासुखंयत्तत् कुतःस्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥ अकिंचनस्यदान्तस्य शान्तस्यसमचेतसः । मयासंतुष्टमनसः सर्वाःसुखमयादिशः ॥ १३ ॥ नपारमेष्ठ्यंनमहेन्द्रधिष्ण्यं नसार्वभौमंनरसाधिपत्यम् । नयोगसिद्धीरपुनर्भवंवा मय्यर्पितात्मेच्छतिमद्विनान्यत् ॥ १४ ॥ नतथामेप्रियतमआत्मयोनिर्नशंकरः । नचसंकर्षणानश्रीर्नैवात्माचयथाभवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षंमुनिंशान्तं निर्वैरंसमदर्शनम् । अनुव्रजाम्यहंनित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किंचनामय्यनुरक्तचेतसः शान्तामहान्तोऽखिलजीववत्सलाः । कामैरनालब्धधियोजुषन्ति यत्तन्नैरपेक्ष्यंनविदुःसुखंमम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपिमद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः । प्रायःप्रगल्भयाभक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥१८॥ यथाग्निःसुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसिभस्मसात्।

हुई उनकी अनेकों बासनायें हैं ॥ ५—६ ॥ इन्हीं सबके द्वारा भूत और भूतपातिगण परस्पर बँटे हुए हैं वे सब प्रकृति के अनुसार से नाना वाक्योंद्वारा प्रयुक्त होते रहते हैं । प्रकृतिके ऐसे अनेकों प्रयुक्त होने से सब मनुष्योंकी बुद्धि भिन्न २ होता है ॥ ७ ॥ इस प्रकार कितने एक मनुष्यों की बुद्धि स्वभावकी विचित्रता के हेतु पृथक् होती है; तथा परस्पर एक दूसरे के उपदेश द्वारा कभी २ बुद्धि भेद होता है और पांखण्डबुद्धि उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरी मायासे मोहितहुए मनुष्य कर्म और रुचिके अनुसार नानाप्रकार के कल्याणकारी साधनों को करते रहते हैं ॥ ९ ॥ कोई धर्मको, कोई यश, काम, सत्य, दम और शमको,—दूसरे कुछेक ऐश्वर्य, दान और भोजनको,—कोई २ यज्ञको कोई तपस्या, दान, व्रत, नियम और संयमकोही पुरुषार्थ कहते हैं ॥ १० ॥ इन सबलोगों को अपने २ कर्मानुसार जोलोकफलस्वरूपता से मिलते हैं उनसब का ही परिणाम दुःख से भराहुआ, तुच्छ, मन्द, और शोकाकुल है ॥ ११ ॥ हेसभ्य ! जिन्होंने मुझमें आत्म समर्पण कियाहै और जोसबहीसे निष्काम हैं, आत्मस्वरूप मेरेद्वारा उनको जो सुख होता है विषयासक्त मनुष्योंको वह सुख कहां? ॥ १२ ॥ जोअकिंचन, शांत,समदर्शी, जितेन्द्रिय और मेरे द्वारा सन्तुष्ट चित्त हैं उनको सबही दिशाएं सुखमय हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने मुझमें आत्म समर्पणकिया है वे मुझको छोडकर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्त्तिपद, पातालादि के आधिपत्य, योगसिद्ध वा मोक्ष,–इनमें से किसी की भी इच्छा नहीं करते ॥ १४ ॥ ब्रह्मा, शंकर, संकर्षण, लक्ष्मी और अपनी आत्माभी मुझे अपने भक्तों के समान प्रियनहीं है ॥ १५ ॥ मैं, चरणरज द्वारा पवित्रकरूं–इस इच्छासे निष्काम, शांत, वैरहीन, समदर्शीमुनियों के पीछे नित्य विचरण किया करता हूं ॥ १६ ॥ निष्किंचन, मुझमें अनुरक्त चित्त, शांत, निरभिमान, सब जीवोंके प्यारे, जिनके चित्तमें काम का स्पर्शभी नहीं हुआहै ऐसे मेरेभक्त जैसे सुखका भोग करते हैं, उसको वही जानते हैं दूसरा नहीं जान सकता; क्योंकि जो किसीकी अपेक्षा नहीं करते उन्हीं को वह प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मेरे प्राकृत अजितेन्द्रियभक्त सब विषयों की ओर खिंचकर भी क्षमताशाली भक्ति के प्रभाव से प्रायः उन विषयों में लिप्त नहीं होते ॥ १८ ॥ हे उद्ध-

तथामद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ नसाधयतिमांयोगो नसांख्यंधर्म उद्धव । नस्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥ २१ ॥ भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियःसताम् । भक्ति पुनातिमन्निष्ठा श्वपाकानपिसंभवात् ॥२२॥ धर्मःसत्यदयोपेतो विद्यावातपसान्विता । मद्भक्त्यापतमात्मानं नसम्यक्प्रपुनाति हि ॥२३॥ कथंविनारोमहर्षं द्रवताचेतसाविना । विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २४ ॥ वाग्गद्गदाद्रवते यस्य चित्तंरुदत्यभीक्ष्णं हसतिक्वचिच्च ॥ विलज्जउद्गायति नृत्यतेच मद्भक्तियुक्तो भुवनंपुनाति ॥ २५ ॥ यथाऽग्निनाहेममलं जहाति ध्मातंपुनःस्वंभजतेचरूपम् । आत्माचकर्मानुशयं विधूयमद्भक्तियोगेन भजत्यथोमाम् ॥ २६ ॥ यथायथात्मापरिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथा श्रवणाभिधानैः । तथातथापश्यति वस्तुसूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥ २७ ॥ विषयान्ध्यायतश्चित्त विषयेषुविषज्जते । मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येवप्रविलीयते ॥२८॥ तस्मादसदभिध्यानं यथास्वप्नमनोरथम् । हित्वामयिसमाधत्स्व मनोमद्भावभावितम् ॥२९॥ स्त्रीणांस्त्रीसंगिनांसङ्गं त्यक्त्वादूरतआत्मवान् । क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥३०॥ नतथाऽस्यभवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसंगतः । योषित्संगाद्यथा पुंसो यथातत्संगिसंगतः ॥ ३१ ॥ उद्धवउवाच । यथात्वामरविन्दाक्ष यादृशंवायदात्मकम् । ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानंमवक्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच । समआ-

व जैसे अत्यन्त प्रचण्ड अग्निकाठ समूहको जला डालती है तैसेही मेरी भक्तिभी समस्तपापोंको जलाडालती है॥१९॥हे उद्धव ! मुझको अपार भक्तिके अतिरिक्त योग, विज्ञान, वेदाध्ययन,तपस्या और दानद्वारा कोई नहीं प्राप्त करसकता ॥२०॥साधुओंका प्रिय आत्मा मैं श्रद्धायुक्त भक्ति द्वाराही प्राप्तकियाजासकता हूं । मुझमें कीहुई भक्ति चाण्डालोंको भी जातिदोषसे पवित्रकरती है ॥ २१ ॥ सत्य,—दयायुक्त धर्म वा तपोयुक्त विद्या मेरी भक्ति रहित आत्मा को भलीप्रकार सेपवित्रकरने में असमर्थ है ॥ २२ ॥रोमांच, मनकी आर्द्रता और आनन्दाश्रुबिना किसप्रकार भक्ति जानीजाय भक्ति बिना चित्त किसप्रकार शुद्ध होवे ? ॥ २३ ॥ जिसके बाक्य गद्गद और हृदय द्रवीभूतहो जो बारम्बार रोवे, कभी हँस, कभी निर्लज्जहो ऊंचेस्वरसे गावे और नृत्यकरै ऐसे मेरेभक्त त्रिलोक को पवित्र करते हैं ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्ण अग्नि से तपकर मैल को छोड़ फिर अपने रूपकोप्राप्त करता है तैसेही आत्माभी मेरी भक्तियोग से कर्म बासनाओं को छोड़कर मेरी स्वरूपता को प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ अंजनलगाईहुई आंख की समान आत्मा मेरी पुण्यकथा को श्रवण औरकथन द्वारा जिसप्रकारसे निर्मल होता है उसही प्रकार उसको सूक्ष्म पदार्थ दखने में आते हैं ॥ २६ ॥ जो विषयों की चिंता करते रहते हैं उनका चित्त विषयों मेंही आसक्त रहता है और जो मेरा ध्यानकरते हैं विशेष कर उनका चित्त मुझमेंही लीन होता है ॥ २७ ॥ अतएव स्वप्न और मनोरथ की समान मिथ्या चिंताओं को छोड़ मेरे भजन से शुद्धहुए हुएचित्त को मुझमेंही स्थिरकरो ॥ २८ ॥ धीरहो स्त्रियों का और स्त्री संगी मनुष्यों का संग छोड़कर भय रहित निर्जनस्थान में बैठ निरालस्य भावसे मेरा ध्यानकरो ॥ २९ ॥ स्त्रियों के और स्त्री संगियों के संग से क्लेश होता रहता है, दूसरे के साथ इसप्रकार का क्लेश नहीं होता इस निमित्त कामशास्त्र में कहेहुए मार्ग को दूसरी ओर करदेना चाहिये ॥ ३० ॥ उद्धव ने कहा " हेकमल लोचन ! मुमुक्षु लोग जिस प्रकार से आप का ध्यान करते हैं, सो मुझ से कहो ॥ ३१ ॥ भगवान ने कहा, कम्बलादिक का समान आसन बनाय, शरीर को समानरख सुख सहित बैठ दोनों हाथों को उठायकर गोदी पर धर, अपनी नासिका के अग्रभाग को देखता रहे ॥ ३२ ॥ फिर जितेन्द्रियहो पूरक, कुम्भक

सनआसीनः समकायो यथासुखम्। हस्तावुत्संगआधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः३२॥ प्राणस्यशोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः। विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः। ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं विसोर्णवत्। प्राणेनोदीर्यतत्राथ पुनःसंवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवंप्रणवसंयुक्तं प्राणमेवसमभ्यसेत्। दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम्। ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायांन्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम्। वन्हिमध्येस्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥ ॥ समंप्रशान्तंसुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम्। सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलंशुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम्। हेमाम्बरंघनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम्। नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभयायुतम् ॥४०॥ द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदाऽऽयुतम्। सर्वांगसुन्दरंहृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥ ॥४१॥ सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनोदधत्। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्यतन्मनः। बुद्ध्यासारथिनाधीरःप्रणयेन्मयिसर्वतः॥४२॥तत्सर्वव्यापकंचित्तमाकृष्यैकत्रधारयेत्। नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितंभावयेन्मुखम् ॥४३॥ तत्रलब्धपदं चित्तमाकृष्यव्योम्नि धारयेत्।तच्चत्यक्त्वामदारोहो नकिंचिदपिचिन्तयेत् ४४ एवंसमाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि। विचष्टेमयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयु

और रेचकद्वारा प्राणपथका शोधनकरै; फिर इंद्रियोंको अपने२ विषयोंसे प्राणायामद्वारा खींचकर धीरे २ इसका अभ्यास करे ॥ ३३ ॥ अविच्छिन्न, घंटानाद की समान, हृदय में स्थित, कमल नाल के तंतु की समान ओंकार को प्राणवायु के द्वारा ऊपर को लेकर वहां उसका मस्तक में बिंदु संयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इसप्रकार ओंकार संयुक्त प्राणायाम तीनों संध्याओं में दश बार करे; ऐसा होनेसे एक मासमेंही प्राणवायु जयहोजावेगा ॥३५॥ जिसका नाल ऊपरको है और मुख नीचे को है उस हृदयस्थ हृत्कमल को ऊर्द्धमुख, बिकशित, अष्टदल और कर्णिका सहित ध्यान कर, उस कर्णिका में सूर्य, चन्द्र और अग्नि का बिचार करै। अग्निके बीच में मेरे वक्ष्यमाण रूप का ध्यान करै; यही कल्याणकारी ध्यान है;—॥ ३६—३७ ॥ सुन्दर अवयवों युक्त, प्रशांत, सुमुख, दीर्घ मनोहर चारोंभुजाएं; अतिरम्य सुन्दर ग्रीवा, सुन्दर कपोल और मनोहर मुसकान सहित मुख है। दोनों कानों में मकराकृतकुण्डल, सुवर्ण केसे रंगवाले वस्त्रों को पहिने घनश्यामवर्ण, श्रीवत्स और श्री चिह्नयुक्त हैं ॥३८—३९॥ शंख, चक्र, गदा,पद्म और बनमालासे अलंकृत व नूपुरद्वारा दोनोंचरण शोभायमानहैं और कौस्तुभमणि की प्रभा से शोभितहैं ॥ ४० ॥ कांतिशाली किरीट, कड़े, मेखला और भुजबन्ध धारण किये,सर्व अंगोंमें सुन्दर,मनोहर,प्रसन्नताके हेतु प्रफुल्लित मुख व सुन्दर नेत्र हैं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार के अंगों का मनमें निश्चयकर इस सुकुमार रूप का ध्यान करै।धीर मनुष्य मनद्वारा इंद्रियों को इंद्रियों के विषयोंसे खींच बुद्धिकीसहायतासे उस मनको एकाग्रकर मुझमें लगावे ॥ ४२ ॥ उस सर्वव्यापक मनको खींचकर एक अंगमें लगावे और दूसरे अंगों का ध्यान छोड़ताजावे उसमें भी सबसे पीछे सुन्दर मन्दहास्ययुक्त मुख का ध्यानकरै ॥ ४३ ॥ जब मेरे मुख में चित्त भलीप्रकार से स्थिर होजाय तब उसको मुख में से खींच सर्वकारणस्वरूप आकाश में धारण करै, फिर उसको भी छोड़कर शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मेरा अवलम्बनकर ध्याता और ध्येय के बिभाग को भी त्यागदेवे ॥ ४४ ॥ चित्तके इसप्रकार स्थिर होने पर, जैसे ज्योति ज्योति में लीन होजाती है, उसही प्रकार आत्मा में मुझको और मुख में

तम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थंसुतीव्रेण युंजतोयोगिनोमनः । संयास्यत्याशु निर्वाणंद्रव्य ज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच । जितेन्द्रियस्ययुक्तस्य जितश्वासस्ययोगिनः । मयिधारयतश्चेत उपतिष्ठन्तिसिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच । कयाधारणयाका स्वित्कथंवा सिद्धिरच्युत । कतिवासिद्धयोब्रूहि योगिनां सिद्धिदोभवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच । सिद्धयोऽष्टादशप्रोक्ता धारणायोगपारगैः । तासामष्टौमत्प्रधाना दशैवगुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमामहिमामूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः । प्राकाश्यंश्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसंगोवशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एतामेसिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् । मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥ स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता । अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥ एताश्चोद्देशतःप्रोक्ता योगधारणसिद्धयः । ययाधारणयाया स्याद्यथावास्यान्निबोधमे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनिमयि तन्मात्रंधारयेन्मनः । अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासकोमम ।१० महत्यात्मन्मयिपरे यथासंस्थंमनोदधत् । महिमानमवाप्नोति भूतानांचपृथक्पृथक्

आत्मा को देखे ॥ ४५ ॥ इसप्रकार तीक्ष्ण ध्यानद्वारा एकाग्रचित्त योगीका अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत रूप का दृश्य, ज्ञान और क्रियाभ्रम शीघ्रही नष्टहोजाता है ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांचतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

श्री भगवान ने कहा कि—जितेन्द्रिय, स्थिरचित्त, जित् प्राण, मुझमें धारण कियेहुए चित्तवाले योगी के निकट समस्त सिद्धियें उपस्थित होती हैं ॥ १ ॥ उद्धवजी ने कहा, हे अच्युत ! किसधारणासे किसप्रकारकी कौनसी सिद्धि होती है, योगियोंकी कितनी सिद्धियें हैं, सो कहिये क्योंकि आप योगियों के सिद्धिदाता हो, ॥ २ ॥ श्रीभगवान ने कहा, योग वेत्ता ऋषियों ने सिद्धियें अठारह प्रकार की कही हैं, उनमें से आठ मेरे आश्रित हैं शेष दश सत्वगुणसे प्राप्त होने वाली हैं॥३॥देहकी सिद्धि तीनप्रकार की अणिमा महिमा और लघिमाहैं जो प्राप्तिनामकी सिद्धि है उसका सब प्राणियों की इन्द्रियों के और उनके अधिष्ठातृ देवताओं के साथ सम्बन्ध है । परलोकके तथा इसलोकके सब विषयों में भोग देखनेकी सामर्थ्यवाली सिद्धिका नाम प्रकाश्य है; ईश्वर में मायाकी और दूसरों में अंशो की प्रेरणाकी सामर्थवाली सिद्धिका नाम ईशिता है ॥४॥ विषयों के भोग में असंगवाली सिद्धि का नाम वशिताहै । और जिसकेद्वारा अभिलषित विषयोंकी सीमा प्राप्ति होती है, यह आठवीं (कामावसायिता) सिद्धि है । हे सौम्य ! यह आठ मेरी स्वाभाविक सिद्धियें हैं ॥५॥ इस देह में क्षुधा तृषादिकका नहीं होना, दूरसे सुनना, दूरसे देखना, जहां मनजाय वहां शरीरका पहुंचना, इच्छितरूपकी प्राप्ति, दूसरेके शरीरमें प्रवेशकरना ॥६॥ स्वेच्छामृत्यु, देवताओंके रूप से अप्सराओंके साथ क्रीड़ाकरना, संकल्पके अनुसार प्राप्ति और किसी स्थलमेंभी आज्ञा का भंग न होना;—यह दश सिद्धियें गुणसे उत्पन्न होती हैं ॥ ७॥ त्रिकालज्ञता, द्वन्द्वसहिष्णुता, परिचितज्ञान,अग्नि सूर्य जल और बिष आदि का स्तंभितकररखना,और किसी स्थलमेंभी पराजित होना—योग धारणा की यह कई एक सिद्धियें हैं । जिस धारणा से जो सिद्धि होती है वह सुनो ॥ ८—९ ॥ जो मुझ सूक्ष्म भूतात्मक में सूक्ष्म भूता कामी चित्तकी धारणा करताहै, वह सूक्ष्म भूत का उपासक मेरी अणिमा सिद्धि को प्राप्तकरता है ॥१०॥ मुझ महत्त्वात्मकमें महत्त्वात्मकमन धारणकरताहै व वह उपासक महिमा सिद्धिको पाताहै । आकाश-

॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानांमयिरंजयन्। कालसूक्ष्मार्थतांयोगी लघिमानम वाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनोवैकारिकेऽखिलम्। सर्वेन्द्रियाणामात्म त्वं प्राप्तिंप्राप्नोतिमन्मना: ॥ १३ ॥ महत्यात्मनियः सूत्रेधारयेन्मयिमानसम्। प्राका श्यंपारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौत्र्यधीश्वरेचित्तं धारयेत्का- लविग्रहे। सईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणेतुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते। मनोमय्यादधद्योगी मद्धर्मावशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गु णेब्रह्मणिमयि धारयन्विशदंमनः। परमानन्दमाप्नोति यत्रकामोऽवसीयते ॥१७॥ श्वेतद्वीपपतौचित्तं शुद्धेधर्ममयेमयि। धारयञ्छ्वेततांयाति षडूर्मिरहितोनरः१८॥ मय्याकाशात्मनिप्राणे मनसाघोषमुद्वहन्। तत्रोपलब्धाभूतानां हंसोवाचःशृणो त्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरिसंयोज्य त्वष्टारमपिचक्षुषि। मांतत्रमनसाध्यायन् विश्वंपश्यतिसूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनोमयिसुसंयोज्य देहंतदनुवायुना। मद्धारणा नुभावेन तत्रात्मायत्रवैमनः ॥ २१ ॥ यदामनउपादाय यद्यद्रूपंबुभूषति। तत्तद्भवे न्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायंविशन्सिद्ध आत्मानंतत्रभावयेत् ॥ पिण्डंहित्वाविशेत्प्राणो वायुभूतःषडंघ्रिवत् ॥ २३ ॥ पार्ष्ण्याऽऽपीड्यगुदंप्राणं हृदुरःकण्ठमूर्धसु। आरोप्यब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्मनीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरि ष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थंसत्त्वंविभावयेत्। विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीःसुरस्त्रियः।

दि भूत रूप उपाधिवाले मेरे स्वरूप में मनकी धारणाकर योगी उन भूतोंकी भिन्न २ महिमाको प्राप्तहोताहै ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, तेज और बायु इन चार भूतों के परमाणुरूप उपाधिवाले मेरे स्वरूपमें मनकी धारणा करनेवाला योगी लघिमा सिद्धिको प्राप्तहोताहै ॥१२॥ जो वैकारिक अहं- तत्त्वात्मक मेरेस्वरूपमें चित्तको लगाताहै वह योगी सब इंद्रियोंकी अधिष्ठातृत्वरूप प्राप्ति सिद्धिको पाताहै॥१३॥सूत्रभूत महान् आत्म स्वरूप मुझ में जो मनकी धारणाकरताहै, वह अव्यक्त जन्मा मेरी सर्वोत्कृष्ट प्राकाश्य सिद्धिको प्राप्तकरताहै॥१४॥ त्रिगुणामायाके अधीश्वर सृष्टिकर्त्ता विष्णुस्व- रूप मुझमें मनकी धारणाकरनेसे जीव और उसकी उपाधि सबकी प्रेरणरूपा ईशिता सिद्धिप्राप्त होती है॥१५॥ भगवान शब्दसे शब्दित तुरीय नारायण मुझमें मनकी धारणाकरनेवाला महद्धर्म- युक्त योगी वशिता सिद्धिको प्राप्तकरता है ॥१६॥ निर्गुण ब्रह्म मुझमें विशद मनके धारण करनेसे परमा नन्द प्राप्त होताहै, उसहीसे समस्तइच्छाएं समाप्तहोतीहैं॥१७॥मानव सत्त्वात्मक, धर्ममय श्वेतद्वीपाधिपति स्वरूप मुझमें चित्तकी धारणा करने से क्षुधा, तृष्णा, शोक, मोह, जरा, मृत्यु वर्जितहो शुद्ध रूपता प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ आकाशात्मा समष्टिरूपी मुझमें मनद्वारा शब्द की भावना करने से जीव आकाश में ज्ञाता होकर प्राणियों की विचित्र बाणियों को सुनने रूप दूर श्रवण नाम सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ आँखों को सूर्य में और सूर्य को आँखों में मिलाय उन दोनों के सम्बन्ध में मन २ में मेरा ध्यानकरने से दूर दर्शन नामकी सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २० ॥ मन और शरीर इन दोनों के अनुगामी बायुद्वारा मुझमें चित्त को लगानेसे मनजिसस्थान में जाता है—देहभी उसी स्थान में जाता है ॥ २१ ॥ मनको उपादान कारणकर जिस२रूप के धारण करने की इच्छा होती है, योगी मनके उसी २ इच्छित रूप को धारण करसकता है; क्यों कि मेरा योगबल उनका आश्रय है ॥ २२ ॥ सिद्ध मनुष्य दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की इच्छा करे तो उसको आत्मचिंता करनी चाहिए, फिर वह अपनी देह को छोड़ प्राणवायु के स्वरूप से भ्रमरकी समान इच्छित देह में प्रवेश करसकता है ॥ २३॥ एंडी से गुदाकोदबा प्राण रूप उपाधिवाले आत्मा को क्रमशः हृदय, वक्षस्थल, कण्ठ और मस्तक में चढ़ाकर ब्रह्मरन्ध्र रूप द्वारसे मनद्वारा पराई कायामें जाय अपने स्थूल देह का त्यागकरे ॥ २४ ॥ देवताओं की

॥ २५ ॥ यथासंकल्पयेद्बुद्ध्या यदावामत्परःपुमान् । मयिसत्येमनोयुञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ योवैमद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुःपुमान् । कुतश्चिन्नविहन्येत तस्यचाज्ञायथामम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्याशुद्धसत्वस्य योगिनोधारणाविदः । तस्यत्रैकालिकीबुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्नहन्येत मुनेर्योगमयंवपुः । मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकंयथा ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्याय च्छ्रीवत्सास्त्रविभूषिताः । ध्वजातपत्रव्यजनैः सभवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपासकस्यमामेवं योगधारणयामुनेः । सिद्धयःपूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रियस्यदान्तस्य जितश्वासात्मनोमुनेः । मद्धारणांधारयतःकासासिद्धिःसुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अन्तरायान्वदन्त्येता युंजतोयोगमुत्तमम् । मयासंपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिहसिद्धयः । योगेनाप्नोति ताःसर्वा नान्यैर्योगगतिंव्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपिसिद्धीनां हेतुःपतिरहंप्रभुः । अहंयोगस्यसांख्यस्य धर्मस्यब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मान्तरोबाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् । यथाभूतानिभूतेषु बहिरन्तःस्वयंतथा ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० एकाद० पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उद्धवउवाच ॥ त्वंब्रह्मपरमंसाक्षादनाद्यन्तमपावृतम् । सर्वेषामपिभावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥ उच्चावचेषुभूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः । उपासते त्वांभगवन्याथातथ्येनब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषुयेषुचभावेषु भक्त्यात्वांपरमर्षयः । उ

क्रीड़ा भूमिमें विहार करने की इच्छा होनेसे मेरी मूर्त्तिरूप शुद्ध सत्वकी चिंता करनी चाहिए; ऐसा होनेसे सत्वगुण के अंश स्वरूप देवांगनाएं विमानलेकर निकट आजाती हैं ॥ २५ ॥ मत्परायण पुरुष चित्त में जब जिसप्रकार का जो संकल्प करें सत्य संकल्प मुझ में मनके लगाने से उसी प्रकार का फल पाने रूप यथासंकल्प नाम सिद्धि को प्राप्त करसकेंगे ॥२६॥ मुझ सर्व नियंता और स्वतंत्रमें मनकी धारणा करनेवालायोगी मेरेस्वभावको प्राप्तहोताहै फिरवहपुरुष अप्रतिहताज्ञा सिद्धि को प्राप्तहोता है ॥२७॥ त्रिकालज्ञईश्वर में मनको धारणकरै तो मेरी भक्तिसे शुद्ध अन्तःकरण वाले योगीको तीनों कालकी वस्तुओं की तथा अपने जन्म मरण की जानने रूप त्रिकालज्ञ सिद्धि प्राप्त होती है परचित्ताद्यभि ज्ञाता सिद्धिभी इसी धारणा से प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ जैसे जल जलचरों को हानि नहीं पहुँचाता, उसही प्रकार मेरे योगद्वारा अभ्रांत चित्त योगी का देह अग्न्यादि द्वारा व्याहत नहीं होता ॥ २९ ॥ जो श्रीवत्स, अस्त्र, भूषण, ध्वज, छत्र और व्यजन सहित मेरे अवतारों का ध्यान करते हैं, वे कभी पराजित नहीं होते ॥ ३० ॥ मेरे उपासकों को ऐसे योग धारण द्वारा पहिले कही हुई सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ ३१ ॥ जो जितेन्द्रिय, जितप्राण जितचित्त योगी मुझमें अपने मनको लगाते हैं उनको कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥ ३२ ॥ यह सब सिद्धियें उत्तम योगचारी मत्परायण योगियों की विघ्नस्वरूप हैं; क्योंकि इनमें लगजाने से कालक्षेप होता है ॥ ३३ ॥ इसलोक में जन्म, औषधि, तपस्या, और मंत्र द्वारा जो सिद्धियें प्राप्त होती हैं योगी को योगही द्वारा वह प्राप्त होजाती हैं; योगकी गति दूसरे उपायोंद्वारा प्राप्त करै । मैं समस्त सिद्धि, मोक्ष, साधनज्ञान, धर्म और धर्मोपदेष्टा ब्रह्मवादियों का कारणहूं; मैंही पालनकर्त्ता और प्रभुहूं । मैंही आवरणरहित सब देहियोंका व्यापक, अंतर्यामी आत्माहूं जैसे सब भूतोंमें पंचभूत भीतर और बाहर स्थित हैं उसही प्रकार मैंभी सबके भीतर और बाहर स्थितहूं ॥३४।३६॥ इतिश्रीमद्भा०महा०एका०सरलाभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः १५॥

उद्धवजीने कहा—आप साक्षात् परब्रह्म, अनादि, अनंत और स्वाधीनहो, अतएव सबपदार्थों का पालन, जीवन, नाश और उत्पत्ति आपसेही होती रहती है ॥ १ ॥ आप ऊंचे नीचे प्राणियों में वर्त्तमानहो परंतु अकृतपुण्य लोग आपको नहीं जानसकते । हे भगवन् ! ब्राह्मण आपकी भली

पासीनाःप्रपद्यन्ते संसिद्धिंतदुद्धवमे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसिभूतात्मा भूतानांभूतभावन । नत्वांपश्यन्तिभूतानि पश्यन्तंमोहितानिते ॥ ४ ॥ याःकाश्चभूमौदिवि वैरसायांविभूतयोदिक्षुमहाविभूते । तामह्यमाख्याह्यनुभावतास्ते नमामितेतीर्थपदांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहंपृष्टः प्रश्नंप्रश्नविदांवर । युयुत्सुनाविनशने सपत्नैरर्जुनेनवै ॥ ६ ॥ ज्ञात्वाज्ञातिवधंगर्ह्य मधर्मंराज्यहेतुकम् । ततोनिवृत्तोहन्ताऽहं हतोऽयमितिलौकिकः ॥ ७ ॥ सतदापुरुषव्याघ्रो युक्त्यामेप्रतिबोधितः । अभ्यभाषतमामेवं यथात्वंरणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानांसुहृदीश्वरः । अहंसर्वाणिभूतानि तेषांस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहंगतिर्गतिमतां कालःकलयतामहम् । गुणानांचाप्यहंसाम्यं गुणिन्यौत्पत्तिकोगुणः १०॥ गुणिनामप्यहंसूत्रं महतांचमहानहम् । सूक्ष्माणामप्यहंजीवो दुर्जयानामहंमनः ॥ हिरण्यगर्भोवेदानां मन्त्राणांप्रणवस्त्रिवृत् । अक्षराणामकारोऽस्मि पदानिच्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥ इन्द्रोऽहंसर्वदेवानां वसूनामस्मिहव्यवाट् । आदित्यानामहंविष्णु रुद्राणांनीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणांभृगुरहं राजर्षीणामहंमनुः । देवर्षीणांनारदोऽहं हविर्धान्यस्मिधेनुषु ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वराणांकपिलः सुपर्णोऽहंपतत्रिणाम् । प्रजापतीनांदक्षोऽहं पितृणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मांविद्ध्युद्धवदैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् । सोमंनक्षत्रौषधीनां धनेशंयक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतंगजे

प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥ अतएव परम ऋषियोंने जिन २ रीतियों से भक्ति सहित आप की उपासनाकर सिद्धि प्राप्तकी है वह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ हे भूतभावन ! आप प्राणियोंके अंतर्यामी, व्यक्त भावसे प्राणियों के बीचमें विचरा करते हो; आप सबको देखते हो किन्तु आप से मोहित प्राणी आपको नहीं देख सकते ॥ ४ ॥ हे महा विभूतिसम्पन्न ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल और दिशाओं में आपकी विशेष शक्ति से संयुक्त जो बिभूतियां हों वे सब मुझसे कहो;—मैं तीर्थ के उत्पत्ति क्षेत्र आप के चरण कमलों को प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥ श्रीभगवानने कहा, हे प्रश्न वेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! कुरु क्षेत्रमें जातिवालोंके साथ समर करनेमें प्रवृत्त हुए अर्जुनने मुझसे इस प्रश्न को किया था। यह तुह्मारा प्रश्न करके अवतार रूप अर्जुन के प्रश्न के सदृस होनेसे अति उत्तम है ॥ ६ ॥ "मैं मारने वाला हूं" और यह मारे जावेंगे, इसप्रकार लौकिक बुद्धि के बशमें होकर राज्य के निमित्त जाति बधको अधर्म और निंदित जान वह उससे निवृत्त हुआथा ॥ ७ ॥ हे पुरुष व्याघ्र ! तब मैंने उसको यत्न पूर्वक समझा दिया, फिर उसने रणस्थल में जो मुझसे प्रश्न किया था, आज तुमनेभी मुझसे वही पूछा है ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! मैं सब भूतोंका आत्मा, सुहृद और ईश्वर हूं। मैंही सर्वभूत और मैंही उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका कारण हूं ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी गति मैंहीहूं बश करने वालोंका बशाकर्त्ता; गुणोंकी प्रकृति और गुणोका गुणभी मैंही हूं ॥ १० ॥ मैं गुणवाले पदार्थोंका प्रथम कारण और सब महत् का महत्तत्व हूं। सूक्ष्म पदार्थों में जीव और दुर्जय पदार्थों में मन मेरा स्वरूप है ॥ ११ ॥ मैं वेदाध्यापक हिरण्यगर्भ और मंत्रों में अवयवत्रय युक्त ओंकार हूं। मैंसब अक्षरों के बीचमें अकार और छन्दोंके बीचमें गायत्री हूं ॥ १२ ॥ मैं सब देवताओं के बीचमें इन्द्र; बसुओं के बीचमें अग्नि; अदिति के पुत्रोंके बीच में विष्णु और रुद्रों के बीचमें नीललोहित हूं ॥ १३ ॥ मैं महर्षियोंके बीचमें भृगु, राजर्षियोंके बीचमें मनु; देवर्षियोंके बीचमें नारद और सब धेनुओंके बीचमें कामधेनु हूं ॥१४॥ मैंसिद्धेश्वरों के बीच में कपिल; पक्षियोंके बीचमें गरुड़, प्रजापतियोंके बीचमें दक्ष और पितरोंके बीचमें अर्यमाहूं॥१५॥ हे उद्धव ! मुझको दैत्योंके बीचमें असुरराज प्रह्लाद, नक्षत्रोंके और औषधियोंके बीचमें चन्द्रमा यक्ष और राक्षसों के बीचमें कुबेर हूं ॥ १६ ॥ मैं गजराजोंके बीचमें ऐरावत, जलजंतुओंका प्रभु

न्द्राणां यादसांवरुणंप्रभुम् । तपतांद्युमतांसूर्यं मनुष्याणांचभूपतिम् ॥ १७ ॥ उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मिकांचनम् । यमःसंयमतांचाहं सर्पाणामस्मिवासुकिः ॥ १८ ॥ नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रःशृंगिदंष्ट्रिणाम् । आश्रमाणामहंतुर्यो वर्णानांप्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानांस्रोतसांगङ्गा समुद्रःसरसामहम् । आयुधानांधनुरहं त्रिपुरघ्नोधनुष्मताम् ॥ २० ॥ धिष्ण्यानामस्म्यहंमेरुर्गहनानांहिमालयः । वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहंयवः ॥ २१ ॥ पुरोधसांवसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानांबृहस्पतिः । स्कन्दोहंसर्वसेनान्या मग्रण्यांभगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् । वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहंशुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोस्मिविजिगीषताम् । आन्वीक्षिकीकौशलानां विकल्पःख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणांतुशतरूपाऽहं पुंसांस्वायंभुवोमनुः । नारायणोमुनीनांच कुमारोब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥ धर्म्माणामस्मिसंन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः । गुह्यानांसूनृतंमौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनांमधुमाधवौ । मासानांमार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणांतथाऽभिजित् ॥२७॥ अहंयुगानांचकृतं धीराणां देवलोऽसितः । द्वैपायनोऽस्मिव्यासानां कवीनांकाव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवोभगवतां त्वंतुभागवतेष्वहम् । किंपूरुषाणांहनुमान् विद्याध्राणांसुदर्शनः ॥२९॥ रत्नानांपद्मरागोऽस्मि पद्मकोशःसुपेशसाम् । कुशोस्मिदर्भजातीनां गव्यमाज्यंहविष्ष्वहम् ॥ ३० ॥ व्यवसायिनामहंलक्ष्मीः कितवा

वरुण, प्रतापशाली और दीप्तिशालियोंके बीचमें सूर्य और मनुष्योंके बीचमें राजा हूं ॥ १७ ॥ मैं घोड़ों के बीचमें उच्चैःश्रवा धातुओं के बीचमें सुवर्ण, दण्ड देने वालोंके बीचमें यम, सर्पों के बीचमें वासुकि हूं ॥ १८ ॥ मैं नागोंके बीचमें अनंत और हिंसक पशुओंके बीचमें सिंह हूं । हे अनघ ! मुझको आश्रमों के बीचमें चौथा आश्रम, और वर्णोंके बीचमें ब्राह्मण जानो ॥ १९ ॥ मे नदियों के बीच में गंगा, स्थिर जलाशयों के बीच में समुद्र, अस्त्रों के बीच में धनुष और धनुषधारियों के बीच में त्रिपुरनाशी महादेव हूं ॥ २० ॥ मुझको निवासस्थानों के बीचमें मेरु, पहाड़ोंके बीच में हिमालय, बनस्पतियों के बीच में पीपल और औषधियों के बीच में यवजानों ॥ ॥ २१ ॥ मैं पुरोहितों के बीच में वशिष्ठ, वेद जाननेवालों के बीच में बृहस्पति, सब सेनापतियों के बीच में कार्तिकेय और अग्रगण्यों के बीचमें भगवानब्रह्मा हूं ॥ २२ ॥ यज्ञों में ब्रह्मयज्ञ और व्रतों में अहिंसा मेरा स्वरूप है । मुझको शोधकों के बीच में शोधक वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाक्य और आत्मा ॥ २३ ॥ योगों के बीच में समाधि; विजयकी इच्छावालों की नीति; सब कौशलों के बीच में आन्वीक्षिकी और ख्यातिवादियों के बीचमें विकल्पजानों ॥ २४ ॥ मैं स्त्रियोंके बीच में शतरूपा मनुपत्नी, पुरुषों के बीच में स्वायंभुव मनु, मुनियों के बीच में नारायण और ब्रह्मचारियों के बीचमें सनत्कुमार हूं ॥ २५ ॥ मैं सब धर्मों के बीच में प्राणियों के प्रति अभयदान; सब अभयस्थानों के बीचमें अंतर्निष्ठा; सब गुह्यों के बीच में प्रियभाषण, और मौन तथास्त्री पुरुष के जोड़ों के बीच में प्रजापतिहूं ॥ २६ ॥ मुझको अप्रमत्तों के बीच में सम्वत्सर ऋतुओं के बीच में बसंत, मासों के बीच में अग्रहायण और नक्षत्रोंके बीच में अभिजित जानों ॥ मैं युगों के मध्यमें सत्ययुग, धीर मनुष्यों के मध्यमें देवल और असित, वेदका विभाग करने वालों में व्यास और पण्डितों के मध्यमें आत्मवान् शुक्रहूं ॥ २८ ॥ और भगवानों के बीचमें वासुदेव; भक्तों के बीच में उद्धव, बानरोंके मध्य में हनुमान और विद्याधरोंके मध्यमें सुदर्शनहूं ॥ ॥ २९ ॥ मैं मणियों के मध्य में पद्मराग, सुन्दर पदार्थोंके मध्य में कमलकोष, दर्भजातियों के मध्यमें कुश, और घृतों के मध्य में गौका घृतहूं ॥ ३० ॥ मुझको व्यवसायिया की धनादि सम्-

नांछलग्रहः । तितिक्षाऽस्मितितिक्षूणां सत्त्वंसत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजःसहो बलवतां कर्माहंविद्धिसात्वताम् । सात्वतांनवमूर्तीनामादिमूर्तिरहंपरा ॥ ३२ ॥ विश्वावसुःपूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् । भूधराणामहंस्थैर्यं गन्धमात्रमहंभुवः । ॥ ३३ ॥ अपांरसश्चपरमस्तेजिष्ठानांविभावसुः । प्रभासूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसःपरः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानांबलिरहं वीराणामहमर्जुनः । भूतानां स्थितिरुत्पत्ति रहंवै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् । आस्वाद श्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवीवायुराकाश आपोज्योतिरहंमहान् । विकारःपुरुषोऽव्यक्तं रजःसत्त्वं तमःपरम् ॥ ३७ ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानंतत्त्वविनिश्चयः । मयेश्वरेणजीवेन गुणेनगुणिनाविना । सर्वात्मनाऽपिसर्वेण नभावो विद्यतेक्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानंपरमाणूनां कालेनक्रियतेमया । नतथामेविभूतीनांसृजतोऽण्डानिकोटिशः ॥ ३९ ॥ तेजःश्रीःकीर्ति रैश्वर्यंह्रीस्त्यागः सौभगंभगः वीर्यंतितिक्षा विज्ञानं यत्रयत्रसमेऽशकः ॥ ४० ॥ एतास्तेकीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेणविभूतयः । मनोविकाराएवैते यथावाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचंयच्छमनोयच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणिच । आत्मानमात्मनायच्छ नभूयःकल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ योवै वाङ्मनसीसम्यगसंयच्छन्धिया यतिः । स्यव्रतंतपोदानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ४३॥ तस्मान्मनोवचः प्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः । मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

त्ति, धूर्तोका छल, क्षमाशील मनुष्योंकी क्षमा और सत्वशालियों का सत्वजानों ॥ ३१ ॥ मैं बलशालियों का इन्द्रियबल और देहबल, भक्तोंका भक्तिकृतकर्म और भक्तोंकी पूज्य नवमूर्त्तियों के मध्य में श्रेष्ठ आदि मूर्त्ति हूं ॥ ३२ ॥ मैं गन्धर्व और अप्सराओं के मध्यमें विश्वावसु और पूर्व चित्ति हूं । मैं पहाडों की स्थिरता, पृथ्वी की अविकृत गन्धमात्र हूं, ॥३३॥ मैं जलका मधुररस, तेजस्वियोंका विभावसु, सूर्य चन्द्र और ताराओं की प्रभा; तथा आकाश के मध्य में परनामक शब्दहूं ॥ ३४ ॥ मैं ब्राह्मणों के भक्तों में बलिराजा; वीरों के मध्य में अर्जुन, प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयहूं ॥ ३५ ॥ मैं गमन, वाक्य, उत्सर्ग, ग्रहण, आनन्द; और स्पर्श, दर्शन, आस्वादन, श्रवण और घ्राण—इन दश इन्द्रियों की इन्द्रियहूं ॥ ३६ ॥ मुझकोही पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, महत्तत्व, जीव, प्रकृति, सत्व, रज, तम और ब्रह्म जानों । इन तत्वों की गणना, उनके लक्षणों का ज्ञान और उनका निश्चय मैंही हूं ॥ ३७ ॥ मैं कि–जो जीव ईश्वररूप, गुण–गुणिरूप, क्षेत्र–क्षेत्रज्ञरूप और सबका नियन्ता होने परभी सर्वरूप हूं । मेरे बिना कहीं भी कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३८ ॥ काल में मैंही परमाणुओंकी गणना करताहूं, किन्तु मेरी विभूति की गणनानहींकी जासकती; मैं करोडों ब्रह्मांडोंको रचतारहताहूं ॥३९॥ जिस जिसमें प्रभाव, सम्पत्ति, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, सौभाग्य, भाग्य, बल, तितिक्षा और विज्ञान है वही २ मेरी विभूतियें हैं ॥ ४० ॥ तुमसे मैंने यह सब बिभूतियें संक्षेप से कहीं । यह सब केवल मन के विकार और वाक्य से कथित होती हैं ॥ ४१ ॥ अतएव वाक्य, मन, प्राण और इन्द्री सबको संयतकर आत्माद्वारा आत्माको संयतकरो;—तो संसार मार्ग में प्रवर्त्तित न होगे ॥ ४२ ॥ जिस यति ने मनद्वारा वाक्य और मनको संयतकिया, कच्चे घडे में भरेहुए जलकी समान उनकाव्रत, तप, दान सब नष्टहोजाता है ॥ ४३ ॥ अतएव मत्परायण मनुष्यको वाक्य, मन और प्राण का संयतकरना चाहिये; तदनन्तर वह मेरी भक्ति युक्त बिद्याद्वारा कृतार्थ होगा ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

उद्धवउवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वंधर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः।वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषांद्विपदामपि ॥ १ ॥ यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयिभक्तिर्नृणांभवेत् । स्वधर्मेणार विन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुराकिलमहाबाहोधर्मं परमकंप्रभो । यत्तेन-हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थमाधव ॥ ३ ॥ सइदानींसुमहता कालेनामित्रकर्शन । न-प्रायोभविता मर्त्यलोकेप्रागनुशासितः॥४॥ वक्ताकर्ताऽवितानान्योधर्मस्याच्युतते-भुवि । सभायामपिवैरिञ्च्यां यत्रमूर्तिधराःकलाः ॥५॥ कर्ताऽवित्राप्रवक्त्राच भ-वतामधुसूदन । त्यक्तेमहीतलेदेवविनष्टंकः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वंनः सर्वधर्मज्ञध-र्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । यथायस्यविधीयेत तथावर्णयमेप्रभो ॥ ७ ॥ श्रीशुकउवाच । इत्थंस्वभृत्यमुख्येनपृष्टः सभगवान्हरिः । प्रीतः क्षेमायमर्त्यानांधर्मानाह सना-तनान् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । धर्म्यएषतवप्रश्नो नैश्रेयसकरोनृणाम् । वर्णाश्र-माचारवतां तमुद्धवनिबोधमे ॥ ९ ॥ आदौकृतयुगे वर्णो नृणांहंसइतिस्मृतः । कृ तकृत्याःप्रजाजात्या तस्मात्कृतयुगंविदुः ॥ १० ॥ वेदःप्रणवएवाग्रे धर्मोऽहंवृषरूप धृक् । उपासतेतपोनिष्ठा हंसंमांमुक्तकिल्बिषाः ॥११॥ त्रेतामुखेमहाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी । विद्याप्रादुरभूत्तस्या अहमासंत्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शू द्रा मुखबाहूरुपादजाः । वैराजात्पुरुषाज्जाताय आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहा-श्रमोजघनतो ब्रह्मचर्यंहृदोमम । वक्षःस्थानाद्वनेवासो न्यासः शीर्षणिसंस्थितः । ॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणांच जन्मभूम्यनुसारिणीः । आसन्प्रकृतयोनृणां नीचैर्नी

उद्धवजी ने कहा कि—हे प्रभो ! वर्णाश्रमचारी और वर्णाश्रम विहीन जिस धर्मद्वारा आप को प्राप्त करसकते हैं वह आपने पहिले कहा है ॥ १ ॥ हे कमल लोचन ! उस स्वधर्म के जिस प्रकार अनुष्ठित होने से आप पर मनुष्यों की भक्ति होवे वह आप मुझसे कहिए ॥ २ ॥ हे महा बाहो ! हेप्रभो ! हे माधव ! पहिले आपने हंसस्वरूप से परम सुखरूप जो धर्म कहाथा ॥ ३ ॥ हेशत्रुमर्दन ! इस समय बहुत काल बीत जाने से पृथ्वी पर प्रायः वह अब प्रचलित नहीं है ॥ ४ ॥ हेअच्युत ! पृथ्वी पर धर्म का बक्ता, कर्त्ता और रक्षिता दूसरा कोई नहीं है जहांपर वेद विद्या मूर्त्तिमतीहो अवस्थित है उस ब्रह्मसभा में भी आप के अतिरिक्त औरकोई कहनेवाला करने वाला वा रक्षक न होगा ॥ ५ ॥ हेमधुसूदन ! हे देव ! कर्त्ता, रक्षिता और बक्ता आपके पृथिवी छोड़ देने पर कौन मनुष्य नष्टधर्म को कहेगा ? ॥ ६ ॥ अतएव हे सर्वधर्मज्ञ ! हे प्रभो ! आप पर भक्तिरूप धर्म मनुष्यों के बीचमें भी जिसको जिसप्रकार करना कर्तव्य है, मेरे निकट उस सबका बर्णन करिये ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अपने सेवक के इसप्रकार से पूछने पर वे भगवान श्रीकृष्णजी प्रसन्नहुए और सृष्टि के हितसाधन के निमित्त सनातनधर्म कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि–हेउद्धव ! तुम्हारा यह प्रश्न धर्मसंगत है क्योंकियहवर्णाश्रम चारी मनुष्यों के मुक्ति का साधन है । यह धर्म मुझ से सुनो ॥ ९ ॥ प्रथम सत्ययुग में मनुष्यों का केवल एक वर्ण हंसथा । मनुष्य उस युगमें केवल जन्म सेही कृतकृत्य होताथा;इसही निमित्त उसका नाम कृतयुग कहागया है ॥ १० ॥ पहिले ओंकारही वेद और वृषरूपधारी मैं धर्मथा; इस कारण तपोनिष्ठ पाप रहित मनुष्य मेरी उपासना करतेथे ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! त्रेताके आरम्भ में मेरे हृदय से प्राण रूपकर ऋक्, यजु और साम उत्पन्नहुए; होता, अध्वर्यु, और उद्गाताद्वारा उससे मैं त्रिवृत्त यज्ञस्वरूपहुआ ॥१२॥ ब्राह्मण, क्षत्री, बैश्य और शूद्र बिराट्पुरुष के मुख, बाहु उरू और चरणों से उत्पन्नहुए; अपने २ धर्मों और आचारोंसेही यह जाने जाते हैं ॥ १३ ॥ गृहस्थाश्रम मेरी जंघा, ब्रह्मचर्य मेरे हृदय से और बानप्रस्थ मेरे बक्षस्थल से उत्पन्न हुआ है; तथा संन्यास मेरे मस्तक में स्थित है ॥ १४ ॥ मनुष्यों के बर्ण और आश्रमों की प्रकृति जन्म

चोत्तमोत्तमाः ॥ १५ ॥ शमोदमस्तपःशौचं संतोषःक्षान्तिरार्जवम्। मद्भक्तिश्चद यासत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ तेजोबलंधृतिःशौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः॥ स्थैर्यंब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यंदाननिष्ठाच अदम्भो ब्रह्मसेवनम्। अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः॥१८॥शुश्रूषणंद्विजगवांदेवानां चाप्यमायया। तत्रलब्धेनसंतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥ अशौचमनृतंस्ते-यं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः। कामःक्रोधश्चतर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ २० ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता। भूतप्रियहितेहाच धर्मोऽयंसार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः। वसन्गुरुकुलेदान्तोब्रह्माधीयी तचाऽऽहुतः ॥ २२ ॥ मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून्। जटिलोऽधौतदद्वा सोऽरक्तपीःकुशान्दधत् ॥ २३ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारेचवाग्यतः। नच्छि न्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥ रेतोनावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरःस्वय म्। अवकीर्णेऽवगाह्याऽप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगु रुवृद्धसुरान्शुचिः। समाहितउपासीत संध्येच यतवाग्जपन् ॥ २६ ॥ आचार्यंमां विजानीयान्नावमन्येतकर्हिचित्। नमर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥ २७ ॥ सायंप्रातरुपानीयभैक्ष्यं तस्मैनिवेदयेत्। यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ ॥ २८ ॥ शुश्रूषमाणआचार्यं सदोपासीतनीचवत्। यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे

स्थान के अनुसार हुईथी; उच्चस्थान में उत्पन्नहुए उच्च और नीचस्थान में उत्पन्नहुए नीचहुएथे ॥ १५ ॥ सम, दम, तप, शौच, संतोष, क्षमा, सरलता, मुझमें भक्ति, दया और सत्य यहसब ब्राह्मणों की प्रकृति है ॥ १६ ॥ प्रभाव, बल, धैर्य, धारता, तितिक्षा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्राह्मणों की हितकारिता और ऐश्वर्य यहसब क्षत्रियों की प्रकृति हैं ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दानमें निष्ठा, दम्भहीनता, ब्राह्मणसेवा और धनकी चाहे जितनी वृद्धिहो उस से सन्तुष्ट न होना यहसब वैश्यकी प्रकृति हैं ॥ १८ ॥ अकपट भावसे ब्राह्मण, गौ और देवताओं की सेवाकरना तथा उन से प्राप्तहुए पदार्थों से सन्तुष्टरहना यहसब शूद्रकी प्रकृति हैं ॥ १९ ॥ अपवित्रता, मिथ्या, चोरी नास्तिकता, व्यर्थलड़ाई, काम, क्रोध और लोभ यहसब श्वपच चाण्डालादिकों की प्रकृति हैं ॥ २० ॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, काम, क्रोध लोभ त्याग और प्राणियों के हितकर प्रियसाधन में चेष्टा,—यह सब वर्णों का धर्म है ॥ २१ ॥ ब्राह्मण गर्भाधानादि संस्कार के उपरांत उपनयन नामक द्वितीय जन्म प्राप्तकर जितेंद्रिय हो गुरुकुल में बासकरै। और गुरुके द्वारा बुलाये जानेपर वेदाध्ययन और उसके अर्थ के विचार में प्रवृत्त होवे ॥ २२ ॥ उसको मेखला, मृगचर्म, दण्ड, जप करनेकी माला, यज्ञोपवीत और कमण्डलु तथा कुश धारण करना चाहिये;—केशों की जटाबनावे;—वस्त्र और दांतो कोन धोवे तथा आसन को न रँगे ॥ ॥ २३ ॥ उसका;—स्नान, भोजन, होम, जप और मलमूत्र त्यागने के समय मौनी रहना चाहि-ये। नखों को न कटवावे तथा कांख और उपस्थ के बाल न बनवावे ॥ २४ ॥ ब्रह्मव्रताचारी कभी वीर्य को न गिरावे; यदि स्वयं गिरजावे तो जल में स्नानकर प्राणायाम पूर्वक गायत्रीका जपकरै ॥ २५ ॥ शुद्धहो एकाग्रचित्त से मौन को धारणकर द्विसन्ध्या का जपकरे तथा अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, और देवताओंकी उपासनाकरै ॥ २६ ॥ गुरूको मेरा स्व रूपजानै,—कभी तिरस्कार न करै, और उसके गुणमें दोषका आरोप नहींकरना; क्योंकि गुरू स-र्वदेवमय है ॥ २७ ॥ भिक्षाद्वारा जो प्राप्तहो अथवा और भी जो कुछ मिलजावे; वह प्रातःकाल और सायंकाल को लाय गुरूके अर्पणकरै ।; वह जो भोजन करने की आज्ञाकरैं, एकाग्रचित्तहो उसही का भोजनकरै ॥ २८ ॥ नीचकी समान हाथजोड निकटही निवासकर आचार्यकी शुश्रूषा

कृतांजलिः ॥ २९ ॥ एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः । विद्यासमाप्यते यावद्बि भ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम् । गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् । अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् । प्राणिनो मिथुनीभूता नगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् । तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याऽभक्ष्याऽसंभाष्यवर्जनम् ।३४। सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन । मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ।३५ एवंबृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् । मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६ ॥ अथानन्तरमावेक्ष्यन्यथाजिज्ञासितागमः । गुरवे दक्षिणां दत्वा स्नायाद्गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः । आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् । यवीयसीं तु वयसा यांसवर्णामनुक्रमात् ॥३९॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् । प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् । अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते । कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ ४२ ॥ शि

परायण हो गमन, शयन और उपवेशनद्वारा उनकी सेवा करे ॥ २९ ॥ जबतक विद्या समाप्त न होवे तबतक एकांत ब्रतधारणकर इसही प्रकार अनुष्ठान करतेहुए भोग रहितहो गुरुकुल में बास करना चाहिये ॥ ३० ॥ यदि उसको इन वेदों के निवासस्थान ब्रह्मलोक में जानेकी इच्छा होवे तो बृहत्व्रत धारण कर अधिक अध्ययन के निमित्त तेजयुक्त और निष्पापहो भिन्नबुद्धिकोत्याग अग्नि, गुरु, आत्मा और सब प्राणियों में परमेश्वररूपी मेरी उपासना करनी चाहिये ॥ ३१—३२ ॥ अगृहस्थ मनुष्य को स्त्रियों का दर्शन, स्पर्शन, आलाप और परिहासादि त्याग देना चाहिये;और स्त्री पुरुष के प्रसंगको न देखे ॥ ३३ ॥ शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, मेरी पूजा, तीर्थ सेवा, जप, अस्पृश्य, अभक्ष्य और अयोग्यभाषणका त्यागकर देवे ॥ ३४ ॥ सब प्राणियों में मेरा ध्यान करे और चित्तवाक्य तथा शरीरको संयमरक्खे । हे कुलनन्दन ! यह सब शौचादि नियम सबही आश्रमों के साधारण धर्म हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकारसे ब्रतधारी, प्रज्वलित अग्निकी समान ब्राह्मणके निष्काम होनेपर उसके कठोर तपस्याद्वारा कर्माशय दग्ध होजाते हैं और वह मेराभक्त होजाता है ॥ ३६ ॥ यदि उसकी इच्छा द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने की हो तो उसको उचित है कि वह भलीप्रकार से वेदार्थका विचारकर गुरूको दक्षिणादे गुरूकी आज्ञा ले तदनंतर स्नान करै॥३७॥ मत्परायण द्विजवर ब्रह्मचारी यदि सकाम हो तो गृहस्थहोवे और यदि निष्कामहो तो बानप्रस्थाश्रमकरै; यदि शुद्ध चित्तहो तो सन्यासलेवे, अथवा एकआश्रम से दूसरे आश्रमको जावे । इससे विपरीत न करै अर्थात् आश्रम शून्य न रहै ॥ ३८ ॥ गृहस्थाश्रम के चाहने बालेको सवर्णा, अनंदिता, अपनी अवस्था से न्यूनस्त्रीसे विवाह करना चाहिये; कामके हेतु जो दूसरे बर्णका बिवाह करना चाहेतो सबर्णा स्त्रीके ब्याहके उपरांत दूसरा ब्याह करै॥३९॥ यज्ञ, अध्ययन और दान यहतीनों ब्राह्मण क्षत्री और वैश्योंके साधारण धर्म हैं । प्रतिग्रह, अध्ययन और यजन ये तीन केवल ब्राह्मण केही धर्म हैं ॥ ४० ॥ दान लेनेसे (प्रतिग्रह) तपस्या, तेज और यशका नाश होताजान अन्य दोनों बृत्तियों से जीवन को धारण करै; और यज्ञ कराने व वेद पढ़ानेमें भी दोष देखेतो क्षेत्र स्वामीके छोड़े हुए अन्नके दोनोंको बीनकर अपनी जीविका का निर्वाह करे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणका यह शरीर तुच्छ कामनाओंके भोगनेके निमित्त नहींहै किन्तु समस्त जीवन दुःखका सहनकर तपस्यामें चित्त लगाय मरनेके पीछे अंनत सुख भोगनेके निमित्त

लोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्मंमहान्तंविरजंजुषाणः। मय्यर्पितात्मागृहएव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैतिशान्तिम् ॥ ४३ ॥ समुद्धरन्तियेविप्रं सीदन्तंमत्परायणम्। तानुद्धरिष्येनचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥ सर्वाःसमुद्धरेद्राजा पितेवव्यसनात्प्रजाः। आत्मानमात्मनाधीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥ एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा। विधूयेहाशुभंकृत्स्नमिंद्रेण सहमोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रोवणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदंतरेत्। खड्गेनवाऽऽपदाक्रान्तो नश्ववृत्त्याकथंचन ॥ ४७ ॥ वैश्यवृत्त्यातुराजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि। चरेद्वा विप्ररूपेण नश्ववृत्त्याकथंचन ॥ ४८ ॥ शूद्रवृत्तिंभजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम्। कृच्छ्रान्मुक्तोनगर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेतकर्मणा ॥४९॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम्। देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहंयजेत् ॥ ५० ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेनवा। धनेनाऽपीडयन्भृत्यान् न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुम्बेषुनसज्जेत नप्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि। विपश्चिन्नश्वरंपश्येददृष्टमपिदृष्टवत् ॥ ५२ ॥ पुत्रदाराप्तबन्धूनांसंगमःपान्थसंगमः अनुदेहंवियन्त्येते स्वप्नोनिद्रानुगोयथा ॥ ५३ ॥ इत्थंपरिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन्। नगृहैरनुबध्येत निर्ममोनिरहंकृतः ॥ ५४ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वामामेवभक्तिमान्। तिष्ठेद्वनंवोपविशेत्प्रजावान्वापरिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमति

है ॥ ४२ ॥ शिलोञ्छ वृत्तिद्वारा संतुष्टचित्त हो निष्काम महद्धर्मका सेवनकर मुझमें आत्म समर्पण करे और अति आसक्त भावसे घरमें रहकर मोक्षका अधिकारी होवे ॥ ४३ ॥ जो कष्टभोगी मेरे भक्त ब्राह्मण को दरिद्रतासे उद्धार करते हैं, समुद्र में गिरेहुए मनुष्यको नौकाकी समान, मैं भी उसको दुःखसे छुड़ाता हूं ॥ ४४ ॥ धीरराजा पिताकी समान सब प्रजाको और जैसे गजपति हाथियोंका उद्धार करता है वैसेही आत्मा द्वारा आत्माके दुःखको दूर करना चाहिये ॥ ४५ ॥ जो राजा पिताकी समान सब प्रजाको दुःखसे छुड़ाताहै वह सब अशुभोंको दूरकर सूर्यके प्रकाश की समान रथपर बैठ स्वर्गमें जाय इन्द्रकेसाथ आमोद प्रमोद करता है ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण दरिद्रता के कारण अत्यंत दुःखी होवे तो वणिक् वृत्तिका अवलंबन कर विक्रय योग्य पदार्थोंद्वाराही अपने दुःखसे उद्धार होवे यदि उससे भी दुःख दूर न होवे, तो क्षत्रिय वृत्तिका अवलंबन कर खड्गद्वारा दुःख से छूटे। परंतु कभी कुत्तेकी वृत्ति अर्थात् नौकरी न करे ॥ ४७ ॥ आपत्ति कालमें क्षत्री वैश्य वृत्ति तथा शिकार (मृगया) द्वारा जीवन धारण करे अथवा ब्राह्मणकी वृत्तियोंको स्वीकार करे परंतु कभी कुत्तेकी वृत्तिसे जीविका का निर्वाह न करे ॥ ४८ ॥ वैश्यके दुःखित होने पर उसको शूद्रकी वृत्तिका अवलंबन करना चाहिये और शूद्रको चटाई आदि बनानेकी क्रियाका अवलंबन करना चाहिये। आपत्ति कालसे उत्तीर्ण होनेपर कोई निंदित कर्म द्वारा जीविका के निर्वाह करनेकी इच्छा न करे ॥ ४९ ॥ गृहस्थ मनुष्य को यथा शक्ति वेद पठन तथा स्वधा, स्वाहा, बलि और अन्नादि द्वारा प्रतिदिन मेरे स्वरूप देव, ऋषि, पितर और प्राणियोंकी उपासना करनी चाहिये ॥ ५० ॥ विना उद्योग से प्राप्त अथवा अपनी वृत्तिसे उपार्जित धन द्वारा पोष्य वर्ग को पीड़ित न कर न्यायानुसार यज्ञों का अनुष्ठान करे ॥ ५१ ॥ कुटुम्ब में आसक्त न होवे; कुटुम्बी होकरभी भगवद्भक्तिको न भूले; पण्डितजन दृष्ट पदार्थकी समान अदृष्ट भाग्यको भी क्षण भंगुर जाने ॥ ५२ ॥ पुत्र, स्त्री, सुहृद और बंधुओंका समागम मार्गमें आते जाते यात्रियोंके समागमकी समान है जिसप्रकार कि निद्राके चलेजाने से स्वप्न चला जाता है ऐसेही यह सबलोग देहके चले जानेपर चलेजाते हैं ॥ ५३ ॥ योगी को इसप्रकार का विचारकर उदासीनकी समान ममताहीन और अहंकार रहितहो घरमें रहकर घरमें आसक्त न होना चाहिये ॥ ५४ ॥ भक्तिमानहो गृहस्थके कर्तव्यकर्मद्वारा मेराही यजनकर गृहाश्रम मेही रहे, अथवा वानप्रस्थ होवे अथवा पुत्रवान

गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः । स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमितिबध्यते ॥ ५६ ॥ अहोमेपितरौवृद्धौ भार्याबालात्मजात्मजाः । अनाथामामृतेदीनाः कथंजीवन्तिदुःखिताः ॥ ५७ ॥ एवंगृहाशयाक्षिप्त हृदयोमूढधीरयम् । अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धंविशतेतमः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच । वनंविविक्षुःपुत्रेषुभार्यांन्यस्य सहैववा । वनएववसेच्छान्तस्तृतीयंभागमायुषः ॥१॥ कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् । वसीतवल्कलंवासस्तृणपर्णाजिनानिच ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयादत । नधावेदप्सुमज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥३॥ ग्रीष्मेतप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले । आकण्ठमग्नःशिशिरएवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापिवा । उलूखलाश्मकुट्टोवादन्तोलूखलएववा ॥ ५ ॥ स्वयंसंचिनुयात्सर्वमात्मनोवृत्तिकारणम् । देशकालबलाभिज्ञोनाददीतान्यदाऽऽहृतम् ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् । नतुश्रौतेनपशुना मांयजेतवनाश्रमी ७॥ अग्निहोत्रंचदर्शश्चपूर्णमासश्चपूर्ववत् । चातुर्मास्यानिचमुनेराम्नातानिचनैगमैः ८॥ एवंचीर्णेनतपसा मुनिर्धमनिसंततः । मांतपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैतिमाम् ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपोनिःश्रेयसंमहत् । कामायाल्पीयसेयुञ्ज्याद्बालिः ।

होनेपर सन्यासको धारणकरे ॥ ५५ ॥ जिसकी बुद्धिघरमें आसक्त है और जो पुत्र तथा धनकी चेष्टासे कातर है जो स्त्री में लम्पट और कृपण बुद्धि है वह मूढ 'मैं' और 'मेरा' यह बिचारकर बद्ध होता है ॥ ५६ ॥ अहो ! मेरे माता पिता बूढ़े हैं, स्त्री के बालक बच्चे हैं, बिचारे बालक मेरे बिना अनाथ होकर किसप्रकार जीवेंगे ? ॥ ५७ ॥ इसप्रकार घरकीबासना में चारों ओर से बँधाहुआ मूढ बुद्धि गृहस्थ को अतृप्तभाव से ऐसा विचार करते करते अन्त में अति तामसी योनि को प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्री भगवान ने कहा कि हेउद्धव बन में प्रवेश करने की इच्छा होने पर पुत्रोंके ऊपर पत्नी का भार दे अथवा उसके साथही शांत चितसे आयु का तृतीय भाग बनमें बितावे॥ १॥ और शुद्ध बनके पदार्थ कंद मूल और फलद्वारा जीविका निर्वाह करे और वल्कल बस्त्र तृण पर्ण वा मृग चर्म को पहिने॥२॥ वह केश,लोम,नख,डाढी,मूछ में मैल भरा रहने देवे, दांतों को न धोवे तीनों संध्याओंमे जलसे स्नान करे पृथ्वी पर सोवे ॥३॥ ग्रीष्म कालमें पंचाग्नि के तापसे तप्त होवे बर्षा काल में जलधारा का सहन करे शीतकाल म जलमें गलेतल डूबा रहे इसप्रकार के आचरणों से तपस्याकरे ॥४॥ अग्निसे पकेहुए अथवा स्वयंही पके हुए फलादिका भोजन करे ऊखल में कूटकर अथवा पत्थरसे कूटकर खावे या दांतोंहीसे चबाले॥५॥ अपने जीवनके योग्य सब द्रव्योंका स्वयंही संचयकरै देश काल और शक्ति से भली प्रकार ज्ञात हो नये पदार्थ के मिलने पर पुराने पदार्थ को त्याग देवे ॥ ६ ॥ बनमें उत्पन्न हुए पदार्थों से समयानुसार चरु और पुरोडाश द्वारा पितर और देवताओं के उद्देश से यज्ञकरै; बर्णाश्रमी मनुष्यको वेद विहित पशुद्वारा मेरा यज्ञ न करना चाहिये ॥ ७ ॥ वेदवेत्ताओं ने निर्णय किया है कि वानप्रस्थभी अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास और चातुर्मास यज्ञ गृहस्थाश्रमकीसमान करे ॥ ८ ॥ जिसकी नसें देख पड़ती हैं मांस सूखगया है वह मुनि इसप्रकारकी अनुष्ठित तपस्याद्वारा मुझ तपोमयकी उपासना कर ऋषिलोक से मुझको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ कष्टभोगकर कियेहुए और परकल्याणकारी मोक्षके देनेवाले इ-

शः कोऽपरस्ततः ॥१०॥ यदासौ नियमेऽकल्पो जरयाजातवेपथुः । आत्मन्यग्नीन्स मारोप्य मच्चित्तोऽग्निंसमाविशेत् ११ यदाकर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु । विरागो जायते सम्यक्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥१२॥ इष्ट्वायथोपदेशंमां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे। अग्नीन्स्वप्राणआवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥१३॥ विप्रस्यवैसंन्यसतो देवादारादि रूपिणः । विघ्नान्कुर्वन्त्ययंह्यस्मानाक्रम्यसमियात्परम् ॥ १४ ॥ बिभृयाच्चेन्मुनि र्वासः कौपीनाच्छादनंपरम् । त्यक्तंनदण्डपात्राभ्या मन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥ दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् । सत्यपूतांवदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत् १६ मौनाऽनीहानिलायामा दण्डावाग्देहचेतसाम् । नह्येतेयस्यसन्त्यंग वेणुभिर्नभवे द्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षांचतुर्षुवर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् । सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तु ष्येल्लब्धेनतावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयंगत्वा तत्रोपस्पृश्यवाग्यतः । विभज्यपा वितंशेषं भुञ्जीताऽशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेन्द्रियः। आत्मक्रीडआत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविम लाशयः । आत्मानंचिन्तयेदेक मभेदेनमयामुनिः ॥ २१ ॥ अन्वीक्षेतात्मनोबन्धं मोक्षंचज्ञाननिष्ठया । बन्धइन्द्रियविक्षेपो मोक्षएषांचसंयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्निय म्यषड्वर्गं मद्भावेनचरेन्मुनिः । विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनिसुखंमहत् २३

सतप का संसार के तुच्छ सुखके निमित्त जो उपयोग करता है उससे अधिक दूसरा और कौन मूर्ख ? ॥ १० ॥ जब आयुके तृतीयभाग से प्रथमही जरा अवस्थासे देह कपकँपाने लगे और बानप्रस्थका धर्म पालन न करसके तब अपने में अग्निका समारोपणकर मुझमें मनको लगाय अग्नि में प्रवेशकरे ॥११॥ कर्म के फलरूप तथा परिणाममें नरककी समान दुःखरूप सर्व लोकोंमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न होजाय तो अग्निहोत्रका त्यागकर वानप्रस्थाश्रमसे सन्यास लेवे ॥ १२ ॥ सन्यास लेनेवाला शास्त्रकी रीत्यनुसार आठ श्राद्धकर प्राजापत्य नामक यज्ञ से मेराआराधन करे तदनन्तर अग्नियोंका अपने आत्मामें आरोपकर सब तृष्णाको त्यागकर सन्यास को लेवे ॥१३॥ यह हमारे स्थानों को उल्लंघकर परब्रह्मको प्राप्त होवेगा, यह विचार देवतास्त्री आदि के रूपसे उस सन्यास के अवलम्बन में तत्पर ब्राह्मण को विघ्न करते हैं ॥ १४ ॥ मुनिको यदि वस्त्र पहिरने की इच्छा होवे तो जितने से कौपीन ढकजाय उतनाहीवस्त्र पहिने, आपत्काल के बिना दण्ड और पात्रके अतिरिक्त छोड़ाहुआ और कुछ न धारणकरे ॥ १५ ॥ पहिले मार्ग देखलेवे तब पैर रक्खे; वस्त्र से छानकर जलको पीवे; सत्यबात कहे; जो मनमें उत्तम दीखै वह करै ॥१६॥ मौन, चेष्टाहीनता और प्राणायाम यथाक्रम से वाक्य, शरीर और मनका दण्ड है । हे उद्धव जिसके यह तीन दण्ड नहीं हैं वह केवल बांसकी लकड़िया (दण्ड) लेकर दण्डी सन्यासी नहींहोसकता ॥ १७ ॥ चार वर्णों में निंदनीयों को छोडकर प्रातःकाल कोही सातघर में भिक्षा मांगे; उसके द्वारा जो प्राप्त होवे उसी में सन्तुष्टरहे ॥ १८ ॥ ग्राम के बाहरजो जलाशयहो वहां जाय मौन भाव से स्नानकर भोजनको शुद्धकरके खावे, यदि भोजनके समय कोई आजावे तो उसको खिलाकर जो शेषरहे आपखावे ॥ १९ ॥ निःसंग, संयतेन्द्रिय, आत्माराम, आत्मनिरत, धीर और समदर्शीहो अकेलाही इस पृथ्वी पर भ्रमण करे ॥ २० ॥ संन्यासी निर्जन और निर्भय स्थानमें बसकर मेरी भावना से हृदय को शुद्धकर मेरे साथ अभेद बुद्धिसे केवल आत्माका चिंतवनकरे ॥ २१ ॥ ज्ञानमें निष्ठा रखकर अपने बन्ध और मोक्ष को विचारे कि इंद्रियों का विक्षेप यही बंध और इंद्रियों का निग्रह यही मोक्ष है ॥ २२ ॥ अतएव छः इंद्रियों को नियम में रखकर संन्यासी मेरी भावना करताहुआ भ्रमण करे, तुच्छ विषयों में वैराग्य रखने से मनमें अत्यन्त

पुरग्रामव्रजान्सार्थान् भिक्षार्थंप्रविशंश्चरेत् । पुण्यदेशसरिच्छैल वनाश्रमवतींम हीम् ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्व भीक्ष्णंभैक्ष्यमाचरेत् । संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वःशिलान्धसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतयापश्येद् दृश्यमानंविनश्यति । अस क्तचित्तोविरमेदिहामुत्रचिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनिजगन्मनोवाक्प्राणसं हतम् । सर्वंमायेतितर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वानतत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठोविरक्तोवा मद्भक्तोवाऽनपेक्षकः । सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधोबालकवत्क्रीडेत्कुशलोजडवच्चरेत् । वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यांनैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतोनस्यान्न पाखण्डीनहैतुकः । शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥ नोद्विजेतजनाद्धीरो जनंचोद्वेजयेन्नतु । अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येतकंचन । देहमुद्दिश्यपशुवद्वैरंकुर्यान्नकेनचित् ॥ ३१ ॥ एकएवपरोह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः । यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानिच ॥ ३२ ॥ अलब्ध्वानविषीदेत कालेकालेऽशनंक्वचित् । लब्ध्वानहृष्येद्धृतिमानुभयंदैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थंसमीहेत युक्तंतत्प्राणधारणम् । तत्त्वंविमृश्यतेतेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् । तथावासस्तथाशय्यां प्राप्तंप्राप्तंभजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनंस्नानं नतुचोदनयाचरेत् । अन्यांश्चनि

सुख की प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ भिक्षाके निमित्त नगर, गांव, व्रज और सार्थ में प्रवेश कर सदैव पवित्र देश नदियां, पर्वत, बन व आश्रमोंवाली पृथ्वी में अकेलाही भ्रमण करे ॥ २४ ॥ बानप्रस्थों के आश्रमों से बारम्बार भिक्षालावे क्योंकि शिलवृत्ति के द्वारा प्राप्तहुए अन्नके भोजनसे अंतःकरण शुद्धहो मोह की निवृत्ति होती है मोह की निवृत्ति से मोक्ष मिलती है ॥ २५ ॥ देख पड़नेवाली मिष्टान्नादिक वस्तु को वास्तविक नहीं समझना; क्योंकि यह नाशवान हैं;अतएव इस लोक और परलोक की आसक्ति को छोड़ उन लोगों के निमित्त जो काम किये जाते हैं उनसे निवृत्त रहना ॥ २६ ॥ चित्त, वाक्य और प्राण द्वारा आत्मा में विरचित इस जगत को; अहंकारास्पद शरीर को और उससे उत्पन्नहुए समस्त सुखों को " माया " विचार उनको त्याग कर आत्मनिष्ठ होवे और उनका स्मरण भी न करे ॥ २७ ॥ मुमुक्षु होकर जो ज्ञाननिष्ठ अथवा मुक्ति विषय में निरपेक्ष मेरे भक्त हैं वह चिह्नों समेत समस्त आश्रमों को छोड़देवें और जितना बनपड़े उतना आश्रम सम्बन्धी धर्मों का पालन करें ॥ २८ ॥ विवेकी होकर भी बालककीसमान क्रीड़ करे; निपुण होकरभी जड़की समान व्यवहार करे, पण्डित होकरभी उन्मत्तकी समान बात करे; वेदनिष्ठ होकरभी नियम शून्यभावसे बैल की भांति स्थिति में रहे ॥ २९ ॥ कर्मकाण्ड का व्याख्यान करे; श्रुति स्मृति के विरुद्ध कार्य भी न करे और केवल तर्कपरायण भी न होवे; प्रयोजन रहित विवाद में किसी पक्षकाभी अवलम्बन न करे ॥३०॥ किसी मनुष्य से उद्वेग नहींरक्खे धैर्य रखकर किसी को उद्वेग नहीं देवे । सब दुर्वाक्यों का सहनकरे, किसी का तिरस्कार न करे, इस देह के उद्देश से किसी के साथ शत्रुता न करे ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार एक चन्द्रमा अनेकों जल पात्रों में अवस्थित रहता है उसही प्रकार केवल एक परमात्मासब प्राणियों में और अपनी देह में स्थित रहता है; समस्त प्राणी एकात्मक हैं ॥ ३२ ॥ उस प्राणी को समय २ में भोजन न मिलने पर कातर न होना चाहिये और पाने से प्रसन्न भी न होना चाहिए । दोनोंही दैवाधीन हैं ॥ ३३ ॥ आहार के निमित्त प्रयत्न करना, क्योंकि प्राणका धारण करना अवश्य है क्योंकि प्राण के धारण करनेसेही तत्व का विचार होता है, तत्वज्ञ होनेसे मोक्ष मिलती है ॥ ३४ ॥ मुनि को दैवेच्छासे प्राप्तहुए अन्नका चाहे वह ऊंचाहो या नीच खाना चाहिए, इसी प्रकार वस्त्र और शय्या का भी कि जैसी प्राप्तहो वैसा व्यवहार करे ॥ ३५ ॥ ज्ञाननिष्ठ मनुष्य को वेदानुसारशौच

यमाज्ज्ञानी यथाऽहंलीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ नहितस्यविकल्पाख्या याचमद्वीक्षया हता । आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततःसंपद्यतेमया ॥ ३७ ॥ दुःखोदर्केषुकामेषु जातनिर्वेदआत्मवान् । अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुंमुनिमुपाव्रजेत् ॥३८॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः । यावद्ब्रह्मविजानीयान्मामेवगुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः । ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुतेमांचधर्महा । अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्चविहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मःशमोऽहिंसातपईक्षावनौकसः । गृहिणोभूतरक्षेज्याद्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यंतपःशौचं संतोषोभूतसौहृदम् । गृहस्थस्याप्यृतौगन्तुः सर्वेषांमदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इतिमांयःस्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् । सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिंविन्दतेचिरात् ॥ ४४ ॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् । सर्वोत्पत्त्यप्ययंब्रह्म कारणंमोपयातिसः ॥ ४५ इतिस्वधर्मनिर्णिक्त सत्त्वोनिर्ज्ञातमद्गतिः । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो नचिरात्समुपैतिमाम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतांधर्म एषआचारलक्षणः । सएवमद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरःपरः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छतियच्चमाम् । यथास्वधर्मसंयुक्तो भक्तोमांसमियात्परम् ॥४८॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे ऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

आचमन, स्नान व दूसरे औरभी नियमों का आचरण न करना चाहिये मैं ईश्वर जिसप्रकार कार्यों का लीलापूर्वक अनुष्ठान करताहूं उनको भी वैसेही लीलापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ३६ ॥ मुनियों को भेद ज्ञान नहीं होता और जो होता भी है वह ज्ञानद्वारा नाश होजाता है,—जबतक देह का अन्त नहीं होता तबतक कभी २ भेद प्रतीती देखने में आती है परन्तु देह पड़ने के पीछे उसको विदेह मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ जिस पुरुष के परिणाम में दुःख देनेवाले विषयों में वैराग्य उत्पन्न होजाय और उसे मेरी प्राप्ति का साधन न जानने में आयाहो तो उसे उचित है कि धीरज धर किसी ब्रह्मवेत्ता गुरूकी शरण लेवे ॥ ३८ ॥ जबतक ब्रह्म को न जानें तबतक श्रद्धालु और असूया रहितहो भक्ति पूर्वक गुरू को मेरा रूप जान उसकी सेवाकरे ॥ ३९ ॥ जो अजितेन्द्रिय हैं,—प्रचण्ड इंद्रियें जिनकी सारथी हैं तथा ज्ञान वैराग्य नहीं है, और सन्यास का अवलम्बन करलिया है,-ऐसे धर्म विघाती मनुष्य देवताओं को, आत्माको और आत्मा में रहेहुए मुझको ठगते हैं वह असम्पूर्ण मनोरथहो इस लोक और परलोक से गिरते हैं ॥ ४०—४१ ॥ संन्यासीका धर्म शम और अहिंसा. वानप्रस्थ का धर्म तपश्चरण; गृहस्थी का धर्म प्राणियों का रक्षण और यजन ब्रह्मचारी का धर्म आचार्य की सेवाकरना है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य,तपस्या,शौच संतोष, प्राणियोंपर दयाकरना; और ऋतुकालमें स्त्रीगमन यह गृहस्थोंके धर्म हैं; और मेरी उपासना करना सभी का धर्म है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य वर्णाश्रम के धर्म पालकर निरंतर मेरा भजन करे दूसरे स्त्री पुत्रादिकों में प्रीति नरक्खै और सब प्राणियों में मेरी भावना रक्खै उस पुरुषको मेरी भक्ति प्राप्त होजाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! अविनाशिनी भक्ति द्वारा वह सर्व लोकके महेश्वर सबकी उत्पत्ति नाशके प्रवर्त्तक, कारण रूपी वैकुण्ठवासी मुझको प्राप्त होते हैं ॥ ४५॥ इस प्रकार स्वधर्मद्वारा शुद्ध सत्व होने से मेरी गति जानीजासकती है और ज्ञान विज्ञानयुक्त तथा विरक्त होनेसे मैं प्राप्त होजाताहूं ॥ ४६ ॥ यह वर्ण तथा आश्रमवालों का आचार लक्षण धर्म उनको पितृलोक प्राप्तकरनेवाला है किंतु यदि यही धर्म मेरे अर्पण कियाजाय तो मुक्ति का साधन होजाता है ॥ ४७ ॥ हे साधो ! निजधर्म संयुक्त मेराभक्त जिसप्रकार परमेश्वर मुझको प्राप्त होसके इस विषय में जो तुमने पूछाथा,-वह मैंने तुमसे कहा ॥ ४८

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ योविद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः । मायामात्रमिदं ज्ञात्वाज्ञानंचमयिसंन्यसेत् ॥ १ ॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टःस्वार्थोहेतुश्चसंमतः । स्वर्गश्चैवापवर्गश्चनान्योऽर्थोमदृतेप्रियः ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाःपदंश्रेष्ठंविदुर्मम । ज्ञानीप्रियतमोऽतोमेज्ञानेनासौविभर्तिमाम् ॥ ३ ॥ तपस्तीर्थंजपोदानंपवित्राणीतराणिच । नाऽलंकुर्वन्तितांसिद्धिंयाज्ञानकलयाकृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेनसहितंज्ञात्वास्वात्मानमुद्धव । ज्ञानविज्ञानसंपन्नोभजमांभक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेनमामिष्ट्वात्मानमात्मनि । सर्वयज्ञपतिंमांवैसंसिद्धिंमुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयतियस्त्रिविधोविकारोमायाऽन्तराऽऽपततिनाद्यपवर्गयोर्यत् । जन्मादयोऽस्ययदमीतवतस्य किंस्युराद्यन्तयोर्यदसतोऽस्तितदेवमध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानंविशुद्धंविपुलंयथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतंपुराणम् । आख्याहिविश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगंचमहद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्यघोरेसंतप्यमानस्यभवाध्वनीश । पश्यामिनान्यच्छरणंतवांघ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दष्टंजनंसंपतितंबिलेऽस्मिन्कालाहिनाक्षुद्रसुखोरुतर्षम् । समुद्धरैनंकृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्चमहानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुराराजाभीष्मंधर्मभृतांवरम् । अजातशत्रुःपप्रच्छसर्वेषांनोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्तेभारतेयुद्धेसुहृन्निधनविह्वलः । श्रुत्वाधर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहंतेऽ

श्रीभगवान बोले कि—जो मनुष्य अनुभव पर्यन्त शास्त्र सम्पन्न के कारण आत्मतत्त्व को प्राप्त होगया है,—परन्तु केवल परोक्ष ज्ञानशाली नहीं उस को द्वैतभाव और उसके निवृत्ति साधनको मायामात्र जानकर ज्ञानको और ज्ञानसाधनको मुझ में समर्पणकरना चाहिये ॥ १ ॥ मैंही ज्ञानियोंका अभिमत अपेक्षित स्वार्थ, फल, हेतु, अभ्युदय और भक्तिहूं ; मेरेअतिरिक्त उन को और कुछ प्रियपदार्थ नहीं है ॥ २ ॥ ज्ञान विज्ञान युक्त मनुष्य सब मेरे श्रेष्ठपदको जानते हैं क्योंकि ज्ञानी ज्ञानद्वारा मुझको धारण करते हैं अतएव वही मेरे प्रियतम हैं ॥ ३ ॥ ज्ञान के लेशद्वारा जो शुद्धि उत्पन्न होती है वैसी शुद्धि तपस्या, तीर्थसेवा, जप, दान और अन्यान्य पवित्र पदार्थोंद्वारा नहीं उत्पन्न होती ॥ ४ ॥ अतएव हे उद्धव ! जहांतक ज्ञान रहताहै अपने आत्माको वहांतक जान ज्ञान विज्ञान युक्तहो भक्तिभाव से मेरा भजनकरो ॥ ५ ॥ मुनिलोग, सर्व यज्ञपति आत्मा,—मुझको ज्ञान विनिमय यज्ञद्वारा आत्मयोगकर सिद्धि स्वरूप मुझको प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धव ! तुममें जो आध्यात्मिकादि तीन प्रकार का विकार देखने में आता है वह माया है क्योंकि वह मध्यदशा में ही देखपडता है आदि अन्त में नहीं देख पडता ! अतएव इस विकाररूप देहादिक के जन्म आदि विकार होते हैं ; परन्तु तौभी तुम्हारा कुछ नहीं है वास्तव में असत् पदार्थ के आदि अन्त में जो होताहै वही मध्यमें अवस्थित रहताहै ॥७॥ उद्धवजी बोले कि—हे विश्वमूर्त्ते ! वैराग्य और विज्ञानसहित यह पुरातनशुद्धज्ञान जिसप्रकार से विस्ताररहित होवे वह कहो, और अपना भक्तियोग कि जिसे ब्रह्मादिक महात्माभी देखाकरते हैं उसविषयको मैं जानना चाहता हूं , आप कहिये ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! घोर संसारमार्ग में तीनों तापों से व्यथित मनुष्य के पक्षमें चारोंओर से अमृतवर्षी आपके चरणयुगलरूप छत्र बिना दूसरा और कोई भी रक्षाकरनेवाला नहीं देखपडता ॥ ९ ॥ संसाररूपी कूपमें गिरे, काल सर्प से काटेहुए, क्षुद्रसुखों में अत्यन्त तृष्णायुक्त मेरे अत्यन्त तापों को शांतकरो । हे महानुभाव ! मोक्षबोधक वाक्यामृत से मेरे सर्वांगको सींचो ॥ १० ॥ श्रीभगवान ने कहाकि—राजा युधिष्ठिरने प्रथम धार्मिक श्रेष्ठ भीष्म से हम सबके सामनेही इसीप्रकार पूछाथा॥११॥महाभारतयुद्ध के अन्त होनेपर बन्धुओं के मरने से विह्वलहुए राजा युधिष्ठिरने बहुतसे धर्म सुनकर अन्तमें यही

भिधास्यामिदेवव्रतमुखाच्छ्रुतान्। ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान्॥ १३॥ नवैकादशपञ्चत्रीन्भावान्भूतेषुयेनवै । ईक्षेताथैकमप्येषुतज्ज्ञानंममनिश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेवहिविज्ञानंनतथैकेनयेनयत्। स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानांत्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावन्तेचमध्येचसृज्यात्सृज्यंयदन्वियात् । पुनस्तत्प्रतिसंक्रामेयच्छिष्येततदेवसत् ॥ १६ ॥ श्रुतिःप्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानंचतुष्टयम् । प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्सविरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणांपरिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम्। विपश्चिन्नश्वरंपश्येददृष्टमपिदृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगःपुरैवोक्तः प्रीयमाणायतेऽनघ । पुनश्चकथयिष्यामि मद्भक्तेःकारणंपरम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायांमे शश्वन्मदनुकीर्तनम्। परिनिष्ठाचपूजायां स्तुतिभिःस्तवनंमम ॥ २० ॥ आदरःपरिचर्यायां सर्वांगैरभिवन्दनम्। मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषुमन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वंगचेष्टाच वचसामद्गुणेरणम्। मय्यर्पणंचमनसः सर्वकामविवर्जनम् २२ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्यचसुखस्यच । इष्टंदत्तंहुतंजप्तं मदर्थंयद्व्रतंतपः २३॥ एवंधर्मैर्मनुष्याणा मुद्धवात्मनिवेदिनाम्। मयिसंजायतेभक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते ॥२४॥ यदात्मन्यर्पितंचित्तं शान्तंसत्त्वोपबृंहितम्। धर्मंज्ञानंसवैराग्यमैश्वर्यंचाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितंतद्विकल्पे इन्द्रियैःपरिधावति । रजस्वलंचा

मोक्षधर्म सम्बन्धी प्रश्न कियाथा ॥ १२ ॥ भीष्मके मुखसे सुनाहुआ ज्ञान, विज्ञान, वैराग्यश्रद्धा, और भक्तिद्वारा वर्द्धित उस सब धर्म को मैं तुमसे कहूंगा ॥ १३ ॥ जिस ज्ञानद्वारा ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यंत सब प्राणियों में प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा,—यहनव, ग्यारह इन्द्रियें, पंचमहाभूत और सत्व,रज,तम यह तीन गुण सब समेत यह अट्ठाईश तत्वजाने जावें और जिसके द्वारा इन सबमें एक आत्मतत्व का अनुभव कियाजाय वही ज्ञान निश्चय मेरेही विषय का ज्ञान है ॥ १४ ॥ जिस ज्ञानद्वारा पहिले सबको एकके साथ अनुगतदेखाथा उसही के द्वारा जब उस प्रकार का न देखे तबही ज्ञान विज्ञान नाम से कहने में आता है फिर इसही विज्ञान से सब पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय देख पड़ेगी ॥१५॥ जिसके आदि अन्त और मध्यमे कार्य से कार्यान्तर में अनुगतहोवे उसको फिर वहींपरलेजावे जोशेषरहै वही सत् है॥१६॥ वेद प्रत्यक्ष महाजन प्रसिद्ध और अनुमान यहचारप्रमाण हैं इनसमस्त प्रमाणों के साथ बोधहोनेपर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये॥१७॥जैसे यहलोक विनाशी देखपड़ताहै ऐसही इस लोकके कर्मोंके फलों से सिद्ध होनेवाले स्वर्गसे लेकर ब्रह्मलोक तक ऊपर के लोकोंका सुख भी दुःखरूप अर्थात् नाशवानहै ऐसा देखतेरहना॥१८॥हेअनघ! तुम अत्यंतही प्रियपात्रहो ! पहिलेही तुमसे भक्तियोग कहाहै फिरभी मैं भक्तिके परमकारण उसभक्ति योग को तुमसे कहताहूं ॥१९॥ मेरी अमृत कथा में श्रद्धा; मेराकथन; मेरी पूजामें निष्ठा, स्तुति वचनोद्वारा मेरीस्तुतिकरना ॥२०॥ मेरीसेवामें आदर सर्वांगद्वारा मेरा बंदन मेरे भक्तों की पूजा करना सर्व प्राणियों मे मेरा अस्तित्व जानना ॥ २१ ॥ मेरेनिमित्त लौकिक कार्य ; वाक्योंद्वारा मेरा गुण कथन, मुझ में मनका अपर्ण करना सबकामों का परित्यागकरना,॥२२॥ मेरेनिमित्त धन भोग व सुखका त्यागकरना, और जोकुछ याग,दान, होम, जप, तप, व्रत करे वह सब मेरे निमित्त करना ॥२३॥ हेउद्धव ! जो इसप्रकारके सत्व धर्मोंद्वारा आत्म निवेदक मनुष्यकी मुझ में भक्ति उत्पन्न होती है ; उस के कोई भी साध्य व साधनरूप अर्थ शेष नहीं रहता ॥ २४ ॥ जब शांत और सत्वगुणद्वारा परिपूर्णमन आत्मा में अर्पितहोता है तब धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ रजोगुण निष्ठ व असत् अभिनिवेशवाला मन जब देह घर आदि में लगादिया जावे तो वह इंद्रियों के द्वारा इधर

स्वभिष्ठं चित्तंविद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मोमद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानंचैकात्म्यदर्शनम् गुणेष्वसंगोवैराग्य मैश्वर्यंचाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमःकतिविधः प्रोक्तो नियमोवाऽरिकर्शन । कःशमःकोदमःकृष्ण कातितिक्षाधृतिःप्रभो ॥ २८ ॥ किंदानंकिंतपःशौर्यं किंसत्यमृतमुच्यते । कस्त्यागःकिंधनंचेष्टं कोयज्ञःकाचदक्षि णा ॥ २९ ॥ पुंसःकिंस्विद्बलंश्रीमन् भगोलाभश्चकेशव । काविद्याह्रीःपराकाश्रीः किंसुखंदुःखमेवच ॥ ३० ॥ कःपण्डितःकश्चमूर्खः कःपन्थाउत्पथश्चकः । कःस्वर्गो नरकःकःस्वित्कोबन्धुरुतकिंगृहम् ॥ ३१ ॥ कआढ्यःकोदरिद्रोवा कृपणःकःकईश्व रः । एतान्प्रश्नान्ममब्रूहि विपरीतांश्चसत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेय मसंगोह्रीरसंचयः । आस्तिक्यंब्रह्मचर्यंच मौनंस्थैर्यंक्षमाऽभयम् ३३॥ शौचंजपस्तपोहोमः श्रद्धाऽऽतिथ्यंमदर्चनम् । तीर्थाटनंपरार्थेहा तुष्टिराचार्यसेव नम् ॥३४॥ एतेयमाःसनियमा उभयोर्द्वादशस्मृताः । पुंसामुपासितास्तात यथा कामंदुहन्तिहि ॥ ३५ ॥ शमोमन्निष्ठताबुद्धेर्दमइन्द्रियसंयमः । तितिक्षादुःखसंम र्षो जिह्वोपस्थजयोधृतिः ॥ ३६ ॥ दण्डन्यासःपरंदानं कामत्यागस्तपःस्मृतम् । स्वभावविजयःशौर्यं सत्यंचसमदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतंचसूनृतावाणीः कविभिःप रिकीर्तिता । कर्मस्वसंगमःशौचं त्यागःसंन्यासउच्यते ॥ ३८ ॥ धर्मइष्टंधनंनृणां यज्ञोऽहंभगवत्तमः । दक्षिणाज्ञानसंदेशः प्राणायामःपरंबलम् ॥ ३९ ॥ भगोमऐश्व

उधर विषयों की ओर दौड़ता है और उस से अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, और अनैश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जिससे मेरी भक्ति उत्पन्नहोवे वह धर्म है। एकात्म्य दर्शन वह ज्ञान है; विषयोंमेंसे आसक्तिका छूटजाना वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियोंका होना ऐश्वर्य कहलाता है ॥ २७ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हेशत्रुकर्षण ! यम कितने प्रकार का है ? नियम कौन २ हैं ? हेकृष्ण ! शम, दम, धैर्य और तितिक्षा किसे कहते हैं ? ॥ २८ ॥ दान क्या है ? तपस्या क्या है शौर्य क्या है ? सत्य और ऋत किसको कहते हैं ? त्याग क्या है ? इष्टधन किसप्रकारका है? यज्ञ क्या है? दक्षिणा क्या है ? ॥ २९ ॥ हेश्रीमन् ! पुरुष का बलक्या है ? हे केशव ! दयाक्या है ? लाभ क्या है ? उत्कृष्ट विद्या, लज्जा और श्री क्या है ? सुख क्या है ? दुःख क्या है ? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? सुमार्ग क्या है? कुमार्ग क्या है?स्वर्ग व नरकक्याहै ? बन्धु क्या है ? घर क्या है ? ॥ ३१ ॥ धनी व दरिद्र कौन है ? कृपण कौन है ? प्रभु कौन है? हे साधुपते !मेरे इन सब प्रश्नों की व्याख्या करो और इनसे उलटे जो हैं उन सबके अर्थ मुझसे प्रगट करो ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानने कहा कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य असंग, लज्जा, असंचय, स्वधर्ममें स्थिर विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय यह बारह यम हैं ॥ ३३ ॥ तथा बाहरी शौच, आंतरिकशौच, जप, तपस्या, होम, धर्म, आदर, आतिथ्य, मेरीपूजा, तीर्थभ्रमण, दूसरे के निमित्त चेष्टा करना, संतोष और आचार्य की सेवा करना ॥ ३४ ॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गावलंबियोंके यह बारह नियम हैं। हे तात ! इनसब नियमों के पलित होनेसे मनुष्यको इच्छानुसार फल मिलता है ॥ ३५ ॥ मुझमें बुद्धिनिष्ठा—शम; इन्द्रिय संयम-दम, दुःख सहन—तितिक्षा, जिह्वा और उपस्थ का जीतना—धैर्य ॥ ३६ ॥ दण्ड परित्याग करना परमदान है। काम विसर्जन तपस्या, स्वभाव विजय—वीरता, समदर्शन—सत्य, पण्डितों के कहेहुए सत्य वाक्य और सत्यकर्म में अनासक्ति—शौच, और त्यागको कविलोग सन्यास कहते हैं ॥ ३७ । ३८ ॥ धर्म, मनुष्योंका इष्टधन है, परमेश्वर मैंही यज्ञ, ज्ञानोपदेश—दक्षिणा, प्राणायाम—उत्कृष्टबल ॥ ३९ ॥ मेरे ईश्वरपन

रोमाचो लाभोमद्भक्तिरुत्तमः। विद्यात्मनिभिदाबाधो जुगुप्साह्रीरकर्मसु ॥ ४०॥ श्रीर्गुणानैरपेक्ष्याद्याः सुखंदुःखसुखात्ययः। दुःखंकामसुखापेक्षा पण्डितोबन्धमोक्षवित् ॥ ४१॥ मूर्खोदेहाद्यहंबुद्धिः पन्थामन्निगमःस्मृतः। उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गःसत्त्वगुणोदयः ॥ ४२॥ नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहंसखे। गृहंशरीरंमानुष्यं गुणाढ्योह्याढ्यउच्यते ॥ ४३॥ दरिद्रोयस्त्वसंतुष्टः कृपणोयोऽजितेन्द्रियः। गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगोविपर्ययः ॥ ४४॥ एतउद्धवतेप्रश्नाः सर्वेसाधुनिरूपिताः। किंवर्णितेनबहुना लक्षणंगुणदोषयोः। गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥

उद्धवउवाच। विधिश्चप्रतिषेधश्च निगमोहीश्वरस्यते। अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणंदोषंचकर्मणाम् ॥ १॥ वर्णाश्रमविकल्पंच प्रतिलोमानुलोमजम्। द्रव्यदेशवयःकालान्स्वर्गंनरकमेवच ॥ २॥ गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेणवचस्तव। निःश्रेयसंकथंनृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वरः। श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्तेन हि स्वतः। निगमेनापवादश्च भिदायाइतिहभ्रमः ॥ ५॥ श्रीभगवानुवाच। योगास्त्रयोमयाप्रोक्ता नृणांश्रेयोविधित्सया। ज्ञानंकर्मचभक्तिश्च नोपायोऽन्योस्तिकुत्रचित् ॥ ६॥ निर्विण्णानांज्ञानयोगो न्यासिनामिहकर्मसु। तेष्वनिर्विण्णचित्तानां क-

---

के ऐश्वर्य आदिको भाग्य, मेरे प्रति भक्ति–उत्तम लाभ, आत्मामें अभेद ज्ञान–विद्या, अकर्म में हेयता दर्शन और लज्जा ॥ ४० ॥ अपेक्षा हीनतादि गुण–श्री, सुख दुःखका अति क्रम सुख, विषय भोग वासना–दुःख बंध मोक्षको जानने वाला पण्डित ॥ ४१ ॥ देहादिमें अहं ज्ञानयुक्त मनुष्य–मूर्ख है। जिसके द्वारा मैं प्राप्त होऊं वह सुमार्ग है। चित्तका विक्षेप कुमार्ग; सत्वगुण के उदय को स्वर्ग ॥ ४२ ॥ तमोगुणकी वृद्धिको नरक करते हैं। हे सखे! गुरु बंधु है, मैंही वह गुरु हूं। मनुष्य देहही घर है; गुण सम्पन्न धनवानिहै ॥ ४३ ॥ असंतुष्ट मनुष्य दरिद्र; अजितेन्द्रिय मनुष्य कृपण, जिसका चित्त विषय समूह में अनासक्त है, वही ईश्वर, गुणोंमें जिसकी अनासक्ति है वही अनीश्वर है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव! तुह्मारे इन प्रश्नोंका मैंने भलीप्रकारसे उत्तर दिया। गुण और दोषको अधिकतासे क्या वर्णन करूं? गुण दोषोंका देखना तो दोष, और दोनोंके देखने को त्यागदेना यही गुण है ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उद्धवजी ने कहा कि—हे कमललोचन! आपकी आज्ञारूप वेदविधि निषेध मय है और वह विधि निषेधरूप वेद, विहित और निषिद्ध कर्मों के गुणदोषको प्रतिपादन करता है ॥ १ ॥ सबवर्ण आश्रमों क भेद,—प्रतिलोमज अनुलोमज जाति, द्रव्य, देश, अवस्था, काल, तथा स्वर्ग और नरकको गुण दोष रूपही प्रतिपादन करता है। गुण दोष में भेद दृष्टि रखने के अतिरिक्त आप के विधिनिषेधरूप वाक्य किसप्रकार हो सकते हैं? मनुष्यों की मुक्ति किसप्रकार होवे ॥ ॥ २—३ ॥ हे ईश्वर! अनुपलब्ध अर्थ तथा साध्य व साधन से आप के वाक्यरूप वेद,—पितरों का देवताओं और मनुष्यों का श्रेष्ठ नेत्र है ॥ ४ ॥ गुणदोष में जो भेद दृष्टि है वह आपकी आज्ञा सेही है स्वयं नहीं मानी गई। और भेदका अपवाद भी आपकीही आज्ञा से है; अतएव मुझको इसमें भ्रम होता है ॥ ५ ॥ श्रीभगवान ने कहाकि—मनुष्योंके मंगलसाधनकी इच्छा से मैंने तीनप्रकारका ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग कहा है, इसके अतिरिक्त कल्याण साधन का और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥६॥ दुःख बोधकर जो संसारके कर्मों से विरक्त हैं उनकर्म

र्मयोगस्तुकामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छयामत्कथादौ जातश्रद्धस्तुयःपुमान् । ननिर्विंण्णोनातिसक्तोभक्तियोगोऽस्यसिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणिकुर्वीतननिर्विद्येत यावता । मत्कथाश्रवणादौवाश्रद्धायावन्नजायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थोयजन्यज्ञैरनाशीःकामउद्धव । नयातिस्वर्गनरकौयद्यन्यन्नसमाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोकेवर्तमानःस्वधर्मस्थोऽनघःशुचिः । ज्ञानंविशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिंवायदृच्छया ॥ ११ ॥ स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकंनिरयिणस्तथा । साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयंतदसाधकम् ॥ १२ ॥ ननरःस्वर्गतिंकांक्षेन्नारकींवा विचक्षणः । नेमंलोकंचकांक्षेत देहाऽऽवेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरामृत्यो रभवायघटेतसः । अप्रमत्तइदंज्ञात्वामर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥ छिद्यमानंयमैरेतैः कृतनीडंवनस्पतिम् । खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमंयातिह्यलम्पटः ॥१५॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः मुक्तसङ्गःपरंबुद्ध्वा निरीहउपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यंसुलभं सुदुर्लभं प्लवंसुकल्पंगुरुकर्णधारम् । मयाऽनुकूलेननभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिंनतरेत्सआत्महा ॥ ॥ १७ ॥ यदारम्भेषुनिर्विण्णोविरक्तः संयतेन्द्रियः । अभ्यासेनात्मनोयोगी धारयेदचलंमनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणंमनोयर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् । अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशंनयेत् ॥ १९ ॥ मनोगतिंन विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः । स

परित्याग कारियों को ज्ञानयोग सिद्धि का देनेवालाहै और जिनके चित्त में निर्वेद उत्पन्न नहीं हुआ है उन कर्मफलकी आसक्तिवाले मनुष्यों के निमित्त कर्मयोग कल्याणकारी है ॥ ७ ॥ और यदि किसी भाग्योदयसे जिस पुरुषको मेरी कथामें श्रद्धा उत्पन्न हुई है जो कर्मफल में अविरक्त और अनति आसक्त हैं उनको भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥८॥ जबतक कर्म फलोंसे विराग न होवे अथवा मेरी कथा सुनने में जबतक श्रद्धा न होवे, तबतक कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त रहना चाहिये ॥ ९ ॥ हे उद्धव ! फलकी इच्छा न रखने वाला, यज्ञोंद्वारा मेरा आराधन करनेवाला स्वधर्म में रत मनुष्य यदि कोई निषिद्ध आचरण न करे तो वह न तो स्वर्ग को जाता है न नर्क को ॥ ॥ १० ॥ किन्तु इसीलोक में रहता अपने धर्म में स्थित होने से निष्पाप और पवित्र हो इस देह मेंही अवस्थित करके विशुद्ध ज्ञान अथवा मेरी भक्ति को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ नारकी मनुष्यों की समान स्वर्गबासीभी ज्ञान और भक्तिके साधन इस शरीरकी इच्छा करते हैं, दोनोंही दोनोंसाधनों के साधक हैं॥१२॥ विवेकी मनुष्य नारकी गति की समान स्वर्ग गतिकी भी कामना नहीं करते, और वह इस शरीर की भी कामना नहीं करते, क्योंकि देहकी आसक्ति से यह मनुष्य अवधानशून्य होजाता है ॥ १३ ॥ यह जानकर तथा इस शरीर के अर्थ को सिद्धिदेनेवाला होने पर भी नाशवान जानकर सावधान हो मृत्यु के पहिलेही उसको मुक्तिके निमित्त यत्न करना चाहिये ॥१४॥ जिसमें अपना घोंसला बनायाहै अपनेआश्रयी उस पेड को यमकी समान निर्दयी मनुष्य जबकाटते हैं तब अनासक्त पक्षी उसको छोड़कर निश्चयही मंगलप्राप्त करताहै इसीप्रकार जो मनुष्य यह विचारकर कि दिनरात आयु का क्षय कररहे हैं, भयसे कम्पित हो आसक्ति छोड परमेश्वरको जानताहै वही यथार्थ सुखी है ॥१५—१६॥ सब फलों की मूल, अति दुर्लभ अति दृढ इस मनुष्य देह रूप नौका को व गुरुरूप खिवैया (मल्लाह) तथा मुझरूप अनुकूल पवनकी प्रेरणाको पाकर जो मनुष्य इससंसाररूप समुद्रसे न उतरे उसे आत्मघातीसमझनाचाहियें॥१७॥ जब कर्मों में निर्वेद प्राप्त होजाय और उनमें दुःखज्ञान पडने से वैराग्य उत्पन्न होजाय तथा इन्द्रियें वशमें होजांय तब योगी को अभ्यास करके अपने मनको स्थिरकरना चाहिये ॥ १८ ॥ धारण करने के समय मन यदि शीघ्र भ्रमण में प्रवृत्त होकर चंचल होजावे तो सावधान रहकर कुछ उसकी अपेक्षा पूरण करने द्वारा उसको अपने बश में करे ॥ १९ ॥ प्राण और इन्द्रियों के

स्थैर्यं सत्त्वयुक्तया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥२०॥ एषवैपरमोयोगो मनसः संग्रहः स्मृतः । हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥ सांख्येनसर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः । भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः। मनस्त्यजतिदौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया २३॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्याच विद्यया । ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदिकुर्यात्प्रमादेनयोगी कर्मविगर्हितम् । योगेनैवदहेदंहो नान्यत्तत्रकदाचन ॥ २५ ॥ स्वेस्वेऽधिकारेयानिष्ठा सगुणःपरिकीर्तितः । कर्मणांजात्यशुद्धानामनेननियमः कृतः । गुणदोषविधानेन संगानांत्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धोमत्कथासुनिर्विण्णः सर्वकर्मसु । वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततोभजेतमां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः । जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥ प्रोक्तेनभक्तियोगेन भजतोमाऽसकृन्मुनेः । कामाहृदय्यानश्यन्ति सर्वेमयिहृदिस्थिते ॥२९ ॥ भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्तेचाऽस्यकर्माणि मयिदृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वैमदात्मनः । नज्ञानंनचवैराग्यं प्रायः श्रेयोभवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् । योगेनदानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वंमद्भक्ति

जीतने परभी मनको स्वाधीन नहीं छोड़ देना चाहिए किंतु जैसे बने वैसे सत्वगुणवाली बुद्धि से उसको आधीनही रक्खै ॥ २० ॥ जैसे घोड़े का चढ़नेवाला दुष्टघोड़े के हृदयकी इच्छा जानने को उसे कुछ दूर उसकीही चालपर जाने देता है फिर पीछे लगाम तानकरजाताहै उसहीप्रकार अनुवृत्ति मार्ग द्वारा मन को घोड़े की समान धीरे २ बश में करे ॥ २१ ॥ जबतक मन निश्चल नहोवे तबतक तत्वविवेकद्वारा अनुलोम और प्रतिलोम से सब पदार्थों के उत्पत्ति और नाशकी चिंता करे ॥ २२ ॥ अविवेक से प्राप्त संसार में जिस पुरुष को निर्वेद प्राप्त होने के कारण विराग होजाय उसको गुरुके उपदेश कियेहुए अर्थ का बिचारकरना और उस बिचारेहुएपदार्थ का बारम्बार बिचार करना चाहिए ऐसे बिचार करतेहुए देहादि से अभिमान को परित्यागकरे॥ २३ ॥ यम आदि योगके मार्गों से, आत्म बिचार रूप वेदांत विद्या से वा मेरी अर्चना तथा उपासनासे परमात्मारूप मेरे में मनलगाना, किंतु इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा यत्न न करना ॥ २४ ॥ योगी यदि प्रमादवश निंदित कर्मों का अनुष्ठान करे तो ज्ञानाभ्यास और नाम संकीर्तनादि द्वाराही उस कर्म से उत्पन्नहुए पाप को नाशकरै; दूसरा प्रायश्चित्त न करै ॥ २५ ॥ निज निज अधिकारोंकी निष्ठाही गुण कहकर कथित हुई है सबका संग छुड़ाने के अभिप्राय से इस गुण दोष बिधानद्वारा उत्पत्ति—अशुद्धकर्मों का संकोच कियागया है ॥ २६॥ मेरी कथामें जिसकी श्रद्धा उत्पन्न हुई है वह जानबूझकरभी यदि दुःखात्मक इच्छाओं को न छोड़ सके तो दृढ़ निश्चय और श्रद्धा पूर्ण हृदय से उन सब कामनाओं का भोग करके भी दुःख उपजानेवालाजान उनकी निंदाकरे और प्रसन्न चित्त से मेरे भजन में प्रवृत्त रहे । अतएव जोसब कर्मों से विरक्त हुए हैं,—पहिले कहेहुए भक्ति योगद्वारा जो मुनि निरंतर मेरा भजन करते हैं उनके हृदय में मैं सदैव विराजमान रहताहूं इससे उनके हृदय की समस्त कामनायें नष्ट होजाती हैं ॥ २७—२८ सर्वात्मभूत मेरा साक्षात्कार होनेसे उनके हृदय की ग्रन्थि छिन्न होजाती है;—समस्त संशयों का नाशहो सबकर्म नष्ट होजाते हैं ॥ ३० ॥ अतएव मैं कहताहूं कि जो योगी मेरे में मनको लगाकर मेरी भक्ति करता है उसको ज्ञान बैराग्य मुक्तिके साधन नहीं हैं किंतु भक्ति योगही कल्याण कारी है ॥ ३१ ॥ जो कर्मकाण्ड और तपस्याद्वारा, जो ज्ञान और बैराग्यद्वारा, जो योग और ज्ञानद्वारा तथा जो अन्यान्य मंगल अनुष्ठानोंद्वारा प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ वहसब मेरी भक्तिसे

योगेन मद्भक्त्या लभतेऽञ्जसा । स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम । वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् । तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः । साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः । क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीभगवानुवाच । य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् । क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः । विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु । द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ । दर्शितोऽयं मयाचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पंच धातवः । आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि । धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम । गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् । कृष्णसारोऽप्य-

अनायासही प्राप्त होजाता है और इच्छा करने से स्वर्ग, मुक्ति तथा वैकुण्ठभी प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो धीर, साधु लोग मेरे एकांत भक्त हैं वे किसी फलकी इच्छा नहीं रखते, यद्यपि मैं उन को कैवल्य मोक्ष देना चाहताहूं परन्तु वे उसकी भी चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ कामनाकात्याग करनाही श्रेष्ठ फल और साधन कहलाता है अतएव कामना रहित प्रार्थनाहीन मनुष्य कोही मुझ पर भक्ति होती है ॥ ३५ ॥ जिन के रागादि दोष निवृत्त होकर अंतःकरण समभाव को प्राप्त होगये हैं और उसी बुद्धिसे परमेश्वर को प्राप्त होगये हैं उनके गुण दोष से होनेवाले पुण्य पापादिकों से कुछ भी विकार नहीं होता ॥ ३६ ॥ इसप्रकार आपने प्राप्त करने के जिन जिन उपदेशों को मैंने कहा है जो उन सब उपदेशों के अनुसार चलते हैं वे काल मायादि रहित मेरे लोक को प्राप्त होते हैं और परब्रह्मको जानसकते हैं ॥ ३७ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीभगवान बोले कि—जो मनुष्य मुझको प्राप्त होने के निमित्त भक्ति, ज्ञान,क्रियात्मक इन सब उपायोंको छोड़कर चंचल इंद्रियोंद्वारा क्षुद्र कामनाओं का सेवन करते हैं वही इस संसार में नाना योनियों को प्राप्त होते रहते हैं ॥ १ ॥ अपने २ अधिकार में निष्ठा रखनाही गुण कहा जाता है; इसके विपरीत दोष होता है दोनों पक्ष में यही निर्णय है ॥ २ ॥ हेउद्धव ! यह योग्य है या अयोग्य ? इसप्रकार के संशयद्वारा द्रव्यकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके संकोच करने के निमित्त; धर्म, व्यवहार व प्राणरक्षा के निमित्त एकसी वस्तुओं में शुद्धि, अशुद्धि; गुण, दोष; और मंगल अमंगल का विधान कियागया है ॥ ३ ॥ इसप्रकार धर्म रूप भार ढोनेवाले मनुष्यों के निमित्त मैंनेही मनुआदि रूप धारण करके इस आचार को दिखाया है ॥ ४ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश यह पांचमहाभूत ब्रह्मासे सामान्य स्थावरपर्यंत प्राणियोंके शरीरके धातु व आरंभक हैं ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! इन समस्त प्राणियों के स्वार्थ सिद्धिके निमित्त यह एकही प्रकार के शरीर वेदों द्वारा पृथक् २ नाम और रूपमें कल्पित हुए हैं ॥ ६ ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! मैंने सबकर्मोंका संकोच करनेके निमित्त देश, कालआदि सब वस्तुओंमें गुण दोषका विधान किया है ॥ ७॥ सब

सौवीरःकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥ कर्मण्योगुणवान्कालो द्रव्यतःस्वतएववा । यतोनिवर्त्ततेकर्मसदोषोऽकर्मकःस्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्यशुद्ध्यशुद्धीच द्रव्येणवचनेनच । संस्कारेणाथकालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवाबुद्ध्या समृद्ध्याचयदात्मने । अघंकुर्वन्तिहियथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् । कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानांयुतायुतैः ॥ १२ ॥ अमेध्यलिप्तंयद्येन गन्धंलेपंव्यपोहति । भजतेप्रकृतितस्य तच्छौचंतावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः । मत्स्मृत्याचात्मनः शौचंशुद्धःकर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मन्त्रस्यचपरिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मःसंपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोपिदोषः स्याद्दोषोपि विधिनागुणः । गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणंपतितानां नपातकम् । औत्पत्तिकोगुणः संगो नशयानःपतत्यधः ॥ १७ ॥ यतोयतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः । एषधर्मोनृणांक्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषुगुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततोभवेत् । संगात्तत्रभवेत्कामः कामादेवकलिर्नृणाम् । कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते । तमसाग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनीद्रुतम् ॥२०॥ तयाविरहितःसाधो जन्तुःशून्यायकल्पते ॥ ततोऽस्यस्वार्थविभ्रंशो मू-

देशों में कृष्णसारहीन और विप्रभक्त शून्यदेश अपवित्र हैं और जहां कृष्ण मृगभी होवें और सत्पुरुष न होवें वह देशभी अपवित्र गिनाजाताहै और कीकट (अंग देश) में देश सत्पुरुष तथा कृष्णसारके होने परभी अपवित्र माना जाता है ॥८॥ द्रव्य संगति सब अथवा स्वाभावसेही कर्मयोग्य काल गुणवान है । जिससे कर्मकी निवृत्ति होती है और जो कर्ममें अयोग्यके नामसे प्रसिद्ध है वही काल अशुद्ध है ॥ ९ ॥ द्रव्य, वाक्य, संस्कार कालमहत्व, अल्पत्व, शक्ति, अशक्ति, बुद्धि, वा समृद्धि, द्वारा द्रव्यकी शुद्धि व अशुद्धि होती है ॥ १० ॥ ये सब द्रव्यादि आत्माके सम्बंध से देश और अवस्था के अनुसार यथार्थ पापको उत्पन्न करते रहते हैं ॥ ११ ॥ धान्य, काष्ठ, अस्ति तंतु, रस, तैजस, चर्म और मृण्मय पदार्थ काल, वायु, अग्नि, मृत्तिका और जलके एकत्र होनेसे व प्रत्येक से शुद्ध होते हैं ॥ १२ ॥ जिस पदार्थ में अपवित्र वस्तु लिप्त होजाय तो उस वस्तुकी शुद्धि छीलने वा खटाई में डालने आदि से मानजिाती है कि उसकी गंध और लेप आदि दूर होजाय ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तपस्या, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म और मेरे स्मरणद्वारा आत्मा का शौच होता है । द्विजको इसप्रकारसे शुद्धहो कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १४ ॥ विशेष ज्ञान जाननेसे मंत्रकी शुद्धि, मुझमें अर्पण करनेसे कर्मकी शुद्धि कहाती है, देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मंत्र और कर्म इन छहकी शुद्धिओंसे धर्म होता है, इनकी अशुद्धतासे अधर्म होता है ॥१५॥ विधिबल से दोषभी कभी गुण और गुणभी कभी दोष होतेहैं । इसप्रकारसे गुण षोषका नियामक् शास्त्रही इन दोनोंके भेदका बाधक है ॥ १६ ॥ समान कर्मका अनुष्ठान पतित मनुष्योंको पातकका देनवाला नहीं है किंतु पूर्व स्वीकृत होने से दोषरूप नहीं गुण रूप है, पृथिवीपर सोया हुआ मनुष्य क्या फिर नीचे गिरता है ? अतएव जिस जिससे निवृत्त होता है उसही उसहीसे मुक्त होता है, यह धर्म मनुष्योंका शोक, मोह भयनाशक परम मंगलका कारण है ॥ १७ । १८ ॥ गुणका विचार करनेसे मनुष्योंको विषयासक्ति उत्पन्न होती है और आसक्ति से वे सबकामनायें उत्पन्न होती हैं; कामनासेही मनुष्यों को कलह ॥ १९ ॥ और कलह सेही दुर्विषह्य क्रोध उत्पन्नहोता है; अविवेक उसका अनुवर्त्ती है । अविवेक मनुष्य के अविनाशी चैतन्य को शीघ्रही ग्रस लेता है ॥ २० ॥ हे साधो ! जीव के चैतन्यहीन होने से वह असत् की सदृश होजाता है फिरउससे

छितस्यमृतस्यच ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानंवेदनापरम् । वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेवयः श्वसन् ॥ २२ ॥ फलश्रुतिरियंनृणांन श्रेयोरोचनंपरम् । श्रेयो विवक्षयाप्रोक्तं यथाभैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैवहि कामेषु प्राणेषुस्वजनेषुच असक्तमनसोमर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥ नतानविदुषःस्वार्थंभ्राम्यतो वृजिनाध्वनि । कथंयुञ्ज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतोबुधः ॥ २५ ॥ एवंव्यवसितंकेचि-दविज्ञाय कुबुद्धयः । फलश्रुतिंकुसुमितां नवेदज्ञावदन्तिहि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणालुब्धाः पुष्पेषुफलबुद्धयः । अग्निमुग्धाधूमतान्ताः स्वंलोकंनविदन्तिते २७ ॥ नतेमामंगजानन्ति हृदिस्थंयइदंयतः। उक्थशस्त्राह्यसुतृपो यथानीहारचक्षुषः२८॥ तेमे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः । हिंसायांयदिरागः स्याद्यज्ञएवनचोदना ॥ ॥ २९ ॥ हिंसाविहाराह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया । यजन्ते देवतायज्ञैः पितृभूतपतीन्खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपममंमुलोकमसन्तं श्रवणप्रियम् । आशिषोहृदिसंकल्प्य त्यजन्त्यर्थान्यथावणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः उपासतइन्द्रमुख्यान् देवादीन्नतथैवमाम् ॥३२॥ इष्ट्वेह देवतायज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे-

पुरुषार्थ की हानि होती है पुरुषार्थहीन मनुष्य मूर्छित और मृतककी समान कहाजाता है॥ २१ ॥ जो मनुष्य विषयों के वशीभूतहो अपने को और परमात्मा को नहींजानता उसको जीवनकाधारण करना वृक्षकी समान वृथाहै वह धौंकनीकी समान वृथा श्वास प्रश्वासको लेता छोड़ता है ॥२२॥ स्वर्ग के सुख का श्रवण मनुष्यों का परम पुरुषार्थ रूप नहीं,—इसका अभिप्राय रुचि का उत्पन्न करना है औषधि में रुचि उत्पन्न कराने की समान मोक्ष कथन का अभिप्राय भी इसी प्रकार कथित हुआ है ॥ २३ ॥ इच्छित पदार्थ, प्राण और स्वजन यहसब अपने अर्थ के कारणीभूत होने से स्वभाव सेही इनमें मनुष्यों का मन आसक्त रहता है ॥ २४ ॥ अतएव वह परम सुख को नहीं जानसकते । इसकारण 'वेदजो समझाता है वही मोक्ष है' इस प्रकार से दृढ़ विश्वास कर जो देवादि योनि में भ्रमण करते हैं, फिर वृक्षादि योनि में प्रवेश करने जाते हैं उनको वेद स्वयं क्याकरके उन समस्त कामों में प्रवर्तित करेगा ? ॥ २५ ॥ वेद के इसप्रकारके अभिप्राय को न जान कुबुद्धि लोग फूलकी समान स्वर्गादि सुख रूप सुनेहुए फलकोही मुख्य फल मान बैठते हैं; परन्तु वेदज्ञ ऐसा नहीं करते ॥ २६ ॥ कामी, कृपण मनुष्य लोभी होकर फूलकोहीफल जानता है,-वह अग्निसाध्य कर्मों के अभिनिवेश से विवेकहीन होजाता है; अन्त में उसका धूम मार्ग (दक्षिणायन मार्ग) ही रहता है, वह आपके लोक को नहीं जानते ॥ २७ ॥ अहो!कर्मही उस का शास्त्र है; इसकारण वह प्राण कोही संतुष्ट करता रहता है । यह जगत् जिससे उत्पन्न हुआ है उस अन्तर्यामी मुझको वह इसप्रकार नहीं जानसकता; जैसे अन्धकार से घिरे दृष्टिवाला मनुष्य अपने निकट के पदार्थ को नहीं देखपाता ॥ २८ ॥ ऐसे विषयात्मक मनुष्य मेरे इसगूढ़ मतको नहीं जानसकते वे देवताओं कीही पूजा करते रहते हैं । उनमें से जो हिंसक हैं वहयज्ञ के अनुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं; किंतु यह विधि नहीं है केवल परिसंख्या है ॥ २९ ॥ वह हिंसक मनुष्य यज्ञ में बलिरूप से पशुहत्या द्वारा अपने सुखकी इच्छा से देवता, पितर और प्राणियों का याग करते हैं ॥ ३० ॥ स्वप्न की समान असत्, कर्णप्रिय परलोक को वह 'अखिलमङ्गलमय जान बणिक की समान सब अर्थों का परित्याग करता है (जब धनके लालच से बणिक विदेश को जाता है तो सबद्रव्य घर में छोड़जाता है) ॥ ३१ ॥ रज, सत्व और तमोनिष्ठावाले रज, सत्व और तमसेभी इन्द्रादि देवताओं की उपासना करते हैं,—मेरी यथार्थ पूजा नहीं करते ३२॥

दिवि । तस्यान्तइहभूयास्म महाशालामहाकुलाः ॥३३॥ एवंपुष्पितयावाचा व्याक्षिप्तमनसांनृणाम् । मानिनांचातिस्तब्धानां मद्वार्ताऽपिनरोचते ॥३४॥ वेदाब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषयाइमे । परोक्षवादाऋषयः परोक्षंममचप्रियम् ॥३५॥ शब्दब्रह्मसुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् । अनन्तपारंगम्भीरं दुर्विगाह्यंसमुद्रवत् ३६॥ मयोपबृंहितंभूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना । भूतेषुघोषरूपेण बिसेपूर्णेवलक्ष्यते ३७॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमतेमुखात् । आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसास्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवींप्रभुः । ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तःस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः । अनन्तपारांबृहतीं सृजत्याक्षिपतेस्वयम् ॥४०॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहतीपंक्तिरेवच । त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्तेकिमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् । इत्यस्याहृदयंलोके नान्योमद्वेदकश्चन ॥४२॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् । एतावान्सर्ववेदार्थः शब्दआस्थायमां भिदाम् । मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्यप्रसीदति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस लोक में देवताओं की आराधना करके स्वर्ग में जाय सुख पूर्वक विहार करेंगे फिर स्वर्ग का सुख भोग पीछे यहां आकर जन्म लेवेंगे तो बड़े कुलवान और गृहस्थ होवेंगे'इसप्रकारकीकल्पना वह हृदय में करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ इसप्रकार के कुसुमित वाक्योंद्वारा विचलित मनवाले, अभिमानी अतिलोभी मनुष्य मुझे प्रिय नहीं लगते ॥ ३४ ॥ त्रिकाण्डमय यह समस्त वेद ब्रह्मात्मपर और सबमंत्र परोक्ष वादक हैं। परोक्षही मेरा प्रियशब्द ब्रह्म है जो अत्यन्त दुर्बोध और प्राणमय इंद्रियमय, मनोमय तथा समुद्र की समान अनन्तपार, गम्भीर और दुरवगाह हैं ॥ ३५—३६ ॥ भूमा अनन्त शक्ति ब्रह्म मेरे द्वारा वर्द्धितहो कमल नालके तन्तुओं की समान प्राणियों के नाद रूप से प्रतीत होता है ॥ ३७ ॥ जैसे मकड़ी हृदय से जाले को निकालती है ऐसेही यह वेद मूर्त्ति और अमृतमय समर्थ नादवाला प्राण स्पर्श आदि वर्णों की भले प्रकार संकल्पकारी चित्त द्वारा हृदयाकाश से बैखरी नाम वाणी को आपही प्रगटकरता और फिर पीछे आपही संहारकरता है ॥ ३८ ॥ यह बैखरी नाम वाणी हृदयगत सूक्ष्म ओंकार से व्यंजितहुए स्पर्श वर्ण, स्वरवर्ण, ऊष्मवर्ण और अन्तस्थवर्ण से भूषित व चित्र विचित्र लौकिक और वैदिक भाषाओं से विस्तृत और उत्तरोत्तर चार २ अक्षर जिनमें अधिक हैं ऐसे छन्दों द्वारा चिह्नित है। इस वेदराशि में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिच्छन्द, अत्यष्टि, अतिजगती और अतिविराट आदि छन्द वर्तमान हैं ॥ ३९—४१ ॥ यह वेदवाणी कर्म काण्ड में विधि वाक्यों से क्या विधान करती है ? देवता काण्ड में मंत्रवाक्यों से क्या प्रकाश करती है ? और ज्ञानकांड में किसका आश्रय कर क्यातर्क बितर्क करती है, इसका तात्पर्य इस लोक में मेरे अतिरिक्तकोई नहीं जानसकता ॥ ४२ ॥ इससे यह यज्ञरूप में मेराही विधान करती है, देवता रूपमें मुझे प्रकाश करती है और मुझकोही वादी के अर्थरूप से कथितकर प्रतिवादी के कथित तर्कान्तरद्वारा निरस्त करती है। वेद परमात्म स्वरूप मेराही आश्रयकर 'सब भेद मायामात्रहै' इसका प्रतिपादन करता है, फिर निषेध करके प्रसन्न होता है। यही समस्त वेद का अभिप्राय है ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

उद्धवउवाच । कतितत्वानिविश्वेश संख्यातान्यृषिभिःप्रभो । नवैकादशप-ञ्चत्रीण्यात्थत्वमिहशुश्रुम ॥१॥ केचित्षड्विंशतिंप्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् । सप्तैकेनवषट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदशप्राहुः षोडशैकेत्रयोदश। एतावत्वंहि संख्यानामृषयोयद्विवक्षया । गायन्तीपृथगायुष्मन्निदंनो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच । युक्तंचसन्तिसर्वत्र भाषन्तेब्राह्मणायथा । मायांमदीया-मुद्गृह्यवदतांकिंनुदुर्घटम् ॥४॥नैतदेवंयथात्थत्वं यदहंवच्मितत्तथा । एवंविवद-तांहेतुंशक्तयोमेदुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासांव्यतिकरादासीद्विकल्पोवदतांपदम् । प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति ॥६॥परस्परानुप्रवेशात्तत्वानां पुरुषर्षभ । पौर्वापर्यप्रसंख्यानंयथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपिदृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणिच । पूर्वस्मिन् वाऽपरस्मिन्वातत्वेतत्वानिसर्वशः ॥८॥पौर्वापर्यमतोऽमीषांप्रसंख्यानमभीप्सताम् । यथाविविक्तंयद्वक्त्रं गृह्णीमोयुक्तिसंभवात् ॥९॥अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् । स्वतोनसंभवादन्यस्तत्वज्ञोज्ञानदोभवेत् ॥१०॥ पुरुषेश्वरयोरत्र नवैलक्षण्यमण्वपि । तदन्यकल्पनाऽपार्थाज्ञानंचप्रकृतेर्गुणः॥११॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वैप्रकृतेर्नात्मनोगुणाः । सत्वंरजस्तमइतिस्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥१२॥ सत्वंज्ञानंरजःकर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते । गुणव्यतिकरःकालः स्वभावःसूत्रमेवच

उद्धवजी ने कहा—हे देवेश ! हे प्रभो ! ऋषियों ने कितने प्रकारकी तत्व संख्याकी है—आपने यह कहा । मैंने सुनाकि आपने २८ तत्व संख्याका निर्णय किया है ॥ १ ॥ परन्तु कोई २ छब्बीस, कोई पचीस कोई नव कोई सात कोई छह कोई दूसरे चार कोई ग्यारह ॥२॥ कोई सत्रह कोई सोलह और एक सम्प्रदाय तेरह तत्व कहता है । हे नित्यमूर्त्ते ! ऋषियों ने जिस जिस अभिप्राय से पृथक् २ संख्याका निरूपणकिया है वह अयुक्त नहीं हैं क्योंकि समस्त भूतही अन्तर्भूत हैं और जो मेरी मायाको स्वीकारकर जो बातें बनावे उनकी बातोंमें किसी प्रकारकी दुर्घटना न समझनी ॥ ४ ॥ तुम जैसा कहते हो यह उस प्रकार नहीं है; मैं जिसप्रकार कहता हूं वह प्रकार है,—यह कारण ले इस प्रकार के विवादियों के पक्षमें मेरी सत्वादि शक्ति ही उस विवादका कारण है ॥ ५ जिन क्षोभोंसे वादियों के विवादास्पद विकल्प उत्पन्न होते हैं; शम दम प्राप्त होनेपर विकल्पलयको प्राप्त होता है, उसके उपरांतही वादभी शांत होजाता है ॥ ॥ ६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तत्वों का एक दूसरे में अन्तर्भाव होजाता है, इससे कहनेवाले की जैसी इच्छा होती है उसही के अनुसार न्यून या अधिक संख्या होसकती है ॥ ७ ॥ कारण तत्व में वा कार्य तत्व में और सब तत्वों का प्रवेश देखाजाता है ॥ ८ ॥ इसकारण तत्वोंके कार्य कारणता के विषय में और न्यूनाधिक संख्या के विषयमें बाद करनेवालों में जैसी जिसकी इच्छा होती है उसकी वाणी उस अपनी इच्छा को पूर्ण करसकती है इसकारण इन सब युक्तियों की सम्भावना है ॥ ९ ॥ अनादि अविद्यायुक्त मनुष्यको स्वतः आत्मज्ञान होना असम्भव है; तत्वज्ञ दूसरे मनुष्यको उसका ज्ञानदाता होता है ॥ १० ॥ इस विषयमें पुरुष और ईश्वरकी अणुमात्र भी विलक्षणता नहीं है; अतएव उन दोनों में भेद कल्पना का अर्थ नहीं है और ज्ञान प्रकृतिकाही गुण है ॥ ११ ॥ तथा गुणों की समता वह प्रकृति स्वरूप है । स्थिति, सृष्टि और ध्वंस के कारणीभूत सत्व, रज और तमोगुण 'यह सब प्रकृति केही हैं आत्मा के नहीं ॥ १२ ॥ इस संसार में ज्ञान सत्व , के नाम से कर्मरज , के नाम से और अज्ञान तमके नामसे प्रसिद्ध है । इसकारण इनका प्रकृति में अन्तरभाव होने से, इनको पृथक तत्वरूप नहीं मानते, स्वभाव यह महत्तत्वका स्वरूप है इसलिये उसका प्रकृति में अन्तर भाव होता है और

॥१३॥पुरुषःप्रकृतिर्व्यक्तमहंकारोनभोऽनिलः। ज्योतिरापःक्षितिरिति तत्वान्युक्तानिमेनव ॥ १४ ॥ श्रोत्रंत्वग्दर्शनंघ्राणो जिह्वेतिज्ञानशक्तयः। वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिकर्माण्यङ्गोभयंमनः ॥१५॥ शब्दस्पर्शोरसोगन्धो रूपंचेत्यर्थजातयः। गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥ सर्गादौप्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी। सत्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्तईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयोविकुर्वाणा धातवःपुरुषेक्षया। लब्धवीर्याःसृजन्त्यण्डंसंहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैवधातवइति तत्रार्थाःपञ्चखादयः। ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापिभूतानिपञ्चषष्ठःपरःपुमान्। तैर्युक्तआत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदंसमुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेतितत्रापि तेजआपोऽन्नमात्मनः। जातानितैरिदंजातं जन्मावयविनःखलु ॥ २१ ॥ संख्यानेसप्तदशकेभूतमात्रेन्द्रियाणिच। पञ्चपञ्चैकमनसा आत्मासप्तदशःस्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैवमनउच्यते। भूतेन्द्रियाणिपञ्चैव मनआत्मात्रयोदश ॥ २३ ॥ एकादशत्वआत्माऽसौ महाभूतेन्द्रियाणिच। अष्टौप्रकृतयश्चैव पुरुषश्चनवेत्यथ ॥ २४ ॥ इतिनानाप्रसंख्यानं तत्वानामृषिभिःकृतम्। सर्वंन्याय्यंयुक्तिमत्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धवउवाच॥ प्रकृतिःपुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ। अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यतेनभिदा

काल तो ईश्वर का स्वरूप हैही ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! पुरुष प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, ज्योति, जल, और पृथिवी यह नौ तत्व मेरे द्वारा कथित हुए हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वक्, नेत्र, नासिका, और रसना यह समस्त ज्ञानेन्द्रिय हैं। वाक्य, हस्त, उपस्थ, पायु और पाद यह समस्त कर्मेन्द्रिय और मन उभयात्मक है ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गंध, और रूप ये पांच विषय और तीन गुण ऐसे अट्ठाईस तत्व कहे, गति, भाषण, वीर्योत्सर्ग मलोत्सर्ग और शिल्पये पांच कर्मेन्द्रियोंके फल रूप हैं ॥ १६ ॥ प्रकृति, इस विश्व सृष्टि के आदिमें कार्य कारण रूपिणी हो सत्वादि गुणों द्वारा विशेषर अवस्थाओं को धारण करती है और पुरुष तो अपरिणामी देखने वालाहै ॥१७॥महत् आदि कारण तत्त्व विकृत होनेमें प्रवृत्तहो पुरुषोंकी दृष्टि वशसे लब्धवीर्य और मिलितहोने के उपरांत प्रकृतिका आश्रयकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं ॥१८॥ कितनों के मतमें "सातही कारण तत्व हैं" वह इसप्रकारसे कहतेहैं कि आकाशादि पंचतत्व, जीव और इनसबका आश्रय परमात्मा यह साततत्व हैं; तथा देह इन्द्रिय और प्राण यह सब इनतत्वोंसे उत्पन्नहुए हैं ॥ १८ ॥ कितनों के मतमें छः तत्त्व हैं वह इसप्रकारसे हैं कि पंचभूत और परमपुरुष। ईश्वरस्वयं उत्पन्नहुआ और इन सबके साथ मिलकर इस विश्वको उत्पन्नकरके इसमें प्रविष्टहुआहै ॥२०॥ चारतत्वोंके माननेवालोंके मतमें तेज, जल, पृथिवी और आत्मा यह चारतत्व हैं। इन चारतत्वों सेही और सबतत्वोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे सर्वकार्यमात्रका उनमें अन्तर्भाव कियागयाहै ॥२१॥ सत्रहतत्वोंके माननेवाले पंचभूत, पंचतन्मात्रा, पंचइन्द्रिय, मन और आत्मा ऐसे सत्रहतत्वोंको मानते हैं ॥ २२ ॥ इसहीप्रकार सोलहतत्वोंके माननेवाले आत्माकोही मन कहते हैं। तेरहतत्व के माननेवाले पंचभूत, पंचइन्द्रिय, मन और जीव व परमात्माको मानते हैं ॥ २३ ॥ किसी के मतमें ग्यारहतत्व हैं, उनमें पांचमहाभूत, पांचइन्द्रियां और आत्मा यह ग्यारह गिनेजाते हैं, किसी मतमें नौहीतत्व हैं, तिनमें प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पंचमहाभूत, और आत्मा यह नव गिनेजाते हैं ॥ २४ ॥ ऋषियोंने इसप्रकार अनेकभांति तत्वोंकी गणना की है, युक्ति युक्त होने से यह सबही ठीक हैं। पण्डितों की उक्ति कुछभी अयुक्त वा अघटित नहीं है ॥ २५ ॥ उद्धव जीने कहा हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष यदि स्वभावसेही भिन्नहैं तो फिर परस्परका परित्यागकर

तयोः । प्रकृतौलक्ष्यतेह्यात्मा प्रकृतिश्चतथात्मनि ॥२६॥ एवंमेपुण्डरीकाक्ष महान्तंसंशयंहृदि । छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः । त्वमेवह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच॥प्रकृतिःपुरुषश्चेति विकल्पःपुरुषर्षभ । एषवैकारिकःसर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥ ममाङ्गमायागुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्चगुणैर्विधत्ते । वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥३०॥दृग्रूपमार्कंवपुरत्ररन्ध्रे परस्परं सिध्यतियःस्वतःखे । आत्मायदेषामपरोयआद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः एवंत्वगादिश्रवणादिचक्षुर्जिह्वादिनासादिच चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥ योऽसौगुणक्षोभकृतोविकारः प्रधानमूलान्महतःप्रसूतः । अहंत्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मापरिज्ञानमयोविवादो ह्यस्तीतिनास्तीति भिदार्थनिष्ठः । व्यर्थोऽपिनैवोपरमेत पुंसां मत्तःपरावृत्तधियां स्वलोकात् ।३३। उद्धवउवाच । त्वत्तःपरावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिःप्रभो । उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णन्ति विसृजन्तिच ॥ ३४ ॥ तन्ममाख्याहिगोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः । न ह्येतत्प्रायशोलोके विद्वांसः सन्तिवंचिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच । मनःकर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पंचभिर्युतम् । लोकाल्लोकंप्रयात्यन्य आत्मातदनुवर्तते ॥३६॥ ध्या

नेमें उसकी प्रतीति क्यों नहींहोती ! आत्माकी प्रकृतिसे और प्रकृतिको आत्मासे प्रतीति होती है ॥ २६ ॥ हे कमलनेत्र ! हे सर्वज्ञ ! आपको मेरेहृदय स्थित ऐसे संदेहको अपने प्रवीण वचनों से दूरकरना चाहिये ॥ २७ ॥ जीवोंको ज्ञान निश्चय आपहीसे होताहै और आपकी मायाशक्तिके कारणही माया होती रहती है, अतएव आपही अपनीमायाकीगतिको जानतेहो,—दूसरा नहींजानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवानने कहा, हे पुरुष श्रेष्ठ उद्धव ! प्रकृति और पुरुष यह अत्यन्तही भिन्न हैं क्योंकि गुणों के क्षोभसे उत्पन्नहुआ यह जगत विकारयुक्त है ॥ २९ ॥ अहो ! मेरी गुणमयी माया नानाप्रकार के गुणों द्वारा अनेकों भेदों को और भेद बुद्धि को उत्पन्न करती है । सृष्टि अनेकों विकारयुक्त होने परभी अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव इस भांति तीन प्रकारकी है ॥ ३० ॥ चक्षु, रूप और चक्षु के गोलक में गयाहुआ सूर्य का अंश यह परस्पर सापेक्ष भावसे प्रकाशित होते रहते हैं, आकाश में जो स्वयं सूर्य देव हैं वह स्वयंही प्रकाश पाते हैं ।यहीसबका कारण, एक और अभिन्न है, इसही कारण इससे भिन्न यह आत्मा स्वतःप्रकाश द्वारा समस्त प्रकाशकों का प्रकाशक है अतएव उसका प्रकाश स्वतःसिद्ध है । चक्षु की समान त्वक्, स्पर्श और वायु; श्रवण, शब्द और दिशाएं; जिह्वा,रस और वरुण; नासिका, गन्ध और अश्विनीकुमार चित्त, चेतयितव्य और वासुदेव; तथा मन, मन्तव्य और मंत्र इत्यादि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक हैं ॥ ३१ ॥ गुणक्षोभक परमेश्वर को निमित्तकर प्रकृतिमूलक महत्तत्त्व से जो विकार अहंकार उत्पन्न होता है वह वैकारिक, तामस और इंद्रिय इन तीनप्रकारका है. और वही मोहमय विकार का कारण है । "है" "नहीं" इस प्रकारका भेद घटित विवादभी आत्माके अज्ञानके हेतुही प्रतीत हुआ है । भेद के निरर्थक होनेपर भी अपनी गति स्वरूप मुझसे जिस का मन विमुख है उसकी समझ में यह आना अत्यन्तही कठिन है, उसका संशय किसी प्रकार निवृत्त नहोगा ॥ ३४ ॥ उद्धव ने कहा हे प्रभो ! जिसका मन आपसे विमुख होरहा है वहअपने कियेहुए कर्मोंद्वारा जिसप्रकार ऊंचे और नीचे शरीरों को ग्रहण करते व छोड़ते रहते हैं, हे गोविंद ! वह मुझसे कहिये । जिसकी आत्मा निकृष्ट है वह कुछ नहीं समझ सकता । निश्चयही इस लोक में कोई विद्वान् नहीं है; क्योंकि सबही माया से मोहित हैं ॥ ३५ ॥ भगवान् ने कहा कि—मनुष्यों का कर्ममय मन,—पांच इंद्रियों के साथ इस लोक से उस लोक में और फिर वहां

यन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ। उद्यत्सीदत्कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनुशाम्यति ॥ ३७॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानंयत्स्मरेत् पुनः। जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्य न्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्मत्वात्मतयापुंसः सर्वभावेनभूरिद । विषयस्वीकृतिंप्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥ स्वप्नंमनोरथंचेत्थं प्राक्तनंनस्मरत्यसौ। तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इन्द्रियायनसृष्टयेदं त्रैविध्यंभातिवस्तुनि। बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥४१॥ नित्यदाह्यंगभूतानि भवन्तिनभवन्ति च। कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्नदृश्यते ॥४२॥ यथाऽर्चिषांस्रोतसांच फलानांवावनस्पतेः। तथैवसर्वभूतानां वयोऽवस्थादयःकृताः ॥ ४३ ॥ सोऽयंदीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसांतदिदंजलम्। सोऽयंपुमानितिनृणां मृषागीर्धीर्मृषायुषाम् ४४॥ मास्वस्यकर्मबीजेन जायतेसोऽप्ययंपुमान्। म्रियतेवाऽमरोभ्रान्त्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम्। वयोमध्यंजरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एतामनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः। गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहातिच ॥ ४७ ॥ आत्मनःपितृपुत्राभ्यां मनुमेयौभवा

से दूसरे में जाता है; आत्मा उसका अनुसरण करता रहता हैं ॥ ३६ ॥ कर्माधीन मन, दीखते हुए व वेदोक्त विषयों की चिंता करते २ विषयों में प्रगट व लीन होजाता है;इसके उपरांतस्मृति का नाश होता है। सब विषयों के अभिनिवेश वश किसी कारण से मनको जो पूर्व शरीर का स्मरण न रहे तोवह अत्यन्त विस्मरणही प्राणी की मृत्यु कहलाती है ॥ ३७—३८ ॥हेवदान्य! अभेद क्रम से देह को जो आत्मस्वरूप से स्वीकार कियाजाय वही पुरुष का जन्म है। यहठीक स्वप्न और मनोरथ की समान है; कि जैसे वर्तमान स्वप्न और मनोरथ में लगजाने से पहिले स्वप्न और मनोरथके भूलजानें पर मनके अध्यास के कारण आत्मा अपने को पूर्वसिद्ध होनेपर भी नयाही सा देखता है इसप्रकार मनके पूर्व देह का विस्मरण और दूसरे देह का स्मरणहोने पर उस मनके अध्यास के हेतु आत्मा अपने को सिद्ध होनेपरभी नयाजन्म हुआ मानताहै ३९॥ ॥ ४० ॥ जिसप्रकार जीव स्वप्न में बहुत जीवों को देख बहुत रूप का होता है, इसही प्रकार मनकी जो उत्पत्ति है उसके द्वाराही यह प्रकारत्रय आत्मा में असत् रूप से प्रकाश पाता है; आत्मा बाहिरी और भीतरी भेद का कारण है। अहो! अलक्ष्य वेगकाल, महाकाल,प्राणीनित्य ही जन्मते और नाश होते हैं; काल के सूक्ष्मत्व प्रयुक्तको अविवेकी मनुष्य नहीं देखपाते ॥४१॥ ॥ ४२ ॥ काल जैसे परिणामद्वारा तेजकी, प्रवाह त्यागद्वारा स्रोतकी और पक्वता द्वारा वृक्षके फलोंकी अवस्थाको क्षण २ में बदलताहै वैसेही सब प्राणियों की बयस और अवस्थाआदिको भी बदलता है ॥ ४३ ॥ परन्तु तौभी जैसे तेज प्रगट होने से 'यह वही दीपक है' और स्रोत के आजाने से यह वही जल है;' इसही प्रकार प्राणियों का 'यह वही शरीर है' इसप्रकार से अविचारी मनुष्य वृथा अज्ञान होकर बका करते हैं ॥ ४४ ॥ अज और अमर होकरभी जो जीव अपने कर्मों द्वारा जन्म ग्रहण करता या मरता है,—यह नहीं है; किंतु भ्रांतिद्वारा जन्मता रहता है और नाशपाता रहता है। जिस प्रकार महाभूत रूप अग्नि कल्पांत पर्यंत अवस्थित होकरभी केवल काठके संयोग और वियोग से जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है उसही प्रकार आत्मा अजर और अमर होकरभी भ्रांतिवश उत्पत्ति और नाश को प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ उदर में प्रवेश, उदर में वृद्धि, जन्म, बाल्य, कौमार, यौवन, मध्यबयस, जरा और मृत्यु शरीरकी यहनवअवस्थायें हैं ॥ ४६ ॥ स्वाभाविक अविवेक के कारण जीव दूसरे की इन सब मनोरथमयी ऊंची नीची अवस्थाओं का ग्रहण करता है; कभी किसी को छोड़तारहता है ॥ ४७ ॥ पिता और पुत्रद्वारा

व्ययौ । नभवाव्ययवस्तूनामभिज्ञोह्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ । तरोर्विलक्षणोद्रष्टा एवंद्रष्टातनोःपृथक् ॥ ४९ ॥ प्रकृतेरेवमात्मान मविविच्याबुधःपुमान् । तत्त्वेनस्पर्शसंमूढः संसारंप्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् । तमसाभूततिर्यक्त्वं भ्रामितोयातिकर्मभिः ॥ ॥ ५१ ॥ नृत्यतोगायतःपश्यन् यथैवानुकरोतितान् । एवंबुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथाऽम्भसाप्रचलता तरवोऽपिचलाइव । चक्षुषाभ्राम्यमाणेन दृश्यतेभ्रमतीवभूः ॥ ५३ ॥ यथामनोरथधियो विषयानुभवोमृषा । स्वप्नदृष्टाश्चदाशार्ह तथासंसारआत्मनः ॥ ५४ अर्थेह्यविद्यमानेपि संसृतिर्निनिवर्त्तते । ध्यायतोविषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥ ५५ ॥ तस्मादुद्धवमाभुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः । आत्माऽग्रहणनिर्भातं पश्यवैकल्पितंभ्रमम् ॥ ५६ ॥ क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा । ताडितःसन्निबद्धोवा वृत्त्यावापरिहापितः५७ निष्ठितोमूत्रितोवाऽज्ञैर्बहुधैवंप्रकम्पितः । श्रेयस्कामःकृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥५८॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वदनोवदतांवर । सुदुःसहमिमंमन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपिविश्वात्मन् प्रकृतिर्हिबलीयसी । ऋते त्वद्धर्मनिरतान्शान्तांस्तेचरणालयान् ॥ ॥ ६० ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अपने नाश और उत्पत्ति का अनुमान नहीं कियाजाता ; जब इसप्रकार है तब उत्पत्ति विनाश शाली देह सबकी द्रष्टा दोनों लक्षणों युक्त नहीं है ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार बीज और विपाकस वृक्ष का जन्म और नाश जानाजाता है वह जानपड़नेवाला द्रष्टा वृक्षसे भिन्न है, इसही प्रकार देहका भी द्रष्टा भिन्न है ॥ ४९ ॥ अविवेकी मनुष्य प्रकृति से आत्मा को भलीप्रकार न बिचार देहाभिमानद्वारा मूढ़हो संसार को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ सत्व संसर्ग के कारण ऋषि और देव;रजसंगसे असुर तथा नर और तमसंग से भूत तथा पशु पक्षी आदि योनियों में वह कर्मोंद्वाराभ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५१ ॥ जैसे मनुष्य नर्त्तकों और गायकों को देख उनका अनुकरण करता है, उसही प्रकार अनीह जीव बुद्धि के गुणोंको देखकर उनका अनुकरण करता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार के कांपने से किनारे के सब वृक्षभी मानों कांपते हुए जान पडते हैं; जैसे नेत्रों के घूमने से मानोंपृथिवी भी घूमती हुई देख पडती है ॥ ५३ ॥ हे दाशार्ह ! जिसप्रकार कामनासक्त चित्त मनुष्यके विषयानुभव तथा स्वप्नके देखेहुए विषय मिथ्या होते हैं,—उसही प्रकार आत्माकी जन्ममृत्यु है । यह मनुष्य विषयों की चिन्ता करता रहता है इसकारण सब विषयों के बर्तमान न रहते हुएभी, स्वप्न में धन प्राप्ति के समान उसके पक्ष में संसार में सुख नहीं प्राप्त होता; ॥ ५४—५५ ॥ अतएव हे उद्धव ! भ्रांत इंद्रियोंद्वारा सब विषयों का भोग न करना चाहिये, देखो, बिकल्प सम्बन्धीभ्रम आत्मअज्ञान के बशही प्रकाशित होता है ॥ ५६ ॥ नीच मनुष्य तिरस्कार करें, अपमान करें, हंसें, ईर्षाकरें, ताड़नादें, बाधें, जीविका नष्ट करें, ॥ ५७ ॥ शिर पर थूकें वा मूत्र करें तथा और भी ऐसेही दूसरे उपायों से ब्रह्म निष्ठामें से भ्रष्ट करना चाहें और उससे अपने को बहुत कष्ट होवे तौ भी कष्ट मंगलाकांक्षीको उचित है कि निष्ठायुक्तहो आत्माद्वारा आत्माका उद्धार करे ॥ ५८ ॥ उद्धव ने कहाकि—हेवाग्मिश्रेष्ठ ! आपका इस प्रकार का उपदेश अति दुर्ज्ञेय है । मैं सहज में जिससे इसको समझसकूँ उसका फिर उपदेश करिये ॥ हे विश्वात्मन् ! आपके धर्मावलम्बी, आपके चरणाश्रित शांतचित्त साधुओं के अतिरिक्त, असत् मनुष्यों द्वारा आत्मा के इसप्रकारके तिरस्कारको पंडितजनभी अति दुःसह जानते हैं ॥ ६० ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः । सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः । दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥ न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः । यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव । तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः । स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया । वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः । शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः । दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन्प्रियम् ॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः । धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पंचभागिनः ॥ ९ ॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद । अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किंचित् किंचिद्दस्यव उद्धव । दैवतः कालतः किंचिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः । उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः । खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः । न

श्रीशुकदेवजी बोले कि—जिनके पराक्रम सुनने योग्य हैं वह दाशार्ह श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी भगवत प्रधान उद्धव कर्तृक इस प्रकार से जिज्ञासितहो सेवकके वाक्यों में आदर प्रकाशकर उससे कहने लगे; ॥ १ ॥ हे बृहस्पति के–शिष्य ! ऐसे साधु इस लोक में नहीं देखे जाते कि जो दुर्जनों के कहेहुए कटुवचनोंद्वारा क्षुभितहुए मनको शांत करने में समर्थहों ॥ २ ॥ असाधुओं के कटुवाक्य रूपी शर मर्म में बिंधकर जिसप्रकार से कष्ट देते हैं मर्म के छेदनेवाले बाणों द्वारा छिद करभी मनुष्य को वैसा कष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥ हे उद्धव !इस विषय में एक बड़ा भारी इतिहास कहाजाता है, मैं वह कहताहूं, ध्यानलगाकर सुनो ॥ ४॥ किसी एक भिक्षुकने दुष्टजनों से तिरस्कृतहो धैर्य धारणकर अपने कर्मों के फलकी सुध करतेहुए बहुत अच्छा निश्चय किया है । उस का चारित्र यों है; कि—॥ ५ ॥ पुराने समय में मालवा देश में कोई एक धनाढ्य ब्राह्मण बास करताथा । वह अत्यन्तही कृपणथा उसने वाणिज व्यौपारआदि करके बहुतसा धन संचय किया था । वह कामी, अतिलोभी और क्रोधीथा ॥६॥ वह जातिवालों और अतिथियों का बचनमात्रसे भी सत्कार न करता धर्म कार्य रहित घर में रहकर उसका आत्मा भी यथासमय में भोगोंद्वारा तृप्त न होता ॥ ७ ॥ उस दुःशील ब्राह्मण के पुत्र और बांधव आदिभी उससे द्रोहकरनेलगे स्त्री, कन्या और सेवकभी उससे दुःखितहो उसकी इच्छानुसार कार्य न करते। इसप्रकारयक्षकी समान धनका संचय करनेवाले, दोनों लोक से भ्रष्ट, धर्मकाम विहीन उस ब्राह्मण के ऊपर पंचयज्ञभागी देवताभी कोधित होगये ॥ ९ ॥ हे उद्धव ! आत्मीय और देवताओं के अनादर से उसका धन मिलने का जो पूर्व पुण्यथा वहभी नष्ट होगया। इस कारण बहुत परिश्रम से प्राप्त कियाहुआ उस का समस्त धन नष्ट होगया ॥ १० ॥ हे उद्धव ! उस धनको कुछेकतो जाति वालों ने ग्रहण किया, कुछ चोरों ने लिया कुछ अन्य मनुष्यों, राजा, दैव और काल से नाश होगया ॥ ११ ॥ इसप्रकार धनके नाश होजानेपर वह धर्म कामरहित ब्राह्मण अपने स्वजनों से फटकाराजाकर घोर चिंता में निमग्नहुआ ॥ १२ ॥ धनके नाशहोने से संतप्त और गद्गद कण्ठहो खेद करता हुआ बड़ी देरतक चिन्ता करते २ उसको अत्यन्त विराग उत्पन्न होगया ॥ १३ ॥ वह कहने लगा अहो ! क्या कष्टहै ! मैंने व्यर्थही आत्मको सन्तापित किया, मेरा धन न तो धर्महीं में व्य

धर्मायनकामाय यस्यार्थायासईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाःकदर्याणां नसुखायकदाचन । इहचात्मोपतापाय मृतस्यनरकायच ॥ १५ ॥ यशोयशस्विनांशुद्धं श्लाघ्या येगुणिनांगुणाः । लोभःस्वल्पोऽपितान्हन्ति श्वित्रोरूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्यसाधनेसिद्धे उत्कर्षेरक्षणेव्यये । नाशोपभोगआयासस्त्रासश्चिन्ताभ्रमोनृणाम् ॥ ॥ १७ ॥ स्तेयंहिंसाऽनृतंदम्भः कामक्रोधःस्मयोमदः । भेदोवैरमविश्वासः संस्पर्धाव्यसनानिच ॥ १८ ॥ एतेपंचदशानर्था ह्यर्थमूलामतानृणाम् । तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यन्तेभ्रातरोदाराः पितरःसुहृदस्तथा । एकास्निग्धाकाकिणिनासद्यःसर्वेऽरयःकृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसाह्येते संरब्धादीप्तमन्यवः । त्यजन्त्याशुस्पृधोघ्नन्ति सहसोत्सृज्यसौहृदम् ॥२१॥ लब्ध्वा जन्माऽमरप्रार्थ्यं मानुष्यंतद्द्विजाग्र्यताम् । तदनादृत्ययेस्वार्थं घ्नन्तियान्त्यशुभांगतिम् ॥ २२ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्यलोकमिमंपुमान् । द्रविणेकोनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्यधामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः । असंविभज्यचात्मानं यक्षवित्तःपतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयार्थेहयावित्तं प्रमत्तस्यवयोबलम् । कुशलायेनसिध्यन्ति जरठःकिंनुसाधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् । कस्यचिन्माययानूनं लोकोऽयंसुविमोहितः ॥ २६ ॥ किंधनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वाकामदैरुत । मृत्युनाग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोतजन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनंमेभगवां

यहुआ न मैं स्वयंही उसको भोगसका । इतने दिनतक मैंने व्यर्थ धनके निमित्त इतना कष्ट स्वीकारकिया ॥ १४ ॥ कृपणजनों का धन इसलोक में आत्मा के सन्ताप का कारण और मरने पर नरक भोगने का कारण है कभीभी इससे सुख नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ कुष्ठ जैसे सुन्दर स्वरूपका नाश करदेता है वैसेही किंचित् लोभभी यशस्वियों के यश और गुणियों के गुणका नाश करता है ॥ १६ ॥ द्रव्य के प्राप्त करने और प्राप्त कियेहुये धनके बढ़ने, रक्षाकरने, व्यय, नाश और उपभोग में मनुष्योंको सदाही त्रास, चिंता और भ्रम उत्पन्न होता रहता है ॥ १७ ॥ चौर्य, हिंसा, मिथ्या, शठता, काम, क्रोध, गर्व, मोह, भेद, बैर, अविश्वास, स्पर्द्धा और व्यसन आदि यह मनुष्योंके अनर्थ मूलक कहेगये हैं । अतएव मंगलाभिलाषी मनुष्यों को अर्थ नामक अनर्थ दूरसेही परित्यागकर देना चाहिये ॥ १८—१९ ॥ साधारण द्रव्यके निमित्त भाई, स्त्री, पिता, माता, और बन्धुओं से शत्रुता होती है और एक प्राण तथा अत्यन्त प्रिय मनुष्य से भी कलह उपस्थित होजाता है । साधारण द्रव्य के निमित्त यह क्षुभित और ज्वलित क्रोधहो एकसाथ सुहृद्ताको भूल परस्पर में डहकर शीघ्र एक दूसरे को नाश करते रहते हैं ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ देवताभी जिसे चाहते हैं ऐसा मनुष्य जन्म उसपरभी ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता को पाय उसका अनादर कर जो अपना हित साधन नहीं करता वह अशुभगति को प्राप्त करता है ॥ ॥ २२ ॥ स्वर्ग और मोक्षके द्वार स्वरूप इसलोकको प्राप्तकर कौन मनुष्य अनर्थकारी धन में आसक्त होगा ? धन प्राप्त होनेपर भी जो मनुष्य विभाग योग्य देवता, ऋषि, पितृ, भूत, जातिवाले और बान्धवों को तथा अपने कोभी प्राप्तहुए पदार्थका विभाग न कर यक्ष वृत्तिका अवलम्बन करता है वह नर्क में गिरता है ॥ २३—२४ ॥ विवेकीजन जिसके द्वारा मुक्त होते हैं अनर्थकारी धनकी चेष्टाद्वारा प्रमत्त मनुष्य उस धन, बय, और बलको खो बैठते हैं । वृद्ध होनेपर और क्या साधन कियाजाय ! जानकरभी मनुष्य किस कारण व्यर्थ धनकी चेष्टा से वारम्बार क्लेश पाता है ? निश्चय यह मनुष्य किसी की मायाद्वारा अत्यन्त मोहित है ॥ २५—२६ ॥ मृत्यु से नाश होनेवालेमनुष्य का, धनसे क्या होता है ? धन देनेवालेही कौन है ? सुख अथवा सुख देने वालोंसेही क्या अभिप्राय ? बारम्बार जन्म देनेवाले कर्मों सेही क्या प्रयोजन है ?—॥२७॥

स्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः । येननीतोदशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥ सोऽहंकालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः । अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्धआत्मनि ॥ २९ ॥ तत्रमामनुमोदेरन्देवास्त्रिभुवनेश्वराः । मुहूर्तेनब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच । इत्यभिप्रेत्यमनसा ह्यावन्त्योद्विजसत्तमः उन्मुच्यहृदयग्रन्थीन्शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ सचचारमहीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः । भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तंवैप्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः । दृष्ट्वापर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेकेपात्रं कमण्डलुम् ॥ पीठंचैकेऽक्षसूत्रंच कन्थांचीराणि केचन ॥ ॥ ३४ ॥ प्रदायचपुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नंचभैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्तिचपापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्यचमूर्धनि । यतवाचंवाचयन्ति ताडयन्तिनवक्तिचेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमितिवादिनः । बध्नन्तिरज्ज्वातं केचिद्बध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एषधर्मध्वजः शठः । क्षीणवित्तइमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहोएषमहासारोधृतिमान्गिरिराडिव । मौनेनसाधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥३९॥ इत्येके विहसन्त्येनमेकेदुर्वातयन्तिच । तंबबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवंसभौ-

निश्चयही सर्वदेवमय भगवानहरि मुझपर सन्तुष्टहुएहैं उन्होंने मुझको इसदशापर पहुँचाकर आत्मा के भेदक स्वरूप वैराग्य को उत्पन्न करादिया है ॥ २८ ॥ अतएव यदि होगा तो आयुकाशेष भागमें अपने आत्मा सेही सन्तुष्ट और समस्त धर्मादि के साधनों में अप्रमत्तहो अपने शरीर को सुखाऊंगा ॥ २९ ॥ इस विषय में त्रिलोकी के स्वामी देवता मुझपर अनुग्रहकरें । खट्वांग ने तो क्षणभर मेंही ब्रह्मलोक को प्राप्तकरलियाथा ॥ ३० ॥ भगवान ने कहा, कि उस मालव देशीय श्रेष्ठ ब्राह्मण ने इसप्रकार से मन २ में विचार सब हृदयकी ग्रंथियों का नाश किया तथा शांत और भिक्षुक मुनिवृत्ति का अवलम्बनकर ॥ ३१ ॥ आत्मा, इंद्रिय और प्राणोंको जीत वह भूमण्डल में भ्रमण करनेपर प्रवृत्तहुआ । वह आसक्त रहित और अलक्षितहो भिक्षाके निमित्त नगर और गांवों में जाता; वहांपर दुष्ट मनुष्य उस वृद्ध भिक्षुक अवधूत का नानाप्रकार के तिरस्कृतवाक्यों द्वारा तिरस्कार करते, ॥ ३२—३३ ॥ कोई २ उसका त्रिदण्ड, कोई कमण्डलु, कोई भोजनपात्र, कितने एक बैठनेका आसन, कितनेएक जप करने की माला, कितने एक गूदड़ी और कितनेही उसके चीथड़े खींचे लेते,—॥ ३४ ॥ फिर दिखाकर लौटा देते और फिर छीन लेते । जब वह नदीके किनारे भिक्षासे प्राप्तहुए अन्नका भोजन करने बैठता तो उसको उस से कोई २ छीन लेता ॥ ३५ ॥ और दूसरे दुष्टजन उसके शरीर पर मूतते और मस्तकपर थूकते उसने मौनव्रत धारण किया था इससे उसको बुलाने का यत्न करते, यदि वह न बोलता तो उस को मारते ॥ ३६ ॥ औरभी उसे 'चोर चोर, कहकर नाना प्रकारके वाक्योंद्वारा उसका तिरस्कार करते । कोई २ 'बाधोंबाधो' करके उसको रस्सियों से बांधते । कुछेक मनुष्य "मूर्खने सब धर्म के चिह्नों को धारण किया है, धनहीन और स्वजन वर्जितहो इस वृत्तिका अवलम्बन किया है" यह कहकर उसकी निंदा करते ॥ ३७—३८ ॥ अहो ! यह अत्यन्त बलिष्ठ और पर्वत राजकी समान धैर्यशाली है; दृढ़ता पूर्वक मौन व्रतका धारणकर बगुले की समान अपने कार्य का साधन कररहा है " ॥ ३९ ॥ यह कहकर कुछेक मनुष्य उसका उपहास करने लगे । उसके ऊपर कोई कोई अधोवायु छोड़ते; कोई २ उसको खेलके पक्षी की समान बांधते और बंद करते ॥ ४० ॥

तिकं दुःखं दैविकं दैहिकंचयत् । भोक्तव्यमात्मनोदिष्टं प्राप्तंप्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूतइमां गाथामगायत नराधमैः । पातयद्भिःस्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥४२॥ द्विजउवाच । नायंजनोमे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः मनःपरंकारणमामनन्ति संसारचक्रंपरिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनोगुणान्वैसृजते बली यस्ततश्चकर्माणि विलक्षणानि । शुक्लानिकृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यःसवर्णाःसृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥ अनीहआत्मामनसा समीहताहिरण्मयो मत्सखउद्विचष्टे । मनःस्वलिंगं परिगृह्य कामांजुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥ ४५ ॥ दानंस्वधर्मोनियमो यमश्च श्रुतानिकर्माणिचसद्व्रतानि । सर्वेमनोनिग्रहलक्षणान्ताः परोहियोगोमनसः समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्यमनःप्रशान्तं दानादिभिः किंवदतस्यकृत्यम् । असंयतंयस्यमनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवन्स्म देवामनश्च नान्यस्यवशंसमेति । भीष्मोहिदेवःसहसः सहीयान्युंज्याद्वशेतं सहिदेवदेवः ॥ ४८ ॥ तंदुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्नविजित्यकेचित् । कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥ ४९ ॥ देहंमनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः । एषोऽहमन्योऽयमितिभ्रमेण दुरन्तपारतमसिभ्रमन्ति ॥ ५० ॥ जनस्तुहेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हिभौमयोस्तत् । जिह्वांक्वचित् संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमायकुप्येत् ॥५१॥ दुःखस्यहे-

वह जितनाही आत्म भोग्य देव से प्राप्तहुए ऐसे भौतिक, दैहिक और दैविक भोगों को भोगने लगा उस का ज्ञान उतनाही वृद्धिपानेलगा ॥ ४१ ॥ वह धर्म नाशक दुष्टों द्वारा तिरस्कृतहो सात्त्विक धैर्य धारणकर अपने धर्म में स्थित होरहाथा; क्यामनुष्य, क्या देवता, क्या आत्मा, क्या ग्रह, क्याकर्म, क्याकाल—कुछभी मेरे दुःख का कारण नहीं है; केवल मनही दुःख का कारण है । मनद्वाराही संसार चक्र घूमाकरता है ॥ ४२—४३ ॥ बलवान मनही सबगुणों को उत्पन्न करता है गुणों से सात्त्विक, राजस, और तामस ऐसे पृथक् २ भांति के कर्म होते हैं और कर्मोंसेही सत्वगुणी रजोगुणी और तमोगुणी जन्म होते हैं ॥ ४४ ॥ आत्मा निरीह है;यह मद्रूपीजीव का नियंता और विद्या शक्ति प्रधान है अतएव चेष्टासाधन चित्तद्वारा ऊंची चेष्टा करता है। किंतु यह स्वयं संसार प्रकाशक मनको आत्म स्वरूप से मानकर गुणों के संग के कारण समस्तविषयों का सेवन करताहुआ बंधारहता है ॥ ४५ ॥ दान, स्वधर्म, नियम, यम; वेदाध्ययन, कर्म और व्रतआदि का अंतिम फलही मनका संयम करना है; मनका दमन करनाही परम योग है । जिस पुरुष का मन शांत और वशीभूत है ॥ ४६ ॥ उसको दानादि से क्या अभिप्राय ? जिसकामन शांतनहो आलस्य आदि से घिराहुआ है उसका दानादि से क्या प्रयोजन सिद्धहोगा ? ॥ ४७ ॥ अन्यान्य देवता मनकेही वशीभूत हैं; मन दूसरे की आधीनता को स्वीकार नहीं करता । मन रूपी देव बलीहोकरभी अधिक बलवानहै, इस कारण योगियों को भी भय उपजानेवाला है;जिसने इसको वश करलिया वही देव देव है ॥ ४८ ॥ यही दुःसह वेगवाला मर्म पीड़ादायकशत्रु है । कुछेक मूढ़मनुष्य उसे न जीतकर संसार में व्यर्थही कलह में प्रवृत्त होते हैं और कितनोंही को मित्र,कितनोंहीको शत्रु और कितनोंही को उदासीन मानलेता है ॥४९॥ केवल मनसेही कल्पित कियेहुए इस शरीर का अवलम्बनकर ' मैं और मेरा ' ऐसा माननेवाले मूढ़ बुद्धि मनुष्य ' यह मैं ' ' यह दूसरा ' इस भ्रम से दुस्तर संसार में भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ यदि मनुष्यही सुख और दुःख का कारण होवे तो उसमें आत्माको क्या ? कुछभी नहीं । सुख दुःख का भोक्तृत्व और सुख दुःख का कर्तृत्व आत्मा में नहीं है, केवल भौतिक देह सेही उसका कर्तृत्व सम्भव है; अतएव सुख दुःखके होने से उस पर किसीको अनुराग व कोप न करना चाहिये ॥ ५१ ॥ क्यों

तुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्रविकारयोस्तत् । यदंगमंगेननिहन्यते क्वचित् क्रुध्येत कस्मैपुरुषःस्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मायदि स्यात्सुखदुःहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः । नह्यात्मनोन्यद्यदितन्मृषास्यात् क्रुध्येतकस्मान्न सुखंनदुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहानिमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्यतेवै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैववदन्ति पीडां क्रुध्येतकस्मैपुरुषस्ततोऽन्यः॥५४॥कर्माऽस्तुहेतुःसुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे । देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णःक्रुध्येतकस्मै नहिकर्ममूलम्५५॥ कालस्तुहेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ । नाग्नेर्हितापोनहिमस्यतत्स्यात् क्रुध्येतकस्मै नपरस्यद्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥ नकेनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वन्द्वोपरागःपरतः परस्य । यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवंप्रबुद्धोन बिभेतिभूतैः ॥ ५७ ॥ एतांसआस्थायपरात्मनिष्ठा मध्यासितांपूर्वतमैर्महर्षिभिः । अहंतरिष्यामिदुरन्तपारं तमोमुकुन्दांघ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणोगतक्लमः प्रव्रज्यगांपर्यटमानइत्थम् । निराकृतोऽसद्भिरपिस्वधर्मादकम्पितोऽमूंमुनिराहगाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदोनान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ।

कि अपने दांतोसे जीभके काटने पर उससे दुःख उत्पन्नहोनेपर किसपर क्रोध किया जासकताहै ? यदि देवताओं कोही दुःखका कारण कहाजाय तो फिर उसमेंभी आत्माको क्या?—एकने दूसरेको मारा अथवा काटखाया तो इस विकारसे हाथके देवता इन्द्रका और मुखके देवता अग्निका कलह हुआ इससे आत्माको क्या ? निर्विकार और अहंकाररहित आत्मामें कुछभी संभव नहीं देवताभी सब शरीर में अनेकानेक हैं इससे किसीपर क्रोध नहीं होसकता । अपने शरीर मेंही देवताओं के आश्रय एक अंग पर दूसरे अंगका प्रहार होवेतो वह किसपर क्रोध किया जाय ? आत्माही यदि सुख दुःख का कारण होवे, तो फिर इससे दूसरे को क्या हुआ—उसका स्वयंही स्वभाव है; निश्चयही आत्मासे दूसरा नहीं है यदि है तो वह मिथ्या है, अतएव किस कारण कोप कियाजाय ? कारण यह कि—सुख दुःखका निमित्त सुख वा दुःख कुछभी बास्तविक नहीं है ॥ ५२ । ५३ ॥ ग्रहों कोही यदि सुख दुःख का कारण कहाजाय तो फिर आत्माहीको क्या ? वह जन्मता नहीं उद्भव शील देह कोही दुःख सुख का होना सम्भव है; दैवज्ञगण ग्रहोंद्वाराही ग्रहपीड़ा करते हैं, अतएव मनुष्य किस २ पर क्रोध करे ? वह उससे भिन्न है ॥ ५४ ॥ यदि कर्मही सुख दुःख का कारण है तो फिर उससेही आत्माको क्या ? क्योंकि जड़ता और अजड़ता दोनोंकोही एक होने से कर्म का होना संभावित होसकता है; परन्तु शरीर जड़ और यह पुरुष शुद्ध ज्ञानमय है; अतएव सुख और दुःख की जड़ कर्मही नहीं है । किसके ऊपर कपित होवे ? ॥ ५५ ॥कालही यदि सुख और दुःख का कारण है तो उससेही आत्माको क्या ? क्योंकि काल स्वयंही आत्मा का अंश है तो जैसे ज्वाला की गर्मी अग्नि को नहीं लगती और हिमकण का शीत हिम को नहीं लगता ऐसेही काल से होतेहुए सुख दुःख से आत्मा को किसी प्रकार का क्लेश नहीं होसकता ॥ ५६ ॥ अतएव किसके ऊपर कोप कियाजाय ? संसार प्रकाशकारी अहङ्कार से जैसा भय उत्पन्न होता है वैसा भय फिर बुद्धिमान होनेपर नहीं रहता; इसही प्रकार आत्माके अन्यत्र से किसी के भी द्वारा, कहीं किसी प्रकार से सुख दुःखादि नहीं होसकता ॥ ५७ ॥ अतएव मैं प्राचीनतम महर्षियों की सेवित इस ब्रह्मनिष्ठा का आश्रयले भगवान की चरण सेवा द्वारा इस दुस्तर संसार से पारहूंगा ॥ ५८ ॥ भगवान ने कहा कि—वह नष्टधन, गतश्रम, बैराग्ययुक्त मुनि दुष्टों के इसप्रकार तिरस्कृत करने परभी अपने स्वधर्म से न बिचालितहुआ । उसने पृथ्वी पर भ्रमण करते २ इस गाथा को कहाथा ॥ ५९ ॥ मनुष्योंके सुख दुःख का देनेवाला दूसरा

मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मनातात निगृहाण मनोधिया । मय्यावेशितयायुक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥ यएतांभिक्षुणागीतां ब्रह्मनिष्ठांसमाहितः । धारयञ्श्रावयञ्शृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच । अथतेसंप्रवक्ष्यामि सांख्यंपूर्वैर्विनिश्चितम् । यद्विज्ञायपुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकंभ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो अर्थएकमेवाविकल्पितम् । यदाविवेकनिपुणाआदौकृतयुगेयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलंनिर्विकल्पितम् । वाङ्मनोऽगोचरंसत्यं द्विधासमभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरोह्यर्थःप्रकृतिः सोभयात्मिका । ज्ञानंत्वन्यतमोभावः पुरुषःसोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमोरजःसत्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः । मयाप्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेनच ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रंमहान्सूत्रेणसंयुतः । ततोविकुर्वताजातोयो ऽहङ्कारोयोविमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहंत्रिवृत् । तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणंचिदचिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणिच । तैजसाद्देवताआसन्नेकादशचवैकृतात् ॥ ८ ॥ मयासंचोदिताभावाः सर्वेसंहत्यकारिणः । अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहंसमभवमण्डे सलिलसंस्थितौ । ममनाभ्या-

नहीं है; मित्र, उदासीन, शत्रु और समस्त संसार भी अज्ञान के कारण अपने मनकी भ्रांति से उत्पन्न कियाहुआ है ॥ ६० ॥ अतएव हेवत्स ! मुझमें अपनी बुद्धि को लगाय सबप्रकार से मनको वशीभूतकर योगाभ्यास करो ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस भिक्षुक के गीतको ब्रह्म निष्ठा धारण करेगा अथवा सुनेगा और सुनावेगा, वह सुख दुःखादि द्वन्द्वों से संतप्त न होगा ॥ ६२ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्री भगवान बोले कि—हेउद्धव ! कपिलादि प्राचीन ऋषियों द्वारा भली प्रकार से निश्चित् सांख्ययोग को अब तुमसे कहूंगा । उसको जानकर मनुष्य तत्कालही भेद निबन्धन सुख दुःखादि से मुक्त होते हैं ॥ १ ॥ पहिले प्रलय काल में ये समस्त दृश्यपदार्थ विकल्प रहित एक अद्वितीय परम ब्रह्मरूपथे; उसके उपरांत युगांतर में जब सबमनुष्य बिवेकी और निपुणथे, तबभी भेदज्ञान न होने से सब ईश्वरही रूप जानेजातेथे ॥ २ ॥ केवल भेद रहित और सत्य यह व्यापक ब्रह्मही अपनी माया के हेतु वाणीकी और मनकी प्रवृत्ति होवे ऐसे दृश्य और द्रष्टारूप से दो प्रकार का हुआ ॥ ३ ॥ इस दृश्य और द्रष्टा में जो दृश्यपदार्थ है वह कार्य कारणरूप प्रकृति है और दूसरा द्रष्टापदार्थ पुरुष कहाजाता है ॥ ४ ॥ मैंने जीवों के अदृश्यके निमित्त ईक्षणरूप द्वार से प्रकृति को क्षुभित किया तब उससे सत्व, रज और तम येतीन गुण उत्पन्नहुए ॥ ५ ॥ इनसे महत्तत्त्व और क्रियाशक्ति उत्पन्नहुई ; उससे क्रियाशक्ति संयुक्त ज्ञानशक्ति ; उस में विकार प्रवृत्त होने पर उससे अहंकार उत्पन्न हुआ; वह अहंकारही जीवों को भ्रम उत्पन्न कराता है ॥ ६ ॥ अहंकार के बैकारिक, तैजस और तामस यह तीन भेद हैं इनमें बैकारिक अहंकार से इंद्रियों के ग्यारह देवता और मन उत्पन्नहुआ, तैजस से ग्यारह इंद्रियां उत्पन्नहुई, तामस से शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पांचतन्मात्रा उत्पन्नहुई यह अहंकार चिदाभास से व्याप्त होनेके कारण जड़ और चैतन्यकी ग्रंथिरूप कहाता है, देवता और मनका प्रकाश स्वभाव है, इस निमित्त उनको वैकारिक सात्विक अहंकार माना है, इंद्रियों का प्रवृत्तिस्वभाव है, इस लिये उनको तैजस अहंकार का कार्य माना है, पंच महाभूतों का आवरण स्वभाव है इसकारण वे तामसअहंकार के कार्य मानेगये हैं ॥ ७—८ ॥ मेरी प्रेरणासे इनसब पदार्थों ने एकत्रित होकर मेरे उत्तम बिश्राम स्थान अण्डको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ जल में स्थित उस अण्डसे मैं उत्पन्नहुआ । मेरी नाभि से

मभूत्पद्मं विश्वाख्यंतत्रचात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसायुक्तो रजसामदनुग्रहात् । लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरितित्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां चभुवःपदम् । मर्त्यादीनांचभूर्लोकःसिद्धानांत्रितयात्परम् ॥ १२ ॥ अधोऽसुराणांनागानांभूमेरोकोसृजत्प्रभुः । त्रिलोक्यांगतयःसर्वाःकर्मणांत्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥ योगस्यतपसश्चैव न्यासस्यगतयोऽमलाः । महर्जनस्तपःसत्यंभक्तियोगस्यमद्गतिः ॥१४॥ मयाकालात्मनाधात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् । गुणप्रवाहएतस्मिन्नुन्मज्जतिनिमज्जति १५ अणुर्बृहत्कृशःस्थूलोयोयोभावःप्रसिध्यति। सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्यापुरुषेणच ॥ १६ ॥ यस्तुयस्यादिरन्तश्चसवैमध्यंचतस्यसन् । विकारोव्यवहारार्थो यथातैजसपार्थिवाः १७ ॥ यदुपादायपूर्वस्तु भावोविकुरुतेऽपरम् । आदिरन्तोयदायस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादान माधारःपुरुषःपरः । सतोऽभिव्यञ्जकःकालो ब्रह्मतत्त्रितयंत्वहम् ॥ १९ ॥ सर्गःप्रवर्ततेतावत् पौर्वापर्येणनित्यशः । महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तोयावदीक्षणम् ॥२०॥ विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः । पंचत्वायविशेषाय कल्पतेभुवनैःसह ॥ २१ ॥ अन्नंप्रलीयतेमर्त्य मन्नंधानासुलीयते । धानाभूमौप्रलीयन्ते भूमिंगन्धेप्रलीयते ॥ २२ ॥ अप्सुप्रलीयतेगन्ध आपश्चस्वगुणेरसे । लीयतेज्योतिषितंसो ज्योतीरूपेप्रलीयते ॥ २३ ॥ रूपंवायौसचस्पर्शे लीयतेसोऽपिचाम्बरे । अम्बरंश

विश्वनामकपद्म और उससे आत्मयोनि ब्रह्माजी उत्पन्नहुए ॥ १० ॥ उन विश्वात्मा ने तपस्या के प्रभाव और मेरे अनुग्रह से रज द्वारा लोक पालों सहित सब लोक तथा भूः, भुवः और स्वः—इन तीन लोकों को उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ स्वर्लोक देवताओं का निवास स्थान हुआ, भुवर्लोक भूत आदिका, भूर्लोक मनुष्योंका तथा इन तीनों लोकों से महर्लोकादि सिद्ध गणों के निवास हुए ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी ने पृथ्वी के निचे के भागमें असुर और नागोंका निवास स्थान बनाया । त्रिगुणात्मक कर्म करने से जो गतियां होती हैं वे सब त्रिलोकी क भीतर है ॥ १३ ॥ योग तपस्या और सन्यास की निर्मल गतियां महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक हैं और भक्तियोग की गति वैकुण्ठ है ॥ १४ ॥ मैं काल रूपी धाता हूं; मुझसेही कर्म सहित यह जगत इसही गुण प्रवाह से उठता है और मग्न होता है ॥ १५ ॥ छोटे, बड़े, सूक्ष्म, स्थूल जो २ प्रसिद्ध पदार्थ हैं वे सबही प्रकृति और पुरुष दोनोंसे संयुक्त हैं ॥ १६ ॥ जो पदार्थ जिसका कारण और लयस्थान है वही उसकी मध्यावस्था है, अतएव वही सत है,—विकार तो केवल व्यवहारके कारण है, कंकण आदि तैजस पदार्थ और घट शरीरादि पार्थिव पदार्थ उसका दृष्टांत है ॥ १७ ॥ यदिकिसी पदार्थ के उपादान कारणका दूसरा उपादान कारणहो तो वह प्रथम उपादान कारणही यथार्थ में सत्य है । तो फिर जब जो जिसका उपादान स्वरूपहो तब वही उसकी अपेक्षा सत्य है ऐसा वेद में कहा है ॥ १८ ॥ कार्यकी उपादान प्रकृति; अधिष्ठाता—परम पुरुष; और कार्यों का प्रगट करने वाला काल यह तीनों मेरेही स्वरूप हैं ॥ १९ ॥ जीवको भोग देनेके निमित्त उत्पन्न हुई इस सृष्टि स्थिति का जब तक अंत आता है तब तक यह पिता और पुत्रादिक रूपसे अविछिन्न चला करती है और यह सृष्टि स्थिति जब तक परमेश्वर का ईक्षण होता है तब तक रहती है ॥ २० ॥ मेरे द्वारा व्याप्त ब्रह्माण्ड,—जगतकी अनेकों सृष्टि और प्रलयकी रचना भूमि होकरभी सब भुवनोंके साथ पंचत्वरूप से विभाग के योग्य है ॥ २१ ॥ शरीर अन्न में; अन्न अंकुरमें, अंकुर भूमि में, भूमि गन्धमें ॥ २२ ॥ गंध जलमें, जल अपने गुणरसमें, रस ज्योतिमें, ज्योतिरूप

ऽङ्तन्मात्र इन्द्रियाणिस्वयोनिषु ॥ २४ ॥ योनिर्वैकारिकेसौम्य लीयतेमनसीश्वरे । शब्दोभूतादिमप्येति भूतादिर्महतिप्रभुः ॥ २५ ॥ सलीयतेमहान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः । तेऽव्यक्तेसंप्रलीयन्ते तत्कालेलीयतेऽव्यये ॥ २६ ॥ कालोमायामये जीवे जीवआत्मनिमय्यजे । आत्माकेवलआत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २७ ॥ एवमन्वीक्षमाणस्य कथंवैकल्पिकोभ्रमः । मनसोहृदितिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदयेतमः ॥ २८ ॥ एषसांख्यविधिःप्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः । प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशामया ॥ २९ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येनयथाभवेत् । तन्मेपुरुषवर्यैद मुपधारयशंसतः ॥ १ ॥ शमोदमस्तितिक्षेक्षा तपःसत्यंदयास्मृतिः । तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहाश्रद्धा ह्रीर्दयादिस्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥ कामईहामदस्तृष्णा स्तम्भआशीर्भिदासुखम् । मदोत्साहोयशःप्रीतिर्हास्यंवीर्यंबलोद्यमः ॥ ३ ॥ क्रोधोलोभोऽनृतंहिंसा याच्ञादम्भःक्लमःकलिः । शोकमोहौविषादार्ती निद्राऽऽशाभीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्यरजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः । वृत्तयोवर्णितप्रायः सन्निपातमथोशृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धवयामतिः । व्यवहारःसन्नि

में रूप वायुमें और वायु स्पर्शमें लीन होजाता है । हे सौम्य ! वहभी आकाश में आकाश शब्द तन्मात्र में, इन्द्रिय वर्ग अपने २ प्रवर्त्तक देवताओं में ॥ २३ । २४ ॥ सब देवता मनमें और मन वैकारिक अहङ्कार में लीन होजाता है । शब्द तन्मात्रा का लय तामसाहंकार में और मनका लय सात्विकाहंकारमें होता है । सब जगतको मोहित करने वाला अहंकार महत्तत्वमें लीन होता है ॥ २५ ॥ वह महत्तत्व अपने कारणी भूत गुणोंमें वह गुण प्रकृतिमें और प्रकृति अव्यय काल में लीन हो जाती है ॥ २६ ॥ काल, ज्ञानमय महापुरुष में और महापुरुष अज आत्मा मुझ में लीन होजाता है आत्मा विश्वकी उत्पत्ति और लय द्वारा स्थिति भूति और सीमारूप से लक्षित होता रहता है; इसही कारण वह निरुपाधिक और आत्मरूप में अवस्थित है ॥ २७ ॥ जो इस प्रकार देखते हैं, सूर्योदय होने पर आकाश से जैसे अंधकार दूर होजाता है उसही प्रकार उनके मनसे भेद जनित भ्रम दूर होजाताहै ॥ २८ ॥ भूत भविष्यके ज्ञाता मैंने प्रतिलोम और अनुलोम क्रमसे इस संदेह ग्रन्थिनाशक सांख्य विधिका वर्णन किया ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीभगवान ने कहा, कि हेउद्धव ! पृथक् २ सत्वादी गुणों में से जिसगुण द्वारा जिसप्रकार से पुरुष प्रकाशित होताहै, वह मैं कहताहूं, तुम सावधान मन होकर सुनो ॥ १ ॥ शम, दम, तितिक्षा, विवेक, स्वधर्म, निष्ठा, सत्य, दया, पूर्व परका अनुसंधान, दैवेच्छा से प्राप्त हुए पदार्थ द्वारा संतोष, दान, वैराग्य आस्तिकता, अनुचितकर्मोंमें लज्जा, सरलता, विनयऔर आत्मरति इत्यादि समस्त सत्व गुण की वृत्तियें हैं ॥ २ ॥ अभिलाष, चेष्टा, अहङ्कार, लाभहोने परभी असंतोष, गर्व, धनादि कामनाओंके निमित्त देवताओं से प्रार्थना करना, भेद बुद्धि, विषयभोग, मद से युद्धादिकका अभिनिवेश, अपनी प्रशंसा में प्रीति, उपहास, पराक्रम, प्रसिद्धकरना और बलसे उद्यम ये सब रजो गुणकीवृत्तियें हैं ॥ ३ ॥ क्रोध, लोभ, झूठ हिंसा, मांगना, दंभ, श्रम, कलह, शोक, मोह, दुःख, दीनता तन्द्रा (आलस्य) बडी २ आशायें, भय और जडता ये तमोगुण की वृत्तियें हैं ॥ ४ ॥ यह सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियां बहुतसी तो कहदी हैं और ऐसी जो औरभी होवें वे इसी के अनुसार जानलेनी अब उनके मिश्रित भाव की वृत्तियों का वर्णन करता हूं सोसुनो ॥ ५ ॥ हे

पातो मनोमात्रेन्द्रिय सुभिः ॥ ६ ॥ धर्मेचार्थेचकामेच यदाऽसौपरिनिष्ठितः । गुणानांसन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७॥ प्रवृत्तिलक्षणंनिष्ठा पुमान्यर्हिगृहा श्रमे । स्वधर्मेचानुतिष्ठेत गुणानांसमितिर्हिसा ॥ ८ ॥ पुरुषसत्त्वसंयुक्त मनुमीया च्छमादिभिः । कामादिभीरजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ॥९॥ यदाभजतिमांभ क्त्या निरपेक्षःस्वकर्मभिः । तंसत्त्वप्रकृतिं विद्यात् पुरुषंस्त्रियमेववा॥१०॥ यदाआ शिषआशास्य मांभजेतस्वकर्मभिः । तंरजःप्रकृतिंविद्याद्धिंसामाशास्यतामसम्। ॥११॥सत्त्वंरजस्तमइति गुणाजीवस्यनैवमे । चित्तजायैस्तुभूतानां सज्जमानोनि बध्यते ॥१२॥ यदेतरौजयेत्सत्त्वं भास्वरंविशदं शिवम् । तदासुखेनयुज्येत धर्म ज्ञानादिभिःपुमान् ॥ १३ ॥ यदाजयेत्तमःसत्त्वं रजःसङ्गंभिदाबलम् । तदा दुःखेनयुज्येत कर्मणायशसाश्रिया ॥ १४ ॥ यदाजयेद्रजःसत्त्वं तमोमूढंलयंजड म् । युज्येतशोकमोहाभ्यां निद्रयाहिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदाचित्तंप्रसीदेत इ-न्द्रियाणांचनिर्वृतिः । देहेऽभयंमनोसंगं तत्सत्त्वंविद्धिमत्पदम् ॥१६॥ विकुर्वन्क्रि यया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् । गात्रास्वास्थ्यंमनो भ्रान्तं रजएतैर्निशामय। ॥ १७ ॥सीदच्चित्तंविलीयेत चेतसोग्रहणेऽक्षमम् । मनोनष्टंतमोग्लानिस्तमस्तदुप धारय ॥ १८ ॥ एधमानेगुणेसत्त्वे देवानांबलमेधते ॥ असुराणांचरजसि तमस्यु-

उद्धव ! मैं और मेरा' इस प्रकार की जो बुद्धि होती है वह तीनोंगुणों का सन्निपात अर्थात् इक-ट्ठापन है मन, शब्दादि विषय, इन्द्रियां और प्राण से जो व्यवहार होता है उसको तीनोंगुणों का सन्निपात जानना चाहियें ॥ ६ ॥ पुरुष का धर्म, अर्थ और काममें लगना तीनोंगुणों के सन्निपात का कार्य है इससे मनुष्य श्रद्धा आशक्ति और धनको उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥ जब मनुष्य काम्य-धर्मों में लगता है, जब गृहाश्रम में आशक्त होता है और फिर जब अपने नित्यनैमित्तिक धर्म में प्र वृत्तहोताहै तब जानोंकि यह इसका वर्त्ताव तीनोगुणों के संयोग से हुआ है ॥ ८ ॥ शमादि द्वारा पुरुष सत्वयुक्त, कामादि द्वारा रजोयुक्त और क्रोधादि द्वारा तमोयुक्त होताहैं ॥ ९ ॥ जब स्त्री या पुरुष निरपेक्ष होकर अपने कर्मोंद्वारा भक्ति पूर्वक मेरी पूजा करताहै तबही वह सत्व स्वभाव कहा जासकताहै॥१०॥जब अपने कुशल की कामना करके अपने कर्मों द्वारा मेरी पूजाकरताहै तब वह रज प्रकृति,और जब हिंसाकी कामनाकरके अपने कर्मोंद्वारा मेरी आराधनाकरताहै तब वहतामस प्रकृति कहाजाताहै ॥११॥सत्व,रज,तम यह सब जीवकेही गुण हैं मेरे नहीं क्योंकि यह सबचित्तसे उत्पन्न हुएहैं इनही गुणों से जीव पदार्थों में आशक्त होकर संसारके पाश मे बंध जाता है ॥ १२ ॥ प्रकाशक, स्वच्छ और शांत सत्वगुण जबरज और तमोगुण का जीतता है, तबहीं मनुष्य सुखी, धार्मिक और ज्ञानवान होताहै ॥१३॥ जबसंगब भेदका कारणरूप प्रवृत्ति स्वभाव रजोगुण, तम और सत्वगुण को जीतना है तब मनुष्य दुःख, कर्म, यश और श्री को प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ जब विवेक भ्रंश कारक, आवरणात्मक और आलस्यात्मक तमोगुण रज और सत्वगुणको जीतता है तब मनुष्य शोक, मोह, निद्रा, हिंसा और आशायुक्त होताहै ॥१५॥ जब मन शांत होवे और सब इन्द्रियें अचंचलहोवें तथा देहमें अभय और मन निःसंगहोवे तब मेरीप्राप्ति के आश्रय सत्व-गुणकी वृद्धि हुई जाननी॥१६॥जब क्रिया विकारके प्राप्तहोनेपर मनुष्यकाचित्त चारोंओरसे भ्रमित होताहै बुद्धि और इन्द्रियोंमें अनिर्वृति उत्पन्नहोती है कर्मेंद्रियों में अधिक विकार उपस्थितहोताहै मन भ्रमित होता है तब रजकी वृद्धिहुई जानना ॥ १७ ॥ जब अस्तहोताहुआ चित्त चिदाभास को ग्रहण करने में असमर्थ होकर लीन होजावे; और संकल्प रूप मनभी लीन होजावे तथा अज्ञान उत्पन्न होजाय और खेद होवे तब तमोगुणकी वृद्धि जाननी ॥ १८ ॥ हेउद्धव ! सत्व

द्भवरक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत्। प्रस्वापंतमसा जन्तोस्तुरीयंत्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरिगच्छन्ति सत्त्वेनब्राह्मणाजनाः। तमसाऽधोऽध आमुख्याद्रजसाऽन्तरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वेप्रलीनाःस्वर्यान्ति नरलोकंरजोलयाः। तमोलयास्तुनिरयं यान्तिमामेवनिर्गुणाः ॥ २२॥ मदर्पणंनिष्फलंवा सात्त्विकंनिजकर्मतत्। राजसंफलसंकल्पं हिंसाप्रायादितामसम् ॥२३॥ कैवल्यं सात्त्विकंज्ञानं रजोवैकल्पिकंचयत्। प्राकृतंतामसंज्ञानं मन्निष्ठंनिर्गुणंस्मृतम् ।२४। वनंतुसात्त्विकोवासो ग्रामोराजसउच्यते। तामसंद्यूतसदनं मन्निकेतंतु निर्गुणम्। ॥ २५ ॥ सात्त्विकःकारकोऽसंगी रागान्धोराजसः स्मृतः। तामसःस्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणोमदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धातुराजसी। तामस्यधर्मेयाश्रद्धा मत्सेवायांतुनिर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यंपूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकंस्मृतम्। राजसंचेन्द्रियप्रेष्ठं तामसंचार्तिदाऽशुचि ॥ २८॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थंतुराजसम्। तामसंमोहदैन्योत्थं निर्गुणंमदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशःफलंकालोज्ञानं कर्मचकारकः। श्रद्धावस्था कृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यःसर्वएवहि ३० सर्वेगुणमयाभावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः। दृष्टंश्रुतमनुध्यातं बुद्ध्यावापुरुषर्षभ ॥ ॥ ३१ ॥ एताःसंसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः। येनेमेनिर्जिताःसौम्य गुणाजी-

गुण के बढ़ने पर देवताओं का, रजके बढ़ने पर असुरों का और तमके बढ़ने पर राक्षसों का बल बढ़ता है ॥ १९ ॥ सत्त्व से प्राणियों का जागरण, रजसे स्वप्न और तमसे सुषुप्ति जानना। तुरीयअवस्था तीनों गुणों के ऊपर विस्तृत है ॥ २० ॥ मनुष्य सत्त्व द्वारा क्रमशः ऊपर के ब्रह्मलोक तक जाता है, तमोगुण से स्थावर पर्यंत नीची २ योनियों में जन्म लेता है और रजोगुण से फिर मनुष्य शरीर को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ जो सत्त्व में लीन होते हैं वे स्वर्ग में; जो रजोगुण में लीन होते हैं वे नरलोक में और जो तमोगुण में लीन होते हैं वह नरक में जाते हैं। और जो निर्गुण हैं वे मुझहीको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रीति के अभिप्राय से कियेहुए व केवल दासभावसे कियेहुए कर्म सात्त्विक हैं; फल की कामना से कियेहुए कर्म राजस हैं और हिंसादि के अभिप्राय से कियेहुए कर्म तामस हैं ॥ २३ ॥ आत्मा देहादिक से भिन्न है ऐसाज्ञान सात्त्विक है, आत्मा देहादिक से भिन्न नहीं है ऐसा ज्ञान राजस है बालककी समान प्राकृतज्ञान तामस है और मेरे विषय का ज्ञान निर्गुण ज्ञान है ॥ २४ ॥ बनमें रहना सात्त्विकवास है, ग्राममें रहना राजसवास है; द्यूत आदि के स्थल में रहना तमोगुणी वास है और मेरे मंदिर आदि में रहनेको निर्गुण निवास जानो ॥ २५ ॥ निःसंगहोकर जो कर्म करे वह सात्त्विक कर्त्ता है; अत्यन्त आसक्तिसे अंधे होकर, जो कर्म करे वह राजसकर्त्ता है; अनुसन्धान रहित होकर जो कर्म करे वह तामस कर्त्ता है और जो मेरा आश्रय लेकर कर्म करे वह निर्गुण कर्त्ता है ॥ २६ ॥ आत्मा पर श्रद्धा सात्त्विक; कर्मों पर श्रद्धा राजस; अधर्म में श्रद्धा तामस और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण, हितकारी तथा श्रद्धा शुद्धहै ॥ २७ ॥ जो भोजन का पदार्थ अनायास से प्राप्त होजावे वह सात्त्विक; इंद्रियों को प्रिय भोजन राजस; दुःख दायक और अशुद्ध भोजन तामस है ॥ २८ ॥ आत्मा से उत्पन्नहुआ सुख सात्त्विक; विषयों से उत्पन्नहुआ सुख राजस; मोह और दीनता से उत्पन्न हुआ सुखाभास तामस और मेरे विषय का सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ द्रव्य, देश, फल, ज्ञान, कर्म कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति और निष्ठा यह सबही त्रिगुणात्मक हैं ॥ ३० ॥ पुरुष और प्रकृति में अवस्थिति-देखे, सुने अथवा बुद्धिद्वारा बिचारेहुए सबही पदार्थ गुणमय हैं ॥ ३१ ॥ हे सौम्य ! जीव के सब जन्म, गुण और कर्म अभिमान रूप कारणसेही होतेहैं। जो जीव चित्त

येन चित्तजाः ॥ ३२ ॥ भक्तियोगेनमन्निष्ठो मद्भावायप्रपद्यते ॥ तस्माद्देहमिमंलब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥३३॥गुणसंगंविनिर्धूयमां भजन्तुविचक्षणाः । निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः । रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ३४॥ सत्त्वंचाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येणशान्तधीः । संपद्यतेगुणैर्मुक्तो जीवोजीवंविहायमाम् ॥ ३५ ॥ जीवोजीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः । मयैवब्रह्मणापूर्णोन बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवानुवाच॥ मल्लक्षणमिमंकायं लब्ध्वामद्धर्मआस्थितः । आनन्दंपरमात्मानमात्मस्थं समुपैतिमाम् ॥ १ ॥ गुणमय्याजीवयोन्या विमुक्तोज्ञाननिष्ठया । गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः । वर्तमानोऽपिन पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥२॥ संगंनकुर्यादसतां शिश्नोदरतृपांक्वचित् । तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगाऽन्धवत् ॥ ३ ॥ ऐलःसम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः । उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तांनग्नउन्मत्तवन्नृपः । विलपन्नन्वगाज्जाये घोरेतिष्ठेतिविक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः नवेदयान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥ ऐल उवाच ॥ अहोमेमोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः । देव्यागृहीतकण्ठस्य नायुःखण्डाइमेस्मृताः ॥ ७ ॥

से होतेहुए इन गुणों को जीतगया होवे, वह फिर भक्तियोग द्वारा मेरा भक्तहो मोक्ष पाने के योग्य होजाता है ॥ ३२ ॥ अतएव जिससे ज्ञान और विज्ञान की उत्पत्ति होती है वह शरीर प्राप्तकर चतुर मनुष्यको निःसंगहो मेरी सेवा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ विद्वान् मुनि को निःसंग और प्रमाद रहितहो इंद्रियों को जीत मेरा भजन करना चाहिए और सत्त्व गुण के सेवनद्वारा रज तथा तमको जीतना चाहिये ॥ ३४ ॥ शांत बुद्धि विद्वान् मनुष्य को उपशमात्मक सत्वद्वारा सत्व को जीतना चाहिए । जीव गुणों से छुटकारा पाकर लिंग देह को छोड़ मुझको प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥ लिंग शरीर भी अंतःकरण से उत्पन्नहुए गुणों से छुटकारापाकर जीव विषयभोग व विषयोंकी चिंता नहीं करता । मैंहीं ब्रह्महूं मुझी से जीव परिपूर्ण होता है ॥ ३६ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवान ने कहा कि—जो मनुष्य जिससे मेरा स्वरूप जानने में आता है ऐसे नरदेहको प्राप्तकर मेरी भक्ति रूप धर्म में दृढ़रहता है वह परमानन्दआत्मस्वरूप मुझको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ ज्ञान निष्ठाद्वारा गुणमय जीवोपाधि से मुक्ति प्राप्तकर पुरुष गुण कि जो मायामात्र औरयथार्थ रीति से प्रतीत होरहे हैं उनमें रहने परभी इन अवास्तविक गुणों के संग को प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ ज्ञानी पुरुष को उपस्थ और उदर के तृप्त करनेवाले मनुष्यों का संग कदापि न करना चाहिये ।यदि उनमें से एककाभी अनुसरण कियाजाय तो अन्धे के पीछे चलेजाते अन्धेकीसमान वह मनुष्य घोर अन्धकार में गिरता है ॥ ३ ॥ चक्रवर्त्ती बिपुलकीर्त्ति राजा पुरूरवा ने उर्वशी के बिरह के कारण मोह में पतितहो उसको फिर पाने के निमित्त शोक के कारण वैराग्यको प्राप्तहो इस गाथा को गायाथा ॥ ४ ॥ वह उर्वशी जब उसको छोड़कर चलीगई तब राजाकातरहो शोक करते २ उन्मत्तकी समान नंगा और ' हे स्त्री ! हे घोरे ! ठहर २ ' इसप्रकार विलाप करताहुआ उसके पीछे २ दौड़ा ॥ ५ ॥ अतृप्त चित्त से तुच्छ काम की सेवाकरतेहुए बहुत वर्षों की रात्रियों के आरम्भ और अन्त को वह न समझसका,—उर्वशी ने उसकी बुद्धि को हर लियाथा ॥६॥ फिर पुरूरवा ने उर्वशी के लोक को पाकर अन्त में कहाथा कि अहो ! मेरे काम बिमूढ़ चित्तमें कैसा मोह का विस्तार हुआ ! उर्वशी ने जो मेरे कण्ठ का आलिंगन किया इससे मेरी परमायु

नाहंवेदाभिनिर्मुक्तः सूर्योंवाऽभ्युदितोऽमुया । मुषितोवर्षपूगानां बताहानिगता न्युत ॥ ८ ॥ अहोमेआत्मसंमोहो येनात्मायोषितांकृतः । क्रीडामृगश्चक्रवर्त्तीनर देवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वातृणमिवेश्वरम् । यान्तींस्त्रियंचा न्वगमं नग्नउन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावःस्यात्तेजईशत्वमेववा । यो ऽन्वगच्छंस्त्रियंयान्तीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किंविद्ययाकिंतपसा किंत्यागे नश्रुतेनवा । किंविविक्तेनमौनेन स्त्रीभिर्यस्यमनोहृतम् ॥ १२ ॥ स्वार्थस्याकोविदं धिङ्मांमूर्खंपण्डितमानिनम् । योऽहमीश्वरतांप्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेवतोवर्षपूगान्मे उर्वश्याअधरासवम् । नतृप्यत्यात्मभूःकामो वह्निराहुतिभिर्य था ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतंचित्तं कोन्वन्योमोचितुंप्रभुः । आत्मारामेश्वरमृते भग वन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापिदेव्यामे सूक्तवाक्येनदुर्मतेः । मनोगतोम हामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतयानोऽपकृतं रज्ज्वावासर्पचेतसः । रज्जुस्वरूपाविदुषोयोऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायंमलीमसःकायो दौर्ग न्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः । क्वगुणाःसौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्ययाकृतः ॥ १८ ॥ पित्रोःकिंस्वंनुभार्यायाः स्वामिनोऽग्नेःश्वगृध्रयोः । किमात्मनःकिंसुहृदा मिति योनावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठेविषज्जते । अहोसुभद्रंसु

का जितना समयबीतगया उसका मैंने स्मरण भी न किया ॥ ७ ॥ कैसा दुःख का विषय है ! मैं इसकेद्वारा ठगाजाकर—सूर्य के उदय अस्त को भी न जानसका, बीतेहुए वर्षों के दिनों का भी अनुभव न करसका ॥ ८ ॥ अहो मुझे कैसा आत्म भ्रम हुआ ! मैंने राजशिरोमणि-चक्रवर्त्ती राजा होकरभी अपने को स्त्रियों का क्रीड़ामृग किया ॥ ९ ॥ राज्यादि सामग्रियों समेत अपने चक्रवर्तित्व को तृणकी समान छोड़कर नग्नहो उन्मत्त की समान रोते २ स्त्री का पीछा किया ॥ १० ॥ जो मनुष्य गधे की समान मुँह पर लातेंखाता, छोड़कर जातीहुई स्त्री के पीछेगया, उसके प्रभाव, बल और सामर्थ्य कहां से रहे ? ॥ ११ ॥ स्त्रियों ने जिसके मनका हरणकरलिया है, उसकी विद्या, तपस्या, संन्यास, शास्त्रज्ञान एकांत सेवा वाक्य संयम सबही वृथा हैं ॥ १२ ॥ मैं कि जो चक्रवर्त्ती राज्य को पाय बैल और गधे की समान स्त्रियों द्वारा पराजित हुआहूं उस अपने स्वार्थ को न जाननेवाले, अज्ञान, मूर्ख, पण्डिताभिमानी मुझको धिक्कार है ॥ १३ ॥ अनेकों वर्ष तक उर्वशी के अधरामृत का पान करके भी मुझे तृप्ति न हुई । परन्तु इसके विपरीत आहुति समूहद्वारा अग्नि की समान मनमें बारम्बार तृष्णा की वृद्धिही होती रही ॥ १४ ॥ आत्मा राम, अधोक्षज, भगवान ईश्वर के अतिरिक्त कुलटा स्त्रियोंसे हरण कियेहुए चित्तवाले मनुष्य को और कोई नहीं छुड़ासकता मैंनेतो कर्मों से देवताओं का आराधन करके दुःखही पाया इस कारण अबमैं परमेश्वरकी ही आराधना करूंगा विना भगवत् कृपाके दूसरोंकी शिक्षासे मोह नहीं दूर होसकता ॥ १५ ॥ क्यों कि मुझ कुमति और अजितेन्द्रियको उर्वशी ने यथार्थ वचनो से उप देशभी दिया तौभी मेरे मनमें रहाहुआ मोह किसी प्रकार से निवृत्त नहुआ ॥१६॥ उर्वशी ने मेरा क्या अपराध किया है मुझको ही रस्सी से सर्प का भ्रमहुआ कि देखपड़ने वाले के स्वरूप को न समझ सका मैं अजितेन्द्रिय हूं ॥ १७ ॥ यह मलीन दुर्गंधित, अपवित्र देह कहां और फूल की स मान सुगंधित गुण कहां ! इस बीभत्सशरीरमें जो सुंदरता का प्रकाश है वह केवल अज्ञान क- ल्पित है ॥ १८ ॥ यह निश्चय नहीं होसकता कि देह माता, पिता, स्त्री, स्वामी, अग्नि, कुत्ता, गीध, स्वयं अपना व बांधवोंमे से किसकाहै ॥ १९ ॥ वह अहो स्त्री का मुख कैसा सुंदरहै उसकी नासिका कैसी भली है उसका हास्य कैसा मनोहर है ऐसा विचारकर नाशवान् तुच्छ पदार्थ अप

नखं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥ २० ॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ। विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित्। विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुतान्द्भावान्न भाव उपजायते। असंप्रयुञ्जतः प्राणाञ्शाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः। विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नृपदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय। आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्। सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः २६ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः। निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥ तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः। संभवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः। मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते। मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्। शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्। सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ३२ अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम्। धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग्बिभ्य

चित्त देह में भली प्रकार से आसक्त होजाता है ॥ २० ॥ यथार्थ में विचाराजाय तो त्वचा, मांस रक्त, नसें, मेद, मज्जा और अस्थिके समूह रूप देह में विलास करनेवाले और विष्ठा मूत्र व पूय में विहार करनेवाले कीडों में अंतर ही क्या है ॥ २१ ॥ विवेकी पुरुष यह विचार कर स्त्री और स्त्री संगियों में आशक्त नहीं होते। विषय और इन्द्रियों के साथ संयोग के कारणही मन क्षुभित होता है दूसरे कारण से नहीं होता ॥ २२ ॥ दर्शन और श्रवण के अतिरिक्त कभी भी मनमें क्षोभ नहीं उत्पन्न होता अतएव जो इन्द्रियों का संयम करते हैं उनका मन स्थिर होकर शांत हो जाता है ॥ २३ ॥ इसही कारण इन्द्रियों द्वारा स्त्रियों और स्त्री संगियोंका संसर्ग न करना चाहिये छहों इन्द्रियों का पण्डित जनभी तो विश्वास नहीं करते अतएव मेरे समान मनुष्योंकी तो बातही क्या है ॥ २४ ॥ श्रीभगवानने कहा कि नरदेव शिरोमणि पुरूरवाने इसप्रकार कहकर उर्वशी लोक को स्वयंही त्यागदिया और उसने आत्मरूपसे मुझको पहिचाना तथा ज्ञान द्वारा मोह का नाश कर उपरति को प्राप्त किया ॥ २५ ॥ इसही कारण बुद्धिवान मनुष्य को उचित है कि दुष्ट संगको छोड़ साधु संगकरे साधु जन उत्तम २ उपदेशोंद्वारा उसके मनकी आशक्ति को नाशकर देते हैं। ॥ २६ ॥ जो अपेक्षा रहित मेरेमें चित्त रखने वाले, प्रशांत, समदर्शी, ममता रहित, अहंकार वर्जित, द्वन्द्व रहित और परिग्रह शून्य हैं वही साधु हैं ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! वह सदैवही अपने हितकारी मेरी कथाकी आलोचना किया करते हैं वे सब कथाएं सुनने वालोंका पाप नाश करती हैं। ॥ २८ ॥ जो आदर पूर्वक इन सब कथाओं को सुनते कहते वा अनुमोदन करते हैं वह मेरे भक्त और मुझमें श्रद्धावान् हो मेरी भक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ जो साधु कि अनंत गुण, आनंदानुभवात्मक मेरी भक्ति युक्त हैं उनको और क्या शेष रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निका आश्रय करनेवार मनुष्यों को शीत, भय और अन्धकार नहीं रहता इसही प्रकार साधुओं की सेवा करनेपर समस्त पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे जो जलमें डूबजाता हो उसका नावही परम आश्रय है वैसेही घोर भवसागर में डूबते हुए पारजाने की इच्छा रखने वाले को ब्रह्मज्ञ साधुही परम अवलंबन हैं ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार अन्न प्राणियों का प्राण है जैसे मैं कातर जनों के लिये शरण

तोऽरणम् ॥ ३३ ॥ सन्तोदिशन्तिचक्षूंषि बहिरर्कःसमुत्थितः । देवताबान्धवाःसन्तः सन्तआत्माऽहमेवच ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येव मुर्वश्यालोकनिस्पृहः । मुक्तसंगोमहीमेता मात्मारामश्चचारह ॥ ३५ ॥

इतिश्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

उद्धवउवाच॥क्रियायोगंसमाचक्ष्व भवदाराधनंप्रभो । यस्मात्वांयेयथार्चन्ति सात्वताःसात्वतर्षभ॥१॥एतद्वदन्तिमुनयोमुहुर्निःश्रेयसंनृणाम् । नारदोभगवान्व्यासआचार्योऽङ्गिरसःसुतः ॥ २ ॥ निःसृतंतेमुखाम्भोजाद्यदाहभगवानजः । पुत्रेभ्योभृगुमुख्येभ्यो देव्यैचभगवान्भवः ॥ ३ ॥ एतद्वैसर्ववर्णानामाश्रमाणांचसंमतम् । श्रेयसामुत्तमंमन्ये स्त्रीशूद्राणांचमानद ॥ ४ ॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् । भक्तायचानुरक्ताय ब्रूहिविश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्यचोद्धव । संक्षिप्तंवर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तान्त्रिकोमिश्र इतिमेत्रिविधोमखः । त्रयाणामीप्सितेनैव विधिनामांसमर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदास्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वंप्राप्यपूरुषः । यथायजेतमांभक्त्या श्रद्धयातन्निबोधमे ॥ ८ ॥ अर्चायांस्थण्डिलेऽग्नौवासूर्येवाऽप्सुहृदिद्विजे । द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुंमाममायया ॥ ९ ॥ पूर्वंस्नानंप्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये । उभयैरपिचस्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेना

हूं जैसे धर्म सबही मनुष्योंका धर्म है वैसेही साधु जन संसार में गिरने से भयभीत मनुष्यों को तारने वाले हैं ॥ ३३ ॥ साधु अनेक चक्षुओं को देते हैं और सूर्य तो भली प्रकार से उदय होनेपर बाहिरी एक चक्षु इन्द्रिय कोही देता है साधुगणही देवता बांधव और साधुगणही आत्मा तथा मद्रूप हैं ॥ ३४ ॥ हे उद्धव ! तदनंतर पुरूरवा इस प्रकार से उर्वशी के लोक को छोड निःसंगहुआ और आत्मा रामहो इस पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद. सरला भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

उद्धवजी ने कहा कि—हे यादवोत्तम ! हे प्रभु ! जो भक्त आपकी आराधना करते हैं आप उनकी आराधना रूप क्रिया योग का मुझसे उपदेश करियेगा ॥ १ ॥ नारदजी, भगवान व्यास जी और अंगिरा के पुत्र, आचार्य बृहस्पतिजी आदि मुनिगण इसको मनुष्य की मुक्तिका साधन कहगये हैं ॥ २ आपके मुख कमल से निकलेहुए बचनों को भगवान ब्रह्माजीने भृगु आदि अपने पुत्रों से और भगवान महादेवजी ने पार्बतीजी से कहाथा वह प्रकार मैं सुनना चाहताहूं ॥ ३ ॥ हेमानद ! यहसब वर्णों और आश्रमों को तथा स्त्रियों और शूद्रों को भी परम कल्याणकारक है। यह मैं मानताहूं ॥ ४ ॥ इसकारण हेकमलदललोचन ! हे विश्वेश्वरों के ईश्वर ! मैं भक्त और अनुरागी हूं, मुझसे कर्म बन्धनके छुटकारे का साधनकहो ॥ ५ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हे उद्धव ! असीम, अपार कर्म काण्ड का अन्त नहीं है अतएव अनुक्रम के अनुसार यथावत्संक्षेप से वर्णन करूंगा ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक और मिश्रित ऐसे तीन प्रकार की मेरी पूजा होती है तीनोंमेंसे जिसकी जो इच्छाहो उसके द्वारा वह मेरी पूजा करे ॥ ७ ॥ जिसका अपने वेद की शाखा में कही हुई रीति से उपनयनसंस्कारहुआहोवे उसको श्रद्धा पूर्वक भक्तिसे जिसप्रकारपूजा करनी चाहिये उसको मैं कहताहूं सो सुनो ॥ ८ ॥ द्विज निष्कपट भावसे प्रतिमा में बालुकामयी वेदी में, अग्नि में अथवा सूर्य में, जल में और हृदय में गुरुस्वरूप मेरा द्रव्यद्वारा आराधन करे ॥ ९ ॥ दातून करके शुद्धता के निमित्त पहिले स्नान करे; यह स्नान बैदिक और तान्त्रिक मंत्रों से मिट्टी को ग्रहणकर उसके द्वारा स्नान करना चाहिये ॥ १० ॥ जिसका ईश्वर मेंही संकल्प है वह

ऽऽचोदितानिमे । पूजांतैःकल्पयेत् सम्यक्संकल्पःकर्मपावनीम् ॥११॥ शैलीदारुमयीलौही लेप्यालेख्याचसैकती । मनोमयीमणिमयीप्रतिमाऽष्टविधास्मृता ॥१२॥ चलाचलेतिद्विविधा प्रतिष्ठाजीवमन्दिरम् । उद्वासावाहनेनस्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥१३॥ अस्थिरायांविकल्पःस्यात् स्थण्डिलेतुभवेद्‌द्वयम् । स्नपनंत्वविलेप्यायामन्यत्रपरिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैःप्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः । भक्तस्यचयथालब्धैर्हृदिभावेनचैवहि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणंप्रेष्ठमर्चायामेवतूद्धव । स्थण्डिलेतत्त्वविन्यासोवह्नावाज्यप्लुतंहविः ॥१६॥ सूर्येचाभ्यर्हणंप्रेष्ठं सलिलेसलिलादिभिः । श्रद्धयोपाहृतंप्रेष्ठंभक्तेनममवार्यपि ॥१७॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं नमेतोषायकल्पते । गन्धोधूपःसुमनसोदीपोऽन्नाद्यंचकिंपुनः ॥१८॥ शुचिःसंभृतसंभारःप्राग्दर्भैःकल्पितासनः आसीनःप्रागुदग्वार्चे दर्चायामथसंमुखः ॥१९॥ कृतन्यासःकृतन्यासां मदर्चांपाणिनामृजेत् । कलशंप्रोक्षणीयंच यथावदुपसाधयेत् ॥२०॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेवच । प्रोक्ष्यपात्राणित्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्चसाधयेत् ॥ २१ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणिपात्राणिदेशिकः । हृदाशीर्ष्णाऽथशिखया गायत्र्याचाभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥ पिण्डेवाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थांपरांमम । अण्वींजीवकलां ध्यायेन्नादान्तेसिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयात्मभूतयापिण्डे व्याप्तेसंपूज्यतन्मयः ।

वेद विहित सन्ध्योपासनादि कर्मों सहित कर्म पावनी मेरी पूजाकरे ॥ ११ ॥ पत्थर, लकड़ी, लोह मिट्टी व चन्दन आदिकी, चित्रमयी, बालुकामयी, मनोमयी और मणिमयी यह मेरी आठप्रकारकी प्रतिमा हैं ॥ १२ ॥ वह औरभी दो प्रकारकी चला और अचला हैं । हेउद्धव ! जो अचला प्रतिमा की पूजा कीजाय तो उसका आवाहन विसर्जन नहीं कियाजाता ॥ १३ ॥ चला में होभी सकता है और नहीं भी होसकता । बालुकामयी में दोनों होसकते हैं मृण्मयी और लेखमयी के अतिरिक्त और सब प्रतिमाओं को स्नान कराना चाहिये ॥ १४ ॥ निष्काम भक्तों को प्रतिमा में उत्तम पदार्थोंद्वारा मन २ में ध्यान करतेहुए मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ १५॥ हे उद्धव! प्रतिमा में स्नान और प्यारे अलंकार का उपयोग करना चाहिये और बालुका की वेदी में विशेष २ मंत्रों द्वारा अंग के देवता और प्रधान २ देवताओं का स्थापन,—अग्नि में घीसे भीगेहुए होमीयपदार्थ सूर्य में नमस्कार और अर्घ्यादि द्वारा अर्चन और जल में जलादिद्वारा पूजनकरना मुझकोअत्यंत ही प्रिय है ॥ १६—१७ ॥ भक्तिद्वारा श्रद्धापूर्वक दियाहुआ जलभी मुझे प्यारा है; अश्रद्धाद्वारा दियेहुए बहुत से पदार्थों से भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता; फिर गन्ध, धूप, पुष्प, दीप और अन्नादि की तो बातही क्या है ॥ १८ ॥ प्रथम पवित्रहो पूजायोग्य पदार्थों और कुशद्वारा आसन बनाय उस पर बैठ पूर्व या उत्तर की ओर मुखकर पूजाकरनी चाहिए ; जो प्रतिमा अचला है उस के सन्मुख बैठकर आराधना करनी चाहिये ॥ १९ ॥ फिर उपदेशानुसार सब न्यासों का सम्पादन कर अपने शरीर आदि को शुद्ध करे तदनन्तर मूल मंत्र के न्यास सहित मेरी पूजाकरे और जल से भरेहुए पूर्ण कुंभका व प्रोक्षण करनेके जलके पात्रका यथा रीति से संस्कार करे ॥ २० ॥ उसही जल द्वारा देव पूजाका स्थान सब पदार्थ और अपने को प्रोक्षणकर जल और समस्त पदार्थों द्वारा दो पात्रोंका संस्कार करे पूजा के पाद्य अर्घ और आचमन के लिये तीन पात्रोंको हृमंत्र, शिरो मंत्र, शिखा मंत्र और गायत्रीमंत्र द्वारा अभिमन्त्रित करे ॥ २१ ॥ २२ ॥ सिद्ध गण ओंकारके उपरांत जिसका ध्यान करते हैं, वायु और अग्नि द्वारा शोधित देह में हृत् कमलमें अवस्थित उसही श्रेष्ठा सूक्ष्मा, नारायण की मूर्तिके ध्यान में प्रवृत्त होवे ॥ २३ ॥ अपने साथ एक

आवाह्यार्चादिषुस्थाप्य न्यस्ताङ्गंमांप्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् । धर्मादिभिश्चनवभिः कल्पयित्वाऽऽसनंमम ॥२५॥ पद्ममष्टदलंतत्रकर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् । उभाभ्यांवेदतन्त्राभ्यांमह्यंतूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनंपाञ्चजन्यंगदासीषुधनुर्हलान् । मुसलंकौस्तुभंमालां श्रीवत्संचानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नन्दंसुनन्दंगरुडं प्रचण्डंचण्डमेवच । महाबलंबलंचैव कुमुदंकुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥ दुर्गांविनायकंव्यासं विष्वक्सेनंगुरून्सुरान् । स्वेस्वेस्थानेत्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः । सलिलैःस्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदाविभवेसति ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया । पौरुषेणापिसूक्तेन सामभीराजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः अलंकुर्वीतसप्रेम मद्भक्तोमांयथोचितम् ॥ ३२ ॥ पाद्यमाचमनीयंच गन्धंसुमनसोऽक्षतान् । धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मेश्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् । संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यंसतिकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्गोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् । अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणिस्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिनाविहितेकुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः । अग्निमाधायपरितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथपर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि । प्रोक्षण्याऽऽसाद्यद्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौभावयेतमाम् ॥ ३७ ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शंखचक्रगदाम्बुजैः । लसच्चतु-

में मिलाय ध्यान की हुई उस मूर्ति शरीर में व्याप्त होनेपर पहिले उसमें ही मानसोपचार द्वारा पूजाकर तन्मय हो उसे प्रतिमादि में आवाहन और स्थापन मुद्रा द्वारा स्थापनकर अंगन्यास पूर्वक मेरी पूजाकरे ॥ २४ ॥ धर्मादि और नवशक्तियों द्वारा मेराआसन और उसके बीचमें कर्णिका और केशर आदि द्वारा उज्ज्वल अष्टदल कमलकी कल्पना कर वेद और तंत्रो द्वारा भोग तथा मुक्तिकी सिद्धिके निमित्त मेरा पाद्य, आचमनीय और अर्घ्यादि उपचारों से पूजन करे ॥ २५ । २६ ॥ तदनंतर सुदर्शन, पांचजन्यशंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल, कौस्तुभ, माला और श्रीवत्सकी अर्चना करे ॥ २७ ॥ सुनंद, नंद, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण, गरुड दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरुगण और देवगण इन समस्त सहचारों की यथास्थान में प्रोक्षणादि पूर्वक पूजाकरे ॥ २८ । २९ ॥ यदि शक्ति होवे तो मंत्रोंच्चार पूर्वक सर्वदा खस, कपूर कुंकुम और अगुरुवासित जल द्वारा स्नान करावे ॥ ३० ॥ सुवर्ण, अर्घ्य, मंत्र, महापुरुषविद्या, पुरुषसूक्त, नाम और नीराजन आदि द्वारा पूजन करे ॥ ३१ ॥ वस्त्र, जनेऊ, अलंकार पत्रावली माल्य, चन्दन और लेपन द्वारा अलंकृत करे ॥ ३२ ॥ पूजक मुझको पाद्य, आचमनीय, चंदन, फूल धूप, दीप इत्यादि श्रेष्ठ उपहारों को श्रद्धा समेत अर्पण करे ॥ ३३ ॥ यदि होसके तो घृत, पूए, लपसी, हलवा, पूरी, लड्डू , दधि और पकवान आदिकी नैवेद्यका भोग लगावे॥ ३४ ॥ एकादशी के दिन तललगाना, उबटनमलना, दर्पण, दतून, पंचामृत आदि से स्नान, भक्ष्य, भोज्य, नाचना, गाना आदि भगवत् सेवा के सब साधन करे यदि होसके तो नित्यकरे नहीं तो उत्सव के दिन अवश्यही करे ॥ ३५ ॥ अपने २ अधिकारानुसार गृह्य सूत्र के अनुसार मेखला, कुश और वेदीद्वारा कुण्ड बनावे फिर उसके चारों ओर अग्नि स्थापन कर अपने हाथों से जलाय उसको चारों ओर से इकट्ठा करे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर चारों ओर कुशों को फैलाय व्याहृतिद्वारा यथाविधि से समिध के होमने आदि का अन्वाधान नामक कर्म करे; फिर अग्नि के उत्तर ओर होमोपयोगी पदार्थ रख, प्रोक्षणपात्र में रक्खेहुए जल से प्रोक्षणकर अग्नि में मुझको इसप्रकार से विचारे कि—॥ ३७ ॥ मेरा वर्ण तपेहुए सुवर्ण की कांति के समान है; चारो हाथों में शंख, चक्र, गदा

भुजंशान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम् । श्रीवत्सवक्षसंभ्राजत्कौस्तुभंवनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्यदारूणि हविषा ऽभिघृतानिच । प्रास्याऽऽज्यभागावा ऽघारौदत्त्वाचाज्यप्लुतंहवि ॥ ४० ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः । धर्मादिभ्योयथान्यायंमन्त्रैःस्विष्टकृतंबुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथनमस्कृत्य पार्षदेभ्योबलिंहरेत् । मूलमन्त्रंजपेद्ब्रह्मस्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषंविष्वक्सेनायकल्पयेत् । मुखवासंसुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम । मत्कथाःश्रावयञ्छृण्वन्मुहूर्तंक्षणिकोभवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैःप्राकृतैरपि । स्तुत्वाप्रसीद भगवन्निति वन्देतदण्डवत् ॥ ४५ ॥ शिरोमत्पादयोःकृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नंपाहिमामीश भीतंमृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इतिशेषांमयादत्तां शिरस्याधायसादरम् । उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषितत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषुयदायत्र श्रद्धामांतत्रचार्चयेत् । सर्वभूतेष्वात्मनिच सर्वात्माहमवस्थितः । ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः । अर्चन्नुभयतःसिद्धिं मत्तोविन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् । पुष्पोद्याना-निरम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनांप्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् । क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वामत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठयासार्वभौमं

और पद्म शोभायमान हैं; प्रशांत, कमल केसर की समान पीतवस्त्र पहिनेहुए ॥ ३८ ॥ प्रकाशित किरीट, बाजूबन्द, कटि मेखला और श्रेष्ठ कटक से देह अलंकृत; बक्षःस्थल में श्रीवत्स; सुन्दर कौस्तुभमणि लसाये और बनमाला धारण कियेहुए ॥ ३९ ॥ ऐसे मेरे स्वरूप का ध्यान कर पूजाकरे और घृतद्वारा भीगीहुई सूखी समिध अग्नि में डालकर चारों ओर घृतडालने रूप दो आधार और आज्यभाग देकर ॥ ४० ॥ मूलमंत्र से वा पुरुष सूक्त से प्रति ऋचा एक एक आहुति लेकर पूजाके क्रम से धर्मादिक के निमित्त घीमें भीगीहुई हवि से नारायणात्मक होमकरे फिर स्विष्टकृत नामक होम करके अग्नि के भीतर स्थित अन्तर्यामी की पूजा और नमस्कारकर पार्षदों को बलिदान देवे। फिर पूजाके स्थान में भगवान के निकट बैठकर नारायणरूप परब्रह्म का स्मरण करतेहुए यथाशक्ति मूलमंत्र का जप करे ॥ ४१—४२ ॥ फिर आचमनकराय बचाहुआ भोग पार्षदों को देवे; फिर स्वयं भोजन करे। फिर सुगन्धयुक्त ताम्बूलादि दे पुष्पांजलि अर्पण करे ॥ ४३ ॥ मेरे विषय का गान, मेरे नाम कर्म्मादि का कथन, नृत्य, मेरे समस्त कर्मों की लीलाकरना, मेरी कथा को सुनना सुनाना आदि कर्म व्यग्रता छोड़कर करे ॥ ४४ ॥ पुराण के छोटे बड़े स्तोत्रों और प्राकृत भाषाकी छोटी बड़ी स्तुतियों से स्तुति करे तदनन्तर हेभगवन्! प्रसन्नहो यह कहकर दण्डवत् प्रणामकरे ॥ ४५ ॥ दहिने और बाएं हाथद्वारा मेरे दहिने और बाएं पैर को मस्तक में लगाय "हे ईश्वर! मैं शरणागतहूं, मृत्यु और भवसागर से भयभीतहूं मेरी रक्षाकरो" यह कहकर नमस्कार करे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार प्रार्थनाकर मेरे दियेहुएनिर्माल्य को आदरपूर्वक मस्तक में धारण करे, मेरा बिसर्जन करनाहो तो प्रतिमा में जिस ज्योति का आवाहन कियाहो उस ज्योति का फिर हृदय कमलगत ज्योतिमेंही बिसर्जन करना ॥ ४७ ॥ मूर्त्ति आदि में जब जिसमें श्रद्धा होवे तब उसमें मेरी पूजाकरनी। मैं सबका आत्मा; सब प्राणियों और आत्मा में स्थितहूं ॥ ४८ ॥ पुरुष इसप्रकार वैदिक और तांत्रिक क्रियाओंद्वारा पूजाकर मेरे निकट से इच्छितवर को प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमा के स्थापित कराने को दृढ़मंदिर बनवावे। मेले और पूजादि के निमित्त खेत, दुकानें, गांव, नगर आदि भगवान् के भेंट करें, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य को मेरी समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ५०—५१ ॥ प्रतिष्ठा से

ध्यानेनभुवनत्रयम् । पूजादिनाब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेवनै रपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति । भक्तियोगंसलभते एवंयःपूजयेतमाम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तांपरैर्दत्तां हरेतसुरविप्रयोः । वृतिंसजायते विड्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ५४॥ कर्तुश्चसारथेर्हेतोरनुमोदितुरेवच । कर्मणांभागिनःप्रेत्य भूयोभूयसितत्फलम् ५५॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच । परस्वभावकर्माणि नप्रशंसेन्नगर्हयेत् । विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेणच ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यःप्रशंसति निन्दति । सआशुभ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः । मायांप्राप्नोतिमृत्युंवा तद्वन्नानार्थदृक्पुमान् ॥ ३ ॥ किंभद्रंकिमभद्रंवा द्वैतस्यावस्तुनःकियत् । वाचोदिततदनृतं मनसाध्यातमेवच ॥ ४ ॥ छायाप्रत्याह्वयाभासाह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः । एवंदेहादयोभावा यच्छन्त्यामृत्युतोभयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव तदिदंविश्वं सृज्यतेसृजतिप्रभुः । त्रायतेत्रातिविश्वात्मा ह्रियतेहरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान्नह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः । निरूपितेयंत्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि । इदंगुणमयंविद्धि त्रिविधंमाययाकृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् । ननिन्दतिनचस्तौति लोकेचरतिसूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमाने

चक्रवर्तीपद; मंदिर बनवाने से त्रिलोक; पूजादि से ब्रह्मलोक और इनतीनों से मेरी समता प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ निष्काम भक्तिद्वारा मैं प्राप्त होताहूं ; जो इसप्रकार पूजा करते हैं उन्हीं को भक्तियोग प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य अपनी दीहुई वा दूसरेकीदीहुई देववृत्ति वा ब्राह्मण वृत्ति को छीनता है वह कोटि वर्ष पर्यंत विष्ठाभक्षी कीड़ा होकर समय बिताता है ॥ ५४ ॥ ऐसे ऐसे सत्कर्म करने से जो फल होते हैं वही फल कर्त्ताको सहायता देनेवाले को, प्रेरणा करने वाले को और सम्मति देनेवाले को मिलते हैं; कारण यह है कि येसब कर्म के विभागी हैं । अधिक कर्म करने से फल भी अधिक मिलता है ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादश०सरलाभाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीभगवान ने कहा कि,—दूसरे मनुष्यों के शांतस्वभाव की अथवा अच्छे कर्मों की प्रशंसा वा निंदा न करे; क्योंकि प्रकृति और पुरुष रूप से सबही जगत् एक रूप है ॥ १ ॥जो मनुष्य दूसरे के स्वभाव और कर्म की निन्दा व प्रशंसा करता है वह व्यर्थही अभिनिवेशके बशहोशीघ्र ही अपने अभिप्राय से भ्रष्ट होजाता है ॥ २ ॥ राजस अहंकार के कार्य से इंद्रियें निद्रा के बश से अभिभूत होजाती हैं तब देहस्थजीव स्वप्न रूप माया अथवा चेतना शून्यहो सुषुप्ति रूप से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इसही प्रकार द्वैत विषय में अभिनिवेशकारीमनुष्य विक्षेप और लयको प्राप्त होता है द्वैत वस्तु नहीं है इसमें निश्चयही क्या और संदेहही क्या जो वाक्य द्वारा कहाजाता है और मन द्वारा विचाराजाता है वह सब अवस्तु भूत है ॥ ४ ॥ प्रतिबिंब, प्रतिध्वनि, और भ्रम अवस्तु होकरभी वस्तु का ज्ञान कराते हैं इसही प्रकार सब देहादिक पदार्थ भी मरण पर्यंत भय उत्पन्न करते रहते हैं ॥ ५ ॥ यह प्रभु ईश्वर आत्माही विश्वरूपसे उत्पन्न होता और सृष्टि रूप से सबको उत्पन्न करताहै इसका पालन होता और वही पालताहै लान होता और वही लय करता है ॥ ६ ॥ अतएव आत्मा जो सबसे पृथक् है उससे कोई भी अन्य पदार्थ निरूपित नहीं होता आत्मा सेही यह जो अध्यात्म अधिभूत और अधिदैव रूप जो प्रतीत होता है वह सबही अमूलक है इन तीन प्रकार के गुण मय को माया कृत जानों ॥ ७ ॥ मेरे कहेहुए ज्ञान विज्ञान और निष्ठाको जो जानते हैं वह कभी किसी की स्तुति व निंदा नहीं करते सूर्य की समान सर्वत्र समभाव से संसार में विचरण करते रहते हैं ॥ ८ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, निगम और अपने अनु-

न निगमेनात्मसंविदा । आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच । नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः । अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः । अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच । यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः सन्निकर्षणम् । संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् । स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः । अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्ममृत्युश्च नात्मनः १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोऽभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः । सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म । ज्ञानासिनोपासनया शितेन च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥ ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् । आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य । तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमङ्ग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ । समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् २० ॥

भव द्वारा आत्मभिन्न पदार्थ को आद्यन्तशाली और असत् विचार निःसंग होकर इस लोक में भ्रमण करे ॥ ९ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे ईश्वर ! यह दृश्यमान संसार चेतन द्रष्टास्वरूप आत्मा का अथवा अचेतन दृश्यरूप देह का भी नहीं है तो किसका है ॥ १० ॥ आत्मा, अव्यय निर्गुण, शुद्ध, ज्योतिःस्वरूप, आवरण रहित और अग्नि की समान है; तथा देह अचेतन काठ की समान है । तब फिर यह संसार किसका है, यह निश्चयकरके कहो ॥ ११ ॥ श्रीभगवान ने कहा कि—हेउद्धव ! जितने दिन शरीर, इंद्रिय और प्राणों के साथ आत्मा का सम्बन्ध रहता है उतनेही दिन संसार वास्तव में पदार्थ न होकरभी अविचारियों के नेत्रों में पदार्थवत् ज्ञातहोता है ॥ १२ ॥ जैसे स्वप्नावस्था में अनर्थ की प्राप्ति होती है, वैसेही वस्तु के न होनेपरभी विषय परायण पुरुष की संसार से निवृत्ति नहीं होती ॥ १३ ॥ जिसप्रकार स्वप्न सोतेहुएमनुष्य के पक्ष में नानाप्रकार के पदार्थों को उत्पन्नकरता है; और फिर वही स्वप्न जाग्रत मनुष्य को मोह नहीं उत्पन्न करासकता ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध लोभ, मोह, स्पृहा, जन्म और मृत्यु आदि सबही अहंकार के दृश्य हैं आत्मा के नहीं ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मन से उत्पन्न हुआ अभिमान शाली आत्माही अंतरस्थ जीव है अतएव गुण, कर्म, सूत्र, महत्तत्व और अहंकार शब्दो सेभी आत्मा कहाजाताहै इस कारणही वह 'प्रकृति' 'महान' आदि नाना प्रकारसे कीर्तित हो कालवश से संसार में प्राप्त हो मुक्त होतारहता है ॥ १६ ॥ मुनि को उचित है कि इस अमूलक तथापि बहुत रूप से प्रकाशित इस मन वाक्य प्राण देह और कर्म को गुरुकी उपासना से उत्पन्न हुए तीक्ष्ण ज्ञान खड्ग द्वारा छेदन कर पृथ्वीपर भ्रमण करे ॥ १७ ॥ इस विश्वके आदि में और अंत में जो कारण और प्रकाशक पदार्थ था और है मध्य मेंभी केवल वही है वेद स्वधर्म प्रत्यक्ष, उपदेश और तर्क द्वारा जो विवेक उत्पन्न होता है वही ज्ञान है ॥ १८ ॥ जैसे जो सुवर्ण समस्त सुवर्ण निर्मिति पदार्थ में पहिलेथा और वही फिरभी रहेगा वही सुंदर रूप से गठित और अनेकों नामोंसे व्यवहृत होकरभी उसके स्वरूप में अवस्थित रहता है उसही प्रकार मैंभी इस विश्व का कारण भूत हूं और पहिले और पीछे समभाव में अवस्थित हूं ॥ १९ ॥ अहो ! तीनो अवस्थाओं युक्त मन तीनोगुण और कारण, कार्य और कर्त्ता जो केवल निर्गुण ब्रह्म के साथ अ-

॥ नयत्पुरस्तादुतयन्नपश्चान्मध्येच तन्नव्यपदेशमात्रम् । भूतंप्रसिद्धंचपरेणयद्यत्तदेव तत्स्यादितिमेमनीषा ॥ २१ ॥ अविद्यमानोऽप्यवभासतेयोवैकारिकोराजससर्गएषः । ब्रह्मस्वयंज्योतिरतोविभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवंस्फुटंब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेनविशारदेन । छित्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३॥ नात्मावपुःपार्थिवमिन्द्रियाणि देवाह्यसुर्वायुर्जलंहुताशः । मनोऽन्नमात्रंधिषणाच सत्वमहंकृतिःखंक्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥ समाहितैःकःकरणैर्गुणात्मभिर्गुणोभवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः विक्षिप्यमाणैरुतकिन्नुदूषणंघनैरुपेतैर्विगतैरवेःकिम् ॥२५॥ यथानभोवाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्नसज्जते । तथाऽक्षरंसत्वरजस्तमोमलैरहंमतेःसंसृतिहेतुभिःपरम् ॥२६॥ तथापिसङ्गःपरिवर्जनीयोगुणेषुमायारचितेषुतावत् । मद्भक्तियोगेनदृढेनयावद्रजोनिरस्येतमनःकषायः ॥ २७ ॥ यथाऽऽमयोऽसाधुचिकित्सितोनृणांपुनःपुनःसंतुदतिप्ररोहन् । एवंमनोऽपक्वकषायकर्मकुयोगिनंविध्यतिसर्वसङ्गम् ॥२८॥ कुयोगिनांयेविहितान्तरायैर्मनुष्यभूतेस्त्रिदशोपसृष्टैः । तेप्राक्तनाभ्यासबलेनभूयोयुंजन्तियोगंनतुकर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥ करोतिकर्मक्रियतेचजन्तुः केनाप्यसौचोदितआनिपातात् ।

न्वय व्यतिरेक द्वारा सिद्ध होवे वही सत्यहै ॥ २० ॥ जो कार्य और प्रकाश्य पहिले न था फिरभी नरहेगा उसका मध्यभी नहीं है वह केवल नाममात्र है क्यों कि जो २ दूसरे के द्वारा उत्पन्न और प्रकाशित है वह वही होगा मेरा यह निश्चय है ॥ २१ ॥ यह जो विकार समूह इसके पहिले नथे ब्रह्म द्वारा रजोगुण से यह उत्पन्न और प्रकाशित हुआहै ब्रह्म स्वयं सिद्ध और प्रकाशक है अतएव ब्रह्मही इन्द्रिय, तन्मात्र, मन और पंचभूत इत्यादि नाना रूप से प्रकाश पातारहता है ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानसे उत्पन्नहुए उपायोंद्वारा और गुरुकी सहायता से देहकी आत्म बुद्धिको दूरकरना चाहिये इसप्रकार स्पष्टभाव से आत्म संदेह का नाशकर आत्मानन्द में सन्तुष्टहो कामियों के संग को छोड़ देवे ॥ २३ ॥ देहादिक अनात्म पदार्थों का परित्याग इसप्रकार करना चाहिये कि भौतिक शरीर आत्मा नहीं है; इंद्रिय वर्ग इंद्रियों के देवता, प्राण, बुद्धि, चित्त, और अहंकार येभीआत्मा नहीं हैं; कारणयह है कि यहसब अन्नके आधार से रहते हैं इसीप्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्दादि विषय और प्रकृति भी आत्मा नहीं है; क्योंकियह जड़ है ॥ २४ ॥ जिसके पक्ष में मेरा स्वरूप भलीभांति से प्रकाशित होगया है गुणात्मक इंद्रियों के समाहित होनेसे उस का क्या गुण होता है चंचल होनेसे क्या दोष होता है ?—बादलों के आने जाने से सूर्य का क्या होता है ? ॥ २५ ॥ जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के गुणों के साथ अथवा आने जानेवाली ऋतुओं के गुणों के साथ आसक्त नहीं होते । तैसेही अहङ्कारातीत अक्षर आत्मा संसार के कारणभूत सत्व, रज और तमके मलों के साथ नहीं मिलता ॥ २६ ॥ तौभी जबतक मेरी दृढ़ भक्तियोगद्वारा मनके राग द्वेष न दूरहोवें, तबतक माया रचित गुणों का संग छोड़देना चाहिए ॥ २७ ॥ जैसे मनुष्यों का रोग भली प्रकार से जबतक दूर नहीं होता तबतक वह बारम्बार उदय हो २ कर विशेष पीड़ा देता है इसही प्रकार जिस मनके रागादि द्वेष और उसके मूलरूप कर्म भस्म न होगयेहों वह मन बारम्बार पुत्रादिक में आसक्त होकर अधपके ज्ञानीको भ्रष्ट करदेता है ॥ २८ ॥ जो योगी देवताओं की असहनताके कारण उनके और अपने मार्ग से विच्युत होते हैं वह जन्मांतर में अपने पूर्व योगाभ्यास के बलसे योगही को प्राप्त होते हैं,—कर्म विस्तार को नहीं प्राप्त करते ॥ २९ ॥ विद्वान् के अतिरिक्त यहमनुष्य किसी संस्कारद्वारा

नतत्रविद्वान्प्रकृतौस्थितोऽपिनिवृत्ततृष्णःस्वसुखानुभूत्या॥३०॥ तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तंशयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम्। स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदिस्मपश्यत्यसदिन्द्रियार्थंनानानुमानेन विरुद्धमन्यत्। नमन्यतेवस्तुतयामनीषी स्वाप्नंयथोत्थायतिरोदधानम् ॥३२॥ पूर्वंगृहीतंगुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमङ्ग। निवर्ततेतत्पुनरीक्षयैव नगृह्यतेनापिविसृज्यआत्मा ॥ ३३ ॥ यथाहिभानोरुदयोनृचक्षुषां तमोनिहन्यान्नतुसद्विधत्ते। एवं समीक्षानिपुणासतीमे हन्यात्तमिस्रंपुरुषस्यबुद्धेः ॥ ३४ ॥ एषस्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिःसकलानुभूतिः। एकोऽद्वितीयोवचसांविरामे येनेषिताव्वागसवश्चरन्ति॥३५॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तुकेवले। आत्मन्नृतेस्वमात्मानमवलम्बोनयस्यहि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पंचवर्णमबाधितम्। व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयंपण्डितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युंजतःकायउत्थितैः। उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितोविधिः ॥ ३८ ॥ योगधारणयाकांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः। तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः। योगेश्वरानुवृत्त्यावा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥४०॥

प्रेरितहो मृत्यु पर्यंत कर्मों को करता और विकार को पाता है; किंतु विद्वान् व्यक्ति शरीर में स्थितहोकरभी आत्मानन्द के संभोगद्वारा तृष्णारहितहो उसमें आसक्त नहीं होता ॥३०॥ जिस की बुद्धि आत्मा में स्थित है वहज्ञानी पुरुष बैठे, खड़े, चलते, सोते, पेशाब करते, अन्नखाते वा दूसरी कोई भी क्रियाकरतेहुए अपनी देह को कुछभी नहीं जानता ॥ ३१ ॥ ज्ञानी पुरुष यद्यपि बहिर्मुख इंद्रियों के विषय को देखे तौभी अनुमानद्वारा बाधित होनेसे आत्मा के अतिरिक्त और पदार्थों को वास्तविक नहीं मानता; जैसे निद्रित मनुष्य जागकर स्वप्न में देखेहुए विषयको सत्य नहीं मानता ॥ ३२ ॥ अहो ! वृद्धावस्था में गुणों से और कर्मों से विचित्र अज्ञानके कार्य रूप देहेन्द्रियादिक अध्यास से अपने स्वरूप में अविवेक के कारण मिलेहुए मानलिये गये हैं वेही देहेंद्रियादिक मुक्तावस्था में ज्ञान से निवृत्त होजाते हैं, आत्मा किसी रूप से नतो ग्रहण किया जाता है न छोड़ा जाता है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य का उदय मनुष्यों के दर्शनाच्छादक अन्धकारको दूर करता है, किंतु पदार्थ की उत्पत्ति नहीं करता; इसही प्रकार साध्वी, निपुण, आत्मविद्या-मनुष्य की बुद्धि के अन्धकार को नाश करदेती है ॥ ३४ ॥ यही आत्मा ज्योतिःस्वरूप, अज, अप्रमेय, और समस्त अनुभूतियों का स्वरूप है इसही कारण यह महाअनुभूत और एक तथा अद्वितीय वचनागोचरहैं; क्योंकि वाक्य और प्राण इसकेद्वारा परिचालितहोकर कार्यकरतेहैं ३५॥ अभिन्न आत्मा में विकल्पही मनका भ्रम है ; क्योंकि स्वयं आत्माके अतिरिक्त इसका अवलम्बन नहीं है॥३६॥नामरूपद्वारा उपलक्षित, पंचभूतात्मक द्वैतका बाधित नहीं है; । इस विषय में ज्ञानी पण्डितोंका यही निश्चयहै कि द्वैत तो केवल नाममात्रहै,—वेदांत में जो कहाहै वही सत्यअर्थ है। तत्त्व वेत्ताओंको इस प्रकारका निश्चय नहीं होता क्यों कि अर्थ वास्तविक नहीं है ॥३७॥ योगका साधन करते २ जिसका योग न पकाहो, ऐसे योगीका शरीर जो बीचमें उत्पन्न हुए रोगादिक विघ्नोंसे पराभव को प्राप्त होजावे तो उसके विषयमें यह उपाय कहता हूं ॥ ३८ ॥ कितने एक विघ्नोंको योगकी धारणा द्वारा, कितने एक को धारणा समेत आसनों द्वारा, और कितने एकको तपस्या, मंत्र और औषधों द्वारा दूर करे ॥ ३९ ॥ कितनेही अमंगलदायी उपद्रवों को मेरे ध्यान और नाम संकीर्तनादि द्वारा कितनोंहीको योगेश्वरोंकी अनुवृत्तियों द्वारा धीरे २ नाशकरे ॥ ४० ॥

केचिद्देहमिमंधीराः सुकल्पंवयसिस्थिरम् । विधायविविधोपायै रथयुंजन्तिसि द्धये ॥ ४१ ॥ नहितत्कुशलादृत्यं तदायासोह्यपार्थकः । अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फ लस्येववनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतोनित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् । तच्छ्रद्द ध्यान्नमतिमान्योगमुत्सृज्यमत्परः ॥ ४३ ॥ योगचर्यामिमांयोगी विचरन्मद्व्यपा श्रयः । नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहःस्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

इतिश्री मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

उद्धवउवाच ॥ सुदुस्तरामिमांमन्ये योगचर्यामनात्मनः । यथाऽञ्जसापुमान् सिद्ध्येत्तन्मब्रूह्यञ्जसाऽच्युत ॥ १ ॥ प्रायस्तःपुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तोयोगिनोमनः । विषीदन्त्यसमाधानान् मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथातआनन्ददुघंपदाम्बुजं हंसाःश्रयेरन्नरविन्दलोचन । सुखंनुविश्वेश्वरयोगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमीविहता नमानिनः ॥ ३ ॥ किंचित्रमच्युततवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषुयदात्मसा त्त्वम् । योऽरोचयत्सहमृगैःस्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥४॥ तंत्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदंस्वकृतविद्विसृजेतकोनु । कोवाभ जेत्किमपिविस्मृतयेऽनुभूत्यै किंवाभवेन्नतवपादरजोजुषांनः ॥ ५ ॥ नैवोपयन्त्य

कितनेही एक पण्डित नाना प्रकार के उपायोंद्वारा इस शरीरको जरा रोगादि रहित और यौवन में स्थापित कर फिर सिद्धि के निमित्त योग करते रहते हैं ॥ ४१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य इनकी इस बातसे प्रसन्न नहीं होते; क्योंकि वनस्पतिके फलकी समान देहका नाश अवश्य होवेगा ॥४२॥ नित्य योगाचरण करते २ योगी की देह यदि जरा रोगादि रहित होजावे तो फिर मेरे भक्त बुद्धि मान योगीको इस योगसिद्धिके ऊपर विश्वास स्थापित कर योगको न छोड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो योगी मेरी शरण ले इस प्रकार योगानुष्ठान करता है वह किन्हीं विघ्नोंसे पराजित नहीं होता, वह निष्कामहो केवल सुखोंका अनुभव करता रहता हैं ॥ ४४ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कंधेसरलाभाषाटीकायांअष्टाविंशोऽध्याय: ॥ २४ ॥

उद्धवजीने कहा कि–हे अच्युत ! जिसका चित्त बशमें नहीं हुआ, जान पड़ता है कि उसके पक्षमें इस प्रकार का योगाचरण तो अत्यंतही कठिन है ; अतएव पुरुष जिससे अनायासही सिद्ध होसके वही मुझसे उपदेश करिये ॥ १ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! प्रायः मनोनिवेशन में उद्यत हुए योगीजन ध्येय बस्तुमें सदैव मनोयोग न होनेसे, चित्त निग्रहमें कातर हो दुःख भोगते रहते हैं ॥ २ ॥ हे कमल नयन ! हे विश्वेश्वर ! इसही कारण जो पुरुष तत्वके विचार में चतुर हैं, वह आपके चरण कमलोंको कि जो सब सुखके देने वाले हैं पूजा किया करते हैं । जोलोग योग और कर्मसे अभिमानी होकर आपके चरणों की सेवा नहीं करते वे लोग आपकी मायासे पराभव पाते हैं अतएव योग करनेमें गर्वित न होना चाहिये ॥ ३ ॥ हे अच्युत ! हे अशेष बंधो ! जिन के आप बिना दूसरा शरण नहीं है ऐसे सेवकों के आप आधीन होकर रहो हो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । ब्रह्मादि ईश्वरों के किरिट के अग्रभाग आपके चरणोंमें लोटते हैं, तौभी आपने बानरोंके साथ मित्रता की थी ॥ ४ ॥ हे जगतके चेतन देनेवाले ईश्वर ! हे आश्रितोंके सर्वार्थ प्रद ! हे प्रियतम ! आप अपने भक्तों पर जो व्यवहार करते हैं, कहिये उसे जानकर कौन म- नुष्य आपको छोड़ सकता है ? ऐश्वर्य और संसारकी विस्मृति के निमित्त आपके अतिरिक्त किस दूसरे देवताकी पूजा करे आपके चरण रजके सेवक हम लोगोंकोतो बिना किसी धर्मादिक साधन के जो चाहिये प्राप्त होजाता है फिर हम दूसरे साधनोंका अनुष्ठान क्यों करें ॥ ५ ॥

पश्चित्तिकवयस्तवेश ब्रह्मायुषापिकृतमृद्धमुदःस्मरन्तः । योन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभंविधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषास्वगतिंव्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टोजगत्क्रीडनकःस्वशक्तिभिः । गृहीतमूर्तित्रयईश्वरेश्वरो जगादसप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्ततेकथयिष्यामि ममधर्मान्सुमङ्गलान् । यान्श्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युंजयतिदुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणिकर्माणि मदर्थंशनकैःस्मरन् । मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैःसाधुभिःश्रितान् । देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानिच ॥ ॥ १० पृथक्सत्रेणवामह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् । कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेवसर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् । ईक्षेतात्मनिचात्मानं यथाखममलाशयः ॥ १२ ॥ इतिसर्वाणिभूतानि मद्भावेनमहाद्युते । सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानंकेवलमाश्रितः ॥१३॥ ब्राह्मणपुल्कसेस्तेने ब्रह्मण्येऽर्केस्फुलिंगके । अक्रूरेक्रूरके चैवसमदृक्पण्डितोमतः ॥१४॥ नरेष्वभीक्ष्णंमद्भावं पुंसोभावयतोऽचिरात् । स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकाराविय‌न्तिहि ॥ १५ ॥ विसृज्यस्मयमानान्स्वान्दृशंव्रीडांच दैहिकीम् । प्रणमेद्दण्डवद्भूमा वाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषुभूतेषु मद्भावोनोपजायते । तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

हे ईश्वर ! आप बाहरसे गुरु रूप से और भीतर से अंतर्यामी रूपसे प्राणियों की विषय बासना को दूरकर अपने स्वरूप का प्रकाश करते रहतेहो । अतएव जिनकी ब्रह्मा के समान परमायु है वे ब्रह्मवेत्ता महाभागी आपके ऋण से उद्धार नहीं होसकते; आपके कियेहुए उपकारों का स्मरण करके वे आनन्दित होते रहते हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जो निजशक्तियों से सत्व, रज और तमद्वारा त्रिमूर्त्ति को ग्रहण करते हैं, और जगत् जिनका खिलौना है; वही ईश्वरों के ईश्वर भक्त उद्धव के इसप्रकार के बचनसुन मनोहर हास्य करके कहने लगे कि—॥ ७ ॥ श्रीभगवान बोले–हेउद्धव ! मनुष्य श्रद्धा समेत जिसका अनुष्ठान करके दुर्ज्जेय संसार को जीतता है, उसही सुखमय अपने धर्म को तुमसे कहताहूं सो सुनो ॥ ८ ॥ मुझमें मन और बुद्धि के समर्पणकरने पर मेरे धर्म में आत्मा और मनकी आसक्ति होती है । इसप्रकारसे मेरा स्मरणकर मेरे निमित्त निरुद्वेगहो समस्त कर्मों का अनुष्ठान करे ॥ ९ ॥ जहां मेरे साधुभक्त रहतेहों उन पवित्र देशों में रहना; देवता असुर और मनुष्यों में जो मेरे भक्तहुए हैं उनके कियेहुए कर्मों का अवलम्बनकरना चाहिये ॥ १० ॥ आप अकेले अथवा दूसरों को साथले मेरे प्रसन्न करने के अभिप्राय से नाच, गावे । और छत्रवर्त्ती की विभूतियां छत्र चामर आदि मेरे अर्पण कर पर्व के दिन यात्रा और महोत्सव करे ॥ ११ ॥ निर्मलांतःकरणहो आकाश की समान पूर्ण आत्मस्वरूप मुझकोही सब प्राणियों में और अपने में देखे ॥ १२ ॥ हे अतिप्राज्ञ ! इसप्रकार केवल ज्ञानदृष्टि के आश्रय से जो सब प्राणियों को मेरा स्वरूप जानकर उनकी पूजाकरता है उसको मैं पण्डित जानताहूं ॥ ब्राह्मण में व चाण्डाल में, चोर व ब्राह्मणों के भक्तमें, सूर्य में व चिनगारी में, शांत में व क्रूरमें जो मनुष्य समदृष्टि होकर मुझको देखता है वही पण्डित कहाता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियों में स्थित मेरे स्वरूपकी नित्य भावना करता है निश्चयही उसका घमण्ड, असूया, तिरस्कार और अहंकार शीघ्रहीं नाश होजाता है ॥ १५ ॥ हँसतेहुए अपने मित्रों को, देहाभिमान से होतेहुए ऊंच नीचपन के बिचारों को और उससे होतीहुई लज्जाको त्यागकर कुत्ते, चाण्डाल, बैल और गधे पर्यंत सब प्राणियों को पृथ्वी पर गिरकर प्रणाम करे ॥ १६ ॥ जबतक सब प्राणियों में मेरे स्वरूप का ज्ञान नहीं उत्पन्नहोता उतनेही दिन वाक्य, मन और शरीर की वृत्तियों द्वारा

सर्वंब्रह्मात्मकंतस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया । परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतोमुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयंहिसर्वकल्पानां सध्रीचीनोमतोमम । मद्भावःसर्वभूतेषु मनोवाक्काय वृत्तिभिः ॥ १९ ॥ नह्यङ्गोपक्रमेध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि । मयाव्यवसितःसम्य ङ् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥ योयोमयिपरेधर्मः कल्प्यते निष्फलायचेत् । त दायासो निरर्थस्याद्भयादेरिवसत्तमः ॥ २१ ॥ एषाबुद्धिमतांबुद्धिर्मनीषाचम नीषिणाम् । यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोतिमाऽमृतम् ॥ २२ ॥ एषतेऽभिहितः कृत् स्नो ब्रह्मवादस्यसंग्रहः । समासव्यासविधिना देवानामपिदुर्गमः ॥ २३ ॥ अ भीक्ष्णशस्ते गदितंज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञायमुच्येत पुरुषोनष्टसंशयः ॥ ॥ २४ ॥ सुविविक्तंतवप्रश्नं मयैतदपिधारयेत् । सनातनंब्रह्मगुह्यं परंब्रह्माधिगच्छ ति ॥ २५ ॥ यएतन्ममभक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् । तस्याहंब्रह्मदायस्य ददाम्या त्मानमात्मना ॥ २६ ॥ यएतत्समधीयीत पवित्रंपरमंशुचि । सपूयेताहरहर्मां ज्ञान- दीपेनदर्शयन् ॥ २७ ॥ यएतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रःशृणुयान्नरः । मयिभक्तिपरांकु- र्वन्कर्मभिर्न सबध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धवत्वयाब्रह्म सखेसमवधारितम् । अपितेविग तो मोहःशोकश्चासो मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वयादाम्भिकाय नास्तिकायशठायच अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीतायदीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रि- यायच । साधवेशुचये ब्रूयाद्भक्ति स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञा-

इसही प्रकार से उपासना करनी चाहिये ॥ १७ ॥ जब सर्वत्र ईश्वर स्वरूप देखेगा, तब उसके दर्शन से उत्पन्नहुई विद्या के प्रभाव से उसके पक्षमें सब विद्यामय होजावेगा। अतएव सर्वत्रही ब्रह्मको देखकर संशय से मुक्ति प्राप्तकरे और क्रियाओं मे उपरतहोतारहे। समस्त प्राणियों में मेरे अस्तित्वका विचारकर मनवाक्य और देह की वृत्तियोंद्वारा जो आचरण करै, मैं उनकोही सबसे श्रेष्ठमानताहूं ॥ १८—१९ ॥ हेउद्धव ! मेरे निष्काम धर्म में भूल चूक होजाने पर कुछभी हानि नहीं होती क्योंकि निर्गुणपन के निमित्त यही धर्म श्रेष्ठ है ऐसा मैंने निश्चय कियाहै ॥२०॥ भय और शोकादि से होतेहुए क्लेशों की समान जो दूसरा भी लौकिक श्रम व्यर्थ होता है यदि वह निष्काम होकर मुझमें अर्पण कियाजावे तो वहभी धर्म होजाता है ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यों की बुद्धिमानी और पण्डितों की चतुराई यही है कि इस असत्य नाशवान मनुष्य देहद्वारा इस जन्ममेंही सत्य और अविनाशी मुझको प्राप्त करे ॥ २२ ॥ हेउद्धव ! मैंने तुमसे संक्षेप और विस्तार पूर्वक देवताओं को भी दुर्गम इस ब्रह्मवाद को भली प्रकार वर्णन किया ॥ २३ ॥ स्पष्ट स्पष्ट युक्तियों सहित यहज्ञान मैंने तुमसे बारम्बार कहा; इसे जानकर मनुष्य संदेहों से निवृत्तहो- कर मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ तुम्हारे इस सनातन, वेदमें भी गुप्त परम प्रश्न का उत्तर हुआ, जो इसप्रश्न का अनुसन्धान करेंगे, वह नित्य, सत्य, गुप्त परमब्रह्म को जानजावें गे ॥ २५ ॥ जो इसको भली प्रकार मेरे भक्तों से कहेगा, मैं उस ज्ञानोपदेशक को अपना आत्मदान करूंगा ॥ २६ ॥ जो प्रातःकाल को परम पवित्र होकर इस को ऊंचे स्वर से पढेगा, वह ज्ञान दीपक के द्वारा मुझको देखकर शुद्ध होजावेगा ॥ २७ ॥ जो मनुष्य स्थिर चित्त से श्रद्धा सहित इसको सुनेगा वह मुझमें भक्तिमान् होने के कारण कर्म के बंधनों से न बंधेगा ॥ २८ ॥ हे सखे उद्धव ? तुम इस ब्रह्मज्ञान में भली प्रकार अवगतहुए इससे तुम्हारे समस्त मोह और मनमें उत्पन्न हुए शोक दूर होगए ॥ २९ ॥ तुम इसे पाखण्डी नास्तिक और मूर्खको अथवा जिसको सुननेकी इच्छा नहो उसको अभक्त तथा दुर्विनीत को कभी नदेना ३०॥ जिसमें यह कोई दोष नहो उनको और ब्राह्मणों के प्रिय करनेवाले तथा पवित्र साधुओं को देना और श्रद्धावान शूद और स्त्रियों कोभी देना ॥ ३१ ॥ इसके जानलेने पर जिज्ञासु मनुष्यको फिर

सोऽर्ज्ञातव्यमवशिष्यते। पीत्वापीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्म णियोगेच वार्तायांदण्डधारणे। यावानर्थोनृणांतात तावांस्तेऽहंचतुर्विधः ॥३३॥ मर्त्योयदात्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे। तदाऽमृतत्वंप्रतिपद्यमानो मयात्मभूयायच कल्पतेवै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य। बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो नकिंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥३५॥ विष्टभ्यचित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येणराजन्बहु मन्यमानः। कृतांजलिःप्राह यदुप्रवीरंशीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥ उद्धवउवाच। विद्रावितो मोहमहान्धकारोय आश्रितो मे तव सन्निधानात्। विभावसोः किंनुसमीपगस्य शीतंतमोभीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७॥ प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकम्पिना भृत्याय विज्ञानमयःप्रदीपः। हित्वाकृतज्ञस्तवपादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृष्णश्चमेसुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु। प्रसारितःसृष्टिविवृद्धयेत्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तुते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधिमाम्। यथात्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच। गच्छोद्धवमयादिष्टो बदर्याख्यंममाश्रमम्। तत्रमत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैःशुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः। वसानोवल्कलान्यंग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥४२॥ तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः। शा-

कुछ पूछनेकी आवश्यकता नहीं रहती अमृत के पान करनेपर फिर क्या और कुछ पीनेकी इच्छा रहती है ॥३२॥ ज्ञान, कर्म, योग वार्त्ता और दण्डधारण के विषय में मनुष्योंको जो चार प्रकार के अर्थ प्राप्त होते हैं तुम्हारे सम्बन्ध में वह सब मैंही हूं ॥ ३३ ॥ मनुष्य जब समस्त कर्मों को छोड़ मुझमें आत्मा को समर्पण कर मेरे कर्म करने का इच्छुक होता है तब निश्चयही अमृतताको प्राप्तकर मुझमें मिलने योग्य होजाता है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकारसे योग मार्ग का उपदेश रूप भगवान के वाक्यों को सुनकर उद्धवजी के नेत्रों से आंसू बहने लगे कण्ठ रुकगया उन्होंनें भगवानकी स्तुति करने की इच्छा से हाथ जोड़े परंतु वह कुछ कहनसके ॥ ३५ ॥ तदनंतर प्रेम से क्षुभित हुए मनको धैर्य सहित रोक अपने आत्माको कृतार्थ मान मस्तक द्वारा भगवान के चरणकमलों का स्पर्शकर हाथजोड़ उद्धवजी उनसे कहनेलगे ॥ ३६ ॥ हे अज! हे आद्य! मैंने जो मोहमय अंधकार का आश्रय कियाथा वह आप के समागमसे दूर हो गया सूर्य के निकटवर्त्ती मनुष्य के पक्षमें क्या शीत और अंधकार के भयका प्रभाव प्रकाश कर सकता है ॥३७॥ तौभी आपने कृपा करके मुझ सेवक को विज्ञान प्रदीप प्रदान किया है जो आप के कियेहुए उपकारको जानते हैं उनमें से ऐसा कौन मनुष्य है जो आपके चरणकमलों को छोड़ दूसरे की शरण लेवे ॥ ३८ ॥ आपनें सृष्टिवृद्धि के निमित्त अपनी माया द्वारा दाशार्ह, वृष्णि, अंधक और सात्वत आदि कुलों के यादवों में स्नेह रूप का जो दृढ़पाश मेरे गले में डाल रक्खा था उसको आपनेंही आत्मज्ञान रूपी तीव्र शस्त्रसे काटडाला॥३९॥हे महायोगिन्! आपको नमस्कार करता हूं शरणागत उद्धवको शिक्षा दीजिये जिससे आप के चरण कमलों में अचलारति उत्पन्न होवे ॥ ४० ॥ श्रीभगवान नें कहा हे उद्धव! तुम मेरी आज्ञा से बदरिकाश्रम में जाओ उस स्थान पर मेरे चरण से निकली हुई अलकनंदा नाम (गंगा) तीर्थ में स्नान व आचमन करके पवित्र होओ ॥ ४१ ॥ अलकनंदा के देखनेमात्र से तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजावेंगे वहां वल्कल वस्त्र पहिर बनके फल फूल खाय निर्वाह करना किसी प्रकार के सांसारिक सुखोंकी इच्छा नकरना४२॥

न्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् । मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच । स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः । शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्युपक्रमे ॥ ४५ ॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः । कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् । यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् । कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् । अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान् पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् । द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः । प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो

शीत उष्ण आदि सब विघ्नों का सहनकर स्वभाव में सरलता आदि रखना. जितेन्द्रिय होकर शांत रहना तथा एकाग्रचित वाली बुद्धि से ज्ञानविज्ञान को धारण करना ॥ ४३ ॥ मैंने जो यह शिक्षा दी है उसका एकांत में ध्यान करना वाक्य और मन मुझमेंही लगाये रखना इस प्रकार मेरे धर्म में तत्पर होना जो ऐसा करोगे तो त्रिगुणात्मक गतियों को उल्लंघ कर परमगति स्वरूप मुझको प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी नें कहा कि जिनका स्मरण करतेही संसार के पाश कटजाते हैं उन श्रीकृष्णजी से इस प्रकार का उपदेश पाय उद्धवजी नें उनकी प्रदक्षिणा की और उनके चरणों में मस्तक को धरकर सुख दुःख से मुक्तहोकरभी जाते समय आर्द्र चित्तहो आंसूबहाने लगे ॥ ४५ ॥ जिनपरका स्नेह नहीं छोड़ाजासकता उनका बियोग होनेसे कातरहो उनकोछोड़ने में असाधारण विह्वलतासे कष्ट भोगने लगे । अनन्तर उननें स्वामी की दीहुई खड़ाउओं को मस्तक पर धारणकर बारम्बार नमस्कार करतेहुए अति कष्टपूर्वक वहां से प्रस्थान किया ॥४६॥ महाभागवत उद्धवजी उनको हृदय में स्थापितकर जगत के प्रधान गुरु ने जिसप्रकार आज्ञादी थी, उसकेही अनुसार बदरिकाश्रम को गये और तपस्या का अवलम्बनकर भगवानके स्वरूप को प्राप्तहुए ॥ ४७ ॥ योगेश्वर गण जिनके चरणों की सेवाकरते हैं ऐसे श्रीकृष्णजी ने आनंद के समुद्र रूप भक्तिमार्गके साथ ऐक्यता करके उद्धवजीको यह ज्ञानामृत पानकराया । जो श्रद्धापूर्वक इसका कुछभी सेवन करेंगे वह मुक्त होजावेंगे ; और उनके संसर्ग से जगतभी मुक्तहोजावेगा ॥ ४८ ॥ जिन्हें संसार और जरा रोगादि का भय नाश करने के निमित्त, भौंरा जैसे फूलों से मधु निकालता है, उसहीप्रकार सागर से ज्ञान विज्ञानमय श्रेष्ठ बेद सारामृत को निकाल भक्तों को उसका पान करायाथा, उन्हीं निगम कर्त्ता कृष्ण नामक आद्य पुरुषोत्तम को मैं नमस्कार करताहूं ॥ ४९ ॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादशस्कन्धेसरलाभाषाटीकायांएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९ ॥

राजा ने कहा,-कि हे भगवन्! महाभागवत उद्धवके बनमेंचले जानेपर भूतभावन भगवानने द्वारकामें क्या किया॥१॥अपनेवंश को ब्रह्मशापसे ग्रस्त होनेपर यादव श्रेष्ठने सबके नेत्रोंको प्यारे अपने शरीरको किसप्रकार त्यागनकिया॥२॥जिनपर दृष्टि पड़तेही स्त्रियें नेत्रोंको फिरवहांसे नहीं

यत्स्वतामात्मलग्नम् । यच्छ्रीर्वाचां जनयतिरतिं किंनु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच । दिविभुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् । दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः । मुहूर्त्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजन्त्वितः । वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः । देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् । गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् । देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः । तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन्भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः । चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु । दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् । कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥१३॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः । धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि । मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन्शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसा-

खींच सकती थीं जिनका वृत्तांत सुनते हुए साधुओं का चित्त उसमें लगजाने से फिर विचलित नहीं होता जिन की शोभा का बर्णन होते रहनेसे कविके बाक्य आनंद को उत्पन्न करते हैं और उस केही द्वारा कवियोंकी कीर्तिका विस्तार होताहै तथा जिनको अर्जुनके रथपर बैठा देखकर संग्राममें मरेहुएयोद्धाओंने उनके स्वरूपकोप्राप्तकियाथा. श्रीकृष्णजीने वह मुर्ति किसप्रकारसे परित्यागकी३॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि–स्वर्ग, प्रथ्वी और आकाश मंडल में होतेहुए महाउत्पातों को देखकर श्रीकृष्णजीने सुधर्मा सभा में बैठे हुए यादवोंसे कहा कि ॥४॥ हेयादवों द्वारकामें यमके केतुस्वरूप ये सब महाभयानक उत्पात होने लगे अतएव इसस्थानमें हमें क्षणभरभी न रहना चाहिये॥५॥स्त्री बालक और वृद्धगण इसस्थान से शंखोद्धार में जावे और हम सबप्रभासक्षेत्र में कि जहां पश्चिम बाहिनी सरस्वती हैं चलेंगे ॥ ६ ॥ वहां स्नान करके उपवास को धारणकर, पवित्रहो सावधानी के साथ स्नान, लेपन और अर्घ्यादिक से देवताओं का पूजन करेंगे ॥ ७ ॥ फिर ब्राह्मणों से स्वस्तिबाचनकरवाय उन्हें गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, बस्त्र, अश्व, हाथी, रथ और घर का दानदे उन महाभाग ब्राह्मणों का पूजनकरेंगे ॥ ८ ॥ यह विधि अशुभनाशक और परम कल्याणदायी है; देवता, ब्राह्मणों और गौओं की पूजा प्राणियों का परम उदय करती है ॥ ९ ॥ सब यदुबंशी श्रीकृष्णजीकी बात को स्वीकार कर नावों में बैठ समुद्र से पारउतर फिर रथों पर बैठकर प्रभास क्षेत्र में आये ॥ १० ॥ उस स्थान में यादवों ने परम भक्ति के साथ सब मङ्गल कार्यों सहित श्रीकृष्णजी की आज्ञा का पालन किया ॥ ११ ॥ अनन्तर दैव के प्रभाव से भ्रष्टबुद्धिहो वे सब बुद्धिनाशक मधुर रसवाली मदिरा का पान करने लगे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णजीकी मायासे मोहितहो बहुत मदिरा के पीने से अत्यन्त मतवालेहो बुद्धि भ्रष्ट बीरों में घोर बिवाद उत्पन्न होगया॥१३॥ तदनन्तर सब अत्यन्त क्रोध से बधपर उद्यतहो धनुष, खड्ग, भाला, गदा, तोमर औरऋषियों द्वारा युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ पताका फहरातेहुए रथ हाथी इत्यादिक से तथा गधे, ऊंट, बैल मनुष्य व खचरों से परस्पर जुटकर ये बुद्धिभ्रष्ट मतवाले यादव, जैसे हाथी बनमें दांतों से परस्पर प्रहार करें ऐसे बाणों से प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥ युद्ध में प्रवृत्त होकर प्रद्युम्न और साम्ब,

त्यकी । सुभद्रसंग्रामजितौसुदारुणौ गदौसुमित्रासुरथौसमीयतु ॥ १६ ॥ अन्येचयेवैनिशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः । अन्योऽन्यमासाद्य मदान्धकारिता जघ्नुर्मुकुन्देनविमोहिताभृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोज सात्वता मध्वर्बुदामाथुरशूरसेनाः । विसर्जनाःकुकुराःकुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्यसौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्राअयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्य मातुलैः । मित्राणिमित्रैःसुहृदःसुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहञ्ज्ञातयएवमूढाः ॥ १९ ॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषुधन्वसु । शस्त्रेषुक्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥ २० ॥ तावज्रकल्पाह्यभवन्परिघामुष्टिनाभृताः । जघ्नुर्द्विषस्तैःकृष्णेन वार्यमाणास्तुतंच ते ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकंमन्यमाना बलभद्रंचमोहिताः । हन्तुंकृतधियोराजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथतावपिसंक्रुद्धा वुद्यम्यकुरुनन्दन । एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौजघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् । स्पर्धा क्रोधःक्षयंनिन्ये वैणवोऽग्निर्यथावनम् ॥२४॥ एवंनष्टेषुसर्वेषु कुलेषुस्वेषुकेशवः । अवतारितोभुवोभार इतिमेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामःसमुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् । तत्याजलोकंमानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः । निषसाद्धरोपस्थे तूष्णीमासाद्यपिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजंरूपं भ्राजिष्णुप्रभयास्वया । दिशोवितिमिराःकुर्वन् विधूमइवपावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्साङ्कंघनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् । कौशेयाम्बरयुग्मेन परि

अक्रूर और भोज; अनिरुद्ध और सात्यकि; सुभद्र और संग्राम जित;दारुण और गद तथा सुमित्र और सुरथ परस्पर द्वन्द्वयुद्धमें प्रवृत्तहुए ॥ १६ ॥ इसके अतिरिक्त निशठ; उल्मुक, सहस्रजित् और भानुआदि सबही यादव भगवान से मोहित और मदिरा द्वारा अंधेहो एक दूसरेको मारने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर और कुंतिवंशीय सबही परस्पर की सुहृदता को त्याग एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ १८ ॥ मोहितहोकर पुत्र पिताके साथ; भाई भाई के साथ; भांजे मामुओं के साथ; चचा भतीजों के साथ; मित्र मित्रों के साथ; और सुहृद सुहृदों के साथ परस्पर संग्राम करने लगे जातिवाले जातिवालों से लड़ने लगे ॥ १९ ॥ जब सब बाणों का नाश होगया, धनुष टूटगए और दूसरे भी अस्त्र शस्त्र न रहे तब वह समुद्र के तटपरजाय वहां के पटेर को मुट्ठियों से उखाड़ने लगे ॥ २० ॥ मुट्ठियों से पकड़ाहुआ वह पटेर बज्रकी समान परिघरूप होगया । श्रीकृष्णजीके निवारण करने पर भी उसकेद्वारा शत्रुओं को और उनको भी मारने लगे ॥ २१ ॥ हेराजन् ! वे मोहित हुए यादव श्रीकृष्ण व बलरामजी को भी शत्रुमानकर उनके मारने के निमित्त दौड़े ॥ २२ ॥ हे कुरुनन्दन ! वे दोनों जनभी अत्यन्त क्रोधितहो मुट्ठियों में लियेहुए लोह दण्डकी समान पेरे से युद्ध में फिर २ कर यादवों का बध करने लगे ॥ २३ ॥ जैसे बांससे उत्पन्न हुई अग्नि बनको जलाती है उसहीप्रकार ब्राह्मणों के शापसे मोहित और भगवान की माया से घिरेहुए इनयादवों का स्पर्द्धाजनित क्रोध से नाश होगया ॥ २४ ॥ इसप्रकार से सब बंश के नाश होजानेपर भगवान ने विचारा कि 'हां अब पृथ्वी का भार दूरहुआ, ॥ २५ ॥ फिर बलरामजी ने समुद्र के किनारे परम पुरुष के चिंतबन रूप योग का अवलम्बनकर आत्मा को आत्मा में मिलाय मनुष्य लोक को परित्याग किया ॥ २६ ॥ राम के निर्वाण को देख श्रीकृष्णजी शोक से चुपचापहो पीपल के वृक्ष के नीचे उपस्थितहुए और चतुर्भुज रूप धारणकर धुएं रहित अग्नि की समान अपनी प्रकाशितप्रभाद्वारा दिशाओं को प्रकाशितकर पृथ्वी पर बैठगये ॥ २७—२८ ॥ उनके

धीतंसुमङ्गलम् ॥ २९ ॥ सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् । पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्र किरीटकटकांगदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेनविराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः । कृत्वोरौदक्षिणेपाद मासीनंपङ्कजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुसलावशेषायःखण्ड कृतेषुर्लुब्धकोजरा । मृगास्याकारंतच्चरणं विव्याधमृगशंकया ॥३३॥ चतुर्भुजंतंपुरुषं दृष्ट्वासकृतकिल्बिषः । भीतःपपातशिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥३४॥ अजानताकृतमिदं पापेनमधुसूदन । क्षन्तुमर्हसिपापस्य उत्तमश्लोकमेऽनघ॥३५॥ यस्यानुस्मरणंनृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् । वदन्तितस्यतेविष्णो मयाऽसाधुकृतंप्रभो ॥ ३६ ॥ मामाशुजहिवैकुण्ठ पाप्मानंमृगलुब्धकम् । यथापुनरहंत्वेवं नकुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥ यस्याऽऽत्मयोगरचितंनविदुर्विरिंचो रुद्रादयोऽस्यतनयाः पतयोगिरांये । त्वन्माययापिहितदृष्टयएतदञ्जः किंतस्यतेवयमसद्गतयोगृणीमः ॥ ३८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माभैर्जरेत्वमुत्तिष्ठकामएषकृतोहिमे । याहित्वंमदनुज्ञातः स्वर्गंसुकृतिनांपदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टोभगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा । त्रिःपरिक्रम्यतंनत्वा विमानेनदिवंययौ ॥ ४० ॥ दारुकःकृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्यताम् । वायुंतुलसिकामोद माघ्रायाभिमुखंययौ ॥ ४१ ॥ तंतत्रतिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूलेकृतकेतनंपतिम् । स्नेहप्लुतात्मानिपपातपादयो रथादवप्लुत्य

श्रीवत्स का चिह्न शोभा पारहाथा, मेघसा श्यामवर्ण, तप्तसुवर्ण कीसी कांति, और पीले मनोहरणकारी वस्त्र धारण कियेहुए थे ॥ २९ ॥ मन्दहास्यवाला मुखारबिंद श्याम केशों से शोभित होरहाथा । कमल से सुन्दर नेत्र प्रकाशित होरहेथे कानों में मकराकृतकुण्डल झूम रहेथे ॥ ३० ॥ कटिमेखला,यज्ञोपवीत,किरीट, कड़ा,भुजबन्ध,हार, नूपुर,मुंदरियां और कौस्तुभमणि प्रकाशित होरही थीं॥३१॥गले में बनमाला पहिने हुएथे,अपने मूर्तिमान अस्त्र निकट रक्खेथे और स्वयं अपनी दाहिनी साथलपर कमल सा अरुण चरण रखकर बिराजमान होरहेथे ॥ ३२ ॥ जरानामक एक व्याधेने कि जिसने मूषल से शेषरहे हुएलोह खण्ड से बाण बनायाथा, उस समय वहां आय उनके चरणको मृगके मुखकी समान देख मृगके भ्रमसे उसको बिद्ध किया ॥ ३३ ॥ किंतु थोड़ी ही देरमें उस पुरुषको चतुर्भुज देख अत्यंत भय सहित श्रीकृष्णजी के दोनो चरणों में मस्तक केवल गिरपड़ा और कहने लगा ॥ ३४ ॥ हे मधूसूदन ! मुझ महापापी ने बिनाजाने यह कर्म किया है । हे उत्तमश्लोक ! हे निष्पाप ! मुझको क्षमाकरो ॥ ३५ ॥ जिसके स्मरण से मनुष्योंका अज्ञानांधकार नाशहोजाता है,—हे प्रभो ! मैंने साक्षात् उन्हीं बिष्णु स्वरूप आपका अमंगल किया है ॥ ३६॥अतएव हे वैकुंठनाथ!इस पापाचारी मुझ बहेलियेका शीघ्रही नाशकरो जिससे फिरमैं इस प्रकारके साधुओं की गतिका उल्लंघन न करूं ॥ ३७ ॥ जिनकी स्वाधीनमायाके कौशलको ब्रह्मा और रुद्रादि तथा और भी दूसरे वेदके जाननेवाले नहीं जानते, उन आपका मैं क्या वर्णन करूं? हम लोगोंकी दृष्टि आपकी मायासे घिरीहुई है, हम यथार्थ में नीचजाति हैं ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान ने कहा हे जरा ! तू डरमत ; उठ खड़ाहो । यह मेरीही मायासे हुआ है अतएव तुममेरी आज्ञा से सुकृतिओं की गतिस्वर्ग में जाओ ॥ ३९ ॥ इच्छा शरीर भगवान श्रीकृष्णजी द्वारा इसप्रकार आज्ञापाय व्याधने उनकी तीनबार परिक्रमाकी और उनको नमस्कार कर वह विमान पर चढ़ स्वर्ग कोगया ॥ ४० ॥ हे महाराज ! दारुक श्रीकृष्णजी की खोज करते २ वहां आया और तुलसी की गंधसे सुगंधित हुई वायुको सूंघकर श्रीकृष्णजी के सामने की ओर चला ॥ ४१ ॥ वह स्वामी उस स्थान में प्रकाशित होते हुए अस्त्रों द्वारा वेष्टित पीपलकी जड़के नीचे बैठे हैं—

सवाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥ अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजंप्रभो दृष्टिःप्रनष्टातमसिप्रविष्टा। दिशोनजानेनलभेचशान्तिं यथानिशायामुडुपेप्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इतिब्रुवतिसूतेवै रथो गरुडलाञ्छनः । खमुत्पपातराजेन्द्र साश्वध्वजउदीक्षतः॥ ४४ ॥ तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानिच । तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाहजनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छद्वारवतींसूत ज्ञातीनांनिधनंमिथः । संकर्षणस्यनिर्याणं बन्धुभ्योब्रूहिमद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायांचनस्थेयं भवद्भिश्चस्वबन्धुभिः । मयात्यक्तांयदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वंस्वंपरिग्रहंसर्वे आदायपितरौचनः । अर्जुनेनाविताःसर्व इन्द्रप्रस्थंगमिष्यथ ॥४८॥ त्वंतुमद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठउपेक्षकः । मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमंव्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तंपरिक्रम्य नमस्कृत्यपुनःपुनः । तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाःप्रययौपुरीम् ॥ ५० ॥

इतिश्रीमद्भा० महा० एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीशुकउवाच ॥ अथतत्रागमद्ब्रह्मा भवान्याचसमंभवः । महेन्द्रप्रमुखादेवा मुनयःसप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरःसिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । चारणायक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसोद्विजाः ॥२॥ द्रष्टुकामाभगवतो निर्याणंपरमोत्सुकाः । गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेःकर्माणिजन्मच ॥ ३ ॥ ववृषुःपुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः । कुर्वन्तःसंकुलंराजन्भक्त्यापरमायुताः ॥ ४ ॥ भगवान्पितामहंवीक्ष्य विभूतीरात्मनोविभुः । संयोज्यात्मनिचात्मानं पद्मनेत्रेन्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामांस्वतनुं

यह देख दारुक स्नेहार्द्र चित्तहो रथसे कूद आंखों से आंसू गिराता हुआ उनके चरणोंमें गिरपड़ा और कहनेलगा ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! विना आपके चरण कमल देखे मेरी दृष्टि अंधकार से ढकी हुई है । अतएव जैसे चन्द्रमा के अस्त होनेपर रात्रिमें दिशाएं स्थिर नहीं की जासकतीं उसही प्रकार मैं भी कुछ निर्णय नहीं करसकता और शांति भी नहीं पाता ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र ! सारथी इस प्रकार से कह रहाथा कि इतने में गरुड़ चिह्नित रथ देखते २ घोड़ों और ध्वजा सहित आकाशको उड़गया और विष्णुजी के सबदिव्य अस्त्रों ने भी उस रथके पीछे २ गमन किया । इससे सूतका चित्त अत्यंत आश्चर्यान्वितहुआ तब भगवान ने उससे कहा ॥ ४४–४५ ॥ हे सूत ! तुम द्वारकाको जाओ और जातिवालों का परस्पर माराजाना, बलदेवजी का अंतर्ध्यान होना और मेरी अवस्था बंधुओं से कहो ॥ ४६ ॥ तुम बंधुओं समेत द्वारका में न रहना, मुझसे छोड़ी हुईपुरी सागर में डूबजायगी ॥ ४७ ॥ सब अपने २ परिग्रह और मेरेपिता माताके साथ अर्जुन से रक्षितहो इन्द्रप्रस्थको जावें ॥ ४८ ॥ तुम मेरे धर्मका अवलंबनकर ज्ञाननिष्ठ और उपेक्षाकारी हो जगतको माया रचितजान शमताका वलंबनकरो ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान की इस कथाको सुनकर दारुक ने उनकी प्रदक्षिणा और नमस्कार किया और उनके दोनो चरण मस्तक में रख अनमने हो द्वारका नगरी की यात्रा की ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकाद० सरला भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हेराजन् ! अनन्तर ब्रह्माजी, पार्वती जी को संग लियेहुए महादेव जी, इंद्रादि देवता गण, मुनि, प्रजापति, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महोरग, चारण, यक्ष किन्नर, अप्सरायें और ब्राह्मणगण भगवान का निर्याण देखने की इच्छा से अत्यन्त उत्सुक चित्तहो भगवान के जन्म और कर्मों का गान और वर्णन करते २ वहां आये और विमानोंद्वारा आकाश को ढककर भक्ति सहित उन पर फूलों की वर्षा करने लगे ॥ १—४ ॥ प्रभु भगवान ने ब्रह्माजी को और अपने विभूति रूप सब देवताओं को देख आत्मा में आत्मा का योजनकर

धारणाध्यामगङ्गलम्। योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वाधामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिविदुन्दुभयोनेदुः पेतुःसुमनसश्चखात्। सत्यंधर्मोधृतिर्भूमेः कीर्तिःश्रीश्चानुतंययुः ॥७॥ देवादयोब्रह्ममुख्या नविशन्तंस्वधामनि। अविज्ञातगतिंकृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥ सौदामन्यायथाकाशे यान्त्याहित्वाऽभ्रमण्डलम्। गतिर्नलक्ष्यतेमर्त्यैस्तथा कृष्णस्यदैवतैः ॥ ९ ॥ ब्रह्मरुद्रादयस्तेतु दृष्ट्वायोगगतिंहरेः। विस्मितास्तांप्रशंसन्तः स्वंस्वंलोकंययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्यतनुभृज्जननाप्ययेहामायाविडम्बनमवेहियथानटस्य। सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्यविहृत्यचान्ते संहृत्य चात्ममहिनोपरतःसआस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येनयोगुरुसुतंयमलोकनीतं त्वांचानयच्छरणदःपरमास्त्रदग्धम्।जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशःकिंस्वावनेस्वरनयन्मृगयुंसदेहम् ॥१२॥तथाऽप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक्। नैच्छत्प्रणेतुंवपुरत्रशेषितंमर्त्येनकिंस्वस्थगतिंप्रदर्शयन् ॥ १३ ॥ यएतांप्रातरुत्थाय कृष्णस्यपदवींपराम्। प्रयतःकीर्त्तयेद्भक्त्यातामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः। पतित्वाचरणावस्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥१५॥ कथयामासनिधनंवृष्णीनांकृत्स्नशोनृप।तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदयाजनाःशोकविमूर्छिताः ॥१६॥ तत्रस्मत्वरिताजग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः। व्यसवःशेरतेयत्र ज्ञातयोघ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥ देवकीरोहिणीचैव वसुदेवस्तथासुतौ। कृष्णरामावपश्यन्तः

दोनों कमल नेत्रों को बंद करलिया और आग्नेयी योगधारणाद्वारा अपनी देहको दग्ध न करके वे अपने धाम को पधारे ॥ ५—६ ॥ स्वर्ग में दुन्दुभी बजने लगीं और आकाश से फूल बरसने लगे। भूमण्डल से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्त्ति और लक्ष्मीजी ने उनके पीछे २ गमन किया ॥ ७॥ अविज्ञेय गति श्रीभगवान के अपने धाम में जाने के समय ब्रह्मा आदि देवताओं में से किसी २ ने देखा और किसी २ ने न देखपाया, इससे उन सब को बड़ा विस्मयहुआ ॥ ८ ॥ जैसेमनुष्य आकाश में मेघमण्डल को छोड़कर जातीहुई तीव्र गतिवाली बिजली की गति को नहीं जान सकते वैसेही देवता श्रीकृष्णजी की गति को न जानसके ॥ ९ ॥ तब ब्रह्मा और रुद्रादिकों ने भगवान की योगगति का ध्यान किया और विस्मित भावसे उनकी प्रशंसा करतेहुए अपने-अपने धामको गये ॥ १० ॥ हेराजन्! नटकीसमान परमेश्वर के देह धारण को और यादवादि प्राणियों के मध्य में जन्म, मृत्यु और कार्य आदि करने को माया की बिडम्बनाही जानना।वह इस जगत् को उत्पन्नकर फिर इसमें प्रवेश करते हैं और अन्त में इसका संहारकर अपनी महिमा के कारण उपरतही रहते हैं ॥ ११ ॥ जो यमलोक में जाय गुरुपुत्र को मनुष्य शरीर सेही लेआयेथे जिन शरणागत रक्षक ने तुमको ब्रह्मास्त्र से जलतेहुए बचायाथा और जिन्होंने काल के काल महादेवजीकोभी जीताथा, जो व्याधेको स्वर्ग लेगयेथे,—वह ईश्वर क्या अपनी रक्षा नहीं करसकतेथे ॥ १२ ॥ तौभी अशेष शक्तिधारी त्रिभुवन की सृष्टि, स्थिति, प्रलयके एक मात्र कारण भगवान् को इस मरने वाले शरीर से क्या प्रयोजनथा ?—आत्मनिष्ठ साधुओंको श्रेष्ठगति दिखाय उन्होंने इस स्थान पर शरीरके रखनेकी इच्छा न की ॥१३॥ जोमनुष्य प्रातःकाल उठतेही भक्तिसहित श्रीकृष्णजीके इनचरित्रोंको सुनेगा वह उन्हींको प्राप्तहोगा।जिससे श्रेष्ठ और कुछभी नहीं है॥१४॥ हेराजन्! इधर दारुक श्रीकृष्णजी के बिरह से दुःखित होता हुआ द्वारका में आय बसुदेव और उग्रसेन के चरणोंमें गिर उन्हें नेत्रों के जल द्वारा भिगोनेलगा ॥१५॥ तदनंतर उसने सब वृष्णि बंशियों के नाशकी वार्त्ताकही। उसके सुनतेही सब उद्विग्न हृदयहो मूर्छित होगये ॥ १६ ॥ जिस स्थान पर जातिवाले प्राण हीन होकर सोये पड़ेथे, वे सब कृष्णजी के बिरहसे दुःखित होते हुए छाती पीटते २ उस स्थान पर आये ॥ १७ ॥ देवकी, रोहिणी और वसुदेव पुत्र राम और कृष्ण

शाकार्त्तौविजहुःस्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्चविजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः । उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुःस्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्चतद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् । वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेःस्नुषाः । कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जुनःप्रेयसःसख्युः कृष्णस्यविरहातुरः । आत्मानंसान्त्वयामास कृष्णगीतैःसदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बन्धूनांनष्टगोत्राणामर्जुनःसाम्परायिकम् । हतानांकारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकांहरिणात्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् । वर्जयित्वामहाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यंसन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः । स्मृत्याऽशेषाऽशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादायहतशेषान्धनंजयः । इन्द्रप्रस्थंसमावेश्य वज्रंतत्राऽभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वासुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्तेपितामहाः । त्वांतुवंशधरंकृत्वा जग्मुःसर्वेमहापथम् ॥ २६ ॥ यएतद्देवदेवस्य विष्णोःकर्माणिजन्मच । कीर्त्तयेच्छ्रद्धयामर्त्यः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २७ ॥ इत्थंहरेर्भगवतोरुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानिचशन्तमानि । अन्यत्रचेहचश्रुतानि गृणन्मनुष्योभक्तिंपरांपरमहंसगतौलभेत ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भा० महा० एकादशस्कन्धे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोयंएकादशस्कन्धः ॥ ११ ॥

को न देख शोक से कातरहो मूर्च्छित होगये और उन्हों ने भगवद्विरहसे कातर हो प्राण त्याग दिये। हे वत्स ! सब स्त्रियें अपने २ स्वामियों का आलिंगनकर चितापर चढ़गईं ॥ १८–१९ ॥ बलरामजी की स्त्रियों ने भी उनका आलिंगनकर अग्निमें प्रवेश किया । सब वसुदेव की स्त्रियें उनके शरीरको और हरिके पुत्रोंकी बहुएं प्रद्युम्न आदिका आलिंगन कर२अग्निमें प्रवेश करगईं। रुक्मिणी आदि कृष्णात्मिका भी अग्नि में जल गईं ॥ २० ॥ प्यारे सखा श्रीकृष्णजी के विरह से कातर अर्जुन ने यथार्थ वाक्यों करके कृष्णगीतिद्वारा अपने को सांत्वनाकी ॥ २१ ॥ फिर जिनके कुल समूल नष्टहोगये हैं ऐसे मरेहुए अपने बांधवों की पिंडोदकादि मृतक क्रिया अर्जुन ने शास्त्रानुसार करवाई ॥ २२ ॥ हेमहाराज ! समुद्र ने भगवान् के श्रीयुक्त मंदिर के अतिरिक्त हरि से छोड़ीहुई द्वारकाको तत्कालही डुबा दिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचाने का यह कारण है कि–भगवान श्रीकृष्णजी वहां सदैव विराजमान रहते हैं । उस मंदिर का स्मरण करनेसेही सब अमङ्गलों का नाश होजाता है ॥ २४ ॥ अर्जुन मरने से बचेहुए स्त्री, बालक और वृद्धजनों को ले इन्द्रप्रस्थ को गये और वहां वज्रको राज्याभिषेक किया ॥ २५ ॥ हेराजन् ! तुम्हारे पितामहों ने अर्जुन के मुख से सुहृदों के बधको सुन तुमको सिंहासनपर बैठाय महाप्रस्थान यात्रा की ॥ २६ ॥ जो मनुष्य देव देव श्रीकृष्णजी के जन्म और कर्मों को कहे और सुनावेगा वह पापों से छुटकारा पाजावेगा ॥ २७ ॥ भगवान हरि के ऐसे परम मंगलमय मनोहर अवतारों की कथा, वीर्य और बाल्यचरित्रोंका जो कीर्तन करेगा वह श्रीकृष्णजी की परम भक्तिको प्राप्त करेगा ॥२८॥

इतिश्रीमद्भा०महा०एकादश०सारस्वतवंशोद्भव पं० जगन्नाथात्मज कन्हैयालालउपाध्यायकृत सरलाभाषाटीकायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोयंएकादशस्कन्धः ॥ ११ ॥

रतिशास्त्र

मूल और भाषाटीका सहित ।

प्रिय पाठकगण ! लीजिये आज वह ग्रंथ तैयार होगया जिस की लालसा प्रत्येक मनुष्य को वर्षों से हयरान कररहीथी, यह वही ग्रंथ है कि जिसका अभ्यास करके राक्षस रावण इकलखपूत सवालखनाती के परिवारको पाकर प्रमुदित हुआथा । यह वही ग्रंथ है, जिसको महर्षि सिद्धनागा उर्जुनजीनें हजारों वर्षकी तपस्या के बल से लोकहितार्थ तैयार कियाथा । महर्षिजी ने हजारों वर्ष की तपस्या के फलको इस ग्रंथ के एक २ श्लोक में कूट २ कर भराहै एक एक शब्द एक २ श्लोक एक एक अशर्फी और एक २ लालको भी सस्ताहै । हम पुस्तक बेचनें के लिये यह बात नहीं कहते, वास्तविक महर्षिजी नें अपनें सब ग्रंथों की अपेक्षा इस रतिशास्त्रको अनुपम और अद्भुत रचाहै । अबतक यह ग्रंथ हाथोंहाथ लिखकरही प्रचारित होता आयाथा, परन्तु आज समय के हेरफेर और हिन्दू विद्वेषी सम्राट् औरंगजेब के दौरात्म्य से इसकी लिखित कापियें भी बहुतायत से नष्ट होगई । अतएव प्राचीन ग्रंथ को लुप्त होता हुआ देखकर हमने इसको कई एक हस्थ लिखित प्रतियों से मिलाय प्रकाशित किया है । यद्यपि हमारा देश संपूर्ण विद्यायोंका भंडार है, किसी विद्याकी कमी नहीं है, बड़े अनुपम ग्रंथ इस प्रकारके विद्यमान हैं कि यदि आज उनके अनुसार कार्य कियाजाय, तो देशका सुधार होसक्ताहै, किंतु क्या कियाजाय, ग्रंथोंका देखना और उन के अनुसार कार्य करना यह दोनोंबातें इस देश से घटती जाती हैं, केवल परंपरा मात्रको देखते हुए ही कार्य में सहसा प्रवृत्त होजाते हैं जिससे लाभ के बदले हानि होती है, जैसे इस समय स्त्री पुरुषों का अनमेल है और उनके स्वभाव एक दूसरे से नहीं मिलते, तथा भारत सन्तानों की यह दशा है कि यदि पिता रूपवान्है तो पुत्र कुरूप, यदि पिता गुणी है, तो पुत्र निर्गुणी, पिता आस्तिक है, तो पुत्र घोर नास्तिक द्विज देवताओंका अभक्त है, इससे क्लेश बढ़कर यत्र तत्र वैमनस्य दीखता है, इत्यादि कहांतक कहें संतानों की हीन शोचनीय दशा देखकर इस पुरातन ग्रंथ का प्रकाश करना उचित जाना । इस ग्रंथ में इन सब कारणों का वर्णन करके वह उपाय भी लिखे हैं कि जिनसे माता पिता की अनुरूप संतान होकर अपनी उन्नति करसके और गृहस्थी में होने वाले दुर्निवार क्लेशों से बचे । इस समय कहीं २ गृहस्थियों में ऐसी स्त्रियें दिखाई देती हैं, जिनको प्रभात से रात्रि पर्यंत क्लेश मेंही:समय बिताना पडताहै और जो कभी प्रसन्नमुख नहीं दीखती, ऐसी महिलाओं को क्लेश से बचने केभी उपाय लिखेहैं । इसके पढनें तथा अभ्यास करने से गृहस्थी का साधन भलीभांति सिद्ध होजायगा भला बुरी स्त्री की पहिचान होजायगी दिन रात के कर्तव्य करतलगत होजांयगे वह वह लटके याद होजांयगे कि जिनसे भूत भविष्य वर्तमान की दशा हस्तस्थित दर्पण की परछाईं के समान ज्ञात होनेलगेगी, यहतो पूर्ण आशा है कि इसग्रंथ के पठनपाठन से पाठकगणों की समस्त मनोकामना निश्चय सिद्ध होगी, अर्थ, धर्म, काम मोक्ष, कातो यह ग्रंथ आधारहै । धनकी कामनाकरने वालेको धन मिलेगा । पुत्र के चाहनेंवाले सुविद्वान् पुत्र पावेंगे । काम वालों की तो अभिलाषा पूर्ण होनें में कहनाही क्या है ? अब आपको पुत्रके लिये शाहमदार की चौखट पर माथा रगडना नहीं पडेगा, बशीकरण की भी तलाशकरनी न होगी इस ग्रंथको लेकर भाग्य की परीक्षा करो, बस ! हाथोंहाथ फल पाओगे । इसमें ऐसे २ अमल और प्रयोग लिखें है, कि जिनका अभ्यास करने से जिन्दगी का पूर्णानन्द प्राप्त होजाता है, स्वयं श्रीमहादेवजीने कहा है हे देवि ! पृथ्वी में रतिशास्त्र सब शास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, इस शास्त्र के अनुसार पृथ्वी ही नही बरन तीनों जगत प्रतिष्ठित हैं, यह बात सत्य है कि पूर्वकाल में देवतालोगभी इस शास्त्र को अध्ययन करते थे ऐसी उत्तमपुस्तकका मूल्य १)

पता—पं० कन्हैयालाल मिश्र, दीनदारपुरा मुरादाबाद.

